नन्दनन्दन



— श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'

नन्दनन्दन

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक—
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान सेवा - संस्थान
मथुरा - २८१००१ (उ० प्र०)

मुद्रक—
राधा प्रेस
९९३/३, गोस्वामी गणेशदत्त मार्ग
गांधीनगर, दिल्ली-११००३१
दूरभाष — २१३१०७

प्रथमावृत्ति—सन् १९७९ ई०
संस्करण : २०००

राज-संस्करण—३२) रुपये
सजिल्द— ३०) रुपये

इस पुस्तकके केवल सात फर्मे भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित हैं।

नन्दनन्दन

अनुक्रमणिका





नये प्रकाशन

पुस्तकका नाम	आकार	पृष्ठ संख्या	मूल्य
१ बाल रामायण—सचित्र मोटे अक्षरोंमें (अजिल्द)	डिमाई	१२०+८	७-००
२ बाल कृष्णायन—मोटे अक्षरोंमें (अजिल्द)	डिमाई	६०+८	२-००
३ मजेदार कहानियाँ—सचित्र मोटे अक्षरोंमें (अजिल्द)	डिमाई	६४+४	२-००
४ श्रीरामचरित्र खण्ड-३ (सजिल्द)	डिमाई	३६४+४	१२-००
५ कन्हाई (अजिल्द)	डिमाई	२०२+२	५-५०
६ विरहिणी राधा नाट्य काव्य—मोटे अक्षरोंमें (अजिल्द)	पाकेट	१६८+४	५-००

प्रेसमें

१ भगवान वासुदेव (द्वितीय संस्करण)

२ दो महापुरुषोंका जीवन-सौरभ

३ मानस मन्दाकिनी—दो खण्डोंमें

४ चैतन्य महाप्रभुके परिकर





नन्दनन्दन

नित्य नूतन नन्दनन्दन !
अन्तरको हो जाने दो—
नव-नव भव्य भाव-भास्वर ,
निर्मल, उज्ज्वल ,
त्वन्मय ।
आविराविर्भव चिन्मय—
यशोदा - तनय !!
जगतमें, जीवनमें, मनमें—
[जनगणमें - वनमें भी]
मेरे तुम रहो एकमात्र !
लोचन रहें—
तव छबि - सुधा पान - पात्र !!



अपनी बात

मेरे एक मित्र कहते हैं—'तुम इस अन्तमें लिखे जानेवाले अंशको सबसे पहिले लिख लेते हो ?'

उनकी बात ठीक है, मैं पुस्तकको वहींसे लिखना प्रारम्भ करता हूँ, जहाँसे वह छपती है और पढ़ी जाती है।

जानता हूँ कि 'दो शब्द', 'अपनी बात', 'भूमिका' आदि कहा जानेवाला यह अंश प्रायः अन्तमें—पुस्तक प्रायः छप जाय तब लिखा जाता है और इसमें अपनी कठिनाइयोंकी चर्चा होती है, पुस्तककी विशेषता भी कभी-कभी कही जाती है, सहायकोंको आभार-धन्यवाद आदि दिया जाता है और यह सब तो अन्तमें ही किया जा सकता है।

मुझे इनमें-से प्रायः कुछ नहीं करना रहता। पुस्तकके सम्बन्धमें कुछ कहना है तो वह वैसे ही अब भी है, जैसे अन्तमें रहेगा। पुस्तक छपेगी ही, यही निश्चय नहीं रहता और इस बार तो अपने लिए ही लिखना है। छप जाय तो कन्हाईका कार्य, न छप जाय तो भी अपना उद्देश्य तो पूरा हो ही रहा है।

आभार किसीको देना नहीं रहता। किसे दूँ ? कृष्ण साथ न दे तो कुछ लिखा ही न जाय ; किन्तु श्यामको आभार— यह इतना सङ्कोची और अपनेसे अभिन्न। इसका तो है ही सब कुछ। शब्द भी तो मेरे नहीं। लेखनी पकड़कर कागज काला करनेका श्रममात्र मैंने किया है।

कोई कभी पढ़ भी सकता है ; किन्तु यदि उसके हृदयमें इससे किञ्चित् भी कृष्ण-प्रेमकी प्रतीति जागती है तो मैं अग्रिम आभारी ; और यदि वह भक्त-हृदय है तो उसकी अहैतुकी-अकारण कृपा अपने आप मुझे प्राप्त होती है।

व्रजराज-कुमारका यह चरित—वैसे तो यह 'भगवान वासुदेव' 'श्रीद्वारिकाधीश' तथा 'पार्थ-सारथि'के क्रमकी अन्तिम कड़ी है ; किन्तु अपने आपमें स्वतन्त्र है, विषय एवं शैली दोनों ही दृष्टियोंसे।

पहिले 'भगवान वासुदेव'से जो श्रीकृष्ण-चरित प्रारम्भ हुआ, वह ऐश्वर्य चरित-पार्थ-सारथिपर पूर्ण हो गया। वह भू-भारहारी श्रीहरिका पूर्णावतार चरित है। अनन्त ऐश्वर्य, षोडश-कला-सम्पूर्ण पूर्ण-पुरुष पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका चरित है वह। श्रीकृष्ण वासुदेव हैं। चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी हैं। केवल गरुड़ध्वज रथ ही उनका नहीं है, गरुड़ासन भी हैं।

समस्त ऋषिगण श्रीद्वारिकाधीशको साक्षान्नारायण कहते हैं। उन्होंने स्वयं अपने सम्बन्धमें यह कहा है—

'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥'

(गीता १५.१८)

× × ×

अहं सर्वस्व प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।

(गीता १०.८)

सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण—अनन्त ऐश्वर्य ; और उसे प्रकट करनेमें उन्हें कोई संकोच नहीं है।

इससे सर्वथा भिन्न स्थिति है व्रजकी और श्रीव्रजराज-कुमारकी। व्रजमें इन्होंने किसी असुरको मारनेके लिए लाठी तक तो उठायी नहीं। व्रजमें ही नहीं, व्रजपति जबतक मथुरामें रहे तबतक भी ; और प्रभासमें—सिद्धपुरमें भी व्रजवासियोंके सम्मुख श्रीकृष्ण सदा द्विभुज हैं।

व्रजमें ऐश्वर्य है—अनन्त ऐश्वर्य है—ऐसा लगता है कि मथुरा, द्वारिका, हस्तिनापुरमें इस ऐश्वर्यकी केवल छाया है ; किंतु यहाँ ऐश्वर्य इतना प्रेमाच्छादित है कि दूसरेको तो दूर, स्वयं श्रीकृष्णको भी स्मरण नहीं रहता कि उनमें कुछ ऐश्वर्य भी है।

इसलिए यह 'नन्दनन्दन' अपने आपमें परिपूर्ण, सर्वथा स्वतन्त्र ही है, ऐसा कहनेमें मुझे कोई सङ्कोच नहीं है।

यह श्रीकृष्णका व्रज-चरित माधुर्य-चरित है। इसमें माधुर्यसे ऐश्वर्य सर्वथा आच्छादित है। ऐसा आच्छादित कि सामने दीखता हुआ भी उसपर दृष्टि नहीं जाती। इसमें श्रीव्रजेन्द्रनन्दन अपना है—सर्वथा अपना और अतिशय सुकुमार, अत्यन्त भोला, परम भावमय है।

केवल तब-जब कि अन्तर, विपत्तिकी व्याकुलतामें अथवा वियोगकी वह्निमें विक्षिप्त हो उठे, ऐश्वर्य स्मरण आता है ; किंतु बहुत क्षण-स्थायी होती है ऐश्वर्यकी स्मृति। जैसे व्रजके लोगोंके मानसमें ऐश्वर्य बहुत डरते-डरते, बहुत सङ्कोचपूर्वक कभी आता है और वहाँ प्रेमके देवताको प्रतिष्ठित देखते ही भाग खड़ा होता है।

वैसे भी भावुक भक्तोंका भाव है कि श्रीव्रजेशतनय तो व्रजभूमि त्याग कर कहीं एक पद भी नहीं जाते। व्रजमें जो ऐश्वर्य यदा-कदा प्रकट भी हुआ, वह उनका नहीं है। उनमें आविष्ट श्रीवासुदेवका है वह, और वे वासुदेव ही फिर मथुरा, द्वारिका, इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुर आदि की लीलाएँ करते हैं। भूभार-हरण उनका ही कार्य है।

श्रीयशोदा-कुमार तो भक्त-हृदय-धन हैं। वे केवल प्रेम परिपूत प्राणोंको सनाथ करनेके लिए कभी कदाचित् अपनी नित्य, चिन्मय लीलाका आविर्भाव करते हैं।

भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।'

(श्रीम० भा० १०.३३.३७)

यह व्रजचरित श्रवण, स्मरण, चिन्तनके लिए है। यह न अनुकरणीय है, न उपदेश है और न कहीं आदर्शकी स्थापना। यह तो मानसमें आवे तो वह प्राणी मायाके मोह-जालसे विमुक्त हो जाय। यह ध्येय, ज्ञेय, चिन्तनीय है।

इसलिए इस खण्डको पृथक ही रखना मुझे अच्छा लगा और अन्तमें भी रखना ; क्योंकि धर्म, योग, ज्ञानका परिपाक-परमफल है नन्दनन्दनका अनुराग। ऐश्वर्यके चिन्तनसे पवित्र हृदयमें इस लीलाका आविर्भाव सम्भव है।

व्रज-युवराज सदा शाश्वत होकर भी नित-नूतन हैं, अतः इनका चरित भी नित्य नवीन है। यह इतना प्रिय है सिद्ध, तपोधन, महामुनीन्द्रों-को कि इसका गान इन अलक्ष्य नित्यकाय लोगोंमें कभी विरमित नहीं हुआ करता।

आप इसे मेरा श्रवण कहें – शैली कहें, कल्पना कहें, चिन्तन कहें— मुझे पता है कि इनमें-से कुछ मेरे पास नहीं है। पता नहीं क्यों, कन्हाईका मेरे साथ प्रारम्भसे पक्षपात है और इसीलिए जहाँ यह नटखट नन्दलाल मुझे सदा सम्हालता रहा है, सहारा देता रहा है, वहीं कुछ लिखवाता भी

रहा है। मैं इसके शब्दोंको केवल कागजपर उतारता रहा हूँ और अब यह जो इसके चरितको वाक्योंमें व्यक्त करनेकी साध है, उसे यह सफल करेगा ही। यह स्वयं या इसके अपने नित्यजन मानसमें कब क्या कहेंगे, यह तो अभी मुझे भी पता नहीं है; किंतु मेरे मौनमें मुखरित उनकी वाणीका ही यह अवतरण है।

मुझे कुछ कहना है तो केवल अपने इस कन्हाईसे ही कि तुम अब अन्तरमें आओ और अपने चारु-चरितोंको उद्भासित करो! जीवनमें ज्योति बनो! मनमें ही नहीं, दृगोंके सम्मुख भी पधारो और अपने स्नेह-सलिलसे सिञ्चित करो तन, मन, प्राण! व्रजराजकुमार! अपने सहज भोलेपनसे कहो—ओम्! हाँ!

अब यदि सौभाग्यसे इसके पाठक भी हैं तो आप श्यामसे तादात्म्य मानकर ओम् कहें या मेरी प्रार्थनामें स्वत्व समझकर इसे दुहरावें! दोनोंमें आप स्वाधीन।

—सुदर्शन सिंह

हरिद्वार
पुरुषोत्तम मासीय
कृष्ण द्वादशी
सं० १९३१ वि०

प्रस्तावना

सृष्टि सत्य नहीं है, आभासमात्र है। इसका अभिन्न निमित्तोपादान कारण जो सत्ता है, वह चिन्मात्र है। वह अद्वय सत्ता निराकार, निर्विकार, निर्धर्मक, निर्विशेष, निर्गुण है, अतः निष्प्रयोजन है; क्योंकि प्रयोजन सदा व्यक्तिका होता है। उस अद्वय सत्तामें व्यक्त-अव्यक्त दोनों कल्पित हैं, अतः व्यक्ति भी उसमें स्वप्नवत् ही भासते हैं। वह सत्ता न किसीका प्रयोजन है, न उसका कोई प्रयोजन है और न उससे किसीके किसी प्रयोजनकी पूर्ति होती; क्योंकि उसमें दूसरा है ही नहीं।

श्रुति, शास्त्र और सन्तोंकी समस्त वाणी सप्रयोजन है। यह व्यक्तिके लिए है। प्रयोजन ही व्यक्तिका होता है। श्रुति-शास्त्र-सन्त वाणीका प्रयोजन नहीं मानेंगे तो वह व्यर्थ हो जायगी। प्रयोजन अधिकारीके अनुसार होता है, अतः यह वाणी भी अधिकारीके लिए उसके अधिकारके अनुरूप साधनका निर्देश करती है।

अधिकारीका आधार है अन्तःकरण। अतः समस्त वाणी—सब साधन-साध्यका निरूपण अन्तःकरणवान पुरुषके लिए है।

सामान्य चेतन अर्थात् ब्रह्म तो अन्तःकरण भी है और उसका प्रकाशक भी। वह वाणीका—मन-बुद्धिका भी विषय ही नहीं है। वह है—उसका जो प्रतिपादन श्रुति-शास्त्रमें है, वह भी सप्रयोजन है और वह प्रतिपादन निषेध मुखसे ही है।

वह सामान्य चेतन किञ्चित् सविशेष हुए बिना किसीका प्रयोजन नहीं बनता और न उससे किसीके किसी प्रयोजनकी पूर्ति होती। अतः उसका जो प्रतिपादन है श्रुति-शास्त्रमें, वह उसे किञ्चित् सविशेष बनाकर ही है। वह निर्विशेष है, निर्गुण है, यह कहना भी उसे सगुण, सविशेषसे कुछ भिन्नता, विशेषता देता है या नहीं?

प्रयोजन अन्तःकरणवान पुरुषका है और वह प्रयोजन है अन्तःकरणसे सदाके लिए पिण्ड छुड़ा लेना। क्योंकि समस्त आध्यात्मिक साधनोंका

उद्देश्य दु:खकी आत्यन्तिक निवृत्ति तथा शाश्वत सुखकी प्राप्ति ही है और यह प्रयोजन अन्तःकरण-संयुक्त रहते पूरा हो नहीं सकता। अन्तःकरण त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका कार्य है। अतः उसमें कोई एक गुण नित्य जागृत नहीं रह सकता। उसमें तो कभी सत्त्वगुण, कभी रजोगुण तथा कभी तमोगुणका प्राबल्य होगा ही। अतः दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिका अर्थ ही है अन्तःकरणकी अन्त्येष्टि।

सामान्य चेतन निष्प्रयोजन भले हो; किन्तु जब वह वृत्त्यारूढ़ होता है, तब अन्तःकरणारूढ़ चेतनसे उसका तादात्म्य हो जाता है। इस तादात्म्यको ही ब्रह्माकार वृत्ति कहते हैं और यही मुक्तिका हेतु है; क्योंकि सामान्य चेतनसे एकत्वका बोध होनेपर अन्तःकरणका बाध हो जाता है। तब आकाशकी नीलिमाके समान उसकी प्रतीति भले बनी रहे; किंतु उसमें व्यवहार सम्भव नहीं है। प्रतीतिसे तादात्म्य होकर ही व्यवहार होता है। रज्जुमें सर्पकी प्रतीति है, तभी तक उससे भय, भागना, बचना या उसे मारनेका प्रयत्न है। उसकी प्रतीति भले सर्पाकार बनी रहे, वह रज्जु है, यह जानते ही उसके साथ सर्पवत् व्यवहार समाप्त हो जाता है।

वृत्त्यारूढ़ सामान्य चेतन व्यवहारका निवर्तक है। एक बार एक क्षणके लिए ही रज्जुके ठीक स्वरूपका बोध हो जानेपर उसको बार-बार देखना आवश्यक नहीं रहता और न उसके साथ सर्पका व्यवहार ही रह जाता। ऐसे ही अन्तःकरणका बाध हो जानेपर उसके साथ व्यवहार नहीं रह जाता और अन्तःकरण बिना चेतनके तादात्म्यके कोई वस्तु नहीं है कि वह स्वयं सक्रिय रहेगा, जैसे गगनकी नीलिमा स्वयं कुछ कर नहीं सकती।

शरीरकी अत्यन्त सामान्य आवश्यक क्रिया भी अन्तःकरणके साथ किञ्चित् तादात्म्य होनेसे ही होती हैं। इसीलिए सप्तम भूमिकामें उनकी भी निवृत्ति मानते हैं। यह असम्भव है कि अन्तःकरणका बाध भी हो जाय और वह राग-द्वेषादि सबको लिये सक्रिय भी रहे। अतः जहाँ भी ऐसा होता है, अद्वय तत्त्व बोधका केवल बौद्धिक-विलास है और वह किसीको मुक्त नहीं करता; क्योंकि सामान्य चेतनमें बन्धन था ही नहीं और जिसमें बन्धन था, वह अन्तःकरणसे तादात्म्य तोड़कर बन्धन-मुक्त हुआ नहीं। तादात्म्य टूट गया होता तो आभासमात्र अन्तःकरणमें सक्रियता समाप्त हो जाती।

यह चेतनका वृत्त्यारूढ़ होना क्या है? यह एक कल्पित स्थिति है। जैसे स्वप्नका रोग स्वप्नकी ही औषधिसे मिटता है, वैसे ही सृष्टिकी कल्पनाके कारण जो अन्तःकरणकी कल्पना करके उससे कल्पित रूपसे तादात्म्यापन्न हो गया है, वह उस कल्पित अन्तःकरणकी कल्पित वृत्तिमें कल्पित ब्रह्मकी कल्पना करके इस तादात्म्यसे मुक्त होता है। ब्रह्म कल्पनाका विषय कभी बनता नहीं, अतः वृत्तिमें आया ब्रह्म कल्पित ही होता है; किन्तु यह कल्पित ब्रह्माकार वृत्ति सकल अनर्थकी निर्वर्तिका है।

श्रुति-शास्त्र-सन्तवाणी मात्र सप्रयोजन हैं। यह प्रयोजन सृष्टिमें—संसारमें है और सप्राण मानवके लिए—शरीरधारीके लिए है। इस स्तरपर सृष्टि, शरीर, संसार—इस सबको सत्य मानकर ही साधकको चलना पड़ता है। अन्यथा प्रयोजन-पूर्तिके पश्चात् तो जैसे शरीर तथा संसारका बाध होता है, शास्त्रका भी बाध हो जाता है।

इस शरीर एवं संसारको सत्य मानकर ही हम अनन्तकालसे व्यवहार कर रहे हैं। इसीमें जन्म-मरण है। इसीमें सुख-दुःख हैं और इसीके सुख-दुःख, जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारेका साधन शास्त्र बतलाते हैं। अब सामान्य चेतनको छोड़ दें तो इस संसारमें दो चेतन और स्पष्ट हैं। एक शरीरमें—अन्तःकरणमें अभिमान करनेवाला जीव-चेतन। यही जन्म-मरणके बन्धनमें पड़ा है। यही सुख-दुःखका भोक्ता है और इसीको साधन करके मुक्त होना है।

'कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥
पुरुषः प्रकृतस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥
उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥'

—(गीता १३.२०,२१,२२)

इस सृष्टिका सञ्चालक एक चेतन है। वह सृष्टिमें व्यापक रहता भी इससे परे है और इस शरीरमें—अन्तःकरणमें ही वह अन्तर्यामी रूपसे स्थित है। वह महेश्वर उपद्रष्टा है, अनुमन्ता है। वस्तुतः वही भर्ता और भोक्ता भी है।

वह अन्तर्यामी अन्तःकरणमें होकर भी केवल उपद्रष्टा है। वह अन्तःकरणका मुख्य द्रष्टा नहीं है और अन्तःकरणमें तादात्म्यापन्न होकर कर्त्ता भी नहीं बना है। कर्त्ता तो है प्रकृति। अन्तःकरण और बहिःकरण (इन्द्रियाँ) दोनों प्रकृतिके कार्य हैं। अतः इन्द्रियोंसे या मनसे जो कुछ होता है, सब कार्य प्रकृतिके गुणोंसे ही होता है।

'प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥' (गीता ३.२७)

वस्तुतः जीव किसी कर्मका कर्त्ता नहीं है; किंतु अहङ्कारसे मूर्छित-प्राय होकर प्रकृतिके गुणोंसे हुए कार्योंको वह अपनेमें आरोपित करके अपनेको कर्त्ता मान लेता है। यह मान लेनेके कारण ही कर्मके शुभाशुभ फलका वह भोक्ता हो जाता है।

जो महेश्वर है, प्रकृतिका संचालक है, वही वास्तविक भोक्ता है। लेकिन वह इस शरीराभिमानी जीवका भर्ता है—इसका भरण-पोषण वही करता है, अतः जब अज्ञानी जीव अपनेको कर्त्ता मान लेता है, तब वह इसकी मान्यताका अनुमोदन कर देता है। वह अनुमन्ता बना रहता है।

'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।'

—(गीता १३.१-२)

यह शरीर क्षेत्र है। इसमें पाप-पुण्यकी खेती होती है और उससे सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं। इस शरीरको जो अपना जानता है, वह क्षेत्रज्ञ है; किंतु वास्तविक क्षेत्रज्ञ प्रति शरीर भिन्न जीव नहीं है। वह सब क्षेत्रों-में एक ही है।

'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः॥'

—(गीता १५.१६,१७)

इस संसारमें—दृश्य प्रपञ्चमें दो पुरुष हैं—एक क्षर, विनाशी। यह सब प्राणि-पदार्थ हैं। परिवर्तनशील सम्पूर्ण पञ्चभूतात्मक सृष्टि क्षर है।

इस कूट-भूठ—प्रतीयमानमें जो अविनाशी, नित्य, अक्षर स्थिर है, वह जीव है। वह एक-एक अन्तःकरणको अपना माने बैठा है। इन दोनों क्षर-अक्षरसे जो उत्तम है, वह अन्य है—इनसे परे है। उसे परमात्मा कहा जाता है। वह तीनों लोकोंमें प्रविष्ट होकर इनका धारण करता हुआ भी अव्यय है—निर्विकार है।

यह अव्यय परमात्मा अन्तर्यामी पुरुष है। अब प्रश्न है कि यह निर्विशेष है या सविशेष ? सगुण है या निर्गुण ? इतना ध्यान रखें कि यह प्रश्न सामान्य चेतनके सम्बन्धमें नहीं है। यह प्रश्न 'भर्त्ता भोक्ता महेश्वर' अन्तर्यामीके सम्बन्धमें है।

जो 'भर्त्ता भोक्ता महेश्वर' है, जो सृष्टिका कर्त्ता-पालक-संहर्ता है, वह निर्गुण-निर्विशेष कैसे होगा ? वह सगुण है, सविशेष है। वह क्षर-अक्षर पुरुषसे अन्य है, यह उसकी विशेषता है और वह 'भर्त्ता है, भोक्ता है, सञ्चालक है', यह उसके गुण हैं।

सृष्टि है तो उसका सञ्चालक, पालक सगुण ईश्वर भी है। जैसे शरीर है तो शरीराभिमानी जीव भी है। यह अन्तर्यामी ईश्वर भी 'उपद्रष्टानुमन्ता' तटस्थ ही है। 'अन्तरात्माकी प्रेरणा' आपको होती भी हो तो वह वासनावान् मनकी (शैतानकी) प्रेरणा है अथवा सचमुच अन्तर्यामीकी प्रेरणा है, यह निर्णय कर लेना बहुत ही कठिन है। यह अन्तर्यामी भी निर्गुण-निर्विशेष बना रहता है, जबतक आप उसकी ओर नहीं देखते।

'अविदितो देवो नैनं पुनन्ति।' —निरुक्त (यास्क)

जो इस अन्तर्यामीको नहीं जानता, उसे यह पवित्र नहीं करता।

'ब्यापक एकु ब्रह्म अविनासी।
सत-चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥

—(रा० च० मा० १.२२.६,७)

यह व्यापक, एक, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन सामान्य चेतन ब्रह्म है, ऐसे भ्रममें मत पड़िये। क्योंकि सामान्य चेतनमें तो हृदय-हृदयस्थका भेद नहीं है। यह है हृदयस्थ-अन्तर्यामी और प्रभु है—सर्वसमर्थ है; किंतु

इसके हृदयमें रहते हुए भी सब जीव दीन हैं, दुःखी हैं, क्योंकि यह अविकृत है। इसमें अपनी ओरसे कोई क्रिया नहीं है। न क्रूरता, न कठोरता।

यह अविकारी तभी तक अविकारी है, जबतक आप इसे ऐसा रहने देते हो। आप इससे तटस्थ हो तो यह भी आपसे तटस्थ 'भर्त्ता-भोक्ता' बना बैठा है। इसका स्वभाव है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।' (गीता ४.११)

अतः जब आप इसकी ओर देखने लगते हो, इससे अपेक्षा करते हो तो यह आपसे तटस्थ नहीं रह सकता।

'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥'

—(गीता १५.१८,१९)

क्षरसे—विनाशीसे वह अतीत है, परे है; किन्तु अक्षरसे परे कैसे होगा? अक्षरसे उत्तम है। वह अक्षरका सखा है, किंतु वरिष्ठ सखा है। श्रुतिने कहा—

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया।' (ऋग्वेद १.१६४.२० ;
अथर्व ९.९.२०)

जो इस पुरुषोत्तमको जान लेता है, वह असम्मूढ़ है। 'अहङ्कार विमूढात्मा' वह नहीं रहा। अतः 'कर्ताऽहं' भी वह नहीं मानता। वही सर्वविद् है। अब वह सर्वभावसे उस पुरुषोत्तमका ही भजन करता है।

सर्वभावसे भजन—यह भागवत धर्मकी विशेषता है। जब 'अहं कर्त्ता' नहीं रहा तो मन-इन्द्रियोंकी सब क्रियाओंका कर्त्ता कौन?

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥'

(—गीता १८.६१)

सब भाव उसी अन्तर्यामीके। सब भावोंका वही सञ्चालक और भोक्ता तो वह महेश्वर है ही। अतः—

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहाषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।' (गीता ९.२७)

जो कुछ इन्द्रियोंसे, मन-बुद्धिसे करते हो, जो भोगते हो, जो यज्ञ करते हो, जो स्वत्व-त्याग करते हो, जो जान-बूझकर कष्ट सहते हो, सब उसी सर्वसञ्चालक पुरुषोत्तमको समर्पित कर दो ।

'यह करो, यह मत करो—यह शुभ—यह अशुभ ।' इस प्रकारका उपदेश धर्मशास्त्र करता है और इसमें केवल मनुष्यका अधिकार है । लेकिन भागवत धर्ममें प्राणिमात्रका अधिकार है और इसमें कर्मका निर्णय नहीं है । कर्ममात्रका निवेदन है—

'यत्कृतं यत्करिष्यामि तत्सर्वं न मयाकृतम् ।
त्वया कृतं त्वं फलभुक् त्वमेव मधुसूदन ।।'

यह जो अन्तर्यामी पुरुषोत्तम है, सर्वसञ्चालक, सर्वलोकमहेश्वर, यह सर्वसमर्थ, निखिल-दिव्यगुणैक-धाम, अनन्त करुणावरुणालय, सविशेष-सगुण, इसके सङ्कल्पसे सृष्टि—कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड मूर्त होते हैं और अपने सङ्कल्पसे यह साकार नहीं हो सकता, ऐसा सोचना कितनी समझदारी होगी ?

'यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ।'
—(श्रीमद्भागवत ३.९.११)

जिस-जिस भावको आप समर्पित करते हो, उस-उसको वह स्वीकार करके आपके लिए वैसा ही बन जाता है ।

'यह तो बना हुआ—कल्पित रूप हुआ ?'

एक वेदान्ती परिचितने कहा । मैंने उनसे कहा—'हानि क्या है ? कल्पित ब्रह्माकार वृत्ति बननेपर जो कुछ होता है—कल्पित सगुण-साकारके भी अन्तःकरणमें आनेपर वही हो सकता है, कमसे कम इतना तो आपको स्वीकार करना ही चाहिए ।'

जैसे शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशसे बना है तो इन-पर ही आश्रित है । इनसे ही पोषण पाता है । इनमें-से एकको भी छोड़कर शरीर नहीं रह सकता । ऐसे ही अन्तःकरणमें स्थित जीव ईश्वरका अंश है या नहीं ? तब ईश्वराश्रित रहे बिना और कोई उपाय है उसके लिए ?

उसकी कोई स्वतन्त्र शक्ति-सामर्थ्य है ? यह स्वतन्त्र शक्ति-सामर्थ्य मानकर ही अपनेमें तो वह **'कर्तास्मीति निबध्यते'** की अवस्थाको प्राप्त हुआ।

अतः साधन चाहे कोई भी हो, सबमें ही ईश्वरकी अनुकम्पा अनिवार्य रूपसे अपेक्षित मानी गयी है। सबमें चरम स्थितिको साधन-साध्य नहीं माना जाता।

यह साधकमात्रपर, भले उनका साधन कुछ भी हो, अनुकम्पा करनेवाला जो अन्तर्यामी पुरुषोत्तम है, वही प्राणोंका प्राण, आत्माकी आत्मा अवतीर्ण होता है ; इस धरापर अपनेको अभिव्यक्त करता है। वह जो अन्तःकरणमें आ सकता है, वह बाहर भी साकार होनेमें समर्थ है और अन्तःकरणमें जो उसकी श्रीमूर्ति आती है, सदा मनःकल्पित ही तो होगी। जिसने भी देखा हो—शास्त्रके उस वर्णनके आधारपर हम कल्पना ही तो करेंगे ; किन्तु कृष्णकी यह कल्पना सामान्य नहीं होती। कृष्ण कभी किसी रूपमें साधारण नहीं होते।

'सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ॥'

—(श्रीमद्भागवत १०.१२.३९)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि केवल एक बार कृष्णकी मनःकल्पित मूर्ति भी अन्तरमें आ जाय तो वह भागवती गति दे देती है।

सच्चिदानन्द कल्पनामें आकर कल्पित मायाके अनादि विस्तारको सदाके लिए समाप्त कर देता है, यही तो श्रुति-शास्त्र-प्रतिपादित शाश्वत सत्य है।

सगुण सर्वेश्वर अनन्त करुणावरुणालय प्रेमैकमूर्ति प्रेमपरवश अपनेको आविर्भूत करता है। वह आता तो है अपने वास्तविक रूपमें ही ; किंतु हमारे लिए वह अग्राह्य है। अतः हम अपनी कल्पनाके पात्रमें उस अनन्त रससिन्धुको पात्रके अनुसार भरते हैं। यह हमारी विवशता है।

श्रीकृष्णका स्मरण, चिन्तन तथा उनकी लीलाके वर्णनमें शास्त्रकी, महर्षियोंकी, मेरी भी यह विवशता ही है कि वे सच्चिदानन्दघन न मनके विषय बनते, न वाणीके। उनमें मन-वाणीका प्रवेश नहीं है।

'कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभ्राति मायया ।।'
—(श्रीमद्भागवत १०.१५.५५)

यह जो आपका अविकारी सच्चिदानन्द अन्तर्यामी है, वह साकार होकर सामने आ जाय तो कैसा लगेगा ? कैसा होगा ? यह बुद्धि सोच नहीं सकती।

हमारी–आप सबकी एक विवशता है—बहुत बड़ी विवशता कि हम जैसे देखते, सुनते, सूँघते, छूते, रस लेते, सोचते हैं—इससे भिन्न कुछ हो तो हमारे लिए समझना असम्भव हो जायगा। जैसे आपने देखा होगा दीपावलीपर बनी चीनीकी मूर्तियाँ। इनमें श्रीकृष्ण-मूर्ति भी होती हैं—हो तो सकती ही हैं। अब उस मूर्तिमें वंशी, पटुका, केश, नेत्रादि सबमें समान मिठास है या अधिक-कम ? यदि वह मूर्ति कदाचित हँसने-बोलने-चलने लगे तो ?

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः।'

योग-दर्शनके इस सूत्रके अनुसार ईश्वरमें न अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश ये पञ्चक्लेश हैं, न कर्मफल उसे स्पर्श करते, न उसके अन्तः-करण होता। श्रीकृष्णका सम्पूर्ण श्रीविग्रह, उनके वस्त्र, माला, आभरण, वंशी आदि सब विशुद्ध सच्चिदानन्दघन हैं। अर्थात् वैसे ही सच्चिदानन्द घनीभूत होकर यह मूर्ति बना है, जैसे चीनीसे बनी मूर्ति हो।

श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर नहीं हैं। पञ्च-भूतात्मक न होनेसे स्थूल शरीर नहीं है। अन्तःकरण-आशय न होनेसे सूक्ष्म शरीर नहीं है। अविद्यारूप कारण शरीर भी नहीं है। यह श्रीविग्रह केवल चिद्घन है।

यह तो ठीक ; किंतु जहाँ मन-बुद्धि नहीं है, वहाँ श्रीकृष्ण कैसे सोचते हैं ? कैसे किसीके प्रेमका अनुभव करते हैं ? कैसे वे भावना करते और भावना समझते हैं ?

वे कैसे सोते या जागते हैं ? उनमें जब इन्द्रियाँ नहीं हैं, चीनीकी मूर्तिके समान वे चिद्घन हैं तो उनके नेत्रोंसे देखने और नासिकासे सूँघनेका भी क्या अर्थ ? उनके नेत्रोंमें या मनमें जितनी चेतना है, उतनी ही उनके

पद-नखमें, केशोंमें, वस्त्रमें, वंशीमें भी है। वे सब कहींसे देखते, सुनते, छूते, सूँघते, सोचते हैं।

यह सत्य है—परम सत्य ; किंतु समझमें आवेगा ? इसे मानकर चलनेपर ध्यानमें आवेंगे व्रजराजकुमार या उनके चरितकी चर्चा भी की जा सकेगी ?

अतः हमारी ही भाषामें शास्त्र बोलते हैं ; क्योंकि हमको समझानेके लिए बोलते हैं, देश, काल जिसमें कल्पित हैं, वह सगुण तत्त्व भी साकार होता है तो अपनेमें देश, काल तथा देहेन्द्रियोंकी हमारे समान प्रतीति कराकर हमारे समान लीला करता है। वह हमारे समान होकर हमारे मध्य आविर्भूत होता है।

यह विशद विवेचन बुद्धिमानोंके लिए रहने देकर हमारा उद्देश्य—हमारा प्रयोजन सरलतासे सम्यक् सिद्ध हो सकता है ; क्योंकि सगुण-साकार श्रीव्रजराजकुमार बुद्धिगम्य नहीं है, श्रद्धैकगम्य है। अतएव श्रद्धा-सहित मन लगाकर हम प्रयत्न करें कि इसकी परममधुर सुधा-स्रोतस्विनी मञ्जु लीलाओंका अन्तःकरणमें आविर्भाव हो।



कुल-परिचय

सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्माके मानस-पुत्रोंमें हैं महर्षि अङ्गिरा। वे स्रष्टाके अङ्गारोद्भव अंश स्वयं प्रधान अग्नि हैं। अत: उनके वंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंमें प्रचण्ड तेज प्रश्रय पाता रहा है।

तप्तताम्र वर्ण, प्रलम्बकाय, विशाल बाहु, अरुणाभ दीर्घ दृग, उन्नत नासिका-भाल, श्वेतकेश श्मश्रु होनेपर भी स्वस्थ, सुगठितकाय महर्षि शाण्डिल्यने स्वयं अपने सम्बन्धमें पूछनेपर महाराज परीक्षितको सुनाया—

'भगवान सहस्रशीर्षा अनन्तके द्वारा उपदिष्ट सात्वत-संहित—पाञ्चरात्रागमका मैं प्रचारक, प्रतिष्ठाता हूँ और चतुर्व्यूहात्मक परम-पुरुष पुरुषोत्तम ही मेरे आराध्य हैं।' ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्कित भाल, तुलसीकण्ठ-माल, शुभ्र वसन उन वैष्णवोंके परमाचार्यने सुनाया—'मुझे अपवित्रताकी गन्धसे अरुचि है। मैंने अपनी तपोभूमिको क्रोसमात्र चतुर्दिक पवित्र रखने-की नित्य व्यवस्थाका विधान किया तो इन्द्रने इसे अपनी सेवा मानकर सादर स्वीकार कर लिया। हिमगिरिका वह एकान्त निर्जन प्रदेश मुझे प्रिय है।*

मुझे बहुत बुरा लगा जब सृष्टिकर्त्ताने पौरोहित्य करनेको मुझसे कहा। पौरोहित्य भी ब्राह्मणोंमें-से किसी वेदज्ञ, तपस्वीका नहीं, किसी राजाका या सामान्य क्षत्रियका भी नहीं, गोपोंका। मैं कदाचित ही कभी

* भारत-तिब्बत सीमा के अलमोड़ा जिलेके अन्तिम ग्राम मिलमसे लगभग १५ मील दूर ऊँचाईपर है सूर्यकुण्ड। वहाँसे प्राय: तीन मील ऊपर शाण्डिल्य कुण्ड है। इसके चतुर्दिक दो मीलके क्षेत्रमें कोई पशु-पक्षी नहीं। इस हिम क्षेत्रमें मल-मूत्र या कफ भी कोई (पशु भी) डाले तो ओले पड़ने लगते हैं, वर्षा होती है और जबतक वह गन्दगी धुल न जाय, होती रहती है।

क्रोध कर पाता हूँ। भक्ति-सूत्रके कर्त्ताको, पाञ्चरात्रके प्रतिष्ठाताको प्राणिमात्रमें अपने आराध्यके दर्शन न हों तो किसे होंगे ; किंतु उस दिन मैं अपने क्षोभको रोक नहीं पा रहा था। सृष्टिकर्त्ता क्या समझते हैं कि उनको शाप देनेवाला कोई समर्थ ही नहीं है ?

'वत्स ! अपनी उत्तेजना शान्त करके मेरी बात सुन लो !' भगवान ब्रह्मा सर्वज्ञ हैं। ऐसा न भी होता तो भी उनके लिए अनुमान करना कठिन नहीं था। अवश्य उत्तेजनासे मेरे दृग अरुण हो उठे होंगे और मुखपर आवेश स्पष्ट होगा। वैसे भी सुरोंके भी उन पितामहको सङ्कल्पकी भाषा भली प्रकार अवगत है। उन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक मुझे समझाया—'जिस लाभके लोभने वशिष्ठ जैसे ब्रह्मर्षिको पौरोहित्य पद स्वीकार कराया था और वह पानेको मेरे दूसरे सब पुत्र उत्कण्ठित हो उठे थे, वही महत्तम अवसर पुनः आनेवाला है। तुम एक बार व्रज चले जाओ। मुझे आशा है कि वहाँ पहुँच-कर तुम इस प्रस्तावके लिए मेरा आभार मानोगे !'

मैं ब्रह्मलोकसे धरापर आया। मथुरा-मण्डल उस समय वृष्णि-वंशके शासनमें था और यह वंश सुरोंके प्रति, शास्त्रोंके प्रति श्रद्धालु रहा है। वैसे यदुवंशी कार्तवीर्य अर्जुनके पूर्वसे नैष्ठिक शैव होते आये हैं ; किंतु त्रिलोचन, गङ्गाधर भगवान महेश्वर तो वैष्णवोंके परमाचार्य हैं। वे पाञ्च-रात्रागमके उपदेष्टा—उनके निष्ठावान उपासकोंके प्रति मेरी सहज सहानु-भूति है। अतः मुझे मथुरा-मण्डलमें आनेमें कुछ सोचना नहीं था।

मुझे श्रीहरिकी नित्य सान्निध्य-प्राप्ता पावन पुरी मथुरामें भी रहने-का आदेश नहीं था। स्रष्टा जानते थे कि मैं स्वभावसे अरण्यानी हूँ। नगर कितना भी पुनीत तीर्थ हो, मेरे उपयुक्त नहीं हो सकता था। यमानुजा भानु-नन्दिनीके कूलपर मथुराके सम्मुख ही महावनमें गोपोंका आवास था गोकुल। मुझे यहीं आनेका आदेश सृष्टिकर्त्ताका था।

वत्स ! मैं गोकुलमें पहुँचते ही चौंक गया। ब्रह्मलोकसे चला तो मनमें था—धराका कोई भी अञ्चल मेरे आश्रमसे अधिक पुनीत नहीं हो सकता। वैसे परात्पर पुरुषके अवतीर्ण होनेकी सूचनाने मुझे पौरोहित्यके लिये प्रलुब्ध कर दिया था ; किंतु मेरा मानस बहुत उलझनमें था। भगवान श्रीहरिका अवतरण इस वैवस्वत मन्वन्तरकी वर्तमान अट्ठाइसवीं चतुर्युगीके इसी द्वापरान्तमें मथुरामें होना है, यह बात सुरोंमें तथा महर्षियों-में सबको ज्ञात थी। उस यदुकुलके पौरोहित्यको प्राप्त करनेका सौभाग्य

आशुतोष प्रभु प्रसन्न होकर अपने साक्षात् शिष्य महर्षि गर्गको दे चुके थे। अब प्रजापति ब्रह्माने मुझे गोपोंके पौरोहित्यका आदेश देकर जो आश्वासन दिया था, उसका क्या अर्थ था, मैं समझ नहीं पाता था।

मैं अपने मनो-मन्थनमें मग्न न होता तो बहुत पहिले चौंकना चाहिए था मुझे। गोकुलकी यह भूमि—यह व्रजधरा क्या मर्त्यलोकका अंश है? यह अणु-अणुमें आपूरित चिन्मय भाव—मैं कबतक वहीं समाधिस्थ बैठा रहा, मुझे स्मरण नहीं। मेरे अपने हिमगिरिके तपोवनकी तो मुझे स्मृति कहाँसे आती। ब्रह्मलोक जहाँसे मैं अभी-अभी आया था, वह तुच्छ लगा मुझे। यह श्रीहरिका साक्षात् धाम धरापर आ गया है, मुझे अबतक पता नहीं था। इस दिव्यधाममें रहनेवाले किसी श्वपचका भी पौरोहित्य करनेको मैं प्रस्तुत था, मुझे तो गोपनायकके पौरोहित्यका आदेश दिया गया था।

परीक्षित! तुम सम्राट् हो। तुमने भूमिके दूसरे उत्तम स्थान तथा तीर्थ भी देखे हैं और अब व्रजमें आ गये हो। श्रीकृष्णचन्द्रने गर्भमें प्रविष्ट होकर तुम्हारी रक्षा की है। तुमको भी अभी इस दिव्यभूमिका वास्तविक स्वरूप समझने-देखनेमें समय लगना है। साधारण व्यक्ति इस चिद्भूमिको समझ नहीं सकता; किंतु अपने आराध्यकी नित्य-विहार-भूमिमें पहुँचकर व्यक्तिकी क्या अवस्था हो जाती है, यह तुम मथुरा आकर अवश्य समझ गये हो।

'भगवन्! मथुराकी समता नहीं है त्रिभुवनमें।' परीक्षितने गद्गद स्वरमें कहा—'यह सृष्टिके भालका सौभाग्य बिन्दु है।'

'तुम सत्य कहते हो सम्राट्!' महर्षि शाण्डिल्य भी भावविभोर थे—'किन्तु तुम जब व्रजधराकी वास्तविकता समझ पाओगे तो जान सकोगे कि मथुरा श्रीहरिका श्रीविग्रह है और उसमें वृन्दावन उनका हृदय है।

मैं गोकुलके पार्श्वमें पहुँच गया था। वहाँके तृण, तरु, लताएँ, पक्षी-पशु, पिपीलिका तक—जहाँ दृष्टि पड़ती थी, पद वहीं रुक जाते थे। मेरी अवस्था ऐसी थी, जैसे कोई किसी दुर्गन्धित स्थानका निवासी सहसा पुष्पित सुर-काननमें पहुँच जाय और एक-एक पलकी सुरभि उसे अपने समीप ही खड़े रहनेका आग्रह करती प्रतीत हो। मुझे गोकुलमें सामान्य बननेमें समय लगा। मैंने कई दिन केवल फलाहार किया और यमुना किनारे ध्यानस्थ बैठा रहा। इस दिव्य धराके किसी भी मानव-निवासी

तकपहुँचनेके लिए आवश्यक था कि मेरा चित्त इस दिव्यताको सहन करके सामान्य व्यवहारमें सक्षम हो जाय।

मैंने जब अपनेको किसी प्रकार व्यवहारके उपयुक्त कर बहिर्मुख कर लिया, गोकुलके गोपावासमें पहुँचा। गोप जातिमें अनेक सहज स्वाभाविक सद्‌गुण हैं, यह अब मैं जानता हूँ। यह अत्यन्त श्रद्धालु, शूर, सहानुभूतिपूर्ण तथा उदार जाति है। स्नेह तथा सुदृढ़ सङ्गठन इनके रक्तमें ही बसता है। गोसेवाने इनका अन्तर-बाह्य परम पवित्र कर रखा है और इस सेवाके श्रमने सुदृढ़, शरीर, सबल स्वास्थ्य, सहज-जीवनका इन्हें प्रसाद प्रदान किया है।

वेद, ब्राह्मण, सुर, साधु और गायोंके प्रति इतनी श्रद्धा, सम्मान, सेवा-तत्परता मुझे अन्यत्र सुननेको भी नहीं मिली थी। यहाँका सौन्दर्य जैसे स्वर्गमें भी सुदुर्लभ है, वैसे ही यहाँका निश्छल, सहज सम्बन्धपूर्ण व्यवहार भी अन्यत्र अलभ्य है।

मुझे देखते ही गोपोंने हाथोंका काम छोड़ा और दौड़ पड़े। गोप-नायक पर्जन्यने सम्मुख आकर भूमिमें लेटकर प्रणिपात किया। ले जाकर आसन दिया आदरपूर्वक और सविधि इस प्रकार पूजनमें लग गये कि मैं स्वयं अपने आराध्यकी इतनी श्रद्धा, इतनी सावधानी, इतनी विधिसे अर्चना यदा-कदा ही कर पाता हूँ।

प्रत्येक गोप भाग आया था वनमें-से भी यह सुनते ही कि गोकुलमें कोई ऋषि आये हैं। उन्होंने एक दूसरेको हाँक लगाकर बुला लिया। गोबर-सने हाथ शीघ्रतामें धोये गये थे। वृद्धा, युवती और बालिकाएँ—सब गोपियाँ सिमट आयी थीं। शिशुओं तकको मेरे चरणोंमें रखा उन्होंने। सबको मेरे पैरोंपर मस्तक रखना था और सब कुछ-न-कुछ उपहार लेकर आये थे।

उसी दिन शाण्डिल्यको इतनी गायें और वृषभ मिले कि उनकी गणना करना कठिन था। इतने उपहार कि उससे कोई राजप्रासाद भी भर जाय। कितने वस्त्र, कम्बल, मृगचर्म तथा अन्न, स्वर्णकी राशि—मैं केवल चकित देखता रह गया। मुझे सबका प्रणिपात स्वीकार करनेमें ही पर्याप्त अधिक समय लगा।

'आप सबको प्रसाद-वितरण करा दें !' मैंने गोपराज पर्जन्यसे साग्रह कहा—'मैं भला पशुओंका, धनका, अन्न या वस्त्रका क्या करूँगा।'

'महर्षि कण्व अब इतने अधिक गोपोंका पौरोहित्य करनेमें बहुत कठिनाईका अनुभव करते हैं।' सभी स्त्री-पुरुष हाथ जोड़े खड़े थे। सबके नेत्रोंसे जो प्रार्थना व्यक्त हो रही थी, गोपनायकके स्वरमें वह बोल रही थी—मैं पिताके आदेशसे यहाँ आया तो हमारे मथुराके भी कुल-पुरोहितने अपनी विवशता व्यक्त कर दी। वे मथुरा से यहाँ कैसे आ सकते हैं। मैं तबसे ही श्रीहरिसे नित्य प्रार्थना करता हूँ कि वे हमें पूजाके लिए कोई अपना स्नेह-भाजन वेदज्ञ ब्राह्मण प्रदान करें। अब आप स्वयं यहाँ पधारे हैं। हम वनवासी पशु-पालकोंका पौरोहित्य आप स्वीकार करें, यह प्रार्थना करना बहुत धृष्टता है ; किन्तु यदि हमें यह सौभाग्य प्राप्त हो जाय—आपके इन सभी पशुओंकी सेवा तो हम करेंगे ही, हम सब सदा आपके विनीत दास रहेंगे।'

जो बात कहने मैं स्वयं आया था, वह गोपराजने इतनी विनम्रतासे कही। उसी दिन मेरे लिए मेरे द्वारा निर्दिष्ट स्थानपर कालिन्दी-किनारे पर्णकुटी बन गयी। गोप तो बहुत बड़ा आश्रम ही बना देनेको उत्सुक थे ; किंतु उन्हें किसी प्रकार मैंने रोका। इतनेपर भी वहाँ उन्होंने पुष्पोद्यान, तुलसी-कानन आदि तो लगाये ही। उस ओर पशुओंका आना रोक दिया।

केवल एक आश्रम-धेनु नित्य-पूजनके लिए मैंने अपनी कुटियाके समीप रखना स्वीकार किया। वह कामधेनु—उसकी भी सेवाका कोई अवसर गोपोंने मुझे नहीं दिया। शाण्डिल्यकी गायें तो प्रत्येक गोपके गोष्ठमें पर्याप्त अधिक थीं और उनका घृत सावधानीसे मेरे समीप पहुँचाया जाता था। मुझे प्रत्येक पर्वपर वृहत् यज्ञ करके ही उसे व्यय करना था।

शीघ्र ही ऋषि-मुनि-गण आकर मेरे आसपास बसने लगे। मैं चाहता था कि कमसे कम यज्ञके लिए घृतकी उनकी सेवा मैं करता रहूँ ; किंतु गोपोंने यह अवसर भी मुझे कभी नहीं दिया। वृद्ध गोपोंसे लेकर गोप-बालक तक हमारे आश्रमोंकी सेवाको सदा उत्सुक रहते थे। वे हाथ जोड़े अत्यन्त विनम्र मिलते थे और बहुत कम बोलते थे ; किंतु आश्रममें कब, क्या, कैसी सेवा किसे आवश्यक है, यह उनमें-से बालकोंको भी समझते विलम्ब नहीं होता था।

मथुरामें वृष्णिवंशी देवमीढजीने दो विवाह कर लिये थे। एक पत्नी इनकी क्षत्रिय-कन्या थीं। उनके पुत्र हुए शूरसेन। इन शूरसेनजीके पुत्र वसुदेवजीसे भगवान वासुदेवका आविर्भाव हुआ। देवमीढजीकी दूसरी पत्नी गोपकन्या थीं। उनके पुत्र हुए पर्जन्यजी। जब पर्जन्य युवक हुए और उनका विवाह गोपकन्या वरीयसीसे हो गया, तब देवमीढजीने अपने इस पुत्रको मथुराके राजकीय सम्पूर्ण गोधनको देकर गोकुलमें रहनेका आदेश दिया। तबसे ही मथुराके सिंहासनके साथ गो-धन नहीं रहा। यह गो-सम्पत्ति और उसके पालक गोपोंके अधिपति होकर देवमीढजीने यमुनाके पार महावनमें मथुराके सामने ही अपना निवास बनाया। वह उनका निवास ही गोकुल था। मैं उन लोगोंका पुरोहित बनकर गोकुलके पार्श्वमें रहने लगा।

मेरे आनेके पश्चात् पर्जन्य गोपराजकी पत्नी वरीयसीने पाँच पुत्र तथा दो कन्याओंको जन्म दिया। पुत्रोंका नामकरण तो मैंने ही किया था— उपनन्द, अभिनन्द, नन्द, सन्नन्द और नन्दन। इनमें-से अभिनन्दका दूसरा नाम महानन्द अधिक प्रचलित हो गया। नामोंके इसी अनुकरणपर कन्याओंका नाम उनकी माताने नन्दिनी और सुनन्दा रखा।

मैं जन्मसे एकाकी, अपरिग्रही, बीतराग रहनेवाला; किंतु गोकुल आकर मेरे वैभवकी सीमा ही नहीं रह गयी। यह दूसरी बात है कि मैंने अपने उटजमें कभी स्वर्ण, अन्न आदि रखना स्वीकार नहीं किया; किंतु मुझे प्रत्येक पर्वपर, प्रत्येक संस्कारके समय अपार धन तथा बहुत अधिक गायें प्राप्त होती थीं। मेरे समीपके ही नहीं, दूरसे आनेवाले ब्राह्मण भी मुझ ब्राह्मणसे दान लेना नहीं चाहते थे और लेते भी क्यों? उन्हें गोपोंका अपार दान स्वयं दान करनेको बाध्य कर देता था। इतना ही बहुत था कि गोपनायकने हम ब्राह्मणोंकी ओरसे भी सम्पत्ति तथा गायोंको सम्हालनेकी सेवा स्वीकार कर ली थी। हम सदा समुत्सुक रहते थे कि कोई प्रतिगृहीता प्राप्त हो और यही गोकुलमें दुर्लभ था। जिस दिन किसी अतिथिका सत्कार अथवा किसीको कुछ देनेका अवसर मिल जाय, वह सौभाग्यका सुदिन हम संसार-चर्यासे विमुख विप्रोंमें भी चर्चाका विषय बनता था।

गोपराज पर्जन्य और उनके सब गोप अपनी पूरी सम्पत्ति मेरी ही मानते थे और सपरिवार सब मेरे सेवक थे। उन श्रद्धालुओंकी कल्याण-कामना मेरे मनमें बनी रहती थी, यह आश्चर्यकी बात नहीं है। प्रेम तो

परमपुरुषको भी वशमें कर लेता है, मैं तो सहज स्वभावसे सदय ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ और गोपोंमें-से प्रत्येक श्रद्धाकी, प्रीतिकी मूर्ति था।

गोपजातिमें सगाई तो अनेक बार बच्चेके जन्मते ही हो जाती है। विवाहके लिए भी अधिक बड़े होनेको प्रतीक्षा नहीं की जाती। व्रजपति पर्जन्यके पुत्रोंका भी विवाह शीघ्र हो गया। दोनों कन्याएँ भी उत्तम गोप-नायकोंको उन्होंने विवाह दीं।

मुझे अपने इस अत्यन्त दीर्घजीवी देहके कारण अनेक बार दुःखी होना पड़ा है। मुझे स्पृहा होती है अपने साधारण आयुके यजमानोंसे। मरण और वार्धक्य विश्वस्रष्टाके वरदान हैं, जिनसे मैं बहुत दीर्घकाल तक वञ्चित रहूँगा। वार्धक्य उन वासनाओंसे सहज परित्राण दे देता है, जिन्हें जीतनेमें हम मुनियोंको कठोर श्रम करना पड़ता है। नेत्र, कर्ण, रसना, नासिकाकी शक्ति क्षीण हो जाती है। तृष्णा बढ़ी न हो तो संसारके विषय स्वयं छूट जाते हैं और अन्तर्मुखता अप्रयास सिद्ध हो जाती है। मृत्यु तो देह-के बन्धनसे भी मुक्ति ही है। स्वयं बने रहो और अपने प्रियजनोंका वियोग सहन करो, यह स्थिति कितनी कष्टकर है, इसे मैं बहुत अच्छी प्रकार अनुभव करता हूँ।'

महर्षि शाण्डिल्य अत्यन्त गम्भीर हो गये। इन परम भागवत ज्ञान-निर्दग्ध-मोहको भी यह व्याकुलता इनके स्नेहके ही कारण है। दो क्षण रुककर महर्षिने कहना प्रारम्भ किया—'मुझसे पर्जन्यने अनुमति ली और मैंने प्रसन्नतापूर्वक उनका अनुमोदन कर दिया। जब पुत्र योग्य हो जाय तो पिताका कर्तव्य है कि उसे सांसारिक दायित्व देकर स्वयं भगवद्-भजनमें लगे। युवा पुत्रको भी अपने आदेशके पराधीन रखकर अधिकारकी भोग-लिप्सा व्यक्तिको वार्धक्यमें सन्तानके उचित बौद्धिक विकासमें बाधक होती है और अनेक बार सन्तानका पिताके प्रति आदर अवरुद्ध कर देती है।

व्रजपति पर्जन्यने मेरी अनुमति पाकर पूरे व्रजके गोपोंको एकत्र किया। व्रजराजका पद कोई राज्यका उत्तराधिकार तो है नहीं कि वह बड़े पुत्रको ही दिया जाय, अथवा उसे लेकर कोई विवाद हो। जो भी गोपोंमें सर्वप्रिय हो, जिसे सब पसन्द करें, वह व्रजराज। पर्जन्यके ज्येष्ठ पुत्र उपनन्द सब प्रकार योग्य थे; किन्तु प्रबन्धका दायित्व वहन करनेके प्रति उनकी अरुचि थी। वे केवल उत्तम सम्मति दे सकते थे, उसे सक्रिय करनेमें उन्हें उतना उत्साह नहीं था। द्वितीय पुत्र महानन्द (अभिनन्द) अत्यन्त उदासीन

स्वभाव के थे। उन्हें पता नहीं रहता था कि उनके अपने ही गृह-गोष्ठकी क्या स्थिति है। सन्तोषी, भगवद्भक्त, साधुसेवी थे वे; किन्तु ऐसे निःस्पृहको व्रजराज तो नहीं बनाया जा सकता था। यह दायित्व मध्यम कुमार नन्द ही ले सकते थे और उनके दोनों छोटे भाई उनका बहुत अधिक सम्मान भी करते थे। वस्तुतः नन्द ही अब पिताका दायित्व वहन कर रहे थे। उनको ही गोपोंकी, उनके गोष्ठोंकी चिन्ता रहती थी। उन्होंने सबकी सम्हाल करना स्वयं प्रारम्भ कर दिया था। सब गोपोंका उनको स्नेह तथा सम्मान प्राप्त था।

उस दिन पर्जन्यने सब गोप-प्रमुखोंसे अनुमति ली और अपनी पगड़ी अपने मध्यम पुत्र नन्दके मस्तकपर बाँध दी। नन्द उस दिन व्रजपति हो गये। गोप-प्रमुख सुमुखकी कन्या यशोदा व्रजरानी हो गयीं। यह उत्सव अब भी मेरे नेत्रोंके सम्मुख प्रत्यक्ष होता लगता है।

उस दिन गोकुलमें गोपोंने सब पुरानी मर्यादाएँ तोड़ दीं। अन्यथा मुझे ज्ञात हो गया था कि नवीन व्रजपतिकी स्वीकृतिके रूपमें गोपनायक केवल एक छोटा दधिपात्र उपहार देते हैं और गोकुलका व्रजपति वृहत्सानुके अधीश्वरको भेंट भेजकर उनसे अपने पदकी स्वीकृति प्राप्त करता है। इस बार वृहत्सानुके अधीश्वर महीभानुजी स्वयं अपने कुमार वृषभानुके साथ अपने मित्र एवं सहपाठी पर्जन्यके यहाँ पधारे थे। उनके कुमार वृषभानु सहपाठी तो थे ही, अत्यन्त घनिष्ठ मित्र थे नन्दके। पर्जन्यने महीभानुसे अनुमति माँगी अपने मध्यम कुमारको अपनी पगड़ी बाँधनेकी तो वे उठ खड़े हुए—'नव व्रजपतिका प्रथम अभिनन्दन करनेका अधिकार पहिले मेरा स्वीकार कर लो!'

'यह आपका पुत्र है!' पर्जन्यने विनीत होकर कहा।

'सो तो है' महीभानु दृढ़ स्वरमें बोले—'किंतु इसकी पगड़ीपर प्रथम पुष्पार्पण मैं करूँगा। पगड़ीको किरीट मेरे कर देंगे और उपहारार्पण-का पहिला अवसर वृषभानुको दिया जायगा।'

'आप सम्मान्य हैं, श्रद्धेय हैं, अब विरोध कोई कैसे करता। पर्जन्यको कहना पड़ा—'आप जो आज्ञा करेंगे, हम सब स्वीकार ही करेंगे।'

नन्दरायकी शुभ्र पगड़ीको स्वकरोंसे हंस-पिच्छके उज्वल किरीटसे महीभानुजीने अलंकृत किया। यह अद्भुत सम्मानदान सम्पन्न होते ही नन्दरायने उठकर मुझे तथा दूसरे ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। अपने पिताको

प्रणाम करके महीभानुजीके पदोंमें झुके तो उन्होंने पुत्रको संकेत कर दिया। वृषभानुको पदोंमें गिरनेसे पहिले ही नन्दने हृदयसे लगा लिया। महीभानुजी गद्‌गद कण्ठ कह गये—'वत्स !' आजसे इस अपने अनुजकी भी सुरक्षा तेरे ऊपर ही रही।'

गोकुलका व्रजपति इस प्रकार वृहत्सानुके अधीश्वरका अनुगत न होकर बिना कहे सम्पूर्ण व्रजका व्रजेश्वर हो गया और गोपनायकोंने उस दिन जो उपहार अर्पित किये—किसी सम्राट्के राजसूय यज्ञ के समय उसके अनुगत नृपगण भी कदाचित ही इतने उपहार अर्पित कर पाते होंगे। इतना पुनीत प्रेम तो अन्यत्र प्राप्त होना असम्भव ही है। प्रत्येक गोपमें ऐसा उत्साह था, जैसे वह स्वयं व्रजपति हो गया हो और प्रत्येक वृद्धा गोपीको यशोदा अपनी ही पुत्र-वधू लगती थी। सब उसे सजानेमें, अलंकार देनेमें जुटी थीं और वह संकोचमयी केवल सबके पदोंमें अञ्चल रखकर प्रणत ही तो हो सकती थी।

जो बड़ी थीं वे और जो छोटी थीं वे भी आज अपनी सम्पूर्ण साध पूरी कर लेना चाहती थीं। इतना स्नेह मनुष्यका अपने अत्यन्त प्रिय स्वजनके प्रति भी मैंने कम सुना है।

उसी दिन देखा मैंने कि अधिपतिको कितना उदार तथा सावधान होना चाहिए। नन्दरायने चुपचाप अपने दोनों अनुजोंको बुलाकर कुछ समझा दिया। यही किया यशोदाने। उन्होंने अपनी देवरानियोंके साथ दोनों ननदोंको भी कुछ कहा उनके कानोंमें और गोपोंको, गोपियोंको, वृहत्सानुके स्वामी तकको भी पीछे पता लगा कि नवव्रजपति अथवा नूतन व्रजेश्वरीके उपहार उनके गृहों-गोष्ठोंमें कितने अधिक उनके घर पहुँचनेसे पूर्व ही पहुँच गये हैं।

उस दिन मुझे तथा दूसरे सब ब्राह्मणोंको प्राय: प्रत्येक गोपने दान दिया। गोपोंका दान तो हम उनके यहाँ ही सुरक्षित रखनेके अभ्यासी हो गये थे; किंतु नवव्रजपतिकी भेंट उस दिन आश्रम लानी पड़ी और वह इतनी अधिक थी कि उसे यज्ञ-दानमें समाप्त करनेमें सबको ही पर्याप्त दिन लगे।

यह समारोह तो हुआ; किंतु शीघ्र ही हम अपने श्रेष्ठ यजमानसे विमुक्त हो गये। पर्जन्यने विरक्त होकर वनको प्रस्थान किया और यही किया वृहत्सानुपुरके उनके सखा महीभानुने। उन्होंने भी अपने कुमारको उत्तराधिकार दे दिया था। परीक्षित ! यह कितनी विडम्बना थी कि मैं

अपने हिमाचलकी तपोभूमि त्यागकर गोकुलमें व्रजपतिका पौरोहित्य करने आ बसा था और वे व्रजपति जो वयमें मुझसे तो पर्याप्त अल्प थे, ब्रह्माके विधानका वरदान वार्धक्य प्राप्त करके तपोवन चले गये। मुझे उनके वियोगने उस दिन सृष्टिकर्त्ताके इस अटपटे विधानपर अप्रसन्न ही किया। मुझे अत्यधिक आयु देकर उन्होंने यहाँ भेजा तो क्या इन अत्यन्त श्रद्धा-स्नेहकी मूर्तिको स्थिर तारुण्य नहीं दे सकते थे वे ?

दे तो यह मैं भी सकता था ; किंतु संसारसे उपरत होकर सर्वेशकी ओर उन्मुख होनेमें ही मनुष्यका परम श्रेय है, यह घोषणा करनेवाला और हृदयसे माननेवाला मैं किसी इसी पुण्य-पथके पथिककी बाधा कैसे बन सकता था। मैं जिनके दर्शन-पूजनके लोभमें यहाँ पुरोहित बनने आया था, वे इनको अपना पूर्वज बनाकर परमपावन करनेवाले हैं, यह अनुभूति भी मेरे लिए कुछ करनेमें बाधक थी। उन सर्वेशकी ही इच्छा पूर्ण होनी चाहिए।

मैंने ही नहीं, सम्पूर्ण व्रजने—व्रजके एक-एक जनने और सम्भवतः गायोंने, वृषभों तकने अनुभव किया कि स्नेह, श्रद्धा, सत्कार, सावधानी सबमें पुत्र पितासे बहुत बढ़े-चढ़े हैं। नवव्रजेश पितासे कहीं अधिक विनम्र और अतिशय उदार, सेवा-परायण। पर्जन्य भी व्रजपति थे, यह विस्मृत ही हो जाता यदि नन्दराय उनके ही सुपुत्र न होते। सृष्टिमें तो अब सदाके लिए व्रजेश्वर शब्द नन्दरायमें रूढ़ हो गया है और व्रजेश्वरी यशोदाका वाचक बन गया है।

मैं व्रजमें तब आया था, जब पर्जन्य भी युवक ही थे। मैंने उनके पुत्रोंके जातकर्म-संस्कार कराये थे और अब उनमें-से मध्यम कुमार नन्दराय व्रजपति थे। शैशवसे इन शिशुओंका मैंने पालन किया था। इन्हें बहुत-सी शिक्षा दी थी। अब ये मेरे प्राण बन चुके थे और मैं केवल इनका पुरोहित ही नहीं, पिता भी था। यह व्रजराय नन्द और वृषभानुकी पूरी पीढ़ी मुझे पुत्रोंके समान प्रिय थी।

पुरोहित इसीलिए पुरोहित कहा जाता है ; क्योंकि यजमानसे भी पहिले वह उसके लौकिक-पारलौकिक हितकी चिन्ता रखता है। यजमानके हितके प्रति सचेत रहता है। नन्दरायमें बचपनसे अपने सुख, सम्मान तथा सम्पत्तिके प्रति उपेक्षा थी। वे दूसरे सबके सुख-सुविधा-सम्मानके प्रति सतत सावधान रहते थे। सेवकों तथा पूरे व्रजके पशुओं तककी उन्हें चिन्ता

रहती थी; किंतु अपनी चिन्ता न उन्हें कभी हुई, न उनकी सहधर्मिणीको। अतः अपने इस प्रधान यजमानकी चिन्ता मुझे करनी ही चाहिए। इसके परलोककी चिन्ता तो मैं क्या करता। इसके परलोकका परमाधार ही तो मुझे पुरोहित बना लाया था ; किंतु इसके लोककी चिन्ता करनेमें भी मैं असमर्थ—निरुपाय हो गया।

इतना श्रद्धालु, सेवापरायण यजमान युवासे तरुण हुआ और तरुणसे वृद्ध होनेको आ गया ; किंतु सन्तानहीन था। सन्तानहीन थे उसके सब भाई। जैसे सृष्टिकर्त्ताने यह कलंक लेनेको गोकुल भेजा था कि मैं अपने यजमान पर्जन्यका वंश समाप्त करनेवाला पुरोहित बनूं। शाण्डिल्य-के लिए यह असह्य था ; किंतु कोई उपाय इसका मेरे पास नहीं था।

मेरी चिन्ता मेरी अपनी ही नहीं थी। यह पूरे व्रजकी चिन्ता थी। मैं भले ज्योतिर्विद न होऊँ, मेरे अनेक परिचित थे और उनकी ग्रह-गणना जो नहीं बता सकती थी, वह तो हम ध्यान करके सहज जान लेनेमें समर्थ थे ; किन्तु हमारा ध्यान, ज्योतिर्विदोंकी ग्रह-गणना कोई भी आश्वासन नहीं बनी। सबसे जो ज्ञात होता था, वह कब होगा ? समय तो व्यतीत होता जा रहा था और हमारे ध्यानमें जो प्रत्यक्ष होता था, वह तो अस्पष्ट था। पता नहीं क्यों नन्दके पुत्रके सम्बन्धमें संयम करनेपर चित्त निर्विकल्प समाधिमें पहुँच जाता था। यह तो नन्दनन्दनके आविर्भावके पश्चात् समझ सका कि कोई ग्रह-गणित उन तक नहीं पहुँचता और उनको ही अन्तःकरणमें आविर्भूत न होना हो तो उनके सम्बन्धका संयम केवल निर्विकल्प समाधि देगा ; क्योंकि उनके स्मरणका इतना प्रसाद-प्रताप तो प्राप्त होगा ही।

व्रजपतिसे कुछ कहना असङ्गत था ; क्योंकि वे किसी सकाम अनुष्ठानके लिए उद्यत नहीं किये जा सकते थे। उनको संकेत करनेपर वे कह देते थे—'श्रीनारायणकी जो इच्छा हो। उन मङ्गलमयका विधान हमारे लिए भी मङ्गलपूर्ण ही होगा।'

मैं भले पुरोहित हूँ ; किन्तु निष्काम भक्तिका आचार्य हूँ। अपने भक्ति-दर्शनमें मैंने इसकी दुन्दुभि बजायी है। सम्पूर्ण पाञ्चरात्रागम श्रीनारायणके प्रति अपनेको सर्वात्मना समर्पणका ही उद्घोष है। अतः अपने निष्काम यजमानको मैं पुत्रेष्टि अथवा अन्य कोई भी सकाम यज्ञानुष्ठान करनेका आदेश कैसे दे सकता था।

मैं स्वयं और दूसरे भी वेदज्ञ ब्राह्मण, ऋषि-मुनि जो गोकुलके आस-पास आ बसे थे, जप-तप-अनुष्ठान कर रहे थे। हम प्रार्थना कर रहे थे। हम जो सबको-सारे संसारको निष्काम उपासनाका उपदेश करते थकते नहीं ; सबके सब सतत सकाम उपासना और प्रार्थनामें लगे थे ; क्योंकि हम जानते थे कि उपासनाका परम सौभाग्य स्वयं पूर्ति बनकर आनेवाला है। उस पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेकी कामनापर तो समस्त सृष्टि-के महर्षियोंकी निष्कामता न्योछावर है।

हम केवल प्रार्थना-अनुष्ठान कर सकते थे और कर रहे थे। वर्षोंतक हमने यह किया। हमारे यज्ञ, जप, तप, व्रत सबका एक ही उद्देश्य बन गया—व्रजराज नन्दको तनय प्राप्त हो ; किंतु वह जो उनका तनय होकर आनेवाला था, वह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र किसीके भी, कितने भी कालके, कैसे भी कठिन तप, ध्यान, यज्ञसे साध्य नहीं बनता। सम्पूर्ण सृष्टिके समस्त सत्त्वगुणी प्राणियोंका कल्पान्त सतत कठोर साधन भी उसे विवश नहीं करता।

व्रजके सब गोप और गोपियाँ व्रत, प्रार्थना, पूजनमें लगे थे कि उनको युवराज प्राप्त हो ; किंतु जब हम वेदज्ञ ब्रह्मर्षियों, तपस्वियोंके प्रयत्न ही सफल नहीं हो रहे थे तो वे तो अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित सरल, सीधे, श्रद्धालु, गृह तथा अपनी गौओंको लेकर बहुत व्यस्त रहनेवाले लोग थे।

परीक्षित ! सम्भव है, मैं यहाँ भूल कर रहा होऊँ; क्योंकि उस प्रेम-धनको किसीकी तपस्या तथा विद्या प्रभावित नहीं करती ; किंतु इन गोपों, गोपियोंके प्रेमने उसे कैसे नचाया, यह तो मैंने प्रत्यक्ष देखा है। वह प्रेम-परवश बहुत करके इनकी ही प्रार्थनासे द्रवित हुआ। क्योंकि वह श्रुतियोंके सस्वर स्तोत्र भले अनसुना कर दे, गौओंकी सप्रेम प्रत्येक हुंकृतिपर बोलते उसे मैंने सुना है।

मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि हम तपस्वी, साधन-सम्पन्न ब्राह्मणोंकी उपासना-प्रार्थना असमर्थ हो गयी होती, असमर्थ ही थी ; किंतु उसके अपने भोले गोप उसे पुकार रहे थे। उसको अङ्कमें लेनेको आतुर गोपियोंके कण्ठ उसको पुकारते-पुकारते सूख रहे थे। अतः वह अपने नित्य धाम गोलोकमें स्थिर रह नहीं सकता था। व्रजधरा उसे पुकारे तो वह व्रजयुवराज आविर्भूत हुए बिना रह कैसे सकता है। अतः हमारे मध्य आश्वासन बनकर एक दिन अकस्मात् भगवती पूर्णमासी आ गयीं।' ●

मधुमङ्गल

प्रफुल्लपाटलवर्ण, कृशकाय, काषायवस्त्र, स्वच्छ दीर्घदृग, भस्म-भूषित विशाल भाल भगवती पूर्णमासी रुद्राक्षमाला-मण्डित साक्षात् जगदम्बिकाकी मूर्ति हैं। उनको देखकर तो मुनीन्द्र-योगीन्द्र भी बद्धाञ्जलि उठ खड़े होते हैं और उनके पद्मारुण सुकोमल श्रीचरणोंमें प्रणामको उत्सुक हो जाते हैं ; किंतु वे वात्सल्यमयी कहाँ किसीको सम्यक् अर्चाका अवसर देती हैं। वे स्नेहमयी तो आशीर्वादकी वर्षा करती ही रहती हैं और उनके अङ्कमें सबको स्थान है। सबकी समस्याओंका समाधान है उनके समीप। उनसे किसीको भी कभी सङ्कोच नहीं होता। वे स्वयं चाहे जब व्रजकी किसी भी बालिकाको या गोपीको अपना परिचय बिना पूछे भी देने लगती हैं तो पूछनेपर क्यों नहीं देंगी। व्रजमें पहुँचनेपर अपना परिचय श्रीव्रजराज-के अन्तःपुरमें उन्होंने दिया—

'मेरा जन्म वाराणसीमें हुआ। इस समय जो उज्जयिनीमें सुप्रसिद्ध विद्वान महर्षि सान्दीपनि हैं, वे मेरे अनुज हैं। सुना है कि मैं अबोध बालिका थी, तभी पिताने अपने किसी मित्रके कुमारको मेरा वाग्दान किया था ; किंतु उसे सार्थक होनेका अवसर आनेसे पूर्व ही वे ब्राह्मण-कुमार परलोक पधारे। मेरे लिए प्रसाद-स्वरूप पालनेके लिए अपनी प्रथम पत्नी-का एक शिशु छोड़ गये वे।

'भाई इस मधुमङ्गलको ले आये।' भगवतीने अपने साथके लगभग पाँच वर्षके कर्पूर गौर, कुछ लम्बे मुख, अरुणाभ लोचन, ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्कित-भाल, श्वेतवसन, लम्बोदरकुमारकी ओर संकेत किया—'तब यह केवल एक वर्षका था ; किंतु वय तो इसकी इच्छाके वशमें है। बहुत वर्षोंतक यह दो वर्षकी अवस्थाका बना रहा और अब इस पाँच वर्षकी वयसे बड़ा होना इसे स्वीकार नहीं। नहीं जानती कि यह आगे और छोटा बनेगा अथवा बढ़ना चाहेगा।

वय मेरी भी भगवान विश्वनाथके वरदानसे मेरे वशमें है। साधनाके, संयमके उपयुक्त यह वार्धक्यारम्भका श्वेतकेश स्वस्थ शरीर मुझे उत्तम

लगता है, अतः यह ऐसा ही रहता है। इसमें विकार नहीं आवेगा—यह आशुतोषने मुझे आशीर्वाद दिया।

भाईने शिशुको लाकर देते हुए कहा था—'बहिन! यह असामान्य शिशु है। यह परमपुरुषका नित्य सखा जन्मसिद्ध है। यह तुम्हारा भी आश्रय रहेगा, इसे क्या आश्रय देना है।'

सचमुच यह मेरा भी आश्रय ही है। इसका मधुमङ्गल नाम सर्वथा सार्थक है। इसके मुखसे कभी कटु शब्द सुने नहीं गये। व्यङ्ग बहुत करता है; किंतु अत्यन्त मधुर व्यङ्ग। अप्रसन्न होकर भी किसीको कहेगा तो इसके मुखसे निकलेगा—'तेरा कल्याण हो।'

मधुर-प्रिय ब्राह्मण स्वभावसे होते हैं; किंतु इसे तो दूसरे किसी रसमें किञ्चित् भी आकर्षण नहीं है और मोदक तो बस दृष्टि पड़ना चाहिए। इसे किसीसे माँगनेमें अथवा बिना माँगे भोग लगानेमें कोई सङ्कोच नहीं। बहुत प्रयत्न करके मैं हार चुकी, इसे आहार भी पराया होता है, यह बात समझमें ही नहीं आती।

ब्राह्मण-कुमार है; किन्तु शिक्षाके प्रति सर्वथा उदासीन। स्नान कर लेता है, यह इसकी कृपा। सन्ध्या करने कभी नहीं बैठा और सन्ध्या तो तब करे जब यज्ञोपवीत-संस्कार स्वीकार करे; किन्तु चाहे जब श्रुतियोंका सस्वर पाठ करने लगेगा। शतरुद्री और पुरुषसूक्तमें इसकी समान प्रीति है। काशीके विद्वानोंकी परिषदमें भी चाहे जब पहुँच जाता था और उनकी भी भूलें निर्दिष्ट करने लगता था। कोई नहीं जानता कि यह किस नित्य लोकसे आ गया है और कौन है।

इसकी वाणीमें मङ्गल ही रहता है और जहाँ पहुँचता है, वातावरण-को मंगल-मोदमय बनाये रहता है। शोक, उदासीनता, चिन्ताकी छाया भी इसके आस-पास नहीं फ़टकती।

यह मुझे माँ कहता है; किंतु माँ तो यह नारी-मात्रको कहता है। नन्हीं बालिकाएँ चाहे जितना चिढ़ें, यह दूसरा सम्बोधन जानता ही नहीं।

अब इसके ऊर्ध्वपुण्डका हम भाई-बहिन क्या करते? यह तो इसके भालका जन्मजात भूषण है। काशीके ब्राह्मण इससे चिढ़ते थे; किंतु यह भस्म लगाना स्वीकार ही नहीं करता और इसे न रुद्राक्षमालामें रुचि है,

न तुलसीमें । इसे तो स्फटिकमाल ही प्रिय है । वाराणसीमें इसे लेकर हमें बहुत विरोध सहना पड़ा ; किंतु यह तो किसीकी सुनता नहीं ।

वाराणसीके विद्वान ब्राह्मणोंने निगमकी—वेदोंकी जब उपेक्षा कर दी और आगमके अभिचार उन्हें प्रिय हो गये, तब भाईके लिए विश्वनाथके सान्निध्यमें रहना अशक्य हो गया । उन्होंने काशी छोड़ते समय कहा था—'इन भोगपरायण अभिचार-जीवी लोगोंको भगवान शशाङ्कशेखर भी अधिक दिनोंतक संरक्षण नहीं देंगे । यद्यपि ये भूतनाथ प्रेत-पिशाचोंको भी आश्रय देते हैं; किंतु इनका यह अविमुक्त क्षेत्र अधिक दिनोंतक अभिचारों-से अपवित्र होता नहीं रह सकता । श्रीहरिका चक्र इसे अवश्य अपनी अग्नि-ज्वालासे परिशुद्ध करेगा ।'

भाई और मैं भी नैष्ठिक शैव हैं । अतः भाईको भगवान महाकालका पड़ोस अपने आवासके उपयुक्त जान पड़ा । उन्होंने तो मुझे भी साथ चलने-को कहा था ; किंतु यह मधुमंगल जब माने । यह कहने लगा—'माँ ! हम व्रजमें बसेंगे । वहाँ मेरा सखा आवेगा । उसे मेरी आवश्यकता है और मैं उसीके लिए तो यहाँ आया हूँ । तेरी भी सार्थकता वहीं है ।'

हम दोनों वाराणसीसे भाईके साथ ही निकले थे । वहाँ भगवान विश्वनाथके उपासक भी श्रीहरिके विरोधी बन गये थे । अधिकांश ब्राह्मण तो शैव भी नहीं रहे, शाक्त हो चुके थे और काली, चामुण्डाकी आराधनामें उनका अनुराग था । भगवान गंगाधरकी विशुद्ध सत्त्वमूर्ति राजस-तामस भावोंसे कलुषित अन्तःकरणमें कैसे आती । वे कैसे समझते कि श्रीहरि और हर अभिन्न हैं । अतः हमें वह दिव्यधाम छोड़ना पड़ा ।

भाई अवन्तिका चले गये और मैं इस मधुमंगलके कहनेसे मधुपुरीकी ओर आई ; किंतु यहाँ पहुँच कर यह कहने लगा—'मथुरा नहीं—मथुराका युवराज कंस तो असुर है । उसके तथा उसके अनुचरोंके शरीरकी—मनकी भी दुर्गन्धि मेरी नासिकाके लिए असह्य है । अतः इधर महावनमें चलेंगे । गोरसकी मधुरगन्ध इधरसे आ रही है ।'

'आपके ये कुमार बहुत दूरसे गन्ध-ग्रहण कर लेते हैं ।' किञ्चित हास्यके साथ एकने कह दिया था । लेकिन मधु-मंगल सबको बहुत प्रिय लगा था । इस बालकने भगवतीको इधर आनेकी प्रेरणा दी, यह सुनकर तो सबका स्नेह उसके प्रति उमड़ पड़ा था ।

एक अन्य दिन भगवतीने कहा—'यहाँ आकर मुझमें और मधुमंगलमें भी अनेक परिवर्तन हो गये। मैं भूल ही गयी कि मैं संन्यासिनी हूँ और सांसारिक समस्याओंकी चर्चामें भाग लेना मेरे लिए उचित नहीं है। मुझे तो यहाँ सब अपनी ही सन्तानें लगती हैं। मैं इनकी सुनती हूँ। इन्हें समझाती हूँ और इनकी समस्याका समाधान सोचनेमें समय लगाकर अपनेको सार्थक मानती हूँ।

वाराणसीमें मधु-मङ्गल प्रायः मेरे समीप ही रहता था। वह कभी जाता भी था कहीं तो मेरे पास शीघ्र आ जाता था। वहाँ उसे अन्यत्र पण्डितों अथवा उनके अन्तेवासियोंके साथ विद्वान बनकर बोलना पड़ता था और इस स्वांगमें उसकी रुचि नहीं थी। सरल जीवन वहाँ उसे दुर्लभ था। यहाँ आकर वह अब कहाँ रहता है, मुझे पता ही नहीं होता। रात्रिको भी वह अनेक बार किसी भी गोपगृहमें सो रहता है। उसके लिए सब गोपियाँ माँ हैं और सबके घरोंका मधुर भोजन उसका अपना ही है।

सबसे अद्‌भुत बात तो यहाँ आते ही हुई थी। मैंने सदा नारियोंको सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद दिया है। दूसरा कुछ मैंने किसीको कभी कहा नहीं। किसीकी कामना पूर्तिमें सहयोगी बननेका मुझमें उत्साह नहीं है; किन्तु उस प्रथम दिन नन्द-भवनसे उठते समय जब यशोदाने मेरे पैरोंपर सिर रखा तो मेरे मुखसे निकल गया— तुम्हारी गोद भरे!'

व्रजेश्वरी बहुत श्रद्धालु हैं—सेवाकी मूर्ति।' उन्होंने मुझसे प्रार्थना की थी—'मैं कुछ दिन गोकुलको अपने निवाससे पवित्र करूँ।'

मेरा यह चपल मधुमङ्गल बोल उठा था – पहिली बार इसने किसी नारीको माँके स्थानपर मैया कहा। इसने व्रजरानीसे कहा—'मैया! तू भगाना चाहती है हमें? मैं भागनेवाला नहीं हूँ। मेरा सखा आवेगा इस गृहमें, अतः यह तो मेरा गृह है।'

मैंने कह दिया—'सचमुच मैं यहाँ बसनेकी व्यवस्था करनेको ही व्रजराजसे कहने आयी हूँ।'

मुझे किसी औरसे कुछ नहीं कहना पड़ा। यशोदाको, सभी गोपियोंको और गोपोंको भी लगा कि मैंने उन्हें कोई वरदान दिया है। वरदान तो इसे माना महर्षि शाण्डिल्य तकने। उन्होंने अपने उटजके बहुत समीप ही मेरी कुटिया स्वयं समुपस्थित रहकर बनवायी।

मुझे महर्षि शाण्डिल्यके रूपमें पुनः भाई मिले ; किंतु यह कभी निर्णय नहीं हुआ और न होगा कि हम दोनोंमें बड़ा कौन है। यह हम भाई-बहिनका स्नेह-विवाद है कि मैं उन्हें बड़ा भाई मानती हूँ और वे मुझे बड़ी बहिन कहकर मेरा सम्मान करते हैं। मुझसे आशीर्वादकी आकांक्षा करते हैं। मेरी सम्पूर्ण सुविधाओंका भार स्वयं उन्होंने उठा लिया है।

इतनी शीघ्रतापूर्वक इतनी सुसज्ज कुटिया बन सकती है, यह मेरी कल्पनामें ही नहीं था ; किंतु मधुमङ्गलको वहाँ सवत्सा गौ बँधी देखकर प्रसन्नता नहीं हुई। वह उसी समय उसे महर्षि शाण्डिल्यके आश्रममें बाँध आया—'मातुल ! मैं गोबर नहीं उठाऊँगा। यह आप उठाना और माँको उठाना होगा तो यहाँ आकर उठावेगी। अब दूध-दधि-माखन तो देखना कि मेरा सखा आता है तो कितना लुटाता है।'

महर्षि इस अवधूतसे शीघ्र परिचित हो गये। वे परम गम्भीर भी इसका सम्मान करते हैं। इसकी अटपटी बातोंको स्नेहसे सुनते हैं। उन्होंने फिर गौ मेरे उटजपर रखनेका आग्रह नहीं किया।

मैं अपनेपर ही झुंझला उठी थी उस दिन। यह मेरी वाणीको हो क्या गया है। यशोदा तो फिर भी प्रौढ़ा हैं ; किंतु मैं उपनन्द पत्नी तुङ्गीके पादस्पर्श करनेपर उन्हें आशीर्वाद दे बैठी—'तुम्हारी गोद पूर्ण हो !' यही आशीर्वाद मेरे मुखसे निकल गया अभिनन्द पत्नी पीवरीके लिए भी। सन्नन्दकी पत्नी कुबला तथा नन्दनकी पत्नी अतुलाको आशीर्वाद दिया जाना चाहिए था, उनकी अवस्था है, वे अधिकारिणी हैं, किंतु तुङ्गी और पीवरी ? हे विश्वनाथ !

तुङ्गीने सहसा चौंककर मेरे मुखकी ओर देखा और भरे दृगोंसे केवल इतना कहा—'भगवती ?'

नारीका हृदय मातृत्वका महोत्सव मनानेको कितना व्याकुल रहता है, मैं समझ सकती हूँ। जब इसकी आशा न रह जाय—नारी अपने मन्द-भाग्यके लिए कितनी दुःखी होती होगी। अब ऐसी नारीको गोद भरनेका आशीर्वाद उसने अपना उपहास माना हो तो उसका दोष ? उपनन्द-पत्नीने पीछे प्रथम-पुत्रके जन्म हो जानेपर मुझसे कहा था—'भगवती ! आपने उस दिन आशीर्वाद दिया तो मुझे लगा कि आप मुझे व्यङ्ग-पूर्वक वन्ध्या न कहकर यह कह रही हैं। मैं कहाँ जानती थी सर्वशक्तिमती जगदम्बा सचमुच मुझ हतभागिनीपर आज सुप्रसन्ना हैं।'

तुङ्गीके आधेसे अधिक केश श्वेत हो चुके। वह निवृत्त-पुष्पा होनेकी अवस्थाका भी अतिक्रमण कर चुकी। यह अपवाद ही है कि अब भी उसका आर्तव बन्द नहीं हुआ था। पतिका उसे केवल पाद-स्पर्श प्राप्त होता था और मेरे मुखसे उसे ऐसा आशीर्वाद निकल गया! मैं उसके अश्रुपूर्ण लोचनोंको देखनेका साहस नहीं कर सकी। वहाँसे लगभग भागकर ही अभिनन्दके घर पहुँच गयी थी; किन्तु उनकी पत्नी पीवरीने जब अञ्चल करमें लेकर मेरे पदोंपर मस्तक रखा तो वही आशीर्वाद मेरे मुखसे फिर निकल गया। मैं वहाँ भी बोल बैठी—'तुम्हारी गोद पूर्ण हो।'

पीवरी बालिका थी, तबसे स्थूलकाया पायी है उसने। इस अवस्थामें आकर उसका शरीर अधिक स्थूल हो गया है। अपनी जेठानी तुङ्गीसे दो वर्ष छोटी होनेपर भी वह अधिक वृद्धा लगती है। स्वभावसे हँसमुख, विनोदी होनेके कारण वह बोल उठी—'भगवती! आप भी व्यङ्ग करती हैं?'

मुझे अपनेपर ही बहुत क्रोध आया। मैं उससे बिना कुछ कहे आश्रम आ गयी। यहाँ मधुमङ्गलने मुझे 'माँ!' कहा तो झल्लाकर बोली—'तुम इस मिथ्यावादिनीको अब माँ मत कहा करो। तुम दिव्य लोकके परम पावन पुरुष हो!'

'क्या हुआ माँको?' यह मेरे अश्रु झरते मुखको समीप आकर गम्भीरतासे देखने लगा। पहिली बार इसे गम्भीर देखकर मुझे हँसी आ गई होती; किंतु मैं बहुत दुःखी थी। बहुत व्याकुल थी। जीवनमें कभी जिसके मुखसे असत्य न निकला हो, उसके मुखसे एक असम्भव लगता वरदान कैसे निकल गया?

'मैं अब यहाँ मुख दिखलाने योग्य भी नहीं हूँ।' मैं वैसे ही रोते-रोते, बिना सोचे कि इसका बालकपर क्या प्रभाव पड़ेगा, बोलती गयी। सोचनेकी शक्ति ही नहीं रह गयी थी—'तुम यहाँ अब महर्षि शाण्डिल्यके समीप सानन्द रह सकते हो। वैसे भी तुम समर्थ हो। तुम्हें किसीका संरक्षण अपेक्षित नहीं है। मैं यहाँ आकर इन सरला गोपियोंका श्रद्धाभाजन क्या हुई, अहङ्कारने मुझे अन्धी कर दिया। अब सबको असम्भव कामना पूर्तिका आशीर्वाद देने लगी हूँ। अतः महर्षिकी अनुमति लेकर उनके विशुद्ध तपोवनमें जाकर अब तपस्या करूँगी।'

'माँ ! तुमने किसको आशीर्वाद दिया है ?' मधुमङ्गल बहुत गंभीर हो गया—'किसीको आशीर्वाद देना तो कोई पाप नहीं है।'

'जो आशीर्वाद सफल न हो सके, उसका उच्चारण असत्य बोलना तो है ?' मैंने झल्लाकर सुना दिया उसे कि मैंने आज कुबलाको, अतुलाको ही नहीं, पीवरीको और तुङ्गीको भी सन्तान होनेका आशीर्वाद दिया है।

'तब क्या हुआ ?' मधुमंगलको आवेशमें आते मैंने उसी दिन देखा—'इनको माँने पुत्र होनेका आशीर्वाद दिया है। मैं एक-एक पुत्र और होनेका आशीर्बाद अभी दे आता हूँ। मैं भी तो ब्राह्मण हूँ और मेरे सखा क्या थोड़े हैं।'

वह तो फिर विनोदी बन गया था। सचमुच दौड़ता चला गया और चारोंके घर जाकर कह आया—'माँने तुम्हें पुत्र होनेका आशीर्वाद दिया है। मैं एक पुत्र होनेका और आशीर्वाद देता हूँ; किंतु स्मरण रखना कि मेरे सखा आवेंगे। यह गृह अबसे मेरा है।'

मधुमंगलने तो श्रीव्रजराजसे, व्रजेश्वरीसे और महर्षि शाण्डिल्य तकसे यह शुभ-सम्वाद सुना दिया। गोप और गोपियोंमें इतनी अगाध श्रद्धा है कि वे सब इस बालककी बात भी सुनकर हँसकर उड़ा नहीं सकते; किंतु महर्षि शाण्डिल्यने भी गम्भीर होकर इसकी ओर देखकर कहा—'आप अवधूतोत्तमका आशीर्वाद सफल तो होगा ही। मैं अपने इन आनेवाले यजमानोंका स्वागत करनेको प्रस्तुत हूँ।'

मधुमंगल तो कहकर निश्चिन्त हो गया, भूल गया, किंतु उसकी धूमके कारण मैं किसीसे तपोवन जानेकी बात भी कहने योग्य नहीं रही। अब केवल अपने आराध्य आशुतोष प्रभुसे प्रार्थना कर सकती थी कि वे इस अपनी चरणाश्रिताकी वाणी सत्य करें। उन करुणावरुणालयने मेरी सुनी। वस्तुतः वरदान तो मुझे मिला जब समाचार मिला कि जिन पाँचको मैंने वरदान दिया है, उनमेंसे यशोदाके अतिरिक्त शेष चारोंके ही सीमन्तन संस्कार होने हैं।

इतना उत्सव—इतना उत्साह गोकुलमें कि किसीको अपने शरीरकी सुधि नहीं। मुझे सब यहाँ भगवती जगदम्बा कहते-मानते हैं; किंतु यदि वे आदिशक्ति स्वयं यहाँ आ जायँ तो इतना सम्मान गोपोंसे उन्हें कदाचित् ही मिले जो मुझे मिलने लगा था।

महर्षि शाण्डिल्य तक सुप्रसन्न थे। उनके मुख्य यजमान नन्दरायके पिता श्रीपर्जन्यका लुप्त होता वंश बच गया था। उनके चार पुत्रोंके गृहोंमें सन्तानोंके आगमनकी सम्भावना हो गयी थी। अब पाँचवेंके सम्बन्धमें उनको अधिक चिन्ता क्यों हो ?

व्रजराज नन्द और व्रजेश्वरी यशोदाके हर्ष और उत्साहका तो पूछना ही क्या। उनके अपने पुत्रके आगमनका भी इतना आनन्द उन्हें नहीं होना था। यह तो मैं थी कि मेरा अन्तर आश्वासन नहीं पाता था। मैंने तो पाँचोंको आशीर्वाद दिया था, एक ही आशीर्वाद, एक ही शब्दावली और सबसे पहिले यशोदाको दिया था ; किंतु वही वञ्चिता क्यों ? उसीके सम्बन्धमें मैं मिथ्याभाषिणी क्यों बन रही हूँ ?

मुझे स्मरण आया कि मधुमङ्गलने चारको ही मेरे आशीर्वादका समर्थन देकर अपना आशीर्वाद दिया था। मैंने अपने इस अवधूतसे अनुरोध किया तो यह हँसकर बोला—'मैयाकी गोदमें तो मेरा सखा आवेगा। वह अपनी मौजसे आवे तो हानि क्या ? एक बहिन भी तो चाहिए। वह बहिन ले आवे अपने साथ तो अच्छा। नहीं तो बहिन एक अतुला माँके अङ्कमें और आ जायगी।'

मैं कुछ पूरा नहीं समझ सकी; किंतु आश्वस्त हो गयी कि व्रजरानी-की गोद भी भरेगी—भले कुछ देरसे भरे। अतुलाको दो पुत्र तो होंगे ही, एक कन्या भी होगी। यह सब हुआ, यह तो सबके सम्मुख है।

'दादा आवेगा ! सबसे पहिले दादा आवेगा।' एक दिन यह मेरा अवधूत गोकुलके घर-घरमें सुनाता कूदने लगा। मेरी भी समझमें कुछ नहीं आया। मैंने महर्षि शाण्डिल्यसे पूछा तो बोले—'यहाँ जो भी आनेवाले हैं—वे हम महर्षियों-मुनियोंके ध्यानमें भी नहीं आते। अतः हम केवल प्रतीक्षा कर सकते हैं। मधुमङ्गल उनके अपने हैं। वे जो कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। लगता है कि भगवान संकर्षण आनेवाले हैं ; किंतु वे कैसे पधारेंगे, कौन कह सकता है।'



दाऊका जन्म

तप्त काञ्चनवर्णा, किञ्चित् कृश, उच्चकाय माता रोहिणी सहज स्वभावसे महारानी हैं। इनके आकर्ण सुविस्तृत खञ्जन दृगोंका संकेत सभीके लिये अलङ्घनीय है। इनके भव्य, भालपर आकुंचन नहीं आवेगा, इनकी सहजबङ्क भृकुटि टेढ़ी नहीं होगी और इनके स्वरका हंस-कूजन रव कभी कठोर नहीं बनेगा—नहीं बना; किन्तु इनका सस्मित संकेत भी कोई उपेक्षित करनेका साहस कहाँसे लावेगा। ये अमित महिमामयी तो सबके अन्तरपर ही शासन करती हैं।

किसीसे, कैसी भी परिस्थितिमें उद्विग्न होना इन्होंने जाना ही नहीं और इनसे उद्वेग—इन वात्सल्यमयीसे भला किसीको भी उद्वेग हो सकता है। ये तो सबकी व्यथा मिटानेको, सबके सिहरते प्राणोंको स्नेहसे सहलानेको ही मानो अवतीर्ण हुई हैं। इनसे सङ्कोच न शिशुओंको कभी हुआ, न वृद्धोंको। वृद्धायें और बालिकायें, बधुयें तक इनका निःसङ्कोच स्नेह पाती रहीं और इनसे ही सब अपने अन्तरको अनावरित करके सब कुछ कह पाती हैं।

इनके लिये एकान्त और अवकाश दुर्लभ हैं; किन्तु कभी कुछ क्षण मिलते हैं तो ये अपने आप कुछ बहुत मन्द स्वरमें कहने लगती हैं। इनका वह आत्मकथ्य बहुत प्रकट होकर भी अत्यन्त गुह्य है। क्या है वह?

'मैं अपने आराध्यके चरणोंसे दूर कहीं नहीं जाना चाहती थी। कंसने देवकीके साथ उन्हें कारागारमें बन्दी बना रखा था; किन्तु मुझे उनतक जानेकी सुविधा प्राप्त थी। मैं जाती थी तो बेचारी देवकीको आश्वासन ही मिलता था और स्वामीकी सेवाका सुअवसर मिलता था मुझे।

मेरी सब सपत्नियाँ स्वामीकी आज्ञासे मथुरा-त्याग गयीं। कोई दुर्गम गिरि गुहाओंमें और कोई अगम्य अरण्योंमें आश्रय लेनेको विवश हुईं। कोई अपने पितृगृह नहीं गयीं। विपत्तिमें कोई किसीका नहीं होता और

अपने पितृकुलोंको कंसका कोप-भाजन बनाना उचित भी नहीं था। विस्वस्त सेविकायें और परमपवित्र विप्रसहज स्नेहवश उनके साथ गये। किसी प्रकार सभीको सङ्कटके दिन काटने थे। देवकीकी सगी बहनें—उन विचारियोंकी तो पीछे सुधि रखें, ऐसे कोई भाई नहीं थे।

मैं जानती हूँ कि कंसका साहस हस्तिनापुरके शासनसे शत्रुता करनेका नहीं है। यदि मैं वहाँ अपने पितृगृह जाना चाहती तो वह मुझे रोक भी नहीं सकता था; किंतु मेरे स्वामी कारागारमें थे, सगी अनुजा जैसी देवकीकी सन्तानें जन्मते ही मार दी जाती थीं। मैं ही अकेली थी जिसे बन्दी-गृहमें जानेकी अनुमति थी। मैं स्वामीको छोड़कर कहीं भी नहीं जाना चाहती थी।

कंसपर भी मुझे क्रोध नहीं था। वह शूर था; किंतु अन्तरमें उतना ही कापुरुष था। कुसङ्गमें पड़ गया था। मरणके भयसे कुछ भी करनेको उद्यत हो गया था। वह भीत, कायर, निरन्तर मानसिक अशान्तिग्रस्त कृपाका ही पात्र था और मुझे तो मरणका भय नहीं था। वह मुझे मार ही तो देता।

मैं अन्तर्वत्नी हो गयी। देवकीका वह अत्यन्त कातर अनुरोध—'स्वामीका वंश ही नष्ट हुआ जा रहा है!' सचमुच मेरी किसी भी सपत्नीको अबतक सन्तान नहीं थी और अब तो वे बेचारियाँ मथुरासे ही दूर चली गयी थीं। देवकीकी सन्तानें कंसके कोपकी आहुति बनती जा रही थीं। मैं अन्तर्वत्नी हुई और समय समीप आने लगा तो देवकीने और स्वामीने भी अपनी शपथ देकर मुझे विवश कर दिया मथुरा-त्यागके लिए। गोकुल समीप था। यहाँ कमसे कम स्वामीका समाचार तो मैं पा सकती थी।

विपत्ति व्यक्तिसे सब कुछ करा लेती है। मैंने पुरुष-वेश धारण किया और अश्वारोही बनकर प्रातःकाल ही मथुरासे निकली थी। यही अवसर था, जब कंसके असुर-पुर रक्षक असावधान रहते थे। वे उनींदे होते थे, अतः किसीकी ओर भी अधिक ध्यान नहीं दे सकते थे। मुझे कोई बाधा नहीं हुई। किसीने रोका नहीं। कुछ पूछा भी नहीं; क्योंकि मेरे पास कुछ सामग्री नहीं थी। मुझे तो प्रातः पर्यटनका कोई व्यसनी माना गया होगा।

मथुराके नगर-द्वारसे निकलकर मैंने अश्वको दौड़ा दिया था। स्वामीका यह श्वेत अश्व अब भी यहाँ है और सभी उसकी बड़ी श्रद्धासे सेवा करते हैं। बड़े-बूढ़े गोपतक उसे सादर सिर झुकाते हैं। सब कहते हैं—'ये अश्वराज शुभ-वाहक बनकर गोकुलमें आये। इनके चरण आये तो यहाँ घरोंमें शिशुओंकी किलकारियाँ गूँजने लगीं।'

बहुत सीधा, बहुत स्वामिभक्त है यह पशु। मुझे देखते ही ऐसा प्रसन्न होता है, जैसे उसमें नवीन प्राण आ गया हो। अब तो मैंने उसे व्रजपतिको दे दिया है ; किंतु उसकी तो वे पूजा करते हैं । कोई उसपर आरोहणकी चर्चा भी नहीं सुनना चाहता।

उस दिन इस अश्वको सम्भवत: मेरी कठिनाई समझमें आ गई थी। वह द्रुतगतिसे चलता हुआ भी सावधान था कि मुझे झटके न लगें। मैं उसे सीधे व्रजपतिके द्वारपर ले आई और उतरकर अन्त:पुरमें चली आई। उस वेशमें किसी भी पुरुषके सम्मुख पड़नेमें मुझे अत्यन्त लज्जाका अनुभव हो रहा था।

मुझे तब हँसी आई थी जब छोटे देवर नन्दनजीने सुनाया था कि 'हम सब लोगोंने तो समझा था कि श्रीव्रजेश्वरीके कोई दूर सम्बन्धके अनुज आये हैं, क्योंकि निकट सम्बन्धके होते तो हम सबसे भी मिलकर अन्त:पुरमें जाते। बहिनको कोई बहुत आवश्यक सन्देश देना होगा। अश्वको हमने सम्हाल लिया और उस सन्देशकी प्रतीक्षा करने लगे।'

मैं व्रजेश्वरीके कण्ठसे आते ही लिपट गई तो ये भी चौंक पड़ीं। मैंने झटकेसे उष्णीष फेंक दी और रो पड़ी थी—'बहिन ! तुम्हारी और श्रीव्रजराजकी शरण आई हूँ।'

मेरे मुखपर हाथ धर दिया था यशोदाने—'तुम यह सब कहकर मुझे पाप-भागिनी मत बनाओ जीजी ! मैं और व्रजपति भी तुम्हारे सेवक-सेविका हैं। यह गोकुल तुम्हारा।'

श्रीव्रजेश्वर सन्देश पाते ही अन्त:पुरमें आये। नन्दरानीने उन्हें अलग ही बतलाया बहुत धीरेसे और सुनकर मेरे सम्मुख आकर दोनों हाथ जोड़कर वे झुक गये—'भाभी ! चरण-वन्दन करता हूँ। भगवती पूर्णमासी पधारी थीं तो हमें उनके रूपमें जगदम्बा मिली थीं ; किंतु गोकुलेश्वरी तो आज प्राप्त हुईं। हम सब अनपढ़ हैं, अरण्यानी हैं ; किंतु आपके

सेवक हैं। आदेश देनेमें कभी सङ्कोच करेंगी तो हमें बहुत कष्ट होगा। अब आप इस अपने गृह, गोष्ठ, गोकुलका स्वामित्व सम्हालने आ गयीं, हम सब निश्चिन्त हुए। शरण तो आप देंगी हम सबको।'

मैं क्या कहती। अबतक मैंने वस्त्र भी नहीं बदले थे। मेरी कठिनाई समझी यशोदाने और वे मुझे शीघ्र वहाँसे कक्षमें ले गयीं। पुरुष वेशमें व्रजपतिके सम्मुख खड़े होनेकी लज्जा मैं ही समझ सकती हूँ।

तिल-तन्दुल श्याम-श्वेत केश, पाटल वस्त्र, किञ्चित् स्थूल तुन्दिल-काय, इन्दुकान्ति, भव्य श्मश्रु व्रजपति मेरे स्वामीसे आयुमें बहुत बड़े हैं। स्वामी साथ हों तो ये उनके पितृव्य प्रतीत होंगे और व्रजेश्वरी यशोदा मुझसे वयमें बहुत बड़ी हैं। इनका गौरवर्ण, घुँघराले श्यामकेश, कुछ भरा शरीर आभूषण-भूषित मुझसे तो बहुत भव्य है; किंतु आयुका श्रेष्ठत्व शूद्रोंमें स्वीकार किया जाता है। स्वामी क्षत्रिय हैं, अतः व्रजपति उन्हें बड़ा भाई मानते हैं। इसलिए मुझे भाभी कहनेका उन्हें स्वत्व है। लेकिन मैं क्या करूँ, उनको देवर कहने अथवा उनका नाम लेनेकी बात मैं सोच ही नहीं पाती। उनके सामने आते ही मुझे सहज सङ्कोच होता है। वे मुझे ज्येष्ठ ही लगते हैं।

मैं हार गयी व्रजेश्वरीसे। ये मुझे बहिन या जीजी कहती हैं; क्योंकि मैं क्षत्रिया हूँ। बहुत बड़ी हैं ये वयमें मुझसे; किंतु मैंने बहिन कहा तो पैर पकड़कर बैठ गयीं—'जीजी! तुम नाम नहीं लोगी तो मुझे लगेगा कि तुमने मुझे अपनाया ही नहीं है।' मैं बाध्य होकर इन्हें यशोदा कहने लगी हूँ।

मेरी अपनी दुर्बलता है कि मैं स्वभावसे शासिका हूँ। स्वामीके घरमें भी—जब वह घर वैभव-सम्पन्न था, समस्त व्यवस्थाका सञ्चालन मैं ही करती थी। सेवक-सेविकाएँ और सब सपत्नियाँ केवल मेरा आदेश-पालन करते थे। अब यहाँ गोकुल आनेपर भी मैंने यही प्रारम्भ कर दिया है। व्रजपति तो अत्यन्त विनम्र हैं ही, इतनी बड़ी वयकी होकर भी यशोदा अनुजा हो गयी हैं। इन्होंने सब व्यवस्था मुझपर छोड़ दी है और अपनेको मेरी आदेश-पालिका बना लिया है।

मेरे बहुत मना करनेपर भी व्रजपतिने उसी दिन गोकुलमें आनेका महोत्सव मना लिया। गोपों और गोपियोंने मुझे उपहार अर्पित किये।

यह एक प्रकारसे अच्छा भी हुआ ; क्योंकि इस प्रकार मैं प्रायः सबसे परिचित हो गयी ।

उस एक ही दिनमें मैं गोकुलमें ऐसी हो गयी जैसे जन्म-जन्मसे यहीं की—इसी परिवारकी होऊँ। किसी एकने भी तो मुझे अपरिचित, मथुरासे विपत्तिके कारण आगता नहीं माना। सब मेरे आगमनको अहोभाग्य—शुभशकुन मान रहे थे और मुझे भी सब परिचित स्वजन ही लग रहे थे। अपरिचय-जन्य सङ्कोच मुझे किसीके भी सामने नहीं हुआ।

भगवती पूर्णमासी पधारीं तो मैं जैसे ही उनके पदोंमें प्रणत होकर बैठी, उनका मधुमङ्गल आकर गोदमें ही बैठ गया। वह मेरे मुखकी ओर मुख करके बोला—'माँ ! हमारा दादा आ रहा है न ? तुम उसे लाओगी यहाँ !'

यह भोला, सुन्दर बालक ; किंतु लज्जासे मैंने सिर झुका लिया। धीरेसे इससे कहा—'बड़े तो तुम हो। जो आवेगा, वह तुम्हारा छोटा भैया होगा। तुम उसके दादा हो।'

'नहीं माँ !' यह कहने लगा—'हम सब सखाओंका वही दादा है। वह आ रहा है तो मेरे सब सखा आवेंगे।'

'मैया !' मेरी गोदसे उठकर वह यशोदाकी गोदमें जा बैठा—'दादा आ रहा है ! मेरा सखा भी आवेगा।'

बहुत भोला, बहुत चञ्चल, बहुत बोलनेवाला बड़ा प्यारा बालक है मधु-मङ्गल। यह तो मुझे पीछे पता लगा कि यह जन्म-सिद्ध है और महर्षि शाण्डिल्य भी इसका सम्मान करते हैं ; किंतु यहाँ गोकुलमें तो हममें सबको ही यह सरल, विनोदी बालक ही लगता है।

श्रीव्रजपतिकी, यशोदाकी और उनसे भी अधिक हठी उनकी धाय मुखराकी बहुत मनुहारें करनी पड़ी मुझे। इसलिए कि ये मुझे निराभरणा, साधारण वस्त्रमें संयमपूर्वक रहने दें। मैं स्वामीसे दूर हूँ। वैसे ही शास्त्र प्रोषित-पतिकाके लिए सादगी, संयम आवश्यक मानते हैं और मेरे स्वामी तो कारागारमें हैं।

'अन्तर्वत्नीको उपवास नहीं करना चाहिए।' यशोदा मुझे कोई व्रत नहीं करने देतीं। मैं इनके बड़े-बड़े लोचनोंमें अश्रु नहीं देख पाती और ये

हैं कि अङ्गराग, पुष्पमाल्य छोड़ बैठी हैं ; क्योंकि मैं इनका उपभोग नहीं करती। इनके कारण मुझे अपने सब नियम शिथिल कर देने पड़े हैं।

व्रजपति अनेक बार यशोदाके माध्यमसे मुझसे आग्रहपूर्वक पूछ चुके हैं—'मुझे कोई दोहद होता है ?' मुझ पतिसे दूरस्था अभागिनीके मनमें उत्साह है कि मुझे कोई दोहद होता है। मेरी बात ही किसीकी समझमें नहीं आती कि—'मेरी इच्छा किसी निर्जन, एकान्तमें चुपचाप मौन बैठे रहनेकी होती है।' सब इसे मेरी मन:स्थितिकी उदासीनता मानते हैं। कोई भी इसे मेरा दोहद (गर्भवती नारीकी गर्भके कारण उठनेवाली कामना) स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं है।

यहाँ सब दिन गिननेमें लगे हैं। सबमें बहुत उत्साह, बहुत उत्कण्ठा है ; किंतु मेरे उदरमें जो आया है, उसे तो उत्कण्ठा जान ही नहीं पड़ती। वह कहाँ बाहर आनेको उत्सुक है। नौ महीनेपर सबको शिशु होते हैं ; किन्तु मेरा तो ग्यारहवाँ महीना भी बीत रहा है। अनेक बार बहुत दिनों—वर्षोंपर बच्चे होनेकी कथाएँ सुनी हैं। यह मेरे ही फूटे भाग्यमें आवेगा, किसे पता था। मैं स्वामीका वंश बचाने आयी और पता नहीं कौन मेरे उदरमें आ बैठा है।

महर्षि शाण्डिल्य, भगवती पूर्णमासी भी कहती हैं कि 'असाधारण महापुरुष आनेवाले होते हैं तो इसी प्रकार अधिक समय लगता है।' भला मुझ पतिसे दूरस्थाको जननी बनानेकी साध किसके मनमें जागी होगी ?

व्रजपति बार-बार अनुरोध करते हैं, यशोदा हठ करती हैं, यहांके गोपनायकोंकी वृद्धायें ही नहीं देवी पूर्णमासी तक अनेक बार आकर सस्नेह कह गयीं—'मुझे श्रम नहीं करना चाहिए। अमुक-अमुक सावधानी रखनी चाहिए।' अन्ततः सबका ध्यान मुझपर ही क्यों है ? व्रजपतिके सब भाइयों-की पत्नियाँ अन्तर्वत्नी हैं। वृद्धाप्राय प्रलम्बकाय उपनन्द-पत्नी तुङ्गी और पीवरीको भी इतनी सावधानीका संकेत नहीं दिया जाता। सारे गोकुलका स्नेह, श्रद्धा, सम्मान मुझे एक साथ मिल गया है। मैं इसका शतांश भी तो प्रतिदानमें समर्था नहीं हूँ।

ये स्वप्न भी अद्भुत होते हैं। मैं समझ ही नहीं पाती हूँ कि स्वप्न ही था या कुछ और। यशोदा सुनकर हँसने लगीं तो और किसीसे कह भी नहीं सकती। सब हँसेंगी। आज ब्रह्ममुहूर्तमें उठी तो अचानक गिर पड़ी।

जैसे चक्कर आ गया हो मुझे। मैं गिर पड़ी थी, इतना निश्चित है; क्योंकि फिर भूमिपर-से ही उठी हूँ। लगा कि अत्यन्त वेदनासे छटपटाने लगी हूँ। बहुत भयङ्कर पीड़ा है मेरे उदरमें ; किंतु मुखसे चीत्कार नहीं फूट रही है। उस पीड़ासे मेरे उदरमें जो पिण्ड था, बाहर आ गया। वह क्या था, मैं देख नहीं सकी, मूर्छिता हो गई।

उस मूर्छामें कोई तेजोमयी अष्टभुजा देवी मेरे समीप आयी। उसने सब हाथ-जोड़कर मस्तक झुकाकर मुझे प्रणाम किया और बोली—'माँ! मुझे क्षमा करना। मैं तुम्हारी स्नेह-भाजना बालिका हूँ। तुम्हारे गर्भका आकर्षण करना पड़ा है मुझे सर्वेश्वरके आदेशसे। अब भगवान अनन्त आपके उदरमें आ गये!'

वह देवी अदृश्य हो गयी। मुझे लगा कि अत्यन्त उज्ज्वल ज्योतिर्मय सहस्रफणा कोई महासर्प मेरे मुखसे मेरे उदरमें प्रविष्ट हो गया। मैं घबड़ाकर मूर्छासे जागी तो वहाँ कुछ भी नहीं था। केवल मैं भूमिपर पड़ी थी। मैंने अपने उदरपर हाथ फेरा। वह यथावत् था। भूमिको बहुत देर तक देखती रही ; किंतु वहाँ रक्तका एक सीकर नहीं था। स्वप्नमें गर्भपात हुआ—पता नहीं यह किस अमङ्गलका सूचक था।

इस स्वप्नकी चिन्ता बहुत नहीं करनी पड़ी। व्रजपतिने उसी दिन सायङ्काल सुनाया—'मथुरासे लौटे एक गोपने वहाँ सुना है कि क्रूर कंसने इस बार किसी कुटिल उपायसे देवकीका गर्भपात करा दिया है।'

बेचारी देवकी—मुझे उस दुःखिया बहिनका मुख उस रात नहीं भूला। मैं उस रात सो नहीं सकी। हाय! तो मेरा स्वप्न देवकीके गर्भपातका सूचक था ; किंतु इससे अन्तर क्या पड़ा? वैसे भी कंस उस शिशुको जन्मते ही मार डालता। देवकीके लिए तो यह अच्छा ही हुआ। जीवित शिशु उत्पन्न होकर मार दिया जाय, इससे गर्भस्थको मार देना कम त्रासदायक है। यह युक्ति प्रारम्भसे कंसको सूझ गयी होती तो देवकीको व्यथा तो कम होती।

अब देवकीका अष्टम गर्भ आवेगा! नारायण उसकी रक्षा करें! इसीकी प्रतीक्षामें तो सब उत्पात हो रहे हैं। इस प्रकारकी अनेक भावनाएँ उठ रही थीं और स्वयं मेरी अपनी अवस्था भी मुझे आश्चर्यमें डाले थी। पीछे तो मैं इन आश्चर्यजनक बातोंकी धीरे-धीरे अभ्यस्त हो गयी।

बात मेरे तक ही नहीं थी। अब मुझे कक्षमें कभी अकेली तो शयन करने नहीं दिया जाता था। मेरे समीप दो कुशल धात्रियाँ सदा रहती थीं। वे भी चौंककर जाग गयीं। सम्पूर्ण कक्ष अद्भुत प्रकाशसे परिपूर्ण हो उठा था। एक अकल्पित दिव्य सुरभि फैल गयी थी। मेरे ऊपर कक्षमें अन्तरिक्षसे सुमन झरने लगे थे। इन सुमनोंको धात्रियोंने संग्रह करके सबको ही दिखलाया था। ये हम सबके अपरिचित सुन्दर, सुकुमार पुष्प गोपियोंने प्रसादकी भाँति ले लिए और वे किसीके घर भी म्लान नहीं हुए। पूरे वर्ष-भर पीछे वे स्वयं अदृश्य हो गये।

मैं देखती थी—केवल मैं देखती थी कि अरुणवर्ण श्वेत श्मश्रु सृष्टि-कर्त्ता, त्रिलोचन गङ्गाधर, सहस्राक्ष सुरेन्द्र, शुण्डधर चन्द्रभाल गणपति तथा शत-सहस्र अन्य परिचित अपरिचित देवताओंसे कक्ष भर गया है और सब साञ्जलि स्तुति करते हुए मुझपर पुष्पार्पण कर रहे हैं।

भगवती पूर्णमासीने सुनकर अञ्जलि बाँधकर मुझे प्रणाम कर लिया यह कहकर—'अनन्त-जननी! आपके उदरमें जो आ गये हैं, वे सुरोंके नित्यसेव्य हैं।'

ये अद्भुत दृश्य, सुरभि, सुमन, ज्योत्स्ना नन्दगृहमें सबके लिए शीघ्र सामान्य हो गये। मेरे शरीरमें भी उस विचित्र स्वप्नके पश्चात् ही परिवर्तन हो गया। मुझे अपना शरीर पुष्पके समान भारहीन लगने लगा। सभी साग्रह मुझे कुछ भी करने नहीं देते थे; किंतु मुझे लगता था कि मेरे भीतर स्वास्थ्य, शक्तिका अनन्त प्रवाह उमड़ पड़ा है। मुझे श्रान्ति, क्लान्ति कभी हुई भी थी, यह भी विस्मृत हो गया। इतना सब था; किंतु मेरे मनमें आह्लाद नहीं था। एक शान्ति थी। नीरव-शान्त बैठे रहना मुझे प्रिय लगता था।

सब कहते थे कि मेरे अङ्ग-अङ्गसे कान्ति झर रही है। देवी पूर्ण-मासी अब प्रतिदिन अधिक समय मेरे समीप ही व्यतीत करने लगी थीं और मधुमङ्गल तो रात्रिमें भी मेरे अङ्कमें सो रहनेका अनेक बार आग्रह कर बैठता था। उसे समझाकर ही भगवती आश्रम ले जाती थीं।

मुझे तो वह समय भी भली प्रकार स्मरण है, जब दाऊ भूमिष्ठ हुआ। मुझे कोई वेदना नहीं हुई। मैं मूर्छिता तो क्या होती, निद्रिता भी नहीं थी। भगवती पूर्णमासी भवनमें ही थीं। भाद्रशुक्ल षष्ठी बुधवारका

मध्य दिन था।* महर्षि शाण्डिल्य समाचार पाकर शीघ्र आ गये। यद्यपि उस समय वर्षा हो रही थी और आज कक्षमें, प्राङ्गणमें—सर्वत्र वे दिव्य पुष्प राशि-राशि झर रहे थे।

मैं सद्यःप्रसूता; किंतु इतनी स्वस्थ, सशक्त थी कि उठ सकती थी। चल सकती थी। मुझे तो धात्रीने चुपचाप पड़े रहनेको विवश कर रखा था। पड़े-पड़े मैं सुन रही थी कि गोकुलमें महोत्सवके वाद्य बजने लगे हैं।

व्रजपतिने जातकर्म संस्कार सविधि कराया। अन्ततः ये मेरे स्वामीके भाई ही तो हैं। सहस्रों गोदान किया इन्होंने। गोपों और गोपियोंने वह आनन्द-मङ्गल मनाया कि मुझे उसका वर्णन सुन-सुनकर उठकर उसमें सम्मिलित होनेका उत्साह होता था। व्रजेश्वरी यशोदाने आज मेरे गोकुल आनेके पश्चात्से सम्पूर्ण शृङ्गार पहिली बार धारण किया था। इनके अपने ही पुत्र हुआ हो, इतना उल्लास और इतना ही उल्लास तो था एक-एक गोपीमें।

'उत्सव अभी नहीं! कंसको समाचार नहीं मिलना चाहिए!' मैंने व्रजपतिको, उपनन्दजीको तथा अन्योंको भी उच्चस्वरसे कहते सुना; किंतु सब नृत्य कर रहे थे—वृद्ध उपनन्द तक और वाद्य गगन गुञ्जित कर रहे थे। यह इनका 'उत्सव नहीं।' वाला उत्सव था।

भगवती पूर्णमासीने मुझसे षष्ठी-पूजनके पश्चात् कहा था—'बुधवारको मध्याह्नके समय तुला लग्नमें स्वाती नक्षत्रके द्वितीय चरणमें यह कुमार हुआ है। तुला ही राशि है। लग्नमें चन्द्रमा, शुक्र तथा शनि हैं। कर्कमें गुरु दशममें, सिंहका सूर्य एकादशमें, कन्याका बुध द्वादशमें, मकरका मङ्गल चतुर्थमें, सिंहका राहु एकादशमें तथा कुम्भका केतु पञ्चममें है। मङ्गल, बुध, गुरु तथा शनि उच्चके ये चार ग्रह हैं। सूर्य, बुध, शुक्र स्वगृही हैं।† यह अतिमानव नित्य, योगेश्वर, सर्वगुरु, सर्वसद्गुणैकधाम है तुम्हारा शिशु।'

* पुराने पञ्चाङ्गोंमें मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीको बलदेव-जयन्ती लिखी जाती थी। कल्पभेदसे उस तिथिको मध्याह्नमे शतभिषामें दाऊका आविर्भाव हुआ। इससे उनका नाक्षत्रिक नाम संकर्षण हैं। सूर्य वृश्चिकका, चन्द्रमा कुम्भका, लग्न वृश्चिक। शेष ग्रह भाद्रपदके समान राशियोंमें।

† गर्ग संहितामें पाँच ग्रह उच्चके कहे गए हैं; किंतु वहाँ तुला लग्न तथा स्वाती नक्षत्रका भी उल्लेख है। अतः चन्द्रमा तुलामें ही रहेगा। सूर्य भाद्रपदमें मेषका सम्भव नहीं। शुक्र भी उसके समीप ही रहेगा। अतः पाँच ग्रह उच्चके होने असम्भव है।

मैंने अनुरोध करके किसी प्रकार यशोदाको और व्रजपतिको प्रस्तुत किया कि इस शिशुके संस्कारोंको अभी वे रहने दें। इतनेपर भी इसकी बरही, भूमिस्पर्श, दुग्धपान संस्कार उन्होंने सम्पन्न कराये। स्वयं यशोदाने इसे दक्षिणावर्त शङ्खसे दूध पिलाकर इसका धात्री होना अपने लिए सौभाग्य माना।

सब कुछ हुआ; किंतु अपनी भाग्यहीना माताका यह शिशु गूंगा निकला। यह न बोला, न खड़ा हुआ, न चला। इसने तो घुटनोंके बल भी खिसकनेका प्रयत्न नहीं किया। गोपियाँ, यशोदा—सब हार गयीं इसे खिलौने देकर और हँसानेकी चेष्टा करके; किंतु यह एक बार भी तो नहीं मुस्कराया। पलनेमें भी तो इसने हाथ-पैर नहीं उछाले। जहाँ धर दो, लेटा या बैठा रहेगा। दूध पिला दो तो ठीक, न पिलाओ तो ठीक। इसने हँसना नहीं जाना तो रोना भी नहीं जाना। बस कुछ देखता-सा, घूरता-सा रहता है आकाशकी ओर।

मधुमङ्गल है कि जब इसके समीप मुख ले जाकर इसे 'दादा' कहकर पुकारता है, यह धीरेसे हाथ उठाकर उसके मुखपर धर देता है। इतनी चेष्टा भी दूसरेके साथ यह नहीं करता। मधुमङ्गल कहता है—'यह अपने अनुज की—मेरे सखाकी प्रतीक्षा कर रहा है।'

महर्षि शाण्डिल्य और भगवती पूर्णमासी भी यही कहती हैं—'यह गूँगा नहीं है। यह अपङ्ग भी नहीं है। यह प्रतीक्षा कर रहा है।'

मुझ भाग्यहीनाका यह पुत्र—लेकिन अब मुझे सन्तोष हो गया है। मेरी अनुजासे भी अधिक स्नेहमयी यशोदाके पैर भारी हो गये हैं। व्रजपति-के कुमार हो जाय तो यह उसका गूंगा अग्रज भी मेरे लिए अहोभाग्य।



बाबा—मैयाका परिचय

मैं विराट्पुरुषका मन हूं, अतः परमपुरुषको जब पृथ्वीपर अवतीर्ण होना होता है, वे प्रायः मुझे माध्यम बना लेते हैं। केवल तब नहीं, जब उन्हें नृसिंह अथबा वाराहके समान अकस्मात् आविर्भूत होना होता। अन्यथा तो वे मेरे माध्यमसे मनमें आते हैं उन महाभागके जिनको पिताका सौभाग्य देना होता है और फिर पितासे मातामें। इस प्रक्रियाका एक पुण्य-परिणाम है कि श्रीपुरुषोत्तमके अनेक अवतार-रहस्य जो सृष्टिकर्त्ताको भी ज्ञात नहीं होते, मुझे स्पष्ट रहते हैं।

सिन्धुजाके कारण मैं समुद्रोद्भव, श्रीनारायणका श्यालक हूँ और यही सम्मान किसीके लिए कम नहीं है; किन्तु इस बार तो परात्पर पुरुषने मुझे कुल-पुरुष बनाकर जो गौरव दिया, उससे अब कोई सङ्कोच नहीं कि श्रुतिके स्वरोंमें वेदज्ञ ब्राह्मण कहते हैं—

'**सोमोऽस्माकं ब्राह्मणां नां राजा।**' यजुर्वेद १०.१८

मुझ शशिको भगवान भूतनाथने भाल-भूषण बनाकर सनाथ कर दिया था और अब तो मैं सचमुच सुधाकर हो गया हूँ। अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे व्रजधराको सुधा-सिञ्चित करके मैं धन्य-धन्य हूँ। मथुरा, द्वारिका-में ही नहीं, व्रजमें भी उन परात्पर पुरुषने मुझे कुल-पुरुष होनेका गौरव प्रदान किया है इस बार।

कभी-कभी सृष्टिकर्त्ता भी इन लीलामयकी लीलाओंमें भ्रान्त हो जाते हैं तो मेरी क्या गणना; किंतु इस बार देवी योगमाया भी मेरे कुलमें आयीं तो आनेसे भी पूर्व उन्होंने मुझपर अपना प्रभाव डालनेमें सङ्कोच प्रारम्भ कर दिया। अतः मैं स्पष्ट समझ सका कि सृष्टिकर्त्ताको परमपुरुष-के परिकरोंमें कहाँ कैसे भ्रम हो गया।

अब ये गोकुलमें देवी रोहिणी हैं। भगवान ब्रह्मा ही भूलमें हैं कि ये नागमाता कद्रू हैं तो सुरोंकी समझ कहाँ इनके स्वरूपकी छाया छू सकती

है। उस दिन महर्षि कश्यपने कहा—'पुरन्दरके जन्मसे पूर्वकी बात है, मैं नागमाता कद्रूके समीप था और देवी अदिति मेरे सामीप्यको उत्सुक थीं। मुझे विलम्ब हुआ तो अदितिको लगा कि कद्रूने मुझे रोक लिया है। उन्होंने कद्रूको रुष्ट होकर मानव-योनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। जब कद्रूने सुना, उन्होंने भी यही शाप अदितिको दिया। अब मैं अंशरूपसे मथुरामें वसुदेवके रूपमें उत्पन्न हुआ तो अदिति देवकी तथा कद्रू रोहिणीके रूपमें आ गयीं। लेकिन अब देवकीके लिए रोहिणी परमप्रिय हैं और रोहिणी देवकीपर प्राण देती हैं।'

महर्षि कश्यप मेरे भाई होते हैं; क्योंकि वे भी मेरी भाँति स्रष्टाके पौत्र हैं; किंतु मुझे कहाँ अधिकार है कि परात्पर पुरुषके रहस्य प्रकट करूँ। यह तो महर्षिको स्वयं सोचना चाहिए कि धरणीधर शेष और साक्षात् भगवान अनन्तमें अपार अन्तर है। उन गोलोकबिहारीके अग्रजको अवतीर्ण होना है तो माता रोहिणी ही आवेंगी। नागमाता कद्रू केवल उनसे एक हो सकती हैं।

यही भ्रम भगवान ब्रह्माको है और गोकुलेश्वर तथा वृहत्सानुपुरके स्वामी—दोनों ही परिवारोंके सम्बन्धमें है। बहुत सीधी-सी बात है कि जब उन निखिल-लोक-महेश्वरको अवनिपर अवतीर्ण होना है, जब उनका नित्य धाम धरापर व्रज बनकर आविर्भूत हुआ है तो उनके नित्य परिकर भी यथाक्रम आवेंगे ही। जगतमें इन परिकरोंके ही तो प्रतिविम्ब जन्म-जन्मसे जीव बने भटक रहे हैं। अब जिनका पुण्यपरिपाक हो गया है, जो उन आनन्दघनका सान्निध्य पानेका अधिकार अर्जित कर चुके हैं, वे अब इस अवतार कालमें अपने नित्य दिव्य चिद्घन स्वरूपोंसे एकत्व तो प्राप्त करेंगे ही।

वसुश्रेष्ठ द्रोणने अपनी पत्नी धराके साथ गन्धमादन पर्वतपर सुप्रभाके तटपर गौतमाश्रममें रहकर श्रीहरिके दर्शनके निमित्त घोर तप किया, क्योंकि सृष्टिके प्रारम्भमें तो स्रष्टा सबको ही सृजन करनेका आदेश दे रहे थे। उन हंसवाहन चतुर्मुखने धरा और द्रोणको भी यही आदेश दे दिया था। ये दम्पति चाहते थे कि श्रीनारायण इनके पुत्र बनें।

परम पवित्र कामना; किंतु श्रीहरि भी क्या करें। किसी भी जीवको—वह जिस नित्य धामस्थका प्रतिविम्ब, ज्योति किरण है, उससे पृथक तो नहीं किया जा सकता। जीवमें अविद्याका आवरण न हो, वह अपने

स्वरूपको ही समझे तो जीव ही कैसे कहा जाय। वसुश्रेष्ठ द्रोण और देवी धराको कहाँ पता था कि वे जो जाहते हैं, वह तो उनके अकल्पनीय प्राप्यका क्षुद्रांश भी नहीं है।

शताब्दियाँ व्यतीत होती चली गयीं ; कि श्रीहरिका दर्शन नहीं हुआ तो दम्पतिने अग्नि प्रवेश करके देह त्यागका निश्चय कर लिया। चिता प्रज्वलित की। सुप्रभाके पावन-प्रवाहमें स्नान करके अग्निकी प्रदक्षिणा करने चले, तभी अकाशवाणी हुई—'तुम यह प्रयास मत करो। गोकुलमें प्रकट होनेपर मुझे अवश्य पुत्र-रूपसे प्राप्त कर लोगे।'

अब दोनों लौटे ब्रह्मलोक। भगवान ब्रह्माने भी प्रसन्न होकर वरदान माँगनेको कहा। दोनोंने माँगा—'परमपुरुष पुरुषोत्तम पृथ्वीपर प्रकट हों तो उनमें हमारा वात्सल्य हो। वे हमारे पुत्र बनकर हमारे अङ्कमें, आंगनमें क्रीड़ा करें।'

'एवमस्तु !' सृष्टिकर्ताने कह दिया और फिर स्वयं स्तब्ध रह गये। परमपुरुष पुरुषोत्तम, निखिलेश्वर तो किसीके वरदानके विषय नहीं। लेकिन अब तो उनसे प्रार्थना ही की जा सकती थी कि वे स्रष्टाके सत्यकी रक्षा कर लें।

सृष्टिकर्ताके भ्रमका यही कारण है। वे समझते हैं कि गोकुलमें वसुश्रेष्ठ द्रोण नन्दराय हुए हैं और गोपराज गिरिभानु (सुमुख) की पत्नी पद्मावती (पाटली)* से प्रकट कन्या यशोदा—नन्दपत्नी धरा हुई हैं।

नित्य गोलोक-बिहारीके नित्यबाबा और मैयाको भी तो पृथ्वीपर आना चाहिए, जब उन साक्षाद्गोकुलेश्वरको आना है। श्रीनन्दरायमें द्रोणने और यशोदामें धराने एकत्व प्राप्त कर लिया। अब उन्हें परात्पर परमपुरुष पुरुषोत्तमका पितृत्व-मातृत्व तो मिलना ही है, श्रीनारायणके अंशोद्भव वासुदेवको भी उन नन्दनन्दनसे एक होकर रहते हुए अपना वरदान तथा इनकी तपस्याका सङ्कल्प सत्य करना है।

यही बात वृहत्सानुपुर (बरसाना) के सम्बन्धमें भी है। पूर्वजन्ममें मनुवंशी सुचन्द्रका विवाह पितरोंकी मानसी कन्या कलावतीके साथ हुआ। भगवती पार्वतीकी माता मैनाकी इन महिमामयी बहिनके साथ दीर्घकाल

*एक व्यक्तिके अनेक नाम पहिले होते थे। ग्रन्थान्तरोंमें आये इन भिन्न-भिन्न नामोंको कल्प-भेदके नाम भी मान सकते हैं।

तक राज्य करनेके पश्चात् सुचन्द्रजी पुलहाश्रममें तप करने चले गये। भगवान ब्रह्मा इनके तपसे सन्तुष्ट होकर ब्रह्मलोकसे उतरे। उनमराल वाहनने कहा—'वरदान मांगो!'

'प्रभु! आप प्रसन्न हैं तो मुक्ति प्रदान करें!' सुचन्द्रने मांगा—'प्राणीका परमपुरुषार्थ तो यहीं है।'

'पति ही नारीका सर्वस्व है!' कलावतीने अत्यन्त आर्त होकर प्रजापतिसे कहा—'आप यदि इन्हें कैवल्यमुक्ति देते हैं तो मेरा क्या होगा? मैं तो इनके चरणोंसे पृथक रह नहीं सकती और न मेरी कैवल्यमें रुचि है। मैं इनसे एक होना नहीं, इनका नित्य सान्निध्य चाहती हूँ। अतः आप सोच-कर इन्हें वरदान दें! आपने इन्हें मोक्षका वरदान दिया तो मैं आपको शाप दूँगी।'

'देवी!' आपका शाप मुझे भी कहीं भ्रष्ट कर सकता है यह जानता हूँ।' ब्रह्माजीने कहा—'वैसे भी मैं कैवल्य देनेमें समर्थ नहीं हूँ। मैं रजोगुण-का अधिष्ठाता—केवल कल्पान्तमें ज्ञानोपदेशका अवकाश पाता हूं। अतः सुचन्द्रजीको कोई दूसरा वरदान मांगना चाहिए।'

'तब मैं मांगना नहीं चाहता!' मानधनी महाराज सुचन्द्रने कहा—'आपको मुझे कुछ बनाना ही है तो मुझे ऐसा बनाइये कि मैं निखिल लोक महेश्वरको भी दे सकूं! उनका परमाभीष्ट प्रदाता बनूं।'

'एवमस्तु!' सृष्टिकर्ताने बद्धाञ्जलि प्रणाम किया—'आप दोनों मेरे भी प्रणम्य हो गये। उन निखिल लोक महेश्वरका परमाभीष्ट तो उनकी आह्लादिका शक्ति ही हैं। अब वे अनन्त वात्सल्यमयी ही मेरे वरदान-की मर्यादा-रक्षा करेंगी।'

वृहत्सानुपुरमें सुरभानुजी (महीभानु) की पत्नी पद्मावतीसे वृषभानु प्रकट हुए तो उन नित्यके श्रीविग्रहमें सुचन्द्रने तादात्म्य स्थापित कर लिया। कान्यकुब्ज नरेश भलन्दनके यज्ञ कुण्डसे वृषभानुकी नित्य प्रिया देवी कीर्तिदा प्रकट हुईं।* उनसे एक होनेके कारण कलावती अयोनिजा बनी रहीं।

अब यह तो सर्वविदित ही है कि अपने मित्र वृषभानुके लिए नन्द-रायने अपनी कौमारावस्थामें ही कान्यकुब्ज पतिसे उनकी यज्ञ-कुण्डोद्भवा

* कल्पभेदसे ये गोपनायक सुबलकी इन्दिराके अंशसे उत्पन्न कन्या है।

कन्या माँगी थी और व्रजपति पर्जन्यके कुमारकी प्रार्थना स्वीकार करके कान्यकुब्ज नरेशने वृषभानुको बुलाकर सविधि कन्यादान कर दिया था।

अब तो व्रजधरापर—गोकुलमें उन परमपुरुषके अग्रज भगवान अनंत अवतीर्ण हो चुके हैं। उनका परिकर आने लगा है। मेरा कुल—मेरा यह भुवन-भूषण कुल जो मुझे भी परमधन्य करता है, बढ़ रहा है।

उन अनन्तके आविर्भावके दो दिन पश्चात् ही उपनन्दजीकी पत्नी तुङ्गीकी गोद पूर्ण हुई। इनके पुत्रका नामकरण हुआ ऋषभ। इसके ठीक सात दिन पीछे सन्नन्दकी पत्नी कुबलाके अङ्कमें अर्जुन आया और उसके तीन सप्ताहके पश्चात् अभिनन्दजीकी पत्नी पीवरीका गृह पुत्र जन्मोत्सवसे मुखरित हुआ। इस बालकका नाम विशाल, उसके आकारके अनुरूप ही था।

व्रजमें बालक आने प्रारम्भ हो गये थे और मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। सुरोंकी समझमें ही यह नहीं आता था कि मैं पृथ्वीपरके अपने कुलसे तादात्म्य करके इतना प्रसन्न क्यों हो रहा हूँ किन्तु यह बात मेरी समझमें भी कम आती है कि ये सब बालक प्रायः समान लग्न में ही कैसे उत्पन्न हो रहे हैं। वैसे मैं जानता हूँ कि इन नित्य-परिकरोंका प्रारब्ध नहीं होता। ग्रह इनको प्रभावित नहीं कर सकते। ग्रहोंको और कालको भी इनकी ही कृपा अपेक्षित है; किंतु सबको प्रायः समान जीवन व्यतीत करना है, अतः इन सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सत्पुरुषोंने लग्नकी भी सार्थकताका अपने आगमनमें ध्यान रखा है।

इन दिनों चार ग्रह उच्चके और दो स्वगृही तो चल ही रहे हैं। केवल मैं चञ्चल हूँ और मैं कहीं भी रहूँ, अपने कुलके तो मैं सदा सानुकूल ही रहूँगा। मेरा सम्पूर्ण आशीर्वाद! समस्त सुधा-किरणें इन आये और आनेवाले शिशुओंके लिये! मुझे इनके नित्य सखाने कुल पुरुष स्वीकार किया है।



श्रीराधा जन्म

शशिसे मेरी कोई स्पर्धा नहीं है। वैसे भी वे रमाके अग्रज होनेके कारण मेरे स्नेह भाजन हैं और अब तो मुझसे महान भी हो गये हैं; क्योंकि वे जिनके कुलपुरुष हैं, उनको पति रूपमें पानेके लिये मेरी पुत्री कालिन्दी बहुत कालसे इन्द्रप्रस्थके पास यमुनामें तप कर रही है।

वृहत्सानुपुरके अधिपतिका नाम मुझे उनसे आत्मीयता स्थापित कराता है। मनुष्योंकी भाँति मुझे भी नाम-साम्यसे स्नेह हो गया है। दूसरे लोग भले वृष=धर्म+भानु व्युत्पत्ति करके वृषभानुका अर्थ धर्मका सूर्य करें, मैं तो वृष राशिका सूर्य ही अर्थ करता हूँ; क्योंकि इसके कारण वे मुझे अपने प्रतीक लगते हैं।

परमपुरुषकी अभिन्नरूपा आह्लादिनी शक्ति प्रकट होंगी उनकी पुत्री होकर तो उनके भानु-नन्दिनी ही तो कहा जायगा। पुरुषोत्तमको कालिन्दी पतिरूपमें अवश्य प्राप्त करेगी और मेरी यह पुत्री इन नित्य श्रीहरिप्रियाकी अंशोद्भवा ही तो है। अतः मैं अपना पितृत्व यहीं क्यों छोड़ दूं। नन्दनन्दनको जामाता न बनाना चाहे, उस पुरुषका पुत्रीको जन्म देना व्यर्थ है। मुझे श्रुति 'सहस्ररश्मि' कहती है। मेरी सहस्र-सहस्र रश्मियाँ सलोनी बालिकायें बन सकें तो मैं सबको उन आनेवाले व्रजराजकुमारको ही वरण करनेकी प्रेरणा दूंगा।

वृहत्सानुपुरसे मेरा ममत्व अब सभी सुर समझने लगे हैं। वहाँकी महिमा भी अब स्वर्गाधिपने स्वीकार कर ली है। यह शक्रका मुझपर अनुग्रह नहीं है, यह उनका ही सौभाग्य है। इससे उन्हें मेरी भानु-नन्दिनी-की सेवाका कुछ तो अवसर मिल ही जायगा।

अभी तो वृषभानुजीने केवल एक कुमार पाया है। गोकुलमें भगवान अनन्तके आविर्भावके केवल दो दिन पीछे आया यह स्वर्णगौर श्रीदाम। मैं बहुत उत्सुक था कि इसके जन्मोत्सवमें समस्त वृहत्सानुको—सम्मुख दीखते नन्दीश्वरसानुको भी रत्नमय कर दूं; किंतु पता नहीं वह आनेवाली मेरी मानी हुई मानिनी बालिका सूर्यकी रक्तारुण मणियोंके प्रति कैसी रुचि

रखेगी। मुझे उसकी प्रतीक्षा करनी है; क्योंकि उसकी रुचि, उसके मानस-का स्पर्श तो स्रष्टाकी भी शक्तिमें नहीं है।

कला-काष्ठादिसे लेकर दिन, सप्ताह, मास, वर्षादि कल्पतक कालका सर्जक मैं ही हूँ। अतः कल्प पर्यन्तकालमें मेरे लिए भविष्य कुछ नहीं है। मैं देख रहा हूँ कि कल—यही कुछ मानव वर्षके पश्चात् गोकुलका जनपद कहाँ होगा। वह नन्दीश्वरसानुपर बना ; नन्द-भवन तो मैं आज ही प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ; किंतु अभी तो उस स्थानकी सज्जा अनवसर कही जायगी। मुझे आन्तरिक आनन्द भी आवेगा, जब वहाँ इस वृहत्सानुपुरका उपहार जाकर अलङ्कार बने और उसका श्रेय इसके अधीश्वरको प्राप्त हो।

मेरा पुत्र शनैश्चर सदासे मेरा विरोधी है और क्रूर है ; किंतु इस समय उसने मेरा स्नेह प्राप्त कर लिया है। अपनी स्वसाकी रुचि उसने ठीक समझी है। वृहत्सानु और गोकुलके आसपास भी इसने अपनी उत्तमोत्तम इन्द्रनील मणियोंकी राशि प्रकट कर दी है और इसमें सन्देह नहीं है कि कीर्तिदा रानीके अङ्कको भूषित करने जो कन्या आनेवाली है, उसके प्राणों-को ये मणियाँ परितृप्ति देंगी।

अब यह उसका आविर्भाव-अवसर आ रहा है।* कार्तिक कृष्ण अष्टमी, मध्याह्नकाल और मुझे मेघोंके पीछे हो जाना चाहिये ; क्योंकि कन्याका सूर्य बहुत विष-रश्मि होता है। मेरी किरणें किसीके भी शरीरका स्पर्श करें, यह उचित नहीं है। यह उस दिव्याका आविर्भावकाल है। मैं उसके लग्न मीनसे सप्तम कन्यामें हूँ बुधके साथ। देवगुरु पञ्चममें उच्चके स्वगृही चन्द्रके साथ हैं। राहु सिंहमें षष्ठ है। अष्टममें उच्चका शनि स्वगृही शुक्रके साथ तुलामें है। मङ्गल उच्चका एकादशमें मकरपर है और केतु कुम्भमें द्वादशमें बैठा है।

आह्लादकी अधीश्वरीका यह जन्मकाल, मैंने आज ही देखा है कि विकच कुमुदिनियाँ कैसी होती हैं। वे आज मेरा सङ्कोच त्यागकर सरोजों-के साथ सरोंमें हँस रही हैं और हँस तो रही है निखिल प्रकृति। यह प्रकृति भी तो बालिका ही है।

---

* सभी पुराने पञ्चाङ्गोंमें कार्तिक कृष्ण अष्टमीको श्रीराधाष्टमी लिखा होता है। इसे अहोई अष्टमी कहते हैं। अहोई अर्थात् न होनेवाली—अजन्माकी जन्मतिथि। भाद्रशुक्ल अष्टमी श्रीराधाष्टमी कल्पभेदसे जन्म दिन है। अहोई अष्टमी-का व्रजमें अब भी बहुत मान है। श्रीराधाकुण्डका स्नान इस दिन प्रचलित है।

मुझे तो आज सर्वत्र नन्ही, सुन्दर, सुकुमार बालिकाएँ ही बालिकाएँ दीख रही हैं। सुराङ्गनाएँ, गन्धर्व कुमारियाँ, तारिकाएँ और धरापर कण-कणमें नाचती, किलकती ये मेरी किरण-कुमारियाँ ! ये लतिकायें, मराल बालायें, गायें और कहाँतक गिनाऊँ पिपीलिकायें, भ्रमरियाँ—सब, सर्वत्र आज मुझे तो शिशु बालिकायें ही बालिकायें दीखती हैं। आनन्दमग्न, किलकती, नाचती, नन्हें करोंकी तालियाँ बजाती ये तृण-तरुओंके पत्र-पत्रको अलंकृत करती कन्यायें—सृष्टि कन्याओंसे भर गयी है। मेरी कन्यायें—मेरी आह्लादिनी सुताकी ये स्नेहमूर्ति सहेलियाँ !

आज दिग्देवियोंने शृङ्गार किया है और स्वर्गकी कुमारियाँ सुमन वर्षामें स्पर्धा करने लगी हैं परस्पर। मैं मेघावरणके झीने आवरणसे केवल झाँक सकता हूँ। घनोंने सीकर-समर्पण प्रारम्भ किये हैं और मैं स्नेह-शिथिल हो रहा हूँ—कीर्तिदाकी कुमारी आ रही है।

कीर्तिदाका गर्भजात कुमार—यह सुबल अपनी अनुजाके लगभग साथ ही आया है ; किंतु वह अयोनिजा कीर्ति-कन्या, वह तो लो प्रकट हो गयी देवालयमें। उसे तो केवल अङ्कमें उठाना है कीर्तिरानीको और वह इतना भी अवसर किसे देती है।

धन्य धरा ! इस सौकुमार्यकी साकार मूर्तिके सुकोमल चारु-चरण सचमुच कठोर धरित्रीका स्पर्श सहन करनेमें सक्षम नहीं थे। तुमने अपना हृदय प्रकट किया। प्रफुल्ल पद्म रूपमें इसके पाद-निक्षेपके लिए और यह तो स्वयं मातृ-अङ्कारूढा हो गयी है।

अब संसारके लोग तो समझेंगे ही, वृषभानु भी समझें कि उनकी सह-धर्मिणीने युग्म सन्तति दी है। युग्मजके अनुरूप—सर्वथा अनुरूप ही सुबलकी अङ्ग-कान्ति एवं स्वरूप है। इसे अनुजाके समीप कोई पहिचान न सके कि दोनोंमें कन्या कौन-सी तो आश्चर्य क्या। यह सादृश्य तो इन दोनोंका शाश्वत है।

मुझे तो स्मरण ही नहीं रहा, मेरे सदा सावधान सारथि अरुणको भी स्मरण नहीं रहा कि मेरा नित्य-गतिशील रथ शिथिल हो गया है। यह जो धरित्रीके अङ्कमें वृहत्सानुपुर है—वहाँका और देवी कीर्तिदाके पितृ-गृहका यह महा-महोत्सव ! गगनमें सुरोंका यह सोत्साह स्तवन—अब इसमें मैं या अरुण ही आत्म-विस्मृत हो गये तो क्या आश्चर्य। मैं आज औरोंके समान आशीर्वाद दे पाता—उपहार दे पाता ; किंतु आशीर्वाद तो मेरा रोम-रोम दे रहा है, भले मेरी वाणी स्नेहाधिक्यसे शिथिल हो चुकी है। वृषभानु-नन्दिनी—भानु-नन्दिनी जो आज धरापर अवतीर्ण हुई। ●

सीमन्तन

आजकल मुझे कुछ हो गया है, पता नहीं क्या हो गया है। उस दिन मैंने सुना कि व्रजपति देवता हो गये हैं तो मेरा हृदय धक्से रह गया। मैं जैसी थी, वैसी ही भागी थी। मुझे कहाँ यह ध्यान रहा था कि गोष्ठमें सब बड़े-बूढ़े गोप हैं। मुझे नहीं चाहिए कोई देवता। भगवान नारायण मेरे महरको सकुशल सानन्द रखें।

यह धात्री मुखरा बहुत बोलती है। पता नहीं क्या-क्या कहा करती है। इसे गोकुलकी ही नहीं, सारे संसारकी और सम्भवतः स्वर्गकी भी सब बातें जाने कहाँसे मिलती रहती हैं। सबके घरोंकी, गोष्ठोंकी सुधि रखती है। उस दिन सबेरे हाँफती दौड़ी आई थी और बोली—'महारानी! तुम मेरी बात नहीं मानती थी; अब जाकर दर्शन कर लो! मैं कहा करती थी कि श्रीव्रजराज कोई बड़े देवता हैं। अब आज पूरा गोकुल उनके दर्शनको उमड़ा पड़ा है तुम्हारे गोष्ठमें। इतना तेज—इतनी ज्योति तो मैंने किसी देवतामें भी नहीं सुनी। जाकर दर्शन कर आओ! सौ-सौ सूर्य जितना तेज और कितना तो शीतल, स्निग्ध है वह!'

मैंने इसे डाँट दिया था—'क्या हुआ महरको? वे अबतक यहाँ क्यों नहीं पधारे?'

लेकिन मेरा हृदय धक्-धक् करने लगा। इतनी देर तो उन्हें कभी नहीं होती थी भवनमें आनेमें। मैं कब से उनकी पाद-वन्दना के लिये प्रतीक्षा कर रही हूँ। अवश्य उन्हें कुछ हो गया है।

'सब तो दर्शन करने आये हैं उनका।' मुखरा की पूरी बात सुनने जितना धैर्य मुझे नहीं रहा। मैं भागी गोष्ठकी ओर।

सचमुच मेरे स्वामीको कुछ हो गया था। उनका अङ्ग-अङ्ग काँप रहा था। नेत्रोंसे अजस्र अश्रुधारा चल रही थी। शीतकालका समय—माघ मासके अन्तमें उनके शरीरसे इतना स्वेद चल रहा था कि पटुका और धोती पानीमें भीगी हों, ऐसी हो चुकी थीं। उनके शरीरसे ज्योति

बहुत निकल रही थी ; किंतु उन्हें कुछ हो गया था। मेरे स्वामी बोलते नहीं थे। मैं ज्योतिका क्या करती। मुझे पता नहीं कि कैसे पुकारती उन तक पहुँची थी। मैं उनको हिलाकर सावधान करना, उठाना चाहती थी ; किंतु उनका शरीर-स्पर्श करते ही पता नहीं मुझे क्या हो गया। मैं अपनी ही सुध-बुध भूल गयी और तभीसे मुझे कुछ हो गया है—ऐसा कुछ कि उसे मैं समझ नहीं पाती हूँ।

मुखरा कहती है—मैंने जैसे ही महरका स्पर्श किया, वे धीरे-धीरे सचेत होने लगे ; किंतु मुझे यह सम्हालकर भीतर ले आयी। अब यह मुझे ही देवी, महादेवी—जाने क्या क्या कहती है। इस धायके कहनेको तो बात किसी महत्त्वकी नहीं है ; किन्तु गोपियाँ—जेठानियाँ और भगवती पूर्णमासी तक आकर जब कभी हाथ जोड़ती हैं तो बड़ी लज्जा लगती है।

महर भी कहते हैं—'तुम्हारे शरीरसे तो अब सदा ज्योत्स्ना झरती है।'

भला इस वृद्धावस्थामें यह रसिकता कहीं शोभा देती है ; किंतु सब तो कहते हैं कि मुझमें पता नहीं कितना प्रकाश या तेज आ गया है। बहुत अटपटा लगता है मुझे। लेकिन इसका मैं क्या करूँ कि स्वप्नमें ही नहीं, दिनमें जागते भी मुझे देवता दीखते हैं। रोहिणी जीजी कहती थीं, तब मुझे विचित्र लगता था ; किंतु व्रजपति कहते हैं कि उनके वे भाई वृष्णि-वंशभूषण कोई बड़े योगीश्वर हैं। इसलिए रोहिणी जीजी भी योगीश्वरी अवश्य होंगी। उन्हें देवता, मुनि दीखें, प्रणाम करें तो आश्चर्य नहीं, किंतु ये अब मेरी वन्दना करते हैं, मुझे तो बहुत सङ्कोच लगता है, जब सहसा ये तेजोमय देवता, मुनि चाहे जब प्रकट होकर स्तुति करने लगते हैं।

दाऊ जीजीके उदरमें था तब उनपर सुमन-वर्षा होती थी। घर सुरभिसे भर-भर उठता था। अब वह सब अनेक गुणित होकर मेरे साथ होने लगा है। इतनी ही कुशल है कि जीजीके समयसे सभी इन बातोंके अभ्यस्त हो गये हैं, अन्यथा मैं तो आश्चर्य और सङ्कोचसे ही मर जाती।

रोहिणी जीजी हँसती हैं। वे मुझे उठने भी नहीं देना चाहतीं। मैं कहती हूँ कि मेरा शरीर पहिलेसे भी सशक्त, स्वस्थ, हलका है तो वे कह देती हैं—'तुमने भी तो मेरी बात नहीं सुनी थी। अब मेरी बारी है। चुप-चाप पड़ी रहो और जो कहूँ, मान लिया करो।'

वे बड़ी हैं। उनके पुण्यपद पधारे इस गृहमें तो यह सौभाग्यका दिन भी आया। अन्यथा मैं तो वन्ध्या ही थी। गोपियाँ ठीक ही तो कहती हैं कि यह उनकी पद-रज पड़नेका प्रभाव है। अन्यथा भगवती पूर्णमासीने तो मुझे सबसे पहिले आशीर्वाद दिया था; किंतु मैं वैसी ही रह गयी थी। दाऊको उदरमें लिए जीजी आयीं इस घरमें तो भगवतीके आशीर्वादको भी उन्होंने सफल कर दिया।

अब जीजीने मेरी भी सेवा सम्हाल ली है। इस गोकुलकी, गृहकी व्यवस्थासे तो इन्होंने मुझे आते ही निश्चिन्त कर दिया था। लेकिन मुझे क्या हो गया है कि दिनमें, रात्रिमें भी यूथकी यूथ चन्द्र-किरणोंसे ही बनी हों, ऐसी देवियाँ मेरे पास आकर मुझे घेर लेती हैं। वे दिव्य-देह देवता हैं, मैं उन्हें मना भी कैसे कर सकती हूँ। इतना अङ्गराग, इतनी सुमन-सज्जा तो मैंने तब भी नहीं की जब नववधू बनकर इस घरमें आयी थी, फिर ये दिव्य सुमन, अङ्गराग, आभरण और अलक्तक तक—वे वेणी गूँथ-कर सुमन सजा देती हैं सो ठीक, अङ्गोंमें अङ्गराग लगा देती हैं या आभरण सजा देती हैं सो भी ठीक; किन्तु वे तो बलात् मेरे पैर अङ्कमें लेकर अलक्तक तक लगाती हैं और मैं रोकूँ तो पैरपर मस्तक रखने लगती हैं। कहते लज्जा आती है; किंतु मैं भी पता नहीं कितनी अहङ्कारिणी हो गयी हूँ इन दिनों। ये सब देवियाँ मुझे 'मैया' कहती हैं और मुझे भी लगता है कि ये मेरी बालिकायें ही हैं।

देवता—चतुर्मुख, वज्रधर आदि भी मुझे 'माँ' कहकर वन्दना कर जाते हैं और जी करता है कि उन्हें आशीर्वाद दे दूँ। छिः! इतना अहङ्कार कहाँसे आ गया मेरे मनमें? यह घड़ी-घड़ीकी देवताओंकी, दिव्य मुनियोंकी वन्दना, स्तुति मुझे अहङ्कारी बना रही है; किंतु ये लोग मेरी मानेंगे। सुराङ्गनायें ही नहीं सुनतीं तो ये कैसे सुनेंगे।

यह क्या है? मैं देखती हूँ कि कहीं पद रखती हूँ तो वहाँ पृथ्वीमें पद्म प्रकट हो जाता है—विकच सुन्दर पद्म और पद उठाते ही अदृश्य हो जाता है। कोई अदृश्य देवता अथवा ये पृथ्वीदेवी ही मुझे अब भूमिपर पद भी नहीं रखने देती हैं। मैं गायोंकी सेविका, गोष्ठकी सम्हाल करने वाली इतनी सुकमारी कबसे हो गयी? मैंने तो शैशवमें भी उल्लासपूर्वक गोबर उठाया है।

कुछ भी सोचूं, कुछ भी कहूँ, कोई मेरी नहीं सुनेगा। रोहिणी जीजी ही नहीं सुनतीं तो सुर, सुराङ्गनायें क्यों सुनने लगीं। जीजी कहती हैं—'अन्तर्वत्नी होकर नारी सेव्या हो जाती है। उसे चुपचाप सेवा लेना चाहिए। माताका गौरव विश्वमें सबसे महान है।'

जैसे मैं ही एक माता बननेवाली नयी हुई हूँ ; किंतु भगवती पूर्णमासी तो पता नहीं क्या-क्या कह जाती हैं। ऐसा कौन आनेवाला है जो सबका ही स्तोतव्य, सेव्य और पता नहीं क्या है।

मुझे तो जीजीका यह मौनी दाऊ सबसे सुन्दर, सबसे प्रिय लगता है। अब यह अकेले आकाशकी ओर देखते बैठा या पलनेमें पड़ा नहीं रहता। अब तो मेरे अङ्कसे उतरना ही नहीं चाहता। पता नहीं, क्या देखता है—प्रायः मेरे मुखकी ओर ही देखता रहता है अथवा लेटूं तो मेरे वक्षपर मस्तक रखकर सो जाता है।

भगवती पूर्णमासीका मधुमङ्गल भी कितना भोला बालक है। आया तबसे मुझे—केवल मुझे 'मैया' कहता है। सफल तो इसी अवधूतकी वाणी हुई। वह आया तभीसे रट लगाये है—'मेरा सखा आनेवाला है।'

जीजी गोकुल आयीं तो मधुमङ्गलने कहा—'मेरा दादा माँ लायी है।'

दाऊके जन्मके पीछेसे कहने लगा—'मैया ! मेरा दादा आ गया। अब मेरा सखा आवेगा।'

आजकल यह आता है तो मेरे चारों ओर घूम-घूमकर नाचता है, कूदता है, ताली बजाता है—'मेरा सखा आनेवाला है ! मेरा सखा आ रहा है !'

अब तो यह अनेक बार मोदक और माखन, जो इसको अत्यन्त प्रिय हैं, उनके लिए भी मुख बिचका लेता है—'सखाके साथ खाऊँगा !' जैसे इसका सखा आते ही खाने भी लगेगा। यह तो है ही आनन्दमूर्ति। यह आ जाता है तो दाऊ भी प्रसन्न लगने लगता है। इसके सामने तो रोता भी हँसनेको विवश हो जाता है।

इसका सखा—इस अवधूत मधुमङ्गलका वह आनेवाला सखा है या सखी, यही कहां पता है। यह तो सखाकी धुन लगाये है। भगवती पूर्णमासी भी कहती हैं और महर तो मुझसे उनके स्पर्श करनेके उस दिनके पीछे ही पूछने लगे। वे कहते हैं—कोई बहुत सुन्दर नीलमेघ सुकुमार शिशु

मेरी क्रोड़ीमें मेरे स्तनोंसे मुख लगाये उनकी ओर देखता उन्हें दीखता है। अवश्य दीखता होगा उन्हें ; क्योंकि दीखता तो यह मुझे भी है ; किंतु बालक है या बालिका ? नीलसुन्दर है या तप्तकाञ्चन गौर ?

मुझे स्वप्नमें—जागरणमें भी अनेक बार दीखता है। कमलदल विशाल लोचन, घुंघराले बालोंसे घिरा सलोना मुख, इन्दीवरसुन्दर, सौन्दर्य-घन सुकुमार मेरे अङ्कमें आनेको दोनों कर उठाता है। मैं अनेक बार उसे उठानेको अपने हाथ उठाती हूँ और चौंक जाती हूँ।

मैं चौंकती हूँ और तभी देखती हूँ कि एक तप्तकाञ्चन गौर, वैसे ही सुन्दर नेत्र, सुन्दर सुकुमार मुख, सघन घुंघराले केशसे मण्डित मस्तक तनिक हिलाती, मुस्कराती बालिका आ जाती है मेरे अङ्कमें और वह तो मानो चपला ही हो। आती है ज्योति-किरणके समान और अदृश्य हो जाती है।

उस मेघश्याम शिशुको तो मैं भली प्रकार देख भी पाती हूँ ; किंतु यह बालिका—इसका तो पूरा मुख देखूं-देखूं कि यह अदृश्य हो जाती है। यह जाती है तो मुझे बाह्य संज्ञा दे जाती है। जैसे यह मुझे सावधान-सचेत करने ही आती है। लेकिन यह आती है—वह शिशु आता है तो यह उससे सटी ही आती है। वह शिशु है या यह बालिका ही है। दोनों हैं या मेरा यह मतिभ्रम है—एक ही है। पता नहीं शिशु या बालिका।

मुझे अनेक बार यह मतिभ्रम होता है। सोते-सोते मैं नींदमें ही टटोलने लगती हूँ अपनी शैय्यापर और दिनमें अपने अङ्कमें ढूंढ़ती हूँ। जीजी हँसती हैं, गोपियां मुस्कराती हैं। मुखरा तो कह ही बैठी—'महा-रानीजी ! अभी वह आपके भीतर है—जिसे आप गोदमें ढूंढ़ रही हैं ; किंतु मैं किसे ढूंढ़ती हूँ ? वह बालक या बालिका ? दोनों या एक ? कोई हो—अतिशय सुन्दर, अत्यन्त सुकुमार है वह और मेरे इसी शिशुकी ये सुराङ्गनायें तथा सुर भी स्तवन करते हैं ?

संस्कार तो होना ही चाहिए था। सीमन्तन-संस्कार सविधि कराने महर्षि शाण्डिल्य पधारे और मेरी ओर देखते ही उनकी अञ्जलि बँध गयी। उनका रोम-रोम उत्थित हो गया। उनके नेत्रोंके अश्रु, उनके शरीरसे चलता स्वेद और उनके गद्‌गद स्वरका स्तवन—लेकिन ये ऋषि-मुनि सभी नारियोंको 'मां जगदम्बा' कहते हैं। इनको तो सर्वत्र ही अपने आराध्यके

ही दर्शन होते हैं। मुझे व्रजपतिने यह पहिले ही समझा रखा है। महर्षिके स्तवनसे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ।

महर्षिने स्वस्ति-पाठ किया। सविधि-पूजन कराया देवताओंका। संस्कार सम्पन्न हो गया तो व्रजेशने पूछा—'भगवन्! आपके यजमान आवेगा अथवा कन्या ?'

तब क्या महरको भी यह बालिका दीखती है? उन्हें भी मेरे ही समान सन्देह है? महर्षि प्रश्न सुनकर किञ्चित् चौंके। उन्होंने मेरी ओर ध्यानसे देखा; किंतु इन महात्माओंकी भाषा समझ लेना सरल काम नहीं है और इनसे कोई बात बार-बार पूछी जा नहीं सकती। महर्षिने कहा—'शक्ति और शक्तिमान अभिन्न होते हैं। परात्पर परमपुरुषसे पृथक उनकी आदि शक्ति महामाया भगवती रहा नहीं करती हैं। लेकिन वे आकर भी अन्तराय नहीं बनने वाली हैं आपके अलौकिक वात्सल्यमें।'

मैं जानती हूँ कि महरने भी कुछ नहीं समझा। मैं तो भला क्या समझती। महर्षिके चरणोंमें हम दोनोंने मस्तक रखा। कोई आवे—मेरा वन्ध्यत्वका कलङ्क तो अब कट ही गया।

अब व्रजपति मुझसे बार-बार पूछते हैं—'तुम्हें कोई दोहद होता है? कुछ पानेकी कामना होती है?'

मैं उन्हें क्या बतला दूँ। मुझे तो लगता है कि कामना नामकी कोई वस्तु ही नहीं है। मैं क्या चाहूँगी—सब तो मुझे सहज प्राप्य लगता है। अवश्य इच्छा होती है—अपनी लक्ष-लक्ष गौओंको चरते जाते देखनेकी और लौटते देखने की। मैं प्रातः-सायं जाकर गोष्ठके सम्मुख खड़ी हो जाती हूँ।

मुझे इच्छा होती हैं और पता भी नहीं लगता कि कब भूमिमें पड़कर गौओंको प्रणाम करने लगी हूँ। बार-बार वस्त्र गोमयोपलिप्त होते हैं।

मुझे इच्छा होती है और व्रजपतिके गृहमें तो सदा सहज इसकी पूर्ति होती ही रही—हो रही है। शत-शत ब्राह्मणोंका पूजन करके उन्हें भोजन कराने और उनको जो वे चाहें देते रहनेकी इच्छा होती है। मैं यह नित्य-नित्य कर रही हूँ।

लोग जो माँगें—दिया जाय उन्हें, यह इच्छा होती है; किंतु जीजी तो इससे कहीं अधिक उदार हैं। वे आये याचकको इतना-इतना दे देती हैं कि उसके लिए कुछ कहने-माँगनेको रह नहीं जाता। वे देती रहती हैं और मुझे

देख-देखकर आह्लाद होता है। वे इसे जानती हैं, अतः याचकोंको बुला-बुलाकर देती रहती हैं मेरे सामने।

मुझे इच्छा होती है कि कहीं कोई दुःखी, दीन, रोगी, अभावग्रस्त न रहे। मैंने सुना ही है कि मनुष्य ऐसी दुःखद स्थितिमें भी पड़ते हैं; किंतु मैंने कभी गोकुलमें ऐसी अवस्था नहीं देखी।

मुझे इच्छा होती है—सब सुप्रसन्न, सन्तुष्ट, सुखी रहें और सदा आनन्द-मङ्गल मनावें। अपने गोकुलमें मैं यह देख ही रही हूँ। इन दिनों तो लगता है कि मैं सारे संसारको ही सुख दे रही हूँ।

मुझे इधर वाद्योंमें मुरलिका बहुत मधुर, अत्यन्त प्रिय लगने लगी है; किंतु पता नहीं क्या बात है, किसीका भी वेणु-वादन मुझे ऐसा नहीं लगता कि बस यही पराकाष्ठा है। गन्धर्व-कन्याएँ तक मुझे मुरली सुनाती हैं। लेकिन यह मधुमङ्गल हँसकर कूदने लगता है—'मैया! मुरली केवल मेरा सखा बजा सकता है। यह उसीका वाद्य है। दूसरे क्या जानें वेणु-वादन।'

गोप-कन्याको माखन, मिश्री, दही, छाछ तो स्वभावसे ही प्रिय होता है; किन्तु इन दिनों दूसरे पदार्थोंकी ओर देखनेको भी मन नहीं करता। ऐसा तो कभी नहीं था। गोरसमें ही खेलते-खाते तो जन्मसे बसी रहे, उसके लिए यह विचित्र बात तो है ही।

महर पूछते हैं, वृद्ध गोप पुछवाते हैं, सुर और सुराङ्गनाओं तकने पूछा बार-बार—'मैं क्या लूंगी?' मैं किसीको क्या कह दूं। मुझे तो लगता है कि मैं देनेवाली हूं—देना चाहिए—सबको देना चाहिए। मैं देने-देनेके लिए ही हूँ। लेनेकी चर्चा मुझसे क्यों?

आजकल तो मेरा अन्तर-बाह्य अकल्पित आनन्दसे, अद्भुत ऐश्वर्यके भावसे भरा हुआ है। आनन्द और ऐश्वर्य मेरे भीतरसे उच्छलित हो रहा है।



श्रीकृष्ण-जन्म

अनन्त करुणावरुणालय श्रीनारायणकी अहैतुकी कृपा कब किसपर हो जायगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। उस दिन मैं नित्यकी भाँति ध्यान ही करने बैठा था आराध्यका। हृदय-कमलकी कर्णिकापर उन सुरेन्द्र-मुनीन्द्र-चर्चित चारु-चरणोंका ध्यान चित्तमें आवे, यही तो मानव-जीवनका चरम साफल्य है।

उस दिन अकस्मात् लगा कि हृदय उज्ज्वल-स्निग्ध प्रकाशसे परिपूर्ण हो उठा है। उसका कैसे वर्णन करूँ—प्रकाश और आनन्द दोनों जैसे एक हैं, अपार हैं, असीम हैं। अपनी तो विस्मृति ही हो गयी थी; किंतु सहसा वह मूर्ति आविर्भूत हुई उस प्रकाशके मध्य—वही ज्योतिर्मय नवजलधर सुन्दर वर्ण; किन्तु इतना सुन्दर, इतना सुकुमार और वह भी शिशु। घुँघराले काले केशोंमें लहराता मयूरपिच्छ, किञ्चित् अरुणाभ कमलदल विशाललोचन, अतिशय अरुण कर, पद, अधर। वह अरुणमणि कण्ठ, मौक्तिकमाल शिशु—वह हँसता, किलकता हृदयमें प्रकट हुआ और अङ्कमें आकर बैठ गया। मेरे श्मश्रुमें अपनी नन्हीं सुकुमार अँगुलियाँ नचाता हँसने लगा।

वह अङ्कमें है या हृदयमें? सम्पूर्ण सृष्टि उसीमें डूबी-डूबती चली गयी। वह कहाँ है? मेरा अपना शरीर होता तो वह अङ्क या हृदयमें होता। केवल वह–वही–वही नवघनसुन्दर, परम सुकुमार शिशु मन्दस्मित शोभित मुखारविन्द—वही रह गया एकमात्र। उसके श्रीअङ्गसे झरती अनन्त आनन्द-ज्योत्स्ना।

मैं कबतक उस प्रकार बैठा रहा, मुझे पता नहीं। पीछे पता लगा कि पत्नीने ही मुझे हिलाकर सचेत किया। समस्त गोकुल-सब नर-नारी आ गये थे गोष्ठमें। सब मेरे सावधान होनेपर पता नहीं कितनी अटपटी बातें कह रहे थे। कहीं मनुष्यके शरीरसे प्रकाश निकला करता है। प्रकाश तो उस शिशुके शरीरसे झर रहा था।

गोकुलके मेरे सभी स्नेहीजन श्रद्धालु हैं, परम पवित्र हैं। श्रीनारायणने सबपर कृपा करके उस दिन अपनी विभूतिका सबको दर्शन कराया। सब तो भ्रममें पड़कर मुझे ही माध्यम मानने लगे थे; किंतु वह शिशु—मैंने नेत्र खोला तो लगा कि वह और छोटा, सद्योजात हो गया है और महरके अङ्कमें जा बैठा है।

महर लज्जासे लाल हो उठती है, जब मैं उसकी ओर अपलक देखने लगता हूँ। वह उलाहना देती है—'तुम्हें इस आयुमें अब यह रसिकता सूझी है?'

वह सुन्दर है—बहुत सुन्दर है, यह सत्य है। मैं प्रारम्भसे उसके सौन्दर्यका प्रशंसक हूँ; किन्तु अब तो उसपर रूप, कान्ति, तेजकी अपार राशि उतर आयी है। लेकिन उसके सौन्दर्यका आकर्षण नहीं है, आकर्षण तो उस शिशुका है जो मुझे उसके अङ्कमें सदा दीखता है। वही नवघन-सुन्दर शिशु उसके अञ्चलमें कभी मुख छिपा लेता है और कभी तनिक-सा मुख घुमाकर मेरी ओर सस्मित देखता है। उस सौन्दर्यसिन्धु शिशुको देखकर मैं पलकें गिरा नहीं पाता, नेत्र हटा नहीं पाता और महर लज्जासे लाल होकर झुँझलाती है।

महर कहती है—'कोई कन्या है! तप्तकाञ्चन गौर कन्या' किंतु मैं तो इस अतसी-कुसुम-सुन्दर शिशुको ही देखता हूँ उसके वक्षसे सदा सटा। मैं इसीको देखनेके लोभमें न गोष्ठमें बैठ पाता और न गोकुलका ही निरीक्षण कर पाता। रोहिणी भाभीने भी हँसकर उलाहना दिया है—'आप ऐसे ही सदा भवनमें ही रहते रहे हैं? यशोदाने इतना वशमें कर रखा है आपको? अब इन दिनों आप इनका सान्निध्य नहीं पा सकते। ये मेरी सुरक्षामें हैं और गोकुलके लोगोंको सम्हालना आवश्यक है। आप उन्हें रोकेंगे नहीं तो वे अपने घरोंकी सब सम्पत्ति इस घरमें देकर स्वयं कङ्गाल हो जायेंगे।'

सचमुच गोपोंको—गोपियोंको रोका जाना चाहिए; किन्तु मैं किसी-को रोक भी कैसे सकता हूँ और किस-किसको रोकूँगा? अभी मैंने एक सामान्य सेवकको मना किया। वह असाधारण अत्यन्त बहुमूल्य रत्नोंका टोकरा डाल गया है यहाँ। मेरे रोकनेपर बोला—'आप तो इधर निकल ही नहीं पाते वनकी ओर। अपने आसपासकी वनभूमि ऐसे असंख्य पाषाणोंसे रात्रिमें भी ज्योतिर्मय रहती है। हम सबने गायोंको, वृषभोंको, बछड़ोंको

इनसे भरपूर सजाया है। जो घरमें आपकी पुत्रवधुयें हैं, उनकी इच्छा हो तो वे सिरपर उठा न सकें, इतने रङ्ग-बिरंगे ये पत्थर पड़े हैं। हम तो गोप हैं। हमारी देवता गौयें प्रसन्न रहें, स्वस्थ रहें, हमको क्या करना है इन पाषाणोंका। ये तो थोड़ेसे सुन्दर चुन लाया हूँ कि हमारा युवराज आ रहा है, वह इनसे खेलेगा।'

'यह लालके लिए!' आजकल गोकुलमें ही नहीं, पूरे व्रजमें—दूर-दूर तकके गोष्ठोंमें एक ही धुन है गोपों-गोपियोंको। दिनभर और रात्रिमें भी दूर-दूरसे उपहार लेकर ये लोग आते हैं। इनके प्रेमोपहारको कैसे अस्वीकृत कर दूँ।

रत्न, दुर्लभ औषधियाँ, शङ्ख और अब तो नवीन बात सुनी है कि कालिन्दी-पुलिनपर भी मुक्ता मिलने लगे हैं। किन्हीं-किन्ही सरोंमें, सरिताओंमें नन्हीं मुक्ता-शुक्ति होती हैं, यह मैंने शबरोंसे सुना था; किंतु श्रीयमुनामें तो ये नहीं थीं।

इधर लोग मयूरोंको, शुकको, मैनाको ही नहीं, वृषभोंको, गौओंको, वत्सोंको, मृगोंको भी सुशिक्षित करने लगे हैं, यह मैं सुनता हूँ तो आश्चर्य होता है। सबका उत्साह है—'लाल इनसे खेलेगा। ये उसे हँसावेंगे।'

जो अपार स्नेह कपि, श्वान तथा पक्षियोंसे भी आगे बढ़कर गौओंको सुशिक्षित करने लगा है, उसी प्रेमके परवश वह आनन्द-सिन्धु शिशु मेरी महरके अङ्कमें आया है। अन्यथा नन्दके तो इतने पुण्य थे नहीं। अब जिनका इतना स्नेह है, उनका स्वत्व अस्वीकार कैसे किया जा सकता है। वह आ रहा है उनके प्रेम-परवश, उन सबकी पुकारसे और उनका ही है।

इधर अपने गोष्ठमें भी पता नहीं कैसे इतनी अधिक गौयें आ गयी हैं। मैं गणना करनेमें कुछ दुर्बल हूँ। मेरी ही भूल होगी; किंतु गोप तो कहते हैं कि उनके गोष्ठोमें भी कहींसे बहुत सुन्दर, सुपुष्ट सुरभियाँ आ गयी हैं। सब गायें सद्यःप्रसूता हो गयी हैं अथवा शीघ्र होनेवाली हैं और उनका दूध इतना बढ़ गया है—मानो वे दूधसे ही बनी हों।

गोप कहते हैं—'पूरा महावन भली प्रकार मृदुल तृणोंसे इस वर्ष भरा है। लतायें पुष्पोंसे और तरु-फल-भारसे झुके हैं। वनमें मधु-छत्रकोंकी भरमार हो गयी है और मधुमक्खियाँ हैं कि मधुपूर्ण छत्रक छोड़कर सहसा

दूसरा छत्रक बना लेती हैं। मानो आमन्त्रण देती हैं—'इसे ले लो और हमारा श्रम सार्थक करो।'

अभी भाद्रपदका प्रारम्भ ही है; किंतु स्नान करने जाता हूँ तो श्रीयमुनाका जल इतना स्वच्छ – इतना निर्मल हो रहा है कि तल तकके कण स्पष्ट दीखते हैं। सेवक भगवान् नारायणकी अर्चाके लिए प्रफुल्ल पद्म ले आते हैं। वे कहते हैं—'इस वर्ष सरोवरोंमें-ह्रदोंमें इतने अधिक और इतने रङ्गोंके पद्म तथा कुमुदिनी-पुष्प हैं कि हमारे सब ऋषि-मुनि साप्ताहिक सहस्रार्चन इन्हींसे करेंगे तो भी ये समाप्त नहीं होंगे।

गोकुलका सबसे बड़ा सौभाग्य है कि हमें महर्षि शाण्डिल्यके समान तपोधन पुरोहित प्राप्त हुए हैं। उनके सान्निध्यका लोभ बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को यहाँ ले आ रहा है। महर्षि तो अपनी महानतावश ही कहते हैं—'ये महत्तम पुरुष व्रजपतिके पार्श्वमें रहनेका लाभ लेने आये हैं।'

अवश्य ही मथुरामें कंसका उत्पात बहुत बढ़ गया है। राजाके अधर्मका प्रभाव पूरे राज्यपर पड़ता है। उसके असुर अनुचर वैसे भी उपद्रवी हैं। आश्चर्य नहीं कि उनके अधर्मसे ही उसके राज्यमें ब्राह्मणोंके हवन-कुण्ड-में प्रकट होनेमें भगवान हव्यवाहको सङ्कोच होता हो और वे धूम्र-वमन करते हों। गोकुलमें तो हम अशिक्षितप्राय गोपोंके घरोंमें भी यज्ञके समय अग्नि-कुण्डसे निर्धूम लपटें उठती हैं और अग्निदेव सुप्रसन्न आहुति लेते हैं। ऋषि-मुनियोंको यहाँ ले आनेवाला यह आकर्षण अबल तो नहीं है।

सब कहते हैं—'यह सब आपके युवराजके स्वागतका समारम्भ है।' अभी तो उसको माताके उदरमें आये आठवाँ मास ही प्रारम्भ हुआ है।

× × × ×

जिसकी इतनी प्रतीक्षा थी, वह कब आया, यहाँ किसीको पता नहीं है। धात्री मुखरा कहती है—'माताको तो यह भी पता नहीं कि उसके अङ्कमें एक आया या दो आये और कन्या आयी या कुमार आया।'

मैं सुनकर हँस पड़ा—मेरी महर सदासे बहुत सुकुमारी है। वह इस असह्य श्रमसे श्रान्त होकर सो गयी तो क्या आश्चर्य! सो तो मैं गया था और सभी ऐसे अचेत सो गये थे कि कोई आकर कुमारको उठा भी ले जाता तो किसीको पता नहीं लगता।

कई दिनोंसे सब उत्साहके कारण जागरण कर रहे थे। लगभग अर्धरात्रिको ही वह प्रबल वर्षा, तीव्र वायुवेग—ऐसेमें मनुष्यको निद्रा ही तो आवेगी। चुपचाप सो रहनेके अतिरिक्त उस घोर अन्धकार और वर्षामें कोई करता भी क्या।

लगभग ब्रह्ममुहूर्तमें सूतिका-गृहसे मङ्गलवाद्यकी ध्वनि उठी और बहिन सुनन्दा हँसीसे खिलती दौड़ती आयी—'भैया बधाई ! भाभीके अङ्कमें व्रजका युवराज आया है।'

मेरी यह अनुजा शैशवसे बहुत सीधी-पगली है। अब यह समाचार सुनाकर वह उलटे अपने कण्ठका रत्नहार मुझे ही उपहार देनेको उतारने लगी। मैं उसे भला क्या देने योग्य था—इस अवसरपर मैं उसे अपना सर्वस्व भी दे देता तो अल्प था। मैंने जो दिया—वह तो इतना अल्प था कि कहनेमें मुझे लज्जा ही आवेगी। सच बात तो यह है कि मैं अपनी ही सुध भूल बैठा। लेकिन यह बात तो पूरे गोकुलमें सभीकी कुछ क्षणोंमें हो गयी। सब जो भी बहुमूल्य बस्तु हाथ आयी—जो सम्मुख आया, उसीके ऊपर उछालने लगे। कौन दे रहा है, किसे दे रहा है, क्या दे रहा है, यह स्मरण मुझे तो क्या रहता, किसीको भी नहीं रहा।

सम्भवतः स्त्रियाँ ऐसे अवसरोंपर हम पुरुषोंसे अधिक सावधान होती हैं। मुझे गोपोंने बतलाया कि वे तो सुनते ही दौड़ चले थे; किंतु उनके घरकी ही किसीने उन्हें सचेत किया—'इस अवसरपर रिक्तहस्त, असज्जित मत जाओ। अपने उत्तम कञ्चुक, उत्तरीय, उष्णीष किसी दूसरे दिनको नहीं हैं। अपने घरमें उस नवागतके उपहारके लिये श्रीहरिने बहुत कुछ दे रखा है।'

मैं तो सुनते ही ऐसा हो गया कुछ क्षणको कि कोई अङ्ग हिलता ही नहीं था। फिर आनन्दके उस उद्रेकमें क्या करने लगा, कुछ पता नहीं। मुझे तो नन्दिनी बहिनने सावधान किया—'भैया ! सर्वस्व तो आज लुटानेका सौभाग्य मिला ही है; किंतु अभी तत्काल महर्षि शाण्डिल्यको बुला लो। नान्दीमुख और जातकर्म पहिले होना चाहिये !'

मैं किसीको कहूँ—इतना सावधान कहाँ था। स्वयं ही दौड़ा; किंतु महर्षि सर्वज्ञ हैं। असीम स्नेह है उनका मुझपर। वे ब्राह्ममुहूर्तसे पूर्व ही उठकर चल पड़े थे। मेरे देहली पार करते ही उनके दर्शन हुए। उन्होंने

अपने शिष्योंको, सब ब्राह्मणोंको, मुनि-महर्षियोंको सम्वाद देने भेज दिया था। मुझे तो उन्होंने प्रणिपात करनेसे भी पूर्व आदेश दिया—शीघ्र यमुना-स्नान कर आओ !'

मैं स्नान करके आया तो बड़ी भाभी तुङ्गीने प्रसूति-कक्षके द्वारपर पहुँचते ही अपने करोंपर लेकर उस नवजातको मेरी ओर बढ़ा दिया। वही अतसी-कुसुम-सुकुमार—वही अलकावली-आवृत मुख, वही, वही तो है। मैं तो उसे देखते ही अपने आपको विस्मृत हो गया।

बड़े भाई उपनन्दजी ही जानते होंगे कि पूजन कैसे हुआ। नान्दी-मुख श्राद्ध कैसे हुआ। वे ही मुझसे सब कराते रहे। मुझे किञ्चित् स्मरण है कि किसी स्वर्णपात्रमें-से अनामिकापर तनिक-सा मधुमिश्रित धृत लेकर मैंने इस सुकुमारके अधरोंपर लगाया और इसने मेरी अनामिका ही मुखमें ले ली। वह स्पर्श—उस अमृत स्पर्शको वाणी नहीं ही बता सकती।

मुझे तो पीछे बड़े भाईने बतलाया है कि मुझसे बड़ी कठिनाईसे महर्षिने नवजात शिशुके दक्षिण कर्णमें मन्त्रोच्चारण कराया। उसके शरीरपर तो मेरा कम्पित कर पकड़कर भाईने किसी प्रकार फिरा दिया।

'स्वयं महर्षिका स्वर गद्गद् हो रहा था।' बड़े भाई उपनन्दजी कहते हैं—'उनके करोंमें कम्पन था। तुम तो चेतनामें नहीं ही थे, मैं भी कठिनाईसे अपनेको सावधान बनाये था। पाँच महर्षियोंने प्राणोच्चारण किया ; किंतु स्वर सबके आज भाव-भरे थे।'

किसी प्रकार यह जातकर्म-नान्दीमुख श्राद्ध सम्पन्न हुआ। शिशु पुनः सूतिकागारमें गया तो सबकी रही-सही सुधि-बुधि भी समाप्त हो गयी। फिर तो गोप-गोपियोंने नृत्य करना-गायन और परस्पर नवनीत दधि-दुग्ध हरिद्रा-मिश्रित जलका निक्षेप प्रारम्भ किया। मैं कबतक नाचता रहा—कितना दधि, दूध, या सुगन्धित जल मुझपर पड़ा—मुझे कुछ पता नहीं है।



जन्मोत्सव

हमारी व्रजरानीने आठवें महीनेमें कुमार पाया है। सब कहते हैं कि मैं बहुत बोलती हूँ ; किंतु बोलूँगी नहीं। मैं बूढ़ी हो गई, पता नहीं कितने शिशु मेरे इन हाथोंसे उत्पन्न कराये गये, पर यह जो व्रजराजका, व्रजका हम सबका पुण्य एक साथ मिलकर मूर्ति बनकर आया है, ऐसा शिशु संसारने कभी काहेको देखा होगा। मैं इसपर तभीसे राई-लवण उतारती थकी जाती हूँ।

कभी ऐसा नहीं हुआ कि मुखरा प्रसूति-कक्षमें असावधान हो जाय और इस बार मुझे भी नींद आ गयी ! वैसे मैंने कोई प्रमाद नहीं किया था। व्रजको युवराज मिलने वाला था और मैं प्रमाद करती ! प्रसूति-कक्ष मैंनें पूर्णतः सजाया था श्वेत पुष्पोंसे और विघ्न-वारणके सब प्रयत्न किये थे। अखण्ड प्रदीप था सर्षप-तैलका, तिन्दुक काष्ठकी नित्य प्रज्वलित अग्निमें धूप दी गयी थी और ठीक स्थानों पर शस्त्र रखे थे मैंनें। परिचर्याके उपयुक्त सामग्री, औषधियाँ—सब संग्रहीत थीं।

अर्ध रात्रिके पश्चात् ही तीव्र वर्षा होनें लगी। मैं थकी थी। तनिक भित्तिसे सिर टिकाकर बैठी और सो गयी। मैं वृद्धा सो गयी, इतनी सदाकी सावधान और ठीक समय सो गयी—यह शल्य मैं कैसे निकाल दूं। मुझे कोई कुछ कहनेवाला नहीं, व्रजराज भी मुझे मान देते हैं ; किंतु मैं अपने इस अक्षम्य प्रमादको भूल नहीं पाती हूँ।

प्रहरी गोप सो गये—बड़ी बात नहीं थी ; पर प्रसूता भी सो जाती है, यह मैंने कभी सुना भी नहीं था और यहाँ यशोदा रानी ही सो गयीं। बेचारीके लिये प्रथमावसर था और मैंने औषधियाँ भी ऐसी दी थीं कि पीड़ा न हो। सब सो गये सो ठीक, पर मुझे तो नहीं सोना था।

जगाया मेरे इस जीवन-प्राण नवजातने ही। यह सहस्र-सहस्र वर्ष जीता रहे और सदा सुखी रहे। यह आया और सब खुर्राटे लेकर सो रहे थे। इतने दिनोंकी प्रतीक्षा, इतनी मनौतियाँ, इतनी प्राणोंकी पुकार—

लेकिन यह आया तो कोई इसे देखने-सम्हालने वाला तक नहीं था। यह व्रजराज कुमार अब सदा देखे-सम्हालेगा सबको और यही सब सोने वालोंको जगाया करेगा, यह तो इसने जन्मते ही सूचित कर दिया है।

किसीको यही पता नहीं कि यह रात्रिमें उत्पन्न कब हुआ। जातकर्मके समय महर्षिने मुझे बुलवाया तो लगा कि आज मैं क्षमा नहीं की जाऊँगी। महर्षि महान् दयासागर हैं। मैं हाथ जोड़कर काँपती खड़ी हुई तो उन्होंने अभय दे दिया—'मुखरा! आज तो आनन्दका अवसर है! आज त्रिभुवनको अभय करनेवाला आया है। तू भीत क्यों है?'

कठिनाईसे मैं गिड़गिड़ाते हुए कह सकी किसी प्रकार कि मैं सो गयी थी—सब सो गये थे। मेरी समझमें ही नहीं आता था कि लालका जन्मलग्न कैसे निश्चित होगा।

'तेरा अपराध नहीं है।' महर्षि सर्वज्ञ हैं, उन्होंने नेत्र बन्द किये और कहा—'वह जो योगमाया अनुजा बनकर आयी और चली भी गयी, उसकी शक्ति अपार है। उसकी लीला—उसने सभी की बाह्य-चेतना प्रसुप्त कर दी तो तू क्या करेगी। चिन्ता मत कर!'

मैं नहीं जानती कि यह योगमाया कौन है! वह कब कहाँसे आयी और किधर चली गयी। पता नहीं उसने क्या किया होगा। मैं तुरन्त दौड़ गयी थी प्रसूति-कक्ष सावधानीसे देखने कि वह वहाँ कुछ अस्त-व्यस्त न कर गयी हो। हमारी साक्षात् योगमाया भगवती पूर्णमासी तो पीछे हम सबके सावधान होनेपर पधारी थीं और अभी यहीं थीं।

'इसका लग्न कैसे निश्चित होगा?' मैंने हाथ जोड़े-जोड़े हिचकते हुए कहा था प्रसूति-गृह देखकर शीघ्रता पूर्वक आते ही।

निश्चय, हो जायगा!' महर्षिने आश्वासन दिया—'तू सचेत कैसे हुई?'

'मैं कहाँ सचेत हुई।' सच-सच कहा मैंने—'सबको तो इस लालने सचेत किया। यह रो-रोकर प्रसूति-कक्ष गुंजित न कर देता तो वहाँ तो सभी सो रही थीं।'

'सभी सो रहे हैं मुखरा!' महर्षि कभी-कभी ऐसी बात कहने लगते हैं कि उसका अर्थ कोई बड़ा विद्वान ही समझ पाता होगा। अब वहाँ तो सब जाग रहे थे और वे कहने लगे—'अनादिकालसे मायाके अङ्कमें

सब सो रहे हैं। योग माया तो कदाचित् कभी इनके स्वजनोंको सुलाती हैं। लेकिन जगाने वाले यही हैं। ये कृपा करें तो जीव जागे और ये करुणाधाम —इनका अभिन्न सखा जीव इन्हें न देखकर सोता है तो ये आनन्दघन भी रोने लगते हैं।'

'यह रो रोकर सबको उठा रहा था ; किंतु मैंने इसे अभी मातृ-स्तन दिया नहीं है।' जातकर्मसे पूर्व तो इस सुकुमारको दुग्धपान नहीं कराया जाना चाहिए। अब यह रो-धोकर स्वयं सोने लगा है। 'लेकिन इसका लग्न ?'

मुझे लग्न-श्रवणकी त्वरा थी। इतने सुन्दर-सलोने लालका भविष्य-श्रवणको सब उत्सुक थे और सर्वज्ञ महर्षिके लिये लग्न-निर्णय कठिन तो था ही नहीं।

'यह वृष लग्नमें आया है।' महर्षिने कहा—'श्रीव्रजराजकी अपेक्षा ऊँचाईमें किञ्चिन्न्यून रहेगा।'

अच्छा ही है—बहुत प्रलम्ब होनेको इसके अग्रज ही पर्याप्त हैं। दाऊ अभीसे लम्बा लगता है। इसके ताऊ-चाचाके कुमारोंमें ऋषभ-अर्जुन भी लम्बे ही हैं और विशाल तो विशाल है ही। यह कुछ ठिगना रहे, इसमें तो कोई दोष नहीं। बहुत बार ठिगने व्यक्ति अधिक स्वस्थ सशक्त होते हैं।

'रोहिणीमें उत्पन्न हुआ।' महर्षि कह रहे थे—'प्रसूति-कक्षमें सर्प होना चाहिए था ; किंतु…'

मैं भागकर देखने जा रही थी पर महर्षिने मुझे रोककर पूछा—'इसके अग्रज तो स्वयं भगवान अनन्त हैं। वे वहाँ थे ?'

'दाऊ तो वहीं था।' मैंने बतलाना प्रारम्भ किया और मेरा यह दोष तो है ही कि मैं पूरी बात कहे बिना नहीं मानती। मैंने बहुत बच्चे उत्पन्न कराये हैं, पाले हैं। रोहिणी रानीसे, सबसे मैं सदा कहती थी कि दाऊ गूँगा नहीं है, अपङ्ग भी नहीं है ; किंतु मुझ धायकी बात पर कोई ध्यान ही नहीं देता था। बालककी पहिचान करनेमें कहीं मुखरासे भूल हो सकती है।

कल पता नहीं कब दाऊ उठा और अपने पलनेसे उतरकर प्रसूति-कक्षमें आ गया। रोहिणी रानी तो व्यस्त थीं। इस बच्चेकी ओर तो तब सबका ध्यान गया, जब यह अपने नव-प्रसूत अनुजके समीप शय्याको पकड़-

कर खड़ा हो गया और हँसने लगा। यह उसे देखता था और सिर हिला-हिलाकर हँसता था। इतना हँसता रहा जैसे पूरे वर्षकी रोकी सब हँसी अभी पूरी कर लेगा।

यह तो अपने दाहिने हाथकी तर्जनीसे धीरेसे छूता था शिशुको और कहता था—'उठ!' फिर हँसने लगता था। अब यह अपने नवजात अनुज-का साथ ही नहीं छोड़ना चाहता। इसके हँसने, बोलने, स्वयं उठकर चलने-से तो सबका आनन्द शतगुणित हो गया है। तभी तो व्रजराजने जब जाकर कहा—'भाभी! आज तो यह उदासीनताका वेश बदल डालो!' तो एक बार भी रोहिणी रानीने अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने सर्वाभरण सजा लिए अपने स्वर्णगौर सुन्दर अङ्गोंमें और ऐसी साड़ी धारणी की है जैसे वे नववधू हो गयी हैं। आजके महोत्सवकी व्यवस्था भी तो उन्हींको करनी है।

मैं पता नहीं कितना बता देना चाहती थी; किंतु महर्षिने संकेतसे रोककर सुनाया—'इसके बुध, शनि, मङ्गल, चन्द्र और गुरु ये पाँच ग्रह उच्चके हैं। शुक्र स्वगृही है और शनिके साथ शत्रु भवनमें बैठा है। शत्रुओं-का संहारक होगा यह। तृतीयमें राहु सर्वविघ्न-वारक होता ही है और नवमका केतु—मोक्ष तो इसके स्मरणसे प्राणियोंको प्राप्त होगा। यह सौन्दर्यका, श्रीका, सुयशका अनन्त धाम अपने सुहृदोंका सब प्रकार कल्याण करेगा। सूर्य स्वगृही है सुख भवनमें।'

इतना तो मैं भी जानती थी। अन्ततः मैं भी धात्री हूँ। शिशुओंके ग्रह भले मैं न जानूँ, उनके अङ्ग-लक्षण तो जानती ही हूँ। इस लालके ये कमल-लोचन, यह इसकी बङ्क भौंहें और इसके वक्षपर जो स्वर्णिम रोमा-वलीका भ्रमर है, वह मैंने देख ली है। यह बहुत सुकुमार है—सभी नवजात शिशु सुकुमार होते हैं, वैसा नहीं। यह तो लगता है कि सघन मेघोंसे बना है। मुझ वृद्धाके कर कठोर हो गये हैं। इसे स्पर्श करते मेरा हृदय काँपता है। कुछ बड़ा हो जाय तब इसके कर-चरण भली प्रकार देखूँगी।

गोकुलके आसपास वनोंमें, उपवनमें, गृहोंमें जो इसके माताके उदर-में आनेके साथ ही शोभा, सम्पत्ति उमड़ पड़ी है, वह तो सब देखते ही हैं। इतना सौन्दर्य वृक्षोंमें, वनोंमें—मुझे व्रजराजके सेवकने बतलाया कि कालिन्दी-पुलिनपर रेणुके रङ्गीन कणोंसे, वनोंमें तृण-पुष्पोंसे, जलमें पुष्पोंसे और भूमिपर रत्नोंसे नाना प्रकारके मण्डल-चित्र प्रकट हो गये हैं। वैसे

मण्डल जैसे मुनिगण यज्ञोंके समय यज्ञशालामें बनाया करते हैं। सब पशु-पक्षी प्रसन्न, पुष्ट, सानन्द हैं और शकुनोंने तो गोकुलको अपना आवास बना रखा है। यह सब हमारे लालका सौभाग्य-सूचक ही तो है।

प्रसूति-कक्ष, प्रांगण तो आज अद्‌भुत सुर-पुष्पोंसे भर गया है। अवश्य व्रजके युवराजका जन्मोत्सव मनाया है गगनमें सुरोंने भी। लेकिन यहाँ जो उत्सव आरम्भ हो गया है। आजके आनन्दमें तो सब उन्मत्त हो गये हैं। अरे इस वृद्धा मुखराको तो बची रहने दो। इसे प्रसूति-कक्ष सम्हालना है, नवप्रसूताकी सेवा करनी है, लालको अधिक दूध न पिला दिया जाय, यह देखना है; किंतु कोई आज मेरी पुकार नहीं सुनता। मैं भी तो पगली हो गयी हूँ। मुझसे भी तो प्रसूति-कक्षमें बैठा नहीं जाता।

व्रजेश नाच रहे हैं, उपनन्द तक नाच रहे हैं तो सब मुखराको नचाना चाहते हैं, इसमें क्या अनुचित है। यशोदाके अङ्कमें लाल आया—मुखराका ही तो लाल है। वह अपनी इस धात्रीको भी तो 'माँ' कहेगा। मुखरा आज नहीं नाचेगी तो कब नाचेगी।

यह नवनीत, दूध, दधि, हरिद्रा मिला तैल—यह परस्पर निक्षेप, यह प्रेममग्न उन्मद नृत्य एवं हास्य। यह गोपोंका और वृद्धोंका भी कूदना। मुखरा ही तो है जो गोपोंके—व्रजराज और उनके अग्रजोंके श्मश्रु-कपोल भी नवनीत-लिप्त कर सकती है और गोपियोंको—वृद्धाओंको, बधूटियोंको भी कर पकड़कर थिरका सकती है।

लेकिन यह क्या है? मुखराको यह सब अपार उपहार क्यों? मुखराने तो लाल पाया है। यह धात्री आज लुटाने वाली, देने वाली है। मेरे लालकी न्यौछावर लो सब—सब लूटो जीभर कर। इसमें भी कोई मेरी नहीं सुनता तो मैं कैसे मान लूं।

व्रजराज लुटा रहे हैं—रत्न, कोश, गायें, वृषभ, वस्त्र लुटा रहे हैं। ऋषियोंको, मुनियोंको, ब्राह्मणोंको उन्होंने मनुहारें करके दिया है और सूत, मागध, बन्दी, भिक्षुकोंका घर ही नहीं, मन भर दिया है। आज वे गोपोंको, गोपियोंको हाथ जोड़कर, पैर पकड़ कर मना-मनाकर वस्त्र, आभरण दे रहे हैं—यह उचित ही है।

रोहिणी रानी तो महारानी हैं। ये आज सबका सत्कार करनेमें लगी हैं और इन्हें कम देना आता ही नहीं है। इनके हाथोंमें लक्ष्मीका

निवास है। ये जिसे स्पर्श कर दें, जिसे दे दें—उसका अभाव पूरे जीवनके लिए मिट गया।

अभी मधुमङ्गल कह गया—'मुखरा मौसी! आज सुरांगनायें आयी हैं याचिका होकर और मैंने सुरोंको, दिव्य महर्षियोंको ब्राह्मणोंके साथ व्रजराजके करोंसे दक्षिणा लेते देखा है। तू आज जो चाहे, जितना चाहे माँग ले माँसे। मैं ब्राह्मण भी आज तुझे अपने सखाके आगमनमें आशीर्वाद दे सकता हूँ।'

मैंने आज झिड़क दिया—इस अत्यन्त चपलको आज ही झिड़का मैंने—'चल! आशीर्वाद देने आया मुझे! मेरे लालको आशीर्वाद दे और माँग ले तुझे जो दक्षिणा लेनी हो।'

व्रजराजकी—मेरे व्रज नव-युवराजकी दक्षिणा लेने महामहर्षि आवें, सुर आवें, सुराङ्गनायें ही नहीं, शारदा और श्री आवें—सब अपना सौभाग्य मानें इसकी दक्षिणा-न्यौछावर पाकर; किंतु मुखरा क्यों माँगे! मुखरा तो माँ है—धात्री माँ और मुखरा आज देने वाली-लुटाने वाली है।

महारानी—रोहिणी महारानी नहीं ही मानेंगी। इनकी दृष्टि बचाकर कोई भी आज निकल नहीं पाती। सबको इनका सत्कार-उपहार आज स्वीकार करना ही पड़ता है तो मुखरा तो धात्री है। इसे प्रसूति-कक्षमें ही रहना है और मैं इस गृहकी सेविका—मेरा रोम-रोम, कण-कण इसके अन्नसे पला-पुष्ट हुआ। महारानीका प्रसाद मेरे मस्तकपर। महारानीने मुझे आज इतना दिया है कि मेरी अनेक पीढ़ियाँ भी उसे समाप्त नहीं कर सकेंगी।

मेरा यह लाल सकुशल रहे! व्रज इसकी छायामें फले-फूले! मुखराने आज क्या नहीं पाया इसे पाकर। यह आया—अब और पाना क्या शेष रह गया। लेकिन यह जात-कर्ममें ही बहुत श्रान्त हो गया है। सोने लगा है और मुझे सावधान रहना है कि प्रसूति-कक्षके समीप अधिक शब्द न हो।



बुआ नन्दिनी

षष्ठी महोत्सव

मैं अपने नन्हें व्रज-युवराजकी बड़ी बुआ हूँ और अब मेरी समझमें ही नहीं आ रहा है कि मैं इस सुकुमारके लिए क्या दूँ। कुछ नहीं सूझ रहा है। मणि-रत्न तो हमारे गोकुलमें गाय-बैल-बछड़ों तकके गलेमें झूलते हैं। वस्त्र कोई इसके योग्य नहीं लगता। अभी है ही यह कितना बड़ा और यह खेलने योग्य तो हो जाय, खिलौनोंसे तो मैं भैयाका घर भर दूँगी।

मैं भी कितनी पगली हो गयी हूँ। भैयाका घर तो इस नीलसुन्दर लालने भर दिया है। यह युग-युग, कल्प-कल्पकी आयु प्राप्त करे! भैयाने, बड़ी रोहिणी भाभीने मेरा घर भर दिया। मैं कितना दूँ, किसको दूँ कि कुछ तो घर खाली हो। कोई लेनेवाला ही नहीं मिलता मुझे। जिसे देना चाहती हूँ, वही कह देती है—'तुम तो व्रजयुवराजकी बुआ हो, बड़ी बुआ। तुम्हें लेनेका स्वत्व है, देनेका नहीं। फिर तुम्हारे भैयाने इतना दिया है कि उसीको बाँटना है हमें।'

'तुमको आज नहीं, नहीं करना चाहिए।' यह भी कोई बात है कि गोकुलकी सब मुझे ही आज देंगी और मुझे अस्वीकार करनेका अधिकार ही नहीं है।

लेकिन यह सब बातें सोचने लगूँगी तो मेरा कर्त्तव्य रह जायगा। आज षष्ठी है लालकी और अकेली रोहिणी भाभी क्या-क्या देखें-सम्हालेंगी। वैसे वे महारानी हैं, उनकी क्षमता असीम है। उनकी दृष्टिसे व्यवस्थाका तनिक-सा भी भाग छूटता नहीं; किंतु उन्होंने मुझे सूतिका-गृहकी सम्हाल दे रखी है।

महर्षि शाण्डिल्यने सुना कि आज निर्जल उपवास किया है। ये ऋषि-मुनि पता नहीं कैसे महीनों-वर्षों व्रत कर लेते हैं; किंतु आज तो इतना आनन्द, इतना उल्लास मनमें है कि भूख मेरी विदा हो गयी है।

श्वेत तन्दुल वेदिकाओंपर महर्षिने सायङ्काल कुमार कार्तिक और षष्ठी देवीकी स्थापना की। मुझे तो वह शोभा जीवन भर नहीं भूलेगी—

यही आजकी छटा देखनेके लिए तो मैं वर्षोंसे मनौतियाँ कर रही थी। भाभी अपने नीलसुन्दर नवजातको अङ्कमें लेकर जब भैयाके वामभागमें बैठ गयी देव पूजनके लिए धन्य हो गये मेरे नेत्र। मैं अपना सब न्यौछावर कर दूँ इस शोभापर।

भगवान गणेशको भी कदाचित् स्मरण आया होगा कि देवी नागाधिराज तनया इसी प्रकार उन्हें अङ्कमें लेकर शशाङ्क शेखर प्रभुके वामपार्श्वमें आसीन होती हैं।

सङ्कल्प, स्वस्ति पाठ, गणेश, मातृका, नवग्रह, कलश-पूजन, वसोर्धारापात, षडमुख देव सेनापति और देवी षष्ठीका पूजन—मैं एक-एक सब क्रियाओंको गिना सकती हूँ। भाभीके समीप सहायिका बनकर रहनेका सौभाग्य आज मेरा स्वत्व था। महर्षिको मन्त्र-पाठ उनके गद्गद स्वरके कारण कई बार रोकना पड़ता था। ब्राह्मण सामगान कर रहे थे और मुझे रोहिणी भाभीने सावधान किया—'ननदजी! कोई नेगकी अधिकारिणी विप्रपत्नी चुपचाप चली न जायँ, इतना आप कृपा करके ध्यानमें रखना।'

भैया और भाभी हाथ जोड़कर सुब्रह्मण्य तथा षष्ठी देवीका स्तवन करने लगे, तभी मैं इस नवीन कर्त्तव्यकी ओर लग गयी।

राहु-वेध कौन करेगा? कहते हैं कि यह कार्य जो करता है, उसे कुछ प्रायश्चित करना पड़ता है। यह अच्छा कार्य नहीं है करनेवालेके लिए; किंतु नवजातके मङ्गलके लिए इसे होना चाहिए। भला यह भी सुननेकी बात है भाभी की कि वे इसे करनेके पक्षमें नहीं हैं। भैया तो भोले हैं और रोहिणी भाभीने पता नहीं कैसे इसे टाल देना मान लिया। मैंने तो कल ही अपने उनसे पूछा तो वे उत्साहसे उमड़ कर बोले—'तुम यह अवसर मुझे दिला सको तो मैं अपना धन्य भाग मानूँ। तुम दोषकी बात कहती हो, इस नवजातके मङ्गलके लिए मस्तक दिया जा सके तो वह भी महापुण्य होगा; किंतु देख लेना, मुझे कोई धनुष छूने भी नहीं देगा।'

मैं उनसे कह चुकी थी कि चुपकेसे द्वारके समीप आ जाना, मैं पोटली बाँधूंगी राहु-वेध की और तुम्हें भैयाका धनुष-बाण पकड़ा दूँगी। अपना लेकर आओगे तो चर्चा चल पड़ेगी और तब तुम्हें कोई यह कार्य नहीं करने देगा। तुम तो सबके सम्मान्य हो।

मेरी यह सूझ भी काम नहीं आयी। छोटे नन्दन भैया धनुष लेकर ही आ गये और मैं उस सूतिकागृहके वैडूर्यमणि द्वारकी चौखटमें हरिद्रा,

पुङ्गीफल तथा श्वेतसर्षपकी पोटली बाँधूँ, इससे पूर्व ही धनुषपर ज्या चढ़ाकर उन्होंने बाण रखा और पुकार की—'नन्दिनी ! राहु-वेधकी पोटली कहाँ है ?'

मैं क्या करती, यह छोटे भैयाका स्वत्व था। यह बात भी है कि गोकुलमें उन-सा धनुर्धर दूसरा नहीं है। जो राहु-वेध करेगा, व्रजयुवराज बड़ा होगा तो उसके करोंमें धनुष देनेका अधिकार भी उसीका होगा।

मैंने टोक दिया था—'भैया ! आप पूजन-स्थलसे पहिले ही यहाँ उठ आये ?'

नन्दन भैयाने वही बात कह दी जो मेरा हृदय मन्थन कर रही थी। मैं भी तो वहाँसे उठ आयी थी। मेरे भी उठ आनेका तो वही कारण था। भैयाने कहा—'नन्दिनी बहिन ! हमारा यह नवयुवराज दुग्ध फेनसे भी अधिक सुकुमार है। उसे वहाँ भूमि स्पर्श कराया जायगा, यह तो सोचकर ही यहाँ भी मेरा हृदय काँपता है। मैं इसे देख नहीं सकता।'

ओह ! वह उषःकिरणमें पङ्कज दलपर पड़ी झिलमिल करती ओस विन्दुसे भी कहीं अधिक सुकुमार इस सलोने शिशु अङ्ककी शोभा ! किञ्चिन्मात्र भी तो भूमिका स्पर्श कराने योग्य नहीं है वह। वह रो उठेगा इस स्पर्शकी असह्य वेदनासे—कैसे देखा जायगा ऐसा निष्ठुर दृश्य।

कितना भी निर्मम कर्म हो—उसके मङ्गलके लिए महर्षिको, भैयाको, भाभीको यह करना ही पड़ेगा। भूमिकी पूजा होगी ; किंतु धराको पाटल दलसे आच्छन्न नहीं रखा जा सकता, कोई आस्तरण नहीं। भूमि-स्पर्शमें मध्यका व्यवधान नहीं ही होना चाहिए। भूदेवी अपनेको सुकोमल ही कर सकती हैं, कोई व्यवधान वे भी प्रकट नहीं कर सकतीं। विधि-विधान सदा निष्ठुर होते हैं ; किंतु इनका पालन तो करना ही पड़ता है। मेरे लिए भी असह्य है वह दृश्य।

जानती हूँ कि वहाँ क्या हुआ होगा। मुझे कुवला भाभीने न भी बतलाया होता तो जानती हूँ। भाभीने कहा—'ननदजी ! तुम व्यर्थ भाग गयीं। महर्षिने ही कह दिया कि लालको भूमिका किञ्चित् स्पर्शमात्र कराना है, भूमिपर रखना नहीं है ; किंतु तुम्हारा यह भतीजा अभीसे बहुत चञ्चल लगता है। व्रजेश्वरीने बहुत सम्हाल कर इसे उठाया। उनके कर कम्पित हो रहे थे, अतः बड़ी जेठानीजीने सहारा दिया ; किंतु लालने अपना दक्षिण चरण पता नहीं कैसे छिटका लिया और उसे भू-स्पर्श कराया

नहीं गया। उसने स्वयं अपने उस पदसे भूमिका स्पर्श किया। तत्काल ही भगवान भुवन-भास्कर एवं निशानाथका स्तवन प्रारम्भ हो गया।'

'यह रोया नहीं ?' मैंने पूछा भाभीसे।

'यह तो अपने बड़े भाईको देखनेमें लगा था।' भाभीने कहा—'तुम देखती ही हो कि दाऊ इसे अब क्षण भरको छोड़ना नहीं चाहता और महर्षि भी उसे दूर हटाने लगो तो मना कर देते हैं। दाऊ तो चाहता था कि उसके इस छोटे भाईको उसके सामने भूमिपर धर दिया जाय और वह इससे खेले ! भगवान नारायण यह दिन भी शीघ्र दिखलावेंगे ; किंतु दाऊ कुछ कहने लगा था इससे और यह एकटक उसीकी ओर देख रहा था।'

वहाँ जैसे ही आचार्य-पूजन पूरा हुआ, द्वारपर घण्टा, शङ्ख आदिका गगनभेदी नाद उठा और नन्दन भैयाके धनुषसे बाण छूटा तो राहुकी पोटली चिथड़े हो गयी। अब मैं भागी भीतर—इतनी देर उस सुन्दरको देखे क्या बीती, लगता था कि सहस्रों युग ही बीत गये।

वहाँ मधुमङ्गल झगड़ रहा था मेरी छोटी बहिन सुनन्दासे और मुझे भी लगा कि वह ठीक झगड़ रहा है। सर्षप, सैन्धव लवण, निम्बपत्र, मरोड़फली, सर्पकञ्चुक, सम्हालू बीज, बच, कूट, बिल्वपत्रको कूटकर उसमें केवल गोघृत मिलाया गया था और यह धूनी दी जा रही थी वहाँ। इसका कटु धूम सुकुमार नवजातको क्लेश नहीं देता होगा ?

मधुमङ्गल कह रहा था—'इसे फेंक दो ! रोक दो यह। यहाँ अगुरु और गूगलकी धूप दो ! तुम्हें न मिले तो मैं ले आता हूँ।'

बेचारी सुनन्दा क्या करे। उसके भी सुन्दर नेत्र उस कटु धूमसे किञ्चित् अरुण हो आये थे ; किंतु वह उस धूनीमें भी अगुरु-गूगल मिला नहीं सकती थी। धाय मुखरा ऐसे समय किसीकी मानती नहीं। भगवती पूर्णमासीने भी कह दिया था—'नव-प्रसूता तथा शिशुके स्वास्थ्य, ग्रह-बाधा निवारणके लिये यही धूनी वहाँ दी जानी चाहिए।'

मधुमङ्गल चपल है। वह कहीं एक स्थानपर न बैठ पाता और न एक बातमें लगा रह सकता। उसे पुओं और बड़ियोंकी मालाने आकर्षित कर लिया। सब उसकी बात सुनकर हँस पड़े। मुझसे कहने लगा—'नन्दिनी बुआ ! बहुत अच्छी हो तुम ; किंतु कभी-कभी आवश्यक बात भी भूल

जाती हो। यह आज ही भूल गयी हो कि यहाँ मोदकोंकी भी माला लगायी जानी चाहिए। झटपट उसे लगाओ।'

'यह काला-काला अजापुत्र यहाँ क्यों ला बाँधा है?' मधुमङ्गलका ध्यान गया तो बोला—'भगा दो इसे यहाँसे। मेरे सखाके समीप इसका क्या काम? यहाँ कोई गौ नहीं बाँध सकते तो एक बछड़ा ही बाँध दो।'

वह उसे खोल ही देता; किंतु बकरेने उसकी ओर मुख बढ़ाया तो कूदकर दूर खड़ा हो गया यह ब्राह्मणका बालक। पता नहीं इसे डर लगा या बकरेको यह अस्पृश्य मानता है।

खूब मटका, खूब चिढ़ाया इसने अँगूठा दिखाकर प्रसूति-कक्षके द्वार-पर मूसल लिये खड़े कक्ष-रक्षकको। सब हम हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयीं। रक्षक भी हँसता रहा। यह कहता था—'महोदय! आप शीघ्र अपना यह मूसल लेकर यहाँसे भागिये! यह मेरी मैयाका भवन है और मेरा सखा भीतर सो रहा है। ये पुए मेरे हैं। आप नम्रता-पूर्वक माँगें तो यह बड़ियों-की माला मैं आपको कृपा करके दे सकता हूँ।'

अब मैं कब तक इसकी अटपटी बातें सुनती रहती। मुझे रोहिणी भाभीकी सहायतामें लगना था। भैया ब्राह्मणोंका सत्कार कर चुके थे और समागत गोपोंके सत्कारमें लगे थे। ब्राह्मण-पत्नियाँ सम्मानित पूजित होकर जाने लगी थीं; किंतु आज अपने सगे-सम्बन्धी सब आ गये हैं। उनका भी सत्कार किया जाना चाहिए।

मैं मैयासे कुछ कहने गयी तो चौंक गई। वहाँ तो सब गोप बैठे कोई मन्त्रणा कर रहे थे। कोई कह रहा था—'कंस बड़ा क्रूर है!'

'आज इस मङ्गलके अवसरपर इस कंसकी चर्चा क्यों?' मेरे मनमें धुकपुकी मची और मैं खड़ी-खड़ी सुनने लगी।

'कंसको किसीको भी अकारण कष्ट देनेमें कोई सङ्कोच नहीं होता। वह सिंहासनपर बैठनेके पश्चात्से वृष्णिवंशियोंका शत्रु हो गया है। किसी-न-किसी बहाने उन्हें उत्पीड़ित ही करता रहता है।' यह वृहत्सानुसे आये श्रीवृषभानुजी बोल रहे थे, यह मैंने सुन लिया।

'वह ऋषि-मुनियोंका, ब्राह्मणोंका विरोधी है। उसके अनुचर विप्रोंके आश्रम नष्ट करनेमें लगे हैं और गोकुलमें—इसके आस-पास बहुत अधिक ऋषि-मुनि इन थोड़े दिनोंमें आ बसे हैं।'

मेरा हृदय धड़कने लगा। अब क्या इन मुनियोंको आश्रय देना भी अपराध हो गया? भैया इन्हें विदा कैसे कर सकेंगे। ऋषियोंको चले जानेके लिये कोई भी कैसे कहेगा? वे यहाँ हैं, यह अहोभाग्य!

'कंसको यह सब विदित ही होगा। वह गोकुलसे प्रसन्न नहीं होगा; किंतु उसे कोई बहाना नहीं मिलना चाहिए। उसका वार्षिक कर उसे अवश्य देते रहना चाहिए।' मेरा हृदय यह सुनकर कुछ शान्त हुआ कि कंसने कोई उपद्रव नहीं उठाया है।

'अबतक तो मैंने राजाको कर देनेकी कभी चिन्ता ही नहीं की।' भैयाने कहा—'किंतु अब वह आ गया है, जिसके लिये चिन्ताकी जानी चाहिए। उसके जन्म-दिवसकी भेंट भी दी जानी चाहिए राजा को।'

'आपको और गोप-प्रमुखोंको भी स्वयं जाना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि कल प्रातः ही आप सब मथुरा जावें।' वृषभानुजीने कहा।

'सुना कि भाई वसुदेवजीको कंसने अब कारागारसे मुक्त कर दिया है। उनसे मिलना भी हो जायगा!' भैयाके स्वरमें उत्साह था।

'आप उनके भवन कहीं मत चले जाना अपनी देवकी भाभीसे मिलने।' वृषभानुजीने सावधान किया—'कंसके कुटिल मनमें पता नहीं कब क्या आवे। रोहिणीजी तथा उनके पुत्रकी सुरक्षाके लिये भी आवश्यक है कि आपका वसुदेवजीके साथ सम्बन्धकी दृढ़ता कंसकी दृष्टिसे सावधानी पूर्वक दूर रखी जाय। अतः आप सब पहुँचते ही पहिले उससे मिलें और उत्साह तथा सम्मान प्रदर्शित करते हुए उपहार अर्पित करें। वसुदेवजी स्वयं अवसर देखकर आपसे मिल लेंगे।'

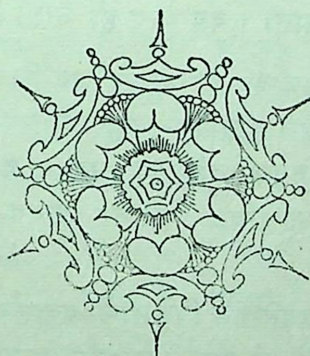
हम गोपोंमें कभी दो मत हुआ ही नहीं करता। जो बात एकके मुखसे निकली गयी, वही सबकी अपनी बात हो गयी। भैयाने उसी समय व्यवस्था प्रारम्भ कर दी कि कौन-कौन साथ जायँगे और कौन-कौन यहाँ रक्षाके लिये रहेंगे। भैयाने रक्षामें रहनेवालोंको सावधान किया—'सम्पूर्ण ऋषि-मुनियोंकी प्राणोंके समान रक्षा करनी है। महर्षि शाण्डिल्य तथा उनके अतिथियोंके आश्रममें कोई उत्पात् नहीं होना चाहिए।'

प्रत्येक आश्रम, गृह, गोष्ठके लिये नाम ले लेकर भैया रक्षक नियुक्त करके मुझसे बोले—'बहिन नन्दिनी! तुम भाभीसे कह दो कि हम सब

सबेरे ही मथुराके लिये छकड़े हाँक देंगे। राजाको देनेके लिये दही, गोघृत, नवनीतके भाण्ड सजा लिये जाने हैं अभी।

भैया रोहिणी भाभीसे मिलेंगे सही ; किंतु भला भाभीको अपने स्वामीके पास इस प्रकार कोई सन्देश कहाँ भिजवाना हो सकता है। दाऊका समाचार देना है, वह भैया स्वतः देंगे ही।

कदर्म कंसकी इस चर्चाने आजके मङ्गल-महोत्सवके आनन्दमें कुछ बाधा डाली। रात्रिभर गायन-वाद्यमें बीतना था, वह कंसकी चिन्तामें और उसके लिए उपहार चुनने, सजानेमें लगाना आवश्यक हो गया। सबको ही यह बात अखरी ; किंतु इसका उपाय कुछ नहीं था। मथुरा जो लोग जा रहे थे, उनके लिए कलका कलेऊ तथा भोजन भी बनाकर साथ देना था। अब ये लोग तो कहीं कल तीसरे प्रहर या शामतक लौटेंगे। कौन जाने कंसको सुबुद्धि आ जाय और वह दो-चार दिन रोक ही ले सत्कार करनेके लिए। वसुदेव भैया भी यदि सुविधामें होंगे तो सबको रोक ले सकते हैं। अतः मैं सबको सन्देश देने भीतर चली आयी।



पूतना-मोक्ष

यह सत्य है कि कालकी कलाका प्रभाव हम चारों भाइयोंपर नहीं पड़ता ; किंतु हमारे लिए भी सृष्टिमें ऐसे अवसर कम ही आते हैं जब हम नित्य अन्तर्मुख अपने स्वरूपमें अवस्थितोंको बाह्य-संसार अपनी ओर आकर्षित कर ले और वहाँ हमें आनन्द-उल्लास प्राप्त हो।

आनन्दैकमात्र अपना स्वरूप—इसमें मायाका आवरण तथा विक्षेप शक्ति सृष्टिका स्वप्न प्रस्तुत करती है ; किंतु स्वप्न तो अज्ञानी जीवोंके लिए है। जो जागृत हो चुका है, उसके लिए कैसा स्वप्न और कैसी माया; किंतु शरीर है तो प्रतीति भी है और प्रतीति तो बाधक या बन्धन-दातृ नहीं होती। वह तो अपना ही विनोद है।

कभी-कभी अद्भुत बात होती है, इस प्रतीतिमें, इस स्वप्नमें—इस सृष्टिमें कहो, वह इसका अनाम, अरूप, अचिन्त्य सच्चिदानन्द आधार स्वयं आ जाता है आनन्दधनैक श्रीविग्रह धारण करके और तब प्रतीति केवल प्रतीति नहीं रह जाती। वह धन्य हो जाती है।

अचिन्त्य, अतीन्द्रिय वह तुरीयतत्त्व जब चिदानन्दघन विग्रह बनकर इन्द्रियोंके सम्मुख अवतरित होता है—वह भले अपनी योगमायाका आश्रय लेकर ऐसा करे, माया जिनकी दृष्टिका आवरण बननेमें असमर्थ है, उनके लिये उसका यह साक्षात्-प्रत्यक्ष कितना उन्मद-आह्लादकारी है, वाणी वर्णन नहीं कर सकती।

हमारे लिए तो अपने इस पितृलोक—ब्रह्मलोकका ही काल कोई वस्तु नहीं है तो धराके कालकी तो हमारी दृष्टिमें कल्पना ही नहीं। क्षणार्ध भी हमको दूसरोंको समझानेके लिए ही बोलना है। अभी-अभीकी ही तो बात है जब नन्द-भवनमें सच्चिदानन्दघन इन्दीवर सुन्दर परम पुरुष अवतीर्ण हुए हैं।

धन्य योगमाया ! धन्य देवि तुम्हारा अपार प्रभाव ! सुर तो दूर, हमारे पिता सृष्टिकर्त्ता तक सम्मोहित हो गये ! अरे, कंसके कारागारमें

भगवान् अनन्तशायी अपने अंशसे आ ही रहे थे तो वहाँ इतने स्तवन, इतनी सुमन वृष्टि और वह भी तब जब उनके भी अंशी साक्षात् परम पुरुष पधार रहे थे ! सृष्टिकर्त्ताके लिए, भगवान त्रिपुरारिके लिए, सुरोंके लिए भी शेषशायी इतने अलभ्य और अलक्ष्य, अपरिचित तो नहीं हैं। वे सम्मान्य हैं, सम्पूज्य हैं, स्तोतव्य हैं ; किंतु जब सर्वेश्वरेश्वर स्वयं आ रहे हों—लेकिन देवी योगमाया जब किसीको यह देखने ही न दें !

हमसे ही सुरेन्द्रने उलटे पूछा —'आप सब देवर्षिके साथ नन्दभवनपर ही आज इतने उत्साहसे क्यों सुमनाञ्जलि अर्पित करनेमें लगे हैं ? वहाँ तो आद्या योगमाया पधार रही हैं ! आप तो शक्तिके सेवक नहीं हैं। आज भगवान त्रिपुरारि भी यहीं मस्तक झुका रहे हैं और आप सब इतने आनन्दमग्न हैं !

शक्रको उत्तर देनेका समय मुझे नहीं था। उस समय पुरुषोत्तमके पश्चात् आकर—उनकी अनुजा बनकर भी योगमायाने सुरोंतकको सम्मोहित कर लिया है और स्वयं अग्रजका आवरण बनकर आगे आ गयी हैं, यह मैं देख सकता था।

'ओह ! भगवान वासुदेवको लेकर वसुदेवजी गोकुल पधार रहे हैं !' इन्द्रको भी अधिक अवसर नहीं था। 'मुझे सेवा करनी चाहिए !'

सुरेन्द्र उस समय तीव्र वृष्टिमें संलग्न हो गये और वसुदेवजीके मार्गको इस प्रकार निष्कण्टक रखनेमें लगे। वे यह न भी करते तो भी देवी योगमाया तो थीं ही ; किंतु समय मिलनेपर जीव सेवा न कर पावे—अभाग्य उसका। सुरपति उचित ही कर रहे थे।

वसुदेवजी तकको तो योगमायाने देखने नहीं दिया कि वे जिस कुमारको लाये हैं, वह मैया यशोदाके पर्यङ्कपर पड़े अपने अंशीमें कितनी त्वरासे एक हो गया। वे तो योगमायापर दृष्टि पड़ते ही उसीको देखते रह गये।

देवताओंको तब नन्द-भवन स्तुति, पुष्पाञ्जलि प्राप्त करने योग्य प्रतीत हुआ, जब योगमायाको लेकर वसुदेवजीने मथुराका पथ पकड़ा। अब यह पूतना व्रजकी ओर चली है। हमारी दृष्टि तो इसका भूत-भविष्य दोनों वर्तमानमें ही देखती हैं, अतः यह हमारी प्रणम्य ही हैं।

श्रीहरिका स्वेदोद्भव है कल्पतरु। उन अनन्तशायीका ही स्वभाव एवं प्रभाव-छाया, इस क्षीरोदधि समुद्भव सुरतरुमें आयी है। दैत्यराज बलिने स्वर्गपर आधिपत्य भले कर लिया था; किंतु उनकी पुत्री रत्नमाला-पर यह रहस्य कहाँ प्रकट था।

बलिके अन्तिम अश्वमेध यज्ञमें भगवान वामन पधारे तो उनके आकार तथा उस आकारके अनुरूप सुकोमल नन्हें मुख, कर-चरण देखकर दैत्यराज-तनयाका वात्सल्य उमड़ पड़ा। वह बोल नहीं सकती थी। सब ऋत्विक्, आचार्य शुक्र तक अमित तेजस्वी वामनको देखते ही अपनी आवह्नीय अग्नियोंको हाथोंमें लेकर उठ खड़े हुए थे। उन प्रभा-प्रदीप्त अदिति-नन्दनका दैत्यराज स्वागत करने लगे थे। इतने सम्मानित बालकके सम्बन्धमें रत्नमाला कुछ भी कहती कैसे; किंतु उसका हृदय मचल रहा था—'यह सौन्दर्य-सिन्धु बालक! यह कहीं मेरी गोदमें आ पाता! मैं इसे अङ्कमें लेकर स्तनपान करा पाती! जननी भले नहीं बनी; किंतु मैं इसकी धात्री भी बन पाती तो धन्य हो जाती!'

धन्य तो हो गयी उसी क्षण रत्नमाला। उसके नेत्र बन्द हो गये और वह ध्यान करने लगी— उसके अङ्कमें वामन—बहुत छोटे बने शिशु हैं और उसने उनके मुखमें अपना स्तनाग्र दे दिया है!

कल्पवृक्षके नीचे जो कामना की जाय—वह उसे पूरी कर देता है। कल्पवृक्षमें जिसका स्वभाव एवं किञ्चित् प्रभाव आया, वे श्रीहरि स्वयं वहाँ बलिके यज्ञ-मण्डपमें उपस्थित थे। रत्नमालाकी कामनाको पूर्ण होनेमें कालकी ही प्रतीक्षा रह गयी।

कहीं वह शुद्ध कामना रह पाती—भगवान वामनने भूमिदानका सङ्कल्प बलिसे पाया और विराट् बन गये। दो पदोंमें त्रिलोकी माप ली उन्होंने और बलिके मस्तकपर तीसरा पद धर दिया। उन सर्वसमर्थके संकेतसे गरुड़ने बलिको वारुण पाशोंमें बाँधा—बड़ा कोलाहल, बड़ा हाहा-कार गूँजा। सहसा रत्नमालाका ध्यान भङ्ग हुआ। वह पिताको बन्धनमें देखकर झल्ला उठी—'हुंह! इसे मैं दूध पिलाऊँगी? इसे तो मैं विष दे दूँगी, मुझे यह मिल जाय तो!'

सुरतरु स्वभाव श्रीहरिने इसे—इस कामनाको भी उसी समय 'एवमस्तु' कह दिया। आसुर सङ्कल्प- बालकको विष देनेका सङ्कल्प, फलतः दैत्येन्द्र बलिकी तनया धरापर राक्षसी होकर उत्पन्न हुई और आज

वह अपने स्तनोंमें हलाहल विष लगाकर आ रही है अपनी कामना—दोनों कामनाएँ पूर्ण करने। यह परम पुरुषकी धात्री तो हो ही गई ! इन करुणा-सिन्धुके सम्मुख आकर, इनका स्पर्श करके किसीका कलुष बचा रहता है ?

रत्नमाला राक्षसी पूतना बनकर उत्पन्न हुई। इस दैत्येन्द्र तनयाका दुर्दम पराक्रम ; किंतु सर्वस्वरूप श्रीहरिको शिशु मानकर भी जो उनकी हत्याका सङ्कल्प करे, वह उसके अनुरूप स्वभाव ही तो लेकर उत्पन्न होती। पूतना शिशु-घातिनी है। रुधिराशना—शिशुओंका रक्तपान इसका व्यसन है। सब शिशु उन श्रीवत्सवक्षाके ही तो स्वरूप होते हैं। यह शिशु घातिनी क्रूर ग्रह है।

कंसने दिग्विजयके समय बुद्धिमानी की। पूतनासे मल्लयुद्ध करके उसे क्या यश मिलना था। उसने इसे बहिन बना लिया इसके दोनों भाइयों बकासुर और अघासुरको अनुचर बनानेके साथ।* अब यह कंसका कल्याण करती घूमती है। कंसको देवी योगमाया कह गयी हैं—'तेरा शत्रु कहीं उत्पन्न हो गया !' कंसके क्रूर मन्त्रियोंने उसे आश्वासन दिया कि दस दिनके और उससे छोटे सब शिशु हम मार देंगे। पूतनाने इस कार्यका भार अपने ऊपर लिया है। यह इसकी प्रिय-क्रीडा है।

पूतना स्वभावसे शिशु-घातिनी—इसे कंसने आग्रह-पूर्वक नियुक्त कर दिया इस कार्यपर और यह पिछले मानवोंके पाँच दिनोंसे अहर्निशि कंसके काल उस 'कहीं उत्पन्न' शिशुको मारनेके प्रयत्नमें ग्रामोंमें, नगरोंमें, पशु-पालकोंकी झोपड़ियोंमें शिशु-हत्या करती घूमती रही है। सहस्रों शिशु मारे इसने।

यह निसर्ग क्रूरा—माताओंका क्रन्दन इसे अट्टहास करनेकी प्रेरणा देता है। किसीके भी पुत्रोत्सवका मङ्गल-सङ्गीत इसे असह्य है। इसके नेत्र जल उठते हैं कहीं भी षष्ठी-पूजनका संवाद पाकर। इस मायाविनीको कोई भी कैसे रोकेगा। यह दिनमें बकी (बगुली) बनी घूमती है और रात्रिके अन्धकारमें उलूकी हो जाती है।

'मुझे आजकल अवकाश नहीं है। मेरे भाईका काल कहीं उत्पन्न हो गया है। वह बढ़ रहा है।' पूतना इन दिनों बहुत क्रूरा हो रही है। कब दिनमें कहीं कोई उज्ज्वल बकी किसीके प्राङ्गणमें उतरेगी अकस्मात् अथवा

---

* 'भगवान वासुदेव' में यह कथा पूरी गयी है।

रात्रिमें उलूकी आ कूदेगी, कोई नहीं जानता। पूतना किस शिशुको कैसे मार देगी, क्या कहा जा सकता है। वह पहुँचती है—मायाविनी राक्षसी! शिशु सहसा रक्तहीन होकर निष्प्राण हो जाता है। रक्त पी जाती है यह पिशाचिनी!

मथुराके सम्मुख ही कालिन्दीके दूसरे किनारे गोकुल है। पूतनाको पता है कि इस गोपोंके ग्राममें इन्हीं दिनों पुत्रोत्सवके वाद्य बड़े उत्साहसे बजे हैं; किंतु पूतनाकी एक विवशता है। वह बकी या उलूकी बनकर जब इधर उड़ना चाहती है, इसके पक्ष भारी हो जाते हैं। कारण यह क्या समझेगी, योगमायाका वैभव तो महामुनीन्द्रोंके लिए भी अगम्य है; किंतु इसने समझ लिया है कि गोकुलमें गगनके मार्गसे नहीं जाया जा सकता।

कल सायङ्काल गोकुलमें षष्ठी-पूजन हुआ। इतनी वाद्य-ध्वनि, इतना आनन्दोत्सव, इतना सङ्गीत! पूतनाके लिए यह असह्य था; किंतु उलूकी बनकर रात्रिको वहाँ पहुँचना सम्भव नहीं था उसके लिए। प्रातःकाल ही यह साधारण स्त्रीके रूपमें चल पड़ी है। इतना साधारण स्त्री-वेश? पूतना क्या करेगी?

यह तो आकर गोकुलमें सुनसानमें उपेक्षित पड़े एक पुराने शकटके नीचे छिप गयी है। इसे अभी यहाँकी गति-विधि देखनी है। यहींसे अनुमान करना है कि कलका उत्सव किस भवनमें हुआ और वहाँ इसके प्रवेशमें क्या बाधा आवेगी।

गोकुलमें सब ओर सशस्त्र रक्षक हैं। पूतना बकी या उलूकी बनकर आती तो अवश्य इनके बाणोंका लक्ष्य बन जाती। आज ये किसी अपरिचित पक्षी तकको उतरने नहीं देंगे। इनकी दृष्टि बचाकर किसी भी घरमें प्रवेश पाना कठिन है।

पूतनाको अनुमान नहीं करना पड़ा। जहाँ पुत्रका षष्ठी महोत्सव हुआ, वहाँ तो अब भी सङ्गीत चल रहा है; किंतु उस भवनमें बहुत भीड़ लगती है। गोप चले गये मथुरा सबेरे ही। अब गोपियोंको अपने घरोंमें बहुत कम काम है। षष्ठी हो गयी। नन्दरानीका नन्हा लाल सूतिका-गृहसे बाहर आ गया। अब उसका आकर्षण उसका सान्निध्य छोड़कर घरमें कोई कैसे टिकी रहे?

'सबसे छिपकर प्रवेश-पानेका कोई पथ नहीं। सबके सम्मुख ही जाना पड़ेगा।' पूतनाने निश्चय किया और यह बेचारी निश्चय करनेवाली

कौन है। इसकी नियति—इसे जिसने कभो 'एवमस्तु' कहा था—वह तो इसके भी अन्तर्यामी रूपमें बैठा इसे प्रेरित कर रहा है।

छि: ! यह क्या किया इसने ? इस मायाविनी राक्षसीने तो साक्षात् लक्ष्मीका स्वरूप धारण किया है। यह पत्नीका रूप बनाकर स्तनपान करावेगी धात्रीके समान और मारना चाहेगी ? पापात्मा मायावियोंको मर्यादाका कहाँ किञ्चित् भी ध्यान रहता है।

इसका यह काञ्चन गौरवर्ण, विशाल लोचन, अत्यन्त क्षीण कटि, मल्लिका माल्य गुम्फित मेचक कुन्तल राशि और इसके ये माया-निर्मित रत्नाभरण ! देवी अब्धि जा देखें इसे तो वे भी चकित हो उठेंगी यह रूप देखकर ; किंतु इसे उनका शील कैसे प्राप्त होता ? इसने केवल सुना है कि कमला चपला हैं। अब इसके खञ्जन दृगोंका यह कटाक्षपात, यह भ्रू-निक्षेप, यह सहास्य सबकी ओर देखना—यह तो वेश्याके समान भाव-भङ्गी बनाने लगी है। केवल हाथमें कमल लेकर उसे लीलापूर्वक नचाने मात्रसे तो कोई रूपवती नारी पद्मजा नहीं हो जाती।

गोप और गोपियाँ स्वभावसे सरल हैं। इनके यहाँ सुराङ्गनाओंका आ जाना इधर सामान्य बात हो गयी है। रक्षक तो इस राक्षसीका रूप देखकर इसे श्रद्धापूर्वक सिर झुका ही रहे थे, गोपियाँ भी सम्भ्रम सहित मार्ग देने लग गयीं। सबके मुखपर एक ही बात—'हमारी व्रजेश्वरीके अङ्कमें लगता है कि श्रीनारायण ही पधारे हैं। ये देवी लक्ष्मी अपने पतिका दर्शन करने आयी होंगी।'

यह तो सीधे नन्द-भवनमें प्रविष्ट हो गयी है ; किंतु भगवान संकर्षणने इसे देख लिया है ! क्या करेंगे ये अनन्त ? नहीं, ये कुछ नहीं करेंगे। अपने अनुजका पलना पकड़कर अभी खड़े थे और इसे देखते ही पलना छोड़कर दूर हटकर बैठ गये हैं। ये केवल देख रहे हैं कि यह करती क्या है। पूतनाका ध्यान इनकी ओर नहीं है। उसे तो नवजातसे प्रयोजन है और अभी अग्रजकी ओर देखकर जो मन्द-मन्द हँस रहे थे, उन्हें इतनी शीघ्र निद्रा भी आ गयी ? अपने लोचन बन्द कर लिए इन्होंने ! धन्य लीलामय !

'तुझे शिशुको पालना आता भी है ?' पूतनाने पहुँचते ही यशोदाजी-को डाँटना प्रारम्भ किया—'कभी तूने शिशु पाला है ? इतना सुकुमार

है यह कि रो भी नहीं पाता और तू नहीं देखती कि इसका उदर कितना पिचक गया है। गड्ढा हो गया है उदर! कितना क्षुधातुर है लाल !'

यशोदाजीनें, रोहिणीने और दूसरी गोपियोंने हाथ जोड़ लिए हैं। सब समझती हैं कि ये ज्योतिर्मयी कोई देवी आयी हैं। अब देवीको भला कोई क्या कहेगी। देवी शिशुको अङ्कमें लेती हैं तो इनकी कृपा।

पूतनाने उठाकर अङ्कमें लिया कृत्रिम स्नेह दिखलाते हुए और बालकके मुखमें अपना हालाहल विष लिप्त स्तनाग्र दे दिया। ये दाऊ हँस पड़े हैं और ताली बजाकर हँसनेका तो हम चारोंका चित्त कर रहा है। यह मूर्खा राक्षसी —अरे, अमृत और विष जिस क्षीराब्धिसे उत्पन्न होते हैं, उसमें ये नव-जलधर सुन्दर शयन करते हैं अपने अंशसे। क्षीराब्धि-मन्थनसे पूर्व भी तो शेषशायी वहीं सोते थे। वह सागरोद्भव हलाहल तो शिवका कण्ठ भूषण हो गया। सृष्टिका समस्त विष उसके कुछ सीकर हैं और तू उन्हीं सीकरोंका किञ्चित् अंश स्तनाग्रमें लगाकर इन्हें मारने आयी है ? इनके स्मरणसे महामायाका मोह-विष उतर जाता है। काल सर्प सीधा हो जाता है इनका नाम लेनेसे ; किंतु तूने तो इन्हें विष देना चाहा था— इन्हें दुग्धपान कराना चाहा था—तेरी कामनाएँ इन वाञ्छा कल्पतरुको पूरी करनी हैं।

दाऊ ताली बजाकर, सिर हिलाकर हँस पड़े हैं। उनके अनुजको यह अच्छी धात्री मिली। मैया यशोदा चौंकी हैं– 'ये देवी दूध पिला रही हैं ?'

हम चारों ही हँस उठे हैं—सम्पूर्ण प्राणियोंको रज्जुमें सर्पका, विशुद्ध चेतनमें दुःखमय संसारका भ्रम होता है ; किंतु पूतनाको प्राणहारी सर्पमें ही रज्जुका भ्रम हो गया है। वह अपने कालको ही शिशु समझकर अङ्कमें उठा चुकी है।

'अरे छोड़ ! छोड़ दे मुझे !' अब इस चीत्कार और हाथ-पैर पटकनेसे लाभ ? श्रुति कहती है और हम सब साक्षी हैं कि इन श्रीकृष्णको छोड़ना नहीं आता। कोई इन्हें पकड़ ले—ये स्वयं अपनी ओरसे निर्गुण निर्लेप हैं ; किंतु कोई इन्हें पकड़नेको हाथ उठाता है—पकड़नेकी इच्छा करता है तो ये उसे आगे बढ़कर पकड़ लेते हैं और जिसे पकड़ लिया, वह तो इनका हो गया। अब छोड़नेकी पुकार व्यर्थ !

पूतनाकी चीत्कार - वह ऐसे चिल्लायी है जैसे वज्रपात हुआ हो। गोपियाँ, गोष्ठ रक्षक सब उसके इस अकस्मात् क्रन्दनसे एक बार भूमिपर गिर पड़े हैं। पूतना तो वहाँसे दौड़ पड़ी है हाथ फेंकती, पैर पटकती।

इस नन्दनन्दनको अङ्कमें भी उठाओ और मायारूप भी बना रहे ? इसके स्पर्शमें भी माया टिकेगी ? पूतनाका वह लक्ष्मी रूप तो पलक मारते महा-भयानक राक्षसी रूपमें बदल गया है। लेकिन वह वहाँ पलभर टिकी होती तब तो उसे कोई रोकता। उसने तो शिशुको अङ्कमें उठाया, उसके मुखमें स्तनाग्र दिया और राक्षसी रूप लेकर चीत्कार करती भागी।

पूतनाके नेत्र फटे-फटे हो गये हैं। केश बिखरे हैं। शरीर स्वेदसे भीग गया है। वह हाथ-पैर पटकती रो रही है—चिल्ला रही है और भाग रही है—उछल-कूद रही है—यह कहना अधिक उपयुक्त है।

पूतना राक्षसी है। वह आकाशमें उड़ सकती है ; किंतु यह तर्क तो कोई स्वस्थ बैठा महापण्डित ही करेगा। पूतनाकी शक्ति, बुद्धि, प्राण तो यह उसके वक्षसे चिपका शिशु पिये जा रहा है। इसने दोनों करोंसे उसका वक्ष पकड़ लिया है और पी रहा है—पीता जा रहा है। पूतनाके रोने-चिल्लाने, उछलनेका इसे जैसे कोई पता नहीं। यह पी रहा है—पूतनाके दूधके साथ उसके प्राण पी रहा है।

पूतनाका अङ्ग-अङ्ग फटा जा रहा है। उसके मर्म-स्थल विदीर्ण हो रहे हैं। वह छटपटा रही है, चिल्ला रही है ; किंतु अपने हाथ उठाकर वक्षसे चिपके इस शिशुको नोचकर फेंक देनेमें भी असमर्थ हो गयी है। उसके कर ऊपर उठते ही नहीं हैं और उसकी यह अनवरत चीत्कार—पक्षी चिल्लाते उड़ने लगे हैं। पशु दिशाओंमें दूर भागते जा रहे हैं। गोकुलमें सबको लगता है कि भयङ्कर शब्दसे कर्ण कुहर फट जायँगे। फट जायगा हृदय और मस्तक। सबके सब दोनों करोंसे कर्ण बन्द करके, नेत्र मूंदकर बैठ गये हैं जहाँके तहाँ।

पूतना छटपटाती भागी है—भागती गयी है और गोकुलसे दूर—पर्याप्त दूर अपने महाराज कंसके उपवनमें गिर पड़ी है। वह कंसका फलोद्यान—इस राक्षसीकी विशाल कायाके नीचे वह पूरे छः कोसका उद्यान पिस गया है। उसके वृक्षों, शाखाओं, तनोंका अब कहीं पता नहीं। उनको खण्ड-विखण्ड करके तो उनपर हाथ-पैर फैलाकर यह पूतनाका महाशरीर प्राणहीन पड़ा है।

पूतनाका यह मृत देह भी दर्शन करने योग्य है। इसकी केश-राशि किञ्चित् अरुण दीर्घकाय सर्पोंके समूहके समान फैल गयी है चारों ओर और इसके फटे-फटे नेत्र मानों अन्ध-कूप हों। इसके खुले, फैले विकराल मुखमें बड़े-बड़े भयङ्कर उज्ज्वल दाँत—कालकी कराल दाढ़ें इनसे कम भयङ्कर होती हैं। ये पूरे बाण जितने लम्बे दाँत। इसके दिशाओंमें दूरतक फैले कर-चरण जैसे ऊँचे बाँध चले गये हों और इसका उदर भारी जलहीन ह्रद लगता है।

इस भयङ्कर कज्जल-कृष्ण पर्वताकार राक्षसीके वक्षपर दो पर्वत-शिखरके समान स्तन हैं और यह इसका मृत देह इसीलिए दर्शनीय है कि उन दोनों स्तनोंके मध्य एक नन्हा सुकुमार नीलज्योतिर्घन शिशु पड़ा है। वह अब अपने कंज-करोंसे इसके स्तनोंको थपथपाता है और उनमेंसे ही एक पर मस्तक रखकर अब सो जानेका उपक्रम करने लगा है। यह त्रैलोक्य-मङ्गल शिशु—इसके दर्शनके लिए इस राक्षसीका देह दर्शनीय हो गया है।

'हाय! लालको ले गयी!' मैया यशोदाके मुखसे चीत्कार निकला और वे गिर पड़ीं मूर्छित होकर।

'राक्षसी ले गयी लालको!' माँ रोहिणीने पुकारा और दूरतक वे भी दौड़ नहीं सकीं। वे भी दो पद दौड़कर मूर्छिता हो गयीं।

'राक्षसी ले गयी हमारा लाल!' गोपियाँ चिल्लाती दौड़ीं और दौड़ती गयीं।

'राक्षसी नन्दलालको ले गई!' गोकुलके रक्षकोंने भी सुना—वे भी दौड़े; किंतु गोपियाँ तो पुकारती दौड़ती ही जा रही हैं। रक्षक इधर-उधर देखते जाते हैं।

'राक्षसी लाल ले गयी!' गोपियोंको न शरीरका स्मरण है, न अपनी शक्तिका। इनके केश बिखर गये हैं, वस्त्र गिर गये हैं उत्तरीयके; किंतु इनकी तो पूरी शक्ति पदोंमें आ गयी है। ये पुकारती दौड़ रही हैं—दौड़ती जा रही हैं। आज इनकी गतिकी तुलना नहीं है।

'वह गिरी राक्षसी!' भारी धमाका हुआ और गोपियोंकी गति उत्साहमें बढ़ गयी। इन्होंने तो सोचा भी नहीं था कि इतनी महाकाय राक्षसी मिल भी गयी तो ये उससे कैसे अपने नन्दलालको छीन पावेंगी; किंतु राक्षसी गिर गयी।

'वह रहा लाल !' किसीने राक्षसीके शरीरको नहीं देखा। वे उसे रौंदती चढ़ती चली गयीं और अपने सुकुमार युवराजको लेकर वैसे ही पीछे भागीं। उन्हें भय था कि राक्षसी उठकर उनसे कहीं फिर इस शिशुको छीन न ले !

कुछ बहुत अधिक शीघ्रतासे दौड़ीं—'लाल मिल गया ! हमारा नन्हा युवराज सकुशल है।'

'लाल मिल गया !' पुर-रक्षकोंने दूरसे देख लिया और वे रुक गये। उन्होंने गोपियोंको पुरमें आ जाने दिया, फिर शस्त्र सम्हाले और प्रत्येक गलीपर सन्नद्ध धनुष चढ़ाये खड़े हो गये—'अब आवे राक्षसी या उसके सहायक ! हम एक बार इसके रूपसे धोखा खा चुके ! अब व्रजराजके आनेके पूर्व कोई देवी-देवता यहाँ नहीं आने देंगे !'

हमारी इच्छा तो हुई थी कि हम इस समय इन नन्दनन्दनके चारु चरण स्पर्श कर आवें; किन्तु पुर-रक्षकोंका निश्चय पवित्र था। हमने गगनमें ही रहकर इस छटाको देखते रहना उचित माना।

'मैया ! मैया ! मेरा सखा सकुशल है।' मधुमङ्गलने मैया यशोदाको हिलाना-पुकारना प्रारम्भ किया।

'माँ ! मेरा सखा आ रहा है।' रोहिणीजीको इसने सचेत कर दिया।

'भाभी ! यह लाल आ गया तुम्हारा।' सुनन्दाने यशोदाजीको दोनों हाथोंका बल लगाकर उठा दिया।

'कहाँ है ? कहाँ गयी राक्षसी ?' यशोदाने अर्धमूर्छितावस्थामें ही पुकारा।

'राक्षसी मरी पड़ी है।' सुनन्दाने झकझोरा—'नेत्र खोलो ! यह रहा अपना नीलमणि !'

'सचमुच !' यशोदाजी उठीं भी तो फटे-फटे नेत्रोंसे देखने लगीं। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह सुकुमार सकुशल लौट आया है।

'तनिक रुको ?' जेठानी तुङ्गीने कहा—'यह राक्षसीकी गोदसे आया है। इसकी रक्षा कर लेने दो।'

गोपियोंके वात्सल्यकी महिमा अपार है। जो अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों-का अधीश्वर, सबका शाश्वत संरक्षक है, उसकी ये रक्षा कर रही हैं। यह गोपाल बनकर आया है तो गौयें रक्षा करें इसकी। गोपुच्छ घुमाई शिशुके सर्वाङ्गपर और फिर गोमूत्रसे स्नान करा दिया। गायोंके खुरोंसे खुन्दित धूलि उठाकर पूरे शरीरमें मल दी।

गोमूत्र स्नात, सर्वाङ्ग गोधूलिकी कीच लगी इन नन्दनन्दनकी यह छटा—अब तो ये भगवती पूर्णमासी आ गयी हैं। इन्होंने अब विधि-विधान सम्हाल लिया है। इन्होंने कहा है—'तुम सबने उस राक्षसीके शवका स्पर्श किया है। पहिले अपने कर-पद-प्रक्षालन करो और आचमन करके स्वयं अङ्ग-न्यास तथा कर-न्यास करो।'

गोपियोंको आज्ञापालन बहुत अच्छा आता है। हमें तो हँसी आ रही है। इनकी—इन सर्वरक्षककी रक्षा की जा रही है। गोपियाँ अब इनके ही नामोंसे इनके सर्वाङ्गकी रक्षा कर रही हैं। इनके अङ्गोंमें भगवन्नामोंका न्यास हो रहा है। इनकी रक्षा - इनके नाम ही तो हैं जो आपत्तिमें पड़े आर्तप्राणीकी रक्षा करते हैं। तब ये नाम इनकी भी रक्षा करें।'

'अब तुम इसे लो !' भगवती पूर्णमासीने अब मैयाके अङ्कमें दिया है उनका शिशु।

'यह मुझ अभागिनीके हाथसे तो चला ही गया था।' मैया अब एक-एकके पदोंपर रखने लगी है पुत्रको—'यह तुम्हारी कृपासे सुरक्षित आया है। तुम्हीं इसकी माता हो। तुम इसे आशीर्वाद दो !'

'यशोदा ! तुम पहिले इसे दूध तो पिलाओ।' इसकी छोटी तायी पीवरी ठीक कहती हैं—'यह राक्षसीकी गोदसे लौटा है। उसका दूध पिया है इसने। तुम्हारा दूध पीने लगे तो हम सबको सन्तोष हो कि शिशु स्वस्थ है।'

मैयाने अङ्कमें लेकर अञ्चलकी ओटमें कर लिया है इनका मुख और लो—ये तो मैयाका दूध इतने प्रेमसे पीने लगे हैं, जैसे पूतनाका पय तो केवल क्षुधा-वर्धक पाचक मात्र बना इनके लिए। अब ये तो दूध पीते-पीते सो जायँगे।

उधर वे छकड़े चले आ रहे हैं मथुरासे। व्रजराज और उनके साथके गोप छकड़ोंको दौड़ाते आ रहे हैं। मथुरामें वसुदेवजीने कह दिया है—

'गोकुलमें उत्पात हो रहे हैं, यहाँ अधिक मत रुको' और इन सब लोगोंको गोकुल पहुँचनेकी बहुत शीघ्रता है।

'यह क्या है ?' गोपोंने दौड़ते वृषभोंको रोका—'इतनी भयङ्कर राक्षसी ! यह यहाँ ऐसे पड़ी है ?' अनेक लोग छकड़ोंसे उतर पड़े।

'यह तो पूतना है, कंसकी मुँह बोली बहिन !' पहिचान लिया एक वृद्धने—'यह प्रसिद्ध बाल-घातिनी यहाँ ? यह तो मरी पड़ी है।'

'यह गोकुलकी ओरसे ही आयी है।' गोपोंने इधर-उधर देखकर पद-चिह्न पा लिए—'अनेक गोपियाँ यहाँ तक आयी हैं ; किंतु सब लौट गयी लगती हैं।'

'श्रीवसुदेवजी अवश्य योगीश्वर होंगे।' व्रजराज भरे कण्ठ बोले—'उन्होंने कहा था कि गोकुलमें उत्पात है और यह उत्पात तो प्रत्यक्ष है। श्रीनारायण मङ्गल करें !'

'यह गोकुलसे बहुत दूर नहीं है।' उपनन्दजीने कहा—'इस भाद्रपदकी उष्णतामें शव शीघ्र सड़ता है। यहाँ सड़ेगी तो गोकुलमें हम सबका रहना असम्भव हो जायगा। इसे आज ही दग्ध कर देना आवश्यक है।'

'इसे उठाना तो सम्भव नहीं है।' अभिनन्दने कहा—'गोप समीपके खड्डोंमें काष्ठ एकत्र करें। अपने यहाँके अन्त्यज इसे कुठारोंसे काट-काटकर एक-एक अङ्ग-खण्ड उठाकर उन खड्डोंमें डालकर अग्नि-दग्ध कर देंगे।'

यही व्यवस्था सम्भव थी। तरुण गोपोंने अपने कुठार उठाये और आस-पासके शुष्क काष्ठ काटने, खड्डोंमें डालनेमें लग गए। बहुत-सा काष्ठ राक्षसीके शरीरसे भी टूटकर गिरा था। वह भी इसको जलानेके काममें आ ही सकता था।

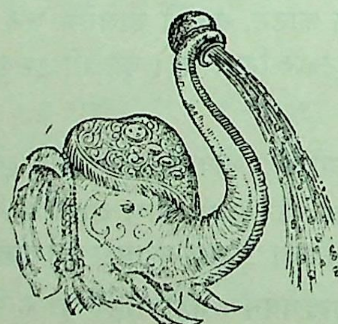
श्रीनन्दराय भाइयों तथा गोप-प्रमुखोंके साथ छकड़ोंमें बैठे। अन्त्यजोंको भेजना था यहाँ शीघ्र और सबके प्राण अटके थे—'गोकुलमें क्या हुआ ? इस राक्षसीने वहाँ क्या किया ? वह सुकुमार शिशु तो सुरक्षित है ?'

सीधे सब आये नन्दभवन। यहाँ पहिले ही सुन लिया कि गोकुलका वह प्राण-धन सुरक्षित है, सो रहा है मैयाका दूध पीकर। अब महर्षि शाण्डिल्यको बुलाकर रक्षा करानी है, स्वस्ति-पाठ, ग्रह-शान्ति करानी है और पुत्रकी रक्षाके उपलक्षमें दान करना है—बहुत अधिक गोदान करना है व्रजपतिको।

अब ये गोकुलवासी आश्चर्य क्यों कर रहे हैं कि इतनी अपूर्व सुरभि कहाँसे आ रही है ? यह आ रही है खड्डोंमें जलते पूतनाके खण्डशः किये गये शरीरसे । पूतना राक्षसी सही, रक्तपापिनी सही, शिशुघातिनी सही ; किंतु श्रीकृष्णने इसके वक्षपर अपने चारु-चरण रखे, इसकी छातीपर लेटे रहे, इसका पय-पान किया इन साक्षात् परमपुरुष पुरुषोत्तमने ।

ये नन्दनन्दन युग-युगकी साधनाके पश्चात् भी कहीं कठिनाईसे किसीके मानसमें एक पलको प्रकट होते हैं और जहाँ—जिस अन्तःकरणमें इनकी वह मनःकल्पित मूर्ति भी पलभरको प्रकट होती है, वह परमपावन हो जाता है । उसकी पद-रज महापापियोंको भी पुनीत कर देती है । पूतना-के वक्षपर तो ये स्वयं खेलते रहे हैं । पूतनाका दूध पिया इन्होंने । वह कैसे आयी, क्यों आयी, कैसी थी—यह चर्चा व्यर्थ है । इन तक पहुँचने वाला कैसे भी पहुँचा हो, भुवन-पावन हो जाता है । पूतनाका शरीर केवल सौरभ-घन नहीं हुआ, यह सुरभि अब दिशाओंकी अमङ्गल-ध्वंसिनी हो गयी है ।

पूतना—रत्नमाला इनकी धात्री बनना चाहती थी । उसे इन्होंने धात्री बनाकर अपने परमधाम भेज दिया । वह तो अब इन परमपुरुषकी भी वन्दनीया हो गयी । हम तो इन पूतना-परित्राताके पादपद्मोंमें ही प्रणाम करते हैं ।



दुग्ध-पान

नाम तो मेरा प्रभावती है; किंतु ऊँची कायाके कारण मुझे ससुरालमें सब तुङ्गी कहने लगे और अब तो यही मेरा नाम हो गया है। नारीका अपना नाम-रूप क्या। हम तो पतिको अर्पिता होकर उनसे एक हो जाती हैं। रूपपर आवरण-घूंघट डाल लेती हैं। उसे जब वे उठावें तब उठे और नाम वह जो कहकर पतिगृहके सम्मान्यजन पुकारने लगें। लेकिन आज मुझे अपने देवरके कुमारके नामकी बात कचोट रही है। मैं उसकी बड़ी तायी हूँ। मेरा ऋषभ दाऊसे दो ही दिन तो छोटा है; किंतु वह ग्यारह दिनका हुआ, तभी उसका नामकरण हुआ था।

दाऊका ही अबतक नामकरण संस्कार नहीं हुआ। उसका हो गया होता तो आज नन्दनन्दनके नामकरणका हम महोत्सव मनाते। परसों रोहिणी रानीने कहा भी था—'इसका नामकरण हो जाना चाहिए।'

यह बात मेरे देवर नन्दराय स्वीकार नहीं कर सकते थे। एक ही घरमें रहकर—घरकी स्वामिनी रोहिणी रानीके पुत्रको पराया बनाया जा सकता है? बड़े भाईका संस्कार नहीं हुआ तो छोटेका पहिले कैसे हो जायगा।

मथुरा बड़ी नगरी है और वहाँ कंस जैसा क्रूर-कुटिल राजा है। कोई बड़ा ही कारण होगा कि वसुदेवजीने कहला भेजा—'रोहिणी-नन्दनके किसी संस्कारमें शीघ्रता न की जाय।' अब तो जब दाऊका नामकरण होगा, तभी इस नन्हें नीलमणिका भी होगा। अब तो इसके केवल वे आवश्यक संस्कार ही होने हैं जो दाऊके हो चुके हैं। जिनको टाला नहीं जा सकता।

मैं पूरी रात नामकरणकी ही उधेड़-बुनमें उस रात रह गयी और भूल ही गयी थी कि सबेरे ही मेरा यह नवयुवराज पलनेमें पौढ़ेगा। बड़े सबेरे मुखरा मेरे समीप आ गयी और उसने कहा—'बड़ी रानीने प्रार्थना की है कि आज आप शीघ्र आ जायँ और आजके उत्सवकी व्यवस्था, गोपियोंका सत्कार सम्हाल लें।'

'क्यों !' मैं तो चौंक ही गयी—'बड़ी रानी आज व्यवस्था क्यों नहीं सम्हालेंगी ?'

'वे आज लालको झुलाना चाहती हैं।' मुखराने यह कहकर मेरे मनका भार उतार दिया। मैं तो पता नहीं क्या-क्या सोचने लगी थी। रोहिणी रानीके रहते नन्द-भवनकी व्यवस्था दूसरी कोई भला क्यों सम्हालेगी ; किंतु वे बड़ी हैं—हम सबकी ही सम्मान्या हैं। यह लाल उनका—उनका स्वत्व सर्वोपरि। आज यह प्रथम बार पलनेमें पौढ़ेगा, तो उनका हृदय अवश्य उमड़ेगा। वे इसे झुलाना चाहती हैं—उनका वात्सल्य इसे सर्वप्रथम मिलना ही चाहिए।

महर्षि शाण्डिल्यकी पूजा-विधियोंमें शिशुके द्वादश दिनका होनेपर होनेवाली यह शेषशायी श्रीनारायणकी पूजा मुझे सबसे सुन्दर लगती है। पूरा प्राङ्गण जल-प्रवाहके मार्गोंको अवरुद्ध करके गो-दुग्धसे भर देना और उस क्षीराब्धिके प्रतिरूपके मध्य भगवान अनन्तशायीकी झाँकी।

महर्षिने गणपति, नवग्रह, योगिनी, कलशादिकी पूजा कराके आवरण देवताओंकी पूजा करायी। कितने सौभाग्यसे यह दिन आया कि मैं देवरको अङ्कमें अपने लालको लिए श्रीहरिकी पूजा करते देख सकी ! युग-युग जीवे लाल ! भगवान नारायण इसपर सदा सुप्रसन्न रहें ! मेरे रोम-रोमसे जो आशीर्वाद निकल रहा था, वही तो रजत श्मश्रु, वलीपलितकाय, तेजोमूर्त्ति, तपस्वी ऋषि-मुनियोंने दुहराया सस्वर सामगान तथा श्रीहरिका स्तवन करनेके अनन्तर।

आकाशमें देववाद्य बजते रहे और हमारा नन्दभवन बाहर-भीतर वाद्योंसे, शङ्ख-ध्वनिसे, वेद-पाठसे और गोपियोंके गानसे गूँजता रहा। पुष्पोंकी वर्षासे प्राङ्गण पट गया था।

सच कहूँ—मैंने स्वप्नमें भी न क्षीरसमुद्र देखा है, न उसमें अनन्तशायी हरिकी झाँकी पायी है। कोई अभिलाषा भी मनमें नहीं है। महर्षिने नन्द प्राङ्गणमें जो पूजनके लिए श्रीहरिका प्रतिरूप बनाया था, क्षीराब्धिके मध्य, वह बहुत सुन्दर था ; किंतु मेरे नेत्र सफल हो गये, मेरे सम्मुख जन्म-जन्ममें बस यह शोभा बसी रहे ! मेरे नन्दलालके पलनेमें पौढ़ने की शोभा। इससे अधिक सुन्दर न क्षीराब्धि हो सकता है और न उसके अधिष्ठाता।

शुभ्र रजत-पालना और उसमें स्फटिक, हीरक लगे हैं। मुक्ताओंकी झालरें लटक रही हैं। पद्मराग, पुष्पराग, वैदूर्य, इन्द्र नीलमणि आदिके खिलौने, शुकसारिकादि तो लगते हैं कि क्षीराब्धिपर रङ्ग-बिरंगे पक्षी उतर आये हैं और इसके दुग्धोज्वल मृदुल आस्तरणपर यशोदाने अब अपने लालको मन्त्र-पाठ, पुष्पवृष्टिके मध्य लिटा दिया है। इस नन्हेंसे नीलमणिके लिए पलनेका ही यह पयोधि पर्याप्त है। अब यह इसपर किलकेगा, अपने कोमल अरुण कर-पद उछालेगा !

महर्षिने तो पलनेकी, रज्जुकी और खिलौनोंकी भी पूजा करायी है। विप्रगण स्वस्ति-पाठ कर रहे हैं और गोपोंमें तो आज मेरे इन देवरके बड़े भाई तक नाचने लगे हैं। अब मुझसे कैसे रहा जायगा और मैं रहना भी चाहूँ तो ये देवरानियाँ मुझे बैठे रहने देंगी। मैं नाचूंगी—जीभर कर नाचूँगी। बधुयें क्या नाचेंगी मेरे साथ—मेरी जन्म-जन्मकी साध पूरी हुई है। मेरे देवरका लाल पलनेमें किलक रहा है मेरे सम्मुख, मैं क्यों बैठी रहूँ।

यह मधुमङ्गल हमारे मध्य ताली बजा-बजाकर कूद रहा है और दाऊ दोनों कर भूमिपर टेके, पलनेकी गतिके साथ अपना सुन्दर मस्तक आगे-पीछे करता झूम रहा है।

हम सब नाचती-नाचती थक गयीं ; किंतु रोहिणी रानीको आज किसीकी सुधि नहीं है। ये पलनेकी रज्जु क्या पा गयीं — सारे संसारको ही भूल गयी हैं। कुछ गा रही हैं—कोई लोरी गा रही हैं और वह भी इतने मन्द स्वरमें, मानों आसपास यह महोत्सव हो ही नहीं रहा है। मानों उनकी लोरी पलनेमें पौढ़ा सुकुमार सुन रहा है। ये तो तन्मय, पुलकित तन, परमानन्द मग्न मन गा रही हैं और इसे देख रही हैं।

यह नन्हा सुकुमार भी न खिलौने देखता है, न हममें-से किसीको और न अपने अग्रजको। यह भी अपनी बड़ी माँको देख-देखकर किलक रहा है, अपने कर उठाता है, चरण उछालता है, मानों कुछ कह रहा हो अपनी इन माँसे। हम सब हैं कि चाहती हैं—नाचती, थिरकती आती हैं समीप, स्नेहसे चुमकारती हैं कि यह तनिक देख ले हमारी ओर ; किंतु आज यह अपनी बड़ी माँमें मग्न है और बड़ी माँ इसमें मग्न हैं।

× × ×

नन्दनन्दन आज इकतीस दिनका हो गया। आज इसे गो-दुग्ध पिलाया गया है। आजका यह महोत्सव—आज तो श्रीहरिने ही मेरी लज्जा रख ली। मुझसे यशोदाके सम्मुख ही सबेरे देवरानी पीवरीने पूछा था—'व्रजके युवराजको दूध कौन पिलावेंगी?'

मेरे मुखसे निकलने ही जा रहा था—'इसकी धात्री बननेका स्वत्व मेरा है।'

श्रीनारायणने मेरी जिह्वापर सरस्वतीको ही बैठाया होगा कि मेरे मुखसे निकल गया—'समयपर ही निश्चय हो जायगा।'

किसके मनमें नहीं है। गोपियोंने मेरा सङ्कोच किया, यह अच्छा ही हुआ। सबकी ही साध है, मैं अपने ही मनसे जानती हूँ कि कितनी साध थी मेरे मनमें; किन्तु कह बैठी होती तो कितने बड़े सौभाग्यसे वञ्चित हो जाती। मेरी साध तो सहस्रगुना करके नारायणने पूरी कर दी।

'व्रजेश्वरी! मुझे अपने पुत्रकी धाय तो बना लेना!' एकने भी मेरा सङ्कोच तोड़कर कह दिया होता तो फिर सब कहतीं और बेचारी यशोदा बहुत बड़े असमंजसमें पड़ जाती। मुझे पीवरीसे ही भय था। वह मेरी बड़ी देवरानी है, हँसमुख है और मनमें आयी बातको झट मुखसे कह देती है। वह अभी मेरे पैर पकड़कर हँसकर कह गयी है—'जीजी! तुमने मुझे बचा लिया। मैं तो कहने जा रही थी कि तुम अपने देवरके लालकी धाय मुझे बना लो; किंतु यह सोचकर रुक गयी कि तुम बड़ी हो। तुमसे स्पर्धा करना मुझे शोभा नहीं देगा।'

महर्षि शाण्डिल्यके आदेशसे कामदाको तीन दिनसे केवल दूध पिलाया जा रहा था। एक लक्ष कपिला गौयें औषधीय तृणोंपर रखी जा रही थीं। उनका दूध सहस्र कपिलाओंको पिलाया जाता था। एक शत-पद्मगन्धा कपिला उन सहस्रका दूध पीती थी। नन्दरायकी उत्तम-सर्वलक्षण सम्पन्ना दस धेनुओंको इन सौका दूध पिलाया जाता था और कामदा तीन दिनसे इन दस उत्तम पद्मगन्धा गायोंके दूधपर ही पल रही थी। यह कामदा है भी तो सुर दुर्लभा नीलोत्पल गन्धा कामधेनु। हमारा नीलमणि दूसरी सामान्य गौका दूध प्रारम्भमें ही कैसे पीता।

कामदाके चारों स्तनोंसे प्रभातसे ही अखण्ड दूधकी धारा झरने लगी थी। गोप तो कहते हैं कि उनके गोष्ठोंमें आज सब गायोंके स्तनोंसे दूध

झर रहा था। अब सब मन्दिरोंमें मुख्य देवताका ही नहीं, उनके परिकर-पार्षद सबका सहस्राभिषेक करो, या अखण्डधारा-स्नान कराओ उन्हें दूधसे।

भगवती पूर्णमासी सबेरे नन्दभवन पधारीं तो उनके करोंमें छोटा-सा दक्षिणावर्त शङ्ख था। इतना सुन्दर, इतना उज्ज्वल शङ्ख भी होता है? मैं भगवतीके समीप जाकर देखने लगी थी कि शशिका यह सहोदर है अथवा शशि इसके खण्डसे बना है?

हम सबने ही समझा था कि भगवती आज कुमारको दुग्ध-पान करानेके लिए यह शङ्ख प्रसाद स्वरूप देने लायी हैं। मैंने नेत्रोंसे संकेत भी किया यशोदाको तथा रोहिणी रानीको भी कि भगवती जिसे शङ्ख दे देंगी, वही कुमारको दुग्ध-पान करायेगी। यह संकेत स्पष्ट था और सबको स्वीकार था। सबकी दृष्टि उस शङ्खपर और भगवतीपर लगी थी; किंतु भगवतीने हम सबमें-से किसीकी ओर ध्यान नहीं दिया। वे किसीके मुख-को ओर देखतीं तो उसका भाव उसके साभिलाष नेत्र तत्काल कह देते; किंतु भगवतीने किसीकी ओर देखा ही नहीं। वे तो आयीं और आकर उन्होंने नन्दनन्दनको अङ्कमें उठा लिया। उसे अङ्कमें लेकर, हम सबकी ओर लगभग पीठ करके पूर्वाभिमुख बैठ गयीं लालका सिर दक्षिण किये।

'व्रजराज! यह तुम्हारे युवराजकी धात्री बैठी है!' भगवतीने कहा और हम सब धन्य-धन्य हो गयीं। हमारे नवयुवराजकी ये जगदम्बा—जगद्धात्री स्वयं धात्री बनेंगी! हमको यह अवसर मिलता—कितनी तुच्छ बात थी!

'इस शङ्खका पूजन करो व्रजराज!' भगवतीने आदेश किया—'मुझे दूध दो इसमें। मेरा लाल दुग्ध-पान करेगा।'

देवर नन्दरायने भगवतीके पदोंपर मस्तक रख दिया और मस्तक रखा यशोदाके साथ हम सबने। इतना सम्मान, इतना सौभाग्य गोकुलका—गोकुलके इस नन्हें युवराजका। हम सबको लगा कि हमें चारों पुरुषार्थ एक साथ प्राप्त हो गये। साक्षात् योगमाया हमारे इस लालकी स्वयं धात्री बन रही हैं।

सबके-सब ऋषियोंके कण्ठ भी भर आये। केवल महर्षि शाण्डिल्यके कण्ठका मन्त्रपाठ स्पष्ट, सुस्थिर चल रहा था। उन सर्वज्ञको पहिलेसे यह पता होना आश्चर्यकी बात नहीं है। वे उस शङ्खका मार्जन करने लगे।

कामदाके स्तनोंसे तो प्रातःसे दूध झर रहा था ; किंतु बछड़के पिये बिना तो गौका दुग्ध शुद्ध नहीं हो पाता। कामदाका उसके दुग्धके समान उज्ज्वल बछड़ा सौष्ठव बहुत चञ्चल है। वह बार-बार पकड़कर लानेपर भी माताके स्तनोंसे मुख ही नहीं लगाता था।

सब देवताओंका पूजन हो गया था। अग्निदेवको आहुतियाँ प्राप्त हो गयीं। कामदाका और सौष्ठवका भी पूजन हो गया तथा शङ्खका भी। यशोदाने भगवती पूर्णमासीके श्रीचरणोंकी भी सविधि पूजा की। आचार्यका अर्चन हो गया और उन्होंने आशीर्वाद दे दिया। मेरे सबसे छोटे देवर नन्दनजी नवीन वस्त्राभरणोंमें सजे, स्वर्णदोहनी लिए गोदोहनको प्रस्तुत थे ; किंतु सौष्ठव जब कामदाके स्तनोंको मुख लगावे। वह तो अपने गलेमें पड़ी मुक्तामाल तथा पुष्पमालको सिर हिला-हिलाकर झुलाता कूदनेमें लग गया था। बार-बार भगवती पूर्णमासीके समीप आकर लालका सिर सूँघनेका प्रयत्न करता था और 'एें' करके कूद जाता था।

सम्भवतः बछड़े भी बालकोंकी ही बातें अधिक समझते हैं। मेरे दोनों देवर सौष्ठवको दूध नहीं पिला पा रहे थे। मधुमङ्गल उठा और बोला—'चल ! तू दूध पी। मेरी बात नहीं सुनेगा तो दाऊ तेरे कान पकड़ेगा !'

'दूध ! दूध !' दाऊ भी समझ गया लगता था। वह उठा और मधुमङ्गलके पास खड़े सौष्ठवके समीप आ गया। उसे भी लगता था कि यह बछड़ा दूध पी ले तो उसके छोटे भाईको दूध मिलेगा। दाऊने हाथ उठाये बछड़के कानकी ओर।

भगवती पूर्णमासीके इस अवधूतकी बात सभी पशु समझते हैं। सौष्ठव कूद गया अपनी माँके समीप। उसने कामदाके चारों स्तनोंमें मुख लगा दिया, इतना पर्याप्त है।

कामदाका धारोष्ण दूध भगवान नारायणको अर्पित हुआ और भगवती पूर्णमासीने शङ्खमें वह दूध लिया। नन्दनन्दनका मस्तक किञ्चित् उठाकर भगवतीने अत्यन्त मधुर स्वरमें कहा—'लाल ! यह पद्म-मधु मिश्रित श्रीहरिका प्रसाद धारोष्ण दूध है। तू तनिक पी ले इसे।'

यह नन्हा नीलमणि भगवतीके ही श्रीमुखको कबसे देख रहा था। वे भी तो इसके मुखसे दृष्टि नहीं हटा पा रही थीं। लेकिन अब भगवतीने शङ्ख

उठाया तो इसे सम्भवतः उज्वल शङ्ख बहुत आकर्षक लगा होगा। दोनों कर उठाकर शङ्खको पकड़नेका प्रयत्न करने लगा और किलकने लगा।

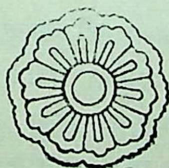
मुझे जन्म-जन्म यह शोभा नहीं भूलेगी। नन्हें नीलमणिके लाल-लाल छोटे ओष्ठ, किलकता दन्तहीन खुला छोटा-सा मुख, शङ्ख पकड़नेको उत्सुक इसके दोनों उठे लाल-लाल हाथ। भगवतीने इसके अधरोंसे शङ्ख सटाया और एक विन्दु गिरा दिया दूध इसके मुखमें। हाथ पैर हिला-हिलाकर यह दूधका वह विन्दु चाटने लगा। कितनी अद्भुत शोभा है।

महर्षिका स्वस्ति-पाठ, मुनियोंका सामगान, गोपोंका शङ्खनाद, पुरुषोंके कण्ठकी सोत्साह जयध्वनि, गोपियोंका गान—सबमें मानों शतगुणित शक्ति आ गयी। मधुमङ्गल तालियाँ बजाकर नाचने लगा है।

यह लो—इसने अन्ततः शङ्खको हिला ही दिया है। इसके मुखमें, तनिक नासिकापर, चिबुकपर पड़े उज्ज्वल दूधकी यह छटा। यह तो मधुर दूधको चाटनेमें मग्न हो गया है और आनन्दसे किलक रहा है।

भगवती पूर्णमासी दक्षिण करमें शङ्ख उठाये एकटक इसकी ओर देख रही हैं। उनका शरीर अब कम्पित होने लगा है। मैंने आगे आकर नम्रतापूर्वक उनके हाथोंसे वह शङ्ख ले लिया।

मुझे लगता है कि वह शङ्ख अब भी मेरे हाथोंमें है और भगवती पूर्णमासीके अङ्कमें लेटा नीलसुन्दर अपने अधरपर, चिबुकपर दूधकी उज्ज्वल छटा लिए, दूध चाटते मेरी ओर देखकर अब हाथ उठा रहा है—किलक रहा है।



श्रीधर विप्र

मैं कुख्यात असुर-गुरु हूँ। मुझे शौर्य और प्रबल उद्योग प्रिय है। मनमें भोग-वासनाएँ लिए दुर्बल देह कापुरुषोंसे मुझे घृणा है। सुकुमार काया स्त्रियोंको ही शोभा देती है। जिसकी क्रोध-भरी हुंकार प्रतिपक्षको कम्पित नहीं कर सकती और जिसकी वज्रदेह प्रकृतिकी झंझा नहीं झेल पाती, उसे विजयश्री कभी वरण नहीं करती। ऐसे दुर्बलोंको दिया गया आशीर्वाद व्यर्थ होता है।

क्या हुआ कि असुर उद्धत होते हैं। जिनकी बाहुमें बल है, जिनके प्राणोंमें प्रबल ऊर्जा है, वे नियमोंमें आबद्ध कैसे रह सकते हैं। उनके पद अपने प्रहारसे पर्वतोंको फोड़कर पथ बनावेंगे। पुरानी पतली पगदण्डियोंपर वे क्यों चलें? मैं ऐसे महाप्राणोंको आशीर्वाद देता हूँ।

मैं ग्रह हूँ—सबसे तेजस्वी और मानव-शरीरके सप्तम धातुका अधिष्ठाता। मुझे कला प्रिय है; किन्तु पराक्रमसे स्थापित शान्तिमें कला पनपती है। कम्पित हृदय, क्षीणकाय, अल्पप्राण, अशान्त, भयभीत लोगोंको कलाकी न परख हो सकती, न कला उनके यहाँ आश्रय लेती। दूषित दुर्गन्धिमें किलबिलाते काम-कीट क्या जानें कि कला होती क्या है!

मैं नीति-शास्त्रका प्रणेता, शिक्षक और सञ्जीविनी विद्याका एक-मात्र आचार्य—सुरगुरु बृहस्पति मुझसे स्पर्धा रखते हैं। मुझे भी वे उचित प्रतिस्पर्धी लगते हैं।

मैं ब्राह्मण हूँ; किंतु मानधनी ब्राह्मण। नारायणके भी वक्षपर पाद-प्रहार करनेवाले भगवान भृगुका वंशज। मुझे ब्राह्मणका प्रज्वलित तेज प्रिय है। विराट् पुरुषके मुखसे उत्पन्न ब्राह्मण! सुप्रसन्न ब्राह्मणका आशीर्वाद समृद्धिका स्रोत और क्रुद्ध ब्राह्मणका शाप हाहाकार करा देने-वाला प्रलयवाड़व न हुआ तो ब्राह्मणत्व व्यर्थ है।

मैं ब्राह्मण श्रीधरपर प्रसन्न हुआ था। उसने उचित निर्णय किया था सुरासुर जयी कंसका पौरोहित्य स्वीकार करके। अपने यजमानकी श्रीवृद्धि-

के लिए उसके अभिचारानुष्ठान उचित थे। अन्ततः भगवान चन्द्रमौलिके श्रीमुखसे प्रकट तन्त्रोंके ये अनुष्ठान अकारण तो नहीं हैं। मानता हूँ कि ये हालाहल विषके समान हैं; किंतु विशिष्ट भिषक् क्या जो अत्युग्र विषको अमृत न बना सकता हो।

कंसमें बल, विक्रम, ओजस्विता थी और थी प्रबल महत्वाकांक्षा जो मुझे प्रिय है। बुझा-शान्त मानस मेरे प्रतिस्पर्धी सुरगुरुको ही श्रेयस्कर लग सकता है। मैं महत्वाकांक्षासे उद्दीप्त पुरुषको आशीर्वाद देता हूँ। श्रीधरने उचित यजमानका पौरोहित्य स्वीकार किया था। लोग उसे असुर-विप्र कहें; किंतु वह मुझे प्रिय था।

श्रीधरमें विप्रत्व—प्रदीप्त ब्रह्मतेज होता—मैं उसका समर्थन करने, साथ देने आवश्यकता होनेपर धरापर भी आ सकता था; किंतु उसने मुझे निराश कर दिया। वह तो हीनसत्व सिद्ध हुआ। वह नाममात्रका ब्राह्मण रह गया, जब उसने कंसका आदेश स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण आज्ञा देता है, आज्ञा-पालन शूद्रका स्वभाव है। मुझे अत्यन्त अरुचि है सम्पन्न-शक्तिमान यजमानोंके आज्ञापालक विनीत सेवक-प्राय ब्राह्मणोंसे।

आज्ञा भी कैसी? कंसने कहा कि श्रीधर गोकुल जाकर नन्हें नन्द-नन्दनको मार दे और श्रीधरने शिशु-हत्याका यह कुत्सित कार्य स्वीकार कर लिया! उसमें साहस नहीं आया कि कंसको कठोरतापूर्वक मना कर देता। वह भी क्या ब्राह्मण जो प्राण-भयसे काँपे अथवा कायिक सुख-सुविधा जिसे क्रीत-सेवक बनाकर कुकृत्यमें लगा सके।

कंसकी नीतिज्ञतामें दोष नहीं था। वह अपने शत्रुको किसी भी प्रकार नष्ट कर देनेकी मेरी उपदिष्ट नीतिका ही आचरण कर रहा था। गोप, गोपियाँ परम श्रद्धालु हैं। श्रीधरका वे विप्र होनेके कारण सम्मान ही करेंगी, यह कंसने ठीक सोचा था। श्रीधर कुछ अनुचित भी कर बैठे तो उसपर गोप हाथ उठानेका साहस नहीं करेंगे, यह भी कंसका विचार असङ्गत नहीं था।

श्रीधरके सोचनेकी बात थी। राजा सोचे और आदेश दे तो उसका पालन सेवक करेगा। राजा अपनी समस्या सुनाकर उससे उबर आनेका उपाय पूछे तो पुरोहित मार्ग-निर्देश करेगा। पुरोहित स्वयं तब यजमानके पक्षमें सक्रिय होता है, जब यजमानकी सब शक्तियाँ असमर्थ हो जायँ।

कंसके सब असुर जीवित थे और श्रीधर स्वयं आज्ञापालक सेवक बनकर चल पड़ा ! छिः ! मेरी सहानुभूति उससे समाप्त हो गयी उसी क्षण ।

ब्राह्मण शाप दे सकता है, शस्त्र उठा सकता है, समय ही आ पड़े तो अभिचार कर सकता है ; किंतु अपकर्म, पापकर्म, ब्राह्मणके वशकी बात नहीं होनी चाहिए। श्रीधरने शिशु-हत्याका सङ्कल्प स्वीकार किया और अपने ब्राह्मणत्वसे-ब्रह्म-तेजसे च्युत हो गया। अब इस असुर ब्रह्मबन्धुके समीप कोई भी दिव्य सहायता पहुँचा कैसे सकता था ?

भगवान नारायणसे मैं सृष्टिके प्रारम्भसे ही परिचित हूँ। मेरा दुर्भाग्य कि मुझे अपने यजमानोंका समर्थन करना पड़ता है और वे श्रीहरिके विरोधी हैं ; किंतु उन अनन्तशायीका स्नेह है मुझपर— यह मैंने बार-बार अनुभव किया है। अन्ततः सिन्धु-सुता मेरे आदि पूर्वज पितामह भृगुकी पुत्री हैं। वे मेरी बुआ ही होती हैं। मैं हृदयसे हरिका श्रद्धालु हूँ—सेवक हूँ—भले भगवान भवानीनाथ मेरे आराध्य हैं।

अब यह गोकुलमें जो इन्द्रनीलमणि नन्दनन्दन है, यह नित्य अविनाशी सर्वकलामय—मैं कोमल कलाका अधिदेवता होनेके कारण इसका अनुचर हूँ। मैं नीतिका निर्देशक होनेके कारण इस निखिल नीति-निर्धारकका अनुगामी हूँ और जहाँ तक मेरे ग्रह होनेकी बात है इसके शत्रु-स्थानमें मैं उच्चके अपने परममित्र शनिके साथ स्वगृही बैठा इसे सुख, स्वास्थ्य, सुयश तथा सब सुविधाओंको देनेमें सदा सावधान रहूँगा। श्रीधर अभागा इसका विरोधी बनकर मेरे साथ बैठे शनिकी दृष्टिका भोग बन गया तो मुझे उससे क्यों सहानुभूति होने लगी।

श्रीधर गोकुल आया। वह बड़े आडम्बर-पूर्वक महापण्डित बनकर आया था। वैसे उसमें पाण्डित्य पर्याप्त था और प्रयोजन होने पर पाखण्डको मैं अनुचित नहीं मानता ; किंतु सरल-श्रद्धालु गोपोंके यहाँ आनेमें इतनी बनावट अनावश्यक थी। श्रीधर बड़ी भारी पगड़ी पहिने, भाल-बाहु, वक्ष, उदर आदिपर भस्मका उज्वल त्रिपुण्ड लगाये, बड़े-बड़े रुद्राक्षके दानोंकी मालाओंसे कण्ठ, भुजदण्ड, कलाई आदि अलंकृत किये आया। वह शाक्त ; किंतु शाक्त अपनेको समाजमें तो नैष्ठिक शैव प्रदर्शित ही करते हैं, इसमें भी श्रीधरका कोई दोष नहीं था।

गोप सब वैष्णव हैं—श्रीनारायणके अनन्य आराधक ; किंतु भगवान् भूतनाथमें सबकी श्रद्धा है। श्रीधरको जो भी मिला, उसीने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। श्रीधरने भी पूरे आडम्बर-सहित आशीर्वाद दिया।

नन्दरायने अपनेको कृत-कृत्य माना कि ऐसे नैष्ठिक शिवभक्त विद्वान ब्राह्मण उनके अतिथि हुए। श्रीधरकी सविधि पूजा की उन्होंने। अपने भवनके भीतर ले गये।

यशोदाको सदा एक ही धुन रहती है—उसके लालको सबका आशीर्वाद मिलना चाहिए। उस श्रद्धालु सीधी महिलाके साथ भी छल करनेमें श्रीधरको कुछ सङ्कोच होता तो मैं उसे सावधान कर देता ; किंतु वह तो मेरा भी कोप-भाजन हो गया जब कुटिलतापूर्वक उसने नन्हें नन्दतनयको आशीर्वाद दिया और मनमें सोचने लगा कि वह इस शिशुको सरलतापूर्वक कण्ठ-पीडन करके मार देगा।

श्रीधरने दूध, दधि, नवनीतका नैवेद्य अस्वीकार कर दिया। वह कहने लगा—'मैं एकाहारी हूँ और स्वयं नैवेद्य प्रस्तुत करता हूँ। सर्वथा एकान्त चाहिये मुझे। आराध्यके अर्थ अग्निपर चढ़े पात्रपर भी किसीकी दृष्टि पड़ जाय तो नैवेद्य अपवित्र हो जाता है।'

श्रीधरको एकान्त कक्ष देनेमें कोई असुविधा नहीं थी ; किन्तु अत्यन्त श्रद्धालु श्रीयशोदा उस कक्षको स्वयं स्वच्छ करके गोमयोपलिप्त करने लगीं। देवी रोहिणी स्वयं जल लेने गयीं यमुनासे अतिथिके नैवेद्य बनानेके लिए और दासियोंको कह दिया—'कोई भी इन परम सम्मान्य विद्वानके समीप जाकर इनके एकान्तमें बाधक न बने!'

'शिशुको मेरे समीप ही रहने दो!' श्रीधरने साग्रह कहा था—'मैं इसके कल्याणके लिए कुछ जप एवं स्तोत्र पाठ करूँगा!'

इससे अधिक भला यशोदाको और क्या प्रिय हो सकता था। वे तो दाऊको भी उठा लायीं और वहीं बैठा गयीं। उन्होंने आग्रह किया—'इस दूसरे बालकको भी आप आशीर्वाद दे दें।'

अज्ञ श्रीधर! वह प्रसन्न हुआ कि अपने महाराजका पूरा कल्याण करनेका अवसर उसे प्राप्त हो गया ; किंतु उसके नेत्र फटे-फटे हो गये! वह चीत्कार भी नहीं कर सका। उसने ऐसा भी कुछ सम्भव है, यह तो स्वप्नमें भी सोचा नहीं था।

माताके जाते ही श्रीधर इस एकान्तका लाभ उठा लेता, यदि उसे अवसर मिलता ; किंतु वह नन्हा शिशु श्रीधरसे अधिक स्फूर्तिमय सिद्ध हुआ। वह अपने पलनेसे उठा। आश्चर्य में पड़ गया श्रीधर ! वह कुछ कर सके, सोच सके, इससे पूर्व तो उसका कण्ठ कस गया उन किसलयाधिक प्रतीत होते अत्यन्त छोटेसे करमें और दूसरा कर श्रीधरके मुखमें डालकर जिह्वा खींचकर स्वर नली मसल दी गयी।

पलके झपकते विलम्ब होता है, उस अद्‌भुत शिशुको यह सब करते विलम्ब नहीं हुआ। दूसरा कोई वहाँ होता भी तो लगता कि उसे भ्रम हुआ है पलक गिरानेमें। ब्रजेश्वरीका लाल तो अपने पलनेमें पड़ा कर-चरण उछाल-कर किलक रहा है ; किंतु श्रीधर इसे कैसे भ्रम मान ले, जिसका कण्ठ पीड़ासे फटा जा रहा है और वाक्-शक्ति सदाको लुप्त हो गयी है। सम्पूर्ण शरीर पीड़ासे, भयसे स्वेद-स्नात हो गया है।

दाऊ सिर हिलाकर, ताली बजाकर हँस रहा है और उठ खड़ा हुआ है। श्रीधर भागा—भागता चला गया। उसे पीछे मुड़कर देखनेका भी साहस नहीं हुआ यमुनाके पार जाने तक। 'छोटे भाईने—पलनेमें पड़े अबोधने तो यह दुर्गति कर दी और अब उसका बड़ा भाई उठ खड़ा हुआ !' श्रीधरको लगा कि यह बड़ा अब उसके प्राण नहीं छोड़ेगा।

'क्या हुआ ? क्या हुआ इन विप्रवरको ?' गोपोंने भागते श्रीधरको देखा तो चौंके, पुकारा ; किंतु श्रीधरका साहस था कि किसीकी पुकार सुननेको उसके पद रुकते ?

'क्या हुआ ? वे अतिथिदेव इतने भयातुर क्यों भागे ?' नन्दरायका रोष उचित है ; किंतु यशोदा उन्हें क्या उत्तर दें। उन्हें तो कुछ भी पता नहीं है और उन ब्राह्मण देवताके समीप शिशुओंको छोड़कर तो कोई था नहीं।

दाऊ हँस रहा है। संकेत कर रहा है। इसे उस ब्राह्मणका दौड़ना बहुत प्रिय लगा है ; किंतु इसकी ओर इस समय कोई कैसे ध्यान दे और दे भी तो क्या समझेगा ?

नन्दराय, यशोदाजी, रोहिणी देवी—सब बहुत चिन्तित हैं। अतिथि ब्राह्मण इस प्रकार आहार-ग्रहण किये बिना चला गया, यह बहुत अशुभ

लगता है इनको। साहस नहीं होता कि महर्षि शाण्डिल्यसे कह सकें यह घटना।

देवी पूर्णमासी—उन वात्सल्यमयीसे नन्दरायने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे सब सुनाया—'अब मैं कौन-सा प्रायश्चित्त करूँ ? वे अतिथिदेव तो सुना मथुरा-की ओर चले गये।'

नेत्र बन्द किये भगवतीने। वे योगमाया—मन्द स्मित आया उनके अधरोंपर ! आश्वासन दे दिया—'चिन्ता मत करो ! तुम्हारे लालका दर्शन करके ही वे अतिथि कृतार्थ हो गये। अब उन्हें किसीका आतिथ्य कभी आवश्यक नहीं होगा।'

सचमुच श्रीधर कृतार्थ हो गया। वह कंसका कल्याण करने आया था ; परन्तु उसका अपना कल्याण तो हो ही गया। नन्दनन्दनका स्पर्श प्राप्त करके अविद्या तथा अविद्यासे उत्पन्न हिंसा-दम्भ, क्रूरता, कुटिलतादि सब समाप्त हो गये। श्रीधरकी वाक्-शक्ति गयी ; किंतु उसके अन्तरके नेत्र निर्मल हो गये। उसका अन्त:करण उज्वल हो गया।

श्रीधर अब बोल नहीं सकता। वह लिखकर जो कुछ कहेगा, कंस उसे भीरु ब्राह्मणका मतिभ्रम मानकर उपहास करेगा ; किंतु अब कहाँ श्रीधरको कंसका पौरोहित्य करने मथुरा रहना है। वह तो अब सद्बुद्धि पा चुका। तपोवन जाकर तप करेगा। ब्राह्मणके लिये उचित पथ अपनाया उसने। अब उसे मेरा आशीर्वाद—कल्याणमस्तु !



शकट-भञ्जन

किसीके लिये और कभी भी क्रोध करना उत्तम नहीं है। क्रोध दुर्गुण है, अन्तःकरणको कलुषित करता है। यह अविद्याका कार्य अपने आवेशके समय मुझसे महर्षिकी भी सद्बुद्धिको सुप्त कर देता है। शाप देनेसे तपका नाश हो जाता है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है; क्योंकि तपका परम फल स्वर्ग अथवा सिद्धि मुझे लेना नहीं। तप मेरा स्वभाव है और उसके लिए मेरे समीप अनन्त काल है; किंतु कोई अज्ञानी, अबल जीव अपने कारण दुःखी हो गया, यह क्लेश अन्तरको अशान्त बनाये बिना कैसे रहेगा।

दैत्यराज हिरण्याक्षका पुत्र उत्कच बहुत स्थूलकाय था और उसे अपने इस सुपुष्ट महाकाय होनेका अहङ्कार भी बहुत था। बात चाक्षुष मन्वन्तरके प्रारम्भ की है; किंतु मेरे लिए तो कल्पोंका ही काल क्षणोंके समान है। मन्वन्तरोंकी गणना मैं कहाँ कर पाता हूँ। उत्कच मेरे आश्रममें आ गया और मदान्ध होकर उसने आश्रम-वृक्षोंसे अपना शरीर रगड़ना प्रारम्भ किया। उसे देह-कण्डू दूर करनेके लिए वनमें कहीं वृक्ष ही नहीं मिले? मेरे आश्रमके बहुतसे वृक्ष उसने गिरा दिये शरीर रगड़ कर।

इन वृक्षोंको मैंने लगाया था, सींचा था, स्नेहपूर्वक पाला था। इनसे अवश्य मुझे राग हो गया था, तभी तो इनके गिराये जानेसे मुझे रोष आ गया। मैंने शाप दे दिया—'दुर्बुद्धि! देहका तुझे इतना गर्व हो गया है? देह-रहित हो जा!'

राग-रोष दोनों दौर्बल्य हैं और दुःख देते हैं। वह बेचारा दैत्य तो तत्काल मेरे पदोंमें गिरकर रुदन करने लगा; किंतु अब शाप तो मैं दे चुका था। मैंने उसे कह दिया—'वैवस्वत मन्वन्तरके द्वापरान्तमें श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श पाकर तू मुक्त हो जायगा।'

स्थूलदेह मैं उसे दे सकता नहीं था। देहके बन्धनसे सदाको ही मुक्त कर देना श्रीहरिकी अनुकम्पापर निर्भर है। मैं उनका चरणाश्रित—उनकी ही निजजन-वत्सलतापर विश्वास करके आशीर्वाद दे सका था।

मेरे लिए मन्वन्तरव्यापी काल नगण्य है ; किंतु सामान्य जीवके लिए यह समय बहुत बड़ा होता है। एक ऐन्द्रियक भोगोंको ही सर्वस्व माननें वाला दैत्य शरीरसे —स्थूल शरीरसे रहित होकर कितना दुःखी होगा, समझ सकता हूँ। वायु-शरीरी उत्कचपर मुझे दया आती है। अब वे दीनबन्धु, अनाथनाथ धरापर अवतीर्ण हो चुके हैं। मुझे अदृश्य रहकर उनके दर्शनका लाभ उठानेमें कोई कठिनाई नहीं है। मेरे शापसे उत्कच वायु-शरीरी है तो उसको विमुक्तिका प्रार्थी होकर मुझे भी अदृश्य देहीके रूपमें ही उपस्थित होना चाहिए।

उत्कचका कंसपर स्नेह है। हिरण्याक्षके पुत्रका अनुराग असुर कालनेमिपर हो, स्वाभाविक है। कंस बहुत चिन्तित है। उसे अब इस सम्बन्धमें कोई अनिश्चय नहीं है कि उसको मारने वाला कहाँ उत्पन्न हुआ है। जिसने पूतनाके प्राण अधरोंसे ही पी लिये, कंसको उसे पहिचाननेमें क्या कठिनाई होनी है ; किंतु अपनी मृत्युके सम्मुख कोई भी समझदार स्वयं कैसे जायगा।

कंसने श्रीधर विप्रको भेजा, काकासुरको भेजा और दोनों असफल होकर, आहत होकर गोकुलसे लौट आये। दोनों ही कंसको त्यागकर चले गए।

वह असुर काक तो मेरे आश्रममें आ गया है। उसने सुन रखा था कि काकभुशुण्डि मेरे शिष्य हैं, अतः सद्बुद्धि आनेपर उसे मेरी शरणागति सूझी है। वह थोड़ा विश्राम कर ले तो उसे काकभुशुण्डिके समीप भेज दूँगा। पक्षीके लिए पक्षी गुरु ही उचित है।

काकासुरको कंसने भेजा था। बड़े उत्साहसे गया था यह। इसने मुझे निष्कपट सब सुना दिया है। सोचा था इसने—'नन्दभवनपर कहीं भी बैठे रहनेमें कठिनाई नहीं है। वह शिशु ही तो है कंसका काल। अकेला मिलेगा पालनेमें तभी यह उसके कण्ठपर अपनी वज्र-चोंचका भरपूर प्रहार कर देगा। एक आघात पर्याप्त है।'

यह गोकुल गया और नन्दभवनपर इसे देरतक बैठना भी नहीं पड़ा। काकके लिए दो क्षणका अवसर पर्याप्त था ; किंतु उड़कर उस यशोदा-स्तनन्धयके समीप पहुँचा तो उसीने अपने नन्हे, सुकुमार करसे इसके पंख पूँछ सहित पकड़ लिये और इसे घुमाकर फेंक दिया। सीधे मथुरामें कंसके सिंहासनके सम्मुख ही यह गिरा।

श्रीकृष्णका स्पर्श मिला इसे और सद्बुद्धि आ गयी । समझ गया कि क्रूर उद्योग भले असफल हो गया ; किंतु जीवन सफल हो गया । कंसकी समझमें इसकी बात आनेवाली नहीं थी । कंस इस काकके कहनेसे तो श्रीकृष्णकी शरण जानेसे रहा । यह मथुरा त्यागकर मेरे पास आ गया है । अब उस सौन्दर्य, सौकुमार्य, आनन्द शिशुका स्पर्श अन्तरमें बस गया है । उसकी रूप-राशि भूलती नहीं । मैं इसे काकभुशुण्डिके समीप भेज दूंगा कि उनके साथ गोकुल जाकर उस श्याम-शिशुका स्नेहसहित सादर दर्शन प्राप्त कर सके ।

अभी मुझे बेचारे उत्कचको अपने शापसे—भव-पाशसे भी मुक्त कराना है । कृपासिन्धु नन्दनन्दन मेरा अनुरोध स्वीकार कर लेंगे, यह मुझे आशा है और उत्कच भी नन्द-भवन पहुँच ही रहा है ।

कंस अत्यन्त चिन्तित है । उसका काल गोकुलमें पल रहा है, बढ़ रहा है !

उत्कचने कंसको आश्वासन दिया है । कंसको भी लगता है कि पूतना, श्रीधर, काकासुर कितने भी माया-वेशमें गये, दृश्य थे । कूट-प्रयत्न सफल होनेकी आशा वहाँ नहीं है । अदृश्य वायुशरीरी उत्कच सफल हो सकता है । जो दीखता ही नहीं, उसे कोई पकड़ भी कैसे सकता है ।

मुझे उत्कचसे पहिले पहुंचना है । मुझे अनुरोध करना है कि उसे ये नन्दनन्दन अपने श्रीचरणोंके स्पर्शका अवसर देकर सदाके लिए अपना लें और शाप देकर मैंने जो भूल की उसे सुधार कर मुझे भी सन्ताप-रहित करें ।

प्रलय-पयोधिमें वटपत्रशायी बालमुकुन्दकी शोभा मैंने ब्रह्मलोकसे देखी है ; किंतु पलनेमें पड़े, पादांगुष्ठ मुखमें लिए नन्दनन्दनको निकट पहुँचकर देखनेका अवसर आज मिला और लोमशका दीर्घ जीवन धन्य हो गया !

यह घनमेचक-कुञ्चित कुन्तलराशिसे घिरा विकच सुन्दर इन्दीवर श्रीमुख और इसमें कोमल दोनों करोंसे पकड़कर अरुण मृदुल दक्षिण पादका अंगुष्ठ मुखमें लिए ये सकल सौन्दर्य सुधासिन्धु ! ये पादांगुष्ठ पी रहे हैं । भालपर लगा कज्जल-विन्दु और नेत्रोंका अञ्जन भी इन्होंने भालपर, कपोलोंपर फैला लिया है । करपृष्ठपर लगी हैं अञ्जन रेखायें !

अब इनके करोंसे चरण छूट गया है और पादांगुष्ठ मुखसे पृथक हो गया है। ये रोने लगे हैं। विशुद्ध आनन्दघन रो रहे हैं। निखिल लोकाश्रय-को सम्भवत: अब मातृ-अङ्कका आश्रय चाहिए और मातृ-स्तनपानको रो रहे हैं ये।

कोई उठाता नहीं! गोपियोंका कोई दोष नहीं। इनकी यह रुदन-छवि भी ऐसी है कि ये सब मुग्ध देख रही हैं और ये हैं कि करोंको हिलाते, चरणोंको उछालते रो रहे हैं—रोते जा रहे हैं।

कोई नहीं सुनती! कोई नहीं उठाती! सब तो मुग्ध नेत्र देख रही हैं और ये रोते-रोते पलनेमें नीचे सरकते जा रहे हैं। दोनों मातायें समीप नहीं है। आज इनका जन्म-नक्षत्र हैं। ये नाक्षत्र माससे तीन मासके हो गये [दो मास बीस दिनके] आज रोहिणीदेवीने हठ करके यशोदाजीको बैठा लिया है अपने सम्मुख और स्वयं उनका केश सुलझाकर वेणी-ग्रन्थनमें, केश-शृङ्गार करनेमें लगी हैं।

अभी महर्षि आवेंगे। अभी गोपियाँ आ जायँगी पूरे गोकुलकी! आज कहाँ अवसर मिलना है और इस उत्सवके दिन असज्जित तो रहा नहीं जाना चाहिए। रोहिणीजीने स्वयं अपना शृङ्गार शीघ्र कर लिया और अब नन्दरानीको सजा देनेमें लगी हैं।

यह पलनेमें पड़ा इन्दीवर सुन्दर रो रहा है। यह तो रोते-रोते एक ओर पार्श्वमें उलट गया! अच्छा! आज आपने प्रथमोत्थान किया है! स्वयं करवट ली है लोमशके नेत्रोंको सफल करनेके लिए!

'लालने करवट ली!' सबसे पहिले नन्दनजीकी पत्नी अतुलाने पुकारा और भागीं समाचार देने—'जीजी बधाई! लालने उत्थान किया!'

रोहिणी और यशोदा दोनों एक साथ भागीं। अब तो 'बधाई! बधाई!' पुकारती गोपियाँ, सेविकायें सब दौड़ पड़ी हैं। गोकुलके घर-घरमें समाचार अब पहुँचते कितनी देर लगनी है।

मैयाने रोते करवट पड़े लालको उठा लिया है। वे उसे अङ्कमें लेकर दुग्धपान कराने बैठ गयी हैं। अञ्चलकी ओटमें हो गया है वह चन्द्रमुख; किंतु इस अदृश्य लोमशको इनके चारु चरणोंका दर्शन करनेका अवसर मिल गया है। अभी तक तो ये इन चरणोंको चञ्चल बनाये थे।

ये मृदुल अरुण नन्हें श्रीचरण! इनमें यह ऊर्ध्वरेखा और यव, अंकुश, ध्वज, कमल, मीन, कल्पवृक्ष, अष्टकोण, षट्कोणयन्त्र—प्रभु! इन रेखाओंमें लोमशका मन-भ्रमर घूमता रहे! यहीं विश्राम करे मेरा चित्त—इन्हीं पद्मारुण पदोंमें!

व्रजराजको, विप्रमण्डलको साथ लिए महर्षि शाण्डिल्य आ रहे हैं। मुझे गगनमें कुछ ऊपर जाना चाहिए। इन महर्षियोंके दृगोंसे मेरी अदृश्यता छिपी नहीं रहेगी और---किंतु नहीं, मैं इनमें मिलकर प्रकट होकर अब आनन्दपूर्वक सामगान कर सकता हूँ। स्वस्ति-पाठ कर सकता हूँ। सबकी दृष्टि तो इन शोभासिन्धु नन्दनन्दनमें लगी है। सबके मन-प्राण तो इन आकर्षणके अधिष्ठाताने अपनेमें खींच लिए हैं। इस समय किसे किसी दूसरेकी ओर देखने-पहिचाननेका अवकाश है।

यह योगसिद्ध मधुमङ्गल—ये सबके—हम सबके सम्मान्य हैं। ये नन्द-तनयके नित्य सखा—इनका वय कैसे देखा जा सकता है। सृष्टिकर्त्ताके प्रथम पुत्र चतुष्टय भी तो बालक ही रहते हैं। आज ये आ गये हैं हम ब्राह्मणोंके साथ और मैं स्वीकार करता हूँ कि इनका परम शुद्ध सस्वर श्रुति-पाठ हम सब भले दुहरा लें—स्वरका यह सौष्ठव हम सभीके लिए केवल स्पृहा करनेकी वस्तु है।

'मैं अपने सखाको स्नान कराऊँगा!' यह इनका स्वत्वानुरोध है और दक्षिणा—दक्षिणाका लोभ तो मुझ अनिकेतके मनमें जाग उठा है। इन यशोदा-नन्दनके संस्कारकी दक्षिणा मिलेगी, यह सौभाग्य कौन छोड़ेगा।

'सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्...' मुझे यह पुरुषसूक्त-प्रतिपादित परमपुरुष प्रत्यक्ष हो रहे हैं! ये नन्हे नन्दलाल और यही सहस्रशीर्षा · परन्तु मुझे इनके इस अभिषेकमें अप्रमत्त मन्त्र-पाठ करना है।

अतसी कुसुम कलेवरमें महर्षि शाण्डिल्यने व्रजराजके करोंसे गोमय लगवाया है और मधुमङ्गलजी अब स्वर्णकलश उठाकर गोमूत्राभिषेक करने लगे हैं। मैं मैया यशोदाका वात्सल्य देख सकता हूँ। मधुमङ्गलको वे मना करने जा रही थीं; किंतु हम सबके मन्त्र-पाठसे वे समझ गयी हैं कि यह मधुमङ्गलका केवल चापल्य नहीं है।

गोमूत्र श्यामल श्रीअङ्गोंमें अपने करोंसे गोरज लगानेका सौभाग्य मुझे नहीं मिलता, यदि मैं समयपर महर्षि शाण्डिल्यके अनुगामियोंमें मिल न गया होता।

अब नन्दनन्दनके ये अग्रज आ गये हैं। इन अनन्तने स्वयं अपने स्वर्णगौर श्रीअङ्गपर धूलि डाल ली है। सब अनुजको ही गोरजसे स्नान करानेमें लगे हैं तो इन्होंने स्वयं मुट्ठी-मुट्ठी धूलि डाली है अपने अङ्गोंपर और अब गोरजकी मुट्ठी भरकर अपने छोटे भाईको धूलि-स्नान कराने आ गये हैं। मुझे आज इनके भी धूलि-अर्चनका सौभाग्य मिल गया।

बहुत देखा है भगवान शालिग्रामका दुग्धाभिषेक और क्षीराब्धि-शायीका दर्शन भी मुझे दुर्लभ कभी नहीं हुआ ; किंतु यह नन्दनन्दनपर पड़ती अखण्ड दुग्ध-धारा ! इन नवघन सुन्दरकी दुग्धकी उज्ज्वलतामें-से छलकती छवि छटा ! इसकी कहीं तुलना नहीं है। स्वर्णपात्रमें पाटलदलोंके मृदुल आस्तरणोंपर पड़े ये व्रजेन्द्र-नन्दन !

मुझे सचमुच लोभ है—इनके इस स्नान-शुद्धकी दो बूँदें ! किंतु मुझ ऋषिको यह कोई नहीं देगा और अदृश्य होऊँ तो इनके समीप पहुँचने-की शक्ति खो दूँगा ! धन्य हैं व्रजके ये लोग, इनके सेवक-सेविकायें ! आज इन सबको यह दुग्ध-प्रसाद प्राप्त होगा। ये क्षीरोदधिशायीके भी हृदयाराध्य इस दूधमें लेटे अपने चरण उछाल रहे हैं ! इन अनन्त कृपासिन्धुने लोमश-की अभिलाषा पूर्ण कर दी है। इनके चंचल चरणोंसे उछलकर पड़ी ये दूधकी बूँदें मेरे करोंपर—अब ये मेरा स्वत्व हैं !

सुगन्धित उष्णोदक यमुनाजलका यह अन्तिम स्नान सम्पन्न हो गया। व्रजराजने अपने लालको उठाकर अपनी भाभीकी गोदमें दे दिया है। उपनन्दपत्नीने इनके अङ्ग पोंछ दिये और माताको दिया है। कितना कोमल होता है माताका हृदय—यशोदाजीको लगता है कि उनके लालको शीत लगी होगी। वे वस्त्रोंमें उसे छिपाये जा रही हैं ; किंतु अभी तो स्वस्ति-वाचन शेष है।

मुझे भी महर्षिके साथ देव-पूजन, मङ्गल श्राद्धादिमें लगना पड़ा। शीघ्रता सभीको है। सबका मानस श्रीनन्दन-नन्दनकी छवि देखनेको आतुर है। सुर-पूजनादि समाप्त करके ही तो स्वस्ति-वाचनके समय पुनः वह सौन्दर्यराशि नेत्रोंके सम्मुख आवेगी।

श्रीनन्दरायने अपने पुत्रको अङ्कमें लिया। हम सब कुशाग्रसे नन्हें सोकर डालकर उसके अङ्गकी शोभाको सदा-सदाके लिए हृदयमें रख लेना चाहते हैं—'स्वस्ति नो इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति नो पूषा विश्ववेदाः....।'

अपार दक्षिणा—गायें, स्वर्ण एवं रत्नराशि ; किंतु मुझे क्या करना है इस सबका। मुझे वे दो दुग्धविन्दु मिल गये हैं। अब मुझे अदृश्य हो जाना चाहिए, अन्यथा महर्षिके साथ यहाँसे विदा होना पड़ेगा।

व्रजराजने अपने तनयको माताकी गोदमें दे दिया है। अब ये मातृ-स्तनोंमें लगते ही सो गये हैं। यशोदाजी इधर-उधर देखने लगी हैं। आज नन्द-भवन गोपियोंसे भरा है। अपने निद्रित लालको वे कहाँ सुलावें।

गोपियाँ आ रही हैं। गाती हुई रङ्ग-बिरंगे वस्त्रोंमें सुसज्जिता, सर्वाभरणभूषिता गोपियाँ करोंमें उपहार लिए अनेक प्रकारके गीत गाती हुई आ रही हैं। कितने वस्त्र, खिलौने ला रही हैं ये।

माताको अपने शिशुको सुलाने योग्य स्थान मिल गया है। गोपोंने आङ्गनमें खूब बड़ा छकड़ा खड़ा कर दिया है। आजके उत्सवके लिए लगभग पूरा गृह खाली किया गया। घरके दूध, दधि, नवनीत, घृत, तैल आदिके सब पात्र इस छकड़ेपर सजा दिये गये हैं। यशोदाने पलनेको छकड़ेके नीचे रख दिया है और दाऊ, ऋषभ, विशाल, अर्जुन जैसे बालक छकड़ेके पास आ बैठे हैं।

यशोदाजीने ठीक सोचा है कि उनका शिशु यहाँ ठीक सो सकेगा। उनको गोपियोंके सत्कारमें लगना है। बालक तो अपने इन नित्य सखाको छोड़कर कहीं जाते नहीं। ये यहाँ रहेंगे।

'हम इसे झुलायेंगे !' बालकोंने बड़े आग्रहसे कहा है—'यह जागेगा तो तुमको बुला लेंगे।'

यशोदाजीने बालकोंको समझाया—सिखाया है कि पालना अधिक वेगपूर्वक वे न हिलावें। अपने शिशुको थपकाकर वे चली गयीं।

अच्छा उत्कच आ गया ! यह बेचारा दैत्य मुझ अदृश्यको नहीं देख सकता ; किंतु मैं भी तो इसे यहाँ आकर भूल ही गया था। यह वायुशरीरी अपने लिए स्थान ही नहीं पाता है। इन शिशु बने सर्वेश्वरेश्वरको स्पर्श करनेका साहस नहीं है दैत्यमें। इसका भय उचित है। इन चिद्घन-वपुको स्पर्श करके आसुरता निश्चय ही मिट जायगी। पूतनाने जो भूलकी, दैत्यराज हिरण्याक्षका पुत्र वही भूल नहीं कर सकता।

उत्कच शकटमें आविष्ट हो गया है। अब यह शकटासुर है। अपवित्र कर दिया इसने शकटपर रखे सब भाण्डों और उनके पदार्थोंको। ये

दैत्य-स्पर्श-दूषित पदार्थ क्या अब किसी भी गोपके उपयोग योग्य रह गए ?

मैं क्या करूँ ? मैं सूचना दूं किसीको ? वायुशरीरी उत्कच किसीको भी दीख नहीं सकता। मैं उत्कचके उद्धारकी प्रार्थना करने आया हूँ ; किंतु ये सर्वसमर्थ तो शिशु बने शयनका नाटच कर रहे हैं। इन चिन्मयको कहीं निद्राका तमस स्पर्श करता है ; किंतु इन कृपासिन्धुने क्या अदृश्य लोमशकी अव्यक्त हृदयवाणी सुन नहीं ली है ? मुझे इनकी कृपाकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।

मेरी प्रार्थना शब्दोंमें आनेसे पूर्व ही सुन ली है इन दयासिन्धुने। इनके लोचन खुल गये हैं। अब ये शकटकी ओर देखकर अपने नन्हें कर उठाते हैं, चरण उछालते हैं, किलकते हैं। अवश्य उत्कचका उद्धार होने ही वाला है। इनकी दृष्टि तो पड़ गयी उसपर।

बालक अन्ततः बालक ही हैं। इन सुषमासिन्धुको देखकर तो मैं स्वयं अपनेको भूला जा रहा हूँ। बालकोंको इस शोभाने मैयाको सूचना देना विस्मृत कर दिया है। सब कितने प्रेमसे देखनेमें लगे हैं।

अब इन्होंने करोंसे पकड़कर पादांगुष्ठ मुखमें ले लिया है। कितनी मनोहारी है यह शोभा ! किंतु शकट चरमराने लगा है। दुष्ट उत्कच अपने भारसे शकटको दबा रहा है।

नन्दनन्दनके करोंसे अपना चरण छूट गया है। ये पादांगुष्ठ मुखसे निकल जानेके कारण रोने लगे हैं। इनका यह रुदन—आनन्दकन्दके रुदनमें जो आह्लाद है, स्वर्गका हास्य भी इतना सुमधुर नहीं हुआ करता।

ये तो हाथ-पैर उछाल-उछालकर रो रहे हैं। दाऊ कब चले गये, यह मेरी दृष्टिमें ही नहीं आया। अवश्य वे उत्कचके आनेसे पूर्व चले गये होंगे माताके समीप। अन्यथा उनकी दृष्टिको तो अदृश्य दैत्य धोखा नहीं दे सकता था और वे क्या करते—मैं भी उन अनन्तके सम्बन्धमें कोई अनुमान लगानेमें समर्थ नहीं हूँ।

सब बालक एक ओर सिमट आये हैं। सब मिलकर, झुककर इस रोते नन्हे सखाको बड़े मुग्ध नेत्रोंसे देख रहे हैं और ये पलनेमें पड़े रो रहे हैं। पद उछाल-उछालकर रो रहे हैं ; किंतु पूरा भवन तो आनन्दमग्न गोपियोंके कण्ठोंसे निकलते मङ्गल-गानसे गूंज रहा है। रोहिणी और यशोदाजी सब

सेविकाओंके साथ उनके सत्कार में लगी हैं। इनका यह श्रुति-सुन्दर रुदन इस समय केवल ये बालक ही सुन सकते हैं।

हो गया—उत्कचका उद्धार हो गया। पाटल-दल मृदुल अरुण उछालते चरणोंसे इन्होंने शकटका स्पर्श कर दिया और गया—उत्कच तो दैत्यत्वसे—जीवत्वसे ही विमुक्त होकर इनके स्वधाम चला गया।

उत्कचने शकटको अपने भारसे दबाया था। छकड़ा जोरसे चरमराया तो बालक डरकर पीछे हट गये और इसी क्षण इन नन्दनन्दनका पाद-स्पर्श पाकर पूरा शकट उलट कर धड़ामसे गिर पड़ा। बड़ा भारी शब्द—इतने सब पात्रोंके फूटनेका शब्द भी शकटके उलटकर गिरनेके धमाकेके साथ !

शकट तो ठीक उलट कर गिरा है। उसके चक्के, धुरे, कूबर सब पृथक-पृथक हो गये हैं और उसके ऊपरके पात्र चूर-चूर हो गये हैं। दूध, दधि, नवनीत, घृत, तैल आदि सब एकाकार होकर पूरे प्राङ्गणमें बह रहे हैं।

'क्या हुआ ? क्या हुआ ?' गोपियाँ चिल्लाने लगीं—'राक्षसी -- कोई राक्षसी आ गयी है ! दौड़ो ! पकड़ो ! नन्दलालको यह ले न जाय !' गोपियोंकी पुकार चीत्कार गूँज उठी है।

'घेर लो ! पकड़ लो राक्षसीको !' गोप दौड़े आ रहे हैं लकुट उठाये।

'मेरा लाल ?' यशोदाजी व्याकुल होकर दौड़ीं ; किंतु गिर गयी हैं। भयके आधिक्यसे मूर्छित हो गयी हैं।

'लाल सकुशल है !' ये रोहिणीजी दौड़नेमें भी सबसे आगे आ गयीं। इन्होंने उठा लिया है पलनेमें-से नन्दनन्दनको। पलना तो शकटमें बँधी रज्जुके खुल जानेसे सीधा ही गिरा है। लगता है अपने शिशुको सस्नेह देखनेमें यशोदाजीके करोंसे ग्रन्थि सुदृढ़ नहीं लगी थी। तनिक झटकेमें खुल गयी और पलनेको कुछ अंगुल ऊपर ही तो भूमिसे रखा गया था। पलनेको तो तनिक भी झटका नहीं लगा प्रतीत होता।

'नीलमणि सकुशल है !' रोहिणीजीने लाकर यशोदाजीके समीप उनके अङ्कमें धर दिया है शिशुको और ये परमधन्या नन्द-गृहिणी अब बड़े आश्चर्यसे, अतिशय सावधानीसे अपने शिशुका एक-एक अङ्ग देखनेमें लगी हैं।

'बच्चा डर गया है !' उपनन्द पत्नी ठीक कहती हैं अपनी समझसे। सब यही समझती हैं ; किंतु ये लीलामय पहिलेसे रो रहे थे, क्षुधातुर हैं। मैयाने इन्हें अञ्चलकी ओटमें कर लिया है। अब माता के स्तनोंसे मुख लगाकर ये चुप हुए हैं।

अभी महर्षि शाण्डिल्यको बुलाने सन्नन्दजी दौड़ गये हैं। विप्रर्षि गण साथ आवेंगे। मुझे एक अवसर और प्राप्त होगा सबके साथ नन्दनन्दनके श्रीअङ्गोंपर स्वस्ति-पाठ करते हुए कुशाग्रसे जल-सीकर-सिञ्चित करनेका। शकटका भी पूजन होगा। उसको पुनः जोड़कर खड़ा करनेके पश्चात्; क्योंकि उसमें जो अमङ्गल-स्पर्श हुआ, उसकी भी निवृत्ति होनी चाहिए।

'शकट कैसे उलटा?' गोपोंमें-गोपियोंमें यही चर्चाका विषय है इस समय—'यहाँ वृषभ थे नहीं कि उनमें युद्ध होनेसे यह उलट जाता। कोई पुरुष भी नहीं था यहाँ। राक्षस या राक्षसी भी नहीं दीखी। अनेक गोप लगकर भी इतना भारी छकड़ा ऐसे सीधे उठाकर उलट नहीं सकते थे। अपने भारसे यह असन्तुलित होता तो कल सायंकाल हो जाता और अब भी हुआ तो पार्श्वमें पलटना था।'

बालकोंमें कई बोल उठे—'हम बतावें?'

'क्या?' गोप पूछने लगे।'

'इसने छकड़ेको पैर मारकर पलट दिया।' बालक तो दौड़ गया है माता यशोदाके समीप और उनके अङ्कमें दुग्धपान करने नन्दनन्दनके नन्हें दक्षिण चरणपर अंगुली रख रहा है—'अपने इस पैरसे मारकर इसने छकड़ा उलटा है।'

'हाँ, इसीने उलटा है! हमने देखा है।' कई बालक कहने लगे हैं।

मैं जानता हूँ—साक्षी हूँ कि बालक सत्य कह रहे हैं; किंतु गोप, गोपियाँ और ऋषि गण इन बच्चोंकी बातपर क्यों ध्यान देने लगे। केवल मधुमङ्गल कहता है—'मैया! इसीने यह उत्पात किया होगा। यह अभीसे बहुत नटखट है।'

'केवल आप बहुत सीधे हैं!' मधुमङ्गलकी तो गोपियाँ ही हँसी उड़ाने लगी हैं।

गोपोंने छकड़ेको सीधा कर दिया है। उसके कूबर, चक्के आदि यथा-स्थान व्यवस्थित कर दिये हैं। अब मैं मुनि-मण्डलीमें प्रकट मिलकर शकट-पूजन करा सकता हूँ।

स्वस्ति-पाठ करके मैं मथुराके ऊपरसे ही अपने आश्रम आया हूँ। कंस पुकार रहा था—'उत्कच! उत्कच!' अज्ञ कंस समझता था कि उत्कच आवेगा उसे सफलताका संवाद देने। गोकुल जाकर कोई असुर लौटने वाला है इस समय! मुझे आज शान्ति मिली। उत्कचको दिया मेरा शाप भी नन्दनन्दनने वरदान बना दिया!

नामकरण

भगवान चन्द्रमौलिके साक्षात् शिष्य ज्योतिषके संहिताकार श्रीगर्गाचार्य अपने कर्पूरगौरवर्ण गुरुदेवके समान ही शशि-श्वेत वर्ण हैं। शुभ्र वस्त्र, श्वेत चन्दन और स्फटिक मालाधारी आचार्य उस दिन गोकुलसे लौटे थे और अपने प्रिय यजमान वसुदेवजीको वहाँका समाचार सुना रहे थे।

'आपके आग्रहसे मैं गोकुल गया। न जाता तो मुझे जीवन-भर पश्चात्ताप रहता। मैंने ही इस मन्वन्तरके प्रारम्भमें इस सत्यका साक्षात्कार किया था कि इस वैवस्वत मन्वन्तरके अष्टाविंशतितम द्वापरके अन्तमें परात्पर पुरुष पृथ्वीपर पधारेंगे। आपके अनुरोधने उनके साक्षात्कारका सौभाग्य दिया।'

महर्षिका शरीर पुलकित हो रहा था। अब भी उनके निर्मल दीर्घ दृगोंमें अश्रु आ रहा था। अत्यन्त उत्साहके कारण आश्रम न जाकर वे सीधे वसुदेवजीके भवन आ गये थे और वसुदेवजीको प्रणामके अनन्तर पूजनसे रोककर ही सुनाने लगे थे, वैसे आज वसुदेवजीको आचार्यका सविधि पूजन करना ही था।

'आपका कहना उचित था। नन्दराय अत्यन्त श्रद्धालु हैं, सङ्कोची हैं और महामानव हैं। आपके छोटे कुमारकी अवस्था भी आज सौ दिनकी हो रही थी। अब दोनोंका नामकरण कर ही दिया जाना चाहिए था।

मैं यहाँसे नित्य कर्म सम्पूर्ण करके कुछ विलम्बसे ही चला। चाहता था कि गोप गायोंको लेकर वनमें चले जायँ, तब व्रजपतिसे एकान्तमें मिलूँ। यहाँसे प्रस्थान करते ही परम शुभशकुन प्राप्त हुए। प्रायः लोग मेरी पिङ्गल जटाओं तथा दण्ड - छत्रको देखकर मुझे पहिचान लेते हैं और कोई अच्छा ज्योतिर्विद मिल जाय तो किसमें अपने भविष्यको जाननेकी उत्कण्ठा नहीं उठेगी। प्रत्येक व्यक्ति अपना ही नहीं, अपने पूरे परिवारका भविष्य जानना चाहता है। मित्र-परिचितोंको भी बुला लेता है। इस सबके कारण मैं आश्रमसे प्रायः कहीं जाता नहीं हूँ। लोगोंके विनम्र अनुरोधको रूक्ष बनकर अस्वीकार कर देना मेरे स्वभावमें नहीं है और लोग अपने स्वार्थवश दूसरेके

समय, सुविधाका ध्यान ही नहीं रखते। गोकुलमें यदि अन्य गोप मिल जाते तो नन्दगृह तक सायङ्काल तक भी पहुँचना कदाचित् ही हो पाता।

मुझे मार्गमें कोई नहीं मिला। व्रजराज नन्द गोष्ठमें ही मिल गये। मुझे देखते ही उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया अपने गोत्र तथा पिताके नामके साथ अपना नाम लेकर। भवनमें ले जाकर भली प्रकार मेरी अर्चा की। मेरा पादोदक पूरे भवनमें सिञ्चित कराया उन्होंने।

'आप सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, परमवेदज्ञ हैं, ज्योतिषशास्त्रके मूर्तिमान स्वरूप हैं!' दूसरे भी मेरी स्तुति इसी प्रकार करते हैं; किंतु नन्दके स्वरमें सच्ची श्रद्धा थी। उनकी विनम्रता हृदयको स्पर्श कर रही थी।

मैंने कह दिया—'लगता है कि तुम कुछ कहना चाहते हो। सङ्कोच त्यागकर कहो।'

'श्रीचरणोंसे क्या सङ्कोच करूँगा!' नन्दरायने मेरे पदोंपर मस्तक रखा, हाथ जोड़कर बोले—'मेरा सौभाग्य कि भाई वसुदेवजीने मुझे इस सेवाके योग्य माना और रोहिणी भाभीको यहाँ भेजा। उनका सन्देश आ गया था कि 'उनके कुमारके संस्कारमें शीघ्रता न की जाय!' उनका आदेश मानना ही चाहिये मुझे। अकारण तो वे कोई आदेश देंगे नहीं। मन मारकर हम रह गये और रोहिणी भाभीके कुमारका नामकरण संस्कार अबतक नहीं हो सका। वह बालक एक वर्षसे भी बड़ा हो चुका है।

अब रोहिणी भाभी मानती नहीं हैं। उनके कुमारका जो अनुचर, अनुज आया है इस घरमें आपके आशीर्वादसे, वह आज सौ दिनका हो गया। वह ग्यारह दिनका होनेवाला था तभी भाभीने उसके नाम-करणका आग्रह किया था। उस समय तो मैंने किसी प्रकार टाल दिया; किंतु इधर कई दिनोंसे वे मुझसे, गृहिणीसे, सबसे कह चुकी हैं, रुष्ट होने लगी हैं कि छोटेका संस्कार नामकरणकी अन्तिम अवधि सौ दिन बीतने न दी जाय।'

मैं आज गृहमें नहीं गया। वे सम्मान्या हैं। उनका आदेश अस्वीकार करते मुझे बहुत दुःख होता है; किंतु यह भी कैसे किया जा सकता है कि बड़े भाईसे पहिले छोटेका संस्कार कर दिया जाय।

आप महापुरुष हम गृहान्धकूपमें पतित प्राणियोंपर कृपा करनेके लिए ही पर्यटन करने निकलते हैं। आज आपके पदार्पणसे मेरा गृह पवित्र

हो गया। मेरे पितर तृप्त हो गए। अब एक ही प्रार्थना है कि आप दोनों बालकोंका नाम-करण संस्कार कर देनेकी कृपा करें।'

नन्दरायकी नम्रता, सौजन्यने मुझे अत्यन्त सन्तुष्ट किया; किंतु ये उदार व्रजपति बहुत उत्साही हैं। मुझे लगा कि कहीं ये सविधि, सोत्सव संस्कारका आयोजन न करने लगें। अतः मैंने कहा—'व्रजेश्वर! आप जानते ही हैं कि मैं यदुकुलके आचार्य रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध हूँ। अब यदि मैं आपके पुत्रका संस्कार कराऊँगा तो लोग उसे वसुदेव - देवकीका पुत्र मानेंगे; क्योंकि देवकीके अष्टम गर्भसे कन्याका होना किसीको भी सङ्गत नहीं लगता है। वसुदेवजीसे आपकी प्रगाढ़ मैत्री है। कंस वैसे भी सशङ्क है पूतनाकी मृत्युसे। अतः मेरे संस्कार करा देनेपर तो उसे निश्चय ही हो जायगा कि देवकीका अष्टम पुत्र आपके गृहमें है। वह इसे मारनेका कोई प्रयत्न उठा नहीं रखेगा। इस प्रकार यह संस्कार तो अनर्थोंकी परम्परा प्रारम्भ कर देगा।

एक बात और—आपके पुत्रका संस्कार कराना महर्षि शाण्डिल्यका स्वत्व है। हम ब्राह्मण परस्पर अनुचित स्पर्धा नहीं किया करते।'

दो क्षण भी नन्दरायने सोचनेमें नहीं लगाया। उन्होंने तत्काल कहा—'भगवन्! वैसे तो ब्राह्मण जन्मसे ही तीनों वर्णोंके गुरु होते हैं और यह सेवक तो उसी कुलका है, जिसको आपने अपने पौरोहित्यका प्रसाद प्रदान किया है। महर्षि शाण्डिल्य ज्योतिष-शास्त्रमें रुचि नहीं रखते, जिसकी नाम-करणमें अत्यन्त आवश्यकता है और उन्हें तो सुविधा हो जायगी आगे बड़े कुमारका भी अन्न-प्राशन, कर्णवेधादि संस्कार करानेमें, यदि आप दोनोंका नाम-करण साथ-साथ कर देते हैं।

गोष्ठको परिमार्जित करना आवश्यक नहीं है। उस नित्य पवित्र स्थानमें आप केवल स्वस्तिवाचन करके दोनों बालकोंका नाम-करण कर दें। मैं अपने भाइयोंको भी सूचना नहीं दूँगा। यह संस्कार आपने किया है, इसे गोकुलमें मेरे स्वजन भी नहीं जानेंगे तो कंसके सुननेकी कोई सम्भावना नहीं रहती।'

मुझे तो यह अभीष्ट ही था। सेवकोंने गोष्ठ, गोमय हटाकर स्वच्छ कर दिया था और अन्य कार्योंमें लग गये थे। केवल कुछ सद्यःप्रसूता धेनुएँ और उनके बछड़े थे गोष्ठमें जब मैं व्रजपतिके साथ उसमें आया। स्वयं नन्दरायने मेरे लिए आसन आस्तृत किया।

जल, कुश तथा सामान्य पूजन-सामग्री शीघ्र आ गयी। कोई आयोजन करना नहीं था। मैंने केवल सङ्कल्प कराया और पञ्चोपचार मात्रसे गणपति-पूजन। नन्दरायने मेरे मना करनेपर भी सविधि पूजा की मेरी। स्वस्ति-पाठ करके मैंने आपके गौर कुमारको अङ्कमें लिया। उसे अपनी क्रोड़ीमें लिए यशोदाजी आयी थीं।

'यह रोहिणी-नन्दन अपने सद्गुणोंसे अपने समस्त सुहृदोंको प्रसन्न करेगा। सबका चित्त इसके गुणोंमें रमण करेगा, अतः इसका नाम राम है।' मैं जानता हूँ कि आपके इस कुमारका नाक्षत्रिक नाम रोष है और यह भी सार्थक नाम है उसके सम्बन्धमें; किंतु उसका यह नाम गोकुलके लिए—गोपोंके लिए सर्वथा नहीं है और नित्य नाम तो उसका राम है ही।

'यह सृष्टिके समस्त बलशालियोंका शिरोमणि होगा, अतः इसका दूसरा नाम बल है।' गोकुलपतिको यह नाम बहुत प्रिय लगा।

'यह पूरे यादव-कुलको अपनेमें आकृष्ट किये रहेगा। स्वजनोंका वैर-विरोध, वैमनस्य मिटाकर उनमें संगठन बनाये रखेगा, अतः इसका नाम संकर्षण होगा।'

देवी रोहिणीने अञ्चल फैलाकर भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। नन्दरायने मेरी गोदसे लेकर उनके कुमारको यशोदाजीके अङ्कमें रख दिया। मेरे अङ्कमें अब उन्होंने सजल-जलद श्याम आपका छोटा पुत्र रखा। मुझे बहुत प्रयत्न करके अपनेको स्थिर रखना पड़ा। मेरी जन्म-जन्मकी साधना सफल हो गयी। मेरे अन्तरमें जो कुछ आता है, वाणी उसे व्यक्त नहीं कर सकती। वसुदेवजी! धन्य हो तुम और उससे सहस्र-सहस्र गुणित धन्य हैं व्रजपति नन्दराय। श्रीहरिने तुम्हारे यहाँ अवतार लिया! तुम्हारे अनुरोधसे गोकुल जाकर मैं साक्षात्पुरुषोत्तमका दर्शन-स्पर्श पा सका। मैं उन अनन्तके नामोंकी गणना कैसे कर सकता था।

'पहिले युगोंमें यह श्वेत, रक्त तथा पीतरूप धारण कर चुका है। इस बार यहाँ कृष्ण हुआ है, अतः इसका नाम कृष्ण—कृष्णचन्द्र!' मैंने नामकरण किया और तबसे मेरा मन रट रहा है—'कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!' इतनी मधुरिमा, इतना अमृतस्यन्दी यह नाम! आकर्षणकी, आनन्दकी सत्ता ही इसमें साकार हो गयी है।

मैंने लाक्षणिक भाषाका उपयोग करके कह दिया—'पहिले कभी यह वसुदेवजीके यहाँ जन्म ले चुका है, अतः जाननेवाले इसे वासुदेव कहेंगे।'

वसु—अन्तःकरणमें प्रकाशकके रूपमें सदा, सबका यह अन्तर्यामी वासुदेव है. यह तो जाननेवाले ही इसे कहेंगे। यह नित्य नाम बहुत प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। मेरे इस नाम-करणसे नन्दराय चौंके नहीं। वे सरल साधु पुरुष हैं। वे अनुभव करते हैं कि तुमसे उनका सौहार्द युग-युगसे ही है।

मैंने स्पष्ट कह दिया— व्रजपति ! तुम्हारे इस पुत्रके बहुतसे नाम हैं, बहुत रूप हैं ; किंतु इसके उन गुण-कर्मोंके अनुसार नामोंको, रूपोंको भी मैं ही जानता हूँ, लोग नहीं जानते।'

'आप सर्वज्ञ हैं !' नन्दरायने केवल इतना ही कहा और मस्तक झुकाया। मुझे लगा कि मैं अपनेको सम्हालूँगा नहीं तो पता नहीं क्या-क्या बोल जाऊँगा। अतः मैंने संक्षिप्त रूपसे थोड़ा-सा प्रभाव मात्र बतला दिया।

'यह सम्पूर्ण गोपकुलोंको आनन्दित करेगा। इसके द्वारा आप सब सभी आपत्तियोंसे पार हो जायँगे। सदासे – युग-युगसे इसीके द्वारा दुर्दम दस्युओंके दमनसे सत्पुरुषोंकी रक्षा होती आयी है। महाभाग्यवान मानव होंगे वे जिनका इससे प्रेम होगा। जैसे भगवान् नारायणके आश्रित सुरोंको असुर आक्रान्त नहीं कर पाते, वैसे ही इसकी शरण लेनेवालोंको शत्रु दबा नहीं सकेंगे। आपका यह पुत्र ऐसा है कि श्री, कीर्ति, प्रभावादिमें केवल नारायण ही इसके समान कहे जा सकते हैं। अतः इसकी एकाग्रचित्तसे रक्षा करें।'

नन्दराय कहने लगे– 'मेरा सम्पूर्ण गोधन-धन, समस्त गोकुल, मेरा सर्वस्व श्रीचरणोंमें समर्पित······।'

मैंने रोका उन्हें—'मैंने आज आपके पुत्रका दर्शन पाया तो सब प्राप्त कर लिया। यह सब ऐश्वर्य तो ब्राह्मणके लिए बाधक—विपत्ति है। आपका मैं आचार्य बना, आपके कुमारका आचार्य बना, आपका अनुराग मैंने पाया—परिपूर्ण हो गया !'

मैंने समझाया कि गोकुलमें मेरा आगमन गुप्त रहना चाहिए। शिशुओंकी सुरक्षाके लिए यह आवश्यक है। अतः न मैं कुछ साथ ले जा सकता और न व्रजपतिको मुझे पहुँचानेके लिए गोष्ठसे बाहर जाना चाहिए।

वहीं दोनों माताओंने मुझे प्रणाम किया। शिशुओंको मेरे पदोंपर रखा। नन्दरायने साश्रु लोचन प्रणिपात किया भूमिमें पड़कर।

वसुदेवजी ! पता नहीं अन्तःकरणमें कौन-सी अज्ञात शक्ति मुझे अत्यन्त प्रबल रूपसे प्रेरित करने लगी। गोकुलमें मुझे बहुत थोड़ा समय लगा था। मैं वहाँसे आता तो मध्याह्नसे बहुत पूर्व आपके समीप आ जाता; किंतु मैं मथुरा आनेके स्थानपर वृहत्सानुपुरकी ओर चल पड़ा।

मैं वहाँ यमुनातटपर शोभित उस पुरीमें पहुँचा तो मध्याह्न हो चुका था। कालिन्दीमें स्नान करके मैंने मध्याह्न-सन्ध्या की। इतनेमें गोपोंसे मेरे आगमनका समाचार प्राप्त करके वृषभानुजी वहीं यमुना-तटपर ही आ गये। उन्होंने अतिशय आग्रह करके मुझे आतिथ्यका आमन्त्रण दिया।

मैं उनके भवन गया और वहाँ सुरोंका भी न हो, ऐसा सत्कार-सविधि-पूजन हुआ। मैं आहार-ग्रहण करके किञ्चित् विश्राम करने लेटा तो वृषभानुजीने मेरे चरण दबाते-दबाते सङ्कोचपूर्वक कहा—'संसारमें श्रीचरणोंसे अधिक ज्योतिषका ज्ञान सुरोंमें भी सम्भव नहीं है। इस सेवकके भी एक कन्या है, एक उसका युग्मजप्राय अग्रज है!'

वे परम विनीत इससे अधिक नहीं कह सके। मैंने ही कहा उन्हें और अब समझता हूँ कि वहाँ मुझे इसी कार्यके लिए पहुँचनेकी प्रेरणा मेरे अन्तर्यामीने की थी। वहाँ न जाता तो मेरी गोकुल-यात्रा अपूर्ण रहती। मैंने कहा—'आप संक्षिप्त रूपमें ही नामकरण स्वीकार करें तो केवल स्वस्तिपाठ-पूर्वक मैं वह कर दे सकता हूँ। क्योंकि मैं आज ही सूर्यास्तसे पूर्व मथुरा पहुँचना चाहता हूँ।'

वृषभानुजी ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे उनको कोई अतर्कित ऐश्वर्य मिल गया हो। वे वहीं अपनी महारानीको बुला लाये; किंतु मैंने यमुना-तटपर बनी उनकी एकान्त बैठक स्वीकार की।

रानी कीर्तिदाकी क्रोड़ीमें दो शिशु थे। समान आयु और ऐसे समान रूपके कि उनको पृथक-पृथक उनके माता-पिताके लिए भी पहिचानना कठिन था। अतः उन्होंने दोनोंके करों तथा कण्ठोंमें ऐसे आभरण पहिना दिये थे कि दूरसे भी उनके बालक-बालिका होनेका भेद प्रतीत हो सकता था।

इतना सौन्दर्य, इतना सौकुमार्य भी सृष्टिमें सम्भव है ? मैंने गोकुल-में आज ही इन्द्रनीलमणि सदृश कृष्णचन्द्रको देखा है। वह सौन्दर्यघन ही यहाँ तप्तकाञ्चन गौरवर्णमें सम्मिलित सिन्दूराभा लेकर युगल मूर्ति बन गया है ? वह ये दोनों हैं या ये वहाँ थे ? मैंने ध्यान करनेका प्रयत्न किया; किंतु इतना अभेद—इतनी एकात्मता—अवश्य ध्यानने एक स्पष्ट अन्तर लक्षित कर दिया। बालक दोनों ही—गोकुलका भी और यहाँका भी—सच्चिदानन्दघन हैं ; किंतु बालिका तो शुद्ध आह्लादघन—स्वयं आह्लादकी अधिष्ठात्री हैं।

मैंने यहाँ भी संक्षिप्त गणपति पूजन करके स्तस्तिपाठ किया और बालकको गोदमें लिया—'आप श्रीनन्दरायके अभिन्न सखा हैं। आपका यह कुमार उनके पुत्रका नित्य सखा है। उन नन्दनन्दनके अग्रज हैं बल—अतः यह सुबल। इसकी अङ्गकान्ति, इसका सौन्दर्य एवं शील उनके ही समान; किंतु यह सदा सौम्यशील, स्नेहमय रहेगा।'

बालिका मेरे अङ्कमें आयी तो मैं कुछ काल तक स्वयंको ही विस्मृत हो गया। उसके वे पङ्कज-चारु श्रीचरण ! वह मेरे मुखकी ही ओर देख रही थी। मैंने किसी प्रकार कहा 'यह आह्लादकी–आराधनाकी अधिष्ठात्री राधा।'

'इसका शील ?' रानी कीर्तिदाने सङ्कोचपूर्वक पूछा। आर्य माताको सुता केवल शीलवती चाहिए। पुत्रीको धन मिले, सुख मिले, सन्तान मिले, सुन्दर पति मिले—सब मिले ; किंतु शील पहिले मिले। सब न मिले और शील मिले तो भी उसे स्वीकार है।

'इसका शील सृष्टिको शुद्ध प्रेमके स्वरूपका शाश्वत आदर्श बनेगा ! यह स्वयं साक्षात् महाभावकी मूर्ति है। इसके प्रेमका स्मरण पवित्र करता रहेगा अनन्तकाल तक प्राणियोंको। सम्पूर्ण सद्‌गुण इसकी चरणोपासनासे प्राप्त होंगे !' मैं जानता हूँ कि मेरे पास उस बालिकाके प्रभावको—गुण-गरिमाको प्रकट करनेके लिए शब्द नहीं हैं।

'इसका विवाह किससे होगा ?' मैं जानता था कि यह प्रश्न आने ही वाला है। प्रत्येक पुत्रीका पिता इसकी अवश्य जिज्ञासा करता है। यह उसकी चिन्ताका प्रधान विषय है और यहाँ तो यह पुत्री अपने दोनों अग्रजों-से कहीं अधिक माता-पिताके प्राणोंको प्रिय है।

मैंने कहा कि अनेक ऐसे कारण हैं, जिससे मैं एकान्तमें केवल वृषभानुजीको ही यह बात बतला सकता हूँ। जानता हूँ कि उसे वे रानी कीर्तिदासे अवश्य कह देंगे ; किंतु ये दोनों शिशु—मैं इन्हें अबोध माननेकी भूल कैसे कर सकता था। ये दोनों नर-नाट्य करते भले शिशु बने रहें ; किंतु इन चिद्घनके सम्मुख मुझे कोई अति साहस नहीं करना चाहिए। इनका पुनीत प्रेम स्वाभाविक रूपमें ही पनपना उचित है। उसमें मेरी सम्मतिका संस्कार पड़ना उचित नहीं।

मेरा उस समयका सोचना उचित था। वृषभानुजी मुझे एकान्त कक्षमें ले गये। मैंने वहाँ कह दिया—'आपकी तनया नन्दनन्दनकी अभिन्न सहचरी हैं।'

'आप यह विवाह करा दें!' वृषभानुजीने आग्रह किया।

मैं यह आग्रह कैसे मान लेता। सृष्टिकर्त्ताने यह सौभाग्य अपने लिए सुरक्षित रखा है और वह भी संसारके सामने नहीं आना है। अनादि दम्पतिका विवाह कैसा ? मेरे समीप बहाना था—'मैं यदुकुलका आचार्य हूँ। मैं कोई संस्कार कराने लगूँगा तो कंसको नन्दतनयके सम्बन्धमें सन्देह होगा। रोहिणीजी नन्दभवनमें हैं ही। देवकीको अष्टम सन्तान कन्या हो, यह बात बहुत असङ्गत है। वसुदेवजीसे नन्दरायका सौहार्द है। अतः कंसके सन्देहको पुष्ट करेगा मेरा नन्दनन्दनके किसी भी संस्कारमें कोई सहयोग देना।'

यह बात वृषभानुजीकी समझमें शीघ्र आ गयी। मैं गोकुलसे तो किसी प्रकार बच आया था, किंतु वृषभानुजीकी अपार दक्षिणा मुझे लेनी पड़ी। वह सब मैं वहीं छोड़ आया हूँ। मेरे आग्रहपर उन्होंने उसे ब्राह्मणोंमें वितरित कर देना स्वीकार कर लिया है।

'इस छोटे कुमारका विवाह वृषभानुजीकी कन्यासे होना है ?' वसुदेवजीने अन्तमें पूछ लिया।

'आपको वह पुत्रवधू नहीं प्राप्त होगी।' गर्गजी अब चौंके। उन्होंने वसुदेवजीके सम्मुख जो कुछ कहा था, वह सब नहीं कहना था। अब उसे सम्हालना आवश्यक हो गया—'वह व्रजसे बाहर जानेवाली ही नहीं है। आपके कुमार तो राजकन्याएँ लावेंगे—इतनी राजकन्याएँ कि एक नगर बस जायगा उनकी ही सन्तानोंसे।'



भूम्युपवेश

मुझ सुषमाका नाम शरीरके भारी होनेके कारण पीवरी पड़ गया था बालकपनमें ही ; और तभीसे यही मेरा नाम बन गया। हम स्त्रियाँ थोड़ी अधिक मोटी हुईं और लोग पीवरी कहने लगते हैं। मुझे तो अपनी यह काया प्यारी लगती है। केवल एक कठिनाई है, मैं दौड़ नहीं सकती। महिलाओंका—लड़कियोंका भी दौड़ना-कूदना कोई अच्छी बात तो नहीं है। मुझे साधारण श्रमसे भी स्वेद अधिक ही आता है और श्वासकी गति भी शीघ्र बढ़ जाती है।

प्रायः सब सहेलियाँ पितृगृहमें मेरा परिहास करती थीं और अब गोकुलमें गोपियाँ करती हैं। मुझे बुरा नहीं लगता। क्रोध कोई भला क्यों करता है ? हँसना-हँसाना और आनन्दमग्न रहना ! मनुष्य क्यों दुःखी हो और दूसरेको दुःख दे। मुख लटकाकर बैठना मुझे कभी नहीं आया। दूसरी भी कोई रूठकर बैठती है तो मुझे हँसी आती है।

आज तो आनन्द मनाने, गाने-बजानेका विशेष दिन है। क्या हुआ जो मैं ऋषि-मुनियोंके समान बहुत अँधेरे नहीं उठा करती। आज मैं देरतक सोती न रहूँ इस चिन्तामें पता नहीं मुझे निद्रा भी आयी या नहीं। आज हमारा नन्हा युवराज सूर्य-दर्शन करेगा। महर्षि शाण्डिल्यने मुहूर्त-निश्चय करनेमें बुद्धिमानीकी है। कई बार ये ऋषि-मुनि अपने विधि-विधानमें ऐसे पड़ते हैं कि हम गृहस्थोंकी सुविधा—हमारे भाव समझनेका तनिक भी कष्ट नहीं करते।

सुकुमार नन्दनन्दन अब चार मासका हो रहा है। वह कबतक कक्षमें रहेगा ; किंतु पिछले महीने उसके भास्कर-दर्शनकी चर्चा चली तो मैंने विरोध किया था। अब अनुकूल समय आया है। देवर नन्दन कहते थे—शिशुके सर्वाङ्गपर सूर्य-रश्मि पड़नी चाहिए और उदित होते सूर्यका दर्शन तो लोग अशुभ मानते हैं। यह हेमन्तका प्रारम्भ महर्षिने उपयुक्त मुहूर्त माना है। अब शीतके कारण सूर्य विषम-रश्मि नहीं रहा।

मैं कल सायङ्काल ही देख आयी थी कि गोकुलका पूरा पथ मेरे ज्येष्ठ अरुण-वितानोंसे आच्छादित करवा रहे हैं। सेवकों तकको आजके लिए पावक-वर्णी परिधान दे दिया गया है। मैं जब कभी लाल लहँगा और चूँदरी पहिनती हूँ, स्वामी कहते हैं—'तुम तो बुढ़ापेमें भी बीरवहूटी लगती हो !' किंतु आज तो इस अरुण रङ्गका ही अवसर है। सभी आज इसी वर्णको अपनावेंगी। आजके लिए ही तो मैंने माणिक्यमण्डित कङ्कण और कण्ठाभरण बनवाये थे।

आजका रविवार आदित्याराधना दिवस है। मैंने कल ही भगवती पूर्णमासीसे सुन लिया है कि आज सब लवण-रहित आहार करेंगी। मैं तो वैसे भी मधुर रस ही रस मानती हूँ। भवनके सम्मुखका पथ मैंने बहुत प्रातः कुंकुमके पुष्प बनाकर अलंकृत कर दिया है। द्वारपर करवीर-पुष्पोंकी वन्दनवार लगा दी है।

'आज तेरी पीवरी तायी तो सबसे पहिले पधारीं !' रोहिणी रानीने नन्दभवन पहुँचते ही लालको मेरे अङ्कमें दे दिया। कितना सुकुमार है यह। इसके इन अङ्गोंसे भास्कर-किरणें सही कैसे जायँगी ? मुझे स्वयं शीतकाल-में भी आतप कम ही सहन होता है और यह तो नवनीत-कलेवर है।

रक्तचन्दन-चर्चित प्राङ्गण, कुंकुम-अङ्कित पथ, अरुण पद्म बने पथ और करवीर कुसुममण्डित गृहद्वार, पूरा गोकुल आज लाल-लाल हो रहा है। सबने ही आज लाल वस्त्र पहिने हैं। स्तम्भोंको लाल कौशेयसे अलंकृत कर दिया गया है। गोप-गोपियाँ और मैं जानती हूँ कि मेरे ही गोष्ठके समान सबके गोष्ठोंकी गायों, वृषभों, बछड़ोंको भी माणिक्य और पद्मराग मणियोंके अलङ्करण आज रागोद्दीप्त कर रहे हैं।

महर्षि शाण्डिल्य तथा उनकी मुनिमण्डली सदा अरुणाभ वल्कल पहिनने वाली है; किंतु शोभा तो है आज मेरे देवर नन्दरायके श्रीअङ्गकी इन वस्त्रोंमें और देवरानी यशोदा जवाकुसुम-वर्णी कौशेय वस्त्रोंमें मुझे वधूटी लग रही हैं। मैंने उनके अङ्कमें नीलमणिको दे दिया है और अरुण वस्त्रोंकी आभासे अरुणाभ हो आये इसके अङ्ग-प्रभातके किञ्चित् पूर्व अभी पावसमें जब मेघोंपर अरुणिमा बिखरती थी—नहीं, यह शोभा किसीसे तुलना करने योग्य नहीं है।

सब तो हमारे गोकुलमें सूर्योदयसे पूर्व स्नानके अभ्यासी हैं। आज तो सब आ गये हैं अँधेरेमें ही नन्दभवन। महर्षिने सूर्योदयसे पूर्व ही पूजन

प्रारम्भ कर दिया है। अच्छा हुआ कि गणपति-पूजन, नान्दीमुख श्राद्धादि सम्पन्न हो चुके।

देवरने भगवान आदित्यको उदय होते ही अर्घ्य अर्पित किया। महर्षि कहते हैं—'भास्करकी रश्मियाँ अरुणिमा त्यागकर उज्ज्वल हो जायँ तब शिशु आवेगा कक्षसे बाहर।'

मुझे बहुत निष्ठुर विधि लगी यह; किंतु इतना अच्छा हुआ कि स्वस्तिपाठ, शंख-ध्वनिके मध्य यशोदा रानी अपने अङ्कमें लिए श्यामको बाहर गयीं कक्षसे और शीघ्र लौट आयीं। मुझसे तो सहन नहीं हो सका यह दृश्य। मैंने नेत्र बन्द कर लिये थे। केवल शिशुके करोंमें करवीरके कुछ पुष्प दिये महर्षिने मन्त्र-पाठ करके और वह कक्षमें आ गया।

जेठानी तुङ्गी कहती हैं—'तू बहुत भीरु है। सूर्य नारायण हैं। अतिशय कोमल सदय अन्तःकरण है उनका। शिशु कक्षसे बाहर आया तो क्षणार्धमें ही शुभ्र झीना मेघावरण उन्होंने स्वयं अपने ऊपर ले लिया था।'

मैंने भी देखा था—प्राङ्गणमें स्वर्णके बृहत् थालमें रक्त-चन्दनसे कमलाङ्कन किया गया था और उसकी कर्णिकापर आदित्य बीजाङ्कित सूर्य-मण्डल बना था। व्रजराजके वामपार्श्वमें लालको अङ्कमें लिए देवरानी बैठ गयीं तो मेरा विशाल उनसे सटकर खड़ा हो गया था और मैं भी तो उनके पीछे ही थी।

कुंकुम-रंजित अक्षत, रक्ताम्बर, रक्षासूत्र, रक्तचन्दन—कृष्णचन्द्र कितने कुतूहलसे इन सबको देख रहा था। वह तो इनमें-से किसी भी वस्तुको उठानेके लिए झुका पड़ता था। हाथ-पैर हिलाकर उसका आजका किलकारी लेना—कितना आनन्दमग्न था वह आँगनमें आकर। चकित-चकित देख रहा था चारों ओर और लगता था कि दाऊको, मेरे विशालको, अर्जुनको, ऋषभको, सबको समीप बुला रहा है। सब तो उसके आस-पास ही खड़े थे। सबको आज अरुणाभरण और लाल परिधान पहिनाया गया था।

महर्षिने पुष्पाञ्जलि अर्पित करायी और कुंकुमका तिलक कर दिया इसके भालपर। अब देवरानीको कक्षमें आनेकी अनुमति मिल गयी है। हम सब तो यहाँ रात्रि तक गायेंगी—उत्सव मनायेंगी।

× × ×

मैं ही सबसे अधिक भीत थी, सबसे अधिक विरोध था मेरे मनमें नन्दनन्दनको कक्षसे बाहर लाकर अभी आतपके सम्मुख करनेका और अब मुझे ही सबसे अधिक उत्सुकता हो गयी है। कितना प्रसन्न हुआ था मेरा कृष्ण कक्षसे बाहर खुलेमें आकर ! इसका वह किलकना, वह आनन्दमग्न होकर हाथ-पैर चलाना मुझे क्षणभरको भी भूलता नहीं है।

शिशु अब खुलेमें आना चाहता है। यह अब बैठनेका प्रयत्न करता है, मैं यह देख आयी हूँ। पलनेमें उलट-पलट होता है। आस्तरणको अस्त-व्यस्त करता ही रहता है और पेटके बल होकर उचकनेकी चेष्टा करता है।

देवरानी कहती हैं—'व्रजपति इसके योग्य कोई आस्तरण नहीं ला देते हैं।'

इसके योग्य आस्तरणके लिए मैंने कई बार अपने स्वामीसे कहा है। मैं इसकी तायी हूँ ; किंतु इस कुसुम-कलेवरके योग्य आस्तरण तो मैं भी सोच नहीं पाती हूँ। यह मुझे देखकर किलकता है, अङ्कमें आनेको अपने कर उठाता है ; किंतु झिझक-झिझक जाती हूँ। मेरे ये मांसल कर भी कठोर ही हैं इसकी कायाके लिए। मेरे स्पर्शसे इसे कष्ट तो नहीं होगा ?

लेकिन ऐसे शिशुको अङ्क और पालनेमें ही तो नहीं रखा जा सकता। इसके अङ्गोंमें शक्ति आवेगी जब यह भूमिपर बैठेगा, लेटेगा और सरकने-चलनेका प्रयत्न करेगा। यह मेरे सम्मुख भूमिपर कर टेककर बैठेगा और मेरे विशालसे 'हाँ-हूँ' करेगा—कितनी साध है मेरी यह देखनेकी।

हमारा यह नीलमणि भूमिपर बैठेगा, घुटनोंके सहारे धीरे-धीरे चलेगा, मेरी देवरानीकी या रोहिणी जीजीकी अँगुली पकड़कर खड़ा होगा ! मुझे 'तायी' कहेगा !

मैं उसी दिनसे—इसके कक्षमें बाहर आनेके उस दिनसे यही सब स्वप्न रात-दिन देखती हूँ और आज यह भूमिपर बैठेगा। महर्षि शाण्डिल्यने मुहूर्त शीघ्र निकालकर अच्छा ही किया। यह अब पाँच माससे कई दिन अधिकका हो गया है।

आज नीलमणिका भूम्युपवेशन संस्कार है। यह भूमिका स्पर्श सहन कर सकेगा ? हृदय बहुत वज्र बनाना पड़ेगा सभीको ; किंतु पलनेमें और गोदमें ही शिशुको सदा रखनेसे तो उसके अङ्गोंका विकास नहीं होगा।

गोकुलकी पूरी गलियाँ गोमयोपलिप्त की गयी हैं। मुझे हँसी आती है; किंतु किया तो मैंने भी यही है। ऐसा उत्साह, इतना आनन्द है कि हम सबका उद्योग कहता है—मानो वह नन्हा व्रजयुवराज आज ही ठुमकता हमारे ही आँगनमें आनेवाला है। सबने अपने द्वार, आँगन सजाये हैं। मेरे स्वामी कहते थे कि किसी अलक्ष्य-करने पूरा महावन सजा दिया है। तृणों, तरुओं तकपर पुष्पोंके रङ्ग-बिरंगे मण्डल प्रकट हो गये हैं। मैंने कल कालिन्दी-पुलिनपर देखा—पूरा पुलिन रेणुकणोंके स्वतः निर्मित चित्रोंसे इतना सुसज्ज—कोई कुशल कलाकार भी क्या सजावेगा इस प्रकार।

शालिचूर्ण, हरिद्रा, कुंकुमादिसे गोकुलकी गली-गलीमें आज कुसुमाङ्कन हुआ है। आज ही तो गोपियोंको अपने चित्राङ्कनकी कलाको प्रकट करनेका अवसर मिला है। तोरण-बन्दनवार यहाँ प्रतिदिन बदलते हैं। अब हमारे गोकुलमें कोई दिन नहीं होता जब उत्सव न हो। पौष जैसे खरमासमें भी पुत्रोंकी षष्ठी, नाक्षत्रिक उत्सव पड़ते ही रहे हैं और आज तो नीलमणिका – हमारे नन्हें युवराजका भूम्युपवेशन है।

मैं रोहिणी जीजीकी कलाको मान गयी। कितने एकान्त मनसे, कैसे सुन्दर कुसुम अंकित किये हैं उन्होंने। इतने चटकदार रङ्ग चुनकर शिशुकी मनोवृत्ति समझनेका उत्तम परिचय दिया उन्होंने। कन्हाई धराका कठोर स्पर्श न सह सके और रो पड़े—इस अवसरपर शिशुका रुदन शुभ नहीं होता। वह इन चमकते रङ्गोंके पुष्पोंको देखनेमें लगेगा तो सम्भव है, अपना कष्ट कुछ क्षणको भूल जाय।

महर्षि शाण्डिल्यने अब गणेश-नवग्रहादिका पूजन समाप्त कर दिया है। अच्छा ही हुआ यह विलम्ब, शीतल धरा कुछ उष्ण हो गयी। अब कृष्णचन्द्रको इसका स्पर्श सुखद लगेगा।

देवर नन्दराय अब पृथ्वी-पूजन कर रहे हैं। धरा देवी हैं, इनके भी तो हृदय होगा और उसमें भी तो वात्सल्य होगा? भगवति! हमारा यह श्याम कितना सुकुमार है, यह समझकर आप इसे अङ्कमें धारण करना!

महर्षि शाण्डिल्य मुनिगणोंके साथ सस्वर पृथ्वी-सूक्तका पाठ कर रहे हैं। सर्वसहा, धैर्यमूर्ति इस कृष्णको धारण करें! इसके लिए मङ्गलमयी हों! महर्षिने अर्घ्य दिया, पूजन किया और अब आज्ञा दी है। मैं अपनी इस देवरानी यशोदाको कैसे समझाऊँ? मेरा हृदय ही कहाँ कम हिचक रहा है।

यह शंख, भेरी, दुन्दुभि, शृङ्गोंका तुमुलनाद और जयध्वनि ; किंतु नीलमणिको उठाये मेरी देवरानीके कर काँप रहे हैं। मैं सहायता करूँगी इसकी ; किंतु श्याम तो दोनों चरण नचाने लगा है। यह स्वयं लटक गया है। इसे लगता है कि रङ्गोंके बने पुष्प बहुत प्रिय लगे हैं। वह इन्हें लेनेको उभका पड़ता है।

'जीता रहे ! युग-युग जीये मेरा लाल !' मेरा आशीर्वाद—मुझ जैसी सबका आशीर्वाद और इस समय तो गगन गूँज गया है गोपोंकी कण्ठ-ध्वनिसे—'श्रीव्रजराज कुमारकी जय !'

'जय मेरे लालकी ! नन्दलालकी जय !' यह अपने पैर अर्ध-कुञ्चित करके कोमल करोंको भूमिमें टेककर बैठ गया है। कितना प्रसन्न है ! कितने ध्यानसे सम्मुख बने बड़े-से पुष्पको देख रहा है ! बुद्धिमान है मेरा लाल ! समझता है कि कोई भी कर उठावेगा पुष्प—पकड़नेको तो बैठा नहीं रह सकेगा। अपनेको ठीक सम्हाले बैठा है।

यशोदाने इसके दोनों ओर अपने हाथोंकी ओट बना रखी है। अब यह 'हूँ, हाँ' करते मुड़ा—मैयाकी ओर देखनेके प्रयत्नमें उसके हाथोंपर लुढ़क गया। हो गया—इतने क्षण यह भूमिपर बैठा रहा—यही क्या कम है। कितने अरुण हो गये हैं इसके नितम्ब इतनी-सी देरमें।

'बालकको अब अधिक प्राङ्गणमें नहीं रहना चाहिये !' जेठने कितने अवसरपर यह बात कही है। महर्षिने स्वीकृति दे दी। यह कहाँ देर तक अभी आतपमें रहने योग्य है।

कक्षमें मातृ-पूजन, गुड़-घृतसे वसोर्धारापात, नीराजन करके महर्षिने विप्रवर्गके साथ इसको अभिषिक्त किया है और इसके करमें रक्षा-सूत्र बाँधकर भालपर कुंकुम-तिलक लगाकर अक्षत लगा दिये हैं। यह इसका अक्षतयुक्त तिलकाङ्कित भाल ; किंतु मुझे तत्काल राई-लवण उतारना है। इसको किसीकी कुदृष्टि नहीं लगनी चाहिये।



अन्न-प्राशन

मैं निराश हो गया था। मेरी कन्या यशोदाने अन्ततः इतनी बड़ी आयुमें पुत्र पाया और ऐसा दौहित्र—इस नीलसुन्दर दौहित्रपर तो मैं स्वयं, मेरा सर्वस्व न्योछावर है।

क्या करूँ, नन्दराय मानते नहीं हैं, अन्यथा मैं तो चाहता हूँ कि यशोदा इस लालको लेकर कुछ मास तो मेरे यहाँ रह आवे। यह नन्हा अभीसे अपने अग्रज दाऊको देखे बिना रोने लगता है; किंतु रोहिणी भी तो मेरी पुत्री ही हैं। वे अपने इस गोप पितृव्यके गृहको भी अपने पदोंसे पवित्र कर दें तो मैं धन्य हो जाऊँ।

मेरी प्रार्थना सुनी नहीं जायगी—जानता हूँ। मेरा यह दौहित्र है ही ऐसा कि इसीमें सबके प्राण बसते हैं। नन्दरायके सब भाई, गोकुलके सब गोप ही नहीं, उनके शिशु भी इसके बिना दो घड़ी रहना नहीं चाहते और मैं ही कैसे कह दूँ कि सब गोकुलको सुनसान बनाकर मेरे ग्रामको महामङ्गल प्रदान करें।

मैं यहाँ रह नहीं सकता। पुत्रीके ससुरालके ग्रामका पानी कैसे पी सकता हूँ। आता हूँ—इसे देखे बिना दो सप्ताह व्यतीत होते हैं तो लगता है कि दो कल्प व्यतीत हो गये; किंतु मैं यहाँ रात्रि तो व्यतीत नहीं कर सकता।

महर्षि शाण्डिल्यने मुहूर्त निश्चित किया है। माघ शुक्ल चतुर्दशीको गुरुवार, रेवती नक्षत्रमें मीनका चन्द्र है और लग्नेशपर उसकी पूर्ण दृष्टि है। वणिजकरण, शुभयोगमें आज इसका अन्नप्राशन है। कहाँ सोच पाया—इसके माताके उदरमें आनेके दिनसे सोचता रहा हूँ कि इसको इस अवसरपर क्या दिया जा सकता है; किंतु कोई वस्त्र कोई रत्न, कोई वस्तु इसके उपयुक्त ही नहीं लगती।

मुझे कितना सम्मान देते हैं नन्दराय! यह तो साधारण बात है कि इस अवसरपर मैं इनके सब भाइयों और उनकी पत्नियोंके लिए वस्त्राभरण लाऊँगा। वे भी तो मेरी पुत्रियाँ ही हैं। इन सबके शिशु मेरे दौहित्र।

परमात्मा ऐसी पुत्री प्रत्येक पिताको दें। महाराज उग्रसेन भी रोहिण रानीको पुत्री कहकर पुलकित होते थे। वे पुरुवंशकी मानिनी कन्या मुझे पितृव्य कहती हैं। मेरी लायी साड़ी ही आज मेरे सम्मानके लिए उन्होंने भी धारण की है और आभरण भी। मुझसे कह रही थीं—'पितृव्य ! आज आपके दोनों दौहित्रोंका—अरे नहीं, सबके सब दौहित्रोंका एक साथ अन्न-प्राशन है।'

दोनों ही क्यों—गोकुलके सब शिशु मेरे दौहित्र हैं और आज उनमें-से अधिकांशका अन्न-प्राशन संस्कार है। मेरे जैसा भाग्यशाली मातामह संसारने और पाया है कभी ?

श्याम आज पाँच मास इक्कीस दिनका हो गया है। आज इसका अन्न-प्राशन है। अन्न-प्राशन है आज इसीके साथ दाऊका, ऋषभका, विशालका, अर्जुनका, भद्रका और भी दूसरे शिशुओंका। हम गोप ऐसे सामूहिक संस्कारोंके अभ्यस्त हैं। हमारे यहाँ तो एक साथ बहुत-सी सगाइयाँ और विवाह तक हो जाते हैं। दाऊ और इसके समवयस्क अबतक केवल दूध-दधि-नवनीत पर रहे हैं। आजसे इन्हें अन्न प्राप्त होगा। गोकुल-के ये बालक अद्भुत हैं। इनमें-से एक भी कोई किसी पदार्थके लिए रोया-मचला नहीं।

बेटी रोहिणी कहती थीं—'पितृव्य ! तुम्हारा यह बड़ा दौहित्र तो कोई आकांक्षा ही नहीं करता। कभी तो मुझे पता लगा होता इसके रोनेसे कि इसे कब क्षुधा लगती है। मैं भूल जाऊँ तो यह भी भूखा चुपचाप बैठा रहेगा। जबसे इसे अनुज मिला है, यह बस इसीके समीप बैठा रहेगा। अपनेको तो यह और भी भूल गया है।'

मेरी महारानी बेटीका कुमार है, कोई दरिद्रका पुत्र है कि तुच्छ पदार्थोंकी कामना करेगा ! इसे बड़ा होने दो, सारा संसार इससे अपनी कामनाकी पूर्ति पावेगा ! यह सबका शरणद, पालक बनेगा !

यशोदा कहती है—'दाऊने सामान्य शिशुकी यह प्रकृति ही प्राप्त नहीं की कि कोई वस्तु मुट्ठीमें आयी तो मुखमें डाल ली। इसकी मुट्ठीमें वस्तु आते ही यह इधर-उधर देखने लगता है कि किसको दे डाले। अपने खिलौने किसी भी शिशुको देकर ताली बजा-बजाकर झूमता है। जन्मसे ही इसे देना ही देना आता है। अब तो कोई शिशु समीप न हो तो इसे दुग्धपान

कराना कठिन हो गया है। दूसरोंको नहीं दे लो, तो एकाकी कुछ यह लेनेको उद्यत ही नहीं होता।'

अब आज इसका अन्न-प्राशन है। मेरे नेत्र सफल होंगे आज। महर्षि शाण्डिल्यने देव-पूजन करा दिया है। पितृतर्पण हो चुका। ब्राह्मण तृप्त कर दिये गये और उन्हें आज तो अनेकोंने दक्षिणा दी है। मैं ही कहाँ अकेला मातामह हूँ यहाँ। मेरी सब पुत्रियोंके पिता आये हैं और उनमें किसीका उत्साह, औदार्य मुझसे कम तो नहीं है। मेरे राम-श्यामपर इन सबका स्वत्व मुझसे पहिले।

गायोंको, पशु-पक्षियोंको भी तृप्त कर दिया गया है। मनुष्योंको—याचकोंको, अतिथियोंको तो गोप ढूंढ़-ढूंढ़कर खिला चुके। लेकिन नन्दरायका यह आग्रह कोई गोप कैसे सुन ले कि—'आप सब भोजन कर लें तो सबके प्रसादसे शिशुको पवित्र होनेका सौभाग्य प्राप्त हो।' यह कृष्णचन्द्र सभीका तो अपना ही है। पहिले तो विप्रवर्ग भी भोजन नहीं करना चाहता था; किंतु मर्यादाका मान रखनेके लिए आग्रह नहीं कर सका।

दूर-दूर तकके गोष्ठोंसे भरे छकड़े आ रहे हैं; किंतु सब गोपोंका आग्रह उचित है—'हम आज अपने युवराजका प्रसाद लेंगे!'

आज सब आमन्त्रित हैं। पूरा व्रजमण्डल आमन्त्रित है और नन्दगृहमें मुझे तो कहीं भी जानेमें बाधा नहीं है। अन्तःपुरमें भी सब मेरी पुत्रियाँ ही हैं। मैं वृद्ध हो गया, इतना राशि-राशि पक्वान्न, इतनी विविधता बना लेना इन गोप कन्याओंको कबसे आ गया? कहीं इन्हींमें स्वयं अन्नपूर्णा तो नहीं आ छिपी हैं?

यह उज्ज्वल कौशेयका मण्डप, कदलीके सफल स्तम्भ। सुरभित धूपसे परिपूर्ण हैं दिशाएँ मेरे नेत्र धन्य हो गये। नन्दराय मेरे इस नीलोज्वल कमल लोचन दौहित्रको अङ्कमें लिए आ गये हैं। आज इसकी घुंघराली काली अलकोंमें मयूरपिच्छ लगा दिया है इसकी माताने। अलकें सुमन-ग्रथित हैं। यह भालपर कज्जलबिंदु लगाये कजरारे दीर्घ दृगोंसे इधर-उधर देखता हाथ हिला रहा है।

नन्दरायकी दक्षिण भुजासे सटकर उनके अङ्कमें ही दाऊ आ बैठा है और भद्र, विशाल, ऋषभ, अर्जुन—सब शिशु इनकी ही गोदमें—पास आ गये हैं। आज सारे गोकुलके शिशुओंका पितृत्व केवल नन्दरायको करना है। मैं यों ही तो नहीं कहता कि सबके सब मेरे ही दौहित्र हैं।

'बाबा ! सबसे पहिले मैं।' भगवती पूर्णमासीका यह अवधूत मधुमङ्गल बढ़नेके स्थानपर क्या छोटा हो रहा है ? मैंने देखा था यह आया तब यह लगभग पाँच वर्षका था और अब दाऊसे दो वर्ष बड़ा कठिनाईसे लगता है। कितना आग्रह किया सबने कि यह ब्राह्मणोंके साथ भोजन कर ले ; किंतु तब इसने किसीकी नहीं सुनी और अब कह रहा है—'मैं सबसे बड़ा हूँ ! मेरा अन्न-प्राशन पहिले करा दो !'

कितना प्यारा है यह। इसे पुकार लूँ कि यह मेरे हाथसे मोदक खाले ? मेरी मानता तो है—'आ लाल ! तेरा अन्न-प्राशन मैं कराऊँगा।'

यह मेरे अङ्कमें आ गया है। महर्षि शाण्डिल्यने अग्निदेवका पूजन करा दिया। रसेश वरुणदेव पूजित हो गये। अन्नके अधिष्ठाताको उनका भाग प्राप्त हो गया। अब मङ्गलगान, शङ्ख-ध्वनि, स्वस्तिपाठ जयनादके मध्य नन्दरायने नन्हा-सा ग्रास उठाकर दाऊके अधरोंसे लगा दिया है ; किंतु दाऊ तो अधर फड़काने लगा है। कुछ भूमिपर और कुछ उदरपर इसने गिरा लिया है। यह तो देखने लगा है नन्दरायके मुखकी ओर जैसे उलाहना देता हो—'बाबा ! यह क्या दे दिया मुखमें तुमने ? कुछ नवनीत, दधि देते ! यह क्या अद्भुत स्वाद !'

चपल मधुमङ्गल मेरी गोदसे उठकर वहीं दौड़ गया है। एक भी पूरा मोदक तो इसने नहीं खाया। मेरा ही दोष है। मेरे नेत्र तो नन्दरायके अङ्क-धनपर लगे हैं।

'लाल ! ये महर्षि कहते हैं—यह तू और ले ले !' दाऊ अब नन्दरायकी मनुहार सुननेसे रहा। यह अब मुख नहीं खोलेगा। अब तो इसके अधरोंसे कटुकषाय, अम्लादिको स्पर्शमात्र करा लो।

दाऊका मुख पोंछकर नन्दरायने यह तनिक-सा कुछ नीलमणिके अधरोंसे लगा दिया है। यह इसने अपने नन्हें, पतले लाल अधर फड़काये और मुख ही घुमा लिया है। यह मुख बना रहा है। अपने ओष्ठ विचित्र-विचित्र ढङ्गसे सिकोड़ रहा है। बाबा कैसा है यह इसका कि इतने बुरे स्वादकी वस्तुएँ इसके मुखसे लगा रहा है ?

कुछ मीठा ग्रास होगा। नीलमणिने तनिक चाटना प्रारम्भ किया है ; किंतु नहीं, इसे अभी मधुरसकी भी इतनी तीक्ष्णता सहन नहीं है। माताका दूध ही तो पीता है। मुख ही अब सीधा नहीं कर रहा है।

धन्य लाल ! इसे कहते हैं कि शैशवमें ही बालकका भविष्य दीख जाता है। दाऊ अन्ततः राजरानी रोहिणी बेटीका पुत्र है। यह अपनोंका रक्षक-सहायक होगा। नन्दरायकी भुजा पकड़कर बैठ गया है और अभी मुख ही नहीं खोलता था कि अब हठकर रहा है कि इसके अनुजको, इसके दूसरे सब भाइयोंको यह जो कटु, तीक्ष्ण, कषाय-अम्लादि कुस्वादु पदार्थ खिलाने हैं, सब इसे खिला दो ! सबके बदले यह खालेगा।'

'तू ही खा ले !' नन्दरायने हँसकर इसके मुखमें ग्रास दे दिया है। मुख खोलकर लिया है इसने। बिना अरुचि प्रकट किये खाया है। जमा बैठा है—'जितने ऐसे ग्रास और बालकोंको देने हैं—सब मुझे दे दो !'

यह मेरा लाल है ! दूसरोंके दुःख-विपत्ति आगे बढ़कर स्वयं अपने सिर लेनेवाला यह—यह है जो राजाधिराजका ऐश्वर्य अपने शैशवमें भी समेटे है।

नन्दरायने राम-श्याम दोनोंके अधर पोंछ दिये हैं। अभिनन्द (महा-नन्द) की पत्नी पीवरी बेटीने उठा लिया है अङ्कमें नीलमणिको किंतु यह दाऊ तो उठना ही नहीं चाहता।

'तू भद्रको भी खिलाने नहीं देगा ?' अब नन्दरायने समझा है। भद्र-को तथा दूसरे किसी भाईको—किसी सखाको अप्रिय वस्तु यह खिलाने नहीं देना चाहता। सबके बदले यह स्वयं खा लेगा। नन्दराय भद्रके अधरोंसे लगाने जा रहे हैं और यह मचला पड़ता है, रोकनेपर ही उतर आया है।

इस छोटे-से दाऊको कैसे समझाया जाय कि बालकोंका यह संस्कार आवश्यक है। जो वस्तु मुखमें देते ही इसने निकाल दी, वही दूसरे बालकों-को क्यों दी जा रही है ?

अब शीघ्रता करनी पड़ रही है नन्दरायको। दाऊ मचल रहा है। बालक भी कटु, कषाय, तीक्ष्ण, अम्ल, लवणको कैसे सह सकते हैं। कितने भी मधुर बनाये जावें ये रस, इन शिशुओंके सुकुमार अधरोंके लिए तो असह्य ही हैं। ये सब तो अभी मधुर भी नहीं सह पाते।

'बाबा ! मेरा अन्नप्राशन ?' मधुमङ्गल आ गया है फिर ; किंतु नन्दरायने हाथमें कटुरसका ग्रास उठाया है तो कैसा कूदकर दूर खड़ा है—'बाबा ! यह सब भी कोई भोज्य वस्तु है। यह विडालको दे डालो। अन्न-प्राशनके योग्य रस केवल मधुर है—मधुर मोदक !'

× × ×

आज ही यह पता लगेगा कि इन बालकोंकी रुचि किस ओर है । बड़े बनकर ये क्या करना चाहेंगे । श्रीनारायण कृपा करें ! हम गोपोंमें जो एक मति, एक रुचि चली आती है, इन बच्चोंमें भी बनी रहे ।

अब वाद्य बन्द हो गये हैं । महिलाओंका मङ्गलगान और बन्दियोंकी विरुदावली भी बन्द हो गयी है । सबको ही मेरे समान उत्सुकता है यह जाननेकी कि बच्चे आज क्या चुनते हैं ।

कक्षमें स्वर्णमुद्राओंकी, रत्नोंकी राशियाँ हैं, रत्नजटित नन्हें स्वर्ण-हल हैं, वस्त्र हैं, वेत्र हैं, रज्जु है, लेखनी है अत्यन्त सुन्दर तथा मनमोहक मसि-पात्र है । कौशेय परिवेष्टित ग्रन्थ स्वर्णपीठोंपर हैं । मुझे इन छुरिकाओं, नन्हें खड्गोंका रखना अच्छा नहीं लगता है । ये उत्तम कोशोंमें सही ; किंतु शिशु उन्हें निकालले सकते हैं । केवल नन्हें धनुष पर्याप्त थे । बहुत सावधान रहना पड़ेगा । चारों वर्णोंके प्रतीक रखने हैं, अतः चामर-व्यजन, हथौड़ी नन्हीं-सी—सभी उपकरण सजाये ही जाने थे ।

श्रीनन्दरायने, इनके दोनों अनुजोंने वस्तुएँ सब उत्तम रखी हैं । सुन्दर रखी हैं । इतनी आकर्षक कि किसीको भी उठानेको शिशुका मन ललक उठे । सबको मण्डलाकार द्वारके सम्मुख सजाया है । अब मेरा नन्हा व्रजराजकुमार क्या लेगा ? कैसी रुचि प्रकट करेगा यह ?

'लाल ! तू जा और खिलौने ले आ !' नन्दरायने दाऊको द्वारपर बैठा दिया है ; किंतु यह तो द्वारपर बैठकर दूसरे बालकोंको हाथ हिलाकर बुला रहा है । इतने खिलौने हैं, सब आओ और लो इनको !

अब यह लौट पड़ा है । बालकोंका हाथ खींचने लगा है । हठ करने लगा है कि सबको छोड़ दो । यह बार-बार भेजनेपर भी लौट आता है । सब नहीं लेते तो यह भी कुछ नहीं लेगा । नन्दराय—महर्षि सब पुचकारते हैं, प्रोत्साहित करते हैं ; किंतु यह अकेले कुछ नहीं लेगा—प्रगट तो हो गयी इसकी रुचि ।

'भैया ! तू कोई खिलौना उठा ला यहाँ और अपने इस अनुजके साथ यहीं खेल !' महर्षिकी यह बात दाऊने समझ ली है । वह समझ गया है कि खिलौने उठाकर इसे ही लाने हैं ।

'क्या उठायेगा यह ?' सबके नेत्र लगे हैं । सबका हृदय धड़क रहा है ; किंतु इसने वेत्र ठीक उठाया । यह सबका शासक ही तो बनेगा । इसके

करोंमें राजदण्ड शोभित होगा—पर यह हल क्यों ? इसने तो हल उठा लिया है दूसरे करमें ।

मैंने सुन लिया है, मेरी यशोदा बेटीने हँसकर पूछा है—'यह क्या ? राम कृषक और गोपाल दोनों बनेगा ?'

रोहिणी तो रानी बेटी हैं । इनके स्वरमें उचित औदार्य है—'यह पुरानी भूल सुधार दे तो उत्तम ही है । वृष्णि-वंश एक होकर भी मथुरा और गोकुल में विभक्त हो गया, यह अच्छा तो नहीं था । व्रजराजके वे भाई इस नीलमणिको देखकर गोकुलमें ही आ बसें तो मुझे हर्ष होगा । यह राम अपने अनुजसे दो पद आगे बढ़कर गोपालके साथ कृषक भी बन जाय तो बहुत उत्तम ।'

कहाँका गोपाल—मुझे तो इसके करका वेत्र राजदण्ड दीखता है और यह पूरी पृथ्वीका कण्टक कृषकके समान निकाल देगा ।

सब गोप-बालक ही तो हैं और शिशु होनेपर भी गोपोंकी सहज समान बुद्धि ही सबमें है । यह विशाल, ऋषभ, अर्जुन, भद्र—सब केवल रज्जु और वेत्र दण्ड लेते हैं । अब किसी शिशुको दूसरा कोई खिलौना नहीं देखना है ।

सबसे अन्तमें चला है यह मेरा व्रजयुवराज । कटिमें किंकिणी और चरणोंमें नूपुर—करोंमें कङ्कण, कण्ठमें छोटे शङ्खोंके साथ व्याघ्र-नख और मुक्तामाल, यह अपनी घुँघराली काली अलकें लहराता, अरुण पद्म-पदोंको खींचता, घुटनोंके सहारे किलकता चल पड़ा है । इतने खिलौने देखकर प्रसन्न हो गया है ।

यह तो चामर-व्यजनकी ओर पीठ करके बैठ गया । एक ओरसे सब खिलौनोंकी ओर संकेत कर रहा है हाथ घुमा-घुमाकर और नन्दरायको समीप बुला रहा है ।

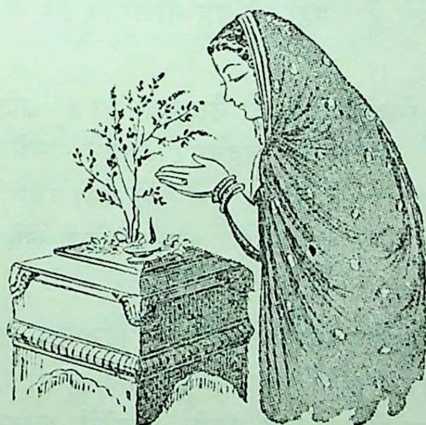
'लाल ! तुझे लेना हो वह ले ले !' उपनन्दजीका पुचकारना क्यों सुने यह । इसे कहाँ एक-दो लेना है । इसे तो सब लेना है और इतना समझता भी है कि सब इसके छोटे करोंमें नहीं आवेंगे । सबके मध्यमें जमकर बैठ गया है सबका स्वामी बनकर और अपने बाबाको बुला रहा है—सब उठा ले चलो । इधर-उधर मुख घुमाकर किलक रहा है ।

'कुमार सर्वतोमुखी उन्नति करेगा। महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं—'यह सबका—सब साधनोंका अधिपति होगा।'

मधुमङ्गल कह रहा है—'बाबा! यहाँ कुछ तो मेरे लेने योग्य भी रखो। एक बड़ेसे थालमें मोदक अवश्य रख दो!'

अब मुझे विदा होना है। गोपोंका यहाँ आज सत्कार होगा। बेटी यशोदा व्यस्त हो गयी है इस नीलमणिको मेरे अङ्कमें देकर और यह तो मेरी उज्ज्वल श्मश्रुमें अपने कर उलझाता, नचाता किलक रहा है। इसे अङ्कमें लेकर उतारनेकी बात मनमें आती है तो बहुत व्यथा होती है। विदा-की बात ही किसीसे कहना कठिन है।

यह आ गया दाऊ और भद्र, ऋषभ, अर्जुन, विशाल—सब मुझ वृद्ध मातामहकी गोदमें ही बैठेंगे। ये प्रफुल्ल पद्म मेरे—इन सबको अङ्कमें लेकर आज मैं कितना प्रसन्न हूँ—वृद्ध सृष्टिकर्त्ता संसारको पहिले-पहिले बनाकर इतना संस्तुष्ट—ऐसा आनन्दित होता होगा?



शैशव

मेरा अर्जुन तो सीधा है, जन्मसे ही सीधा। इसे जहाँ बैठा दो, बैठा रहेगा; किंतु यह नन्हा अंशु नहीं मानता। सबेरे उठते ही रोने लगेगा कि इसे नन्दभवन ले चलो। जबतक नीलमणिके समीप नहीं पहुँचेगा, रो-रोकर हिचकता रहेगा। कितना भी कर लूं, स्तन मुखमें लेगा ही नहीं।

सबके शिशु ऐसे ही हैं। देवरानी अतुलाका तोक—यह सबसे छोटा नीलमणिकी दूसरी मूर्त्ति तो मानता ही नहीं, मेरा अंशु तो फिर भी उससे एक महीने बड़ा है। अतुलाका भद्र तो रात्रिको भी वहीं सोने लगा है; किंतु तोक – बीस दिनका शिशु भी कहाँ मानता है। वह भी सबेरे ही वहाँ पहुँचना चाहता है।

ये शिशु मान भी जायँ तो हम सबसे रहा जायगा? घरके कार्य मैं कैसे कर पाती हूँ, मैं ही जानती हूँ। वहाँ पहुँच जाती हूँ तब अपने अंशुको भी स्तनपान करा पाती हूँ। यहाँ तो वह नीलमणि ही नेत्रोंके आगे दीखता रहता है।

वह उस भूमि-स्पर्शके दिन ही बैठ गया था। व्रजेश्वरी उसे बैठाना ही नहीं चाहती थीं। मेरे बहुत कहनेपर बैठाने लगीं। बार-बार मुझे स्मरण दिलाना पड़ता था। बैठानेपर कुछ क्षण बैठा रहने लगा। उसे भी इतने सखा मिल गये। ये सब सटकर समीप बैठने लगे तो वह भी बैठने लगा।

कन्हाई स्वयं उठकर बैठ गया उस दिन तो कितना बड़ा उत्सव व्रजेश्वरीने किया। तब उन्होंने कहा—'कुबला! तू ठीक कहती है बहिन! इसको बैठनेका अवसर दिये बिना इसके अङ्गोंमें शक्ति नहीं आवेगी। आजका दिन तो तेरी सम्मतिसे देखनेको मिला है।'

उत्सव तो उचित है; किंतु व्रजेश्वरी आज मुझे ही उपहार देने लगीं। वे बड़ी हैं; किंतु कहीं अपनोंको भी भेंट दी जाती है। सब बालकोंका संस्कार साथ-साथ होता है; किंतु अपने पुत्रकी ही न्योछावर मिलने लगे माताको तो?

मुझे बुरा क्यों लगेगा ? मैंने तो अञ्चल फैलाकर ले लिया । व्रजेश्वरी उचित ही तो कहती हैं कि अर्जुन और अंशु दोनों उन्हींके पुत्र हैं । मैं तो उनके इन पुत्रोंको दूध पिलाकर पालनेवाली धात्री हूँ । अतुला तनिक तेजस्विनी है । उस दिन उसने कह दिया—'जीजी ! लाओ, तुमने धाम बना लिया मुझे भद्र और तोककी तो न्योछावर मैं लिए लेती हूँ ; किंतु कन्हाई-को बड़ा होने दो । वह अपनी इस छोटी चाचीका ही रहेगा !'

'वह बड़ा होकर क्या कुछ विशेष बनेगा ?' व्रजेश्वरीका कण्ठ भर आया था—'वह तो अब भी तेरा ही है ।'

यह नीलमणि सचमुच अपना है । मुझे समीप पाकर यह कितना उल्लसित होता है । इसे अङ्कमें लो तो किसीके भी अञ्चलमें मुख छिपाकर इसे स्तनपान करनेमें देर नहीं लगती और यह अब कुछ-कुछ बोलने लगा है । जब कहता है—'माँ ! दू !' तब वक्षसे दूध न टपकने लगे, ऐसी व्रजमें भला कौन होगी ।

दाऊ, वरूथप, विशाल, ऋषभ, भद्र, अर्जुन सब इससे सटकर बैठ जाते हैं और तोक, तेजस्वी, अंशु, देवप्रस्थादिको इसके समीप लिटा देना पड़ता है । ये सब कन्हाईके समीप किलकते रहते हैं । नन्दलाल पास रहता है तो इन्हें माताके स्तनपानका स्मरण ही नहीं आता । इनमें-से कोई तो कभी नहीं रोया ।

कृष्णचन्द्र बैठा-बैठा क्या देख रहा है ? अरे, अतुला ठीक कहती है—यह अपने मुखके प्रतिबिम्बको ही देख रहा है और उसे पकड़नेके प्रयत्न-में है । हममें-से सभीको हास्य रोके रखना है । यह अब दाऊसे, अर्जुनसे भी आग्रह कर रहा है इनके कन्धोंपर अपने नन्हे कर रखकर, संकेत करके कि 'नीचे रत्नभूमिमें जो दीख रहा है, उसे पकड़ो ! वह मेरे हाथ नहीं आता ।'

× × ×

मुझे तो प्रतिदिन प्रातः व्रजराजके भवन पहुँच ही जाना है । व्रजका नवयुवराज अब दोनों हाथों और घुटनोंके सहारे सरकने लगा है । बहुत ही सुकुमार है । तनिक-सी दूर जाता है और फिर पेटके बल लेट जाता है । वहीं भूमिपर मस्तक रखकर पीछे देखता है । इसकी धूलि सनी अलकें, कर कपोल और उदर—किंतु उठता है और रुनझुन नूपुर करते, किंकिणी तथा कङ्कणोंकी झङ्कार गुंजाते फिर सरकने लगता है ।

थक जाते होंगे इसके मृणाल मृदुल बाहु। मेरा ही जी इसे अङ्कमें उठा लेनेको करता है; किंतु शिशुको कुछ श्रम करना ही चाहिये। इसको कुछ देर स्वतन्त्र क्रीड़ा करने देना उचित है।

यह बार-बार कुछ चलता है और फिर लेट जाता है। अब यह बैठ गया है। कुछ पकड़ना चाहता है। अपने सामने चलती नन्हीं पिपीलिकाको पकड़नेका प्रयत्न कर रहा है। यह चञ्चल चींटी इसकी पकड़में ही नहीं आती। कितना प्रयत्नशील है।

बड़े भाईको बुला रहा है कि वह आकर इस भागती काली चींटीको पकड़ ले; किंतु दाऊ या विशाल कहाँ समझते हैं इसका संकेत। इसने पूरी हथेली धर दी चींटीपर, अब कहाँ जायगी? नीलमणि हथेली हटाकर देख रहा है, पर चींटी तो भूमिमें है नहीं। लो, वह इसकी लाल-लाल हथेलीपर ही दौड़ लगा रही है। अब हथेली उठाये ही किसी प्रकार बैठे-बैठे आ रहा है, हाँ-हूँ कर रहा है कि कोई यह काली वस्तु इसके हाथपरसे हटा तो दे।

× × ×

अब कृष्णचन्द्र घुटनोंके बल भली प्रकार चल लेता है—भाग लेता है। कितना भला-भोला है अलकोंसे घिरा इसका चन्द्रमुख। अभी चलता जा रहा था और मेरे आनेकी आहट मिली तो खिल-खिलाता मुड़कर मैया की ओर भागा है।

व्रजेश्वरी जीजीने दोनों हाथ बढ़ाकर अङ्कमें ले लिया। अब उनके कण्ठमें दोनों भुजा डालकर चिपक गया है और मुड़कर मेरी ओर देख रहा है। इसे लगा होगा—'यह तो चाची है इसकी। इससे डरकर भला क्यों भागा?' अपनी झेंप मिटानेको दोनों हाथ फैलाकर मेरी गोदमें आनेको झुक पड़ा है। मेरे कण्ठसे आ चिपका है अब यह! इस प्रकार यह किन्हीं-किन्हीं गोपियोंके अङ्कमें आता है। इसे लेनेको किसका मन नहीं मचलेगा; किंतु अब यही दूसरी बुलाती है भुजा फैलाकर, पुचकार कर तो यह किल-कता है, मुड़कर देखता है उसकी ओर और मेरे कण्ठसे चिपक जाता है।

'कुबला! तुम धन्य हो।' गोपी कहती है—'यह कुवलयदल श्याम तुमसे इतना हिल गया है। मेरे तो अङ्कमें ही नहीं आता है।'

'मेरा लाल भी तो है !' मेरा हृदय सचमुच हर्षसे गौरवसे द्विगुण हुआ जा रहा है किंतु यह चञ्चल अब अङ्कमें टिकता नहीं। यह तो उतरनेके लिए मचलने लगा।

'अब अपने लालकी सहायता करो !' गोपी हँस रही है। नीलमणि हाथ हिलाकर मुझे समीप बुला रहा है। क्या बात है ? शिशुकी समस्या भी तो उसे इतनी ही कड़ी लगती है, जितनी हम सबको अपनी समस्याएँ।

अच्छा ! यह पक्षियोंके प्रतिविम्ब पकड़ा रहा है और हाथ नहीं आते तो मुझे सहायता करनेको बुला रहा था। यह आँगनमें आया। और पक्षियोंकी भीड़ कहाँसे आ जाती है ? कपोत, काक, शुक, हंस, मयूर—गौरैयों और मैंनासे लेकर भारी सारस तक—इन सबको वनमें, सरोवरमें कहीं, स्थान नहीं, सब दलके दल आ जाते हैं इसी आंगनमें और शिशु तो इनको देखकर किलकते भागेंगे ही इनकी ओर। ये सब पता नहीं, कैसे इतने धृष्ट हो गये हैं ? उड़ते नहीं, कोई समीप आवे तो यहांसे फुदककर वहाँ बैठ जायँगे।

अब नीलमणि इनके प्रतिविम्ब पकड़ लेना चाहता है। मुझे इसका ध्यान प्रतिविम्बसे हटाकर कपोतोंकी ओर कर देना है। कपोत साधु पक्षी हैं। शिशुके समीप आकर भी चञ्चु नहीं चलाते तो जीजी इन्हें दाने डालती हैं। मैं मना करती हूँ—'ये इतने पक्षी इसीसे आँगनमें भरे रहते हैं दिनभर।'

'इन्हें देख-देखकर तेरा नीलमणि प्रसन्न होता है।' व्रजेश्वरी जीजी कहती हैं—'दाऊ और दूसरे शिशु भी इनके साथ खेलनेमें लगे रहते हैं।'

'ये कक्षोंमें चले आते हैं !' मैं कहकर भी रुष्ट नहीं हो पाती। 'वहाँ भी बालकोंके पास पहुंच जाते हैं ! इनसे भी दूर नहीं रहा जाता।'

कोई पक्षी किसी वस्तुमें चोंच नहीं लगाता।' जीजी सचिन्त कहती हैं—'किंतु मुझे तुममें कोई शिशुओंके समीप न हो तो सावधान रहना पड़ता है। पक्षी ही हैं, कोई भी चञ्चु चला दे सकता है और शिशु तो समझनेसे रहे। इन सबको पक्षियोंके साथ खेलनेमें आनन्द आता है।

नीलमणि अभी देहली नहीं पार कर पाता। हम सब प्रोत्साहित करती हैं। दाऊ बार-बार उठानेका यत्न करता है। यह अपने अनुजकी सहायताको सदा आ जाता है; किंतु आज कन्हाईने देहली पार कर ली है इस मयूरके पीछे घुटनों चलते हुए। यह तो होना ही था कि देहलीके समीप बैठकर, उसपर लेटकर हाथोंके सहारे बहुत सम्हालकर पार कर सका है।

मेरे तो प्राण पलकोंमें अटके थे। मैंने रोक तो दिया था हाथ पकड़-कर जीजीको संकेतसे ; किंतु हृदय धड़क रहा था। कहीं यह सुकुमार गिर गया तो ?

अब यह मयूरको भूल गया है। कितने ध्यानसे देहलीको देख रहा है। 'आज इसे किसीकी सहायताके बिना पारकर लिया है। कितनी अधिक ऊँची है !' अब इसे दुबारा पार करेगा। पार करना जो आ गया है इसे। हम दोनोंको चुपचाप देखना है।

बहुत प्रिय है इसे पानी। एक बूंद पानी भी मिल जाय तो उसे अपने हाथोंसे फैलाता रहेगा। अभी दो बार देहली पार करनेका कड़ा परिश्रम कर चुका है ; किंतु अब पानी पा गया तो सब भूल गया। एक छोटे जल-पात्रको लुढ़का दिया इसने और अब दोनों भाई उसमें हाथ-पैर उछालकर आनन्द मना रहे हैं।

यह आया भद्र। अब विशाल, अर्जुन, ऋषभ -- कोई क्यों दूर रहेगा। सब एक-से हैं। सब हाथ भिगाते हैं और किसीके भी उदर, कन्धे, कपोलको उससे आर्द्र करके हँसते हैं। कैसे निश्चन्त बैठे हैं ये सब।

'अरे, तुम सब भीगने लगे हो ?' यह रोहिणी जीजी बालकोंपर भी अंकुश रख लेती हैं ; किंतु इस समय तो ये सब इनकी ओर देख-देखकर हँस रहे हैं, किलक रहे हैं। इनकी समझसे कोई बड़ा पुरुषार्थ कर रहे हैं सब।

रोहिणी जीजी एक-एकका अङ्ग अञ्चलसे पोंछनेमें लगी हैं और यह चपल नीलमणि अपनी भीगी लाल हथेली इनके ही कपोलपर लगाकर इनके कण्ठसे लिपट गया है। व्रजेश्वरी जीजी कहती हैं— 'इनके मुखपर रोष तो कभी आता ही नहीं। ये सब शिशु इनसे इसीसे इतने धृष्ट बन गये हैं।

× × ×

बड़ी जीजी तुङ्गीने कल कहा था—'नीलमणिके पहिले ऊपरके दो मसूड़े फूले हैं। यह मामाके लिए भारी होता है ; किंतु यशोदा ! तुम्हारे तो कोई भाई है नहीं।'

अब यह बोलने लगा है कुछ-कुछ। लेकिन इसका तुतलाना भी दूसरे बालकोंसे भिन्न है। इससे 'त' बोला ही नहीं जाता। पहिले-पहिले 'दा' कहा था इसने और फिर 'मा' कहना सीख गया। अब हम सबको ही 'मा' कहता है।

अपने ताऊको भी 'दाऊ' कहता है और फिर स्वयं सिर हिलाता है। समझता है कि यह नहीं ; किंतु करे क्या, वही दाऊ निकलता है इसके मुखसे और जब ताईको 'दाई' कहता है तो सब हँस पड़ती हैं। सिर हिलावेगा और उन्हें भी हारकर 'माँ' कहेगा।

मैंने प्रयत्न किया कि यह मुझे चाची कहे; क्योंकि इसे अब चाचाको 'छाछा' कहना तो आ गया है। मुझे 'छाछी' कहेगा तो कितना अच्छा लगेगा। लेकिन सिर हिला देता है। हँसता है और 'माँ' कहकर गोदमें चढ़कर कण्ठसे लिपट जाता है।

महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं—'जो शिशु ह्रस्व स्वर प्रारम्भमें नहीं बोल पाते, महाप्राणाक्षरोंका उच्चारण करते हैं, वे महाप्राण हैं। श्रुतधर होते हैं वे।'

यह चिरजीवी हो, सकुशल रहे ! हम गोपोंके इस युवराजके लिए बहुत विद्या आवश्यक तो नहीं है ; किंतु लगता है कि यह विद्याके विषयमें भी पिता-पितामहका नाम उज्ज्वल करेगा।

नीलमणिने देहली क्या पार कर ली, हम सबकी कठिनाई बहुत बढ़ गयी। अब यह अवसर पाते ही भवनसे निकल जाता है। किसी गोप या गोपीको आगे जाते देखेगा तो घुटनों चलता उसीके पीछे लग जायगा और थकेगा तो पुकारेगा—'दाऊ ?' अथवा 'माँ !'

इसे लगता है कि सब इसके ताऊ या माँ हैं। केवल व्रजराजको बाबा कहता है। अपने चाचाको भी 'दाऊ' ही कहता है। जब आगे जाता गोप या गोपी मुड़कर देखेगी, गोदमें लेने बढ़ेगी तब उसका मुख देखकर भागेगा पीछे मुड़कर। ऐसेमें खुले पथपर ये शिशु पता नहीं कितनी दूर चले जायँ तनिक ध्यान न दो तो। और पथपर तो पशु हैं, छकड़े दौड़ते आते हैं—पता नहीं, कितनी विपत्तियाँ हैं वहाँ।

हम सबको तो एक सुविधा भी है कि अपने शिशु यहाँ छोड़ जाओ और घरका काम कर लो ; किंतु व्रजेश्वरी और रोहिणी जीजीको तो इनके कारण तनिक भी शान्ति नहीं। कुछ कर नहीं पातीं बेचारी। ये सब साथ ही रहेंगे, इतना तो ठीक ; किंतु ये कब क्या करने लगेंगे, कोई ठिकाना है। उसमें भी यह नीलमणि तो अभी से बहुत चपल है। इसे पता नहीं, कब क्या सूझने लगे। इसे जो सूझेगा, सब वही करना चाहेंगे।

सायङ्काल मङ्गल-प्रदीप जलते ही यह उसे पकड़ना चाहता है। दीप-शिखा भी इसे कोई मुखमें देने योग्य वस्तु लगती होगी। आवहनीय कुण्डकी अग्नि के लिए भोजनालयमें दहकते अङ्गारोंके लिए यह दौड़ पड़ता है घुटनों सरकता। इसे न पकड़ो तो यह अङ्गार ही पकड़ लेगा।

मयूरोंको भी इसके चारों ओर ही नाचना रहना है। वे आँगनमें ही पङ्ख फैलाये धीरे-धीरे घूमते हैं। बालक दोनों हाथोंमें पकड़ लेते हैं पक्षियों-को। श्याम तो मयूरके ऊपर ही बैठने लगा कल। पक्षी चोंच चला दे सकते हैं। फड़फड़ाते समय उनके पञ्जे या पङ्ख लग सकते हैं कहीं भी।

अब ये कपि हैं, कितना भी भगाओ ये आँगनमें बालकोंके पास कूदकर आये बिना मानते नहीं। कृष्ण इनके कान या कण्ठ पकड़कर किलकारी लेता है। भद्र लिपट ही जाता है इनसे। दाऊ इनकी पूँछ पकड़ कर खींचता है। ये काटते नहीं, डराते नहीं; किंतु इनका कुछ ठिकाना है? हममें-से कोई समीप जाय तो ये दाँत दिखाते हैं। कैसे रोहिणी जीजी बालकोंको क्षणभर भी छोड़ सकती हैं किसीके भरोसे।

गोपोंको गायें भी चरानी हैं। कोई कहाँ तक द्वारपर लाठी लिए बैठा रहे और महाबनके मृगोंको तो इन दिनों कुछ हो गया है। ये वनसे भाग आते हैं व्रजराजके आँगनमें। बालकोंको सूँघते हैं और कूदते हैं उनके ऊपरसे। कहीं इनके खुर, सींग लग जायँ तो? बालक इनके कान, सींग पकड़ लेते हैं। चाहे जब चोट लग सकती है!

ये काली, उज्ज्वल, स्वर्णिम बिल्लियाँ हैं कि म्याऊँ-म्याऊँ करती बालकोंके ही आसपास घूमती रहेंगी। ये बच्चे भी तो इन्हें नवनीत खिलाते हैं; किंतु श्याम इनको करोंसे पकड़कर प्रसन्न होता है। बिल्लियाँ अपने नख छिपाये तो रहती हैं, पर पशु ही तो हैं! शिशु तो इनके मुखोंमें अँगुली डालते हैं, इनकी मूँछें खींचते हैं। बिल्लियोंके नख-दन्त······।

अभी-अभीकी ही तो बात है। मैं तनिक रसोईमें चली गयी रोहिणी जीजीके पास। अतुला भी कुछ कहने आयी और सब आँगनसे पथमें पहुँच गये। व्रजेश्वरी जीजी पुकारती दौड़ीं—'अरे, सब कहाँ चले गये?'

जो देखा, उससे तो जी धक्से रह गया। नीलमणि अपने झबरे कुक्कुरके मुखमें हाथ डाले उसके दाँत देख रहा था सिर झुकाये। भद्र और अर्जुन उसके कान खींच रहे थे। दाऊ उसकी पीठपर ही बैठने जा रहा था

और विशाल उसकी पूँछ सीधी करनेमें लगा था। मैयाको देखकर सब किलकारी लेकर उनसे ही लिपट गये। मैं देखती रह गयी व्रजेश्वरीकी वह शोभा ! एक साथ तीनको अङ्कमें उठा लिया उन्होंने और दोको एक हाथकी अँगुलियाँ पकड़ा दीं। इतने सबको अकेली यही सम्हाल सकती हैं।

बहुत सीधा, अत्यन्त स्वामि-भक्त है यह श्वान। सब शिशु इसपर लद भी जाते तो उठता नहीं ; किंतु नीलमणि तो दाँत ही पकड़ रहा था ! वैसे यह पक्षियों, बिल्लियों, वन-मृगों तकपर भी कभी दौड़ा नहीं। इन सबके समीप आनेपर भी शान्त बैठा ही रहता है।

ये सब बालक ही तो हैं ; सुई, छुरिका, तलवार, सब इनके लिए खिलौना है। इन्हें चोट लग सकती है नन्हें बाटसे भी और पाक-गृहमें, आँगनमें, कक्षमें कहीं भी ये चले जाते हैं। जो हाथ लगे, उसीसे खेलने लगते हैं।

कन्हाई अब बैठकर द्वारकी देहली भी पार कर लेता है। कोई पुकारे, रोके तो बार-बार अपनी घुँघराली अलकोंसे घिरा चन्द्रमुख घुमा-कर पीछे देखेगा और हँसता, किलकता घुटनोंके बल भागेगा अथवा पुकारने वालीके ही अङ्कमें आनेको दोनों भुजाएँ उठा देगा।

व्रजेश्वरी जीजी सेवकों-सेविकाओंपर झल्लाकर भी हँस पड़ती हैं। रुष्ट होना बहुत कम आता है इन्हें। सेवक हैं कि सावधानी ही नहीं रखते। छुरिकाएँ, सुई, हँसिये, कुठार कहीं ऐसे नहीं रखे जा सकते कि बालक उन तक न पहुँच सकें ?

कोई क्या-क्या छिपाकर रखेगा ? गोपराजका गृह है। लकुट, बाट, लकड़ियाँ सबके ही गृहोंमें रहती हैं। शिशुओंको इससे क्या कि लकुटमें परशु लगा है अथवा भल्ल। इनको आहत कर सकती है छोटी लकड़ी भी और ये भारी दण्डको भी भड़ाम्से गिराकर हँसते-किलकते हैं। एकने गिरा लिया लकुट तो अब दूसरेको भी कोई गिरानेको चाहिए। भगवान नारायणने रक्षा की कि किसीके ऊपर नहीं गिरा। भाण्डका फूटना तो कोई बात नहीं।

अब सिंघाड़े छीले जा रहे थे और सबके सब पाकशालामें पहुँच गये। सेविका इनके सुन्दर मुख ही देखती ठगी-सी रह गयी। यह तो कुशल

हुई कि रोहिणी जीजीके साथ हम सब दौड़ पड़ीं—वैसे यह भूल ही थी। हमारे इस प्रकार दौड़नेसे कहीं बालक आगेको भाग पड़ते—हाय ! कितने तीक्ष्ण कण्टक होते हैं सिंघाड़ोंके और सिंघाड़े, उनके छिलके तो भूमिमें ही पड़े थे। शिशु हम सबकी ओर आ गये अङ्कमें आनेके लिए, यह संयोग ही तो था।

रोहिणी और यशोदा जीजीका तो क्या कहूँ—मेरा भी जी किसी काममें नहीं लगता। हम सबकी यही अवस्था है। बहुत चञ्चल है नीलमणि और इसके सब सखा इसीके साथ लगे रहते हैं। ये कब क्या ऊधम कर लेंगे, कब किसको कैसे आघात लग जायगा—इस आशङ्काके कारण कुछ करते नहीं बनता। प्राण इन्हींमें लगे रहते हैं।



क्रीड़ा

मुझसे अधिक इस सत्यको समझनेकी शक्ति कदाचित् ही किसीको प्राप्त होगी कि परम दयालु परमात्मा भी जो जीवको नहीं दे पाता, वह उसके प्रिय भक्त बहुत साधारण रीतिसे दे देते हैं।

जो भी भोग-योनियाँ हैं, उनमें भोगोंकी क्षमता मनुष्यकी अपेक्षा बहुत अधिक है और अपने भोगोंमें वे बहुत अधिक स्वतन्त्र हैं। मनुष्य तो जब भोगोन्मुख होता है तो उनका दास हो जाता है। भोगासक्ति उसे परतन्त्रता देती है; क्योंकि मनुष्य भोगयोनि नहीं है। यह कर्म-योनि है—साधन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जानेके लिए परमात्मासे प्राप्त देह।

हम पक्षियोंमें मनुष्यसे बहुत अधिक तीव्र दृष्टि-शक्ति है और जीवन-पर्यन्त बनी रहती है; किंतु यह हमारे आहार-प्राप्तिका साधन है। कम ही पक्षी होंगे जिनकी दृष्टिमें सौन्दर्य-बोध हो जो मनुष्योंको दृष्टिकी परतन्त्रता देता है।

पक्षीमें घ्राणशक्ति तो नितान्त नगण्य है। हमारी रसना भी हमें मानवके समान स्वाद-परतन्त्र नहीं बनाती। वह केवल उदर-पूर्तिका माध्यम है। श्रवणकी—शब्दकी परतन्त्रता भी हमको नहीं होती। केवल स्पर्श और वह भी काकमें तो अत्यल्प—कुछ थोड़े दिनों ही काम जगा पाता है।

मैं मनुष्य था। महर्षि लोमशने शाप देकर वह दे दिया, जो परमात्मा ब्राह्मण बनाकर नहीं दे सका था। मैं मनुष्यके सब सद्गुणोंसे—विशेषताओं-से सम्पन्न बना रहा और मनुष्यके व्यसनोंसे, विवशताओंसे मुक्त हो गया।

मैं काक हूँ, अतः चाहे जहाँ उड़कर पहुँच सकता हूँ। स्वाद, सौन्दर्य-बोध, घ्राण, स्वर-सौष्ठव आदि मुझे पराधीन नहीं करते; किंतु इन सबका बोध मुझमें बना है। साधन-ज्ञान-वैराग्य-भगवद्भक्ति—सबका उदय मेरे अन्तःकरणमें होता है। इतनी विशेषताके साथ इतनी स्वतन्त्रता तो महापुरुष ही प्रदान कर सकते हैं।

मैं शिशु सर्वेशका उपासक हूँ। वे गोकुलमें पधारें अथवा अयोध्यामें, मैं उनकी पाँच वर्षतककी आयुका रसिक उनके श्रीचरणोंका तबतक सान्निध्य प्राप्त कर लेता हूँ। पक्षी हूँ, अतः धनुष-बाणसे मुझे भय लगता है और वंशीके स्वर-सौष्ठवमें मरालकी भले रुचि हो, काककी रुचि हुआ नहीं करती ।

जानता हूँ—वे इन्दीवर-सुन्दर अयोध्यामें आते हैं तो किञ्चित् हरिताभा अपना लेते हैं—दूर्वादल-श्याम हो जाते हैं और गोकुलमें कुछ अरुणिमा होती है श्यामतामें । अतसी-कुसुमकी शोभा स्वीकार करते हैं। अयोध्यामें वे कुछ प्रलम्ब वपु होते हैं और गोकुलमें किञ्चित् खर्वविग्रह ; किन्तु मेरे तो सर्वस्व हैं ये नवघनसुन्दर !

अयोध्यामें मर्यादा-पुरुषोत्तम बनकर पधारते हैं तो मुझे भी इनकी मर्यादाका निर्वाह करना पड़ता है। शैशवमें भी ये करुणासिन्धु सङ्कोचीनाथ मुझ काकके लिए जानबूझकर महाराजके प्राङ्गणमें उच्छिष्ट कण अधिक गिराते हैं। वहाँ मेरा कोई प्रतिस्पर्धी प्रायः नहीं होता ; किंतु द्वापरमें ये लीलामय बनते हैं तो कपि, मृग, मार्जार तथा विविध पक्षियोंका समूह अपने समीप एकत्र ही किये रहते हैं। कोई उच्छिष्ट कण करोंसे गिरता भी है तो कोई बिल्ली अथवा दूसरा पशु-पक्षी लपक लेता है। इनके साथ दूसरा कोई न कर सके, नहीं करता, वह धृष्टता यहाँ मैं करता हूँ । मैं यहाँ इनके करोंसे ही माखन-रोटी झपट लेता हूँ ।

ये मेरे सर्वस्व—मेरे अन्तरके सर्वस्व ! ये मुझे नहीं पहिचानेंगे, ऐसा सम्भव है ? लेकिन ये हैं लीलामय। कभी मुझे देखते हैं तो मृगों, मार्जारोंके मध्य बैठ जाते हैं। मुझे देख-देखकर किलकारी लेते हैं और तनिक-तनिक रोटी या नवनीत अपने मुखमें डालते रहते हैं। कभी लगभग पूरी रोटी किञ्चित् प्रसाद करके मेरी ओर बढ़ा देते हैं हाथ फैलाकर और मैं हाथसे लेकर उड़ता हूँ तो मुझे मुग्ध नेत्रोंसे देखते रहते हैं।

'भाग्य जगे इसके ! आज कन्हाईके करोंकी माखन-रोटी भरपेट खायगा !' उस दिन मैं ऐसे ही रोटी लेकर उड़ा तो कोई महर्षि बोल उठे। उन्हें कहाँ पता होगा कि मैं युग-युगका इनका उच्छिष्टभोगी हूँ । मुझे क्षुधा लगती है इनका प्रसाद पानेके लिए। इनके श्रीचरणोंके समीप पहुँचता हूँ तो मेरी दृष्टिको सौन्दर्य-बोध, नासिकाको सौरभ प्रेम, रसना-

को स्वाद-शक्ति, सब मिल जाती है। अन्यथा मैं तो काक हूँ और महर्षिके आशीर्वादसे क्षुधा-तृषादि मेरे समीप नहीं आती हैं।

मैं गोकुल तभी आ गया जब ये श्रीनन्दनन्दन कक्षसे प्राङ्गणमें आये। भगवान विश्वनाथके साथ उनका शिष्य बनकर आया था। आशुतोष प्रभु तो मेरे गुरु महर्षि लोमशके गुरु हैं। मैं तो आया मानव-बालक बनकर; किंतु वे वृषभध्वज अपने ही वेशमें आ गये। अवश्य वे पञ्चवक्त्र, चतुर्भुज या दशभुज रूपमें नहीं थे। आये वे द्विभुज ही बनकर।

गोकुलमें नन्दद्वारपर इतने देवता आते रहे हैं कि भगवान चन्द्रचूडके त्रिनयन, नीलकण्ठ वपुकी ओर किसीने ध्यान ही नहीं दिया। मैं तो उनका अनुगामी अल्पवयस्क बालक शिष्य था।

'अलख !' व्रजराजकी पौरिपर उन श्रीगङ्गाधरने आवाज लगायी। सबसे पहिले भागे आये द्वारपर नन्दनन्दनके दिगम्बर अग्रज। हम दोनोंकी ओर वे भगवान सङ्कर्षण साश्चर्य देखने लगे। वे भले यहाँ शिशु बने हों, उन अनन्तका अनन्त ऐश्वर्य तो आच्छादित नहीं रहा करता। उनके विशाल लोचनोंमें प्रश्न था—'हम दोनों यहाँ ऐसे क्यों ?'

हम दोनोंको ही उनके चारु चरणोंके स्पर्शका सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे मन्द-मन्द मुस्कराते भीतर चले गये और भगवान योगीश्वरने मुखसे शृङ्ग लगाया। शृङ्गीनाद—परममनोहर मङ्गलमय शृङ्गीनाद मैंने भी शिवका प्रथम सुना।

व्रजेश्वरी नन्दरानीको सेविकाने दौड़कर समाचार दिया। वे श्रद्धामयी रत्नोंसे भरा स्वर्णपात्र लिए द्वारपर आ गयीं। उन्होंने भूमिपर मस्तक रख दिया।

'अम्ब ! मैं वीतराग योगी हूँ। इन पत्थरोंसे मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?' भगवान महेश्वर सहज भावसे बोले—'बहुत दूर हिमालयसे तेरे द्वारपर तेरे पुत्रके दर्शनकी लालसा लेकर आया हूँ। मुझे अपने लालके दर्शनकी भिक्षा दे !'

मैया तो चकित देखती रह गयी। चन्द्रोज्बल विभूति-भूषित सर्वाङ्ग और उसमें स्थान-स्थानपर रुद्राक्ष एवं सर्पोंका आभूषण। हाथमें डमरू और त्रिशूल। पिङ्गल जटाभारमें-से झाँकती चन्द्रकला।

'बाबा ! वह अभी बहुत अबोध शिशु है।' मैया हाथ जोड़कर काँपते स्वरोंमें बोली—'आपके इस उग्र रूपको देखकर डर जायगा !'

'मैया ! ये अकल्पनीय प्रभाव रखनेवाले महायोगिराज हैं !' मैंने तनिक आगे आकर कहा—'तेरे लालको आशीर्वाद देने आये हैं। तू अपने अङ्कमें लेकर लालका दर्शन इन्हें करा दे !'

मैं आठ-नौ वर्षके बालकके वेशमें था। मैयाने मेरी ओर वात्सल्य भरी दृष्टिसे देखा और बोली—'अच्छा बाबा ! यह भिक्षा ले लो। मैं उसे ले आती हूँ ! आप भीतर कक्षमें पधारते तो…।'

'मैं भवनमें नहीं जाता माता !' पता नहीं क्या सोचकर भगवानने कह दिया। भिक्षाके रत्न तो उन्होंने खप्परमें लेकर झोलीमें डाल दिये।

मैया नन्हें घनश्यामको वस्त्रोंमें छिपाये द्वारपर आयी। भगवान अनन्त आ गये पुनः उसके साथ लगे। अब शङ्करजी मैयाके समीप हो गये और नन्दनन्दनके श्रीअङ्ग अपने हाथों अनावरित कर दिये इन्होंने। अपनी पीली धूमिल जटाओंसे जैसे झाड़ रहे हों—ऐसे जटाएँ फिराने लगे।

'यह डर जायगा !' मैयाने झट पुनः वस्त्रोंसे ढका और भीतर लौटने लगी। इसे लगा होगा कि इस अतिशय सुकुमार लालके अङ्ग योगी-की इन रूक्ष जटाओंका स्पर्श नहीं सह सकेंगे। मुझे बहुत व्यथा हुई—'हाय ! इतने समीप आकर मेरे स्वामी बिना एक झाँकी दिये चले जा रहे हैं ?'

ये लीलामय रुदन करने लगे। अभी भगवान नीलकण्ठको देखकर मुस्कराये थे, किलकने लगे थे और हटाते ही इतने जोरसे रुदन करने लगे कि मैयाका हृदय घबड़ा गया। भगवान विश्वनाथने ही कहा—'अम्ब ! डर मत, शिशु मेरे समीप नहीं रोयेगा। मैं सब ग्रह-बाधाओंसे इसे सुरक्षित कर दूंगा !'

माता लौट आयीं और आते ही इन्होंने रुदन बन्द करके फिर किलकना प्रारम्भ कर दिया। अब व्रजरानी आश्वस्त हो गयीं। शङ्करजीने उनके हाथोंपर-से शिशुको उठाकर मुझे दे दिया—'तुम तनिक इनको सम्हालो तो मैं चरण-रेखाएँ देख लूं।'

मुझे स्पर्श मिला, दर्शन मिला और संकेत मिला कि इन चारु-चरणों-को भलो प्रकार देखकर मैं अपने हृदयमें धारण कर लूं। इतनी कृपा मेरे परमगुरु ही तो मुझपर कर सकते थे।

सुकुमार नन्हें चरणोंमें-से बारी-बारीसे एक-एकको भगवानने अपने करोंमें लिया। एक-एक रेखाएँ मुझे दिखाते गये और कुछ कहते गये। वे क्या कह रहे थे, यह सुन सकनेकी स्थितिमें मैं नहीं था। मेरे प्राण उन नन्हें अरुण चरणोंमें लगे थे। दोनों चरणोंकी रेखाएँ मुझे दिखलाकर मेरे अङ्कसे लेकर माताके अङ्कमें देते हुए मुझे झिड़की दी—'तुम इतने दुर्बल हो कि इस शिशुको कुछ क्षण लेनेमें ही तुम्हारे कर काँपने लगे हैं।'

मैंने मस्तक झुका लिया। अपने आह्लादको नियन्त्रित करनेमें असफल होनेके कारण मेरे कर काँपने लगे थे।

धूर्जटिने फिर जटाओंसे झाड़ा और विभूति दी—'इसे कोई भय नहीं है। इसके इन चरणोंका स्मरण सबको समस्त भयोंसे सदा परित्राण प्रदान करेगा!'

मैं देख रहा था कि मैयाके नेत्र आनन्दाश्रुसे भर आये थे। नीलसुन्दर एकटक देख रहे थे भगवान चन्द्रमौलिको और हँस रहे थे, किलक रहे थे, कर-पद उछाल रहे थे।

आशीर्वाद देकर, पुनः शृङ्गीनाद करके आशुतोष विदा हुए तो मैंने पुरके बाहर पहुँचकर उनसे अनुमति माँगी और अपने इस काक-देहमें आ गया। अब मुझे क्या कहीं आवास चाहिये? प्रभातमें यमुना-स्नान करके नन्द-भवन आ जाता हूँ। दिनभर भवनपर ही इधरसे उधर उड़ता-बैठता हूँ। मुझे नित्य ये दयाधाम आहार दे देते हैं। रात्रिमें यमुना-तटके सघन कदम्बपर बैठकर इनके ही चारु चरणोंकी उन रेखाओंका चिन्तन करता हूँ।

उस दिन मैया इन नीलसुन्दरको अङ्कमें लिए स्तनपान करा रही थी। द्वारके सम्मुख ही बैठी थी, अतः मैं देख सकता था। इनके दर्शनोंके लोभसे ही तो अपना दिव्य आश्रम त्यागकर यहाँ आया हूँ।

आनन्दमें मग्न अधखुले कज्जल-रञ्जित विशाल लोचन। माताके एक स्तनसे हटाकर दूसरेमें मुख लगा लिया है और इस प्रयत्नमें जो दूधकी बूंद माताके वक्षपर गिर गयी है, उसे अपने अरुण करोंसे बिना देखे ही पोंछते जा रहे हैं।

मैयाकी दृष्टि गयी इनके वक्षपर और वे वहाँ जो स्वर्णिम रोमराजि-के द्वारा बना श्रीवत्स है, उसे अंचलसे पोंछने लगीं। सुकुमार श्रीअङ्गको

रगड़कर पोंछ नहीं सकती थीं, देवरानीसे बोलीं—'अतुला ! तनिक तैल तो उठा दे ! मेरे दूधकी बूंद इसके वक्षपर पड़कर सूख गयी लगती है।'

अतुलाजी हँस पड़ीं। उन्होंने हँसीमें ही तैलपात्र देकर कह दिया—'पोंछ लो जीजी !'

'तू हँसती क्यों है ?' तैल लगाकर पोंछनेपर जब वह रोमराजि अधिक समुज्वल हो उठी, तब मैयाको अपनी भूलका पता लगा। तबसे अनेक बार गोपियाँ व्रजेश्वरीके इस भोलेपनका परिहास करतीं हैं। लेकिन हास्यसे तो उस दिन मेरा हृदय भरा जाता था। भले हम काक हँस न पाते हों, मैं आनन्दसे इधर-उधर देर तक उड़ता फिरा था प्राङ्गणमें चारों ओर।

हुआ यह कि मेरे इन आराध्यने जम्हाई ली ; क्योंकि मैया अब स्तनपान कराना नहीं चाहती थी। उसे लगता था कि बालक अधिक दूध पी लेगा तो इसे अपच हो जायगा। वह बार-बार भाल-कपोल चुम्बन करके दुग्धपानसे ध्यान हटा रही थी।

मैया इनके मुखकी ही ओर तो देख रही थी। इन्होंने जम्हाई ली तो मैयाके कर चुटकी बजानेको उठे और उठे रह गये। उसके नेत्र आश्चर्यसे फैल गये। वह काँपने लगी और ये नीलसुन्दर हँसने लगे। इनका हास्य ही तो माया है।

'हाय ! मेरे लालको क्या हो गया !' मैया आश्चर्यसे, भयसे बोली—'इसने जितना दूध पिया, नवनीत खाया, कुछ पचा नहीं इसे। सब मुझे इसके मुखमें दीख गया। इसने कहीं मिट्टी भी खायी है ! पत्ते भी पता नहीं कब खा लिए। हे नारायण ! इसके उदरमें सब ज्योंका त्यों है !'

गोपियाँ हँसती रहीं। माता रोहिणी चकित देखती रहीं और मैं आनन्दमग्न फुर्र-फुर्र उड़ता-फिरता रहा। त्रेतामें अयोध्यामें जब ये चक्रवर्ती महाराजके कुमार थे, मुझे मुखमें ही ले लिया था इन्होंने। इन ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरके मुखमें पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, वन-नगर, सूर्य, चन्द्र, तारे सभी कुछ तो हैं। माताने यही सब देखा लगता है।

मैं महर्षि लोमशका वर-प्राप्त शिष्य, भगवान शिवका स्नेह-भाजन योग-सिद्ध ; किंतु कितना व्याकुल हुआ था श्रीराघवेन्द्रके मुखमें वह दृश्य देखकर ! मैं मायाके प्रभावसे मूर्छित ही हो गया था। मुझे तो प्रबोध दिया था इन ज्ञानघनने ; किंतु धन्य हैं माँ यशोदा ! महामाया भी अपना

मस्तक पीटे इनके वात्सल्यके सम्मुख। सब देखकर भी इन्हें केवल यह लगा कि इनके लालको अपच हो गया है। अब आप मुख बनाओ या ओष्ठ फड़काओ, अपचकी महौषधि गोमूत्र तो आपको मैया पिलाकर मानेगी! मैं 'काँव-काँव!' करता फिरा। इन्हें चुनौती दे रहा था—'यह मैं नहीं हूँ कि आपकी माया मुझे डरा देगी। यह मैया है। गोमूत्र न पीना हो तो ऐसी भूल फिर आप भी कभी मत करना। यह व्रज है, अयोध्या नहीं कि वैद्यराज कोई मधुर औषधि लायेंगे।'

× × ×

मैया अपने इन चिर चपलको एक क्षणको भी छोड़ नहीं पाती है। अब तो ये खड़े होकर चलने लगे हैं और मुझे अपने हाथोंसे नवनीत-लगी रोटी झपट लेनेका अवसर देने लगे हैं। तब जब घुटनों ही सरक पाते थे, तब भी मैया इन्हें अङ्कमें लेकर ही प्रातः-सायं गोष्ठमें जाती थी। सायं अपने करोंसे घृत-दीप रखना रहता है उसे और प्रातः गोमाताके चरणोंमें प्रणाम करना रहता है।

माताको लगेगा ही कि सब बालकोंके शरीरोंपर प्रातः-सायं गोपुच्छ घूमे निखिल अमङ्गल-निवारणके लिए। इनके भाल गोरज-भूषित हों। मैं गोष्ठमें किसी भी वृषभकी पीठपर जाकर बैठने लगा। कोई पशु मेरे बैठनेका बुरा नहीं मानता। मैं उसे कोई असुविधा उत्पन्न नहीं करता।

पहिले ही दिन नन्दनन्दनने माताके कहनेपर भूमिमें मस्तक रखकर गायके पदोंमें ऐसे प्रणाम किया, जैसे सदासे करते आये हों। इनकी घुंघराली अलकें, गोरजसे भूषित हो गयीं। भालपर धूलि लग गयी। नासिकाग्र और भृकुटिकी धूसर शोभा देखने ही योग्य थीं, अब हथेलीमें गोबर या गोमूत्र तो लग ही जाता है। दाऊके, भद्रके, विशालके, किसीके भी मुख, उदर या वक्षपर ये अपने हाथ पोंछ देते हैं। इनके सब सखा मैयाके वस्त्रको सार्थक करते हैं।

इतनी अधिक गायें हैं, लक्ष-लक्ष गाय। प्रत्येक पंक्तिके सम्मुख भी भूमिमें मस्तक नहीं रख पाती मैया। बहुत देर लगती है। इनके सखा भी अब बहुत हो गये हैं। दोनों माताओंको अत्यन्त सावधान रहना पड़ता है। गायें इन्हें देखकर हुंकार करने लगती हैं। बछड़े कूदकर पास आते हैं और सूंघ-सूंधकर फुदकते हैं। ये लोग हैं कि ताली बजाते हैं, किलकते हैं।

माताओंकी दृष्टि तनिक हटी और ये गायोंके समीप पहुँचे। दाऊको उज्वल, धवल, उच्च धर्मसे प्रीति है। वे उसके नवीन शृङ्गोंको पकड़कर झूलने लगेंगे। ये मेरे आराध्य किसी बछड़े या गौका मुख दोनों करोंमें लेना चाहेंगे। मैयाके वात्सल्यका तो पार नहीं है—व्याकुल होकर मैं बोलता उड़ने लगता हूँ कि कहीं कोई बछड़ा अपनी रूक्ष जीभसे इनके सुकुमार श्रीअङ्गको चाटने न लगे। गोमातामें इतनी समझ है, वे जिह्वा निकाल कर भी मुख हटा लेती हैं।

इनको भी गोरजसे अपार प्रेम है। गोष्ठसे लौटते समय अवश्य लोट-पोट होने लगते हैं पृथ्वीमें। नन्हीं मुट्ठियोंमें भरकर एक दूसरेके अङ्गोंपर धूलि डालते हैं। नित्य मैयासे मचलते हैं अधिक देर धूलि-क्रीड़ाके लिए। गोदसे मचल-मचलकर उतरना चाहते हैं। मैया पुचकार कर कठिनाईसे मनाकर इन्हें ला पाती हैं।

धूलिसे तो इनका पुराना प्रेम है। त्रेतामें राजकुमार थे तो भी राजसदनसे भाइयोंके साथ निकल जाते थे और धूलि-धूसर लौटते थे। अब तो व्रजमें रजको ही महिमा देने पधारे हैं। मैया उबटन लगाकर स्नान करा देती है, सजा देती है ; किंतु ये अवसर पाते ही पथमें आ बैठते हैं। कहीं एकत्रित रेत या धूलि मिल जाय तो क्या पूछना। दोनों चरण अर्धकुंचित करके बैठ जायँगे। करोंमें धूलि भरेंगे और इधर-उधर फेंकेंगे। अपने अङ्गोंपर डालेंगे। कोई समीप आ जाय तो उसे मुट्ठी भर रज देना चाहेंगे।

अग्रज हैं, सखा हैं, सभी आ जुटते हैं। सब एक दूसरेके उदरपर, कन्धेपर धूलिकी मुट्ठियाँ डालते हैं और फिर स्वयं वह धूलि हटानेका भी यत्न करते हैं।

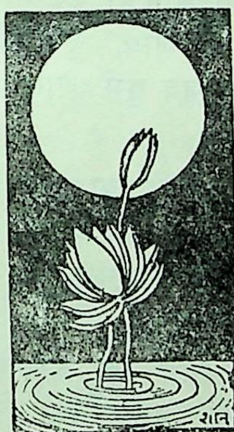
दाऊ भी मधु-मङ्गलके साथ घरौंदे बनाने लगते हैं ; किंतु ये जा बैठेंगे और अपने चपल चरण चलाकर सबके घरौंदे बिगाड़ेंगे। अपनोंके मिट्टीके घरौंदे ये सदासे मिटाते ही आये हैं। इनका होकर कोई क्यों घरौंदे बनाये और उनमें मोह करे।

ये सखा इनके—इनके घरौंदे भी इन्हींके लिए। मधुमङ्गल और दूसरे भी रज एकत्र करके इन्हें उदर तक आच्छादित कर देते हैं। ये अपने चरण चलाकर रज हटाते हैं और हँसते हैं। रज डालते हैं सखाओंपर।

× × ×

छोटी-सी रोटीपर उज्वल नवनीत है करोंमें। कभी केवल नवनीत लेकर भी आ जाते हैं। तनिक-सा उठावेंगे दो अँगुलियोंसे और अग्रजको, भद्रको, किसी सखाको खिलावेंगे। अपने ही करोंसे खिलावेंगे। अपने श्रीमुखमें डालनेका स्मरण तो कदाचित् ही आता है। लेकिन कोई रोटी या नवनीत छुओ मत। कोई कर बढ़ाता है तो हाथ हटा लेते हैं, रोकते हैं, पूरा सिर हिलाकर मना करते हैं।

अपने श्रीमुखमें दो-चार बार डाल लें तो यह प्रसाद हो जाय। तनिक-सी तोड़ रहे हैं और सखाओंको खिला रहे हैं, घूम-घूमकर नाच रहे हैं। अब मुझे भी वह तनिक-सा कण तोड़कर दिखाते हैं; किंतु आप इसे पहिले प्रसाद तो बना दो। मैं तो पूरी रोटी लेकर उड़ जाऊँगा। जानता हूँ—मुझे जाते ध्यानसे आप देखते रहेंगे और सबको संकेत करके दिखावेंगे। मैया हँस देंगी—'बड़ा धृष्ट काक है।'



तृणावर्त-त्राण

मैं रुद्रांश-समुद्भव हूँ, अतः मुझे क्रोध बहुत शीघ्र आता है और कृपा करनेमें भी मुझे कोई कार्पण्य नहीं है। किसीको शाप दे देना कोई अच्छी बात नहीं है, यह जानता हूँ ; किंतु क्रोध आता है—किया नहीं जाता। अतः जब क्रोधावेशमें किसीको शाप दे ही दिया गया तो उसपर कृपा अवश्य की जानी चाहिये। इसीलिए मेरे शापसे किसीका भी अमङ्गल कभी नहीं हुआ।

पाण्ड्य नरेश सहस्राक्ष विष्णु-भक्त था, सद्‌गुणी था, धर्मात्मा था ; किंतु प्रमत्त होकर, रेवा (नर्मदा) में स्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। मैं वहाँ पहुँचा तो इसने मुझे देखा ही नहीं। कोई नारियोंके साथ हास-परिहासमें इतना असावधान हो कि अभ्युत्थान देने योग्य पुरुषोंके आगमनका ही उसे ध्यान न रह जाय, यह राजसिकता तो आसुर भाव ही है, अतः मैंने शाप दे दिया—'जब तुझे आसुर भाव ही रुचते हैं तो असुर हो जा!'

शाप सुनकर बहुत दुःखी हो गया। मेरे पदोंपर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा। मैंने कह दिया—'तू जलमें वात्याचक्रके समान बहुत संक्षोभ कर रहा था, अतः वात्याचक्रोंका ही अधिपति रहेगा और व्रजमें परमपुरुषके स्पर्शसे असुरदेहसे मुक्त हो जायगा।'

सहस्राक्षने स्त्रियोंके साथ वहीं अग्निमें प्रवेश करके शरीर त्याग दिया। मेरे शापके कारण असुर योनि मिली उसे। अब वह तृणावर्त था—बवण्डरोंका अधिपति। कंससे प्रीति कर ली है। रहने लगा है मथुरा ; किंतु प्रधान भ्रमण-भूमि तो इसकी मरुस्थल हैं।

यह निदाघकाल है। तृणावर्तका बल चरमसीमापर था आषाढ़के इस मध्योत्तरकालमें। मुझे नन्दनन्दनसे तृणावर्तको स्पर्श-प्रदान करके उसे आसुरदेहसे मुक्त करनेकी प्रार्थना नहीं करनी थी। यह काम तो बहुत पहिले मेरे स्वामी—मेरे स्वरूप भगवान सदाशिव तब कर चुके जब वे गोकुल इन नन्दनन्दनका साक्षात्कार करने आये थे। उन्होंने मनमें स्मरण

कर लिया मेरा शापानुग्रह और इन नन्दतनयने समझ लिया. इतना पर्याप्त था। मैं तो अदृश्य इसलिए आ गया कि इन भुवन-सुन्दरकी लीला देख लूँ। जिसे शाप देकर असुर बना दिया, उसके उद्धारका साक्षी हो जाऊँ।

कंस बहुत उद्विग्न है। वह यशोदानन्दनकी आयु इस प्रकार गणना करता रहता है कि माता भी नहीं करेगी। कह रहा था—'वह लगभग एक वर्षका होनेको आ गया। चलने लगा, बोलने लगा। कुछ करना पड़ेगा—अवश्य कुछ करना पड़ेगा मुझे। पूतना दृश्य थी और उत्कच (शकटासुर) अदृश्य था। दोनों असफल हो गये। अब कोई इनके मध्य दृश्यादृश्य ? तृणावर्त है तो ऐसा ही।'

तृणावर्त स्मरण करते ही आ गया और मैं संतुष्ट हो गया कि इसके उद्धारका समय आ पहुँचा। पूतना—अविद्या नष्ट हो गयी, उत्कच—शकटासुर—जड़देहका अभिनिवेश मिट गया तो यह अहंता—लोकैषणा-का—सुयशका उन्मादी, अन्धकर देनेवाला उत्कट रजोगुण क्यों रह जाय अधिदैव जगतमें। गोकुलमें यशोदाका अङ्कधन ही तो इनका उद्धारक है। मैं कुछ क्षण पूर्व गोकुलके गगनमें आ गया ; क्योंकि तृणावर्तके आ पहुँचने-पर इन लीलामयके दर्शन नहीं हो सकते थे।

अभी दिनका प्रथम प्रहर ही पूर्ण हुआ है। नन्दरानी अपने लालको लेकर प्राङ्गणमें, छायामें बैठ गयी हैं। दुग्धपान करा दिया है और दोनों करोंमें लेकर अपने पुत्रको उछालने लगी हैं। ऊपर उछालती हैं और लेकर हृदयसे लगा लेती हैं।

अलकें हिलती हैं। इनमें गूँथे सुमन गिर रहे हैं। ये अपनी चन्द्रोज्वल दँतुलियाँ दिखाकर हंसते हैं। बहुत प्रसन्न हैं। मैया उछालती है तो कर-पद फैला देते हैं और झेल लेती है तो इसके कण्ठसे चिपक जाते हैं। ऊपर देखते हैं, हाथ उठाते हैं—'और !'

मैया कहाँ तक उछाले। ये तो ऊपर—और ऊपर जाना चाहते हैं। अब देवी योगमाया तृणावर्तको लावेंगी ही। उनके इन स्वामीकी इच्छा तो पूर्ण होनी चाहिये ; किंतु ये मैयाके अङ्कमें रहेंगे तो यह इच्छा कैसे पूर्ण होगी। अब योगमायाको अपना प्रभाव प्रकट करना है।

मैया यशोदा अपने लालको उछालते-उछालते थककर बैठ गयी है ; किंतु उसे अद्भुत लग रहा है। अपनेपर ही आश्चर्य हो रहा है—'मैं कैसी

जननी हूँ कि मुझे अपना पुत्र ही भारी लग रहा है। इसके भारसे मेरे पदोंमें पीड़ा हो रही है, यह कोई सुने तो मुझे क्या कहेगी? मुझे आज क्या हो गया? मैं अभी ही बैठी हूँ और मेरे पद थककर दर्द करने लगे? अवश्य मेरा शरीर स्वस्थ नहीं है। यह नन्हा नीलमणि भला क्या भारी होगा; किंतु अब इसे अङ्कमें बैठाये रहनेमें तो मैं असमर्थ हूँ। पदोंमें कुछ हुआ है, उनसे इतना भी भार सहा नहीं जाता।'

नन्दपत्नीने पुत्रको अङ्कसे उतारकर भूमिपर बैठा दिया है। कुछ स्मरण हो गया होगा—कोई कार्य। वे कक्षमें चली गयी हैं कृष्णचन्द्रको बैठाकर और अभी ये दिगम्बर नवघनसुन्दर तो ऊपर उछलना ही चाहते हैं। ऊपर देख रहे हैं। नन्हा-सा हाथ उठाये हैं ऊपर। मैया समीप नहीं है, यह अभी ध्यान ही नहीं इनका।

यह आया तृणावर्त! योगमाया ही उसे ले आयी हैं प्रेरित करके। अत्यन्त घोर शब्द, उमड़ता-घुमड़ता धूलिका अम्बार, कङ्कड़ियाँ, पत्ते, तृणोंका आकाश तक उठता क्रोशार्धमें घूमता प्रचण्ड वायुका विशाल वात्याचक्र। ऐसा वात्याचक्र जल लेकर सागरमें तो उठता है; किंतु धरापर मरुभूमिमें भी देखा नहीं जाता। यह तो इनका अधिपति ही चला आ रहा है। दिशाएँ अन्धकारमें डूब गयीं। पक्षी क्रन्दन करते भागने लगे। वे इसमें पड़ेंगे तो उनके शरीर, पक्ष सबके चिथड़े उड़ जायँगे। भागने तो लगे हैं वन-पशु और गोष्ठोंमें बँधी गायें बन्धन तोड़कर।

गोप—कोई भी मनुष्य ऐसे अवसरपर क्या करेगा? नेत्र बन्द करके जहाँ हो, वहीं बैठ जाओ और भरसक अपने वस्त्रोंको पकड़े रहो। लगता है कि शरीर उड़ जायँगे। केश उड़ रहे हैं और उनमें धूलि-तृण भर रहे हैं, यह सोचनेका भी समय नहीं है।

महावनमें तृणावर्त जिधरसे आया है, तरुओं-लताओंको निःशेष करता आया है। भारी वृक्ष भी जड़-सहित उखड़कर दूर जा गिरे हैं; किंतु गोकुलमें पहुँचकर बहुत कुछ वेग शिथिल हो गया है। गोपोंके गृहोंमें कोई ध्वन्स नहीं; क्योंकि तृणावर्तको अपनी शक्ति नन्द-प्राङ्गणमें केन्द्रित करनी है।

नन्दनन्दन आँगनमें अकेले बैठे हैं। तृणावर्तको लगता है—यही अवसर है। अभी आकर इसकी माता इसे उठाकर कक्षमें भाग जायगी। वह

उठा लेता है और ऊपर—सीधे ऊपर लिये चला जाता है। मुझे अपने समीप इनके दर्शनकी सुविधा दी इस असुरने—इसका कल्याण हो !

मैं असुरके मनको देख सकता हूँ। वह सोचता है—'पूतना और उत्कच दोनों मुझसे सशक्त थे। वे इस बालकको मारने गये तो मारे गये। मैं मारूँगा नहीं। महाराज कंसको ले जाकर दे देता हूँ। आगे वे जानें और उनका यह शत्रु जाने। मथुरा है ही कितनी दूर।'

लेकिन ये परम स्वतन्त्र क्या किसीके ले जाये कहीं जाते हैं। इन्हें केवल ऊपर उछलना था—अतः जहाँ तक सीधे ऊपर लाये गये, चले आये। अब इधर-उधर क्यों ? इन्हें तो कहीं जाना नहीं है।

ऊपर उछलनेमें माताके कण्ठसे लिपट जानेका तो अभी-अभी अभ्यास किया है। अब तृणावर्तके कण्ठको पकड़ लिया है दोनों भुजाओंमें लपेटकर और लिपट गये हैं उससे।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड इनके भीतर—ये लीलापूर्वक अपने स्वरूपको लघु बनाये रहें, भारहीन किये रहें, यह इन सर्वसमर्थकी स्वेच्छा ; किंतु इन अप्रमेयका विस्तार अथवा भार—कल्पना भी नहीं पहुँच सकती। तृणावर्तके लिए इनका भार असह्य हो गया है। उसका वेग शिथिल हो गया है। उसे लगता है कि वह भूलसे कोई भारी शिला—पूरा पर्वत ही उठा लाया और अब कण्ठ कसता जा रहा है।

इतने ऊपर आकर शिशु अपनी पकड़ तो सुदृढ़ करेगा ही। पुत्र तृणावर्त—नहीं सहस्राक्ष ! अब तुम्हारे उद्धारका क्षण आ गया। व्यर्थ छटपटाओ मत। हाथ-पैर फेंकनेसे कृष्ण कण्ठ नहीं छोड़ेंगे। पकड़कर छोड़ना इन्हें नहीं आता। पूतनाने जो भूलकी थी, वही तुमने भी की इनको अङ्कमें उठाकर।

कण्ठ कसता जा रहा है। नेत्र बाहर निकल आये हैं। केवल 'गों-गों'की अव्यक्त ध्वनि और इस ध्वनिको भी धरापर नीचे गोकुलमें गोप सुन नहीं सकते। गिर रहा है, गिर रहा है तृणावर्त ! वह गिरा नन्दद्वारके बाहर शिलापर। तूने श्रीकृष्णको शिला समझा था तो ले, शिला मिल गयी तुझे।

भयङ्कर विशाल कज्जल-कृष्ण शरीर असुरका शिलापर पड़कर स्थान-स्थानसे फट गया है। रक्तका प्रवाह फूट पड़ा है शरीरसे और फैल

रहा है। हाथ-पैर फैलाये गिरा है। लाल-लाल केश बिखर गये हैं और इसके कण्ठके पास इतने विशाल काले शरीरपर मुझे यहाँ गगनसे कृष्णचन्द्रका शिशु श्याम विग्रह ऐसा लगता है, जैसे कज्जल-गिरिपर अरुणोदयमें इन्द्र-नीलमणि पड़ा हो। ये अब भी असुरके शरीरपर कण्ठके पास लेटे हैं और अब अपने नन्हें पद्म-पद उछालने लगे हैं। इतने ऊपर तक उछल आनेके आनन्दमें किलकारी ले रहे हैं।

तृणावर्त कितना छटपटाया। कितनी बार अपने शरीरको उसने उलटा-पलटा—'इसे मैं किसी प्रकार फेंक सकता!'

व्यर्थ थी उसकी आशा। इनके जनोंको जो व्याकुल करे, छटपटानेको बाध्य करे, उसे पीड़ा-छटपटाहट न मिले- कैसे हो सकता है? व्रजेश्वरी, रोहिणी, गोपियाँ कितनी छटपटायीं!

तृणावर्तका—चक्रवातका घोर शब्द जैसे ही श्रवणोंमें पड़ा, नन्द-पत्नी कक्षसे बाहर भागीं। उनका प्राण बाहर प्राङ्गणमें था; किंतु पलक झपकते तो घोर अन्धकार हो गया था। नेत्र खोले नहीं जा सकते थे। पलकें उठते ही नेत्रोंमें धूलि-कङ्कड़ियाँ भरती थीं।

वस्त्र, केश, शरीरकी चर्चा व्यर्थ है। नेत्र मूँदे दोनों हाथ फैलाकर वे गोकुलकी अधीश्वरी ढूँढ़ रही थीं, टटोल रही थीं और जब उन्हें अपना पुत्र वहाँ नहीं मिला जहाँ बैठा गयी थीं, क्रन्दन कर उठीं—'नीलमणि! हाय नीलमणि नहीं है!'

अत्यन्त व्याकुल माता—वे इधर-उधर टटोल रही थीं। पुकार रही थीं। प्राणोंको एक आशा बचाये थी—'चंचल है, कहीं चलकर दूसरी ओर गया होगा। इस अन्धड़में डरकर कहीं कोनेमें, कक्षमें दुबक गया होगा। रो रहा होगा और मुझे पुकारता होगा।'

'नीलमणि नहीं है!' रोहिणीदेवीने, गोपियोंने नन्दभवनमें जो थीं, सबने सुना और सब एक साथ आँगनकी ओर दौड़ीं। दाऊ और दूसरे बालक अच्छा था कि कक्षमें थे। द्वार बन्द कर दिया शीघ्रतामें रोहिणीदेवीने उस कक्षका। ये बालक तो सुरक्षित रहें। ये तो इस अन्धड़में न निकल पड़ें।

'नीलमणि! कृष्णचन्द्र! कन्हाई!' सब पुकारती, एक-दूसरीसे टकराती, नेत्र बन्द किये आँगनमें व्याकुल टटोलती फिर रही थीं।

कुछ क्षण—केवल कुछ क्षण लगे और प्रकाश हो गया। तृणावर्तने ऊपर उठना रोका और मथुराकी ओर जानेका जैसे ही मन किया, श्रीकृष्णके भारने उसे शिथिल कर दिया। धूलि, पत्ते, तृण, कङ्कड़ियाँ भूमिपर जहाँ-तहाँ गिर पड़ीं। दिशाएँ धुंधली हुईं और स्वच्छ होने लगीं।

'श्याम नहीं है! नन्दनन्दन कहीं नहीं है! वह उड़ गया! वात्याचक्र उड़ा ले गया उसे!' किसने कहा, कौन देखे। आर्त क्रन्दन गूंजने लगा प्रत्येक कण्ठसे। यशोदाजी मूर्छित होकर गिर पड़ीं।

'वात्याचक्र उड़ा ले गया!' रोहिणी प्राङ्गणसे बाहर आनेसे पूर्व ही गिर पड़ीं। गोपियाँ इधर-उधर निकलकर भागनेको उद्यत हुईं। आशा बहुत छलनामयी है। वात्याचक्र इतने सुकुमार शिशुको उड़ा ले गया। पता नहीं कितने ऊपरसे, कहाँ गिरेगा शिशु! क्षीण-क्षीणतम सही आशा तो है कि कहीं कोमल स्थानपर गिरे और जीवित मिल जाय।

समय नहीं था। इतनी भयावह सम्भावना थी कि वह मनमें ठीक आवे, इतना भी समय नहीं था। जिस हृदयमें आती, वह उसी क्षण फट जाता; किंतु सम्भावना समझनेको समय नहीं मिला—मिल सकता नहीं था। योगमाया इतना प्रमाद नहीं कर सकतीं। वे प्रयोजनवश प्रमाद प्रदान तो करती हैं जीवको; किंतु स्वयं प्रमाद उनका स्पर्श नहीं करता। गोपियोंने नन्दभवनसे निकलते-निकलते भारी धमाका सुना। उनके सामने ही विशाल असुर आकाशसे शिलापर गिरा। वे सब दौड़ गयीं उधर और पहिली दृष्टिमें उन्हें अरुण-पङ्कज चरण उछालते नन्दनन्दन दीखे। इनकी प्रसन्न किलकारी श्रवणोंमें पड़ी। प्राण जाते-जाते लौटे—'नीलमणि सकुशल है!'

'श्याम सकुशल है!' सबके कण्ठोंसे एक साथ हर्षध्वनि निकली।

असुरके रक्तसे भीगी धराको, फटे-चिथे असुरके शरीरको कौन देखे? अतुलाने दौड़कर उठाया शिशुको और लिए हुए दौड़ती-पुकारती आयीं—'जीजी! नीलमणि सकुशल है! यह मिल गया है!'

रोहिणीदेवीने सुना और आतुरतापूर्वक उठीं। नन्दरानीकी मूर्छा टूटी जब इनके अङ्कमें देवरानीने धर दिया इनके लालको। नेत्र खाले, देखा, देखती रहीं और उठाकर धीरेसे हृदयसे लगाकर देवरानीको लौटाते बोलीं—'अतुला! मैं अभागिनी इसे रख नहीं सकती। मुझे यह अपना

उदरजात ही आज भारी लगने लगा था। यह तुम सबके प्रारब्धसे लौटा है। यह तुम्हारा है—तुम्हारा ही है!'

'मेरा तो है ही!' महाभागा नन्दनकी पत्नीने सोल्लास अङ्कमें ले लिया है और अब हास्य आया है इनके मुखपर—'लेकिन जीजी! तुम उठो। अभी महर्षि शाण्डिल्य आवेंगे। मैं इसे असुरके ऊपरसे उठा लायी हूँ; ग्रह-शान्ति करनी होगी। इसे शुद्ध करना होगा। ब्राह्मण-मुनिगण आवेंगे और अपने भी सब दो क्षणमें आते ही हैं। तुम ऐसी धूलि-भरी कैसे इसे अङ्कमें लेकर सबके सामने बैठोगी। उठो और शीघ्रता करो! स्नान करके वस्त्र बदल डालो।'

'तू ऐसी ही भूतनी बनी रहेगी?' अब यशोदाजीके मुखपर हास्य आया है देवरानीकी दशा देखकर। सब तो एक जैसी हो रही हैं। गृह-आँगन सब धूलि-तृणोंसे अटा पड़ा है। सब स्वच्छ होना है।

गोपोंको अब तक कुछ पता नहीं। अब वे तृणावर्तके शरीरके समीप एकत्र होने लगे हैं। इसका अग्नि-संस्कार करेंगे। सर्वेशके ये अपने जन और असुर तो इनके परमधाम पहुँच गया। ये अनन्त दयाधाम—मैंने इनके स्पर्शसे उसे आसुरी योनिसे मुक्त होनेका वर दिया था, इन्होंने उसे अपना परमपद प्रदान कर दिया।



वर्षगाँठ

मैंने प्रलय-पयोधिमें वटपत्रशायी भगवान बालमुकुन्दका दर्शन किया है। भले भगवान नारायणने मायासे ही वह दर्शन कराया किंतु उनका वह स्वरूप—वह झाँकी भी क्या भूली जाती है। लेकिन झाँकी तो आज मिली है मुझे।

मैं कल्पान्तजीवी होऊँ; पर महर्षि शाण्डिल्यकी कोई समता है सृष्टिमें। सृष्टिकर्त्ताने जो सौभाग्य अपने प्रिय पुत्र वशिष्ठको प्रदान किया था, वही महर्षि शाण्डिल्यको सहज सुलभ हो गया है इस द्वापरान्तमें। अब वे आवाहन करें मेरा तो मैं जाऊँ, इतनी अशिष्टता तो मुझे नहीं करनी चाहिये।

भगवान सदाशिव गोकुल हो आये, तबसे ही मैं उत्कण्ठित था; किंतु वह सुअवसर आज आया। मैं अनवसर आ जाता तो इतना सौभाग्य कैसे पा सकता था। आज नन्दनन्दनकी वर्षगाँठ थी और इस अवसरका आराध्य तो मैं ही माना जाता हूँ। अतः मैं तो कबसे इस दिनकी प्रतीक्षा करता रहा था।

ब्राह्ममुहूर्तमें संक्षिप्त नित्यकर्म समाप्त करके मैं हिमवानके अङ्कमें पुष्पभद्राके पावन तटपर अपने अमर्त्य आश्रमसे गोकुल चल पड़ा गगनमार्गसे। वहाँ पहिले पहुँचकर कुछ काल मुझे आकाशमें ही अदृश्य रहना था, जिससे महर्षि शाण्डिल्य तथा व्रजराजको कोई असुविधा मेरे अकस्मात् पहुँचनेके कारण न हो।

भाद्रपदका कृष्ण पक्ष है। अष्टमी तिथिका चन्द्र प्रातः दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था और गगन अत्यन्त निर्मल था। मैं गोकुल पहुँचा और देखता रह गया। मैंने स्वर्ग ही नहीं, ब्रह्मलोक भी देखा है और जब भगवान बालमुकुन्दने मुझे अपने उदरमें आकृष्ट कर लिया था, अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड देखे थे मैंने; यह तो मेरा देखा गोकुल—व्रजमण्डल नहीं है। यह दिव्यधरा, यह अकल्पनीय शोभा, सम्पत्ति और ये पक्षी, पशु, स्त्री-पुरुष—यह तो सृष्टिमें कहीं नहीं देख सका था मैं।

मैं परात्पर पुरुषकी परम दिव्य पुरीमें पहुँच गया हूँ, यह स्मरण करके मैंने वन्दनाकी गगनमें-से ही। यहाँका तो अणु-अणु वन्दनीय है और लीलामयकी विडम्बना यह कि मुझे पूजा स्वीकार करनी थी आज यहाँके अधीश्वरकी।

भगवान बालमुकुन्द—वही श्याम श्रीअङ्ग; किंतु सौन्दर्य, माधुर्य, मृदिमा शत-सहस्र-गुणित हो गयी है। अब ये चलने लगे हैं, बोलने लगे हैं। काली घुँघराली अलकोंसे घिरे चन्द्रमुखसे कुछ बोलते हैं तो श्रवणोंमें सुधा-धारा प्रविष्ट होती है।

भालपर कज्जल-बिन्दु, नेत्रोंमें अञ्जन, कण्ठमें मुक्तामालके मध्य व्याघ्रनख और कौस्तुभ, वक्षपर श्रीवत्स-चिह्न—मैया यशोदाने दक्षिण बाहुकी कलाईमें कङ्कणोंके पास एक नन्हीं-सी पोटली बाँध दी है आज पीतपटमें। इसमें नीम, गुग्गल, सरसों, दूर्वा और गोरोचन होगा। ये वाम करसे इसे टटोल रहे हैं। माता कहती हैं—'लाल! इसे मत खोलना! आज तुम्हारी वर्षगाँठ है।'

'दाऊको बाँध!' अब ये मैयासे कितने आग्रहसे कहते हैं कि 'भद्र, विशाल, अर्जुन, ऋषभ, सबके करोंमें बाँध पोटली। सबकी वर्षगाँठ होगी। सब पूजन करेंगे।'

'आज सबकी वर्षगाँठ नहीं है। आज तो तेरी वर्षगाँठ है। सब तुझे उपहार देंगे।' मैया हँसती है।

'है कैसे नहीं? तू सबकी वर्षगाँठ कर दे।' यह मातासे इनकी आग्रह, अनुरोध, उलझने-झगड़नेको प्रस्तुत भङ्गी—'सबको उपहार देने हैं।'

'लाल! उपहार तुम सबको दे लेना!' माँ नहीं चाहतीं कि आज ये प्रातः खीझने लगें—'पर तुम सबसे बड़े हो न! आज बड़ेकी ही वर्षगाँठ होती है। दूसरोंकी दूसरे दिनोंमें होगी।'

'मैं बड़ा हूँ—सबसे बड़ा हूं।' अब इसमें भी कुछ कहना है कि आप आदि पुरुष सबसे बड़े हैं। आप अद्वितीयमें··· ।

'यह भद्रको तो बाँध!' और किसीको नहीं तो कम-से-कम भद्रको ही सही। कोई एक सखा तो पोटली बाँधनेमें साथ हो।

'भद्र तो छोटा है।' मैया हँसती है—'उसकी और दाऊकी वर्षगाँठ भी पीछे आवेगी। तब उनके यह बँधेगी। मेरा लाल सबसे बड़ा है, इसलिए आज इसको अकेले बाँधे रहेगा।'

महर्षि शाण्डिल्य नन्दभवन आ गये हैं। अब मुझे सावधान रहना था। गणपति, मातृकाएँ, वरुणदेव, नवग्रह तथा पितामह ब्रह्माजी भी आज मुझसे सीख सकते थे ; किंतु मैं तो आजका प्रधान-पूज्य था। सब अलक्ष्य रहकर कितनी विवशता अनुभव कर रहे थे पूजा लेनेमें, यह मैं देख सकता था। यह विवशता भी कितनी मधुर आनन्ददायी है। अपने इन्दीवरसुन्दर तनयको अङ्कमें लेकर नन्दरायजी पूजन कर रहे हैं। महर्षि शाण्डिल्य मन्त्र बोल रहे हैं। विप्रवर्गके साथ—ऐसा पूजन प्राप्त करनेका स्वप्न भी कितना महान है।

विशाल ताम्रपात्रपर दुग्धोज्वल कौशेय वस्त्रके ऊपर विराजमान भगवान नारायणका ध्यानमन्त्र—

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।

मुझे हँसी आ रही है। महर्षिके—विप्रोंके—किसी एकके भी हृदयमें इस मन्त्रकी ध्येय मूर्तिका ध्यान नहीं आ रहा है और व्रजराजके मनमें तो आ सकता नहीं है। मन्त्र कोई बोल लो, ये नवघनसुन्दर, दिगम्बर, कमल-लोचन द्विभुज शोभासिन्धु सम्मुख हैं तो क्या चित्त दूसरा चिन्तन करेगा ? करनेकी कोई आवश्यकता भी कहाँ है। मैं क्या नहीं देख रहा हूँ कि वे श्वेतद्वीपाधिपति शशिवर्ण—निखिल सत्त्वगुणैकधाम, सत्त्वाधिष्ठाता उस पात्रमें उज्वल कौशेयपर प्रतिष्ठित मूर्त्तिमें सुप्रसन्न विराजमान हो गये हैं।

दधि, दुग्ध, अक्षतसे, श्वेत सुरभित पुष्पोंसे आराध्यका पूजन समाप्त हो गया। महर्षिने नन्दनन्दनके नक्षत्रेश ब्रह्माजी, चन्द्रदेव, सूर्य, षष्ठीदेवी, अग्निदेव, सुरगुरु, कालाधिदेव, द्वापर, संवत्सर, भाद्रमास, कृष्णपक्ष अष्टमी तिथि, रोहिणी नक्षत्र, वृषराशि, इन सबके अधिदेवताओंका पूजन कराया ; जन्मदेव, स्थानदेव, पञ्चमहाभूत, महामाया, परमपुरुष, भगवान शिव, सम्भूति, प्रीति, सन्नति, क्षमा, विघ्नवती, भद्रा, इन्द्रादि लोकपाल, भगवान शेष तथा कुमार कार्तिकेयका भी सविधि पूजन सम्पन्न करा दिया। यह सब तो आजके प्रधान पूजनकी वाह्यपूजा सम्पन्न हुई।

अब अन्तरङ्ग पूजनमें चिरजीवियोंकी पूजा होनी थी। भगवान परशुराम, पवनात्मज श्रीहनुमान, दैत्येन्द्र प्रह्लाद एवं बलि तथा विभीषणकी पूजा पूर्ण करके क्षेत्रपालको उनका भाग समर्पित करा दिया गया।

अब मैं अदृश्य रह जाता तो सबके समान— प्रधान पूज्य होनेसे बहुत विशेष रूपमें महर्षि शाण्डिल्य मेरा भी पूजन करा देते ; किंतु मैं इसलिए तो गोकुल नहीं आया था। मैं गगनमें ही प्रकट हो गया और धीरेसे उतर आया व्रजेन्द्रके प्राङ्गणमें। सबने सम्भ्रम-सहित उठकर मुझे सम्मानित किया।

महर्षि शाण्डिल्य स्वयं मुझे अर्घ्य देना चाहते थे। मैंने उन्हें वारित किया—'आप अपना तथा विप्रवर्गका पूजन समाप्त करा लें। मैं अपने आप अपनी बात देख लूंगा।'

सात्वत-संहिता पाञ्चरात्रोंके प्रतिष्ठाता महर्षि शाण्डिल्यको विधि-निदेश करनेमें तो सृष्टिकर्त्ता भी समर्थ नहीं हैं ; किंतु उनके ही विधानके अनुसार मैं आजका प्रधान अधिष्ठाता था। मेरी आज्ञा ही विधि थी। मैं अपने आप आचार्य बन गया। महर्षि शाण्डिल्य और सब विप्रवर्ग संकुचित चाहे जितने हो लें, मैंने व्रजेन्द्रके द्वारा सबकी सविधि पूजा करायी। महर्षि शाण्डिल्य मेरी पूजा करानेको प्रस्तुत थे, मैंने उनकी ही पूजा करा ली—यह सौभाग्य तो नन्दनन्दनके चरणोंके समीप पहुँचते ही प्राप्त हो गया मुझे।

'श्रीचरण आचार्य-पूजनमें भी पुरुष-सूक्तको प्रयुक्त करते हैं?' मैं विदा होने लगा था तो महर्षि शाण्डिल्यने एकाकी समीप आकर बहुत सङ्कोच-पूर्वक मुझसे जिज्ञासा की थी। उन्हें सन्देह हो गया था कि उनके द्वारा निर्दिष्ट विधियोंमें कहीं त्रुटि होगी। वे इतने शालीन हैं कि मैं भी प्रमाद कर सकता हूँ, सोच ही नहीं सकते थे।

'श्रुति-शास्त्र-सम्मत विधिके आप ही विशेषज्ञ हैं।' मैंने स्पष्ट कह दिया—'किंतु परम-पुरुष पुरुषोत्तमका आचार्यत्व जिन्हें प्राप्त हुआ, वे सामान्य जीव तो नहीं हो सकते? इन नीलसुन्दरके पिता, परिकर, आचार्य इनसे अभिन्न नहीं हैं? मैं क्या करूँ, जब मुझे अनेक रूपोंमें इनका ही अर्चन कराना हो?'

महर्षि अधिक विनम्र हो गये। मैं सम्मुख इन भुवनमोहन नन्द-नन्दनको देखकर दूसरेको स्मरण ही नहीं कर पाता था, अतः पुरुष सूक्त तो मेरे मुखसे स्वतः निःसृत हो रहा था।

मुझे भी पूजन तो स्वीकार करना ही था। मैंने नन्दनन्दनको अङ्कमें ले लिया और महर्षि शाण्डिल्यको संकेत कर दिया कि अब वे मेरा पूजन करा सकते हैं। श्रीकृष्णको अङ्कमें लेकर तो मैं सृष्टिमें किसीकी भी अर्चा सङ्कोचहीन होकर स्वीकार कर सकता हूँ। जानता हूँ कि व्रजराजने अर्घ्य, पाद्यादिसे सविधि पूजा की होगी मेरी; किंतु ये पद्मपलाशाक्ष अङ्कमें हों तो क्या शरीरका स्मरण रह जाता है।

अन्तमें मैंने दुग्धपात्र उठाया और इन अपने आराध्यके मुखकी ओर ले जाने लगा—'आप तनिक पी लो तो मैं आपकी पद्मगन्धाका यह पय आज आकण्ठ तृप्त होकर पीऊँगा।'

व्रजराजने दोनों चरण पकड़ लिये मेरे—'आपका परम-पावन प्रसाद आज इसे प्राप्त होना चाहिए!'

मैं क्या करता। मैंने कातर नेत्रोंसे महर्षि शाण्डिल्यकी ओर देखा—'मुझे महामृत्युके मुखसे निकालकर अमरत्व प्रदान करने वाले भगवान पुरारि भी जिनका चरणोदक सहर्ष सिरपर धारण करते हैं…!'

महर्षि शाण्डिल्यके नेत्र भर आये। मेरी विह्वलता वे समझ सकते थे; किंतु यही विवशता उनकी भी थी। वे मेरा समर्थन नहीं कर सकते थे। उन्होंने अञ्जलि बाँधकर मुझसे बहुत विनय पूर्वक कहा—'आप नैवेद्य स्वीकार करें! आप और हम सभी जिनके आदेशोंका पालन करनेको विवश हैं, उनकी लीलाके अनुरूप ही हमें अभिनय करना है। श्रीव्रजराज अपने कुमारको आपका यह प्रसाद देनेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हैं।'

मैंने पात्र अधरोंसे लगा लिया। मैं कल्पान्त जीवित रहूँगा; किंतु यह पुनीत पय-पान पुन: तो सृष्टिमें सुलभ नहीं होनेवाला है। मैं पीता रहा—पीता रहा और श्रीनन्दराय उल्लसित होकर पात्र पूर्ण करते रहे। वे आह्लादमें मग्न थे कि मैंने भरपेट उनके यहाँ दूध पिया। अब इस अमृतके स्वादको कैसे समझाऊँ? कहाँ समता है इसकी?

दुग्ध पीकर मैंने आचमन किया। उठ खड़ा हुआ विदा होनेको तो मुझे पुष्पाञ्जलि अर्पितकी व्रजराजने। मेरे लिए यह देखना सम्भव नहीं था कि पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको मेरा उच्छिष्ट दूध दिया जाय और वह तो स्वयं अनन्त प्रभु दाऊको तथा सभी बालकोंको दिया जाना था। मर्यादा महान निष्ठुर होती है-- मैं केवल देखनेसे बच सकता था। ❁

अतुला चाची

मैं व्रजराजके परिवारमें सबसे छोटी हूँ—सबकी स्नेह-भाजना। ससुरालमें इतना असीम स्नेह-सौहार्द मिल सकता है—यह सोचना भी सबके लिए सम्भव नहीं है। सृष्टिकर्त्ताने अपने समीपका सारा सौभाग्य समेटकर मुझे एक साथ सौंप दिया है।

मेरे स्वामी सबसे छोटे हैं। मैंने चार जेठानियाँ पायी हैं और चारोंकी मानों मैं सगी सुता हूँ। कोई पुत्रीपर भी इतना प्रेम क्या करेगी, जितना मैंने छोटी जीजी व्रजेश्वरीका पाया है और रानी जीजी रोहिणी गोकुल क्या आयीं, मुझे तो बड़ी माँ मिल गयीं। मैं उनकी बहुत-बहुत लाड़िली हूँ। मेरी दोनों नन्दें परिहास चाहे जितना करें, मेरे भालपर स्वेद कणिका भी उन्हें सह्य नहीं। मेरे करोंको अपने दोनों हाथोंमें लेकर कितनी बार तो चूमती हैं और कहती हैं, 'अतुला भाभीके हाथ तो केवल आशीर्वाद देनेके लिए बने हैं।'

मेरी एक ही कठिनाई है—मैं कम ही किसीकी सेवा करनेका अवसर पाती हूँ। जेठानियाँ तो वैसे ही कुछ करने नहीं देतीं, हठ करके कुछ करने भी लगूँ तो कोई भी जेठ देखते ही गरजेंगे—'छोटी! तू क्यों लगी है? दूसरी सबोंको क्या बहुत काम बढ़ गया है आज?'

पीबरी जीजी तो पकड़कर ही बैठा देती हैं—'अतुला, तू मुझे और मोटी करके मार ही डालेगी क्या? कुछ तो करने दे कि देह किञ्चित हलका बना रहे।'

इस गोकुलमें व्रजेश्वरी छोटी जीजी बनायी गयीं; किंतु राज्य करनेके लिए तो यह अतुला है। इसीका शृङ्गार, इसीकी सुविधापर सबकी दृष्टि लगी रहती है। इसका भी उनकी सेवामें कुछ स्वत्व है, यह कोई सुनता ही नहीं।

जेठोंको कोई उत्तम रत्न, वस्त्र मिले तो पहिले—'छोटीके लिए।' और जेठानियोंके पास हो तो—'अतुला यह तेरे ही योग्य है।' नन्दें भी

ससुरालसे पता नहीं कितना क्या-क्या लाती हैं—'भाभी ! बड़ी साधसे लायी हूँ । तू ना मत कर देना !'

जेठानियाँ तीनों एक-सी हैं । चाहे जब कह देंगी—'अतुला ! हम तो बूढ़ी हो गयीं । तेरी ही तो आयु है पहिनने-ओढ़नेकी ।'

अब नारायणने सबकी गोद भर दी है । मुझे चाची कहकर अङ्कमें आ बैठनेवाले अब इतने हो गये हैं कि गणना नहीं है । गोकुलके सब बालक तो मेरे ही हैं । मेरे नहीं हैं तो केवल दो और ये दोनों मेरे पेटसे उत्पन्न हुए हैं । इन दोनोंने मुझे तनिक भी दुःख नहीं दिया । इन्होंने तो मुझे केवल 'धाय' रखा और इसमें भी मुझे तङ्ग नहीं किया । दोनोंकी माँ तो व्रजेश्वरी हैं ।

मैं सोचती थी कि मेरी गोदमें शिशु आवेगा तो उसे व्रजेश्वरीको 'माँ' कहना सिखला दूँगी ; किंतु मुझे यह सब कुछ करना नहीं पड़ा । बड़ा भद्र महीने भरका हुआ तभीसे वह पहिचानने लगा व्रजेश्वरी और रोहिणी जीजीको । उसे लेकर मैं सबेरे ही न पहुँचूं उनके पास तो रो-रोकर मुझे तङ्ग कर देता था । रात्रिमें सो जाय तब घर ले आऊँ । दूध भी मेरे स्तनोंका दोनोंने कम ही पिया है । दोनों ही दोनों जीजियोंके अञ्चलमें शैशवसे सिर छिपानेके अभ्यासी हो गये ।

व्रजेश्वरी जीजीने भद्रके तीन महीनेका होते ही कहा—'अतुला ! तू इसे यहीं छोड़ दे । यह रहता है तो दाऊ इसके समीप प्रसन्न रहता है । यह भी इसको देखकर ही किलकता है ।'

'जीजी ! यह तो है ही तुम्हारा !' मैंने उस दिन उल्लसित होकर कहा था—'मैं तो तुम्हारे इस पुत्रकी धाय हूँ । तनिक और बड़ा हो जाय तो इसे यहाँ मुझे छोड़ना ही पड़ेगा ।

यह बात इस सीमा तक सच हो जायगी, इसका पता तब मुझे भी नहीं था । भद्र तो भूल ही गया कि गोकुलमें उसका कोई दूसरा घर भी है । वह मँझले जेठ व्रजराजके साथ रात्रिमें सोने लगा है । वे कहते हैं—'छोटी ! यह मेरा पुत्र है । यह समीप नहीं होता तो मुझे निद्रा ही नहीं आती । यह मेरा दूसरा दाऊ ।'

भद्र—सचमुच दाऊ जैसा ही तो है। दाऊ स्वर्ण गौर है और भद्र गोधूम वर्ण—लेकिन दोनोंके नेत्र, भाल, बाहु जैसे एक साँचेमें ढले हैं। दाऊ कितना मानता है अपने इस छोटे भाईको।

भद्र भी दाऊके समान रोहिणी जीजीको 'माँ' कहता है और व्रजेश्वरी 'मैया' हैं ; किंतु मुझे तो अपने सखाओंके समान चाची कहते हैं मेरे दोनों युत्र।

भद्रने स्वयं नन्दभवनको अपना लिया था और तोकको नीलमणिने ले लिया। यह तोक कृष्ण—छोटा कृष्ण कहलाता भी तो इसीलिए है कि नीलमणिकी दूसरी मूर्ति है। औरोंकी बात मैं क्यों करूँ, नीलमणि समीप न बैठा हो तो तोकको देखकर मैं इसे अनेक बार 'कनूँ' कह बैठती हूँ। इतना ही तो अन्तर है कि इसके वक्षपर तनिक वाम भागमें वह स्वर्णिम रोमोंकी भ्रमरी नहीं है। लेकिन उसपर दृष्टि जाय तब कहीं ठीक पहिचान हो। तोक तो 'नीलमणि ! कनूँ' आदि कहकर पुकारे जानेपर पुकारने-वालीका मुख देखकर हँसनेका अभ्यासी हो गया है।

नीलमणि, जब तोक दो मासका था, तबसे इसे छोड़ना नहीं चाहता। सबेरे उठते ही कहेगा—'तोक' और तोक न पहुँचे तो दूध पिलाना उसे सम्भव नहीं रहता। मैं तोकको लेकर सबेरे ही वहाँ भागती हूँ। अब तोकको भी वही छोड़ दूंगी। व्रजेश्वरी जीजी अपना यह भी कुमार सम्माल लें।

मेरे लिए मेरा नीलमणि पर्याप्त है। वह अकेला है जो मुझे 'माँ' कहता है। वह मेरा है—इसमें मैं किसीकी सुननेवाली नहीं हूँ। वह सभीको 'माँ' कहता है—ऐसा तो नहीं है। अपनी ताइयोंको 'दायी' कहता है और मेरी छोटी जेठानी कुबला उसे चाची कहना सिखलाती हैं तो उन्हें 'छाछी' कह लेता है; किंतु मुझे 'छाछी' कहलाने लगती हैं तो मेरा लाल सिर-हाथ सब हिलाकर मना करता है। वह 'माँ' कहता है मुझे और मेरे अङ्कमें भाग आता है।

× × ×

मेरा कन्हाई खड़ा होने लगा था, तब मैं या व्रजेश्वरी जीजी इसे खड़ा कर देती थीं। यह अपने दोनों हाथ उठाये, हमारे कर पकड़नेकी मुद्रामें दो पल खड़ा रहता, डगमगाता और फिर बैठ जाता था।

इसके खड़े होनेपर दाऊ अपने छोटे-छोटे हाथोंसे ताली बजाते कितना प्रसन्न होकर नाचने लगा था, जब यह पहिली बार खड़ा हुआ। यह बैठ गया और बड़े भाईको देख-देखकर ताली बजानेका प्रयत्न करता किलकता रहा।

इसके नन्हें दाँत—अब तो मुखभर गया है! किंतु जब दो-दो ही ऊपर-नीचे थे—इसकी ये उज्वल दँतुलियाँ जैसे चन्द्ररश्मिको जमाकर बनी हैं। मेरा लाल हँसता है तो चन्द्रिका चमक जाती है। इसके लाल-लाल पतले छोटे अधरोष्ठ लगता है कि दुग्ध-स्नात हो गये।

'दा······दा' पहिले कहना प्रारम्भ किया था इसने और फिर मुझे 'माँ' कहने लगा। अब तो दादा, बाबा, मैया, दाऊ आदि सब बोलता है, किंतु इसका तुतलाना भी बालकोंसे भिन्न है। चाचा को छाछा कहेगा और ताऊको दाऊ।

इसे अपनी अँगुलियाँ पकड़ाकर मैंने कम ही चलना सिखलाया। मयूर इसके घनसुन्दर अंगको देखते ही आँगनमें उतर आते हैं और नाचने लगते हैं। इसने तो उनमें-से किसीका भी कण्ठ पकड़कर चलना सीखा। वे भी इसके पकड़नेपर बहुत धीरे पद उठाते थे। अब तो यह उनके साथ ताली बजाकर अथवा दोनों कर फैलाकर नृत्य करता है।

वह मरा राक्षस आ गया उस दिन। पता नहीं वह आँधीमें उड़ आया था या उसीने आँधी चलायी थी। अपने पापसे ही मारा गया। इतने सुकुमार शिशुको लेकर उड़ ही गया था; किंतु नारायणने इस नीलमणिकी रक्षा की। वह तो शिलापर चक्कर खाकर गिरा होगा और पत्थरकी चोटसे मरगया।

× × ×

सभी बालकोंको धूलि प्रिय होती है। यह नीलमणि तो रजमें बैठकर लोट-पोट होकर प्रसन्न होता है। अपने और सखाओंके अंगोंपर धूलि डालता है। कितनी बार मुझे नन्हीं मुठ्ठीमें भरकर धूलि दी है इसने।

यह तो घुटनों सरकता था तब भी गोष्ठके रंगबिरंगे गोबर, गोमूत्रकी कीचमें लथपथ हो लेता था और फिर हँसता-किलकता। मना करनेपर मेरी, रोहिणी जीजी या व्रजेश्वरीके अंकमें ही आनेको हाथ उठा देता था। इसे अंकमें लेनेसे कीच-सने वे वस्त्र—मुझे वे इतने प्यारे लगते हैं कि मैंने सम्हालकर रख लिये हैं। वस्त्रोंका मेरे पास कोई अभाव है कि मैं उन्हें

धोऊँ। वे मेरे लालकी स्मृति हैं। यह बड़ा होगा तो अपनी माँके वे कीचड़ सने वस्त्र देखकर कितना प्रसन्न होगा।

× × ×

यह एक वर्षका हुआ तो प्रथम पावसमें ही वर्षामें भीगने-भागने लगा था। प्रथम वर्षाका जल हानिकर होता है। उससे शरीरपर फोड़े-फुन्सियाँ उठ आती हैं। कठिनाईसे इसे मैं अङ्कमें लिये रोके रही थी।

इसे और इसके सब सखाओंको जल बहुत प्रिय है। यह सब तो घुटनों सरकने लगे थे तब भी प्रांगणमें थोड़ा-सा भी जल मिलते ही उसमें छपाछप करने पहुँच जाते थे। अब मोहनको आँगनमें किसीके द्वारा भी स्नान कराना रुचता ही नहीं। ये सब बाहर भाग जाते हैं और भीगते हुए स्नान करके प्रसन्न होते हैं।

कन्हाई अवसर मिलते ही भाग निकलता है और दाऊ, भद्र, विशाल, तोक तक भागेगा। तोक और इसके साथी घुटनों सरकते भागेंगे। श्याम ऊपर मुख करके अपना छोटा-सा हाथ उठाकर बादलोंको ऐसे बुलाता है, जैसे यह बिल्लियोंको, मयूरोंको अथवा मैयाको या मुझे हाथ हिला-हिलाकर बुलाता है और सचमुच इसके बुलानेपर मेघ आ जाते हैं।

गोपियोंको, रोहिणी जीजीको और मुझे भी इसकी मनुहार करते रहना पड़ता है—'लाल! अभी मेघोंको मत बुलाना! आँगनमें अन्न डाला है सूखनेके लिए।'

नीलमणि शिशु है, यह कब तक स्मरण रख सकता है ऐसी बातें। यह भीगने—स्नान करने सखाओंके साथ बाहर आता है तो वेगसे होती वर्षा भी मन्द पड़ने लगती है, यह मैंने देखा है। वेगसे वर्षा हो रही हो तो ये सब बिना बाहर भागे मानते नहीं। बड़ी कठिनाईसे इन्हें रोकना पड़ता है। व्रजेश्वरीको, रोहिणी जीजीको, मुझे इस पावसमें बहुत सावधान रहना पड़ता है। इनको दिनमें कितनी बार स्नान करना है—भीगना है, कुछ गणना रखनी है इन्हें? इनको कोई रोके नहीं तो दिनभर भीगते रहेंगे।

वर्षा प्रारम्भ हुई और भागनेकी इन्हें सूझेगी। छपाछप करते पानीमें भागेंगे। दौड़ेंगे, दोनों हाथ फैलाकर घूमते रहेंगे अथवा गिरेंगे तो भी हँसते

किलकते रहेंगे। वर्षा बन्द भी हो जाय तो भरे पानीमें बैठ जायँगे सब और एक दूसरेपर पानी-कीच डालते रहेंगे। बहते जलमें पत्ते तैरावेंगे।

× × ×

अनेक बार व्रजेश्वरीको, रोहिणी जीजीको अथवा मुझे भीगते हुए दौड़कर इन्हें पकड़ना पड़ता है। ये तो पुकारनेपर दूर भागते हैं। इनको कर पकड़कर, अंकमें उठाकर लाओ तो भी उतरनेको मचलते हैं।

कन्हाई मेघोंको बुला लेता है तो प्रायः फुहियाँ पड़ती हैं। नन्हें सीकर झर रहे हैं और यह दोनों कर फैलाकर सखाओंके साथ नाच रहा है। इसकी अलकोंपर, अंगोंपर हीरक कणिकाओं जैसी फुहियाँ बढ़ती जा रही हैं। मैं ही नहीं, सब गोपियाँ, गोप तक ठगे देखते रहते हैं नीलमणिकी यह छटा। मयूरोंका समूह इसके आसपास नाचता घूमता है और उनका केकारव गूंजता रहता है। शिशुओंकी ताली, किलकारी, कंकण-किंकिणि, नूपुरोंकी रुनझुन—हमारे गोकुलमें नित्य महोत्सव है। मेरा यह मनमोहन महोत्सव-की मूर्ति ही है।

× × ×

बहुत सुकुमार है मेरा नीलमणि ; किंतु कोई भी क्या करे। सब शिशु बहुत चञ्चल हैं। सब इसे लिए खेलने-दौड़ने, भागनेमें ही लगे रहते हैं। खेलनेमें लगता है तो कहाँ स्मरण रहता है कि क्षुधा भी लगती है।

पावसका आतप, भले मेघ छाये हों, बहुत तीक्ष्ण हो जाता है। श्यामका मुख लाल-लाल हो उठता है। इसके भालपर, कपोलोंपर स्वेदके कण झलमला आते हैं। व्रजेश्वरी जीजी बार-बार कहती हैं—'अतुला ! तू इन सबको रोक तो सही। ये यहाँ सम्मुख आँगनमें ही क्यों नहीं खेलते। यह सब भूखे होंगे। नीलमणिको, तोकको दूध पिये तो बहुत देर हो गयी।

मेरा हृदयभी छटपटाता है; किंतु करूँ क्या ? ये शिशु तो व्रजेश्वरीकी ही नहीं सुनते। भद्रपर रोष करूँ तो ये मुझे डाँटने लगेंगे और तोकको कुछ कह नहीं सकती। उसे कुछ भी कहने जाओ तो नीलमणि रूठा धरा है। श्यामके बड़े-बड़े दृगोंमें अश्रु तो मुझसे नहीं देखा जाता।

इन सबको किसी प्रकार ले भी आओ तो ये कितने क्षण टिकते हैं ? अञ्चलमें ढककर दूध पिलाने लगो तो भी मुख मोड़कर देखते रहेंगे कि कोई सखाभागा कर बहर तो नहीं चला गया। एक भाग निकले तो दूसरे रुकने-से रहे।

'कन्हाई बहुत दुर्बल है।' मैंने जीजीसे कहा—'इसे कुछ माखन खिलाओ, दूध पिलाओ तो इसमें थोड़ी शक्ति आये।'

'मैं तो हार गयी।' जीजी कहती हैं—'अतुला! तू इसकी माँ है। अब तू ही इसे दूध पिला आज!'

इसे दूध पिलाना तो बड़ा भारी संग्राम जीतने जैसा है। यह तो दूध-के नामसे हाथ-पैर नचाता है। भूमिमें लोट-पोट होता है। हाथ मारकर स्वर्ण-पात्रका दूध गिरा देता है। उस दिन कुबला जीजीने कह दिया—'तू नहीं पीता तो मैं बिल्लीको दे देती हूँ।' बस हो गया—यह तो उठकर बिल्लियोंको बुलाने ही लगा। मेरे इस लालको दूसरोंको देने—बाँटनेकी धुन जन्मसे—सम्भवतः पेटसे होगी। जीजी और जेठको भी तो यही धुन रहती है।

'तू दाऊको पिला दे! भद्रको पिला दे! ऋषभको दे दे!' कन्हाई तो स्वयं सखाओंके नाम गिनाने लगेगा। सबको समीप बैठा लो और सबको स्वर्ण पात्रमें दूध दे दो तो यह मुखमें दो घूंट ले ले तो मङ्गल मनाओ।

'यह तेरी कामदाका दूध है' व्रजेश्वरी कहती हैं—'तेरी इस माँने इसमें पद्म-मधु मिलाया है। तू दूध नहीं पियेगा तो यह रोयेगी।'

कन्हाई मेरी ओर देखने लगता है। मैं दोनों हाथोंसे मुख ढककर रुदन कर अभिनय करती हूँ तो मेरा लाल आकर मेरी गोदमें बैठ कर अपने नन्हें करसे मेरे हाथ हटाता है। मेरे कपोलपर कर रखकर मना करता है कि मैं रोऊँ नहीं—'दूध···।'

'हाँ, तू दूध नहीं पियेगा तो मैं रोऊँगी।' मैं कहती हूँ। व्रजेश्वरीके करसे स्वर्ण पात्र लेकर इसके मुखसे लगाती हूँ तो एक-दो नन्हें घूंट लेकर हठ करने लगता है कि अब मैं दूध पी लूँ—'दू · दूध!'

मैं मुख लगा दूं, इतनेसे इसे सन्तोष नहीं है। इसे दूध पीना नहीं, आग्रह यह करेगा कि मैं पूरा पी लूं।

× × ×

'तू दूध नहीं पीता, इसलिए देख तो कितनी छोटी है तेरी चोटी!' व्रजेश्वरीको इसे दूध पिलानेके लिए नये-नये बहाने बनाने पड़ते हैं। 'तू यह

कृष्णाका दूध पी ले तो तेरी चोटी भी दाऊके समान बड़ी और मोटी हो जायगी।'

कन्हाई अपनी चुटिया टटोलने लगा है। गम्भीर होकर सोचने लगा है। रोहिणी जीजी कहती हैं—'दूध नहीं पियेगा तो तेरी चुटिया दुबली तो रहेगी।'

'ले दूध पी ले!' व्रजेश्वरी कहती हैं।

मैं मुख फेर लेती हूँ। मुझे हँसी आ रही है। यह कन्हाई अपनी चुटिया टटोलते हुए मैयासे कहता है—'तू मुझे प्रतिदिन तो दूध पिलाती है, पर मेरी चुटिया कहाँ बढ़ी। यह तो छोटी ही है।'

'बढ़ी तो है—इतनी बढ़ गयी है। व्रजेश्वरी जीजी ऐसे कहाँ हार माननेवाली हैं—'तू तनिक-सा दूध पीता है तो यह तनिक-तनिक बढ़ती है। तू खूब दूध पी तो यह खूब बड़ी हो जायगी।'

इसे लगा होगा कि दूध पीनेसे चोटी बढ़े तो पी लेना ठीक है। जीजीने पात्र मुखसे लगाया तो दो घूँट पी लिया इसने; किंतु एक हाथसे चोटी पकड़े देख रहा है कि वह बढ़ रही है अथवा नहीं कितनी बढ़ती है।'

'तू इसे पकड़े रहेगा तो बढ़ेगी कैसे?' मैं कह देती हूँ। वैसे कठिनाईसे हँसी रोक पा रही हूँ—'चोटी छोड़कर दूध पी तब तो बढ़ेगी।'

मेरी बात इसकी समझमें आ गयी। हाथसे चोटी छोड़कर दो घूँट दूध पी लेता है और फिर चोटी टटोलने लगता है कि अब तो बढ़ गयी होगी। बस हो गया—इतना दूध भी यह पी लिया करे तो बहुत है।

वैसे अब मुझे इसके दूध न पीनेसे जो चिन्ता होती थी, वह नहीं रही। यह दूध पी लेता है—भले हमारे करोंसे न पीता हो। बालकको मधु-मिश्रित, भली प्रकार गरम करके शीतल किया दूध प्रिय नहीं है, गौके स्तनोंका दूध प्रिय है तो चिन्ताकी बात नहीं है। सभी तो कहते हैं कि धारोष्ण दूध हितकारी होता है। चिन्ता तो इसलिए थी कि हममें किसीको पता नहीं था कि श्याम इस प्रकार दूध पीता है।

मैं सबेरे व्रजराजके सदन पहुँची तो बड़ा सूना लगा। मैंने पूछा—जीजी! सब बालक कहाँ गये?'

'कहाँ गये सब ? अभी यहीं तो थे।' व्रजेश्वरी चिन्तित हो गयीं। मुझे भी चिन्ता हुई। द्वारके बाहर पथमें भी मुझे नहीं दीखे थे। अब हम दोनों बालकोंको ढूँढ़ने गोष्ठ पहुँची।

इस प्रकार ये सब चाहे जब गोष्ठ पहुँच जाते हैं और किसी सेविकाको, गोपीको इनका समाचार लेने भेजनेसे कोई लाभ नहीं है। बालक किसीकी सुनते नहीं। श्यामको उठाकर कोई नहीं लावेगी, उलटे सब वहाँ नीलमणिको खड़ी-खड़ी देखती रहेंगी, इन्हें स्वयं समयकी सुधि नहीं रहेगी।

बालकोंका इस प्रकार गोष्ठमें पहुँच जाना आशङ्काकी बात है। ये पहुँचते हैं गोदोहन होनेके पश्चात्। गायोंको लेकर गोप जा चुके होते हैं। केवल सद्यःप्रसूता गायें और छोटे बछड़े होते हैं गोष्ठमें। व्रजराज भी गायोंको कुछ दूर पहुँचाने जाते हैं। सेविकायें गोष्ठमें गोबर उठाने, गोष्ठ स्वच्छ करनेमें व्यस्त होती हैं। बालक वहाँ क्या ऊधम करेंगे, कोई देखनेवाला इस समय नहीं होता।

सद्यःप्रसूता गायें किसीको अपने नवजात बछड़ेके समीप अचानक नहीं आने देतीं और ये सब उसी नवजातको पकड़ने-पुचकारने जायँगे। छोटे बछड़े स्वभावसे कूदते-फुदकते हैं और उनके खुरोंसे, धक्केसे बालकोंको चोट लग सकती है।

बालक भी कब क्या करें, कहाँ ठिकाना है। अभी उसी दिन ऐसे ही मैं जीजीके साथ इन्हें ढूंढ़ते गोष्ठ पहुँची तो धक्से हो गया हृदय। दाऊ, कन्हाई, भद्र, विशाल सब एक-एक बछड़ेकी पूंछ पकड़े खड़े थे। बछड़े इधर-उधर हो रहे थे और बालक डगमगाते पदोंसे उनके साथ चल रहे थे। गोपियाँ—सेविकाएँ खड़ी-खड़ी हँस रही थीं। इनमें किसीको नहीं सूझता था कि नीलमणि गिर पड़ेगा, इसे चोट लग सकती है।

व्रजेश्वरी देखते ही दौड़ी थीं और मैं भी। इन्होंने श्याम और भद्रको एक साथ अङ्कमें उठा लिया। मैं दाऊको हाथ पकड़कर ले आयी। सब गोमयमें लिप्त हो रहे थे।

आज मेरा हृदय आशङ्कासे अधिक धड़कने लगा है। मुझे वह दूसरा दिन स्मरण आ गया। मैं जीजीके पीछे इन सबको ढूंढ़ते गोष्ठ पहुँची। दाऊ, नीलमणि, भद्र ये तीन ही थे। तीनोंने तीन-तीन, चार-चार बछड़ोंकी पूंछ एक साथ दोनों हाथोंमें पकड़ रखी थी। बछड़े बैठे रहे होंगे और

इन्होंने जाकर उनकी पूँछे एक साथ पकड़ ली होंगी। वे हड़बड़ाकर खड़े हो गये होंगे। अब एक बछड़ा एक ओर, दूसरा दूसरी ओर और तीसरा तीसरी ओर भागना चाहता है। वे अपनी पूँछ छुड़ाना चाहते हैं और ये चञ्चल इधरसे उधर खिंच रहे हैं, किलकारी ले रहे हैं।

ऐसेमें किसी बछड़ेके खुर इनके पैरोंपर पड़ सकते हैं। ये गिर सकते हैं और···भगवान् नारायण कुशल करें! मेरे नीलमणिके किसलय कर इतने अरुण हो आये थे कि देखकर मैं अपने अश्रु नहीं रोक सकी। यह चपल अपने हाथोंसे अङ्कमें आनेपर मेरे अश्रु पोंछने लगा था। कोई गोपी, कोई सेविका उस दिन समीप नहीं थी, अन्यथा उसपर मुझे बहुत क्रोध आता।

आज मैं जीजीसे आगे झपटकर गोष्ठ-द्वारपर पहुँची और पहुँचते ही मैंने जीजीको संकेत किया ओष्ठपर अँगुली रखकर कि वे मौन रहें। मेरा कन्हाई दूध पी रहा था। दूध पी रहा है दाऊ, भद्र और मधुमङ्गल भी। चारों अकेली कामदाके एक-एक स्तन मुखमें लिये, सिर सटाये दूध पी रहे हैं। हम दोनोंको चुपचाप देखना है यहींसे। तनिक भी आहट हुई तो इनके दुग्धपानमें बाधा पड़ेगी।

कामदाका बछड़ा गौरव केवल एक मासका है। अतः अभी इसे गोप चरने नहीं ले जाते। वह क्या इधर-उधर फुदक रहा है। इन बालकों-में किसीको भी सूँघता है और कूदने लगता है। ये उसकी माँका मीठा दूध पी रहे हैं, इससे यह बहुत प्रसन्न प्रमुदित लगता है।

गोपियाँ, सेविकाएँ दूर शान्त खड़ी हैं, अच्छा है। नीलमणि दूध पी रहा है, कोई बाधा क्यों दे। काली तैलसिक्त घुंघराली अलकें पीठपर लहरा रही हैं। जीजीने इनमें मोतियोंकी लड़ीके साथ सदाकी भाँति एक मयूर पिच्छ लगा दिया है। मेरी ओर है इसका मुख। मैं भद्रके सिरसे सटा इसका मुख दाऊकी ओटसे भी देख सकती हूँ। भालपर कज़्जल बिन्दु, कमल लोचन अञ्जन रञ्जित अधमुँदे हो रहे हैं, कण्ठमें व्याघ्रनख, लाल-मणि है। कटिमें रत्नमेखला, करोंमें कङ्कण, पदोंमें नूपुर हैं ही। केवल मधुमङ्गलने श्वेत कछनी बाँधी है। शेष सब दिगम्बर हैं। सबके कर भूमिमें टिके हैं और गोबरमें सन गये हैं। कण्ठ ऊपर किये, मुख उठाये सब दूध पीनेमें लगे हैं।

मैं जीजीकी ओर केवल देख लेती हूँ। कामदाके स्तनोंसे दूध झर रहा है, इतना दूध झर रहा है कि ये उसे घुटक नहीं पाते हैं। दूध मुखपर कपोलोंपर, कन्धेपर वक्षपर गिर रहा है। दुग्ध भीगे इनके अङ्गोंकी यह छटा ! इनकी अलकों तकपर दूध गिरा है।

कामदा हुंकार कर रही है। बार-बार मुख झुकाती है, जीभ निकालती ; किंतु हटा लेती है । कितनी समझदार है जीजीकी यह कामदा। यह भी समझती है कि शिशुओंके सुकुमार अङ्ग स्पर्श करने योग्य इसकी रुक्ष जिह्वा नहीं है। अन्ततः यह भी तो माँ है। इसके भी तो हृदय है। इसका वात्सल्य ही झर रहा है स्तनोंसे उज्वल दूध बनकर। यह इन बालकोंको बार-बार सूँघती है और हुंकार करती है।

किसी सेविकाकी असावधानीसे उसकी चूड़ियाँ खनक गयीं। नील-मणिने गायका स्तन छोड़ दिया और मुख उठाकर देखने लगा है। यह सङ्कोचमें पड़ गया लगता है।

'मैं नहीं लेती तुझे गोदमें !' अब यह दौड़ आया है। दोनों हाथ उठाये जीजीके अङ्कमें आना चाहता है और हँसती ये कह रही हैं—'मैं तुझे नहीं लेती। मैं भद्रको लूँगी।'

'भद्र ! आ ! तू आ !' मेरे नीलमणिको किसी सखाके साथ स्पर्धा नहीं। भद्रको मैया लेना चाहती है तो उसीको ले ले। यह सखाको बुलाने लगा है।

'मैं लूँगी अपने लालको !' मैं अङ्कमें उठा लेती हूँ। अञ्चलसे मुख पोंछते कहती हूँ—'मेरे लालने अच्छा किया दूध पीकर। कामदा तो इसी-की है। यह प्रतिदिन कामदाका दूध पियेगा !'

श्यामका सङ्कोच मिट गया। यह मेरे कपोलपर अपने कर रखकर मेरे मुखकी ओर देखता कितने स्नेहसे कहता है—'माँ !'

× × ×

बस एक बात बहुत बचानी चाहिये—सबको ही बचानी चाहिये कि यह मेघश्याम रूठे नहीं। यह रूठता है तो हृदय फटने लगता है। भूमिमें लोट-पोट होने लगेगा, मैं भी गोदमें लेना चाहूँ तो खीझेगा, अधिक रोयेगा। मुझे, व्रजेश्वरीको, रोहिणी जीजीको—जो उठाने जाय उसीको

नन्हे करोंसे मारेगा, नासिका-मुख नोचने लगेगा, बार-बार भूमिमें उतरनेको मचलेगा। कमलदल लोचन रोते-रोते लाल कर लेगा, अञ्जन कपोलोंपर फैल जायगा। हिचकियाँ लेकर रोयेगा। तब इसे चुप कराना सरल नहीं रह जाता।

सभीके प्राण व्याकुल हो उठते हैं। व्रजेश्वर, गोप भी आ जाते हैं आँगनमें। यह रोये तो किसीको दूसरा कार्य सूझ ही कैसे सकता है। अत्यन्त सुन्दर खिलौने, सुस्वादु मिठाइयाँ—किंतु कुछ समीप लाओ तो उठाकर फेंक देगा दूर! उस समय केवल व्रजेश्वरी जीजी ही इसे स्पर्श करनेका साहस कर सकती हैं।

यह रोने लगे तो सब इसके सखा रोने लगते हैं। सब न रोने लगें तो इसे चुप करा लेना सरल है। चाहे जितना रूठा हो, किसी सखाका कर रोतेमें भी हटा नहीं पाता। दाऊ अपने अनुजके अश्रु अपने छोटे-से करसे पोंछने आ जाय तो यह तत्काल चुप हो जाता है। कहीं भद्र या तोक समीप आ जायँ तो उनके मुखको उदास देखते ही हँसने लगेगा। कठिनाई यही है कि इसे रोता देखकर सब रोने लगते हैं।

बालक खेलमें लगते हैं तो सब भूल जाते हैं। अँधेरा बढ़ने लगा आज और इन सबोंका खेल भला कहीं स्वतः समाप्त होने वाला था। मैं बुला-बुलाकर थक गयी। रोहिणी जीजीकी भी नहीं सुनी सबने तो व्रजेश्वरी गयीं और श्यामको किसी प्रकार अङ्कमें उठा लायीं। अब यह रूठ गया है। यह खेलना चाहता था अभी और मैयाने सखाओंको उनके घर भेज दिया! अब यह मचल गया, भूमिपर लेटने लगा है।

'लाल! तू यह क्या करता है?' व्रजेश्वरीने अङ्कमें उठाया—'सब हँसते हैं, सब कहते हैं कि कनूँ रोता है! यह इतना बड़ा—इतना सुन्दर शशि भी कहता है कि यह रोता है। यह चन्द्र-तेरी बहूका भाई है न! तू इसके सामने रोयेगा तो यह हँसी उड़ायेगा।'

हाथ-पैर चलाते, रोते, अङ्कसे उतरनेको मचलते नीलमणिकी हिचकियाँ कुछ कम हो गयीं। यह चन्द्रको देखने लगा है। नेत्र-मुख अरुण हो गये हैं, कपोलोंपर अञ्जन मिली अश्रुकी बड़ी बूँदें झलमला रही हैं। पलकें भीगी हैं। जीजीने अञ्चलसे इसके चन्द्रमुखको धीरेसे पोंछा।

एकटक देखता रहा चन्द्रको। शशि इसे बहुत सुन्दर लगा होगा। सहसा दोनों हाथ उठाकर बोला—'मैया ! मैं इसे खाऊँगा ! तू दे इसे—मुझे भूख लगी है।'

इसे लगता होगा कि चन्द्र भी माखनका गोला है। सुना है किसी मुनिसे कि यह क्षीरसागरके मथनेसे निकला है। मेरा लाल ठीक तो कहता है कि यह माखन है।

'मैं तुझे माखन देती हूँ—खूब मीठा माखन !' जीजी डर रही हैं, डर मुझे भी लगता है कि यह फिर रोने न लगे।

'मैं इसे खाऊँगा।' यह बहुत हठी है। एक हठ पकड़ ले तो सहज भुलावेमें नहीं आता।

'छिः ! इसे कहीं खाया जाता है ?' जीजीने मुख बनाया—'यह तो तेरी बहूका भाई है, तेरे सखाओं-जैसा।'

'मैं इससे खेलूँगा !' श्यामने सखाओं-जैसा समझ लिया है। तब इतने सुन्दर, इतने चमकते सखाके साथ खेलेगा। अपने दोनों हाथ उठाकर अँगुलियाँ हिलाकर बुला रहा है—'आ ! आ जा !'

'तू बुला ! पकड़ इसे ! मेरे बुलानेसे नहीं आता !' जब कोई मयूर या बिल्ली बुलानेसे नहीं आती तो कन्हाई हममें-से ही किसीको उसे पकड़नेको कहता है। यह चन्द्र भी इसके बुलानेसे तो आता नहीं है।

'यह नहीं आयेगा।' जीजीने कहा—'इसे दूरसे ही देखते हैं।'

'आयेगा क्यों नहीं ? तू बुला ! पकड़ दे तू !' यह तो फिर मचलेगा, रोयेगा, यह जो चाहे, उसे होना चाहिये। 'नहीं होगा' यह सुनना ही इसे सहन नहीं है। 'तू दौड़—पकड़ ला इसे।'

गोपियां हँसती हैं ; किंतु मेरा हृदय धड़कने लगा है। यह फिर रोने लगेगा। लेकिन जीजीको समयपर युक्तियाँ सूझ जाती हैं। अन्ततः ये व्रजेश्वरी हैं। हँस पड़ी हैं—'अच्छा, मैं इसे बुला देती हूँ ; किंतु इसे तङ्ग मत करना। तुम यहाँ तनिक बैठो तो सही !'

यह प्रसन्न होकर बैठ गया है। चन्द्रसे खेलेगा। अभी चन्द्रकी ही ओर देख रहा है। जीजीने एक थालीमें पानी भरा, ऊपर उठाया—'आ ! शशि, इसमें आ जा ! मोहन खेलेगा तुझसे !'

थाली नीचे धर दी है—'इसमें आ गया चन्द्र ! अब तू इसे ले ले !'

कन्हाई सटकर थालीसे बैठ गया है दोनों पैर फैलाकर। दोनों कर भूमिमें टेके झुककर देख रहा है। बहुत प्रसन्न है—'चन्द्र थालीमें आ तो गया !—प्रसन्न होकर ताली बजाता है, सिर हिलाता है। अब एक साथ दोनों हाथ थालीमें डाल दिये हैं—पकड़ेगा चन्द्रको।

हाथ चलाता है और देखता है—देखता है और हाथ चलाता है। यह थालीमें नाचता तो है ; किंतु श्यामके नन्हें करोंमें नहीं आता। इतने वेगसे नाचता है कि पकड़नेमें नहीं आ रहा। अब हाथ निकालकर जीजीको बुलाने लगा है—'तू इसे पकड़ ! यह नाचता है।'

हँसा नहीं जा सकता। हँसनेपर यह फिर रोने लगेगा। जल वेगसे हिलता है तो यह पात्रके बाहर झाँकता है। फिर जलमें देखता है ; किंतु अब समझ गया कि स्वयं नहीं पकड़ सकेगा।

जीजी समीप जाकर झुककर देखती हैं और कन्हाईको गोदमें उठाकर पुचकारती हैं—'लाल ! देख न, यह चन्द्र तेरे भयसे काँपता है। रो रहा है। तू इस बिचारेको जाने दे !'

'रो रहा है ?' यह गम्भीर हो गया है। जलकी ओर झुककर देखता है। चन्द्र काँप तो रहा है, रोता भी होगा। क्या पता यह इतना सारा पानी इसीका आँसू हो !—यह हाथ हिलाने लगा है—'रो मत ! जा ! जा !'

'देख ! चन्द्र चला गया। कितना प्रसन्न है !' जीजी ऊपर दिखलाती हैं—'यह तुझे अब आशीर्वाद देता है।

चन्द्र रोये या हँसे—मेरा लाल आज बहुत रोया है। अब यह थक गया है। इसे दूध पीकर सो जाना चाहिये।

× × ×

कन्हाईको खिला देना भी कम कठिन नहीं है। व्रजेश्वरी जीजी ही इसे थोड़ा खिला पाती हैं और वह भी तब जब दाऊ, भद्र, तोक, विशाल—सब साथ बैठे हों।

'यह मेरा ग्रास है, यह तेरे बाबाका है, यह बड़ी माँका है और यह तेरी यह माँ बैठी है, इसका है!' यह किसी प्रकार मुखमें ग्रास लेकर इधर-उधर नाचने-घूमने लगता है। पात्र लेकर इसके पास जाना पड़ता है। एक नन्हा-सा ग्रास ले ले तो बड़ी बात—इसे तो इधर-उधर फुदकनेकी पड़ी होती है।

दही-भातसे सने लाल-लाल ओष्ठ, चिबुक और वक्षपर, पेटपर भी गिरा लिया है इसने। व्रजराज भोजन ही तब प्रारम्भ करते हैं जब सब बालक आ जायँ। नीलमणि और भद्रको अङ्कमें लेकर बैठेंगे। दाऊ, अर्जुन-विशाल—सब थालसे सटकर बैठेंगे। सबके मुखमें अपने हाथसे ग्रास देकर तब भोजन प्रारम्भ करेंगे; किंतु इन सबोंने एक ग्रास लिया और किलकारी लेते भागे। इन सभीको कूदते, नाचते भोजन करना रुचता है। दो-चार ग्रास ही तो इन्हें लेना रहता है।

'ठहर तो सही! तेरा मुख तो धो दूँ! जूठे मुख खेलने नहीं जाते!' अब जल लेकर दौड़ूँ, एक-एकको पकड़ूँ तो खड़े-खड़े किसी प्रकार मुख, चिवुक, वक्ष पोंछ पाती हूँ। मुझे, व्रजेश्वरीको, रोहिणी जीजीको—सबको एक साथ लगना पड़ता है तब कहीं इनके मुख धुलते हैं।

'माँ! मुझे छोटी-सी रोटी बना दे!' कन्हाई इधर रसोई-घरमें आकर सबेरे खड़ा होने लगा है। अपनी हथेली दिखाता है—'इतनी छोटी-मोटी रोटी दे! खूब सारा माखन लगा दे!'

'लाल! तू है, दाऊ है, भद्र है, बहुत-से तो सखा हैं। तू बड़ी रोटी ले ले!' रोहिणी जीजी हँसती हैं।

'ना! छोटी दे। मैं किसीको नहीं दूँगा।' यह मटकता है—'सबकी सब अकेले खाऊँगा।'

यह अकेले खायगा? अकेले तो यह केवल तब दूध पी लेता था माँका, जब शिशु था। हम सबको पता है कि इसे छोटी रोटी क्यों चाहिये। पता नहीं कहाँसे एक ढीठ काक आ गया है—कहीं बाहरसे ही आया होगा। गोकुलका तो कोई पशु-पक्षी ऐसा है नहीं जो श्यामके हाथसे रोटी छीन ले।

यह नीलमणि नवनीत रोटी, मोदक कुछ लेकर निकले तो बिल्लियाँ, श्वान, कौवे, मयूर, कपि तक सब इसे घेरे रहेंगे; किंतु इसके हाथसे कोई छीनता नहीं। यह हाथ बढ़ा दे तो भी लेता नहीं। यह अपनी दो अँगुलियों-

से तोड़कर तनिक-सा टुकड़ा जिसे दे देगा, वही झपटकर उठा लेगा। यही दे तनिक-तनिक तो वे लेंगे। कोई इसके हाथसे क्यों छीने ? कोई कङ्गाल-का घर है कि पशु-पक्षी मरभुक्खे रहेंगे। व्रजेश्वरी जीजी दाने, रोटियाँ, तृण तो इन पशु-पक्षियोंको देती ही रहती हैं। इतना देती हैं कि मैं और दूसरी भी तरस जाती हैं कि हमारे आँगनमें भी तो कोई पक्षी—कोई काक आवे और पञ्चग्रासका प्रसाद पा लिया करे।

कन्हाई अभी रोटी लेकर चला है। बायें हाथपर माखन चुपड़ी छोटी-सी रोटी। दाहिने हाथसे तनिक-तनिक तोड़कर मुखमें डालता है। यह दिगम्बर, नवघन सुन्दर नाच रहा है घूम-घूमकर। किङ्किणी, नूपुर, कङ्कणकी रुनझुन करता नाच रहा है। बिल्लियाँ हैं कि अब इन्हें दूध नहीं पीना, मयूरोंको, कपोतोंको दाना नहीं चुगना। कपियोंको, कौओंको न रोटी चाहिये, न मोदक, सब-सब छोड़कर श्यामके समीप घिर आये हैं। यह तनिक-सा टुकड़ा तोड़कर दे, इसलिए मुख उठाये साथ लगे रहेंगे। इसके एक तोड़कर फेंके कणपर सब झपटते हैं तो यह किलकारी लेता है।

'कनूँ ! मेरी रोटी देख !' अब सब रोटी ले आये हैं। सबको छोटी रोटियाँ चाहिये। अब ये सब तनिक-सा टुकड़ा तोड़ेंगे और समीपके सखाके मुखमें डालेंगे। कन्हाई दाऊको, भद्रको, तोकको बार-बार खिला रहा है ; किंतु कोई इसकी रोटी मत छुओ। कोई तोड़ने हाथ बढ़ाता है तो यह हाथ हटाकर घूम जाता है, हट जाता है। स्वयं तोड़कर खिलावेगा।

यह आया वह ढीठ काक। इससे बड़ी रोटी नहीं उठेगी, इसीलिए तो श्याम छोटी रोटी लेनेकी हठ करता है। यह चुपचाप दूर बैठा देखता है। नन्हें टुकड़ेकी लूटमें नहीं झपटता। इसकी ओर कनूँने रोटीका हाथ बढ़ाया और यह झपट्टा मारकर ले उड़ा। यह पूरी रोटी ले जाता है और नीलमणि मुग्ध देखता रहता है इसे।

× × ×

'कनूँ ला मुझे दे तो सही !' गोपियाँ माँगती हैं नीलमणिसे, जब इसके हाथमें नवनीत, मोदक या रोटी होती है।

जिसपर बहुत सदय होगा, उसके भी हाथपर तो कुछ देनेसे रहा। तनिक-सा टुकड़ा तोड़ेगा दो अँगुलियोंसे और समीप आकर मुखमें डाल देगा। फिर पूछेगा—'और ?'

बहुत कमको इसकी यह कृपा मिलती है। लगता है कि मधुमङ्गलने इसे अब अँगूठा दिखाना सिखला दिया है। पूरी रोटी या मोदक बढ़ा देगा माँगनेपर और लेनेको हाथ बढ़ाओ तो अपना हाथ खींचकर दाहिनी मुट्ठी बाँधकर अँगूठा हिलाने लगेगा। अँगूठा हिलावेगा और हँसता-हँसता मटकेगा।

रोहिणी जीजीके समान ही मैंने भी एक दिन भूलकी इससे माँगने- की। मेरा लाल दौड़ आया समीप और पूरा मोदक इसने मेरे हाथपर धर दिया। मुझे इसे गोदमें लेकर फिर मोदक देनेमें बहुत मनाना पड़ा। यह तो मेरे ही मुखमें मोदक देनेकी हठ पकड़ गया।

× × ×

बहुत कठिन होता है इसे तब बुलाना जब यह खेलमें लगा हो। भूखा रहेगा और पुकार थको, सुनेगा नहीं। पास जाओ तो भागेगा। बल- पूर्वक उठाओ तो मचलकर रोने लगेगा। धूलिमें लोट-पोट होगा।

'तू भूखा है, देर हो गयी ! तेरे बाबा भोजनको बुला रहे हैं !' सब व्यर्थ है। सब अनसुनी कर देगा।

'तेरे सखा स्नान किये हैं। आभूषित हैं। तू धूलि-धूसर अच्छा लगता है ?' यह सब नहीं सुनेगा। सखा अच्छे रहें, यह इसे प्रिय है।

'महर्षि आ गये हैं ! तुझे बुला रहे हैं। गोदान करेगा तू ?' यह बात इसे गम्भीर लगती है। इसपर खड़ा हो जायगा। इसपर लौट आवे तो आ जाय।

ऐसे ही रूठ जाय तो इसे एक ही बात मना सकती है—'लाल ! तोक रो रहा है। तू उसे मनावेगा नहीं ?' झट आँसू पोंछ लेगा हाथसे और छोटे भाई तोकके समीप जायगा उसे मनाने। तोक रोता है, यह इसे सहन नहीं।

यह मेरा नीलमणि—मुझसे अपने गृहमें बैठा ही नहीं जाता। मन- प्राण इसीमें लगे रहते हैं। मैं कैसे स्वामीको भोजन करा आती हूँ, यह भी मुझे स्मरण नहीं आता।



मृद् भक्षण

मैं अपने पाँच भाइयोंकी छोटी बहिन हूँ। दो बहिनोंमें भी छोटी—अतः सबका नन्दिनी जीजीसे भी अधिक प्यार पाया है मैंने। मेरी पाँचों भावजें तो चाहती हैं कि मैं गोकुल ही रहूँ और वे मुझे पूजाकी देवी बनाये रखें। कहीं गोप-कन्या भी बैठी-बैठी सबकी सेवा लिया करती है। लेकिन जबसे व्रजराज भैयाके यहाँ यह कन्हाई आया है, मुझसे ही गोकुल छोड़ा नहीं जाता। स्वामी भी तो कहते हैं—'तुम यहाँ हो तो तुम्हारे बहाने मुझे भी दूसरे-चौथे श्यामको देख लेनेका अवसर मिल जाता है।'

मैंने स्वामीसे कह दिया है—'हम कोई नगर-गाँवमें रहनेवाले हैं। अपनी गायें ले आओ और यहीं अपना एक गोष्ठ बना लो।'

यशोदा भाभी तो देवता हैं—इतनी भोली कि पूछो मत। कहने लगीं—'सुनन्दा ! तेरे भैयाका भी गोष्ठ भी तो तेरा ही है। तू अलग ही गोष्ठ बनाना चाहती है तो इसी गोष्ठको अपना बना ले।'

ऐसे कहीं स्वामीका ससुरालमें रहना उचित है। लड़की तो लेनेके लिए ही उत्पन्न होती है। मुझे भैयासे जीवन भर ही लेते रहना है। वैसे ही इतनी गायें दे दी हैं पहिलेसे कि स्वामी किसी प्रकार भी सम्हाल नहीं पाते और जबसे भाभीकी गोद भरी—मेरे नेग तो निकलते ही रहते हैं। पाँचों भाइयोंके घर-आँगन कुमारोंकी क्रीड़ासे मनोहर हो गये हैं और मुझे तो रानी भाभी रोहिणीजीके दाऊके भी नेग मिलते हैं। मेरे ये द्वादश आदित्यों जैसे द्वादश भ्रातृ-पुत्र—इनको नारायण युग-युगका जीवन दें। इनके नेगोंने इस सुनन्दाको महारानियोंसे भी अधिक सम्पन्न बना दिया है।

इनमें-से किसी-न-किसीका कोई उत्सव, संस्कार आता ही रहता है। सुनन्दाको सबमें रहना चाहिए और भाभियाँ पता नहीं कहाँके नये-नये नेग निकालती है। मेरे सब भाई भोले हैं और मझले ये व्रजेश्वर नन्द भैया तो साक्षात् शिवशङ्कर हैं। इन्हें किसीको भी देते सन्तोष नहीं होता। फिर मैं तो इनकी बहुत लाडली छोटी बहिन हूँ।

यह नन्हा नीलमणि जबसे आया, मुझसे एक पलको छोड़ा नहीं जाता। यह अब मुझे 'भुआ' कहता है—कहता है और हँसता है, ताली बजाता है, किलकता है। इधर-उधर फुदकता है और आकर गोदमें बैठकर अपने नन्हें लाल-लाल करसे मेरी ठुड्ढी पकड़कर, मेरे मुखकी ओर मुख करके कहता है—'भुआ!'

कोई इसे खिझावे, चिढ़ावे या रुलावे—मुझे अत्यन्त असह्य है। यह तो केवल स्नेह करनेके लिए है; किंतु क्या करूँ—सब तो मेरी नहीं सुनते। ये बालक तो सुनते ही नहीं हैं। अभी उस दिन कन्हाई दौड़ा-दौड़ा आया। तमक आया था इसका सुन्दर मुख और कमल-लोचन भरे-भरे थे। आकर भाभीसे बोला—'मैया! मुझे दाऊ दादा चिढ़ाता है।'

बड़े भाईसे सामने झगड़ना जानता नहीं, कुछ हुआ होगा, अतः उलाहना देने आया है। दाऊ इसे चिढ़ावेगा? वह तो सदा इसीका पक्ष लेता है।

'दादाने भद्रको पुकारकर क्यों बुलाया?' अब यह अपनी बात स्वयं कहने लगा। इसका दादा इसे छोड़कर दूसरेको बुलावे तो इसे क्रोध आना ही चाहिये। इसने भद्रके घरौंदे मिटा दिये अपने चपल चरणोंसे इसमें हो क्या गया। लेकिन दाऊको सब भाई, सब सखा प्रिय हैं। भद्र इससे झगड़े, यह दाऊको स्वीकार नहीं। भद्रको सन्तुष्ट करना था उसे।

'दादा कहता है—कनूँ काला है। काला भी कहीं अच्छा होता है।' अब यह मुझसे पूछता है—'काला तो तोक भी है, क्या वह अच्छा नहीं है? वह तो बहुत अच्छा है।'

'दाऊ कहता है कि मैया गोरी है और बाबा भी गोरे हैं। यह काला कनूँ कहाँसे आ गया? यह मैयाका पुत्र होता तो गोरा होता। मैया-ने तो इसे हँड़िया-भर दही देकर किसी काले-काले पुलिन्दसे लिया है।' इसका मुख लाल-लाल हो गया। नेत्रोंसे बिन्दु टपकने लगे।

मुझे हँसी आ गयी; किंतु यह भुवन-सुन्दर रोने लगा। इस समय परिहास नहीं किया जा सकता। मैंने कह दिया—'तू अपनी बड़ी माँसे कह दे!'

दोनों हाथ और सिर हिलाकर मना करता है। इस समय भी यह नहीं चाहता कि बड़ी माँ दाऊको मारे या डाँटे। अपनी मैयासे कहने आया है—जानता है कि यह दाऊको कुछ नहीं कहेगी।

'दाऊ चिढ़ाता है तुझे ?' धूलि सनी अलकें, कपोल यह मैयाके करोंको हिला रहा है कि यह चलकर दाऊको धमका दे और भाभी अपने लालका अरुणाभ मुख देखकर तनिक मुस्करा उठती हैं।

'उसने सबको सिखा दिया है। सब ताली बजा-बजाकर कूदते हैं, हँसते हैं और मुझे चिढ़ाते हैं।' अब यह सचमुच रुष्ट हो गया—'तू भी हँसती है ? तू मुझे ही डाँटती है, मुझे ही मारना आता है तुझे। दाऊको तो कभी खीझती नहीं। मैं तेरा पुत्र होता तो तू मुझे क्यों डाँटती…?'

ओह ! भाभी इसकी भी यह बात कैसे सह सकती हैं। अङ्कमें ले लिया है इन्होंने अपने लालको। अञ्चलसे मुख पोंछते इनके नेत्र भी भर आये हैं—'बेटा ! मेरे लाल ! मुझे गौओंकी शपथ ! तू मेरा पुत्र है और मैं तेरी मैया हूँ। दाऊको तो बचपनसे बातें बनाना आता है। तू उसके साथ मत खेलाकर ! यहीं खेल तू। मैं दाऊको और सबको देखती हूँ—सब मेरे लालको चिढ़ाते हैं ?'

भाभीने मोटा-सा लकुट उठाया तो मुझे हँसी आ गयी। नीलमणिका मुख देखने ही योग्य है। यह कण्ठमें लिपट गया है उनके। कानमें कुछ कहने लगा है और हँसकर भाभी लकुट फेंक देती हैं। यह तो उनके अङ्कसे उतरकर फिर भाग गया उन्हीं सखाओंके साथ खेलने।

भाभी अपने भागते जाते लालको देख-देखकर हँस रही हैं—'कहता है—वहाँ बाहर जायगी तो बाबा, दोनों ताऊ, चाचा सब तुझे मारेंगे। अभी नहीं जा। सबको मैं ले आऊँगा तब यहीं उन्हें डाँटना।'

मैयाको भी धमकाना सीख गया यह। मैया इतने मोटे लकुटसे दाऊको, भद्रको या किसी भी सखाको मारे, यह मेरा यह सुघर श्याम सहन नहीं कर सकता। अब भाभी पुकारती हैं तो पुकारें, यह तो खेलने चला गया।

× × ×

बालक एक साथ खेलेंगे और परस्पर झगड़ेंगे भी। ये न झगड़े बिना रह सकते, न फिर मिलकर खेले बिना रहेंगे। इनके विवादमें बड़ोंका पड़ना ही मूर्खता है ; किंतु अनेक बार हस्तक्षेप करना अनिवार्य हो जाता है।

अब उस दिन दाऊ, भद्र, विशाल कई बालक भागते एक साथ आ गये आँगनमें। दूरसे ही पुकारने लगे—'मैया ! कनूँ मिट्टी खाता है।'

'वह धूलिका ढेर करके उसपर बैठ गया है। इतनी सारी धूलि !' भद्र दोनों हाथ फैलाकर बतलाता है—'मैंने मना किया था। कहा था कि मैया कहती है कि मिट्टी खानेसे पेटमें कीड़े पड़ते हैं—लेकिन वह मानता नहीं है।'

भद्रने अवश्य मना किया होगा। सब श्यामसे स्नेह करते हैं। लेकिन वह हठी तो है ही। पता नहीं मिट्टी खानेकी क्यों सूझी उसे। बुरी बात है। भद्र कहता है—'मेरे मना करनेपर कहता है—मैं खाता हूँ तो तेरा क्या बिगड़ता है। मैं खाऊँगा—मैं तो यह सारी मिट्टी खाऊँगा !'

एक चिटकी मिट्टी उसे मुखमें डालते भद्रने देखी है। अपनी हठमें और खा सकता। उसे तुरन्त रोका जाना चाहिये ; किंतु भाभीने तो छड़ी उठा ली है। श्यामसुन्दर छड़ीसे मारने तो क्या धमकाने योग्य भी नहीं है। मैं छड़ी छीन लेना चाहती थी।

'नहीं सुनन्दा !' भाभीने जीवनमें पहिली बार मुझे कड़ी दृष्टिसे देखा—'तू यहीं रह देखती नहीं कि इसका अभ्यास बिगड़ रहा है। कुछ कठोर होकर डाँटे बिना यह नहीं मानेगा।'

मैं वहीं आँगनमें कैसे रह जाती ? आज भाभी मुझे उस छड़ीसे पीट लेती तो भी मैं रुक नहीं सकती थी। मैं उनके पीछे ही चली-तनिक इतनी दूर कि मुझे देखकर डाँटने न लगें।

नीलमणि सचमुच धूलिकी छोट-सी ढेरीपर बैठा था। सर्वाङ्गधूलि-धूसर था। वह सशङ्क द्वारकी ओर ही देख रहा था। उसे आशा रही होगी कि सखा केवल धमकाते हैं, मैयासे नहीं कहेंगे ; किंतु सखाओंके आगे छड़ी लेकर आती अपनी मैया दीखी उसे तो धूलिपरसे उतरकर खड़ा हो गया। कन्हाईका सभीत मुख, सिकुड़ी, डरी, भङ्गी—मेरा तो हृदया कुचल उठा। भाभीका भय न होता तो मैं दौड़कर उसे अङ्कमें उठाकर पुचकारती।

भाभी इतनी कठोर भी हो सकती है, आज ही जाना मैंने। जैसे देखा ही नहीं कि सुकुमार नीलमणि कितना डरा खड़ा है। जाकर अपने

बायें हाथसे उसके दोनों कर पकड़ लिये और डाँटकर बोलीं—'क्यों रे ! तूने मिट्टी खायी है ?'

'मैंने नहीं खाई मैया !' श्याम रोते-रोते बोला। इसके दृगोंसे बिन्दु टपकने लगे।

तेरे ये सब सखा कहते हैं !' भाभीका स्वर वैसा ही कठोर बना है। ये कन्हाईके अश्रु भी नहीं देखतीं ?

'मैया ! सब मुझसे झगड़ते हैं ! सब झूठ बोलते हैं !' नीलमणि हिचकियाँ लेने लगा है।

'दाऊ भी तो कहता है !' यशोदा भाभीको आज हो क्या गया है ? इतने सुकुमारपर इतना रोष !

'तू मेरी बात सच नहीं मानती तो मेरा मुख तो तेरे सामने ही है, देख ले !' अब इससे अधिक यह नन्हा क्या कहे ! इतना शील इसमें है कि अपने अग्रजको झूठा नहीं कहेगा। यह शील ही सन्तुष्ट हो जानेको पर्याप्त होना चाहिये।

'अच्छा मुख खोल !' हे भगवान ! सचमुच क्या भाभी आज इसे पीटनेपर ही उद्यत हैं ? इसने एक चिटकी धूलि खाई है तो मुखमें तो कुछ कहीं लगी ही होगी। मेरा हृदय धक्-धक् करने लगा। मैं आज झगड़ूँगी। मेरे सामने इस सुकुमारपर हाथ नहीं उठाने दूँगी । पैर पकड़ूँगी भाभीके।

ऐं ! यह क्या हो रहा है ? भाभीके नेत्र ऐसे फटे-फटे क्यों हैं ? ये इतनी चकित-भीत क्यों दीख रही हैं ? कन्हाई तो अपना नन्हा-सा मुख खोले खड़ा है। अब भी भयभीत है। आँसू ढुलका रहा है। हिचकियाँ लेना मात्र बन्द हुआ है इसका ; किंतु भाभीको क्या हो गया ? यह क्यों काँप रही हैं ? इनका शरीर तो स्वेदसे भीगता जा रहा है। ये हाथसे छड़ी तो छोड़ ही चुकी थी, इस नन्हेको हाथ क्यों जोड़ रही हैं।

हँस गया कन्हाई ! यह हँसता है तो चन्द्रिका छिटक जाती है। मैया ही हाथ जोड़ेगी तो हँसेगा नहीं ? अब भाभीके हाथ पकड़कर मचलने लगा है—'दूध ! मुझे दूध पिला। मुझे भूख लगी है।'

इतनी देरसे खेल रहा था, भूख तो लगी ही होगी। भाभी इसे अङ्कमें लेकर उठीं तो मेरे जीमें जी आया। इन्होंने इसे कुछ कहा नहीं।

अपने आप ही यह छड़ी देखकर इतना डर गया था कि इसे कुछ भी कहना बहुत क्रूरता होती।

× × ×

'भाभी ! तुम कनूँका खुला मुख देखकर इतना डर क्यों गयी थीं ?' मैंने पीछे पूछा।

'सुनन्दा ! तुम सुनकर हँसोगी।' भाभीने कहा—'मुझे कोई रोग हो गया है। जब मैं इसका खुला मुख देखती हूँ, मुझे अद्भुत स्वप्न दीखने लगता है। यह जब शिशु था तब इसके जम्हाई लेनेपर भी ऐसा ही हुआ था। आज भी वैसा ही कुछ हुआ। अब मैंने अपने कान पकड़े, इसके खुले मुखमें नहीं झाँकूँगी।'

भाभीने बतलाया श्यामके छोटे-से, उज्ज्वल नन्हीं दन्तावलियोंसे सलोने लाल मुखमें सारी सृष्टि देखी इन्होंने। जीव, काल, प्रारब्ध और उसके सञ्चालक, कारणतत्त्व, प्रकृति, महत्, अहङ्कार, मन, इन्द्रियाँ, त्रिगुण—पता नहीं इनके नाम कैसे भाभीको स्मरण रहे। सुना तो मैंने मुनियोंसे यह था कि ये सब आकारहीन हैं। भाभी कहती हैं कि इनको भी इनके नाम कोई बतला रहा था। इनके देवता ही दीखे इन्हें।

वायु, अग्नि, आकाश, वरुण, इन्द्रादि देवता, सूर्य-चन्द्र, तारक-मण्डल ; पता नहीं क्या-क्या कहती हैं ये। महासागर, महाद्वीप, पर्वत, कानन, नदियाँ और नगर दीखे। पृथ्वीमें मथुरा-मण्डल, कालिन्दी और उसके तटपर यह गोकुल भी दीखा।

गोकुल दीखा तो इसमें गोप, गोपियाँ, गायें, गोष्ठ दीखने ही थे और ये सब दीखे तो व्रजराज भैया भी दीखे। भाभीने अपने आपको भी देखा। स्वप्नमें तो मैं भी अपने आपको देखती हूँ, कई बार यह अपना नीलमणि भी मुझे दीखता है स्वप्नमें ; किंतु भाभी तो जागते-जागते स्वप्न देखने लगी थी।

भाभी कहती हैं कि वे जाग रही थीं और जागते हुए कन्हाईके मुखमें यह सब देख रही थीं। भला यह सम्भव कैसे है ? नन्हें-से श्यामका नन्हा-सा तो मुख है। उसमें इतना झमेला कोई कैसे देख लेगा।

मैंने भगवती पूर्णमासीसे पूछा था। वे तनिक हँसकर कहने लगीं—'जो सर्वात्मा, सर्वस्वरूप है, उसमें सब कुछ दीख सकता है।'

ऐसी बातें ये साधु-सन्त करते हैं, जो मेरी समझमें तो आती नहीं हैं। भगवती स्वयं साक्षात् योगमाया हैं। वे कहती हैं—'योगमायाकी महिमा अपार है। वे सब कुछ कर सकती हैं।'

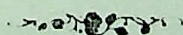
यह बात ठीक है। भगवती जगदम्बा सब कर सकती हैं। मैंने मनौती मानी है पूरे कार्तिक सूर्योदयसे पूर्व कालिन्दी-स्नान करके पूजन करूँगी देवी कात्यायनीका। जगदम्बा मेरी व्रजेश्वरी भाभीको स्वस्थ कर दें। इस प्रकार जागते-जागते स्वप्न देखना कोई बड़ा रोग ही होगा।

मेरे इस नन्हें कन्हाईमें भला क्या चमत्कार होगा। भगवती पूर्ण-मासी पता नहीं क्या-क्या कह रही थीं; किंतु ऐसे तो महर्षि शाण्डिल्य भी कभी-कभी कहने लगते हैं। ऋषि-मुनियोंकी बात हमारे गोप ही नहीं समझते तो मैं क्या समझूँगी। मेरे स्वामी कहते थे—'इन महर्षियोंको सब कहीं परमात्मा ही दीखते हैं। ये तो पशुओं, पेड़ोंकी भी स्तुति करने लगते हैं।'

एक बात पक्की है—कन्हाईके मुखमें उसकी छोटी-सी कोमल जिह्वा है, उज्ज्वल दन्तावली है और कुछ नहीं है—कुछ अटपट नहीं। मैंने आज ही अङ्कमें बैठाकर कहा—'लाला ! नेक मुख तो खोलियो !'

उसने अपना नन्हा मुख खोल दिया। मैंने भली प्रकार देखा है। वह मुझसे पूछता था—'भुआ ! क्या है इसमें ?'

मैं क्या कहती ? मैंने कह दिया—'तेरे दाँत गिनती हूँ।' फिर तो मेरा मुख खुलवाकर वह अपनी पतली तर्जनीसे छू-छूकर मेरे दाँत गिनता रहा ; किंतु अभी इसे गिनना भी तो नहीं आता। 'एक, दो-एक, दो' करता रहा था।



फल-विक्रयिणी

मैं वृद्धा हो गयी। क्या करूँ, पेटकी भट्टीको ईंधन तो देना ही पड़ता है। मैं एकाकिन हूँ, कोई नहीं मेरे जो मुझे दो रोटी दे दिया करता। इस पुलिन्द पल्लीमें सभीको तो श्रम करके किसी प्रकार अपना पेट भरना पड़ता है। हम पुलिन्दोंके पाँच वर्षके बालक भी फल, औषधियाँ एकत्र करने लगते हैं। सब काम करें तब सबका पेट भरे। मेरे शरीरमें शक्ति नहीं रही वृक्षोंपर चढ़ने अथवा अधिक खोदकर कन्द निकालने की। किसी प्रकार कुछ फल, औषधियाँ एकत्र कर पाती हूँ—एकत्र करनी पड़ती हैं। न करूँ तो खाऊँ क्या ? उनको बेचकर ही तो पेट भरना है।

मथुरामें महाराज उग्रसेन थे तो कोई कठिनाई नहीं थीं। बहुत भले थे। वहाँके यादव नागरिक। मेरे फल-औषधियाँ वे ले लेते थे और उदारता पूर्वक मूल्य देते थे। उनके कुलमें पता नहीं कंस कैसे उत्पन्न हो गया। उसने तो इधर-उधरसे सारे संसारके राक्षस मथुरामें इकट्ठे कर लिये हैं। अब मैं मथुरा जाकर क्या करूँ—कंसके ये राक्षस नगरपाल मुट्ठी भर-भर कर मेरे फल खा लेते हैं, हँसते हैं। मुझ दरिद्रा वृद्धापर दया आना तो दूर, मुझे तङ्ग करके, लूटकर उन्हें आनन्द आता है। मथुरा जाकर क्या भूखों मरना है मुझे।

मैंने जीवनमें कभी कच्चे, कड़वे-कसैले-खट्टे फल नहीं बेचे। मधुर, सुस्वादु फलोंको देखते ही पहिचानना तो मैंने अपनी पुलिन्द पल्लीके बालकोंको, बहुओंको सिखाया है। ग्राहकको मधुर कहकर खट्टा फल तो मुझसे कभी दिया नहीं जाता।

नागरिक क्या जानें वन्य फलोंका स्वाद। आम्र, फणसादि उपवनों-के फल ही तो नगरोंमें मिलते हैं। मानती हूँ कि आम्र फलोंका राजा है, इसके स्वादकी तुलना नहीं ; किंतु नागरिकोंको भी वनके नवीन-नवीन फलोंका स्वाद तो आकर्षित करता ही है। सभी नवीन फल देखकर उसे एक बार लेना चाहते हैं।

अच्छे पके सुस्वादु फलोंके लिए मुझे वन-वन भटकना पड़ता है। कँटीली लताओंमें-से बैठकर, कभी लेटकर भी सरककर निकलना पड़ता है।

गोकुलके व्रजपति नन्दराय और उनके गोपोंकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी। गोप बहुत भले, बहुत उदार हैं, अतः आशा हो गयी कि वहाँ मेरे फलोंका मूल्य समझा जायगा। कम-से-कम कंसके राक्षसोंके समान वहाँ कोई मुझ बुढ़ियाको लूटेगा नहीं। कई दिनो वन-वन भटकी थी, कड़ा श्रम करके कुछ फल एकत्र कर सकी थी। कोई मेरे फलोंका मूल्य समझनेवाला मिल गया तो कुछ दिन बैठकर खानेकी व्यवस्था हो जायगी। हम पुलिन्द कहाँ परिग्रही होते हैं। मैं तो बूढ़ी हूँ, मेरे युवा पड़ोसी ही एक दिनको भोजन झोपड़ीमें हो तो काम करनेको नहीं निकलते।

जीवनमें मुझे इतने उत्तम फल नहीं मिले थे। कितनी गहन कँटीली झाड़ियोंमें प्रवेश करके मैंने कई दिनोंमें इन्हें एकत्र किया था। इनके गुण–इन फलोंके गुण तो कम ही पुलिन्द भी भली प्रकार जानते हैं; किंतु गोप हम सबकी ही भाँति वन-वन घूमनेवाली जाति है। उनमें इन दुर्लभ गुण-वाले फलोंको पहिचाननेवाले मिल सकते हैं और कोई एक भी ऐसा मिल गया तो मेरा श्रम सार्थक हो जायगा। मेरे महीने-दो महीनेके भोजनको अन्न तो वह दे ही देगा।

मैं यही सब सोचती महावन चली थी; किंतु गोकुल दूर था, तभी हताश हो गयी। हे भगवान्! इतने फल और ऐसे उत्तम—मैंने जीवनभर फल ही एकत्र किये हैं; किंतु ऐसा तो कहीं नहीं देखा कि सब ऋतुओंके फल एक साथ आ गये हों। यहाँ तो वृक्ष फल-भारसे झुके पड़े हैं। कोई हाथ भी मत उठाओ, केवल भूमिपर-से समेट लो। इतने विविध जातिके उत्तम गुणोंके फल यहाँ? भला गोकुलमें मेरे फलोंको कौन पूछेगा? मैं चाहे जितनी टोकरियाँ यहाँसे भर ले जाऊँ।

मेरी टोकरीमें कुछ नन्हें कँटीली लताओंके मीठे गुणकारी फल हैं; किंतु इतने सुरङ्ग, स्वादिष्ट फल जिनके वनमें बिखरे पड़े हैं, वे क्यों फल खरीदनेकी बात सोचेंगे?

भला हो उन मुनि महाराजका। मैं तो निराश होकर लौट ही चली थी। वे बड़ी-बड़ी जटाओं वाले कोई मुनि ही होंगे, मुझे लौटते देखकर दया आयी होगी उन्हें। पुकारकर बोले—'वृद्धे! लौट मत। गोकुलमें नन्दद्वार-पर चली जा। इस ओर आकर कोई निराश नहीं लौटा करता।'

अपनी टोकरी उतारकर, भूमिमें मस्तक रखा मैंने और सिर उठाया तो वे जा चुके थे। किसी पुलिन्दीके प्रणाम करने, न करनेकी ओर ध्यान देनेकी उन्हें क्या पड़ी थी; किंतु मेरा तो वे उद्धार ही कर गये। उनके वचनोंको मानकर ही मैं गोकुल उस दिन आयी थी।

'फल लो फल! कोई मीठे मधुर फल ले लो!' मैं पुकारने लगी—'गुणवान शक्तिदाता फल! रोगहारी फल!'

गोकुलकी गलियोंमें मैं पुकारती भटकती रही। गोप चले गये होंगे गायें लेकर वनमें उन्हें चराने। मुझे तो लगा कि बहुत-से घरोंमें गोपियाँ भी नहीं थीं। हों भी तो भीतर कहीं व्यस्त होंगी। मुझे केवल गोष्ठोंमें सेविकाएँ—कुछ थोड़े सेवक दीखे। इनसे मुझे प्रयोजन नहीं था।

मैं पुकारते-पुकारते थक गयी। मेरा कण्ठ सूखने लगा। मेरे पैर थकने लगे; किंतु किसीने मेरी ओर देखा तक नहीं। किसी घरसे तो कोई निकलती और इतना तो पूछ लेती कि मैं कैसे फल लायी हूँ।

मैं झुँझला उठी। क्या अभी कलियुग आ गया? मुनि महाराज भी मुझ वृद्धासे परिहास कर गये? मैं तो पहिले ही लौटी जा रही थी। गोप वैसे भी दूध, दही, माखनमें खेलनेवाले होते हैं। इनको फल कम ही रुचते हैं और इनके चारों ओरका वन तो भरा पड़ा है सुस्वादु फलोंसे। यहाँ मेरे फल कौन क्रय करेगा?

दोष मुनि महाराजका नहीं था। दोष तो मेरा था। उन्होंने तो मुझे सीधे नन्द-द्वारपर जानेको कहा था; किंतु मैं भाग्यकी मारी यहाँ गली-गली भटकती फिर रही थी। इस द्वारपर सब ओरसे संसारके हारे-थके ही पहुँचते हैं तो क्या पता; किंतु मैं तो जब भटकते-भटकते थक गयी और निराश हो गयी तब मनमें आया—चलो, यहाँ भी एक बार पुकार लो!

जहाँ साधारण गोप ही फल लेनेकी इच्छा नहीं करते, वहाँ व्रजराजके यहाँ कोई क्रय करेगा, यह मैं कैसे सोच लेती? मैं देख रही थी कि गोपोंके गृह सम्पन्न हैं। राशि-राशि अन्न है इनके आँगनोंमें। किंतु मुझ अभागिनीके भाग्यका इनमें कोई दाना नहीं तो मुझे कैसे मिले? इतने सम्पन्न गोप—इसीसे तो मैं द्वार-द्वार भटकती फिरती रही। मुझे लगा कि ये सम्पन्न लोग भला क्यों वनमें जाते होंगे। व्रजराजके बहुत सेवक होंगे।

वे उनके लिए वनसे उत्तम फल प्रतिदिन लाते होंगे, यह सोचकर मैं इस द्वारपर नहीं आयी। सब ओरसे निराश हो गयी, तब लौटनेसे पूर्व अंतिम बार यहाँ पहुँची।

'फल ले लो! मीठे, मधुर, गुणवान फल! सुस्वादु फल ले लो!' मैंने निराश, साधारण स्वरमें ही पुकारा। मुझमें अब बहुत उच्चस्वरसे पुकार लगानेकी न शक्ति रही थी और न उत्साह। जी करता था कि टोकरी पटक दूँ और पटक दूँ भूमिपर अपना सिर। फूट-फूटकर रोनेका मन हो रहा था।

'फलवाली! ओ फलवाली!' एक अत्यन्त मधुर बालकण्ठने पुकारा। मेरा तो रोम-रोम मानो उस स्वरने ही सुधासे सींच दिया। सबेरेसे भटकते-भटकते भला किसीने पुकारा तो सही। मैं दूर तक नहीं देख पाती। अब दृष्टि मन्द पड़ने लगी है। बिना पुकारनेवालेकी ओर देखे ही मैंने टोकरी उतारी सिरसे और भूमिपर सामने रखकर बैठ गयी।

वह डेढ़ वर्षसे भी कम वयका शिशु था—दिगम्बर शिशु! कहीं धूलिमें खेल रहा होगा सखाओंके साथ। मेरी पुकार सुनकर दौड़ा आया था। मैं तो उसे देखती ही रह गयी। सुन्दरता, कोमलता, प्रकाश, सुख सबको मिलाकर बनाया होगा सृष्टिकर्त्ताने उसे अपनी सब सावधानी और कला लगाकर।

घुँघराली काली कोमल सघन अलकोंसे घिरा चन्द्रमुख, भालपर काजलका बिंदु, पतली रेखा-सी काली टेढ़ी भौंहें, बड़े-बड़े अञ्जन लगे नेत्र, कण्ठमें कोई बड़ा-सा लाल था और छोटे उज्ज्वल मोतियोंकी मालाके मध्य व्याघ्र-नख लटक रहा था। लाल-लाल चरण थे। पैरोंमें नूपुर, कटिमें रत्न-किङ्किणी, करोंमें कङ्कण थे। मैं तो सिरसे पैरतक, पैरसे सिर तक उसे देखती ही रह गयी। पैरोंपर, उदरपर, भुजाओंपर, तनिक वक्षपर और अलकोंपर भी धूलि लगी थी।

आते ही उसने अपना नन्हा-सा सिर झुकाकर मेरी टोकरीमें झाँका। मेरे अनेक रङ्गोंके छोटे—कुछ थोड़े बड़े फलोंको देखकर प्रसन्न हो गया। वह प्रसन्न होकर ताली बजाकर हँसा तो मैं धन्य हो गयी। इतना सुख, इतना आनन्द भी मुझ पुलिन्दीको जीवनमें मिल सकता है, यह मैं किसी बड़े मुनिके कहनेपर भी विश्वास नहीं करती।

'फल दे !' उस नवघन-सुन्दरने अपने नन्हे हाथोंकी अञ्जलि बना ली। वे लाल-लाल किसलयसे भी कोमल कर—मैं अपना हृदय भी निकालकर उस अञ्जलिमें धर देती तो कम होता ; किंतु तत्काल लोभ जागा—इसे फल दे दूँगी तो यह लेकर चला जायगा। किसी प्रकार दो पल तो नेत्रोंके सम्मुख खड़ा रहे।

'इन फलोंका मूल्य लाओ !' मैंने कह दिया।

'मूल्य ? मूल्य क्या होता है ?' वह इधर-उधर देखने लगा। कितना भोला—ऐसे देख रहा था जैसे मूल्य किसी पशु या पक्षीका नाम होगा। कहने लगा—'मूल्य तू पकड़ ले, मैं नहीं जानता !'

'मेरे लाल ! जब किसीसे कुछ लिया जाता है तो उसे बदलेमें कुछ देना पड़ता है।' मैंने उसे समझाया—'उस बदलेमें देनेवाली वस्तुको मूल्य कहते हैं।'

'तू कैसी बुढ़िया है ?' अब अपने बड़े-बड़े नेत्र उठाकर उसने मेरी ओर देखा—'मुझे तो मैया माखन देती है, दूध पिलाती है। कुछ भी तो नहीं लेती।'

'वह तो तुम्हारी मैया है।' मुझे हँसी आ गयी उसके भोलेपनपर।

'माँ भी तो मुझे रोटी देती है।' उसने सिर हिलाया—'मुझसे तो कोई कुछ नहीं माँगता।'

'तुम उनको माँ कहते हो न !' मेरे मनमें कितनी हलचल थी, मैं ही जानती हूँ, इस सलोने शिशुकी अञ्जलि भर दूँ फलोंसे—मचल रहा था हृदय ; किंतु यह चला जायगा—फल लेते ही नेत्रोंके सम्मुखसे चला जायगा !

'तू क्या लेगी ?' उसने कुछ सोचकर पूछा। उसे लगा होगा कि यह बहुत हठी और बुरी बुढ़िया है कि उससे भी कुछ लिये बिना फल नहीं दे रही है।

'अन्न लूँगी। मेरे घर अन्नका एक दाना नहीं है।' मैंने यह इसलिए कह दिया कि देखें अब यह करता क्या है।

वह मुड़ा और नन्हें-नन्हें पदोंसे दौड़ता गया। सम्मुख ही आँगनमें धान सूखनेको डाला गया है, यह मैं देख रही थी। वहाँ जाकर वह बैठ

गया और अपनी नन्हीं अञ्जलिमें उसने धान भर लिया। मैं तो उसीको देख रही थी। मेरे नेत्र, मन, प्राण सब उसीमें लगे थे। धान लेकर उठनेमें उसे तनिक असुविधा हुई, पर उठ गया और अब मेरी ओर आने लगा। इस बार कुछ धीरे-धीरे आ रहा था।

वह मेरी ओर ही देखता आ रहा था। उसे लगता होगा कि यह विचित्र बुढ़िया कहीं फल लेकर चली न जाय। नन्हें कोमल कर अञ्जलि भी तो नहीं बना पा रहे थे ठीक-ठीक। अँगुलियोंकी और करोंकी सन्धिसे धान गिर रहा था। पतली रेखा-सी बनती आ रही थी और वह रेखा भी उसके मेरे समीप पहुँचनेसे कई पद पहिले ही समाप्त हो गयी।

'अब फल दे !' उसने मेरी टोकरीमें आकर अपनी अञ्जलि खोली तो केवल दो दाने धानके टोकरीमें गिरे। उसने भी अब फलोंको देखनेके लिए सिर झुकाया तो देख लिया कि टोकरीमें तो कुछ गिरा ही नहीं। पीछे सिर करके उसने देखा और एक क्षण गिरे धानकी उस पतली रेखाको देखता रहा। कुछ सोचता रहा।

'तू मुझे फल दे दे !' इस बार अनुनय करता हो, ऐसे बोला—'तू कल आवेगी तो बाबासे बहुत अन्न दिला दूँगा। मैया मुझे ढूँढ़ेगी। यहाँ देखेगी तो खीझेगी।'

'तुम जिनको माँ कहते हो, वे तुमको जो माँगते हो, दे देती हैं।' मेरी लालसा बहुत बढ़ गयी थी, अतः मैं बोल पड़ी—'मेरी गोदमें बैठकर मुझे एक बार 'माँ' कह दो तो मैं भी तुम्हें फल दे दूँगी।'

वह झट आकर मेरी गोदमें बैठ गया और ऊपर मुख करके मेरी ओर देखता बोला—'माँ ! अब मुझे फल दे दे !'

'ले लाल !' मैं धृष्टता कर गयी थी—बहुत बड़ी धृष्टता कि व्रज-राजके कुमारको अङ्कमें बैठा लिया था मैंने। कोई गोप देख लेता तो मेरी एक हड्डी बिना टूटे नहीं बचती। कोई गोपी या सेविका देख लेती तो भी चिल्ला पड़ती और मेरी दुर्गति होती ; किंतु क्या करूँ—अपनी लालसा मैं नहीं रोक सकी थी और इस एक पलमें मैंने जो पा लिया—बस पा लिया। अब जन्म-जन्मकी साध पूरी हो गयी। अब कुछ पाना नहीं मुझे। मैं उसे अङ्कमें अधिक रोकनेका साहस किसी भी प्रकार नहीं कर सकती थी। वह उठकर फिर अञ्जलि बनाकर मेरे सामने खड़ा हो गया था।

मैंने अपनी टोकरीके फल भर दिये उसकी उस अञ्जलिमें। कितने फल उसमें आये, मुझे पता नहीं। कितने फल बचे टोकरीमें, मुझे पता नहीं। लगा कुछ ऐसा ही कि सब फल उसकी अञ्जलिमें आ गये। मैं तो अपने एक हाथसे उसकी अञ्जलिको सहारा दिये दूसरे हाथसे फल उठा-उठाकर भरती गयी। उसका सुन्दर मुख इतने समीप था और मैं उसकी अञ्जलिको सहारा दिये, उसके करोंको स्पर्श किये थी।

वह अपनी अञ्जलिको उदरसे चिपकाकर लौटा और बहुत धीरे डगमग पदोंसे चला। मैंने उसे जाते देखा। उसका उल्लासपूर्ण स्वर मेरे कानोंमें पड़ा—'मैया ! माँ ! मैं फल लाया हूँ !'

वह पुकार रहा था—'दादा ! भद्र ! तोक ! मैं फल लाया हूँ ! सुन्दर मीठे फल !'

ऐसे पुकार रहा था जैसे सारी सृष्टिको सब फल सदा ऐसे ही पुकार कर देता रहा है। मैंने टोकरी सिरपर धरी और लौट पड़ी। मेरे प्राणोंमें उसका वह मुझे 'माँ !' कहना, उसका वह स्पर्श बस गया। वह तो अब भी मुझे अपने अंकमें ही बैठा दीखता है। वही सुन्दर अलकोंसे घिरा चन्द्रमुख तनिक ऊपर उठाये !

पता नहीं क्या हो गया था। वह मेरी खाली टोकरी मुझे बहुत भारी लगने लगी। मैं सम्भवतः बहुत थक गयी थी। मुझे अब टोकरीका करना क्या था। इस सुन्दर व्रजराजकुमारको फल दे चुकी, अब और किसीके लिए मेरे कर फ़ल इकट्ठा करनेमें नहीं लगेंगे। अब किसी दूसरेके द्वार मेरे पद नहीं जा सकेंगे। अब मुझसे 'फल ले लो !' की पुकार नहीं हो सकेगी। मैंने टोकरी फेंक दी यमुनाके प्रवाहमें। मेरी टोकरीमें-से बहुत-से चमकते रत्न सूर्यकी रश्मिमें प्रकाश देते छप् करते गिरे हों—ऐसा क्षणभर-को मुझे लगा।

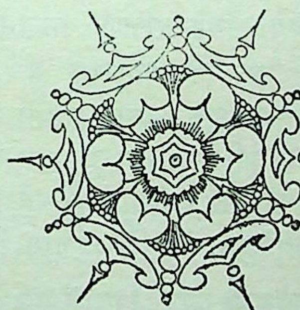
रत्न ही गिरे होंगे। अब मुझे लगता है कि उनके भारसे ही टोकरी उतनी भारी हो गयी थी। अच्छा हुआ, उन्हें फेंक दिया। टोकरी लाती तो व्यर्थ उन पत्थरोंका भार ढोती। अपनी कुटियामें पहुँची तो देखा कि उसमें मेरे सो रहनेको कठिनाईसे स्थान रहा है। मेरी झोपड़ीमें एक कोना भरा है रत्नोंसे और पूरी झोपड़ीमें अन्नकी राशि ऊपर तक लगी है। मैंने पुलिन्द-पल्लीके सभीको कह दिया—'सब उठा ले जाओ जितना जी चाहे।'

सब ले गये ढो-ढोकर और मेरी झोपड़ी तो रिक्त ही नहीं होती है। नन्दरायका वह लाल—अरे, मेरा लाल ! यह अंकमें बैठा मेरा नवघन-सुन्दर लाल पता नहीं कैसा पारस है।

मैं गोकुल फिर गयी—फिर गयी—फिर गयी और प्रतिदिन जाती हूँ। छिपकर जाती हूँ दूरसे एक बार देख लेने नन्दलालको, यद्यपि यह मुझे अपने अंकमें बैठा ही दीखता था।

मैंने गोप-सेविकाओंको परस्पर कहते सुना—'लगता है कि व्रजरानी-के लालको भगवती वनदेवी या अन्नपूर्णा स्वयं फल दे गयीं किसी दिन। ऐसे स्वादिष्ट फल तो देखे-सुने ही नहीं। कन्हाईकी नन्हीं अञ्जलिके वे फल तो समाप्त ही होने को नहीं आते। व्रजेश्वरीने पूरे गोकुलको बाँटे हैं और अब भी वे उतने ही बने हैं।'

मैं भला कबकी भगवती ! लेकिन व्रजराजका कुमार ऐसा अद्भुत है, यह इन गोपियोंको पता नहीं लगता ?



सगाई

बड़ी आयुमें नन्दरायजीने कुमार पाया। मैं तो बहुत चिन्तित था; किंतु वे ऐसे भोले हैं कि उन्होंने इधर ध्यान देना कभी आवश्यक ही नहीं माना। जब कभी बात उठती भी तो कह देते—'भगवान् नारायणने व्रजका भी मङ्गल-विधान ही किया होगा!'

हमारे दोनों कुल तो कहनेको दो हैं। दोनों पिता परस्पर अभिन्न मित्र थे और हम दोनों तो शैशवसे गोकुल तथा वृहत्सानु दोनोंको अपना गृह मानना सीख गये हैं। दोनों साथ-साथ खेले, गुरुगृहमें साथ रहे।

नन्दरायजी मुझसे आयुमें कुछ मास ज्येष्ठ हैं। मैं बड़े भाईके समान उनका सम्मान शैशवसे करता हूँ और वे मुझपर स्नेह रखते हैं। मेरे परिणयकी चिंता पितासे भी अधिक उन्हें थी। उन्होंने ही मेरे लिए कन्या देखी और कान्यकुब्ज-नरेशसे उसको मेरे लिये माँगा।

जब उनको व्रजराज-पदपर प्रतिष्ठित करनेके लिए पगड़ी बँधी, पिताने मुझे प्रसन्न कर दिया उनके दक्षिण पार्श्वमें खड़े होनेको कहकर। मुझे बहुत अटपटा लगता था कि गोकुलके व्रजराजको दधिका उपहार लेकर बरसानेके स्वामीके सम्मुख आना पड़ता था और अपने पदकी स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती थी। पिताने इस परम्पराको तोड़ा न होता तो मैं अवश्य तोड़ देता। हम दोनोंके व्रज दो क्यों रहें? जो वयमें ज्येष्ठ है—उसीको ज्येष्ठत्वका सम्मान क्यों न दे दिया जाय?

व्रजेश्वर हुए नन्दरायजी और पिताने व्रजेश्वरके प्रथम सम्मानका अधिकार वृहत्सानुपुरके स्वामीका स्वत्व बना दिया। मेरा स्वत्व तो इससे बहुत बड़ा है। व्रजेश्वर कोई महत्वका कार्य मुझसे पूछे बिना करते नहीं। वे तो ऐसा व्यवहार करते हैं कि मानो मेरी सम्मति, आदेश हो उनके लिए। अनेक बार मुझे इससे बहुत संकुचित होना पड़ता है।

मेरे बड़ा कुमार हुआ, तब तक कोई बात नहीं थी; किंतु पत्नीकी गोदमें छोटे पुत्रके साथ ही अयोनिजा वह लाली स्वतः आ बैठी। वह

आयी और जहाँ मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी, वहीं मुझे चिन्ता भी कम नहीं थी। कन्या अपने जन्मके साथ पिताके लिए एक चिन्ता लाती है— कन्याके योग्य सम्बन्धकी चिंता और हम गोपोंमें तो यह चिंता बहुत शीघ्र सिरपर चढ़ती है ; क्योंकि सुविधा हो तो हम सम्बन्ध शिशुके जन्मसे भी पूर्व निश्चित कर लेते हैं।

मैं हृदय पकड़कर ही बैठ गया—'यह आयी और नन्दरायके कोई कुमार नहीं है ? मैं कहाँ करूँगा इसका सम्बन्ध ? दूसरा तो मुझे अपने योग्य सम्बन्ध करने योग्य कोई दीखता ही नहीं।'

महर्षि शाण्डिल्यने मुझे आश्वस्त किया था। भगवती पूर्णमासीने व्रजेश्वरीको गोद भरनेका आशीर्वाद दिया है, यह सुनकर सबसे अधिक प्रसन्नता मुझे हुई थी। मैंने निश्चय कर लिया था कि गोकुलके स्वामीको कन्या हुई तो मेरे घर आवेगी और कुमार हुआ तब तो वह मेरी चिंता दूर ही कर देगा।

मैं नीलमणिके जन्म-दिन ही सगाई कर देना चाहता था। मैंने उसी दिन उसे अपना बना लिया। मैंने पूछ लिया था उसी दिन भाई नन्द-रायजीसे कि वे कब मेरी कनकलता-सी कन्याको अपने कुमारके लिए स्वीकार करेंगे ?

व्रजपतिने मुझे भुजाओंमें भर लिया—'इसमें भी पूछना आवश्यक है ? यह तो आपका ही है।'

नीलमणिपर दृष्टि पड़ी मेरी और हो गया—मेरी कन्या इसीके लिए है, इसीकी है ! इसमें कुछ कहने-सोचनेको रह नहीं गया ; किंतु नीलसुन्दर केवल सात दिनका था, तब पूतना गोकुलमें आ धमकी। वह भले मर गयी ; किंतु कंसकी ओरसे हम सबको सतर्क तो कर ही गयी। कंसकी क्रूर दृष्टि है व्रजराजके कुमारपर, अतः मुझे सावधानीपूर्वक ही कुछ करना चाहिये।

महर्षि गर्गाचार्य आ गये अकस्मात् मेरे यहाँ। मैंने प्रार्थनाकी और उन कृपा-मूर्तिने स्वीकार करके मेरे छोटे कुमार तथा कन्याका नामकरण कर दिया। भविष्यदर्शीसे मैंने बहुत धड़कते हृदयसे पूछा था कि मेरी कन्याका विवाह किससे होगा ? भाग्यकी लिपि मिटायी जानी अत्यन्त कठिन है ; किंतु मैंने निश्चय कर लिया था—पूछा ही इसलिए था कि महर्षि

कुछ और—कहीं अन्यत्र सम्बन्ध सूचित करते हैं तो मैं भाग्यके उस लेख-को परिवर्तित करनेके लिए जो कुछ करना पड़ेगा—करूँगा। मैं कितनी भी कड़ी तपस्या अथवा अनुष्ठानके लिए प्रस्तुत था ; किंतु महर्षिने तो मेरे मनकी ही बात कही थी।

'नन्दतनयकी नित्य सङ्गिनी है आपकी तनया।' महर्षिने कहा था—'इनका अनादि सम्बन्ध—इसमें व्यवधान बननेकी शक्ति सृष्टिमें है ही नहीं।'

मैं धन्य-धन्य हो गया। मैंने प्रार्थना की थी कि महर्षि यह सम्बन्ध करा दें ; किंतु उन्होंने मेरी यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। महर्षिके शब्द मुझे स्मरण हैं ; किंतु उनका तात्पर्य मैं समझ नहीं सका था। अब भी मेरी समझमें उनकी बात नहीं आती। उन्होंने कहा था—'अनादि दम्पतिमें विवाहकी औपचारिकता आ नहीं सकती। इस अवतार-लीलामें वह आवश्यक तो है ; किंतु उसे स्वयं सृष्टिकर्ता सम्पन्न करेंगे और वह भी समाजके नेत्रोंसे परोक्ष ही रहेगी।'

मुझे महर्षि शाण्डिल्यने समझाया। उनकी बात मैं समझ सकता हूँ। महर्षि ठीक ही कहते हैं कि मेरी नन्दरायजीकी मैत्री सबको ज्ञात है। वसुदेवजी नन्दरायजीके भाई ही हैं और उनकी पत्नी रोहिणी रानी तो नन्दभवनमें हैं ही। कंसकी क्रूर दृष्टि गोकुलपर—विशेषतः नन्दनन्दनपर पड़ चुकी है। कंस दो असुर भेज चुका अपने—महर्षि तो पाँच कह रहे थे; किंतु दो को तो हम सब जानते ही हैं—पूतना और तृणावर्त। अब यदि नीलमणिसे मैं अपनी सुताकी सगाई कर देता हूँ तो कंसको लगेगा कि वसुदेवजीका इसमें कुछ हाथ है। वे अपना पक्ष प्रबल करने लगे हैं और तब वह गोकुलके—सम्भव है वृहत्सानुपुरके भी विरुद्ध बड़ा आक्रमण कर दे अथवा शिशुके लिए कोई बहुत भारी भय उपस्थित करे।

मैंने नन्दरायजीसे सम्मति ली, पर वे तो बहुत अधिक सीधे हैं। वे कहते हैं—'नीलमणि आपका है। अब आप जो भी उचित लगे, करो। मुझे इसमें कोई आपत्ति भला क्यों होगी।'

नीलमणि मेरा तो है ; किंतु मैं उसपर विधिपूर्वक अपना स्वत्व बना लेना चाहता हूँ। महर्षि गर्गाचार्य समाजके नेत्रोंसे परोक्ष ही इस सम्बन्धको सृष्टिकर्त्ता द्वारा सम्पन्न करानेकी बात कह गये। मुझे सगाई

भी समाजके नेत्रोंसे परोक्ष रखनेमें आपत्ति नहीं है। नीलमणिकी सुरक्षा पहिले आवश्यक है और कंस कितना क्रूर है, कितना निर्दय है, यह तो अब सब समझ गये हैं।

मेरी पाटलदल-मृदुल अत्यन्त भोली कन्या—मेरे हृदयमें इसके सम्बन्धको इतने उत्साहसे सम्पन्न करनेकी बात थी कि किसी सम्राट्की सुताका विवाह भी उतने वैभवसे पूर्ण नहीं हो पाता ; किंतु अब तो ऐसे शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सगाई तो अब अपने अन्तःपुरसे—अपने लोगोंसे भी गुप्त ही रखकर करनी है और व्रजपतिने मेरी यह बात मान ली है कि गोकुलमें भी यह संस्कार गुप्त ही रहेगा।

कुछ तो करना चाहिये मुझे। पुत्रीकी सगाई करूँ और वह भी नीलमणिको बिना कुछ दिये ? महर्षि शाण्डिल्यने मेरे लिए मार्ग निकाल दिया। संस्कार पहिले--उपहार अन्य अवसरपर तब दिया जाय जब वह किसीको चौंकावे नहीं।

संस्कार पहिले और उपहार पीछे क्यों ? मैंने नीलमणिके जन्म-दिनपर, वर्षगाँठके अवसरपर उपहार भेजे तो नन्दराय ही चौंके। उन्होंने ही आपत्ति की—'इस अवसरपर इतने अपार उपहार ?'

'आज आप किसीकी भेंट अस्वीकार नहीं कर सकते।' मैं ठीक समझता था कि व्रजपति मेरा तर्क चुपचाप स्वीकार कर लेंगे—'नीलसुन्दर व्रजका युवराज है। यह सबका है। अतः इसकी जन्मगाँठपर उपहार देनेकी साध किसके मनमें नहीं होगी। सबने अपनी पूरी शक्ति इस नन्हें सौन्दर्य-घनको सत्कृत करनेमें लगायी है। आप आज किसीका कोई उपहार अस्वीकार नहीं कर सकते। आज तो आपको इस सम्बन्धमें मौन रहना है।'

मेरी युक्ति सफल हो गयी। गोपोंको भी मेरी युक्ति उत्तम लगी। वे भी तो अद्भुत एवं बहुमूल्य उपहार लाये थे। उनकी भी आशङ्का मिट गयी कि उनके उपहार स्वीकृत होंगे अथवा नहीं। उस दिनके उत्सव-उल्लासमें किसीने यह ध्यान दिया तो केवल रोहिणी रानी थीं। मेरी सेविकाने मुझे बतलाया—'वे व्रजेश्वरीसे कह रही थीं, नीलमणिके लिए वृहत्सानुपुरसे आनेवाले उपहारोंमें सगाईमें मिलनेवाली पूरी सामग्री है। पूरे परिवारके लिए तथा सेवकों-दासियोंके लिए भी वस्त्राभरण हैं।'

'जीजी ! इस सम्बन्धके लिए तो आँचल फैलाकर मैं श्रीनारायणसे वरदान माँगती हूँ ।' व्रजेश्वरीने कहा था। यह मैंने सुना तो मुझे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसका वर्णन नहीं ।

बात इतनी ही नहीं रही। मैं विदा होने लगा तो नन्दरायजीने मुझे उपहारोंसे लाद दिया । समझ गया कि यह रोहिणी रानीकी प्रबन्ध-पटुता है। उनका संदेश मिल गया—'आपसे तो हम सदा लेंगे ही। यह सब आपको केवल हमारी लाली और उसके सेवक-सेविकाओं तक पहुँचा देनेका कष्ट करना है।'

अब शेष क्या रह गया सगाईमें ? महर्षि शाण्डिल्यने मुहूर्त निश्चय कर दिया था। मैं आज इम मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीको गोकुलमें नन्हें नीलमणिका तिलक करके लौटा हूँ। महर्षिने गोष्ठके एकान्तमें, बिना किसी समारोहके केवल सामान्य पूजन कराके सम्पन्न किया यह संस्कार।

पीत झगुलिया और कछनीमें सुशोभित मयूरमुकुटी नीलसुन्दर ! उसके भालपर लगाया मेरे करोंका कुंकुम-तिलक और उसपर चिपके अक्षतके दो दाने—यह छवि तो अब जीवन-भर भूलनेकी नहीं।

सामान्य स्थितिमें यह संस्कार होता—केवल कुल-पुरोहितके साथ कुमार श्रीदाम जाता—किंतु मेरा मन मानता गये बिना ? आज वृहत्सानु-पुरके समारोहसे स्वर्ग भी स्पर्धा करता—परन्तु यह सब कैसे होता ? कंस क्रूर है और···।

केवल अर्धाङ्गिनी जानती हैं कि आज जीवनका सबसे मङ्गल अवसर है। उनकी गोदमें बैठी उनकी तनयाकी गोद गोकुलसे आये उपहारोंसे भर दी गयी ; पर वह तो अभी अबोध शिशु है। उसे क्या पता कि यह सब क्या हो रहा है। अवश्य ही आज बहुत गम्भीर रही वह ; पर वह तो सदासे ऐसी है। मेरी पुत्रीमें चपलता तो कभी आयी ही नहीं।



विप्रर्षि कण्व

मैं ब्राह्मण हूँ। लोग मुझे विप्रर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि--जो मुखमें आया, कह देते हैं। श्रद्धा मानवके लिए स्वभाविक है और उसे परिपूत करती है। मैं गृह-त्यागकर एकान्त काननमें रहता हूँ, अतः मेरा विरक्त जीवन लोगोंकी श्रद्धा जागृत करता है; किंतु मुझसे अधिक आज यह कौन अनुभव करता है कि महेश्वरकी माया कितनी प्रबल है। वह किस प्रकार नेत्रावरण बनकर मुझ जैसेको भी प्रत्यक्ष सत्य देखने नहीं देती।

मैं पहिलेसे जानता था कि इस अष्टाविंशति द्वापरान्तमें मेरे आराध्य धरापर अवतीर्ण होनेवाले हैं। वे अतसी-कुसुम-श्याम-कौस्तुभकण्ठ, श्रीवत्सवक्ष। प्रभु मुझपर अनुग्रह करके शिशु-विग्रहमें मेरे द्वारा अर्पित नैवेद्य स्वीकार करने स्वयं स्वीकार करने स्वयं पधारे और मैं अज्ञानी उनकी इस असीम कृपाका, उनका और उनके प्रसादका तिरस्कार करता रहा। वे अनन्त करुणा-सागर, क्षमासिंधु मुझे क्षमा करते रहे। अपने अज्ञ जनोंके अपराध तो वे सदा ही क्षमा करते हैं; किंतु मैं तो उनके प्रत्यक्ष सम्मुख होनेपर भी उनकी अवज्ञा करता रहा!

वे अपनी पहिचान स्वयं न करावें तो उन्हें कोई भी पहिचान नहीं सकता। उन अकारण कृपालुने ही मुझे सावधान किया, मुझे स्पष्ट सूचित किया। मुझ जैसे अनधिकारीको भी अपनाया! अन्यथा मैं तो उनके जनोंका—भक्तापराध करके पतित हो चुका था। भगवत्प्रसादका तथा भगवज़्जनोंका अपमान कर लिया था मैंने अज्ञानवश अपनी पवित्रताके उन्मादमें। ऐसा असह्य अपराध भी उन दयासिन्धुने मेरा नहीं देखा।

आज मैं अनुभव करता हूँ कि सृष्टिकर्ताने मुझे कितना बड़ा सौभाग्य प्रदान किया था गोप-प्रमुख सुमुखका पुरोहित बनाकर। मैंने अपने अपूर्ण पाण्डित्यके कारण उसे प्रतिग्रहका हेतु मानकर त्याग दिया। पुत्रको वह दायित्व देकर काननमें चला आया। मेरा यह एकान्त, यह किञ्चित् आराधनाका प्रयास किस गणनामें था। सृष्टिकर्ताके साक्षात् मानस-पुत्र महामहर्षियोंकी युग-युगकी उग्र तपस्या, अनवरत उपासना भी

जिनको सनतुष्ट नहीं कर पाती, किसी भी प्राणीकी कैसी भी साधना, कितने भी दीर्घकाल तक की गयी हो, सर्वेश्वरके साक्षात्कारका मूल्य तो नहीं बन सकती। वे अनन्त प्रेमार्णव स्वयं ही प्रसन्न होकर आवें, तभी उन्हें पाया जा सकता है।

मेरा पुण्य—मेरा जन्म-जन्मका पुण्योदय इतना प्रबल था कि उसने मुझे इस एकान्तमें ही सदा सीमित नहीं रहने दिया। मैं तो इसे अपना उत्कट वैराग्य मान बैठा था कि कहीं जाने, किसीसे भी मिलनेकी मनमें कोई रुचि नहीं थी। अपने इस अरण्यके अन्तरमें स्थित उटजमें मैं परम सन्तुट था। जनपदमें जाना अथवा किसीका अकस्मात् मिल जाना मुझे विक्षेप ही लगता था; किंतु मेरा वह प्रबल पुण्य मुझे यहाँ बैठने नहीं देता था। चार-पाँच वर्षोंपर एकबार गोकुल जाकर नन्दरायका अतिथि होनेको वह मुझे उत्सुक बना देता था।

असंख्य पशु-पक्षी तथा कीट अरण्यके एकान्तमें सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करके मर जाते हैं। मनुष्य भी ऐसे ही मर जाय, उसके जीवनकी यही सार्थकता तो नहीं है? मनुष्यका जीवन केवल अपने श्रमसे, अपनी ही साधनासे सफल हो पाता तो सभी यह कर लेते। सब समझदार तो कर ही लेते; किंतु महापुरुषकी कृपा-प्राप्तिके बिना कोई जीवन—कोई साधन सफल नहीं हुआ करता और महापुरुष नहीं मिलते भगवदनुग्रह विशेष रूपसे हुए बिना।

मैं कितना भी बड़ा श्रुति-शास्त्रोंका विद्वान् होऊँ, भगवती सरस्वतीने कितनी भी कृपा मुझपरकी हो, अज्ञानी ही था। ऐसा न होता तो गोपनायक सुमुखका पौरोहित्य त्यागकर इस एकान्त वनमें आता; किंतु सन्तोष यही है कि पुत्रने यह परमलाभ प्राप्त कर लिया है।

परम पुरुष पुरुषोत्तम जिन्हें नानाजी कहकर सम्मानित करते होंगे, जिनकी क्रोड़ीमें सोल्लास विराजमान होते होंगे, उन गोपनायक सुमुखका मुझे पौरोहित्य मिला था, अल्प पुण्य तो मेरे नहीं होंगे पूर्व जन्मोंके। वही पुण्य थे कि मुझे वे बार-बार गोकुल जानेको प्रेरित करते थे और इस एकान्तमें बैठने नहीं देते थे। मैं व्रजराज नन्दरायकी श्रद्धा-स्नेहका स्मरण करके उनके यहाँ चार-पाँच वर्षोंके अन्तरपर एक बार जाता रहा।

मैं समझता था कि गोकुलके अधिपति मेरी कृपाके उचित अधिकारी हैं। उनके यहाँ जाकर मैं उनपर अनुग्रह करता हूँ। वे श्रद्धाके साक्षात्

विग्रह और शील, विनय, सेवाकी मूर्त्ति उनकी सहधर्मिणी मेरे यजमानकी कन्या यशोदा—मेरे आगमनको दोनोंने सदा अपना परम सौभाग्य माना। दोनों साश्रु लोचन, बद्धाञ्जलि बार-बार कहते थे—'श्रीचरणोंके अहैतुक अनुग्रहने हमें पवित्र किया। श्रीचरण केवल कृपा करने पधारे, यह गृह पावन हो गया।'

यह तो आज समझ सका हूँ कि मेरे अहैतुक कृपालु आराध्यकी अनुकम्पा मुझे प्रेरित करती थी। व्रजपतिका आतिथ्य मुझे उत्तरोत्तर निर्मल करता रहा और उसीका प्रताप है कि मैं उन पुरुषोत्तमके प्रसादको प्राप्त कर सका।

इस बार पाँच वर्षके पश्चात् गोकुल गया था। पहिले चला गया होता! किंतु पहिले चला कैसे जाता? सबका समय होता है। मैं जो नन्दरायके आतिथ्यको स्वीकार करने पहुँच जाया करता था, वह मेरी एकान्त आराधनाका पुण्य परिपाक ही तो था। वह जब पूर्ण हुआ, तभी तो वहाँ पहुँचनेकी प्रेरणा अन्तरमें उठी।

महावनकी सीमामें पहुँचते ही इस बार चमत्कृत हो गया। महावन मेरा अनेक बारका देखा था। परिचित था यह प्रदेश; किंतु वह अब कहाँ था। मैं तो दिव्यधरा, चिन्मय प्रदेशमें पहुँच गया था। पशु-पक्षी, लता-पादप, भूमिका कण-कण, तृण-तरुओंके पत्ते-पत्तेसे जो अलौकिक शान्ति, अतर्क्य आनन्द झर रहा था, वह तो समाधिमें भी कभी सुलभ नहीं हुआ था मुझे।

यह मर्त्यधरा नहीं है। यह तो नित्यलोकका धरापर अवतरण है। इतना मैं समझ गया वहाँ पहुँचकर। कोई आश्चर्य नहीं हुआ। गोपोंकी श्रद्धा, उनका संयम, नन्दरायकी अनन्य निष्ठामें नित्यलोकको धरापर अवतीर्ण कर लेनेकी शक्ति है, यह मैं समझ सकता था। साक्षात् परमपुरुष पधारे हैं नन्दभवनमें, यह अवश्य मेरे अनुमानमें—मेरी बुद्धिकी सीमामें आनेकी बात नहीं थी। यह तो उनके अनुग्रहके बिना कोई कभी जान नहीं पाता।

मुझे देखते ही गोपोंने भूमिमें पड़कर प्रणिपात किया और दौड़े व्रजेश्वरको सूचित करने। गोकुलका स्वरूप ही कुछ और हो गया था। गायें सबकी सब कामधेनु और गोप, गोपियाँ तो दूर, सेवक-सेविकाओं

तकमें इतना शील, इतना सौन्दर्य स्वर्गमें भी सुदुर्लभ है! मैंने देखा कुछ शिशुओंको। लगा कि किसी दिव्यलोकके दिव्य पुरुष बालवेशमें आ गये हैं गोकुलमें। मैं पथमें रुककर उनकी ओर देखने लगा मुग्ध होकर। एक गोपने अञ्जलि बाँधकर सादर सूचित किया—'आपके आशीर्वादसे गोपोंके गृह इन बालकोंके आगमनसे आलोकित हो गये हैं इन दो-तीन वर्षोंमें। हमारे व्रजपतिके यहाँ भी कुमार आ गया है। व्रजने अपना युवराज पा लिया है।'

नन्दरायके इस अवस्थामें पुत्र हो गया है, यह जानकर मुझे आनन्द हुआ। मैं उनके भवनकी ओर चला ही था कि वे आते दिखलायी पड़े। पथमें ही वे मेरे पदोंमें साष्टाङ्ग प्रणिपात करते गिर पड़े। मुझे लेकर अपने गोष्ठमें गये वे। वहाँ पहिलेसे सूचना मिलते ही देवी रोहिणी और यशोदा मेरे लिए आसन सज्जित करने तथा पूजाके उपकरण एकत्र करनेमें जुटी थीं।

अर्घ्य, पाद्य, आचमन—अपने आराध्यकी अर्चा ही कर रहे हों, इतनी श्रद्धा, सतर्कतासे मेरी पूजा सदा नन्दरायके गोष्ठमें इसी प्रकार हुई है। इस बार इसमें देवी रोहिणी और सम्मिलित हो गयी थीं। मेरा चरणोदक तो नन्दराय पूरे गोकुलमें सबको देते हैं, सब गृहोंमें सिञ्चित होता है, यह मैं जानता ही था।

मैं किसी गृहस्थके गृहमें नहीं जाता, इस नियमको जान लेनेके कारण नन्दरायने कभी मुझसे अपने भवनमें चलनेका आग्रह नहीं किया। वे शीलकी मूर्त्ति हैं। मुझे सङ्कोच होगा, इसीसे यह प्रार्थना उन्होंने कभी नहीं की। मुझे गोष्ठमें ही वे ले आते हैं; किंतु मैं देखता हूँ कि पथमें-से जहाँ मेरे पद पड़े हों, वहाँकी रज यशोदा भवनमें समेट ले जाती हैं। उसे वे भवनमें सर्वत्र छिड़कती होंगी।

मेरी पूजा पूर्ण हुई और यशोदा गोष्ठसे निकलीं। बहुत शीघ्र बालकोंका एक समूह ही उनके साथ आया। एकसे दो-ढाई वर्ष तकके शिशु। कुछने ही कटिमें कछनी बाँधी थी। शेष दिगम्बर। मैं सबको कहाँ देख सका। दो शिशुओंने एक साथ मेरे पदोंपर सिर रखा। एक स्वर्णगौर और दूसरा इन्दीवर-सुन्दर। मेरे सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया। स्वेदकी धारा चलने लगी। देहमें कम्प होने लगा। मैं कुछ नहीं समझ पाता था कि मेरी ऐसी अवस्था कैसे, क्यों हो रही है।

वह गौरकुमार—मैं कितनी कठिनाईसे बैठा रह सका, मैं ही जानता हूँ। मर्यादाका बन्धन, अपने तपस्वी ब्राह्मण होनेका ध्यान, अपने यजमानकी कन्या और उसके पति सम्मुख—कितना अटपटा होता यदि मैं हृदयकी मान लेता। अकस्मात् मन करता था कि उठकर गौरकुमारके छोटे अरुण, सुन्दर पदोंपर अपना जटा-मण्डित-मस्तक रखकर उसके सामने साष्टाङ्ग पड़ जाऊँ भूमिपर।

केवल पलार्ध एक स्थिति रही होगी। छोटे नवघन-सुन्दर शिशुने अग्रजसे आधे पल पीछे मेरे पदोंपर-से मस्तक उठाया। मैंने उसके मुखकी ओर देखा और देखता रह गया। पलकों तकको हिला पाना सम्भव नहीं रह गया। मैं तो अपनेको ही विस्मृत हो गया उन्हें देखकर।

सभी बालककोंने मेरे पदोंपर मस्तक रखा होगा। वे सब शीघ्र वहाँसे भाग गये। वे चले गये तब मुझे अपनी—अपने शरीरकी सुधि आई। मनमें ग्लानि हुई—मुझ एकान्तवासी तपस्वीमें शिशुओंके सौन्दर्यपर मुग्ध होनेकी यह दुर्बलता क्यों ? अपनेको मैंने पूरी शक्तिसे कठोर बना लिया मनमें। यही कठोर बना लेनेकी भूल मुझसे मेरे आराध्यकी बार-बार अवज्ञा कराती रही।

'आप यमुना-स्नान कर लें! तबतक मैं आपके नैवेद्य प्रस्तुत करनेकी व्यवस्था कर देती हूँ।' यशोदा मेरे यजमान सुमुखकी कन्या हैं। शैशवमें मेरे पिताके गृहमें आनेपर बहुत सेवा की है। मुझसे बोलनेमें इन्हें सङ्कोच बालिका थीं, तब भी नहीं था। मेरी रुचि तथा नियम जानती हैं। मैं अपने हाथों ही अपने आराध्यके लिए नैवेद्य प्रस्तुत करता हूँ और मुझे मध्याह्नमें फल, दूध, दहीपर रहना प्रिय नहीं है। आराध्यको इस समय कच्ची रसोई बनाकर अर्पित करना प्रिय है मुझे।

नन्दराय नवीन वस्त्र लिए खड़े थे। उन्हें अस्वीकार करने जितनी निष्ठुरता मुझसे कभी नहीं हो सकी। मैं उनके साथ यमुना-स्नान करने गया। मध्याह्न-सन्ध्या करके लौटा। पूरा गोष्ठ अत्यन्त स्वच्छ कर दिया गया था। मेरी रसोईके लिए सब सामग्री सजा दी गयी थी। अग्नि प्रज्वलित पाया मैंने।

मैं रन्धन करने लगूँ तो उसपर किसीकी भी दृष्टि नहीं पड़नी चाहिये, यह मेरा नियम ज्ञात होनेसे मुझे गोष्ठमें पहुँचाकर सब चले गये।

मैं भगवान शालिग्रामका पूजन करने लगा पात्र अग्निपर रखकर। पूजन समाप्त करके रन्धनका शेष काम मैंने पूर्ण किया। मैं सदा कदली-पत्रमें नैवेद्य निवेदित करनेवाला अरण्यवासी ; किंतु यहाँ यशोदा स्वर्णपात्र ही सदा रखती हैं। मैंने पात्र सजाया और आराध्यके सम्मुख रखकर शङ्ख-ध्वनि की।

'अनन्तशायी ! अन्तर्यामी ! अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक प्रभु ! मैं अकिञ्चन आपको क्या अर्पित कर सकता हूँ ! यह जो कुछ आपके ही अनुग्रहसे प्रस्तुत कर पाया हूँ, इसे स्वीकार करो !' मैं नेत्र बन्द करके प्रार्थना करने लगा—'मैं आपका चरणाश्रित दरिद्रजन, मेरे इस नैवेद्यको स्वीकार करके मुझे सनाथ कर दो मेरे स्वामी !'

मैं थोड़े क्षण प्रार्थना करता रहा। मध्यमें जलार्पणके लिए मैंने दृष्टि खोली और देखकर चौंक पड़ा। नवघनसुन्दर नन्दनन्दन मेरे पात्रके समीप जमकर बैठा था। वह प्रसन्न-मुख भोजन कर रहा था। मैं अज्ञ क्या पहिचानता उन्हें ! मेरे कण्ठसे निकल गया—'अरे ! तू कहाँसे आ गया यहाँ ?'

हाय ! मेरे स्वामी साक्षात् सनाथ करने मुझे पधारे थे और मैंने उनके भोजनमें भी बाधा दी। वे कितने प्रसन्न थे। कैसे खिले कमलदल लोचनोंसे मेरी ओर देखा था उन्होंने। लगा कि उनकी दृष्टि कह रही हो—'बहुत अच्छे हो तुम ! बड़ा स्वादिष्ट भोजन बनाया है तुमने !' लेकिन उस समय तो महामायाने मुझे अन्धा कर रखा था।

मेरा स्वर यशोदा और नन्दरायने एक साथ सुन लिया। दोनों द्वारसे सटे ही खड़े थे कि मैं भोजन समाप्त करके पुकारूँ तो आकर आचमन करावें। दोनों एक साथ द्वारसे भीतर आये। उन्होंने अपने पुत्रको देखा मेरे परसे पात्रके सम्मुख बैठे भोजन करते।

'तू कहाँसे आ गया यहाँ ?' यशोदाके स्वरमें रोष स्पष्ट था। अपनी मैयाको इस प्रकार डाँटते, अपनी ओर झपटते आते देखकर वे उठे और भागे। नन्दरायके समीपसे दौड़ते वे द्वारसे निकल गये। जूठे मुख, जूठे हाथ मेरे स्वामी भाग गये और मैं अधम उन्हें अतृप्त जाते देखता रहा। इतना भी मुझसे नहीं कहा गया कि अब यह भोजन उच्छिष्ट तो हो ही गया है, बालकको शान्तिसे खा लेने दो।

नन्दराय दोनों हाथ जोड़े, सिर झुकाये, नेत्रोंसे अश्रु बहाते मेरे सम्मुख आकर काँपने लगे। यशोदाने भरे-भरे कण्ठसे कहा—'अबोध बालक है। आप इसका अपराध क्षमा कर दें ! मैं अभी रसोईकी पुनः सामग्री सजा देती हूँ।'

मुझे दया आ गयी। मैं कुछ कहता, इससे पहिले ही यशोदाने स्वच्छता प्रारम्भ कर दी। देवी रोहिणी दूसरे पात्र ले आयीं नवीन और सामग्री भी। स्थान स्वच्छ होने और पुनः अग्नि प्रज्वलित होनेमें केवल कुछ क्षण लगे। मैं दूसरी बार रसोई बनानेमें लग गया। जानता था कि ऐसा नहीं करूँगा तो यशोदा और नन्दरायको बहुत दुःख होगा। मुझे एकाकी छोड़कर वे गोष्ठसे चले गये थे।

रसोई शीघ्र बन गयी। यशोदाने मेरी यह भी नहीं सुनी थी कि मैं कुछ संक्षिप्त भोजन बना लूँ। मुझे सभी पदार्थ पहिलेके समान बनाने पड़े थे। मेरे आराध्य भगवान शालिग्रामको नैवेद्य अर्पण करना था, अतः मुझे यह दूसरी बारका उद्योग, श्रम नहीं प्रतीत हुआ। मुझे लगा कि श्रीनारायणने आज सेवाका अधिक सुअवसर दिया है। यह रन्धन तो मेरी आराधनाका ही अंग था।

मैंने पात्रमें नैवेद्य सजाया। भगवान शालिग्रामके सम्मुख पात्र सादर रखकर जलार्पण किया आचमन करानेके लिए। शङ्ख-ध्वनि की और नेत्र बन्द करके प्रार्थना करने लगा—'सर्वेश ! शिशु तो आपका ही स्वरूप हैं, अतः क्षमा करें ! आपको विलम्ब हो गया ! अब इस जनको कृतार्थ करें यह नैवेद्य स्वीकार करके !'

कुछ क्षण प्रार्थना करके मध्याचमन अर्पित करनेके लिए मुझे नेत्र खोलने ही थे। देखता हूँ कि नन्दनन्दन पहिलेकी भाँति ही जमे बैठे हैं और भोजन कर रहे हैं। इस बार मेरी ओर देखकर हँस पड़े। वह उन शोभा-सिन्धुकी हास्य छटा।

हाय री कर्मठताकी निष्ठुरता ! मेरे मुखसे फिर निकल गया—'तू फिर आ गया ?'

मैं कितना अन्धा था। उन्होंने तो सुप्रसन्न सिर हिलाकर सूचित किया—'हाँ ! मैं फिर आ गया। तुम इतना स्वादिष्ट नैवेद्य बना लेते हो !'

मेरा स्वर सुनकर नन्दराय और यशोदा दोनों लगभग दौड़ते द्वारमें-से आये। यशोदाने लगभग चीखकर कहा—'तू यहाँ फिर पहुँच गया ?'

वे दयाधाम ! वे लीलामय फिर हँसते भागे। फिर जूठे मुख, जूठे कर ही भाग गये ! वह उनकी अलकोंका पीठपर लहराना, वे उनके अरुण, कोमल सुन्दर चरण और किङ्किणीका स्वर—मैं मुग्ध देखता रहा उनकी ओर। देखता रहता; किंतु यशोदा उन्हें पकड़ने दौड़ पड़ी तो मैंने रोका—'यशोदा ! बालकपर रुष्ट नहीं होते। वह तो सहज अबोध है।'

उन सौन्दर्यघन परम सुकुमारको ये व्रजेश्वरी डाँटेगी। पीट भी सकती हैं, यह बात ध्यानमें आते ही मेरा हृदय व्याकुल हो गया। मैं ब्राह्मण ठहरा किसीको भी कष्ट हो, यह कल्पना मुझे बहुत असह्य है और यह सुषमाकी मूर्ति व्रजराजकुमार—इसका श्रीमुख उदास हो, यह तो कोई नितान्त निर्दय भी नहीं सह सकेगा।

'यशोदा, सुनो !' मैंने पुकार लिया। नन्दराय इस बार भूमिपर मस्तक रखे पड़े थे और सिर उठानेका भी साहस नहीं कर पा रहे थे। मेरे पुकारनेसे पुत्रके पीछे न जाकर व्रजकी वे अधिदेवता मेरे समीप आ गयीं। अञ्जलि बाँधे, नेत्रोंसे अश्रु गिराते वे भी बोल नहीं पा रही थीं।

'शिशु निरपराध है। मुझे उसपर कोई रोष नहीं। भगवान नारायण उसे स्वस्थ, सुप्रसन्न, दीर्घायु प्रदान करें !' मैंने आशीर्वाद देकर आश्वासन दिया—'तुमको दुःखी नहीं होना चाहिये। मैं तो तपस्वी हूँ। व्रत-उपवास मेरे लिए स्वाभाविक है। लेकिन तुम्हारे यहाँ आकर उपवास करके नहीं जाऊँगा। अतिथि उपोषित चला जाय, यह दोष तुम्हें नहीं दूँगा। मेरे आराध्य आज दूध-दधि ही आरोगना चाहते हैं तो उनकी इच्छा पूर्ण हो। तुम दधिमें मिलाने योग्य कुछ भी ला दो ! मैं अपने इष्टदेवको नैवेद्य अर्पण कर दूँ।'

'यह अत्यन्त चपल और धृष्ट हो गया है !' यशोदाने मेरे इतना कहनेपर बोलनेका साहस पाया था—'आपको हमारे यहाँ बहुत कष्ट हुआ ! अब कैसे कहूँ कि आप एक बार रन्धनका श्रम और स्वीकार करें; किंतु यदि श्रीचरण इसे स्वीकार कर लेते, हम कृतकृत्य हो जाते !'

अब नन्दरायने मस्तक उठा लिया था। उनके अश्रुवर्षा करते नेत्रोंमें भी यही अनुरोध था। मैं यदि केवल दूध या दधि लेकर यहाँसे

चला जाऊँगा तो इस दम्पतिको यह क्लेश, सम्भव है जीवनभर अशान्त रखे, यह बात मेरे ध्यानमें आ गयी।

'यशोदा ! भूल मेरी है।' मैंने हँसकर कहा--'मैंने अपने आराध्यको इधर वर्षोंसे पायस अर्पित नहीं किया है। उनकी इच्छा आज पायसका नैवेद्य स्वीकार करनेकी होगी, अतः यह सब लीला उन्होंने की है। तुम शीघ्र व्यवस्था कर दो ! मैं केवल पायस बनाऊँगा। उसे शीतल करनेको एक व्यजन भी यहाँ रख दो।'

नन्दराय और यशोदा तो पुलकित हो गये। स्थान स्वच्छ होनेमें और पायस-रन्धनकी प्रस्तुतिमें कुछ पल लगे। व्यजन रखकर दोनों गोष्ठसे चले गये। इस बार देवी रोहिणीको नन्दनन्दनको अपने समीप रखनेको कहकर दोनों गोष्ठके एक-एक द्वारपर खड़े हो गये द्वार रोककर। दोनोंकी सावधानी स्वाभाविक थी। शिशुको यदि यह मेरा भोजन, भोग लगाना क्रीड़ा लगा हो तो वह पुनः आ सकता था।

वह पुनः आया। इस बार उस अज्ञान-ध्वान्त-विध्वन्सीने मुझ अज्ञके नेत्रोंपर पड़े आवरणको उठा देनेका ही निश्चय कर लिया था। मुझपर पूर्ण अनुग्रह करनेका निर्णय उसने किया था आज।

अतिकाल हो गया था। मैंने पायस-रन्धन किया केशर, मेवे मिश्रित उस पीताभ पायसको मैंने बड़ेसे स्वर्णथालमें परसकर शीतल किया व्यजनसे वायु करके और तब तुलसी-दल डालकर भगवान शालि-ग्रामके सम्मुख पात्र रखकर आचमन कराया। शङ्ख-ध्वनि की और नेत्र बन्द करके अपने स्वामीको पुकारने लगा कि वे आकर यह श्रद्धापूत पायस स्वीकार करें।

श्रद्धालुजनोंका स्वभाव है कि शङ्ख-ध्वनि होनेपर उनके नेत्र बन्द हो जाते हैं। अञ्जलि बँध जाती है और मस्तक झुक जाता है श्रीहरिके प्रति। यही हुआ होगा देवी रोहिणी तथा नन्दरायके साथ और इतना अल्प अवसर तो उनके लीलामय परम चपल लालके लिए बहुत पर्याप्त था। इसी अवसरमें वह भाग आया होगा उनके समीपसे मुझे धन्य करने।

मैंने नेत्र खोले तो वे परमसुन्दर मेरे पात्रके समीप बैठे थे। अधर, दक्षिण कर पायससे सुशोभित हो गये थे और पैरोंपर भी कुछ विन्दु पड़े थे। इस बार मेरी ओर दृष्टि उठाये बिना लगे रहे भोग लगानेमें। मैंने तनिक खीझकर ही पुकारा—'यशोदा ? नन्दराय ?'

यशोदाने द्वारपरसे ही डाँटा—'तू फिर क्यों आ गया ? पीछे ही पड़ गया है इन विप्रवरके ?'

इस बार उठने, भागनेका कोई प्रयत्न मेरे प्रभुने नहीं किया। केवल मुख घुमाकर देखा पीछे और बोले—'मैया ! तू इसे मार। यह शङ्ख बजा-कर, आँखें बन्द करके गिड़गिड़ाकर मुझे पुकारता है बार-बार ! यह बुलाता है इतने प्रेमसे कि मुझे आना पड़ता है।'

'मैं बुलाता हूँ ? मैं आह्वान करता हूँ इनका ?' मैंने चौंककर देखा और मेरे नेत्रोंपर पड़ी अविद्याकी यवनिका खिसक गयी। 'भगवती सिन्धु-सुता श्रीवत्स बनकर किसी अन्यके वक्षपर विराजती हैं ? कौस्तुभ किसी औरका भी कण्ठाभरण हुआ है ?'

लगा कि अन्तरमें बैठा अन्तर्यामी मेरी भर्त्सना करने लगा है। यह सहस्र-सहस्र चन्द्र-ज्योत्स्ना-समुज्वल नीलकान्त वपु और सम्मुख होते भी मैं इन्हें पहिचान नहीं पा रहा हूँ ?

आनन्द, अनुतापका ऐसा अद्भुत मिश्रण—मेरी कायाका कण-कण नाचने लगा। श्रीनन्दरायने मुझे बतलाया कि मैं किसी आवेशमें नृत्य करने लगा था उनके पुत्रका उच्छिष्ट पायस खाते और शरीरपर मलते हुए। बहुत देरमें मैं कुछ शान्त हुआ तो उन्होंने मुझे स्नान कराया। किसी प्रकार उनका सन्तोष करके मैं विदा हुआ ; किंतु उनके तनय तो हृदयमें आसीन हो गये हैं—मुझे उन दयासिन्धुने अपना लिया !

अभिनन्द ताऊ

सेवा-सम्मान

मेरे सब भाई सुगठित शरीर हैं। सबसे छोटा तो मल्ल ही है; किंतु मुझे कुछ स्थूल काया मिली है। कोई असुविधा मुझे इसमें नहीं लगती। मेरा तो अनुभव है कि कुछ स्थूलकाय व्यक्तिको कम ही क्रोध आता है। प्रसन्न नहीं रहेगा तो प्रफुल्लकाय होगा ही कैसे। सौभाग्य ऐसा कि मुझे मेरे समान ही मोटी पत्नी मिली। हम दोनोंको ही श्रम कम स्वीकार है। शान्तिपूर्वक रहो, साधु-सन्तोंकी सेवा करो, सर्वेश्वरका स्मरण करो और सुप्रसन्न, सन्तुष्ट रहो, यही मैंने जीवनका सार समझा है।

बड़े भाई तो उपनन्दजी हैं; किंतु पता नहीं क्यों महर्षि शाण्डिल्य मुझे प्रारम्भसे महानन्द कहते हैं। सम्भवतः मेरी कुछ अधिक ही ऊँची और स्थूल कायाकी महानता ही इसका कारण होगी। महर्षि कहने लगे तो सबने यही नाम ही बना लिया। जैसे मेरी पत्नी सुषमाको शरीरके भारीपनके कारण मेरी माताने पीबरी कहना प्रारम्भ किया तो उसका यह नाम ही पड़ गया।

पिताने मुझसे छोटे भाई नन्दको व्रजपति बनाकर हम सबकी सम्मतिका सम्मान ही किया था। बड़े भाई उपनन्दजीकी प्रबन्धमें अभि-रुचि ही नहीं है और मुझसे तो अपने गोष्ठका भी प्रबन्ध नहीं होता। उसे भी दूसरे ही भाई देखते हैं।

हम पति-पत्नी परम सन्तुष्ट थे, यह कहना सत्य नहीं होगा। मुझे तो कोई कामना थी तो यही कि छोटे भाई नन्दको एक कुमार हो जाय— व्रजको एक युवराज मिल जाय; किंतु पत्नीके मनमें सन्तोष आया तब जब उसकी काया पर्याप्त स्थूल हो गयी और हम दोनोंकी आयु सन्तान-प्राप्तिकी सीमा पार कर चुकी।

सृष्टिकर्त्ताका भाग्य-विधान और प्रकृतिके सामान्य नियम, शरीरकी आयु-सीमाका क्या अर्थ रह जाता है जब कोई महापुरुष कुछ करना ही

सोच ले। सन्तका सङ्कल्प सृष्टिके नियमोंमें सदा परिवर्त्तन करनेमें समर्थ है। भगवती पूर्णमासी गोकुल पधारीं कृपा करके और उन अनुग्रहमयीने एक दिन हम पाँचों ही भाइयोंकी पत्नियोंको आशीर्वाद दे दिया गोद भरने-का। मैं तो फिर भी बड़े भाईसे डेढ़ वर्ष छोटा हूँ; बड़े भाई उपनन्दजीके यहाँ भी तुङ्गी भाभीने दो वर्षके भीतर दो पुत्र पाये—ऋषभ और देव-प्रस्थ। मेरा बड़ा पुत्र विशाल ऋषभसे सत्ताइस दिन छोटा है और छोटा तेजस्वी देवप्रस्थसे केवल पाँच दिन पीछे आया।

हम चारों भाईं ही नहीं, पूरा गोकुल–सम्पूर्ण व्रज जिसके लिए उत्सुक था, उन व्रजराजको केवल एक कुमार मिला भगवतीके आशीर्वाद-से। अवश्य ही रोहिणी भाभीके दाऊने हमारे नन्हें व्रजयुवराजके अग्रजका उचित स्थान पूरा कर दिया है।

कहनेभरको हम सब भाइयोंके दो-दो पुत्र हैं भाई नन्दके अतिरिक्त; किंतु सबके हृदयका और सामान्य व्यवहारका भी सत्य यही है कि वधू यशोदा और रोहिणी भाभीने हम चारोंके आठों पुत्र पाये हैं, दाऊके साथ। केवल नन्दनन्दन हमारा है। भाई नन्द और वधू यशोदाने श्यामपर ही स्वत्व नहीं पाया। कन्हाई पर तो सबका स्वत्व है। गोकुलके हमारे ही नहीं, सभीके शिशु नन्दरायके अपने। नन्द-पत्नी सबके लिए व्यस्त बनी रहती हैं।

मेरी पत्नी वैसे भी प्रबन्ध तथा गृह-व्यवस्थामें शिथिल है। वह अपने दोनों पुत्र देवरानीको देकर निश्चिन्त हो गयी है। ये दोनों भी नन्द-भवनमें ही प्रसन्न रहते हैं। नन्दनन्दन विशालके बिना नहीं रह पाता और तेजस्वीको दाऊने अपना स्नेहभाजन बना लिया है।

पत्नीकी बात क्यों कहूँ, मेरी अपनी भी बात तो यही है कि श्याम-को देखे बिना मुझसे रहा नहीं जाता। गोचारण करने मैं केवल कैशोरा-वस्थामें जाता था। अब तो भाई नन्दरायकी गोष्ठवाली बैठक मेरा स्थान बन गयी है। मध्याह्नमें कन्हाई भवनमें जाता है, तब मुझे भोजन करने अपने घर आनेका स्मरण होता है। यह भी कितने दिन कर पाता हूँ ? कभी वधू व्रजेश्वरी, कभी रोहिणी भाभी, कभी नन्दराय आग्रह करते हैं वहीं भोजन कर लेनेका और कभी कान्ह कर पकड़ लेता है—'दाऊ ! मैं तुम्हारे साथ खाऊँगा।'

यह नटखट अब भी जानबूझकर ताऊको दाऊ कहता है। पहिले बोलने लगा तो 'दाऊ' कहकर कितना सिर हिलाता था कि इससे ठीक उच्चारण नहीं हो पा रहा ; किंतु अब इसे 'दाऊ' कहनेमें आनन्द आता है। मुझे दाऊ कहेगा और फिर ताली बजाकर, सिर हिलाकर हँसेगा।

कितना सरल, कितना भोला है यह सुकुमार। कोई पुकारता है— कनूँ ! कान्ह ! कृष्ण ! श्याम ! कन्हाई !—पुकारनेके कितने नाम हैं, कुछ ठिकाना है। इसे तो नटखट ! चञ्चल ! ऊधमी ! कहकर पुकारने-पर भी यह ऐसे ही बोलता है, जैसे वही इसका नाम है। जो पुकारता है, उसके समीप झट दौड़ जाता है।

बड़े भाई कहते हैं—'बच्चेमें कार्य करनेसे शक्ति आती है। उसमें बड़ोंकी आज्ञा-पालनका सद्गुण आना चाहिये !'

बड़े भाई बहुत विद्वान हैं। उनको व्यवहार-नीतिका सभी पण्डित मानते हैं ; किंतु इस सुकुमारको कुछ कहनेका मेरा मन नहीं होता। मुझे स्वयं भी तो शरीरसे श्रम करना कभी अच्छा नहीं लगा। नन्दनन्दन क्या अभी कोई भी काम करने योग्य है ? यह तो खेलनेमें ही बहुत अधिक श्रान्त हो जाता है। मेरा जी करता है कि यह मेरे अङ्कमें बस बैठा रहे ; किंतु इस चञ्चलको बैठे रहना ही नहीं आता।

बड़े भाई प्रायः कहते हैं—'लाल ! तनिक आसन तो दे जा !'

पूजा उन्हें भी इस नन्दरायके गोष्ठमें ही करनी है। भगवान शालि-ग्रामका रत्नपीठ वे प्रतिदिन जानबूझकर थोड़ी दूर छोड़ देते हैं और स्वयं आसनपर बैठकर तब आदेश देते हैं। श्याम दौड़ जाता है। बैठकर दोनों करोंसे पीठको उठाकर मस्तकपर रखता है और तब उठता है किसी प्रकार। दोनों हाथोंसे पीठको पकड़े अपने बड़े ताऊके समीप आता है। कितना अरुण हो जाता है इसका मुख पीठके भारसे। कमल-मुखपर स्वेद-कणिकाएँ झलकने लगती हैं।

बड़े भाईकी ही नहीं, हम सबकी दृष्टि तो इसीके मुखपर लगी रहती है। बड़े भाई हाथ बढ़ाकर पीठ ले लेना चाहते हैं ; किंतु यह कहाँ मानता है। तनिक पीछे हट जाता है—'मैं रखूँगा।' नीचे बैठकर पीठको उतारकर अपने हाथों ताऊके सम्मुख रखकर कितना प्रसन्न होता है। यह

तो सेवा, बड़ोंका सम्मान सम्भवतः माताके उदरसे ही सीखकर आया है। इसे कहाँ आवश्यकता है इस प्रशिक्षणकी।

उस दिन महर्षि शाण्डिल्य गोष्ठमें पधारे। महर्षि गोष्ठमें कभी पादुका पहिने नहीं आते। गो माताका सम्मान करते हैं; किंतु गोष्ठ तो कितना भी स्वच्छ किया जाय, गोमय, गोमूत्रसे क्लिन्न ही रहता है। महर्षिके चरणोंके सम्मुख लाकर उनकी पादुकाएँ हममें-से कोई सदा रख देता है, जिससे उठकर जाते समय वे वहीं उन्हें पहिन सकें। उस दिन नन्दरायने महर्षिके आसन ग्रहण कर लेनेपर कहा—'नीलमणि, बेटा! महर्षिकी पादुकाएँ तो द्वारसे उठा लाओ!'

श्यामसुन्दरने महर्षिके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम कर लिया था। वह दौड़ा—दौड़े तो कई बालक; किंतु वे परस्पर झगड़ न पड़ें, इसलिए सबको छोटे भाई नन्दनने रोक लिया था। महर्षिकी एक पादुका उठाकर मस्तकपर रखकर दोनों हाथों पकड़े कितना प्रसन्न मुख आ रहा था। पता नहीं क्यों, महर्षिके नेत्र भर आये! उन्हें इस परम सुकुमारका इतना श्रम सहन नहीं हुआ होगा। ऋषि-मुनियोंके मनकी बात हम गोप कैसे समझ सकते हैं। महर्षिने हाथ जोड़ लिये, सिर झुकाकर अश्रु बहाते 'नमो ब्रह्मण्य देवाय···' कहकर अपने आराध्यकी स्तुति करने लगे उसी समय।

कन्हाई एक पादुका रखकर फिर दौड़ गया दूसरी लेने। अपनी घुँघराली काली अलकोंपर दोनों करोंसे पकड़कर पादुका रखे कितना सुन्दर लग रहा था यह।

अपने नन्हें करोंसे विप्रोंके पाद-प्रक्षालन करता है। यह इसकी प्रिय क्रीड़ा है। कोई ऋषि-मुनि, अतिथि नन्द गोष्ठमें आ जाय तो श्याम कहीं भी खेलता हो, दौड़ आवेगा सब सखाओंके साथ। इसके कारण सब बालकोंने विप्रोंके पदोंपर मस्तक रखकर प्रणाम करना और उनके पाद-प्रक्षालन करना सीख लिया है।

अब उसी दिनसे महर्षि अथवा कोई ऋषि-मुनि आते हैं तो कन्हाई गोष्ठ-द्वारपर ही उनके पदोंपर मस्तक रखता है और फिर पादुका पकड़ता है कि वह उसे उतार दें तो यह पहुँचा देगा। महर्षि, मुनिगण कहते हैं—'वत्स! हम इसे पहिने ही चलेंगे; किंतु यह अभी इतना कहाँ समझता

है। बालककी तो धुन है। पादुका गोष्ठ-द्वारसे आसन तक पहुँचानेकी अब इसे धुन है। इसमें सखाओंको तभी अवसर मिलता है, जब अनेक ब्राह्मण साथ आवें।

केवल महर्षिकी, ब्राह्मणोंकी या बड़े ताऊकी सेवा तक ही बात नहीं है। अब इसे सबकी ही सेवाकी धुन चढ़ी ही रहती है। वैसे किसकी क्या सेवा कब करनी है, यह शिशुके समझकी बात तो नहीं है। इसे जो सेवा जिसकी जब सूझ जाय—यह सेवा करनेका उत्साही कितना है, यह देखकर मेरा मानस विभोर होता है। हमारा यह युवराज—इतनी सेवा, शीलता, बड़ोंका सम्मान इस शैशवमें ?

'बाबा ! तुम पूजा करोगे ? मैं तुलसी-दल लाऊँ ?' बाबाकी पूजा-के लिए कभी इसे तुलसी-दल लाना है, कभी दूर्वा-दल। देखता हूँ कि कभी मैयाके लिए, किसी माँ, ताई, चाची या बुआके लिए वेणीमें लगानेको पुष्प-चयन करनेमें लगा है। इसे जब जिसका जो काम सूझ जाय, वही करने पहुँच जाता है।

'ताऊ ! तुम स्नान करोगे ? तुम्हारा वस्त्र लाऊँ ?' ताऊ दिनभर स्नान नहीं कर सकते ; किंतु नन्हें कन्हाईको क्या पता कि ताऊके स्नान-का समय कब होता है। इसे तो वस्त्र ले आना है ताऊके घरसे।

'चाचा ! तुम्हारा लकुट लाऊँ ? तुम वनमें जा रहे हो ?' इतना जानता है कि चाचा वनमें जाते हैं तो लकुट ले जाते हैं। अब इससे वह भारी लकुट उठेगा नन्दनका। इसके साथ जाना चाहिये उन्हें ; अन्यथा बालक लकुट उठानेके प्रयत्नमें उसे अपने ऊपर ही कहीं गिरा लेगा।

इसे किसीको दोहनी देनी रहती है, किसीको रज्जु या जल। किसी-को बुलाना होता है। किसीका सन्देश देना होता है किसीको। गोपोंके-गोपियोंके पता नहीं कितने काम हैं जो इसीके बिना अटके रहते हैं। मेरे श्मश्रु में ही तृण उलझे रहते हैं और यह अङ्कमें बैठकर उन्हें निकाले नहीं तो वे क्या निकलेंगे ? उन्हें मैं क्या यों ही निकलनेको उलझाता है।



सर्वप्रिय

मुझसे बहुत बड़ी हैं यशोदा जीजी। वे व्रजेश्वरी हैं, इस नाते तो संसारमें सबसे बड़ी लगती हैं मुझे ; किंतु मुझसे तो सब प्रकार बड़ी हैं। मैं उनके पिताके व्रजकी सामान्य गोपकी कन्या हूँ। वयमें इतनी छोटी हूँ कि उनके नीलमणिसे कुल तेरह वर्ष बड़ी हूँ। उनकी पुत्रीके समान ; किंतु अपने व्रजपतिकी वे पुत्री हैं, अतः उन्हें प्रारम्भसे ही जीजी कहती हूँ। मुझपर उनका इतना वात्सल्य है, मानो मैं उनकी पुत्री ही हूँ।

नीलमणि मुझे माँ कहता है। मातृस्वसा—मा-सी मौसी नहीं, माँ कहता है मुझे और जबसे पैरों चलने लगा है, एक बार मेरे आँगनमें अवश्य आ जाता है प्रतिदिन।

घुटनों सरकता था तब ; और तब भी सरकता हुआ आकर मेरे अङ्कमें बैठ जाता था। गोकुलमें कोई नहीं है जो इसके जन्मसे ही जीजीके आँगनमें जमी न रहती हो दिनभर। इसे देखे बिना तो चैन ही नहीं पड़ता। गृहके कार्य किसी प्रकार निबटाओ जल्दी-जल्दी और जीजीके समीप भाग जाओ। जब तक कन्हाई चलकर मेरे घर नहीं आने लगा, मेरी तो यही दिनचर्या रही।

क्या करूँ, मेरे इस घरमें कोई जेठानी, देवरानी नहीं और सासजी मेरे ससुराल आनेके पश्चात् शीघ्र परलोक पधारीं। अकेली हो गयी अल्प-वयमें ही अपने इस घरमें। गोपका गृह है। गायोंकी सेवा, गोरसकी व्यवस्था, स्वामीके लिए भोजन बनाना सभी कुछ करना पड़ता है। मन जीजीके अङ्कधनमें भले लगा रहे तन तो घरके आवश्यक कार्योंमें लगाये ही रहना पड़ता है।

कौन जाने नन्दनन्दन मेरी व्यथाको कैसे जान गया है। मैं जब बहुत व्याकुल होती हूँ, वह कहीं न कहींसे रुनझुन नूपुर बजाते, किङ्किणीका कल नाद सुनाते, हँसता, किलकता आ ही जाता है।

तब इसने बोलना प्रारम्भ ही किया था। एक-एक, दो-दो अक्षर अटकता, तुतलाता बोलता था। मैं गयी और जीजीके समीप बैठ गयी। यह आँगनमें सखाओंके मध्य बैठा खेल रहा था। मुझे देखते ही घुटनोंके सहारे सरकता आया और मेरी गोदमें आकर मेरे मुखकी ओर मुख उठाकर, अपना नन्हा कर मेरी ठुड्डीपर रखकर बोला—'माँ ! 'मेरा तो रोम-रोम अमृतमें भीग गया। मैंने इसे हृदयसे लगा लिया। कठिनाईसे मुखसे 'लाल !' निकला भी या नहीं, कह नहीं सकती।

'माँ ! दू ?' यह जन्मसे चपल है। नटखट है। कब क्या करेगा, कोई नहीं जानता। इसने फिर मेरे मुखकी ओर मुख किया और मेरे कपोलपर कर रखकर कहा। जीजी हँस पड़ीं। मैं लज्जासे क्या कहूँ। अभी भी मैं बालिका ही तो हूँ ; किंतु इसने तो मेरे अञ्चलमें मुख छिपा लिया था इतनी देरमें और अपने करोंसे कञ्चुकी हटाकर वक्षमें मुख लगा लिया था।

जीजी हँस रही थीं और मुझे अपने शरीरकी ही सुधि तब आयी जब इसने अपना दूध-भरा मुख अञ्चलसे निकालकर मेरी ओर देखा। मुझे तो लगा कि मैं सम्पूर्ण दूधसे ही बनी हूँ। मैंने जीजीसे कहा—'जीजी ! आपके लालने मुझे अपनी धाय बना लिया है। अब इतना स्वत्व इसपर मेरा आपको मानना पड़ेगा।'

जीजीने कहा था—'धाय क्यों ? यह तुझे माँ कहता है मल्लिका ! यह तो तेरा है ही।'

ये जीजी भी मुझे मल्लिका कहने लगी हैं। मेरे पितृगृहके नामको यहाँ कोई नहीं लेता। मैं यहाँ आई तो मेरी श्वेत अङ्गकान्तिको देखकर पहिले ही दिन व्रजेश्वरके बड़े भाईकी पत्नीने कहा—'यह तो मल्लिका है। परमात्मा इसके सद्गुणोंके सौरभसे पूरे गोकुलको पूर्ण करें !'

वे पूज्या हैं, पतिव्रता हैं, परम पुनीता हैं। उनका आशीर्वाद गोकुलको कितना मिला, पता नहीं ; किंतु मुझे तो मिल गया। मेरा नाम तबसे मल्लिका हो गया और गोकुलका युवराज मुझे माँ कहता है। वह पुत्र होनेसे पूर्व ही मुझे पुत्रवती बना चुका। वह मेरा पयपान करने लगा—अब मुझे और पुत्र क्यों चाहिये ?

मैं अपने घरमें एकाकिनी हूँ। कुछ क्षण विलम्बसे जीजीके समीप पहुँचती थी तो वे मुझे उलाहना देती थीं—'तू इतनी देर क्या करती रही ?' उनको क्या उत्तर दूँ ! मैं तो उलझ जाती थी उनके—अरे, अपने कन्हाईसे। यह खीझता था और अङ्कमें आकर मेरी नाक, कपोल नोचता था।

कितनी उत्कण्ठा थी कि यह मेरे गृहमें आता। मैं इसे अपने आँगन-में नवनीत खिला पाती और यह चलने लगा तो सबसे पहिले मेरे यहाँ पहुँचा। उस दिनका उल्लास क्या वर्णन कर पाऊँगी ; किंतु अब तो यह प्रतिदिन आने लगा है। मैं व्रजपतिके सदन प्रातः इसीलिए नहीं जाती कि यह आवेगा मेरे गृहमें। यह आवे और द्वार बन्द मिले, ऐसा तो नहीं होना चाहिए।

यह सुन्दर श्याम बहुत भोला है। शिशु ही तो है अभी। सभी चाहती हैं कि यह उनके समीप ही रहे अधिक और इसे उलझा लेती हैं। उस दिन माधवी कह रही थी—'मोहन ! तू नाचता बहुत सुन्दर है। तनिक नाच तो सही।'

यह ऐसे ही क्यों नाचे ; किंतु माधवीने कहा—'तू नाच दिखा दे तो तुझे माखन दूँगी।'

माधवीने मुझसे पीछे बतलाया—'यह नीलमणि इतना भोला है कि इसे यह पता ही नहीं कि इसे क्या चाहिये। कुछ देनेको कह दो तो नाचने लगेगा। गोपियाँ तो इसे दधि, छाछ, मयूरपिच्छ ही नहीं, दूर्वातक देनेको कहकर नचा लेती हैं।'

जीजीके घरमें नवनीत, दधिका क्या अभाव है और यह कन्हाई क्या छाछको मुख भी लगावेगा ; किंतु कुछ देनेको कोई कह रहा है—बस, कुछ मिलेगा, इतना ही समझता है और नाचने लगता है। इसे कह दो—'कृष्णाकी दही या अरुणाकी छाछ दूँगी !' अथवा—'आमलकीके नीचे उगी दूर्वादल दूँगी।' इसे लगता है कि कोई बहुत बड़ी वस्तु मिल रही है।

माधवी चुटकी बजाने लगी और कनूँ अपने नन्हें कर फेंकता 'ता थेई, ता थेई थेई, तत्ता थेई' नृत्य करने लगा। इतना तालबद्ध नृत्य जन्मसे जानता है यह। मैं अनजानमें ही ताली बजाने लगी थी। इसके भालपर अलकें लहरा रही थीं, किङ्किणीके साथ नूपुरकी रुनझुन कर फेंकता, नेत्र

चपल-चपल नचाता यह नाच रहा था। यह अपूर्व शोभा देखनेके लिए किसके नेत्र लालायित नहीं होंगे।

'ला दे !' लाल-लाल हथेली फैला दी इसने और मुझे भी हँसी आ गयी जब माधवीने तनिक-सा नवनीत इसकी हथेलीपर एक अँगुलीसे उठाकर गिरा दिया। इसकी फैली हथेली बिना नाचे भी माखनसे भर देनेको मन मचल उठे और माँगनेपर नचाकर भी इतना-सा नवनीत ! मैं माधवीको कुछ कह बैठनेवाली थी, भले वह मेरी जेठानी लगती है; किंतु उसने नेत्रके संकेतसे मुझे हँसकर मना किया कि मैं बोलूँ नहीं।

'इतना-सा ? मैं नहीं लेता !' मोहन झल्लाया।

'यह मेरी स्वर्णपीताका नवनीत है।' माधवीने मुख बनाकर कहा— 'तू नहीं लेगा तो मत ले। तनिक-सा नाचा तो नवनीत कितना मिलेगा ? और नाच तो और दूँगी।'

माधवी कितनी धृष्ट है। वह नवनीत-विन्दु भी इसकी हथेलीसे उठा लेनेको हाथ बढ़ा चुकी थी। झटसे इसने चाट लिया वह माखन और माधवीसे उलझने लगा—'और दे !'

माधवी कहती है—'दो बूँद दही या छाछ इसकी हथेलीपर गोपियाँ गिरा देती हैं। उन्हें भी ऐसे ही चाट लेता है। दूर्वादल या मयूरपिच्छ मिलेगा तो सखाओंको, मैया तकको दिखाने दौड़ा जायगा। कम दिये बिना झगड़ेगा तो नहीं। तनिक बड़ा नवनीत-खण्ड, पूरी हथेली दही या छाछ तो इसे सन्तुष्ट कर देगी। इसके खीझने, झगड़नेमें कितना रस—कितना आनन्द है!'

यह हाथ खींचता है या वस्त्र नोचने लगता है खीझकर। इससे अधिक करे भी क्या। गोपियाँ खिझाती हैं और नवनीत, दही खिझा-खिझाकर खिलाती हैं।

वृद्धाएँ कहती हैं कि इस नन्दलालको किसीका आदेश टालना नहीं आता। प्रायः यह सबके काम कर देता है। किसीको बुलाओ तो हाथ पकड़कर उठा लावेगा। बस, ठहरता नहीं एक स्थानपर। आया और दो पल रुककर भागा।

किसीका वस्त्र सिरसे खिसका है तो वह यह ठीक करे तभी हो। किसीकी उलझी वेणी या माला सुलझावेगा। किसीको व्यजन या दोहनी चाहिये। माधवी कहती थी—'काम सबके कर देता है; किंतु अँगूठा दिखा देगा पहिले। मटकेगा, नेत्र नचावेगा, अस्वीकार करके ताली बजाकर हँसेगा। भली प्रकार मनुहार करा लेगा तब कहीं किसीका काम करेगा।'

सब तो ऐसा ही कहती हैं। सबके सब काम करता है। और सबके घर पहुँचा रहता है। मेरे मनमें भी आ गयी कि इसे कोई काम बताकर देखना है कि कैसे करता है। कैसे मनुहार कराता है। क्या माँगता है और न देनेपर खीझता कितना है।

मैं गोष्ठमें गोबर उठानेमें लगी थी। सब गोबर समेट लिया था मैंने। टोकरी भरी और आ गया। मैंने कहा—'नीलमणि! मेरी टोकरी तो उठवा दे!'

'तू अपने आप उठा! मैं क्यों उठवा दूँ? मैं नहीं उठवाता।' यह मटकने लगा, अँगूठा दिखाने लगा। ताली बजाकर हँसने लगा—'उठा अपने आप!'

कितना भोला है! यह समझता था कि मैं अकेली तो टोकरी उठा ही नहीं सकती। यह सुकुमार टोकरी उठवाने योग्य है? इसके नन्हे हाथ मेरी कटि तक भी तो नहीं पहुँचते। लेकिन यह कैसा मटकता है! कितना प्रसन्न हँसता है। मैंने मनुहार की—'उठवा दे लाल! जितनी टोकरी उठवायेगा, उतने लौंदे माखन दूँगी।'

'उतने लौंदे माखन?' सिर झुकाकर सोचने लगा। वहाँ और कोई नहीं था, इससे समझता होगा कि मैं किसीसे सहायता नहीं पा सकती।

'तूने कितनी टोकरी उठवायीं, कैसे पता लगेगा!' गम्भीर होकर पूछा इसने। इतना समझता है कि स्वयं गिन नहीं सकता और मैं दूसरी गोपियाँके समान इसे ठग ले सकती हूँ।

'मैं गिनती जाऊँगी।' मैं और क्या कहती.

'तू बड़ी सच्ची है!' मटकने लग गया।

'मैं इस भित्तिपर एक टोकरी उठवायेगा तो गोबरकी एक टिक्की लगा दूँगी।' मैंने समझाया—'पीछे एक-एक टिक्की गिनकर नवनीत दूँगी।'

'तू टिक्कियाँ ठीक नहीं गिने तो ? क्या पता कम टिक्की लगा देगी !' फिर इसने आपत्ति की।

'अच्छा, मैं तेरे कपोलपर टिक्की लगाऊँगी।' मैंने हँसकर कहा। मुझे अपनी ही यह योजना बहुत विचित्र लगी—'एक टोकरी उठवायेगा तो एक टिक्की लगा दूँगी। पीछे एक नवनीत खण्ड देकर एक टिक्की मिटाती जाऊँगी।'

'तू टोकरी उठवा और मुझे नवनीत दे !' बहुत सरल ढङ्ग सोचा इसने।

'मेरे हाथ देख !' मैंने दोनों हाथ दिखाये—'मैं गोबर भरूँगी इनसे। तू गोबर लगा नवनीत खायेगा ?'

'तू खा गोबर लगा नवनीत !' झल्लाया यह।

'लाल ! इसीसे कहती हूँ कि टिक्की लगवाले। टोकरी उठवाकर पीछे हाथ धोकर मैं नवनीत दूँगी।'

'अच्छा !' इस बार इसने स्वीकार कर लिया। मैं बैठकर टोकरी भरती रही। यह मुझसे सटकर खड़ा होकर टोकरीको हाथ लगाता था। टोकरी तो मुझे उठानी ही थी। इसके कोमल करोंपर तनिक भी भार न पड़े, इसके लिए मैं सावधान थी। टोकरी उठाकर अनामिकासे एक नन्हीं बिन्दी मैं गोबरकी इसके कपोल अथवा भालपर लगा देती थी।

इसके भाल-कपोलपर बढ़ती जा रही थीं मेरी लगायी गोबरकी बिन्दियाँ। इसकी वह शोभा—मैं टोकरी कम भरती थी। भरनेमें देर लगाती थी। यह समीप रहेगा तब तक जब तक मैं सब गोबर न उठा लूँ।

'तू आलसी है ! भागकर जा !' यह हँसता था। कूदता, किलकता था और मैं इसके मुखपर गोबरकी बिन्दियाँ देख-देखकर हँस रही थी। मुझे इसकी मनुहार करके इसे रोके रहना था। विधाताने क्यों गोबरकी राशि अनन्त नहीं बनायी ? यह ऐसे ही टोकरी उठवाता रहता और मैं पूरे जीवन उठाती रहती। मुझे लगा कि गोबर बहुत शीघ्र समाप्त हो गया।

मैंने हाथ भी नहीं धोये थे कि यह माखनके लिए मचलने लगा। एक टोकरी उठवानेके बदले इसके भार जितना माखन भी दे दूँ तो कम

है ; किंतु बिन्दियाँ बहुत हैं इसके भाल-कपोलोंपर। पूरा मुख और भाल मेरी लगायी गोबरकी बिन्दियोंसे भर गया है। यह सुकुमार बहुत कम नवनीत पचा सकता है, यह सोचना था मुझे।

'इतनी बड़ी टोकरी उठवायी और यह एक बूँद माखन ?' दोनों हाथ फैलाकर टोकरीका आकार बताया इसने और अपनी हथेलीपर पड़े माखनको देखकर झल्लाया। सचमुच एक बूँद जितना ही माखन दिया था मैंने।

'टोकरी तो गोबरसे भरी थी।' मैंने हँसकर कहा—'तू ले तो उतना गोबर दे दूँगी। नवनीत तो इतना ही मिलेगा।'

बहुत खीझा। बहुत झगड़ता रहा और मैं मनमें हँसती रही। एक बिंदी मिटानेके बदले एक बूँद माखन भी मैं नहीं दे सकती थी। इससे इतना भी तो नहीं पचेगा। मैंने एक बूँद माखन देकर कितनी बिन्दियाँ मिटा दीं, यह भोला नीलसुन्दर इसे कैसे जान सकता था।

यह चपल तो खीझता, माखन खाता रहा और अन्तमें भाग गया ; किंतु मुझे रात्रिभर नींद नहीं आयी। मुझे बहुत दुःख था कि मैंने नीलमणि-को बहुत अधिक खिझा दिया है। अब वह कदाचित् मेरे यहाँ न आवे।

सोच लिया था कि आज आवेगा तो नवनीत भरा पात्र सम्मुख धर दूँगी आते ही—'लाल ! तेरे मनमें आवे उतना खाले। प्रतिदिन आ जाया कर और जितना जी चाहे माखन खा लिया कर !'

स्वामी सोकर देरसे उठते हैं। ब्राह्ममुहूर्त हो जानेसे पहिले भी तो उठ सकते हैं। उठकर उन्हें अपनी नित्य क्रियामें भी अधिक ही समय लगता है। गायें दुहते हैं और तब कहीं कलेऊ लेकर गोचारणके लिए गौओंको खोलते हैं। मेरा हृदय छटपटाता है—इसी समय नीलमणि आ जाय तो ? आज तो लगा कि स्वामीको वनमें जानेमें बहुत अधिक विलम्ब हुआ। वे रहते हैं तब तक दधि-मन्थनका मुझे कहाँ अवकाश मिलता है। उनके उठनेसे पूर्व मैं केवल गृह स्वच्छ कर पाती हूँ। फिर उनके स्नान, गोदोहन सभीमें सहायता करनी पड़ती है।

स्वामीको कलेऊ देकर मैं आज दधि-मन्थन करने द्वारके सम्मुख ही खड़ी हुई थी। कन्हाई गृहके सम्मुखसे भी निकले तो मैं उसे पुकार लूँगी। इतना तो नहीं रूठा होगा कि पुकारनेपर भी न आवे।

मुझे बहुत निराशा हुई—कितना दुःख हुआ, कैसे कहूँ। कन्हाई नहीं आया। दिन चढ़ आया और वह नहीं आया। प्रतिदिन इससे बहुत पहिले आ जाता था। कल मैंने इतना खिझाया है, व्रजराजका कुमार है—शिशु हुआ तो क्या। मुझ सामान्य गोपीका इतना उलझना कैसे सहेगा। अब वह नहीं आवेगा।

गोष्ठ भी स्वच्छ करना है, यह मुझे कहाँस्मरण था। मैं तो दधि-पात्रमें ऊपर माखन तैर आया तबसे पात्र लिए पथपर नेत्र लगाये बैठी थी। माखन मैं पात्रसे निकाल लेती तो उतना कोमल नहीं रह जाता; किंतु श्याम नहीं आया।

जो नवनीत नीलमणि खाने नहीं आ रहा है, उसे बन्दर खाय, बिल्ली खाय, श्वान खाय—कोई खाय, उसका मुझे करना क्या था। मैंने घट उठाया और वैसे ही खुला द्वार छोड़कर यमुना चली गयी। मनमें तो आता था कि कालिन्दीमें प्रवेश करके शरीर ही छोड़ दूँ; किंतु कन्हाईको एक दृष्टि देखनेकी लालसाने यह नहीं करने दिया। वह नहीं आता मेरे घर तो मैं जीजीके यहाँ जाकर तो उसे देख सकती हूँ।

मैं स्नान करके, घट भरकर लौटी। बहुत भरा-भरा मन था। 'पता नहीं अब कभी नीलमणि मेरे घर आवेगा भी या नहीं।' इसी चिन्तामें चली आ रही थी। दूरसे अपने द्वारपर दृष्टि गयी और मैं ठिठककर खड़ी हो गयी। मुझे सृष्टिकर्त्ता इससे बड़ा कोई वरदान नहीं दे सकता था। श्याम मेरे घर आ गया था।

वह द्वारकी ओर पीठ करके दधि-मन्थन-पात्रके समीप दोनों पैर फैलाये बैठा था। पीठपर घुँघराली अलकें फैली थीं। एक पैर मोड़कर घुटनोंके बल एक हाथसे पात्र पकड़कर उठा और पात्रमें उझककर दाहिने करसे तनिक-सा नवनीत निकाल कर मुखमें डाला इसने।

'तू यहाँ कैसे आ गया?' मैं मन्द-मन्द पदोंसे चलती समीप आ गयी। पास पहुँचकर मैंने स्वर तनिक कड़ा किया।

'एक बछड़ा भाग आया है!' बिना कुछ सोचे बोल पड़ा। मेरी ओर मुख तक घुमाकर इसने देखा नहीं। जैसे अब बाबाके बछड़ोंकी समस्त सम्हाल इसीको मिल गयी है और इसका बछड़ा इस मटकेमें ही कहीं है। हँसीको रोकना और जल भरे घटको सम्हाले रहना मेरे लिए कठिन हो गया।

'तू मटकेमें क्यों उझका है ?' मैंने पूछा—'तेरा बछड़ा क्या इसमें कूदा है ?'

'ठहर ! इसमें चींटी पड़ी है।' अब अपना दाहिना हाथ मेरी ओर हिलाकर बोला।

'लेकिन तेरे मुखमें, कपोलपर माखन क्यों लगा है ?' मैं घूमकर सामने आ गयी।

'खाज चलती थी और खुझानेको तू तो थी नहीं', अब सिर उठाया इसने। विशाल दृगोंमें जैसे उलाहना भरा हो—'तू इतनी बड़ी तो है, अपने आप कुछ क्यों नहीं सोच लेती ? मुझसे ही पूछती चली जा रही है। तेरे मटकेमें मैं उझका हूँ तो इसमें गाय-बैल, बछड़ा-बछड़ी न सही, चींटी-चींटा कुछ तो होगा।

मैं खुलकर हँस पड़ी और फिर पछताने लगी। मुझे कुछ देर तो मार्गमें खड़े रहना था। कितना तनिक-तनिक-सा माखन मुखमें डाल रहा था यह मोहन और मेरे हँसते ही सने उजले अधर, सने हाथ भाग गया। मैं पुकारती रह गयी और भाग गया चपल।

× × ×

कल कई भूलें हो गयी थीं मुझसे। मटकेमें-से माखन निकालनेमें कन्हाईको कठिनाई हो रही थी। आज मैंने माखन निकालकर रजतपात्रमें मटकेके समीप ही रख दिया और छिपकर बैठ गयी। देखना था कि आज क्या करता है नीलमणि !

आज आया। द्वार तो खुला ही था, भीतर चला आया। पात्रमें माखनका लोंदा देखकर प्रसन्न हुआ। ताली बजाते-बजाते रुका और घरमें इधर-उधर देखने लगा। मैं और दुबक गयी। इसे लगा होगा कि मैं कलकी भाँति यमुना जल लेने गयी हूँ। माखनके पात्रके समीप पैर आधे मोड़कर बैठ गया द्वारकी ओर मुख करके। इतना चतुर हो गया है कि मैं बाहरसे आऊँ तो देखनेकी सावधानी रख सके।

तर्जनी अगुष्ठसे जितना उठ पाता है, उतना तनिक-सा माखन उठाता है और मुखमें डालता है। इसके माखन-सने लाल अधर ! कुल पाँच-सात बार मुखमें माखन देकर यह रुका क्यों ?

'तू कब आ गया ? ले माखन खा !' यह तो किसीसे बातें करने लगा है। कोई तो नहीं है वहाँ। अच्छा, स्तम्भमें लगे मणि-दर्पणमें पड़ते अपने प्रतिबिम्बसे ही बातें कर रहा है—'तू ले तो सही मैं तुझे और दूँगा। रूठ मत ! तू सब लेगा तो सब खिला दूँगा तुझे। बहुत मीठा माखन है !'

इसे लगता होगा कि इसका सखा तोक आकर इसके समीप बैठ गया है। तोक है भी तो इसके इतना सदृश कि भ्रम तो तोककी माता अतुला जीजीको भी हो जाता है। यह अपने उस छोटे भाईपर प्राण देता है अभीसे। अब तोकको खिलाये बिना तो यह खानेसे रहा।

'तू खा ! खा ले तू !' कितना आग्रह है इसके स्वरोंमें। माखन मणि स्तम्भसे लगा रहा है—'मैं अब तुझे लिए बिना कहीं नहीं जाऊँगा ! तू रूठ मत ! माखन खा ले !'

मुझे हँसी आ गयी इसके भोलेपनपर और इसका भोलापन तो सीमातीत है। मैं हँसकर ओटसे निकली तो हाथमें माखन लिए ही उठकर मेरे समीप आ गया। कमललोचन भर आये थे। चन्द्रमुख उदास हो गया था। मुझसे कहने लगा—'तोक ! तोक रूठ गया है। तू मना दे उसे ! चल !'

मैं अपना हास्य भूल गयी इसके भरे-भरे नेत्र देखकर। मैंने इसके कपोल सहलाकर पुचकारकर कहा—'तोक कहाँ है लाल ?'

अब मुड़कर इसने मटकेके पास देखा। वहाँ तोक हो तो दीखे। कितना मञ्जु हो आया था कन्हाईका मुख संकुचित होकर। लज्जित हो गया मेरा लाल और फिर सहसा भाग खड़ा हुआ। मैं पुकारती रह गयी—'अरे आ ! माखन तो खा जा ! मैं तोकको भी बुला लाती हूँ।'

अब यह कहाँ मेरी सुनने वाला था। आज भी भूल मेरी ही थी। माखनका पात्र मुझे मणि स्तम्भके समीप तो नहीं रखना था। अभी नीलमणि शरीर और प्रतिबिम्बका भेद कहाँ समझ पाता है। वह किसी अन्यकी उपस्थिति समझकर प्रारम्भमें ही भाग जा सकता था, डर सकता था। आज भी वह अत्यल्प नवनीत खाकर ही भाग गया।

वह तो भाग गया ; किंतु मैं कहाँ उसके पीछे भाग सकती हूँ। इस ग्रामकी वधू न होती तो तभी भाग निकलती। अब तो जीजीके समीप जाकर ही उसका सुन्दर मुख देखना है।

कर्णवेध

व्रजको वैद्यकी आवश्यकता नहीं होती। प्रकृतिके अङ्कमें उन्मुक्त क्रीड़ा करने वाली जातियाँ प्रायः कृत्रिम जीवनकी विकृतियोंसे अपरिचित होती हैं। वैद्यकी आवश्यकता सबसे अधिक विलासी-जीवनको होती है। हम स्वयं इसके प्रमाण हैं। सुधा-सेवी सुरोंका भी काम हमारे बिना चलता नहीं है।

गोप उन्मुक्त वनोंमें विचरण करने वाली जाति है। गो-सेवकोंको वैद्यसे प्रयोजन ? अमृतको भी अनादरित करनेवाला गोरस है उनके समीप और कोई रोग कभी आ ही जाय तो गोमूत्रके सम्मुख टिकता है ? समस्त चर्मरोगोंके अधिदेवता गोबरकी रगड़से काँपते हैं। गोरज जिस क्षेत्रपर उड़ती है, ग्रह, भूत-प्रेत, यक्ष सब तो वहाँसे दूर रहते हैं। अतः कोई व्रजमें वैद्य क्यों बसाये ?

जहाँ तक गोकुलकी बात है—यह तो मर्त्य धरा नहीं है। यहाँके पशु-पक्षियोंकी चिन्मय काया, क्या आश्चर्य कि किसीको स्मरण ही नहीं आता यहाँ कि मनुष्योंका एक वर्ग चिकित्सक भी होता है और उसकी सभीको कभी न कभी आवश्यकता पड़ा करती है।

हम निराश ही थे। सर्वेश्वरेश्वर परम पुरुष पधारे धरापर और हमें उनकी सेवाका कोई सौभाग्य नहीं मिलेगा। उनके स्वजनों, परिकरों-की सेवा भी सुलभ नहीं होगी।

सुराधम—हमें कोई देवता नहीं कहता ; क्योंकि सबका हमसे प्रयोजन है ; किंतु सुरेन्द्रने तो हमें सोम-पानका अनधिकारी ही बना रखा था। महर्षि च्यवनके सम्मुख जब बस नहीं चला तब हमारा यह अधिकार स्वीकार किया उन्होंने। सभी सुर अपनेको हमसे श्रेष्ठ मानते हैं। श्रेष्ठ तो वे हैं ; क्योंकि उनमें सबके लिए धरापर पधारे श्रीहरिकी सेवाका अवकाश है ; किंतु हमारे लिए तो यह अवसर नहीं है।

जो पतित-पावन, अशरण-शरण, अनाथ-नाथ हैं, वही तो निरुपायके आधार हैं। उन सर्वज्ञ, सकलेश्वरको हमारा मनोमन्थन सहन नहीं हुआ।

उन लीलामय श्रीनन्दनन्दनको हमपर दया आयी और उन्होंने हमारे लिए अवसर निकाल लिया।

दो वर्ष पाँच मासके हो गये नाक्षत्र माससे श्रीव्रजराज कुमार। जननीके अङ्कमें बैठकर उनके कुण्डल खींचते मचल उठे—'इनको मेरे कानों-में पहिना दे !'

अपनी कर्ण-पल्ली छूते हैं और मातासे खीझते हैं—'तू तो हँसती है ! इनको मेरे कानोंमें पहिना !'

हम दोनों विभोर हो उठे—'धन्य भक्तवत्सल ! हम सुराधमोंको सेवाका सौभाग्य देना है आपको अन्यथा आपके इस इच्छामय आनन्दघन श्रीविग्रहमें तो आपके नित्य कुण्डल अभी प्रकट हो जायँगे, आपके चाहते ही। आपके आभूषण कहाँ प्रकृत हैं कि उनको कहींसे लाना है। वे चिद्घन तो आपकी अनिच्छाके कारण ही अन्तर्हित हैं ; किंतु आपको सम्पूर्ण नर-लीला करनी है तो सेवाका सुअवसर आपने हम दोनोंको सुरोंमें सबसे पहिले देना निश्चित कर लिया।'

'तेरे कानोंमें छिद्र नहीं है !' जननी हँसती हैं—'मेरे लालका कर्ण-वेध होगा, तब यह कुण्डल पहिनेगा।'

'मैं अभी पहिनूँगा !' ये तो अपने दोनों करोंसे मैयाके हाथ पकड़-कर मचल रहे हैं—'तू कानोंमें छेद कर दे !'

'लाल ! मुझे छिद्र करना कहाँ आता है।' मैया किसी प्रकार टालना चाहती है।

'आता है !' यह कैसे मान लें कि कोई काम ऐसा भी है जो मैयाको नहीं आता। 'तू छिद्रकर !'

'ऐसे कहीं छिद्र किया जाता है !' श्रीव्रजेश्वरी स्नेहमयी समझती हैं—'तेरे बाबा महर्षि शाण्डिल्यको बुलावेंगे। वे पूजन करावेंगे, तब कोई वैद्यराज कहींसे बुलाये जायँगे और वे छिद्र करेंगे।'

'बाबा, तुम महर्षिको बुलाओ !' इन नन्दनन्दनको सदा शीघ्रता रहती है। अब दौड़े-दौड़े आकर व्रजराजके अङ्कमें बैठ गये हैं और उनके श्मश्रुमें अँगुलियाँ उलझाते मचलने लगे हैं—'मैं कुण्डल पहिनूँगा।'

'अभी तो तेरे कान छोटे-छोटे हैं !' व्रजराज अपने कुमारकी नन्हीं, सुकुमार कर्णपल्ली धीरेसे स्पर्श करते हैं—'तू कुछ और बड़ा हो जा तो तेरा कर्ण-वेध करा दूँगा।'

'नहीं, तुम चलो महर्षिके समीप !' अब इनको तो त्वरा है और जब महर्षिको मुहूर्त निश्चित करना है तो बाबा क्यों टालते हैं। महर्षि तो कभी कुछ कहनेपर देर नहीं करते। उनके समीप ही चलना ठीक है—'मैं भी चलूँगा !'

व्रजराज जानते हैं कि उनके ये लाल कितने हठी हैं। ये अभी मचल-कर भूमिपर लेटेंगे और रोने लगेंगे। इनका रुदन तो देखा नहीं जा सकता। महर्षिकी बात शीघ्र मान लेते हैं, अतः वहीं चलना उत्तम है !

महर्षि शाण्डिल्य जैसा सर्वज्ञ, समर्थ नहीं जानेगा कि मुहूर्त किसके संकेतपर चलते हैं। उन्होंने सुनते ही कह दिया—'मैं स्मरण ही कराने वाला था कि श्रीकृष्णको तीसरा वर्ष लग गया है। इस वर्षके पञ्चम अथवा सप्तम मासमें कर्णवेध होना चाहिये। यह शरद् ऋतु है, शुक्लपक्ष है अतः श्यामसुन्दर ठीक कहता है। आप आज ही स्वर्णकारको शलाका-निर्माणका आदेश दे दो। परसों द्वादशीको सौम्यवासरमें कर्ण-वेधका उत्तम मुहूर्त है। मैं सुर-वैद्योंका आह्वान कर लूँगा !'

हम लोगोंको आह्वानकी आवश्यकता कहाँ थी। हम तो व्रजराजके विदा होते ही महर्षिके सम्मुख प्रकट हुए और उनके पदोंमें प्रणत हो गये। उन परम तेजस्वीने सस्मित बदन आशीर्वाद देकर आदेश दे दिया—'लीलामयने कर्ण-वेधकी सेवा लेना निर्णय किया है आपसे और हम सबको उनकी इच्छाका ही अनुगमन करना है।'

उनके सौन्दर्यघन श्रीविग्रहमें—कोमल कर्णपल्लीमें शलाका-वेध बहुत निर्मम कार्य है यह अब ध्यानमें आया। हम सुरोंके शरीरमें स्वेद, कम्पादि बिकार नहीं होते ; किंतु श्रीकृष्णकी कर्णपल्लीमें छिद्र करते कर-कम्पित नहीं होंगे, यह आश्वासन तो हमारे हृदयमें नहीं है। भगवान चन्द्र-मौलि गङ्गाधर ही हमारे आराध्य हैं, अब तो उन्हींकी आराधना-चिन्तन करना है इस समयमें। वे सर्वेश इतनी शक्ति दें कि हमारे कर स्थिर रह सकें !

स्वर्णकार व्रजपतिका आदेश मिलते ही व्यस्त हो गया है। उसे केवल अष्टांगुल प्रमाण शुद्ध रजतकी सूक्ष्माग्र सूचिका बनानी है और उसकी समझमें ही नहीं आता कि रजत-शोधनके उसको जो उपाय ज्ञात हैं, वहीं हम भी जानते हैं। वह कभी हमारा स्तवन करता है और कभी विश्वकर्माकी आराधनामें एकाग्र होता है।

रजतद्रावपर यह औषधियोंके पुटपर पुट देता जा रहा है स्वर्णकार। तीक्ष्ण-तीक्ष्णतम सूचिकाग्र और समान, सुचिक्कन, शशि-किरणोपम यह सूचिका—विश्वकर्माने सम्पूर्ण तादात्म्य कर लिया था इसके करोंसे और अब भी इसे सन्तोष नहीं हैं। यह सूचिकाको उलट-पुलट कर देखे ही जा रहा है।

इसे यह दूसरी सूचिका क्यों चाहिये ? यह तो अब बनाये ही जा रहा है—लाक्षाद्रवसे चिह्नाङ्कन करनेके लिये भी एक ही सूचिका पर्याप्त है। शिशुकी परम कोमल कर्णपल्लीके वेधसे इसका क्या विगड़ना है ; किंतु यह तो लगता है कि प्रत्येक शिशुके एक-एक कर्णके लिए एक-एक सूचिका बनाने लगा है।

'मेरे कर्णोंमें छिद्र होगा !' श्रीव्रजराज कुमार बहुत प्रसन्न हैं। अपनी कर्णपल्ली स्पर्श करते हैं बार-बार और सखाओंसे, गोपोंसे, गोपियोंसे कहते हैं—मैं कुण्डल पहिनूँगा !'

ये ऐसे कूदते-फुदकते हैं जैसे कुण्डल कर्णोंमें अभी आ गये हों ; किंतु इनके सखा—इन परम भाग्यशालियोंकी स्पर्धा उचित ही है। ये कह देते हैं—'कोई अकेले तेरा ही कर्ण-वेध है। दाऊका, विशालका, भद्रका तोकका—सबका कर्ण-वेध है। सब सखा कुण्डल पहिनेंगे।'

'सबका कर्ण-वेध है ! सब कुण्डल पहिनेंगे।' यह बात तो इन्हें अधिक प्रसन्न करती है। अब ये सबकी कर्णपल्ली टटोलने लगे हैं—'तेरे भी इन कर्णोंमें छिद्र होगा !'

अरुणोदयमें ही मङ्गल कृत्य प्रारम्भ हो गये। महर्षिके आदेशानुसार हम दोनों वृद्ध वैद्यके रूपमें ही नन्द भवन आये। कितना वात्सल्य है गोपों-गोपियोंके परम पावन हृदयमें ! सबका प्रयत्न है कि शिशुको कमसे कम पीड़ा प्रतीति हो। उसका ध्यान शीघ्र अन्यत्र चला जाय। ये अनेक खिलौने, पशु-पक्षी एकत्र करनेमें सुनते ही लग गये थे।

महर्षि विप्रवर्गके साथ प्रातः कृत्य करके सीधे नन्द-भवन आ गये। हमको पता है कि उनके द्वारा व्रजराजसे सम्पन्न करायी गयी अर्चा स्वीकार करनेमें भगवान गणपति तकको सङ्कोच होता है; किंतु नवग्रह, सर्वतो-भद्रदेवता, मातृकाएँ, योगिनियाँ, दिक्पाल, कलशदेव वरुणको भी यह पूजा तो प्रत्येक अवसरपर स्वीकार करनी ही पड़ती है। आज तो व्रजराजने अपने आराध्य श्रीनारायणके पूजनके पश्चात् ब्राह्मणोंका पूजन करके, हम दोनोंका और स्वर्णकारका भी पूजन किया। पूजन तो हुआ उस षोडशांगुल सूत्रमें पिरोई अष्टांगुल रश्मिगौर सूचिकाका भी।

महर्षि शाण्डिल्यने आदेश दे दिया—'दाऊका कर्ण-वेध प्रथम होगा। अवश्य वह नहीं रोवेगा। फिर सब बालकोंका लगभग साथ ही।' व्रजमें सबके संस्कार साथ होते हैं। माता रोहिणी तनिक आगे दाऊको अङ्कमें लेकर पश्चिमाभिमुख बैठ गयीं और उनके पीछे व्रजेश्वरी अन्य माताओंके साथ पंक्तिमें बैठीं।

व्रजपतिका वात्सल्य—केवल सूचिका स्पर्श कराना है उन्हें शिशुओं-के कर्णोंसे और उनके कर कम्पित हो रहे हैं। सब शिशुओंके कर्णोंसे उन्हीं-को सूचिका-स्पर्श कराना पड़ा। व्रजमें तो सब इन्हींके कुमार हैं।

व्यर्थ गर्व करते हैं हम सुर अपने कौशलका। गोकुलका यह वृद्ध स्वर्णकार—कितना सूक्ष्म लाक्षाविन्दु अंकित किया है इसने शिशुओंकी कर्णपल्लीपर ! कितने कोमल ढङ्गसे शिशुकी कर्णपल्ली खींचकर जहाँसे सूर्य-रश्मि पारदर्शी हो रही है, ठीक उसी विन्दुपर लाक्षाद्रवका चिह्न और सब शिशुओंके कर्णोंपर इतनी शीघ्र चिह्नाङ्कन।

श्रीव्रजराजकुमारने भी कोई आपत्ति नहीं की अपनी कर्णपल्ली खींचे जानेपर। लाक्षाद्रवका विन्दु शीतल लगा होगा। बहुत प्रसन्न—'हो गया क्या ?'

अग्रजके कर्णोंकी ओर ही दृष्टि लगाये हैं। श्रीव्रजेश्वरी कर पकड़-कर न रोकतीं तो ये अपनी कर्णपल्ली टटोल ही लेना चाहते थे। इनकी कर्णपल्लीपर नन्हीं लाक्षाविन्दु—लगता है कि इन्दीवर दलपर सद्योजात बीरवधूटी रो रही हैं। रक्तसे अरुण इन विन्दुओंको देखकर व्रजराजने तो अपने नेत्र ही बन्द कर लिए हैं।

वाद्योंकी उच्च ध्वनि—महर्षिने अपने मुखसे शङ्ख लगा लिया ! भगवान् महेश्वर सहायता करें ! हम दोनोंने सूचिकाएँ उठा लीं ! बालककी

रोदन-ध्वनि सुनायी नही पड़नी चाहिये। वाम हाथसे कर्णपल्ली खींचकर हम दोनोंने एक साथ दाऊके लाक्षाद्रवाङ्कित स्थानपर सूचिका लगायी और वह स्वतः प्रविष्ट होती चली गयी। हमें केवल सूत्र बाँधकर तैल लगा देना था। दाऊ—ये अनन्त क्या रोते! इन्होंने तो प्रसन्न दृष्टिसे हम दोनोंकी ओर देखा—'बस!'

प्रत्येक शिशुके लिए स्वर्णकारने दो सूचिकाएँ बनाकर कितना उत्तम किया, यह हम समझ गये। इतनी उपयोगी बातें हम सुरोंको भी समयपर नहीं सूझती? हम दो थे, यही कुशल थी। एक बैद्य कभी श्रीकृष्णचन्द्रका कर्ण-वेध करनेमें सफल नहीं हो सकता था। अग्रजके कर्णोंमें सूचिकाप्रवेश देखकर ही वे मचलने लगे थे।

'दाऊ तो रोता नहीं। भद्र कुण्डल पहिनेगा और तुझे चिढ़ावेगा!' मैया समझाने लगीं। सोचनेसे लगे लीलामय—'भद्र सचमुच चिढ़ावेगा कुण्डल पहिनकर।'

'मैं अपने कुमारके कानोंमें औषधि मलूँगा!' मैंने पुचकारा।

बड़े उल्लाससे बोले—'छिद्र औषधिसे हो जायगा?'

'अभी हुआ जाता है!' मैंने औषधि लगाते हुए कर्णपल्ली खींच ली थी। कहा—'तुम्हारी वह स्वर्णिम बिल्ली कहाँ है? मुझे दिखा तो दो!'

तनिक ध्यान बँटा और हम दोनोंके करोंकी सूचिका कर्णपल्ली पार गयीं। इसने सूत्र बाँधकर औषधीय तैल लगा दिया। अब साहस नहीं था इनके रुदनको देखनेका। हम दोनोंका सौभाग्य—हमें अन्य बालकोंका भी कर्ण-वेध करना था और वह सम्पूर्ण एकाग्रता चाहता था।

मैयाने दोनों कर पकड़ रखे थे। ये अरुण चरण उछाल-उछालकर रो रहे हैं। गोपियोंमें कोई नृत्य करते मयूरको दिखलाती हैं। कोई कहती है—'लाल! यह रत्नसारिका बोलने लगी है। किंतु सारिका बोले या रोये, ये नहीं देखते।

व्रजपति असमर्थ हैं अपने कुमारका रुदन देखनेमें। असमर्थ तो हैं महर्षि और विप्रगण। सब जानेकी शीघ्रतामें हैं। व्रजराज उनको दक्षिणा देनेमें व्यस्त होकर अपना ध्यान इधरसे हटाना भी चाहें तो क्या हटा पाते हैं?

'लाल, तोक रो रहा है !' मैयाने कहा और दोनों कर छोड़ दिये— 'तू उसे चुप नहीं करायेगा।'

यह इनकी दूसरी मूर्ति तोक-इतना स्नेह-भाजन इनका ? इन्होंने तो सुनते ही इधर-उधर सिर किया। मैयाने अञ्चलसे अश्रु पोंछ दिये और ये उठ पड़े ! अब अपने इस छोटे भाईके कपोलपर नन्हा कर रखकर कहते हैं—'चुप ! चुप हो जा !'

तोक भी अद्‌भुत है। अभी सबसे अधिक रो रहा था। कर छुड़ानेको छटपटा रहा था और अब हँसने लगा है। इनको देखकर और ये अपनी हथेलियोंसे ही उसके अश्रु पोंछ रहे हैं।

'आप दोनोंमें-से एक तो आवेंगे प्रतिदिन जब तक ये धागे नहीं खुलते ?' स्वर्णकारको नेग देकर व्रजेश्वरी सानुरोध पूछती हैं।

'हम दोनों प्रतिदिन आवेंगे मातः !' यह सौभाग्य छोड़ा जा सकता है—'इन कुमारोंकी कर्णपल्लियोंमें स्वकरसे ही नित्य औषधीय तैल लगावेंगे। इन्हें अब कोई कष्ट नहीं होगा। इनके कर्णोंके ये सूत्र खुल तो सप्ताह भरमें भी सकते हैं; किंतु दसदिनमें हमें खोलने दीजिये। इससे छिद्र पुष्ट हो जायँगे और तब हम स्वयं इन सूत्रोंके स्थानपर हीरक-शलाकाएँ कुमारोंको पहिनाकर आपको प्रणाम करेंगे।'

हमने बहुत प्रयत्न किया कि कुमारोंकी इस सेवाका नेग हम हीरक-शलाका धारण करानेके अवसरपर ले लेंगे; किन्तु यह बात ब्रजमें किसीको भी स्वीकार नहीं है। हीरक-शलाका धारण करानेका नेग उस समय, परंतु आजका और प्रतिदिनका नेग तो हमें लेना ही चाहिये—मैयाके इस अनुरोधको हम अस्वीकार नहीं कर सके।

जिनके करोंका प्रसाद कुमार-नारदादि सबको पवित्र कर सकता है, वे इन नवघनसुन्दर तथा साक्षात् अनन्तकी जननी हम दोनोंको दस दिन साग्रह भोजन करावेंगी। सुरेन्द्रने सोमपानका हमारा अधिकार विवश होकर माना था; किंतु अब वे हमारे सौभाग्यकी समताका स्वप्न भी देख सकेंगे ?

माखन चोरी

मेरा सखा—मेरा सखा श्याम इस धरित्रीपर न आनेवाला होता, मैं आनेवाला था ! यह नटखट कहता था—'तू यहीं बना रह !'

यह धरापर धूम करने आया और मैं गोलोकमें अटका रहूँ ? भू देवी तो माता हैं, इनके अंकमें आनेमें मुझे क्या संकोच ? काल और कर्मके बन्धन जिनको बाध्य करते हैं, वे अपनी सोचें ; किंतु कन्हाईकी तो छायासे भी माया दूर भागती है। इतना अवश्य हुआ कि मैंने किञ्चित् शीघ्रता करली आनेमें। मुझे गणित कहाँ आता है। गोलोकसे गोकुल-धरा—व्रज-मण्डलका अवतरण होने लगा तो मुझे त्वरा लगी। पहिले आ गया पृथ्वी पर।

मर्त्य लोककी मर्यादा—इस मर्यादाकी बात बड़ी जटा-श्मश्रु वाले लोग सोचते रहें। मैं कहाँ इनको जानता हूँ। पाञ्चभौतिक कायामें काल देवता षट् विकारका षड्यन्त्र करते हैं, मेरे समीप आते तो उन्हें भी अँगूठा दिखा देता। मैं स्वेच्छासे आया—स्वेच्छा स्वीकृत वयमें रहूँगा।

कन्हाई नटखट है। छोटा बन जाऊँ तो मेरी सुनेगा ही नहीं। दाऊसे दो वर्ष बड़ी वय रुचती है मुझे। इसमें सखाके साथ खेलनेकी सुविधा भी है और कुछ तो आदेश मानेगा यह। मेरे ब्राह्मण होनेकी बात तो इन सबके गले ही नहीं उतरती। वह ये तब मानते हैं जब बड़ी जटा भी हो और वृद्ध बनना कौन स्वीकार करे। वृद्ध बनकर पूजा भले प्राप्त कर लो, सखाके करका नवनीत तो मिलनेसे रहा।

अब तो दधि-नवनीतको लुटाना प्रारम्भ कर दिया है इसने। मुझे इसकी यही बात कुछ कम रुची कि इतने दिनों तक नन्हा बना रहा; जिस धूमके लोभसे मैं धरापर आया, वह तो इसने अभी कल प्रारम्भ की है।

अब आप मुख लटकाये मत बैठो। मुनियोंको शोभा देता है नेत्र मूंदकर मौन बैठे रहना। मनहूस बने रहना मूर्खता है। मेरा कनूं–इसके

साथ हो लो और यह तो आनन्दघन है। अब माखनकी लूट प्रारम्भ कर दी है इसने।

गोपियाँ भी अद्भुत हैं। किस-किसका नाम गिनाऊँगा, सब तो समय मिलते ही मुझे बुला लेती हैं। माखन देती हैं मुझ ब्राह्मणको, यह तो इनका कर्तव्य है; किंतु अनुनय कितना करती हैं—'लाल मधुमंगल! अपने सब सखाओंको लेकर मेरे घर भी माखन खा जा एक दिन! मेरा माखन भी बहुत मीठा होता है। तू कहेगा उतनी मिश्री मिला दूँगी। सुना है कि तेरा वह सखा कन्हाई मल्लिकाके घर चोरीसे माखन खाने गया था। वह फूली फिरती है, बड़े उल्लाससे सबको सुनाती है। लाला रे! मेरे घर उससे बहुत अधिक, बहुत मीठा माखन मैं बड़े सबेरे निकाल रखती हूँ। तू अपने सखासे कहना तो सही!'

'तेरा माखन तो खट्टा है!' मैंने एकको कह दिया तो उसके आँसू ढुलकने लगे। उसने मटका ही पटक दिया अपना—'तुझे ही नहीं रुचा तो तेरे सखाको क्या रुचेगा।'

'नन्द बाबाके घर क्या माखन-दधिका अभाव है कि मेरा सखा तेरे घर माखन खाने आयेगा?' मैं केवल चिढ़ाता हूँ। मुझे पता है कि मेरा मित्र अवश्य आयेगा इसके घर। वह है ही ऐसा—जो हृदयसे उसे पुकारता है, उसके यहाँ गये बिना रह नहीं सकता; किंतु यह मुझे अब मोदक देकर मनावेगी। मैं क्यों न कहूँ—'यशोदा मैया कोई कृपण है कि कन्हाई और उसके सखा किसी और के घर जायँगे। हम सब जितना खाये-लुढ़कायें, मैया उतनी प्रसन्न होती है। वह मनुहारें करती थकती है हममें से एक एककी। कनूँ कहाँ अकेला कुछ खाता है।

'लाल! जानती हूँ कि व्रजराज कुमारके लिए अभाव सम्भव नहीं। व्रजेश्वरीकी चले तो वे हम सब गोपियों, गोपोंको नित्य अपने यहाँ ही खिलावें।' यह गोपी बिचारी रोने ही लगी—'लेकिन तेरा सखा मल्लिकाके घर खा आया, तू कृपा करे तो मेरा माखन भी एकाध दिन उसे भायेगा!'

मुझे कहनेकी, कृपा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा कन्हाई कृपाका ही धनी भाव है और वह जानता है कि किसका अन्तर

कितना आतुर है उसके आगमनके लिए। मैं तो केवल उसके साथ आऊँगा। ब्राह्मण पहिले भोग लगानेको उसके साथ भी तो चाहिये।

× × ×

'आज अभी चुपके चले-चलो उत्पलाके घर। हम सब वहाँ माखन खायेंगे, दही पियेंगे!' श्यामने सबेरे ही सखाओंसे मन्त्रणाकी—'वह अभी गोष्ठमें गोबर उठानेमें लगी होगी। आवेगी तो हम सब भाग निकलेंगे!'

'तू चोरी करेगा?' यह अर्जुन बहुत सीधा है। इसकी समझमें इतनी बात भी नहीं आती कि भोजनमें चोरी क्या? सृष्टिकर्त्ताने उदर बनाया, उसमें क्षुधा बनायी और सृष्टिमें भोज्य पदार्थ बनाये। भूख लगे तो भरपेट खा लो—इतना तो सबका स्वत्व है। इसमें सोचना क्या? कुछ उठाकर ले जायँ कलके लिए तब वह चोरी होती है। मैं यह बात कहता हूँ तो गोपियाँ-गोप हँसते हैं। कोई महामुनि मुझसे शास्त्रार्थ कर ले! लेकिन गोप कहाँ शास्त्र पढ़ते हैं। ये तो कह देंगे—'तू अपना पाण्डित्य रहने दे!'

'मैया सुनेगी तो मारेगी!' अर्जुन डरता है। मैयाको कहीं क्रोध आता है? वह क्यों मारेगी? हम सब माखन ही तो खाना चाहते हैं। मैयाके यहाँ न खाया, उत्पलाके यहाँ खा लिया।

'तू मेरे घर चल! मैं बहुत-सा माखन दूँगा!' यह विशाल बड़ा दानी बन गया है। किसीका दिया ही माखन खाना हो तो मैं अभी मैयासे कहकर नन्दभवनके सब मटके उठा लाता हूँ। लेकिन इसमें कोई आनन्द है? कन्हाई ठीक तो कहता है, हम सब चुपचाप चलें उत्पलाके यहाँ। अपने आप ढूँढ़-ढाँढ़कर माखन, दही, दूध, छाछ खायेंगे और ढुलकायेंगे। ये बिचारे कपि और पक्षी कितनी आशासे एकत्र हो गये हैं यहाँ। इनका भी तो पेट भरना चाहिये। उत्पला आवेगी तो उसे अँगूठा दिखाकर भाग आवेंगे। देखूँगा मैं छिपकर कि वह क्या करती है।

'मैं इतना बड़ा माखनका लोंदा लूँगा।' तोक अपने दोनों हाथ फैलाकर बतला रहा है और कूद रहा है—'इस मधुमङ्गलके पेटपर पोत दूँगा।'

तोक प्रसन्न है, इतना पर्याप्त है। इस सबसे छोटे सखाको क्या पता कि माखनका लोंदा उतना बड़ा होता भी है या नहीं और कोई बनावे भी तो तोक अपने नन्हे करोंमें उसे उठावेगा कैसे। मेरा उदर भीतरसे तो

भरेगा ही ऊपरसे भी उपलिप्त हो जाय तो मुझे तो कोई हानि नहीं दीखती। उत्पला आवेगी तो उसीकी साड़ीसे उदर, कर, चरण सब पोंछ लूँगा। ब्राह्मणकी सेवामें लगकर उसकी साड़ी भी सार्थक हो जायगी।

तोक कूदने लगा, प्रसन्न हो गया तो कन्हाईका प्रस्ताव पारित हो गया। दाऊने आपत्ति नहीं की, अब किसी औरकी आपत्तिपर ध्यान देना अनावश्यक था। हम सब चल पड़े उछलते-कूदते, ताली बजाते।

मेरा सखा सावधान है। चतुर है। उसने सबको सचेत किया चुप रहनेको और स्वयं पहिले प्रविष्ट हुआ उत्पलाके घरमें। सचमुच उत्पला दीखी नहीं। यह तो पीछे पता लगा कि वह छिपी थी और चुपचाप देख रही थी।

बड़ा भारी मटका भूमिमें पड़ा था ; किंतु उसमें केवल छाछ था। हम सब यहाँ छाछ पीने तो नहीं आये थे। तेजस्वीका रुष्ट होना उचित था। केवल छाछ-भरा मटका सामने क्यों ? उसने समीपमें मटकेको टेक लगा पत्थर उठाया और भड़ामसे कर दिया। मुझे ही नहीं, सबको आनन्द आया। सब ताली बजाकर कूदने लगे। छाछका समुद्र उमड़ पड़ा वहाँ। हमारे साथ ही पक्षियोंका, कपियोंका समुदाय आया था। वे सब उतर आये और छाछ पीने-चाटने लगे। हमारे भोजनका यह बलिवैश्वदेव वहुत उत्तम बना।

'माखन तो वह छीकेपर है !' हमारे कनूँने इतनी देरमें ढूँढ़ निकाला नवनीत-भाण्ड। छीका ऊँचाईपर होनेसे क्या होता था। सबने कोनेमें पड़े ऊखलको ठेलकर, लुढ़काकर छीकेके नीचे किया। बस ऐसे अटपटे काम मुझसे नहीं होते। यह श्रम तो गोपकुमारोंके लिए ही उचित था।

ऊखलपर पीठ, पीठपर घुटनोंके बल व्यस्थित बलिष्ठ वरूथप, वरूथपकी पीठपर खड़ा विशाल और उसके कन्धोंपर दोनों चरण रखे कन्हाई। छीका वाम करसे पकड़ा कनूँने और दक्षिण करसे माखन उठाया तो प्रथम लोंदा मुझ अग्रभोजी ब्राह्मणको मिलना ही चाहिये। लेकिन मैंने हाथ फैलाया तो नटखटने अँगूठा दिखा दिया। मेरी हथेलीपर मक्खी जितना माखन टपकाता है तो मैं उसे इसकी पीठपर नहीं फेंकूँगा ? अब लोंदा भले मेरे मुख, सिर या पेटपर यह दे पटके।

कन्हाई तनिक-तनिक माखन अपने मुखमें देता है और लोंदे फेंक रहा है—'दादा, तू ले !' कभी दाऊको देता है, कभी झुककर विशालके मुखमें डालता है, कभी अंशुको कहता है कि वरूथपको भी खिलावे।

भद्रने लकुट मारकर एक दधिभाण्डमें छिद्र कर दिया है और उसे देखकर दूसरोंने छींकोंपर टँगे दधि-दूधके दूसरे पात्रोंको भी कृतार्थ कर दिया है। ये पात्र इतने ऊँचे कहीं टाँगने चाहिये कि हमारे हाथ ही न पहुँचें ? अब कोई सखा या कपि मुख उठाकर गिरता दही खाओ या दूधकी धारा मुखमें लो।

कन्हाई कपियोंको, पक्षियोंको, सखाओंको भी माखनके लोंदे फेंक रहा है। लेकिन सबको पता नहीं क्या सूझती है—दूध, दही, माखनसे सब मुझे ही स्नान कराने लगे हैं। मेरी ये सुनते ही नहीं कि पञ्चामृतसे स्नान भगवान शालिग्रामको कराया जाता है। मैं ब्राह्मण, भोजन पाकर ही सन्तुष्ट हूँ।

आयुर्वेद उपवेद है श्रुतिका और मेरे सब सखा श्रुति-शास्त्रमें सम्यक् श्रद्धा रखते हैं। आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि सब चिन्ता, आशंका त्यागकर प्रसन्न-चित्त आहार ग्रहण करनेपर ही उसका उचित परिपाक होता है। अतः सब प्रसन्न हैं। सब निश्चिन्त हैं। सब हँसते हैं, ताली पीटते हैं। उछलते हैं और माखन, दधि, दूध खाते-पीते, उछालते हैं। हम सब बालक हैं, अतः वृद्धोंकी भाँति मौन बैठकर भोजनका आग्रह हमसे नहीं किया जाना चाहिये।

केवल कन्हाईकी श्रद्धा अभी कुछ शिथिल है। मुझसे सीखता भी नहीं। शिशु है, बड़ा होगा तो पूर्ण श्रद्धालु हो जायगा। अभी तो बार-बार सबको शान्त रहनेका संकेत करता है। द्वारकी ओर देखता है सशङ्क होकर कि उत्पला आ न जाय। अरे आ ही जाय उत्पला तो दो लोंदे माखन उसे भी दे देना। गोकुलमें सभी घर तो अपने ही हैं। हम खा ही तो रहे हैं। माखन, दूध, दही खानेके लिए नहीं है तो और क्या होगा इनका ? भाण्ड फूटे हैं, यह उत्पलाकी भूलसे। वह इतने ऊपर न रखती तो क्यों इनको फोड़ना पड़ता ? भाण्ड फूटे तो दूध-दही पृथ्वीपर पड़ेगा ही और हम सब कुछ उछाल लेते हैं, खेल लेते हैं तो अपने उदरमें जो पहुँचाया है, उसे पचानेका ही तो प्रयत्न करते हैं। इसमें उत्पलाको प्रसन्न होना चाहिये, कन्हाईको इस प्रकार सशङ्क क्यों रहना चाहिये ?

मेरा उदर ही नहीं भर गया है, आपाद-मस्तक मैं सम्पूर्ण दूध-दधि-नवनीत-स्नात हो गया हूँ। ब्राह्मण तो विराट्का मुख है। मैं परितृप्त हो गया तो कोई भी भूखा नहीं। मेरे सब सखा मेरे ही समान गोरसोज्वल हो गये हैं। केवल श्यामके शरीरपर कुछ उज्ज्वल बिन्दु मात्र हैं वक्षपर। कर-पद इसके भी स्नात हैं।

यह चूड़ी खनकी। उत्पला छिपकर देख रही थी। तनिक हिली होगी। कन्हाई विशालके कन्धेसे वरूथपकी पीठपर आया और कूदकर भागा। यही भाग चला तो हम सब यहाँ रहकर क्या करते।

'भोजनके अनन्तर भागा नहीं करते? भोजन करके दौड़ना आयुर्वेद शास्त्रमें मना है!' मुझ ब्राह्मणकी यह बात कोई नहीं सुनता। सब गोप-कुमार हैं और गोपोंमें ब्राह्मणके समान श्रद्धा नहीं होती। लगता है कि सब कहीं स्नान करेंगे जाकर। भोजन करके स्नान? यह व्यतिक्रम मैं नहीं कर सकता।

यह उत्पला इतना क्यों हँस रही है? यह तो ऊखलपर चढ़कर नवनीत-पात्र उतारने लगी। अब उसमें धरा क्या होगा? कन्हाईने सारा नवनीत तो बाँट दिया है। लेकिन यह पगली पात्र लेकर बैठ गयी है इसी भूमिमें और जो पात्रमें लगा है, चाटने लगी है अँगुलीसे पोंछकर। यह अन्याय है, इसके लिए दो लोंदे छोड़ देने थे।

'तू चल! मैं तुझे मैयासे माखन दिला दूँगा।' मेरी बातपर यह हँसती क्यों है?

'तू कैसा भूत बना है, यह तो देख!' कहती तो यह ठीक है; किंतु यह छाछ-दधि-दूधमें बैठकर अपनी साड़ी तो आर्द्र कर चुकी। मुझे शरीर पोंछनेको इसे दूसरी साड़ी देनी चाहिये। मैं यह कष्ट भी क्यों करूँ? यह इतनी ताड़-जैसी बड़ी है तो नवीन वस्त्र लेकर मेरा शरीर पोंछती क्यों नहीं? यह तो अभी मुझे देख-देखकर हँसती है। हँसती है छीकोंपर टँगे फूटे भाण्डोंको और भूमिमें भरे इस क्षीरोदधिमें कच्छप-जैसे लगते भाण्ड-खण्डोंको देखकर।

× × ×

अब मेरे श्यामका तो यह दैनिक क्रम बन गया है। कभी किसीके घर और कभी किसीके। कभी ऋषभ हठ करता है, कभी भद्र अथवा

देवप्रस्थ कि आज उनके घरका गोरस हम सब सफल करें। मेरे तो सब सखा यजमान हैं। किसीके घर जानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं; किंतु कन्हाई चलता एक ओरको है और फिर कहीं दूसरी ओर मुड़ पड़ता है किसके घरमें घुस जायगा, पहिलेसे मैं भी अनुमान नहीं कर पाता हूँ।

'ये नन्हें बछड़े तो कूदते-फुदकते भले लगते हैं।' कनूँकी यह बात मुझे भी बहुत प्रिय है। छोटे-छोटे बछड़ोंको बाँध रखना कोई भली बात है? भद्र तो बँधे बछड़े देखते ही खोलने लगता है। बछड़े-बछड़ियाँ जाते कहाँ हैं, हम सब इन्हें खोल देते हैं तो ये हमें सूँघ-सूँघकर कुदकते रहते हैं। श्यामके साथ ही तो सब लगे रहते हैं।

बछड़ोंको खोल देनेमें एक सुविधा भी है। कन्हाई और सखा इन्हें खोल देते हैं तो गोपियाँ इनको पकड़ने-बाँधनेमें लग जाती हैं और हम सबको उनके घरमें माखन, दधिका भोग लगानेका अवसर मिल जाता है। गोपी थोड़ा चिल्लायेगी बछड़े खोलनेपर तो आनन्द ही आवेगा। अँगूठा दिखावेंगे उसे।

× × ×

गोपका घर और उसमें गोरस नहीं? हम सब गये कोकिलाके भवनमें और कुछ ऐसा नहीं मिला जिससे मैं भी कुछ भोग लगा सकूँ। यह बहुत चतुर है। कहीं ऐसा छिपाया होगा कि हममें-से कोई ढूँढ़ न सके। अब हमको क्रोध नहीं आवेगा? अकेले कन्हाईको कोई दोष क्यों दे, क्रोध सभीको आया, पर और कर भी क्या सकते थे इसके अतिरिक्त कि सब भाण्डोंको हम सबने भग्न कर दिया। इस भड़ाभड़में भी कम आनन्द नहीं आया।

कन्हाई तो कोकिलाके पालनेमें पड़े शिशुके ऊपर झुका था। कह रहा था। 'तेरी माता बहुत कृपण है। तुझे दूध भी भरपेट नहीं देती होगी। उठ! हमारे साथ चल! मैं तुझे माखन खिलाऊँगा—बहुत मीठा माखन!'

शिशु हँस रहा था, किलक रहा था और दोनों कर उठाकर श्यामके चन्द्रमुखको पकड़नेका प्रयत्न कर रहा था। कोकिलाका ही तो दोष है कि उसी समय आ कूदी। यमुना-जल लेने गयी थी तो कुछ देर और वहाँ नहीं रुक सकती थी? आ भी गयी तो क्या विपत्ति आयी थी कि दूरसे चिल्लाने

लगी—‘ अरे ! शिशुके समीप क्या कर रहा है ? क्या करने आये हो तुम सब यहाँ ?’

कोई ऐसे चिल्लायेगी तो श्याम भागेगा नहीं ? मोहन भागे तो हम सब क्या करनेको वहाँ बैठे रहे ? कन्हाई किसीको सखा स्वीकार कर ले, उसे अपने साथ आनेको आमन्त्रित करके, अपना चन्द्रमुख दिखलाकर भाग जाय तो जो साथ जानेमें असमर्थ होगा वह शिशु हो या वृद्ध, रोवेगा ही—वह फूट-फूटकर, हिचक-हिचककर रोवेगा, इसमें आश्चर्य क्या ?

कोकिला कहती है—‘ श्याम उसके शिशुको चिकोटी काटकर रुला भागा !’

अपने शिशुका शरीर भी देखा उसने ? कनूँके किसलयसे भी कोमल कर—वह चिकोटी भी काटे तो शिशुको कष्ट होता ? वह तो किसीको कष्ट दे पाता ही नहीं। कष्ट तो देता है—अकल्पनीय कष्ट देता है इस नन्द-नन्दनका समीपसे भाग जाना—इसका वियोग और अपने शिशुके लिए यह वियोग तो कोकिलाने स्वयं बुला लिया था।

× × ×

सायङ्काल ही हमारी मन्त्रणा हो गयी थी—‘सद्य नवनीत बहुत स्वादिष्ट होता है। अँधेरेमें ही चलेंगे कल।’

हम सभी पहुँच गये नन्दद्वारपर प्रातःकालीन प्रकाश होनेसे पूर्व ही। कन्हाई आज अपने नन्दन चाचाके घरमें प्रविष्ट हो गया। चाचा गोदोहनमें लगे होंगे और तोक कहता है—‘माँ बहुत अँधेरे उठकर दधि-मन्थन करती है।’ वह गोष्ठमें गयी तभी तो तोक घरसे आ सका। यह बहुत उपयुक्त अवसर होता है। सब गोप इस समय गो-दोहनमें लगे होते हैं। गोपियाँ दधिमन्थन करके गोष्ठ चली जाती हैं दूध लाने।

गोकुलमें कोई अपने द्वार बन्द नहीं करता। क्यों करें ? बिल्लियाँ, श्वान, कपि, काक कोई यहाँ इतना धृष्ट नहीं कि किसीके पात्रमें मुख डाल दे। मुख भी डाले तब जब क्षुधातुर हो। मनुष्योंके समान पशु-पक्षियोंको परिग्रहका व्यसन तो है नहीं। ये सब तो मेरे समान हैं, पेट भर गया और बस ! यहाँ मेरा सखा इन सबको पुचकारकर, बुलाकर माखन खिलाता रहता है। ये सब उसके साथ आवें तो किसीके घरमें आ जायँ, अन्यथा क्यों किसीके द्वारकी ओर देखें ?

तोकको कपियों, श्वानों बिल्लियोंसे बहुत प्रेम है। वह कहता है— 'कनू ! हम सब तो अँधेरेमें खा लेंगे ; किंतु बिचारे कपि और काक तो अभी आये नहीं। वे भूखे रहेंगे ?'

'भूखे क्यों रहेंगे ?' कन्हाईको युक्ति सोचते कितनी देर—' हम तेरे आँगनमें और ऊपर वहाँ छतपर उनके लिए पर्याप्त माखन, दधि डाल जायँगे।'

' तू यहाँ नहीं रहेगा तो उनमें-से कोई यहाँ नहीं खायेगा !' तोक सोचने लगा है। सचमुच सब कन्हाईके साथ ही लगे रहते हैं। यह यहाँसे चला जाय तो कोई काकतक इस घरपर बैठने कदाचित् ही आवे।

' बाहर प्रकाश होने लगा है। वे अभी हमें ढूँढ़ते आ जायँगे।' श्याम-की यह बात सच है। कपि, श्वान, बिल्लियाँ, पक्षी इसे न देखें तो ढूँढ़ते फिरते हैं गोकुलके घरोंमें।

मुखसे फूँककर प्रदीप बुझा दिया इसने। जब यह प्रकाश-स्वरूप स्वयं आ गया तो कृत्रिम प्रकाश—नन्हा-सा टिमटिमाता प्रदीप किस कामका ?

अतुला चाचीने नवनीत कहीं कक्षके अन्धकारपूर्ण कोनेमें छिपा दिया है ; किंतु उसे तो उनका यह तोक ही ढूँढ़ निकालेगा। इसके कण्ठकी रत्नमाला क्या कम प्रकाश देती है ? कन्हाईको तो इन आभूषणोंके प्रकाश-की भी अपेक्षा नहीं। इसकी अङ्ग कन्तिके सम्मुख पूर्ण चन्द्र-ज्योत्स्ना भी म्लान होती है।

यहाँ हम सब आनन्दसे बैठकर माखन आरोगेंगे। श्याम नवनीत भर लाया है करोंमें। विशाल और वरूथप मिलकर पूरा पात्र उठा लाये हैं। भद्रका यहाँ जन्म ही हुआ, रहता है यह व्रजराज बाबाके पास, पर तोक नाच रहा है। आज सब सखा इसके घर जो अनिमन्त्रित आ गये हैं और हम सब जानते हैं, अतुला चाची देखते ही खिल उठेंगी। यहाँ कोई डाँटने, खीझनेवाला नहीं। अतः यहाँ भाण्ड भग्न नहीं किये जा सकते।'

'अरे तुम सब अन्धकारमें बैठे हो ?' लो चाची तो प्रदीप प्रज्वलित करने लगी हैं।

'मैं कपियोंको बिल्लियोंको खिलाऊँगा !' तोक माँके पदोंसे लिपट गया है।

'तू भी तो उनका ही सखा है।' चाची हँस रही हैं—'तुम सब भली प्रकार खाओ। मैं इन सब तुम्हारे कपियों, काकोंको दे रही हूँ।'

'माँ!' कन्हाई तो अङ्कमें पहुँच गया।

'लाल! तू खा और बाँट सबको!' चाची कोई कृपण है कि खीझेगी। वह तो बड़े-बड़े लोंदे कपियोंको उछालने लगी है।

× × ×

सब गोपियाँ अतुला चाचीके समान सीधी नहीं हैं। सब इसी सावधानीमें रहती हैं कि श्यामको पकड़ लें। मेरा सखा भी बहुत सावधान रहता है। यह तनिक आहट पाते ही भाग निकलता है।

कोई दाऊको क्यों नहीं पकड़ती! दाऊको पकड़े तो पता लगे। यह चौथे वर्षमें चलता दाऊ—इस बलको रोष आ जाय तो यह ऊखल उठाकर पटककर फोड़ देगा या गृहके स्तम्भ गिरा देगा। इसे छेड़नेका साहस कोई नहीं करेगी। यह भला क्यों भागे। यह तो आता भी है अनुजके अनुरोधसे और कन्हाईके देनेसे ही मुखमें कुछ माखन डालता है। अपने हाथपर आये लोंदे भी यह सखाओंको ही देता रहता है।

भद्र या तेजस्वीको भी कोई नहीं पकड़ेगी। भय लगता होगा कि दोनों दाऊसे लगते हैं दूरसे, धोखेमें कहीं दाऊका कर न पकड़ा जाय। श्यामके धोखेमें सदा पकड़ा जाता है तोक और पकड़नेपर यह मटकेगा अँगूठा दिखाकर। इसे तो हँसकर छोड़ना ही ठहरा। इसे कोई कुछ कहे तो कन्हाई सचमुच रुष्ट हो जाता है, यह सबको पता है।

मुझ ब्राह्मणको जिसके मनमें आवे, पकड़ लो। भोजनके पश्चात् मैं भाग सकता नहीं। रोष मुझे आता नहीं, चाहे जो कहो, और हँसो; किंतु पकड़ो तो मोदक लिये बिना मधुमङ्गल फिर टलनेसे रहा।



उपालम्भ

मुझे विशेष सम्मान दिया इस द्वापरान्तमें भगवती महामायाने। उन आद्या महाशक्तिने अवतार धारण किया परमपुरुषकी अनुजा होकर तो कम-से-कम एक पीठस्मय-हर (मैहर) में मेरा नाम स्वीकार कर लिया। इस सम्बन्धसे मैं श्रीव्रजराजकुमारको अपना अग्रज मानती हूँ और उनकी सेविका बनकर आ गयी हूँ नन्दसदनमें। माता यशोदा दयामयी हैं। किसी शरणागता सेविकाको स्थान देना कभी अस्वीकार नहीं किया उन्होंने। मुझे उनके अनुग्रहसे नन्द-सदनकी पुष्प-सज्जा प्राप्त हो गयी है। मैं उनके, माता रोहिणीके केश-शृङ्गारका सुअवसर पा गयी हूँ, इतना सौभाग्य प्राप्त कर लेना श्रीके लिए भी सहज नहीं है।

आजकल उपालम्भ बहुत आने लगे हैं गोपियोंके व्रजेश्वरीके समीप। श्यामसुन्दर धूम करने लगे हैं। मैं सबके अन्तरमें प्रतिभा और मुखमें वाक्-की अधिदेवता ही नहीं जानूँगी कि इन उपालम्भोंके मूलमें कितनी ललक है इन सौन्दर्य-सिन्धुका श्रीमुख देखनेकी। ये जिसके गृह न पधारें दो-चार दिन, उसकी व्यथा क्या मैं देखती नहीं हूँ। वह दधि-माखन पड़ा सड़ता है जिसे ये स्पर्श करने नहीं पहुँचते।

मैं सेविका हूँ। मुझे शान्त, मौन साक्षी रहना है। मेरा सौभाग्य छिन जायगा यदि यहाँ किसीको पता लग जाय कि मैं मानवी नहीं हूँ। सेविका होनेपर तो मैया मुझे स्नेह-सम्मानतक देती रहती हैं। मैं साक्षी केवल साक्षी हूँ अपने इन इन्दीवरसुन्दर अग्रजकी इन लीलाओंकी। मैं साक्षी हूँ गोपियोंकी और उनके हृदयकी भी।

'श्याम आज मेरे गृह आता सखाओंके साथ!' सबेरे उठते ही तो सबकी साध जगती है। सब गौरी, गणपति तथा सुरोंके साथ मेरी भी मनौती करने लगती हैं। कोई कहीं दधि-दूध छिपाती है, कोई दधि-मन्थन करके कहीं माखन रखती हैं। छिपाती भी हैं और यह भी देखती हैं कि नन्दनन्दन देख ले। इतना ही दुराव कि अदृश्य या अलभ्य न बन जाय। स्वयं कहीं छिपकर बैठती हैं।

कोई केवल देखना चाहती है—'वह आ जाय और सखाओंके साथ प्रसन्न होकर भरपेट खाय ! भले मेरे सब भाण्ड फोड़ जाय !'

कोई चाहती है—'कितना भला लगता है जब अँगूठा दिखाकर मटकता है। आज खूब खीझूँगी और वह हँसेगा, मुख बनावेगा। मैं चिल्लाऊँगी तो सब ताली बजाकर कूदेंगे।'

कोई भागते चपल-चरण देखना चाहती है और सोच-सोचकर ही हँस रही है—'कितना धृष्ट है !' आँख दिखाओ तो मुखपर माखनका लोंदा मार देता है—'रुष्ट मत हो ! तू भी खा।' मुखमें दूध या छाछ भरकर सीधे मुखपर कुल्ला कर देगा—'इतना गरम मत बन ! शीतल हो जा !'

कोई चाहती है कि पकड़ ले और तब ये नीलसुन्दर कर छुड़ानेको उलझें उससे। कोई पकड़कर सचमुच मैयाके समीप लाना चाहती है—'व्रजेश्वरीके समीप उपालम्भ देने पहुँचो तो यह कितना सीधा, भोला, सभीत बन जाता है और मैयाकी दृष्टि बचाकर नेत्र भी तरेरता है ! इसे पकड़कर ही ले जाऊँ तो क्या करेगा ? कैसा लगेगा अत्यन्त सभीत ? क्या बहाना बनावेगा ?'

किसीके हृदयको यह सह्य नहीं कि इन मनमोहनको मैया डाँटे या मारे ; किंतु सब जानती हैं कि व्रजेश्वरी वात्सल्यकी मूर्ति हैं। अपने शिशुका सभीत मुख देखकर ही उनका रोष शान्त हो जाता है। वे इन्हें कुछ नहीं कहेंगी। उलटा गोपियोंको डाँटेंगी अथवा इनका अनुनय करेंगी। इन्हें दूध, दधि, नवनीत और मिट्टीके भाण्डोंके स्थानपर स्वर्ण-भाण्ड चाहे जितने ले लेनेका आग्रह करेंगी। कभी रोष आ भी जाय उन्हें तो हँसकर, संकेतसे समझा दिया जा सकता है कि उपालम्भ सत्य नहीं है, केवल परिहास है।

अब उपालम्भ लेकर आनेवालियोंकी संख्या बढ़ने लगी है। कुछ तो सचमुच बहाना बनाकर ही आती हैं और अपने मनसे ही नवीन-नवीन उत्पातोंकी उद्भावना कर लेती हैं। ये अन्तर्यामी—इनको तो सबके भावकी पूर्ति करनी है। आज वह जो उत्पात सोचकर बतला गयी, कल उसके घर वह न हो तो उसके भावकी पूर्ति कैसे होगी ?

उपालम्भका प्रारम्भ किया उपनन्द-पत्नी इनकी बड़ी ताई तुङ्गी (प्रभावती) ने। उनके धुले, लिपे-पुते प्राङ्गण तथा कक्षोंको इन्होंने सखाओंके साथ लघुशङ्का करके भली प्रकार पवित्र कर दिया था। शिशु ही तो हैं सब सखा। सबेरे-सबेरे माखन, दधि, छाछ खाते रहे और छपाछप करते रहे उसीकी कीचमें तो नन्हे तोकको लघुशङ्का लग आयी।

'गोरसमें मूत्र-त्याग नहीं करते!' कन्हाईने छोटे भाईको समझाया– वह क्या स्वच्छ कक्ष है!

अभी इन्हें कछनी बाँधनी कहाँ आती है। मया बाँध देती है तो इनको वह एक उत्पात-बन्धन लगती है। झटपट खोलकर कहीं भी फेंक देते हैं। इनके दिगम्बर सखा-मण्डलमें दाऊ तथा थोड़े-से बड़े सखा ही तो कछनी बाँधते हैं।

तोक बहुत अल्पवय शिशु है—सबसे छोटा। उसे क्या पता कि मूत्र-त्याग बैठकर किया जाता है। उसके मूत्रकी धारा दीखी तो इनको एक क्रीड़ा सूझ गयी। सबसे बोले—'देखें, किसके मूत्रकी धार कितनी दूर जाती है!' इस क्रीड़ामें ताईका घर पवित्र हो गया।

प्रभावतीजी प्रेम-मूर्ति हैं। छिपकर ही श्यामकी धूम-धाम देख रही थीं। बालक माखन-दही खा लेते हैं तो उत्तम ही है। इसमें उन्हें सम्मुख आकर बाधा नहीं देना था; किंतु इस नये उत्पातने उनको विचलित कर दिया। मनमें आया—'बालक बिगड़ने लगे हैं। इस प्रकारके उपद्रवमें कोई इस नीलमणिको दुःखित होकर शाप न दे बैठे! इन सबोंको डाँटना ही चाहिये।'

'तू बहुत धृष्ट हो गया है! चल, आज यशोदासे कहती हूँ!' ताईने 'अरे! अरे! क्या करते हो सब?' कहा और सम्मुख आयी तो सब इधर-उधर हँसते, ताली बजाते भागने लगे उनके ही कक्षोंमें। लघुशङ्का प्रारम्भ हो गयी तो उसे पूर्ण तो करना था। कई कक्ष सबोंने भिगो डाले और इसपर कन्हाई अँगूठे दिखाने लगा।

'जा कह दे!' श्यामको धमकाया नहीं जा सकता। स्नेहसे समझा-कर भले मना लो; किंतु धमकीसे तो इसे चिढ़ है। अधिक उत्पात करता है धमकानेपर।

ताई बड़ी हैं। वे इन बालकोंको उद्धत होता नहीं देख सकतीं। वे नन्दभवन चल पड़ीं। अब शिशुओंको लगा कि उचित नहीं हुआ। सब एक दूसरेका मुख देखने लगे। सखा सहमे रहें, यह कहाँ सह्य है श्रीकृष्णचन्द्रको। कह दिया हँसकर—'तुम सब मेरे पीछे आना। मैं मैयाके पास जाता हूँ। मैया ताईको मारेगी।'

इनको अब कौन कहे कि मैयाको ताई ही डाँट सकती हैं। ये तो भागे और आकर मैयाकी गोदमें बैठ गये। मैयाने जेठानीको देखते ही इन्हें गोदसे उतारा। प्रणाम किया उन्हें। वे बोलीं—'यशोदा ! तुम अपने इस लालके गुण भी जानती हो ? कैसा साधु बना तुमसे सटा खड़ा है।'

'क्या किया है इसने?' मैया आश्चर्यसे अपने नीलमणिका मुख देखती हैं—'अभी तो यह यहीं खेल रहा था सखाओंके साथ !' मैयाको लगता ही नहीं कि उसका यह अबोध लाल ऐसा भी कुछ कर सकता है, जिससे कोई उलाहना देने आवे।

'तुम चलकर मेरा गृह देख आओ कि इसने वहाँ क्या-क्या किया है !' ताईको अपना यह क्रोधाभिनय रोकना कठिन हो रहा है। यह नटखट अभी उन्हें मटककर, अँगूठा दिखाकर आया और यहाँ इतना सीधा बना खड़ा है ! भीतर हँसी उमड़ रही है।

'मैं देखकर क्या करूँगी ?' मैया-जैसी सीधी महिला मिल नहीं सकती। 'यह आपका ही तो है। अपने ताऊजीके घरमें इसने कुछ धूम की तो आप डाँट देतीं।'

'मैं इसे डाँटती ?' अब प्रभावती हँस पड़ीं—'यह तो मेरे डाँटनेपर मुँह चिढ़ाता है, हँसता है, अँगूठा दिखाता है।'

× × ×

बहुतोंने देखा और जिन्होंने नहीं देखा, सुन लिया दूसरीसे प्रभावतीजीके उलाहनेकी बात। सबको लगा कि 'नन्दनन्दनको अधिक देरतक देखनेका यह अच्छा उपाय है। मैयाके अङ्कमें यह सहमा सम्मुख बैठा रहेगा।'

अब उपालम्भोंका अनवरत क्रम चल पड़ा है। एक कहती है— 'अपनी मित्र-मण्डलीको लेकर गया और मेरा सब माखन खा गया। दूध-दधिके भाण्ड फोड़ दिये। मना करनेपर चिढ़ाता उलटे है।'

'बहिन, तेरे मुखसें माखन-मिश्री !' मैया तो प्रसन्न हो गयी—'तेरे गृहमें इसने कुछ खाया तो सही। मेरे तो मनुहार करनेपर भी नेक माखन मुखमें डालता है। दूध-दधि, माखन और भाण्ड भी तू जितना चाहे यहाँसे ले जा। मैं तेरे भवन भेजे देती हूँ।'

और उलाहना दो ! यह अब मैयाके पैर पकड़कर मनाने लगी है कि 'इसके भवनमें भी इनकी ही कृपासे सब कुछ भरा है। कुछ भेजकर तुच्छ न बनायें ! नीलमणि कुछ खाता-लुटाता है तो वह गृह भी उसीका है।'

किसीके उलाहना देनेपर ये बोल उठते हैं—'मैया ! यह अपने गोकुलमें ही रहती है क्या ? मैंने तो इसका घर देखा नहीं। इस झूठीको मार तू।'

इनके पास साक्षी सदा हैं—'तू दाऊ दादासे पूछ ले ! भद्रसे पूछ देख। मैं इसके घर कब गया था !'

मैयाको किसीसे पूछना नहीं है। उसके घरमें कोई अभाव है कि उसका पुत्र अन्यके घर माखन खाने जायगा ? वह प्रायः कह देती है—'बहिन, ऐसा भी क्या परिहास ! नीलमणि तुम्हारा नहीं है कि उलाहना देती हो ?'

कोई कैसे कह दे कि 'कृष्ण उसका नहीं है।' वह हँसकर यही तो कह सकती है—'व्रजेश्वरी ! जहाँ ऐसे सत्यवादी और उसके साक्षी हैं, वहाँ मेरी कौन सुनेगा ?'

ये तो नेत्र मटकाकर, अँगूठा भी दिखा देते हैं। संकेत भी कर देते हैं—'मैयासे और उलाहना देगी ?' कभी अपनी छोटी मुट्ठी भी बाँधकर दिखा देते हैं। यही शोभा देखने तो वह आयी थी।

× × ×

उलाहने बढ़ रहे हैं और बढ़ रहे हैं इनके ये मधुर उत्पात। कोई सो रही थी, उसकी लटकती वेणी शय्यासे बाँधकर भाग आये। किसीके गृहमें रखे धान्यादिको सखाओंके साथ बिखेर आये हैं अथवा पवित्र कर आये हैं।

मैया सुन-सुनकर हँसती है। उसकी समझमें ही नहीं आता कि उसका लाल कब यह सब कर आया। इतना उत्पात यह नन्हा शिशु कर कैसे सकता है। ऊपरसे श्याम कहता है—'मैया! यह बहुत बुरी है।' चाची कहती थीं कि 'यह अपना सब नवनीत खा लेती है। भाण्ड फोड़ देती है।' धान्यमें पानी भी यही डालती होगी। अब मेरा और सखाओंका नाम लेकर यहाँ उलाहना देने आ गयी है। तू किसीको भी तो मारती नहीं।'

व्रजेश्वरी हँसती हैं। दूसरी सब हँसते-हँसते लोट-पोट होती हैं तो उपालम्भ देनेवाली कबतक गम्भीर मुख रख सकती है।

× × ×

सब उपालम्भ देने नहीं आतीं; किंतु हृदय सबका अतिशय वात्सल्य-मण्डित है। उस दिन मध्याह्नमें माखन लेकर भागे अपने महानन्द ताऊके घरसे। ताई पीबरी जग पड़ी थीं और देखते ही आर्त होकर पुकारने लगीं—'भाग मत! मत भाग तू! लाल, लौट आ! तेरे कोमल पद जलते होंगे। आ जा! जितना चाहे माखन ले; किंतु इस आतपमें भाग मत!'

भारी शरीर पीबरी दौड़ नहीं सकतीं, अन्यथा दौड़कर पकड़कर गोदमें उठा लिया होता उन्होंने। वे भरे-भरे दृग देखती रहीं। द्वार तक आकर पुकारती रहीं और देर तक वहीं खड़ी देखती रहीं। हाहाकार कर रहा था उनका हृदय—'कृष्णचन्द्र इस आतप-तप्त भूमिपर दौड़ता गया! कितने अरुण हो उठे थे उसके किसलय-कोमल चरण!'

सायङ्काल नन्दभवन आकर उन्होंने साग्रह बैठाया अङ्कमें। अपने हाथसे घरसे लाया नवनीत खिलाती रहीं और इनके पदोंको करोंमें लेकर टटोलती-देखती रहीं। इतने ध्यानसे देखती रहीं कि मैयाने पूछ लिया—'जीजी! क्या है?'

'इसके पद कितने कोमल हैं!' फिर नेत्र भर आये—'यशोदा! तू इसे धूपमें तो घरसे मत निकलने दिया कर! मेरे भवन दोपहरमें आया था और फिर भाग आया!'

× × ×

'मैया! एक गोपी है न, वह तमाल है जिसके आँगनमें।' कहींसे भागे आये हैं और मैयाकी गोदमें बैठकर उसकी ओर मुख करके कह रहे हैं—'वह मुझे देखती है तो बलपूर्वक पकड़ ले जाती है। मुझसे गोबर उठवाती है। घरके काम कराती है और फिर मेरे मुखमें, हाथमें दही या माखन लगाकर, मुझे धमकाकर भगा देती है!'

दौड़े आये हैं। कमलमुख आतपमें दौड़नेसे अरुण हो उठा है। स्वेद कण झलमला आये हैं भालपर। अधर नवनीतसे उज्ज्वल हैं। करोंमें लगा है नवनीत। अलकोंपर, कन्धेपर भी कुछ उज्ज्वल रेखाएँ हैं।

'यही है—यही है मैया!' एकको आती देखकर पूरा हाथ फैलाकर कहते हैं—'मैं कहता था न कि यह उलाहना देने आती ही होगी। तू आज इसे मार लगा!'

आयी तो वह उलाहना देने ही थी; किंतु अब ठिठककर खड़ी हो गयी है हास्य दबाकर। आते ही व्रजेश्वरी हँसती उठ पड़ी हैं और मथानी उठा ली है उन्होंने परिहासमें—'क्यों री! तू मेरे लालको बलात् अपने घर पकड़ ले जाती है? इससे घरके काम कराती है और इसके मुख-करमें माखन लगाकर उलाहना देने आयी है!'

'तू दादासे पूछ ले। यह प्रतिदिन मुझे तङ्ग करती है!' अब ये उलटे उसे डाँटने लगे हैं।

'प्रतिदिनका यह उत्पात कहाँ तक सहा जाय?' वह भी कठोर बन गयी है—'दूध, दधि, नवनीतकी नित्यकी हानि—गोरस ही तो गोपकी आजीविका है और तुम्हारा लाल प्रतिदिन सब भाण्ड फोड़ आता है। तुमसे कहने आवें तो उलटे दोष लगता है। अब स्वामीसे कहना होगा—हमारा क्या, गोकुल त्यागकर कहीं अन्यत्र गायोंको लेकर बसेंगे! इस हानि और लाञ्छनसे तो छुटकारा होगा!'

'बहिन ! यह नीलमणि तुम्हारा नहीं है ? तुमने एक दिन भी मुझे भाण्ड-गोरस अपने भवन भेजनेका अवसर नहीं दिया।' मैयाके नेत्र टपकने लगे हैं—'यह रहा श्याम। यह तुम्हारे सबके ही आशीर्वादसे आया और बढ़ा है। तुम्हारा है यह और गोकुल-त्यागकी बात तुम करती हो ? मैं महरसे कहूँगी यहाँसे जानेको ; किंतु…।'

अब और सुना नहीं जा सकता। यह मैयाके पदोंपर गिरकर फूट-फूटकर रुदन करने लगी है कि इसे व्रजेश्वरी क्षमा कर दें ! परिहासको इतनी गम्भीरतासे न लें !

× × ×

मुझे भागकर अपना हास्य छिपाना पड़ा। मैयाकी बड़ी देवरानी आयी रोषमें भरी—'जीजी ! अब अपने लालको देखो ! तुम तो मेरा कभी विश्वास ही नहीं करतीं। मैं आज बहुत प्रयत्न करके इसे पकड़ सकी हूँ। यह प्रतिदिन कुछ-न-कुछ बहाना बना देता था। आज मैं छिपी थी। चोरीसे छिपकर माखन खाते ही मैंने इसे पकड़ा।'

'आ लाल !' मैया पुचकारे नहीं तो क्या करे—'तूने भला मुझसे कब कहा कि यह चोरी करता है ? बेटा ! चोरी क्यों करता है ? तेरी माँ कृपण है, तुझे भरपेट माखन नहीं देती तो यहाँ आ जाया कर !'

अब मैया उलटे डाँटने लगी हैं—'कुबला ! तू इतनी कृपण हो गयी कि पुत्रको माँगने पर माखन नहीं देती, तभी तो चोरी करता है। कल ऐसे ही अतुला आ गयी थी तोकको पकड़े और आज तू आयी है ? ये तोक और अंशु—इन नन्हें शिशुओंपर तुम सब आरोप करने आती हो यहाँ ?'

कुबला चाची तो आकाशसे मानो गिरीं। वे अब क्या कहें ? वे तो कन्हाईको कर पकड़कर ले आ रही थीं। मार्गमें वह तनिक पीछे होकर बोला—'चाची ! तू इतने बलसे कर पकड़े है कि मेरा हाथ दुखने लगा। तू अब यह दूसरा हाथ पकड़ ले।'

'कन्हाई कितना सुकुमार है। इसका कर अवश्य पीड़ा देने लगा होगा।' चाचीको लगा। उन्हें कहाँ पता था कि नटखटने संकेतसे अंशुको समीप बुला लिया और दूसरे करके स्थानपर इसका कर पकड़ा दिया।

यह भी चुपचाप चला आया है। सब सखा हैं और परस्पर मिले हैं। अब जेठानीसे यह कहें तो हँसी ही तो होनी है।

× × ×

ये सर्वेश्वरेश्वर पूर्णपुरुष पुरुषोत्तम—प्रेम-परवश पधारे ये धरापर और गोकुलमें घर-घर प्रेमकी प्रतिमाएँ हैं। अपार वात्सल्य है एक-एक गोपीमें। ये प्रेमधन उनकी भावनाओंके परवश प्रत्येकके घर पधारते हैं अपने सखाओंके साथ और उसकी भावनाके अनुरूप उत्पात करते हैं। इन परिपूर्णतमको कुछ पाना है ? लेकिन जब हृदय मचल रहे हैं—'ये आवें, चोरीसे दधि-माखन खावें—लुटावें और चिढ़ावें, खीझें, हँसें…।'

उपालम्भके बहाने इनको देखने आना है सबको और ये कैसी-कैसी युक्तियाँ बनाते हैं मैयाके सम्मुख। इनका यह सुन्दर श्रीमुख, ये घुँघराली अलकें, ये विशाल लोचन, ये कोमल सरोजारुण कर-चरण ! ये नवनीत दधिसे उज्वल बने लाल-लाल अधर और उपालम्भके समयकी इनकी अद्‌भुत भङ्गिमा !

मैं तो सेविका हूँ—नन्दभवनकी सेविका। मुझे सौभाग्य प्राप्त है इनको मैयाके अङ्कमें बैठे उपालम्भ सुनते देखनेका। वैसे इनका दर्शन करते रहने ही तो गोकुल आयी हूँ। अदृश्य रूपसे अपने इन अग्रजके श्रीचरणोंके पीछे सर्वत्र घूम भी आती हूँ।



ऊखल–बन्धन

तपोनिरत मूर्ति-नन्दन भगवान नारायणने मुझे अपने श्रीविग्रहसे प्रकट करके महेन्द्रको उपहार-स्वरूप प्रदान कर दिया। मैं उनकी सङ्कल्पोद्भवा पुत्री हूँ और अब वे स्वयं गोकुलमें अवतीर्ण परम पुरुषसे एक हो रहे हैं। अतः मुझे अवसर मिल गया है श्रीनन्दनन्दनको अपना पिता कहनेका। जिनके श्रीचरणोंके साक्षात्कारकी उत्कण्ठा लिये ऋषि-मुनि जन्म-जन्म तप, ध्यान, आराधना करते हैं, उनके पुनीत पादपद्मोंका सामीप्य उनकी पुत्रीको उत्कण्ठित नहीं करेगा ?

महालक्ष्मी-पूजनके अनन्तर मर्त्यलोकके मानव महेन्द्रका यजन करते हैं। इस अवसरपर सुरपतिको धराके—विशेषतः भारतवर्षके नगरों, ग्रामों, व्रजोंमें चलनेवाले श्रौत इन्द्रयागको स्वीकार करना पड़ता है। वेदज्ञ ब्राह्मणोंके श्रद्धा-सहित सविधि आवाहनकी उपेक्षा सुरेन्द्रके लिए भी अपराध है और वे जानते हैं कि भरतीय धराका कोई ऋषिकुमार भी क्रुद्ध हो जाय तो उसका शाप शतक्रतुको तत्काल पद-भ्रष्ट कर सकता है। अतः परम विलासी विडौजा भी ऐसा प्रमाद तो कभी भूलकर भी नहीं करेंगे। वे सहस्राक्ष जब मर्त्यलोककी श्रद्धा स्वीकार करनेमें व्यस्त होते हैं, हम अप्सरा-वृन्दको अवकाश मिल जाता है।

मैं पितृपदोंका प्रत्यक्ष करने बदरिकाश्रम भी जा सकती थी ; किंतु वहाँ वे उस रूपमें तपस्वी हैं। पुत्रीको अपने आश्रममें पाकर वे प्रसन्न नहीं होंगे। अतः उनके पद-वन्दनका सौभाग्य वहाँ मुझे प्राप्त नहीं है। अब गोकुलमें इन लीलामयसे एकात्मता कर ली है उन्होंने, तो यहाँ मैं उनके दर्शन कर सकती हूँ। इसमें भी एक बाधा है। अभी ये पुरुषोत्तम शैशवका नाट्य कर रहे हैं। फलतः मुझे छिपकर ही इनका दर्शन करना है।

सुरपतिको सुरोंके साथ इन दिनों बहुत कम स्थानोंसे आहुतियाँ मिलती हैं। कंस और उसके अनुचरोंने यज्ञ-यागके विध्वंसका व्रत ले ही रखा है। वाणासुर, जरासन्ध जैसे नैष्ठिक माहेश्वर भी सुरोंको नहीं पूजते-पूछते। श्रुति सम्मत सम्यक् विधिसे सुरोंका सत्कार व्रजमें विशेष रूपमें

होता है। ऋषि-मुनियोंके बड़े समूहने यहीं शरण ले रखी है। अतः सुरपति सुरोंके साथ प्रायः इस अवसरपर प्रधान रूपसे यहीं पधारते हैं।

महेन्द्र यज्ञमें भाग लेने आये हैं अमरोंके साथ। वे प्रत्यक्ष आहुति ग्रहण करें या अदृश्य रहकर, हम अप्सराओंका तो यज्ञस्थलमें कोई काम नहीं है। हमको कहाँ हव्यवाह आहुति देते हैं अतः ऐसे अवसरपर अमरावतीमें अप्सराओंको अवकाश मिल जाता है। मैं कल मध्यरात्रिमें ही गोकुलके लिए चल पड़ी तो किसीको भी आपत्ति नहीं थी। हमारे देवलोकका दिवस मानवके ६ मासके बराबर होता है। उसमें भी यह दक्षिणायन की रात्रि। मैं गोकुल आ गयी सुरोंकी भी मध्यरात्रि व्यतीत होनेपर तो वहाँ मुझे कौन ढूँढ़ेगा। महेन्द्र भी यहाँ आनेको प्रस्तुत ही हो रहे थे।

भगवती पद्मोद्भवाकी पूजन-महारात्री। गोकुलके आस-पासकी वन भूमि तक सदा मणियोंके प्रकाशसे प्रकाशित रहती है। इस रात्रिमें तो यहाँ दीपावली मनायी गयी है। भवनोंपर भीतर और बाहर सर्वत्र दीपोंकी जगमग करती पक्तियाँ हैं। सुरागनाएँ इस गोकुलकी शोभा, सौन्दर्य वैभवकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं। मेरा अन्तर आह्लाद, अभिमानसे उत्फुल्ल है! अन्ततः यह मेरा पितृगृह है।

मुझे अपनेको छिपानेके लिए कुछ नहीं करना पड़ा। यहाँ तो भगवती शारदा, कमला तक सामान्य दासियोंसे मिली सेवारत हैं। उनका चिन्मय श्रीअङ्ग ही जहाँ सामान्य है, वहाँ उर्वशी कुछ कुरूप दासी ही तो लगेगी। यहाँ उर्वशीकी ओर कौन ध्यान देने वाला था कि मुझे अपनेको छिपाना पड़ता।

बहुत व्यस्त-रात्रि है गोकुलमें दीपावलीकी रात्रि। सब सायंकालसे प्रदीप सज्जित करनेमें लगे रहे। सखाओंके साथ श्याम-सुन्दर ही जब सोल्लास दीपमाला सजाते रहे तो गोपों, गोपियोंका उल्लास-अपार होना ही था। शिशुओंका मण्डल लिये सबके गृहोंपर दीप सज्जा करते रहे ये सर्वेश और मैं पहिचान सकती हूँ कि प्रत्येक दीपकके स्थानपर जो कलाकृति है, वह किसके करोंकी है। भगवती कमलाको माता कहती हूँ मैं! पुत्री अपनी माताकी कृति पहिचाननेमें भूल तो नहीं कर सकती।

मध्यरात्रिको महालक्ष्मी पूजन किया गोपोंने अपने गृहोंमें अत्यन्त संक्षिप्त रूपमें। सब शीघ्र नन्द-भवन आ गये श्रीव्रजराजके अङ्कमें बैठे उनके कुमारके साथ अर्चामें सम्मिलित होने।

इन इन्दीवर सुन्दरको रमाका अर्चन करनेकी सूझी तो मना कौन करेगा? षोडष भुजा आद्या परमाशक्ति महालक्ष्मीको भी इनके करोंकी पूजा स्वीकार करनेमें सङ्कोच होता है! क्षीराब्धि-सम्भवा मेरी माता इन्दिरा तो इनके आविर्भावसे भी पूर्व आ गयी है व्रजमें और यहाँके पत्ते-पत्ते, कण-कणको सजानेकी सेवामें सावधानीसे संलग्न हैं। उनका आवाहन—पूजन यहाँ कहाँ आवश्यक है। वे मुझे आते ही मिल गयीं। मैंने प्रणाम किया तो सस्मित संकेत कर दिया उन्होंने 'यहाँ यह सब नहीं! तू आ गयी है तो चुपचाप किसी सेवामें लग जा।'

मध्यरात्रिके पश्चात् पूजन समाप्त हुआ। उज्वल बताशे, धान्यकी खीलें, मल्लिका सुमन, सब अर्चा एवं नैवेद्यके उज्वल उपकरण! कितने आनन्दित थे पूजाका प्रसाद पाकर शोभासिन्धु सखाओंके साथ। इनको और इनके अग्रजको इस श्वेत सामग्रीके अम्बारमें क्या क्षणार्धको क्षीरोदधिका स्मरण हुआ होगा?

रात्रिके तृतीय प्रहरका भी एक भाग व्यतीत हो गया तब सखा अपने गृहोंको विदा हुए। इन्होंने शयन किया जननीके अङ्कसे लगकर। सभी दासियोंके साथ मुझे भी तो सेवा-व्यस्त होना था।

महारात्रिमें मर्त्यलोकके मानवके लिए निद्रा लेना मना है। केवल शिशु, वृद्ध एवं अस्वस्थ जनोंको शास्त्र आज शयनकी आज्ञा देते हैं। गोकुलमें तो वैसे भी किसीको निद्रा लेनेका आज अवकाश नहीं। गोप-गोपियाँ और इनके अपने गृहोंके सब दास-दासी महालक्ष्मी पूजनके पश्चात् लग गये कल प्रातः होने वाले इन्द्र-यागकी प्रस्तुतिमें। नगरसे बाहर यज्ञ होना है तो वहाँ सम्पूर्ण सामग्री पुरुषोंको ही ले जानी है। स्त्रियोंको सामग्री प्रस्तुत करनी है।

सुरोंको सन्तुष्ट करनेके लिए मानव कितनी महान् श्रद्धाके साथ कितना श्रम करता है, कितनी सामग्रियाँ, कितने नैवेद्य किन-किन श्रम-साध्य विधियोंसे बनाता है, अपने उपभोगके सर्वोत्तम पदार्थ कैसे सहज भावसे अग्निकी आहुति करता है, यह समीपसे देखनेका सुअवसर मिला

मुझे। सुरोंके सुख, विलासके पीछे मानवका इतना बलिदान—मुझे आज लगा कि क्यों सत्त्व वृत्ति, तेजोदेह, सुरभिग्राही होनेपर भी सुर सर्वेशसे दूर हैं और क्यों नर-को उन नारायणने अपना सखा स्वीकार किया है। वस्तुतः मानव महान है—सृष्टिमें सर्वोपरि है मानव। सुरोंके सौन्दर्य, सम्पत्ति, शक्ति, ऐश्वर्यकी नगण्यता मुझपर स्पष्ट हो गयी। लेकिन मैं यहाँ रह नहीं सकती। सर्वेश नारायणने मुझे स्वर्गका उपहार बना दिया है। यहाँका यह जो कुछ समय मुझे मिला, मेरे देव-जीवनमें भी यह दुर्लभ है।

बहुत कार्य है। सब व्यस्त हैं। अद्‌भुत है गोकुल ! कोई प्रमाद नहीं करती। मुझ जैसी अनभ्यस्ता, अकुशलकी ओर भी कोई उपालम्भकी दृष्टि नहीं उठाती। मैं पदार्थ उठाकर देने-धरनेमें भी यहाँ दुर्बल हूँ, किंतु सब सहायता, सहानुभूति देती हैं। सबका प्रयत्न है कि वही अधिकसे अधिक कार्य कर ले और दूसरी सब विश्राम करें मुझे अनेकोंने टोका—'तू इतना श्रान्त क्यों होती है ? तनिक विश्राम कर ले !'

माता व्रजेश्वरी तो उठ गयी अपने अङ्कधनको सुलाकर। मैं उस कक्ष-की ओर चल पड़ी थी। भगवती शारदाने कर पकड़ा—'तू इतनी उतावली करेगी तो दूर भेज दी जायगी। दूरसे ही यदा-कदा दर्शन कर लिया कर ! हम सब काम समुत्सुक नहीं है ; किंतु कोई वहाँ जाय, यह मैयाको सहन नहीं होगा !'

ये आनन्दघन, केवल चिद्-विग्रह ; किंतु क्या विचित्र लीला है। नेत्र बन्द किये निद्रित हैं। योग निद्रा केवल शेषशायीकी पलकोंका प्रलयमें स्पर्श पाती हैं और ये परम पुरुष सो रहे हैं ? झीने पीतपटसे छनकर आती इनके इन्द्रनील श्रीविग्रहकी कान्ति, अलकोंमें-से घिरा चन्द्रमुख, वस्त्रसे बाहर शिथिल पड़े अरुण पद्मपाणि—भगवती शारदा संकेतसे सचेत न करतीं तो मैं पता नहीं कब तक एकटक देखती रहती। कुछ भी हो पुत्री पिताके घरमें असावधान हो ही जाती है। मैं बार-बार भूल जाती हूँ कि मैं यहाँ सेविकाके रूपमें हूँ।

भगवती शारदा आज सहज स्नेहवश अपनी इस अल्हड़ अप्सरा पुत्रीको सम्हालने लगी हैं। व्रजेश्वरी अपने सुतको सुलाकर उठीं, पद्मगन्धा-का दूध अँगीठीपर स्वयं रखा उन्होंने आते ही। दधि भाण्डमें डालकर मथानीकी रज्जु करोंमें ली। मैं जा रही थी उनके हाथसे रज्जु लेकर मन्थन

करनेका आग्रह करने। देवी शारदने फिर रोका—'तू देखती नहीं कि मैया-ने सब सेविकाओंको कितने अनावश्यक कार्य सौंप दिये हैं। आज वे स्वयं दधि-मन्थन करके अपने हाथका निकाला नवनीत श्यामको खिलाना चाहती हैं। उन्हें सन्देह है कि हममें कोई भी पूरी सावधानीसे उत्तम माखन नहीं निकाल पाती। इससे उनके पुत्र अत्यल्प माखन खाते हैं। तू वहाँ जायगी तो तुझे कुछ देकर वे यज्ञ-स्थल भेज देंगी। यज्ञ देखना है तुझे? श्रीनन्दराय इस समय वहाँ इन्द्र-ध्वज आरोपित करने वाले होंगे।'

मैंने भगवतीको मस्तक झुकाया। बहुत यज्ञ देखे हैं मैंने। कोई यज्ञ नहीं जो मेरा देखा न हो। सुरोंको यद्यपि ऐन्द्रियक भोग प्राप्त नहीं होते, मनुष्योंके मनोराज्यसे किञ्चिद् भिन्न हैं देवताओंके भोग देहके भोग; किंतु शची की अपेक्षा कहीं अधिक मैं विलासी सुरपतिको वशमें रखना जानती हूँ। मैं भले देव-सभामें शचीके समान इन्द्रके साथ सिंहासनपर न बैठ सकूँ; किंतु शक्र किसी यज्ञमें साथ ले जानेका मेरा आग्रह टालनेकी शक्ति नहीं रखते। यज्ञ-स्थलमें जाकर मुझे क्या देखना है। मैं यहाँ दधि-मन्थन करती अपनी इन पितामहीके पद दर्शन तो कर सकती हूँ।

व्रजेश्वरी—सर्वेश्वरी भी जिन्हें माता मानकर मस्तक झुकावें, उनका यह सौन्दर्य धन्य है! केशोंमें लगी मल्लिकाकी मालाके पुष्प मध्यमें एक दो करके स्खलित हो रहे हैं। वेणी हिल रही है और शिथिल पड़ गयी है। स्वेद विन्दु आ गये हैं भालको भूषित करते सिन्दूर विन्दुके इधर-उधर। नासिकापर झल-मलाते ये विन्दु! कपोलोंपर कर्णमें पड़े मणि कुण्डल चञ्चल हो रहे हैं। चञ्चल हो रहे हैं कञ्चुकीसे कसे पयोधर और उनसे झरते वात्सल्यसे कञ्चुकी वस्त्र आर्द्र हो रहा है। दोनों कर चल रहे हैं रज्जु खींचते। कङ्कणोंकी ध्वनिमें स्वर मिलाकर ये अपने पुत्रके मञ्जु-चरित गा रही हैं। यह ललित काव्य! यह स्वर सौष्ठव! मैं स्वर्गकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा भी यह स्वर-सङ्गीत् काव्य कभी कल्पनामें आवेगा—नहीं सोच सकी।

'नहीं री! मैं उनकी चरण-चर्चिका मात्र हूँ।' मैंने भगवती शारदा-की ओर सोपालम्भ देखा। मैं कहना चाहती थी—'आप यह स्वर, सङ्गीत, काव्य दे सकती हैं और इस पुत्रीको अबतक आपने वञ्चित रखा?' लेकिन उन्होंने स्वयं कहा—'मैं भी इनकी पद-रजकी ही कामना करती हूँ। इनके प्रभावको जानना मेरे भी वशमें नहीं। तू केवल दर्शन कर!'

अञ्जन-रञ्जित विशाल लोचन तनिक ग्रीवा मोड़कर शयन करते स्नेहसिन्धु सुतकी ओर बार-बार उठ जाते हैं। निश्चिन्त हैं कि वे सो रहे हैं। कर शीघ्रतासे चल रहे हैं।

जागे सर्वेश। तनिक ऊँ-आँ करके नन्हें करसे नेत्र बन्द किये ही पार्श्वमें मैयाको टटोला। तनिक फिर शिथिल हुए, फिर टटोला और नेत्र खोले—जैसे सरोजश्री साक्षात् हो गयी। ग्रीवा घुमानेके लिए उत्तान हुए। पद चलाकर पीताम्बर पदोंकी ओर हटा दिया और अब ग्रीवा मोड़कर मैयाको देखने लगे हैं।

नन्हा-सा मुख खुला जम्हाई लेते ! उज्ज्वल दन्तावली ! करोंके पृष्ठ भागसे नेत्र मलने लगे हैं। फैल गया कपोलों तक अञ्जन। दोनों करोंके पृष्ठपर भी लग गया है। पुकारते हैं—'मैया !'

मैया कहाँ सुनती है। वे तन्मयी हो गयी इनके गुण-गानमें। अब ये पेटके बल होकर शैय्यासे उतरने लगे हैं। इनके ये सुकुमार अरुण-चरण ! मन करता है कि अपनी हथेली रख दूँ कि चरण ये उनपर रखें। नेत्र मलते, जम्हाई लेते, डगमग पदोंसे ये चल पड़े हैं !

'मैया !' पीछेसे जाकर व्रजेश्वरीके पद पकड़े दोनों भुजाएँ फैलाकर। मैयाने मुड़कर देख लिया है। लेकिन दधि-भाण्डमें झाँकती हैं—'तू तनिक रुक ! अभी नवनीत ऊपर आ रहा है। मेरा लाल माखन खायगा !'

'दूध !' यह पीछेसे मैयाके बाम पादकी ओर आ गये हैं—'दूध पिला !'

'लाल ! अभी माखन देती हूँ।' मैया भाण्डमें देखती हैं। माखन तैर आया है, यह इनकी दृष्टि कहती है। दो-चार हाथ और, बस !

'दूध !' ये खीझेसे स्वरमें कहकर दधि-भाण्ड पकड़ते हैं एक हाथसे और एक हाथ बढ़ गया मथानी पकड़नेको। इनके दिगम्बर शरीरपर जहाँ-तहाँ पड़े ये उज्ज्वल दधि-बिन्दु ! निर्मल नीलनभमें नक्षत्र भी कहाँ इतनी शोभा देते हैं।

अब इस कोमल करसे पकड़ी मथानीको मैया हिला तो सकती नहीं हैं। हँसकर रज्जु छोड़कर वहीं बैठ जाती हैं भूमिमें ही। मैं आसन देने भी नहीं जा सकती। देवी शारदा संकेतसे वर्जित कर रही हैं। व्रजराजकुमार कितने क्षुधातुर हैं मैयाके वात्सल्यसे स्रवित होते पय पानके लिए। मथानी

भाण्ड छोड़कर स्वय अङ्कमें आकर अञ्चलके भीतर मुख छिपा लिया इन्होंने।

मैयाकी ओर बार-बार अञ्चलसे सिर निकालकर सस्मित देखते हैं। मैया दूधसने अरुण।धर वाले इस मुखको कितने स्नेहसे देखती हैं। भगवती शारदाने धीरेसे कहा—'कई बार ये अधर फड़काकर फुर्र करके मुखके दूधसे मैयाका मुख उज्ज्वल कर देते हैं।'

मैं हँस ही पड़ने वाली थी कि मैयाने तो इनको बलपूर्वक गोदसे भूमिमें धर दिया और भाग पड़ी। ऐसा हुआ क्या ? मुझे अपनेपर ग्लानि हुई। हम सब कहाँ इतनी सावधान हैं। इन कमल-लोचनके सम्मुख रहते भी इतनी सावधानी, यह मैयाकी ही महिमा है। वे जानती हैं कि सेविकाएँ नीलमणिको देखकर सावधान नहीं रह पातीं। पद्मगन्धाका दूध इसीसे उन्होंने अपने सामने ही अँगीठीपर रखा था कि दधि-मन्थन करते उसपर दृष्टि भी रख सकें।

दूधमें उफान आ रहा था और हममें-से एककी दृष्टि भी उधर नहीं गयी। यही दूध तो ये व्रजराजकुमार पीते हैं। यह उफन कर गिर जाय तो दूसरी गौके दूधको मुख भी नहीं लगावेंगे। ये भूखे रह जायँगे इस दूधके बिना और हममें सब इनकी ओर देखनेमें प्रमत्त हो गयीं।

दूध तो मैया उतार देंगी अब ; किंतु इनको इस प्रकार माता द्वारा अंकसे उतारा जाना कैसा लगा होगा ? ओह, इनका तो मुख अरुण हो आया है। नन्हें अधर फड़कने लगे हैं। इन्होंने दाँतोंसे अधर दबा लिया है। क्रोधके कारण बड़े-बड़े विन्दु विशाल दृगोंसे कपोलोंपर आ गिरे हैं। दोनों मुट्ठियाँ बाँधकर खड़े हो गये हैं। मैं भयसे काँप उठी ; किंतु भगवती-ने हँसकर कर पकड़ा—'तू डरती क्यों है ? यहाँ ये कोई बड़ा उत्पात कर नहीं सकते !'

इधर-उधर देखकर मन्थन-भाण्डके नीचे जो उसे सीधा रखनेको पाषाण लगाया था मैयाने, उसे बैठकर दोनों हाथोंसे निकाल लिया। उठ खड़े हुए उसे लेकर। दोनों हाथोंमें पूरा ऊपर उठाकर पाषाण पटक दिया दधि-भाण्डपर। भड़ाम् ! भारी शब्द हुआ और माखन, छाछ सब पूरे कक्षमें फैल गया।

मुझे हँसी आयी—'इन्हें क्षीरोदधि रुचता है। अब कक्ष कुछ वैसा हो गया।'

लेकिन दो क्षण फूटे भाण्डकी ओर देखते रहे और फिर उस छाछमें छपाछप करते भागे। छाछ–दधिमाण्ड कहना अधिक उपयुक्त है उस गाढ़े छाछको। उसके द्वारा अंकित इनके चरण-चिह्न ! ये वज्र, अंकुश, ध्वज, कमल, स्वस्तिकके चिह्न ! मैंने एक चिह्नसे तनिक छाछ अँगुलीसे उठाकर मुखमें लिया। देवी शारदा समीप आ गयीं। इस बार रोकनेके स्थानपर मेरा अनुकरण किया उन्होंने ; किंतु हमें शीघ्र एक ओर हट जाना पड़ा। मैया दूध उतारकर लौटी। भाण्ड फूटनेका शब्द उसने सुन लिया था। कक्षमें फैला छाछ, नवनीत देखा और इधर-उधर देखकर हँस पड़ी—'यह बहुत ऊधमी हो गया !'

मैं अमरांगना हूँ। अमृत पान किया है मैंने। नारायणकी सङ्कल्पोद्भवा होनेसे भी दिव्या हूँ ; किंतु मैया हँसी न होती तो उसे साटिका उठाते देखकर भयसे अवश्य मर जाती। मैयाके हास्यने आश्वस्त कर दिया कि अपने सुकुमार लालको वह किञ्चित् भीत ही करना चाहती है, मारेगी नहीं।

यह कोई अन्वेषणका विषय नहीं था। पद-चिह्न स्पष्ट सूचित कर रहे थे कि वे भाण्डभेदक कहाँ गये हैं। मैयाके पद भी भीग गये थे उसी तक्रमें और वह तक्र तो अवश्य शक्रको भी सुदुर्लभ है ही। अपने पद-चिह्न बनाती मैया भी दबे पैर साटिका लिये। पुत्रके पद-चिह्नोंको देखकर चल पड़ी।

अब हमारी दृष्टि गयी। कक्षका बहिर्द्वार भी खुला था। मध्यमें पता नहीं ऊखल पहिलेसे उलटा था या आपने स्वयं उसे उलट लिया था। ऊँचे छीकोंपर माखन रखनेके लिए मैयाने भी उसे उलटाकर रखा हो सकता है। उसीपर खड़े थे व्रजराजकुमार एक हाथसे छीका पकड़े।

अबतक प्रभातका प्रकाश फैल चुका था। कपियोंका एक पूरा समुदाय कक्षके भीतर सम्मुखके खुले द्वारसे आ गया था। उनमें-से जो समीप आकर दो पैर खड़ा होकर हाथ उठाता था, उसके हाथपर उज्ज्वल माखन-का लोंदा आ जाता था। कपि भी इतने अनुशासित होते हैं ? क्यों न हों, जब उन्हें इस प्रकार भरपूर माखन मिलता हो। कोई धूम-धाम, उछल-

कूद, छीना-झपटी, खा-खू नहीं। लोंदा लेकर एक ओर जाकर चुपचाप खाने लगते हैं।

एक हाथसे छीका पकड़े, दूसरे दक्षिण करसे कपियोंको उदारता-पूर्वक माखन बाँटते ये दिगम्भर नीलसुन्दर चकित-चकित शंकित नेत्रोंसे द्वारकी ओर भी देखते जाते हैं। मैयाके आ जानेकी आशङ्का तो है इन्हें ; किंतु कपियोंको पुरस्कृत भी तो करना है। बहुत श्रम किया है इन कीशोंके पूर्वजोंने त्रेतामें लंकाकी युद्ध-भूमिमें इनके साथ।

कपियोंमें हलचल पहिले हुई। वे माखनका लोंदा हाथमें उठाये द्वार-से बाहरकी ओर भागे और इन उलूखलारूढ़की दृष्टि भी साटिका लिये आती मैयापर पड़ गयी। छीका छूट गया। माखन भरे दक्षिण कर कूदे ऊखलसे और भागे।

'ठहर वानर-बन्धु !' मैया भी दौड़ी और मुझे हँसी आ गयी। अब इनकी अलकें लहराती हैं, नूपुर किंकिणी, कंकण बजते हैं और अरुण चपल चरण दौड़ रहे हैं। दो क्षण हँसे खिल-खिलाकर ; किंतु मैयाकी ओर मुड़-कर देखते ही हास्य रुक गया।

मैया दौड़ रही है। साटिका उठाये दौड़ रही है। व्रजेश्वरीको भला कभी क्यों दौड़ना पड़ा होगा। केशपाश खुल गया है। वेणीमें गुंथे पुष्प पृथ्वीपर पड़े रुदनसे कर रहे हैं। मुख स्वेद विन्दुओंसे भर गया है। कुण्डल हिल रहे हैं, हिल रहे हैं वात्सल्य भरित भारि पयोधर और नितम्ब ! श्वासकी गति बढ़ गयी है ; किंतु व्रजेश्वरी दौड़ रही हैं।

ये घूम जाते हैं, गोल घूमते हैं, टेढ़े-मेढ़े भागते हैं ; किंतु ये परम सुकुमार कब तक भागेंगे ? मैया इनके चपल-चरणोंके साथ ही कब तक दौड़ें ! इनका तो मुख अत्यन्त अरुण हो उठा है। लगभग हाँफने लगी हैं। मुझे दया आती है।

मुझे दया आती है और दया सिन्धुको दया नहीं आवेगी ? मुड़कर मैयाके मुखकी ओर देखा—देखा श्रान्ता, स्वेद-स्नाता, हाँफती माताको और लो खड़े हो गये ; किंतु यह क्या ?' जिनके भयसे महाकाल भी काँपते हैं, वे मैयाके भयसे रुदन करने लगे ? अत्यन्त कातर दृष्टिसे साटिकाकी ओर देखते कितने आर्तस्वरमें कहने लगे हैं—'मैया ! मुझे मार मत ! मैं फिर ऐसा नहीं करूँगा !'

'चल भाग ! और भाग तू !' मैयाने साटिका गिरा दिया हाथसे। परम वत्सला माता शिशुका इतना भीत मुख कैसे देख सकती थीं ; किंतु अभी क्रोधसे डाँट रही हैं—'देखूँ तू भागकर कहाँ जाता है ?'

'नहीं भागूँगा—अब नहीं भागूँगा।' ये वाम करसे अपने विशाल लोचन मल रहे हैं। रुदन कर रहे हैं। अञ्जन-कृष्ण अश्रुके विन्दु ढुलका रहे हैं कपोलोंपर।

'यहाँ आ ! तू इस ऊखलपर खड़ा था न !' मैया तो इनका दक्षिण माखन-सना कर पकड़कर कक्षमें ले आयीं इनको। 'खड़ा हो इसके समीप ! मैं इसीमें तुझे आज बाँधूँगी।'

'मैया !' इतनी कातर दृष्टि, इतनी कातर वाणी ; किंतु मैया देखती नहीं इनके मुखकी ओर। वह सब सेविकाओंको डाँटती है—'सब देखती क्या हो ? रज्जु ले आओ !'

यह आज्ञा-पालन मुझसे नहीं होगा, परंतु क्या सेविकाएँ कम हैं ? रज्जु तो आ गयी। ये मैयासे भयभीत ऊखलसे सटकर सहमे खड़े हो गये हैं ; किंतु मुझे आश्वासन प्राप्त हो गया। भगवती योगमाया आ गयी हैं, यह मानव दृष्टिसे भले न दीखें, मुझ सुराङ्गनाकी दृष्टि तो देख सकती है। अब ये सर्वेश्वरी उपस्थित हो गयी हैं तो अपने स्वामीकी कुछ तो सहायता करेंगी ही।

योगमायाके अदृश्य करोंका कौशल मैं स्पष्ट देख सकती हूँ। व्रजेश्वरीकी रज्जु ऊखल और अपने कुमारको लपेटनेमें दो अँगुल छोटी हो गयी है। मैया दूसरी रज्जु जोड़ती हैं—यह भी दो अँगुल छोटी, तीसरी जोड़ती हैं—दो अँगुल छोटी।

'रज्जु लाओ ! जितनी रज्जु हैं सब उठा लाओ !' मैं आज इसे बाँधकर छोड़ूँगी।' सेविकाएँ भागती हैं रज्जु लेने। मुझे हँसी आ रही है ! मैं बोल सकती यहाँ तो कह देती—'आप सृष्टिकी समस्त रज्जुएँ और नागपाश, वरुणपाश, ब्रह्मपाश सब एकत्र कर लें तो भी अब उद्योग व्यर्थ है। योगमायाके करोंकी शक्ति अचिन्त्य है। वे जिसे पाश-मुक्त रखना चाहें, महामायाके महापाश भी उसे बाँधनेमें असमर्थ हो जाते हैं और आप तो अपने नित्यमुक्त, अनादि अनन्तकुमारको बाँधना चाहती हैं ! देशकाल भी जिनमें कल्पित हैं, उन्हें कोई पाश अपने घेरेमें ले कैसे सकता है ?'

मैं भले बोल न सकूँ, गोपियाँ आ गयी हैं और सब हँस रही हैं। अनेक बोल उठी हैं—'व्रजेश्वरी ! यह तो आपके प्रसन्न होनेकी बात है कि विधाताने आपके लालके ललाटमें बन्धन नहीं लिखा है। बालकने कुछ नवनीत खाया-लुटाया तो क्या हुआ ! जाने दो ! खेलने दो इसे !'

हाय रे दुर्भाग्य ! कोई बड़ी बूढ़ी, जेठानी इस समय यहाँ इन व्रजेश्वरीकी नहीं। इन्होंने तो एक ओरसे सबको डाँट दिया—'तुम सबोंने ही इसे इतना उत्पाती बना दिया है। प्रतिदिन उलाहना देते-देते मुझे व्याकुल किये रहती हो और अब आ गयीं सहानुभूति दिखलाने ! सब दूर रहो ! मैं इसे आज ऐसे छोड़ दूँ तो फिर मेरी मानेगा यह ? मैं इसे बाँधूँगी !'

मैयाका निश्चय है बाँधूँगी ! भगवती योगमाया न बाँधने देनेको कृतसंकल्प लगती हैं। अब क्या होगा ? मैया एकपर एक रज्जु जोड़ती जा रही हैं। पहिले ही दौड़-दौड़कर थक चुकी हैं और अब यह रोषका आवेश और थकाये दे रहा है। शरीरसे स्वेदकी धारा चलने लगी है। मुख बहुत लाल हो आया है, परंतु आज ये हठपर उतर आयी हैं।

'सब सुस्त हैं ! इन्हें रज्जु भी नहीं मिलती।' व्रजेश्वरी झल्ला उठी हैं। सेविकाएँ दौड़-दौड़ कर रज्जु लानेमें लगी हैं; किंतु अब दूसरी गृहोंसे रज्जु लानी है तो वहाँ पूछनेमें, ढूँढ़नेमें देर तो लगेगी ही।

मैयाने अपनी बेणींसे रज्जु निकाल ली और लो, इन कमल लोचनके नेत्रोंमें पलार्धको कोई संकेत कौंध गया। भगवती योगमायाने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया। मैयाके वात्सल्यके सम्मुख उनका ऐश्वर्य पराजित होकर ही शोभा पा सकता है। मैयाके केशपाश-बन्धनको स्पर्श करके वे अवमानित नहीं कर सकतीं। यह नन्ही रज्जु दुहरी करके जोड़ी गयी और बँध गये ये सर्वेश्वरेश्वर !

'सब यहाँसे चली जाओ !' व्रजेश्वरीने एक ओर से सबको ही डाँट दिया—'शिशुओंके अतिरिक्त कोई इसके समीप मत आना !'

'यशोदा !' अच्छा हुआ कि ये उपनन्द पत्नी आ गयीं इस अवसरपर। अब अपनी इन जेठानीको तो व्रजेश्वरी डाँट नहीं सकती। ये ताई क्या अपने नीलमणिको बँधा रहने देंगी।

'जीजी !' मैयाने पद-वन्दनाकी। हाथ पकड़कर एक ओर ले आयीं—'इसने बहुत ऊधम किया है। मैंने धमका दिया, दौड़ाकर पकड़ा। अब बहुत डर गया है। अभी आप खोल देंगी तो पता नहीं कहाँ भाग जायेगा। मैं कहाँ ढूँढूगी इसे? आप भी कहाँ ढूँढ़ेंगी? क्या ठिकाना कि खुलनेपर आपके साथ आयगा ही; सबेरेसे भूखा है। तनिक भी माखन इसके मुखमें नहीं गया। जो माखन मैं मथकर लगभग निकाल चुकी थी, वह तो इसने फैला दिया। अब इसके कुछ कलेऊकी व्यवस्था कर लूँ तो खोल दूँगी। खोलनेपर खाने-पीनेमें लगेगा तो भय,रोष भूल जायगा।'

उपनन्द पत्नी हँसकर सन्तुष्ट होकर चली जा रही हैं; किंतु मेरे लिए इनका यह दामोदर स्वरूप देखते रहना सम्भव नहीं है। मैं न यहाँ इनको देखे बिना रह सकती, न इस रूपमें इन्हें देख सकती। अतः अब मेरा अमरावती लौट जाना ही उत्तम है।



यमलार्जुन

हम दोनों लोकपाल धनाधीश कुबेरके पुत्र हैं। सम्पत्तिके साथ सौन्दर्य भी प्राप्त हो यह अनिवार्य तो नहीं है। हमारे पिता वैश्रवण कुरूप होनेके कारण ही कु+बेर (देह) कहे जाते हैं। हममें बड़े नलकूबर कुबड़े हैं नल—मेरुदण्डपर इनके कुब्ज है और जन्मसे ही कण्ठमें मणि बाँधे उत्पन्न होनेके कारण मुझे मणिग्रीव भले कहा जाय, सुरूप तो मैं भी नहीं हूँ।

लोग कहते हैं—'सब गुण स्वर्णमें निवास करते हैं, लेकिन यह माया-मोहित चाटुकार मानवकी ही मान्यता है। मानवोंमें जो महत्तम हैं, वे जानते हैं कि अर्थ अनेक अनर्थोंका मूल है। भगवती लक्ष्मी उलूक-वाहिनी हैं। यदि सम्पत्तिके साथ श्रीहरिके चरणोंमें श्रद्धा न रही तो अनिवार्य रूपसे सम्पत्तिशील, सद्गुण सद्बुद्धिके विनाशका कारण बनती है। मदान्ध होकर व्यक्ति अनेक व्यसनोंका आखेट बन जाता है।

हमें भले सौन्दर्य नहीं मिला था, धनाध्यक्षका पुत्रत्व पाकर हम अपनेको सर्वश्रेष्ठ तो मानने ही लगे थे। यक्षोंको सृष्टिकर्ताने पर्याप्त अधिक शारीरिक शक्ति दी है। जरा-रोगादिसे मुक्त रखा है। बराबर बनी रहनेवाली युवावस्था, शरीर बल, लोकपालके पुत्रत्वका पद, सबने मिलकर हम दोनोंको मदान्ध बना दिया था।

हमारे लिए पानी पेय ही नहीं रहा था। क्योंकि क्षुधा-पिपासा सुरों तथा उपदेवोंको भी सताती नहीं। मदिराको हमने पानीय बना लिया था। सुरोंको सुधा मिली, यज्ञमें सोमपान प्राप्त होता है तो असुरोंको भी समुद्र-मन्थनसे ही तो वारुणी प्राप्त हुई है। यक्ष उपदेवता हैं—असुरोंमें ही आते हैं। राक्षस हमारे छोटे भाई ही तो हैं।

सुरापानका नित्य साथ है स्त्री-सेवनसे और यक्षराजके पुत्रोंके लिए अप्सरा अनुपलब्ध रह नहीं सकती। हिमालय तपस्थली है, मुनियोंका अनादि उपासना स्थान और उमा-महेश्वरकी विहार भूमि ; किंतु हमारे मानसको तो उसकी सात्विकताने स्पर्श ही नहीं किया। पिता भगवान्

महेश्वरके सेवक—ऐसे सेवक कि आशुतोष प्रभु उनको सखा मानते हैं। हम दोनोंने उन भूतनाथके गणोंका सख्य, स्वभाव अपनाया।

श्रीहरि-चरण समुद्भवा, शिवशिरसि विहारिणी, कलिकल्मष-नाशिनी, पुण्यसलिला मन्दाकिनीको हम मदान्ध मूर्ख अपनी जलक्रीड़ासे कलुषित करने लगे थे। कर्मयोनि यक्ष भले न हो ; किंतु अत्युग्र कर्म तो सुरेन्द्रको भी भोग-भ्रष्ट करता ही है।

स्त्रियोंका एक समुदाय ही हमारे साथ था और हम दोनों भाइयोंने भरपूर उत्कट मदिरा पी रखी थी। उन्मद जलक्रीड़ा करने उतर गये थे मन्दाकिनीमें। सब सर्वथा नग्न—उस हिमप्रदेशमें कोई ऐसा समीप आवेगा जिसका संकोच करना पड़े, ऐसी कोई सम्भावना नहीं थी।

अनेक बार असम्भावित ही अचानक घटित होता है। देवर्षि नारद* भगवान् शंकरके यहाँसे नर-नारायणाश्रम जाते निकले और उधरसे ही आ गये। उन्हें देखते ही हमारे साथकी अप्सराएँ भागीं। जलसे निकलकर उन्होंने अपने शरीर वस्त्रोंमें छिपा लिये। हम दोनों भी यह देखने जलसे निकले कि स्त्रियाँ क्रीड़-त्यागकर बाहर क्यों भाग रही हैं ; किंतु देवर्षिपर दृष्टि पड़ते ही हम दोनों स्तब्ध खड़े रह गये। सुराके प्रभावमें यह समझमें ही नहीं आया कि हमको भी वस्त्र पहिनकर प्रणिपात करना चाहिये।

'ये इतने उन्मत्त हैं कि इन्हें अपने नग्न होने तकका भान नहीं!' दयामय देवर्षिको कभी क्रोध नहीं आता। वे करुणावरुणालय कमलाकान्त-के मनकी साक्षात् मूर्त्ति—उनका शरीर ही कृपाघन है। उन्होंने अपनी वीणापर कोई सङ्गीत प्रारम्भ कर दिया। क्या गाया उन्होंने, हम दोनों उसे स्मरण रखें, इस स्थितिमें नहीं थे, पर कुछ ऐसा ही—'धनमद, पदमद, देहबल-मद तीनोंने मिलकर इन्हें संज्ञा-शून्य कर दिया है। देवी लक्ष्मी अकेली आती हैं तो दृष्टि, श्रोत, वाणी सब विकृत कर देती हैं। परमात्मा-का वरदान है दरिद्रता। दरिद्र भोग-विवर्जित सहज तापस है। यदि कथंचित् संतोष आ जाय उसमें, उसका उद्धार सरल है।'

'तुम दोनों सुरसरिमें, जहाँ समस्त ऋषि-मुनि श्रद्धा समन्वित स्नान करते हैं, सुरापान करके स्त्रियोंके साथ यह कलुषित क्रीड़ाका साहस करते हो?' अपना सङ्गीत समाप्त करके उन दयामयने कहा—'तुम ऐसे उन्मत्त हो कि अपनी नग्नताका भी तुम्हें स्मरण नहीं। अतः अन्तःसंज्ञा

* किन्हीं ग्रन्थोंके अनुसार देवर्षि केवल इनको शाप देने वाले हैं।

रखने वाले तुम स्थावर वृक्ष बनकर गोकुलमें व्रजराजके द्वारपर रहो। वहाँ भी तुम्हें मेरी कृपासे स्मृति बनी रहेगी।'

उस समय तो बड़ा भय लगा। देवर्षिने यह भी अवकाश नहीं दिया कि हम उनके पदोंमें प्रणत होकर प्रार्थना करते। 'गोकुलमें श्रीकृष्णका अवतार होगा तब देवताओंके सौ वर्ष पश्चात् उनके स्पर्शसे तुम्हारा उद्धार होगा!' यह कहकर वे आकाशमें ऊपर उठ गये।

अब हम समझते हैं कि अपराधी, उन्मत्त, अनधिकारीको भी ऐसा आशीर्वाद देवर्षि ही दे सकते थे। अवश्य इसमें शापांश भी था—वरदानका वह उत्तरांश, जिसके कारण हमें वृक्षतासे वञ्चित होकर पुनः यक्ष देह प्राप्त हो गया! देवर्षिकी वाणीका पहिला अंश—हमें वृक्ष होकर गोकुलमें रहनेकी बात यदि शाप हो—हम अज्ञानियोंने उस समय उसे ही शाप माना; किंतु उससे बड़ा वरदान तो भगवती वीणापाणि भी सोच नहीं सकतीं। महर्षिगण, मुनीन्द्र, सुरेशादि भी व्रजमें कहीं कोई तृण-गुल्म होनेकी कामना करते हैं और हो नहीं पाते। गोकुलके गोपों-गोपियों, गायोंकी पद-रज प्राप्त होना कितना दुर्लभ है, यह अब हम जानते हैं और देवर्षिने तो हमें उसमें सदा-स्नानका अवसर दे दिया। हम गोकुलमें व्रजराजके गोष्ठ-द्वारपर, उनकी पौरिपर वृक्ष बनें—यह वरदान मिला हम अपराधियोंको उन परम पूज्यको प्रणाम भी न करके अवमानना करनेपर।

हमने जिसे शापोद्धार माना उस समय—हमारी मूर्खतावश हम भयभीत हुए और उन भयभीत हमारे मुखोंको देखकर ही देवर्षिने वृक्षत्वसे मुक्तिकी बात कह दी—वास्तविक शाप तो वही बन गया। हम दोनों वञ्चित हो गये सुर-दुर्लभ व्रजवास, व्रज-रजसे। हम वञ्चित हो गये श्रीनन्दनन्दनके सान्निध्य-से, उनकी मञ्जुक्रीड़ाके दर्शनसे!

हम दोनों देवर्षिके शापसे गोकुलमें अर्जुनके पौधेके रूपमें उत्पन्न हुए थे। तब शापके समाप्त होनेमें केवल मानवके लगभग सौ वर्ष शेष रहे थे। इससे पूर्व तो हमें एक अर्जुन वृक्षसे एकाकार होकर उसके रसमें रहना पड़ा। फिर उसके फलमें बीज बने तब कहीं उग सके। महर्षि शाण्डिल्य-की दृष्टि पड़ गयी और उनके आदेशसे श्रीनन्दरायजीके पिताने तभी हमको अपनी पौरिपर लगभग सटाकर लगा दिया, जब वे युवावस्थाके प्रारम्भमें गोकुलकी स्थापना कर रहे थे।

'ये दोनों वृक्ष देवशक्ति-संयुक्त हैं !' महर्षि शाण्डिल्यने कहा था। उनकी दिव्य दृष्टि हमें देखते ही पहिचान गयी थी—'इनका सम्मान-सेवा सबको अभीष्ट पूर्ति करेगी। ये गोष्ठके रक्षक रहेंगे !'

महर्षिके वचन तो गोपोंके लिए श्रुति-वाक्य हैं। गोपियाँ ही नहीं, व्रजेश्वरी तक हमारी पूजा करती थीं। वे प्रतिदिन सायङ्काल हमारे समीप प्रदीप रखती थीं। गोपियाँ मनौतियाँ करती थीं हमारे समीप और मानती थीं कि वे मनौतियाँ सफल होती हैं। हमें इस पूजा-श्रद्धाकी आवश्यकता थी ? हम उनकी पद-रज-प्राप्तिके पात्र बन गये थे, यह भी देवर्षिकी दयासे।

पिता धनाध्यक्षका हमपर स्नेह था। उनके यक्ष अज्ञात रूपसे हमारी देखभाल करने आ जाते थे। वे गोपोंकी, गोपियोंकी, गायोंकी, समीपके वनकी सेवा-सम्हाल करते रहें, यह तो उनका भी सौभाग्य ही था। हमारी सुरक्षा, सेवा, सिञ्चनके लिए तो गोप ही बहुत सावधान थे।

हम शीघ्र बड़े हो गये थे। वैसे भी अर्जुनके वृक्ष सीधे, सघन, अत्युच्च होते हैं, हम तो बहुत बढ़े थे। असाधारण उच्चता, मोटाई, सघनता हमें इस अकल्पित सम्मान तथा सौभाग्यने दे दी, इसमें क्या आश्चर्य।

गायें हमारी छायामें स्वच्छन्द बैठती थीं। वृषभ विश्राम करते थे। बछड़े-बछड़ियाँ उछलते-फुदकते थे। गोपोंकी गोष्ठी होती थी और गोप-बालक क्रीड़ा करते थे। हमें तो नन्दरायका भी शैशव स्मरण है।

श्रावणमें हमारी सुदृढ़ शाखाओंपर झूले डालकर जब गोपियाँ गाती हुई झूलती थीं—अलकामें भी हमें उतना आनन्द कभी नहीं आया था।

केवल कुछ वर्ष बहुत व्यथाके बीते—ग्रीष्मका ताप और शरदका शैत्य भी वैसी पीड़ा नहीं देता था। ये सब तो हमारी तपःसाधनाका साधन थे। हम दोनोंने पतझड़ कभी देखा ही नहीं। हम तो गोपों, गायोंके शीत या ताप तथा मध्यम वर्षामें भी सुरक्षा देनेमें संलग्न थे ; किंतु गोपियोंने मनौतियाँ जब प्रारम्भ कर दीं—'उनके व्रजराजको पुत्र प्राप्त हो !' बहुत व्यथाके वे दिन थे। हम सर्वथा असमर्थ हो गये थे। यक्षों द्वारा सन्देश पानेपर पिताने कह दिया था—'भगवान् गङ्गाधर और भगवती

हिमवान - सुता भी हँसकर मेरी प्रार्थना टाल गये, तब मैं कर क्या सकता हूँ।'

मनौतियाँ बढ़ती जाती थीं और बढ़ती जाती थी हमारी व्यथा ; किंतु हमने अपने पत्र तब भी शुष्क होकर गिरने नहीं दिये। ऐसा करके तो हम सेवासे ही वञ्चित हो जाते।

वृक्षोंके विशाल जीवनमें 'वर्ष दिवस जैसे व्यतीत होते हैं। व्यथाके वे वर्ष भी व्यतीत हुए और परमपुरुष श्रीनन्दनन्दनके रूपमें अवतीर्ण हुए। गोपियोंको लगा कि उनकी मनौतियाँ सफल हुईं। हमें जितनी पूजा उस समय प्राप्त हुई, सुरेशको समस्त सृष्टिमें किसी विशेष अवसरपर भी प्राप्त नहीं होती। हमारे उज्ज्वल तने गोपियोंके करोंके हरिद्रा कुंकुमकी छापोंसे बहुत ऊपर तक अङ्कित हो गये। हमें-सूत्र वेष्टित किया गया। मूल्यवान वस्त्रोंसे पूरा तना आच्छादित हुआ। इतना गौरवपूर्ण अलंकार यक्षेश्वर-पुरीमें अप्राप्य है।

हमने वह भाद्रकृष्ण नवमीके प्रभातका आनन्दोत्सव देखा और फिर तो मङ्गलवाद्य, गोपियोंका सङ्गीत, गोपोंका नृत्य अनेक बार हमारा स्वागत करने लगा। सुर अदृश्य गोकुल पधारते थे और स्पृहापूर्वक देखते थे हमारी ओर।

पूतना, तृणावर्त आदि असुरोंके उत्पातके भी हम साक्षी हैं। काका-सुर अपने स्पर्शसे हमें अपवित्र नहीं कर सका। हमपर तो काकभुशुण्डि सस्नेह बैठते हैं। अपना रात्रि-विश्राम-स्थान भी हमारी शाखाको ही बनाया था उन्होंने ; किंतु हाय! अब उन्हें भी विवश होना पड़ा यहाँ आवास-परिवर्तनके लिए!

कितना धन्य दिन था वह जब नन्दनन्दन एक करमें नवनीत लिये, घुटनों सरकते दूसरे करके सहारे प्रथम बार पौरि तक पहुँचे थे! ऊँची देहली पार नहीं कर सकते थे तब। वहीं बैठे-बैठे हमारी ओर देखते रहे थे।

देहली पार करने लगे तब तो सखाओंके साथ प्राय: हमारे समीप ही क्रीड़ा करते थे। अनेक बार माता रोहिणी अथवा मैया यशोदाको आती देखकर मेरी ओटमें हो जाते थे। खड़े होने लगे तब तो दोनों कर फैलाकर हमारे तनोंमें-से किसीसे चिपककर छिपते थे और फिर स्वयं अपना नन्हा सिर झुकाकर झाँकते इधर-से-उधर होते किलकारियाँ लेते

थे। हमारे चारों ओर घूमते थे हँसते-दौड़ते और मैया, माता रोहिणी या कोई सखा पकड़ने दौड़ते थे।

हमसे एक कर लगाकर अकेले अथवा सखाओंके साथ कितनी सीधी-उलटी परिक्रमाएँ कीं इन पुरुषोत्तमने हम दोनोंके तनोंकी। लेकिन बार-बार ये हमारी शाखाओंकी ओर देखकर गम्भीर हो जाया करते थे। हम दोनों सहम उठते थे—'अब गया – गया यह सौभाग्य !'

देवर्षिके वरदानका—आप शाप कहना चाहें तो वैसा सही—उसका अन्तिम अंश भी सफल होना ही था। कबतक वह टलता रहता। मैयाने इन मुकुन्दको ऊखलसे बाँधकर दामोदर बना दिया प्रभातकालमें ही।

'दाऊ दादा ! भद्र ! तोक !' ये रोते-रोते पुकारने लगे ऊखलसे बँधे-बँधे। मैयाने सब गोपियोंको डाँटकर भगा दिया। स्वयं किसी कार्यमें लगी होंगी। उन व्रजेश्वरीके भयसे कोई सेविका समीप नहीं आ सकती। ये पुकारते रहे—नन्हें तोकको पुकारते रहे।

दाऊ—इनके अग्रज दाऊ यहाँ होते तो क्या मैया इन्हें बाँध पाती ? मैया भी दाऊके रुष्ट होनेसे डरती ही है। वे बल इस रज्जुको कबकी तोड़ फेंके होते। कौन जाने ऊखलको ही पटककर फोड़ देते ! कितना स्नेह करते हैं अपने इन अनुजसे। दिनमें सोते भी हैं तो एक शय्यापर साथ। दोनों भाई एक ही आसनपर सटकर बैठते हैं। एक ही पात्रमें भोजन करते हैं। इतना सौहार्द तो हम दोनों भाइयोंमें भी नहीं रहा है। रात्रिको भी सो जानेपर ही माताएँ दोनोंको अपनी-अपनी शय्यापर ले जा पाती हैं। दोनोंको समान खिलौने, आभरण पसन्द हैं।

हमें वह स्नेह स्मरण है—मैयाने दोनोंके कर्णोंमें मणि-कुण्डल पहिना दिये थे। हमारे ही नीचे ये नवघनसुन्दर हँसते-कूदते अग्रजके वामपार्श्वसे सटकर बैठ गये। ये सदा उनके वामपार्श्वसे ही सटकर बैठते अथवा खड़े होते हैं। बैठें या खड़े हों, उनके विशाल कन्धेपर अपना सिर धर देंगे, तब कुछ कहेंगे उनके कानमें या केवल सिर हिलाकर हँसेंगे। उस दिन अग्रजका कुण्डल इनकी अलकोंमें उलझ गया। पता लगते ही इन्हें दोनों भुजाओंसे पकड़े, इनके सिरसे सिर सटाये वे गये माताके समीप और उसी दिन उन्होंने हठ करके वाम कर्णका कुण्डल उतरवा दिया। तबसे वे केवल दक्षिण कर्णमें ही कुण्डल धारण करते हैं।

आज वे दाऊ होते—किंतु आज तो वे व्रजराजके साथ पुरके बाहर प्रातःकालसे पूर्व ही चले गये इन्द्रयागके स्थानपर। वहाँसे तो उनके मध्याह्नसे पूर्व लौटनेकी सम्भावना नहीं है! ये रो रहे हैं, सखाओंको पुकार रहे हैं!

भद्र भी नहीं है और तोक भी नहीं। केवल ये कुछ छोटे बालक हैं। सब मिलकर प्रयत्नमें लगे हैं रज्जु खोलनेके। मैयाकी बाँधी सुदृढ़ ग्रन्थि शिशुओंके नन्हें करोंसे खुलेगी! सब शीघ्र निराश हो गये—'कनूँ! यह तो नहीं खुलती!'

इन्होंने शिशुओंके प्रयत्नके साथ ही रुदन बन्द कर दिया था। सिर झुकाकर ग्रन्थिकी ओर देखने लगे थे। बोले—'तुम सब एक ओर हटो। मैं ऊखलको गिराऊँगा!' बालकोंने भी सहायताकी और ऊखल गिर गया। अब घुटनोंके सहारे ऊखलको घसीटते ये दामोदर धीरे-धीरे सरकने लगे।

'धीरे ठेलना!' ये डेढ़-दो वर्षके शिशु एक दूसरेको सावधान कर रहे हैं। अपने कोमल करोंसे अपनी समझसे पूरी शक्ति लगाकर ऊखल ठेलते हैं और डरते भी जाते हैं कि ऊखल अधिक वेगसे लुढ़ककर कन्हाईको लगे नहीं। तनिक-सा ही तो अन्तर है श्यामसुन्दरके सुकुमार चरणों और ऊखलमें।

सीधे ऊखल घसीटते हमारे समीप आ गये। हम दोनोंके मध्यसे निकल गये दूसरी ओर और ऊखलको हमारे तनोंमें अटका लिया। सखाओं-से कहा—'तुम सब दूर बहुत दूर भाग जाओ!'

एक तीव्र झटका—कुछ अद्‌भुत मूर्छा-सी आयी और दोनों अर्जुन वृक्ष मूल सहित उखड़कर भूमिपर गिर पड़े। छूट गया व्रजवास! छूट गयी इनकी सन्निधि! यह यक्ष देह पुनः क्या मिला—इनका आदेश मिल गया—'यहाँ से शीघ्र अलका चले जाओ!' स्तुति, प्रणाम, करके चले ही आना पड़ा। सर्वेश्वरेश्वरकी आज्ञा टाली तो नहीं जा सकती। अपनी भक्तिका वरदान अवश्य इन्होंने दे दिया है—यही आश्वासन रहा अब!



दामोदर-मुक्ति

हम सब महारात्रिको महालक्ष्मी पूजन करके गोकुलसे बाहर चले आये थे। महर्षि शाण्डिल्यके आनेसे पूर्व हमें इन्द्रयागकी सब आवश्यक सामग्री जुटा लेनी थी। सूर्योदय होते ही इन्द्रध्वजका आरोहण होगा और पूजा प्रारम्भ हो जायगी। महर्षि सन्ध्या समाप्त करके ही आ जायँगे।

हमारे गोकुलका सबसे बड़ा महोत्सव यह इन्द्रयाग है। हम वनवासी गोप—हमारी गायें ही धन हैं। उन्हें तृण-जल भरपूर मिलता रहे, यही हमारा परम सुख है। वर्षा उत्तम हो तो पशुओंको तृण पर्याप्त मिले। अतः वर्षाके स्वामी सुरराजको सन्तुष्ट रखना दूसरे सबकी अपेक्षा हम गोपोंके लिए बहुत आवश्यक है।

हम सबने अत्यन्त उत्साहसे यज्ञकी सामग्री संग्रह कर ली थी। घरोंसे गोघृत, दूध, दही तथा पकवानोंकी राशियाँ आकर लग गयी थीं। आज तो सम्पूर्ण गोकुलको पूजनोपरान्त एक साथ यहीं प्रसाद-ग्रहण करना था।

आज गायों-वृषभोंका पूजन होना था। उन्हें यहीं परितृप्त किया जाना था। उनको चराने जानेकी चिन्ता नहीं थी।

हम सभी चाहते थे कि पूजन-किञ्चित् विलम्बसे प्रारम्भ हो तो उत्तम ही है। बड़ोंके समान बालक तो इस कार्तिकमें सबेरे स्नान नहीं कर सकते और वे पूजनमें सम्मिलित तो होंगे ही। महर्षिसे प्रार्थना कर दी गयी थी कल ही कि इन्द्रयागमें शीघ्रता करना अनावश्यक है। महर्षि स्वयं भी तो नीलमणिका बहुत ध्यान रखते हैं। उन्होंने कहा था—'कलका यज्ञ केवल पुरुष ही सम्पन्न करते हैं। महिलाओं तथा शिशुओंको सम्मिलित कर लिया जायगा प्रारम्भिक पूजाओंके पश्चात्। अतः माताके साथ कृष्णचन्द्रको प्रारम्भमें लाना आवश्यक नहीं है। उनको अन्तमें बुला लिया जायगा।'

बालक मानते कहाँ हैं। रानी भाभी रोहिणीजीको आना ही था व्यवस्था सम्हालने। वे तो हमारे गोकुलकी अधीश्वरी हैं। उनकी व्यवस्था-

में, उनकी कर छायामें ही तो हमारे सब कार्य निर्विघ्न पूर्ण होते हैं। वे आयीं तो दाऊ चला आया उनके संग। इस बलको रोका नहीं जा सकता और शिशु होनेपर भी यह किसी मुनिसे अधिक ही शान्त है। यह तो एक स्थानपर बैठा रहेगा चुपचाप।

दाऊके आनेसे एक सुविधा और हो जाती है। दूसरे सब शिशु इसके समीप ही रहते हैं। भैया व्रजराजके साथ ही रहता है, सोता है छोटे भाई नन्दनका भद्र। उसे तो आना ही था, दूसरे भी दाऊके समवयस्क शिशु आ गये सबेरे ही। दाऊके साथ ये सब स्नान करके शान्त बैठ गये। मुझे केवल इन सबको स्नान करा देना पड़ा। मैंने कह दिया—'किसी सामग्री-को स्पर्श मत करना! चुपचाप देखो अथवा यहीं समीप खेलो!'

'हम देखेंगे!' दाऊ कोई बात कह दे तो वह उससे इस शैशवमें भी हटता नहीं। हम सबको शिशुओंकी ओरसे निश्चिन्तता हो गयी। अब बहुत हुआ तो ये परस्पर बातें करेंगे, हँसेंगे, ताली बजावेंगे इनसे कोई बाधा पड़नेकी आशङ्का नहीं है। समयपर रानी भाभी इन्हें कलेऊ करा ही देंगी।

नीलमणि कुछ अधिक ही चपल है। वह होता है तो सब बालक भी उसके साथ हो लेते हैं। वह इतना सुकुमार है कि सबेरे उसका आना किसी प्रकार उचित नहीं था। वह हठी उठते ही भाग न आवे, इसीलिए तो व्रजेश्वरी भाभीको भवनमें ही रहनेको कल मैंने महर्षिसे कहलवाया। श्यामको वही रोके रह सकती हैं।

वह आ जाता तो चपलता किये बिना रह नहीं सकता था। उससे कहाँ चुप बैठा जाता है; किंतु वह नहीं आया तो सभी आयोजन नीरस-शून्य-सा लगने लगा। उसको देखे बिना तो महर्षि-जैसे ज्ञानीमें उत्साह नहीं आता, हम सबका तो जीवन ही है वह सुन्दर।

कुछ उष्णता आ जाय आतपमें, भवनमें वह कलेऊ कर ले तब उसे जाकर बुला लानेका मैंने निश्चय किया था; किंतु—'अरर धम्!' बहुत भारी शब्द हुआ गोकुलमें। व्रजराजके भवनके समीप ही इतना भयानक शब्द! मैं भागते समय लकुट उठाना भी भूल गया।

'क्या हुआ? कौन-सा राक्षस कूदा?' सभी दौड़ पड़े। किसीको भी कुछ और सूझ ही नहीं सकता था। हमारा सर्वस्व—हमारा प्राण—

हमारा श्याम वहाँ सदनमें था और वहीं इतना भयङ्कर शब्द हुआ था। मैं अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे दौड़ पड़ा था !

हम सब लगभग साथ ही पहुँचे थे। सब गोप, गोपियाँ पुकारने दौड़े थे और पूरा गोकुल दो-चार पलमें व्रजराज-पौरिके सम्मुख पहुँच गया था। बड़ा भारी उत्पात हुआ था ! वहाँ व्रजेन्द्र पौरिके सम्मुख लगाये गये अतिशय विशाल दोनों अर्जुनके वृक्ष गिर गये थे। मूल सहित उखड़ कर गिरे थे वे। एक-एक ओर गिरा था और दूसरा दूसरी ओर !

भगवान् जनार्दनने हम सबको जीवन दान दिया ! हमारा नीलमणि सकुशल था। वह ऊखलमें बँधा दोनों वृक्षोंके मध्यमें था। अपना नन्हा-सा सिर एक ओर घुमाता था, फिर दूसरी ओर ! मुस्करा रहा था वह। उसका प्रसन्न चन्द्रमुख देखकर प्राण प्राप्त हुए।

'तू यहाँ कैसे आ गया ?' मेरे बड़े भाई नन्दराय बहुत बुद्धिमान्, बहुत सावधान हैं। बालक वृक्षोंके गिरनेसे डर तो गया ही होगा। उसके समीप हँसते हुए पहुँचना ही उनका उचित था।

इस चपलको भाभी व्रजेश्वरीने ऊखलसे बाँध दिया था। व्रजपति भैया दूरसे ही हँसते न बढ़ते तो श्याम कितना डर गया होता ! 'मैयाने बाँधा था। इतने बड़े वृक्ष गिर पड़े तो बाबा मारेगा' यह कहीं बालकको लगता तो वह बहुत कातर हो जाता।

'मेरा लाल यहाँ तक ऊखल खींच लाया है !' भैयाने पुचकारा। भीतरसे वहाँ तक ऊखलके घसीटे जानेकी चौड़ी रेखा तो बनी ही है। 'किसने बाँधा तुझे?'

कन्हाई केवल बाबाकी ओर देखकर हँसता है। 'मैयाने बाँधा' यह बात अपने मुखसे नहीं कहना चाहता। दूसरे शिशु भले बतला दें, स्वयं मैयाके दोष नहीं कहेगा। भैया व्रजपतिने रज्जुग्रंथि खोलकर अङ्कमें उठा लिया कन्हाईको—'तेरी मैया बहुत बुरी है ! तुझे बाँधती है। अब मत जाना उसके समीप। मैं तुझे अपने साथ रखूँगा। हम चलेंगे अब यज्ञ करने। मैयाको यहीं घरमें रहने दे।'

'मैया चलेगी !' लो, यह तो मचलने लगा है। कन्धेसे गोदमें आ गया और उतरनेको लटक पड़ा है। अब मैयाके समीप गये बिना माननेसे रहा।

'तू चल ! वहाँ पूजामें चल ! ' नीलमणिने दौड़कर अपनी मैया-का हाथ पकड़ा। भाभीने कितनी ममतासे अङ्कमें उठाया कन्हाईको !

'ये वृक्ष कैसे गिरे ? किसने गिराया इन्हें ?' यह प्रश्न हम सबको ही चिन्तित किये था। अर्जुनके इन वृक्षोंमें नीचे पर्याप्त ऊँचाई तक कोई शाखा नहीं थी और दोनों दो ओर घिरे थे, अतः दोनोंके मध्यमें शिशु सकुशल रहा ; किंतु इतने भारी वृक्ष समूल उखड़कर गिरे कैसे।

मैंने और प्रायः सभी दूसरे अनुभवी गोपोंने वृक्षोंके आस-पास घूम-कर देख लिया। दोमें-से एक भी वृक्ष खोखला नहीं था। खोखला भी होता तो टूटकर गिरता। इनकी जड़ें मोटी थीं सुदृढ़ थीं, पर्याप्त गहराई तक गई और दूर-दूर तक फैली थीं। अर्जुन वृक्षकी जड़ें तो पाषाणका भी भेदन करके भूमिमें प्रवेश करती हैं। कोई जड़ सड़ी नहीं थी। किसीमें कृमि लगने अथवा अन्य किसी रोगका लक्षण नहीं था।

आँधी चली नहीं थी। चक्रवात आया नहीं था। यहाँ वृषभोंने परस्पर युद्ध भी नहीं किया था। वृषभोंके धक्केसे गिरने वाले ये वृक्ष थे नहीं। वृषभ लड़ते तो उनके खुरोंके चिह्न होते। कोई कारण नहीं ऐसा मिला जिससे वृक्षोंके गिरनेका हेतु जाना जा सके।

वहाँ केवल कुछ शिशु थे। कोई गोपी, सेविका वहाँ थी नहीं कि उससे पूछा जा सके। शिशुओंसे ही पूछा मैंने—' इन वृक्षोंको किसने गिराया ?'

'इस कनूँने ! इसीने ऊखल अड़ाकर खींचा।' शिशुओंकी बात सदा अटपटी होती है। इन बच्चोंके सामने ऊखलमें बँधा श्याम था और वह ऊखल खींच रहा था तो ये समझते हैं कि वृक्ष ऊखल खींचनेसे गिर गये।

'वृक्षोंकी जड़में-से एक-एक चमकते देवता निकले थे ! ' शिशु कहते हैं—' वे दोनों देवता इस कन्हाईको हाथ जोड़ रहे थे। यह उनसे बातें कर रहा था। हम दूर भाग गये थे, सुना नहीं कि इसने उनसे क्या कहा। वे दोनों ऊपर आकाशमें उड़ गये। '

हमारा नीलमणि इतना सुन्दर, इतना मोहक है कि इसे मुनीगण भी हाथ जोड़ते हैं और यह चञ्चल चाहे जिससे बातें करने लगता है ; किंतु वृक्ष क्या उन देवताओंने गिराये होंगे ? कोई राक्षस, दैत्य, दानवका तो यह उत्पात नहीं है ?

गोकुलमें ये दोनों वृक्ष देव मन्दिरके समान थे। इन्हें हमारे पिताने महर्षि शाण्डिल्यके आदेशसे लगाया था। ये गोष्ठके रक्षक थे, सबका कल्याण करते थे। गोपियाँ इनका पूजन करती थीं। इनसे मनौती करती थीं और उनकी कामनाएँ पूरी होती थीं। इनका गिरना बहुत अशुभ हुआ। किसी बड़े उत्पातका यह सूचक है। सोचना पड़ेगा कि अब क्या किया जाना चाहिये। आज इन्द्रयाग सम्पन्न हो जाय तब सब मिलकर इस-पर विचार करेंगे।

इन्दयागको सम्पन्न तो होना था; किंतु सत्कार्यमें विघ्न बहुत आते हैं। एक विघ्न आ जाय तो फिर विघ्नोंका क्रम न लगे तो बहुत कुशल। यज्ञारम्भसे पूर्व ही इतना बड़ा उत्पात हुआ। हम सब और गोपियाँ, सेवक तक यज्ञस्थलसे दौड़े चले आये वहाँ यज्ञ-सामग्री राशि-राशि रखी थी। आशङ्काका कारण यह नहीं था कि पशु-पक्षी उसे दूषित करेंगे अथवा कोई राक्षस आकर वहाँ उत्पात करेगा।

गोकुलमें—पूरे महावनमें कोई पक्षी, काक तक किसी पदार्थमें चञ्चु नहीं डालते। श्वान, शृङ्गाल, मार्जार कोई मुख नहीं डालेगा यज्ञीय पदार्थोंमें और न कपि कुछ उठावेंगे। इनमें कोई वहाँ नहीं था। कोई वहाँ जायगा भी नहीं। ये सब नीलमणिके ही साथ लगे रहते हैं सबेरेसे सायंकाल तक। जब तक कन्हाई यहाँ है, ये लकुट लेकर भगानेसे भी नहीं भागेंगे। सब वहाँ एक साथ पहुँचेंगे, जब श्याम वहाँ जायगा।

महर्षि शाण्डिल्य जब स्रुव या ब्राह्मदण्ड उठा लेते हैं करोंमें, कोई दैत्य-दानव, राक्षस-पिशाच दुस्साहस करे तो अपनी मृत्युको आमन्त्रण देगा। मुनि-मण्डलके साथ वे वहाँ आ गये थे। हम सब चले आये तो दायित्व स्वयं उनपर आ गया। कंसके सेवक राक्षस दिशाओंसे यज्ञध्वन्स करते घूमते हैं; किंतु महर्षिके सम्मुख आनेका साहस उनमें नहीं है। गोकुलमें वह पूतना तथा तृणावर्त तब आये जब महर्षि अपने नित्य-पूजनमें व्यस्त थे।

यह आशङ्का भी नहीं है कि वे दयाधाम हम सबके अकस्मात् दौड़ आनेसे असन्तुष्ट हुए होंगे। उन कृपामूर्तिको क्रोध करना आता ही नहीं। उनकी उपस्थितिमें अन्य कोई ऋषि मुनि भी रुष्ट नहीं होंगे; किंतु हम सबसे अपराध तो हुआ ही। हम ऐसे भाग आये, यह उनकी अव मानना हुई। अब वहाँ पहुँचनेकी शीघ्रता की जानी चाहिये।

हम सब शीघ्रता कर लेते। भाई व्रजराज तो नीलमणिको लेकर यज्ञ-स्थलकी ओर मुड़ने ही जा रहे थे ; किंतु नीलमणि उतर गया उनके अङ्कसे और मैयाके समीप पहुँच गया। तभी दाऊ, भद्र, तोक, विशाल, ऋषभादिने उसे घेर लिया।

मैं वृक्षोंके गिरनेका कारण जाननेमें लग गया था। दूसरे भी सब वयोवृद्ध इसीमें उलझ गये थे ; किंतु बालकोंकी दृष्टि सीधे वहाँ गयी जहाँ सबसे पहिले जानी चाहिये थी। दाऊने पहुँचते ही अँगुली रखी, सभी शिशुओंने सहलाना प्रारम्भ किया वहाँ और तोक अपने नन्हे मुखसे फूँक मारने लगा जहाँ नीलमणिके उदरमें रज्जु बँधी थी।

श्यामने घुटनों होकर ऊखल खींचा था। रज्जु कुछ उठ गयी होगी पृष्ठदेशकी ओर, अतः पीठके भागपर चिह्न नहीं था ; किंतु पूरे उदरमें दोनों पार्श्वों तक नाभिके नीचे गहरी रेखा उभर आयी थी। सुकुमार श्यामसुन्दरके शरीरमें वह गहरी नीली-अरुण रेखा ! दाऊकी अँगुलीके साथ वहाँ दृष्टि गयी मेरी—सम्भवतः सबकी और अश्रु-प्रवाह रोकना असम्भव हो गया।

'तुझे किसने बाँधा था ?' प्रश्नके साथ मैंने देखा कि दाऊका मुख प्रभातके उदय होते सूर्यके समान अरुण हो उठा है। लोचन लाल-लाल हो गये हैं। मुट्ठियाँ बँध गयी हैं। मेरा हृदय धड़कने लगा। दाऊ इतना रुष्ट ? पता नहीं क्या उत्पात करे यहाँ।

'मैंने बाँधा था लाल !' भाभीकी दृष्टि भी सम्भवतः मोहनके उदरके उस चिह्नपर अभी ही गयी। इनके नेत्रोंसे भी अश्रु-प्रवाह फूट पड़ा है। स्वरमें अथाह व्यथा है।

'मैया !' दाऊ तो भाभीकी ओर दृष्टि उठाकर रो पड़े हैं। मुट्ठियाँ खुल गयी हैं। मुखकी अरुणिमा मिटती जा रही है। यह कन्हाई मयाको छोड़कर अग्रजके समीप आ गया है।

'दादा !' श्याम अपने नन्हे हाथों अग्रजके कपोलोंपर ढुलकते अश्रु पोंछ रहा है—'तू भूखा है ?'

'यहाँ तुझे पीड़ा होती है ?' भद्र रोते-रोते अँगुलीसे उदरमें पड़ी रेखाको छूकर पूछने लगा है।

'मुझे ? मुझे तो कुछ नहीं हुआ !' कन्हाई भी अब सिर झुकाकर अपने उदरमें पड़ी रेखाको अँगुलीसे छूकर देखने लगा है—'यह चाहिये तुझे ? मैया ऊखलमें बाँध देगी तब बनेगी।'

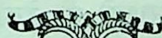
'मैं अब तुझे और किसीको कभी नहीं बाँधूँगी मेरे लाल !' भाभी तो इतने क्षणमें नवनीत भी ले आयीं और श्यामके उदरमें पड़ी उस रेखा-पर बहुत सम्हालकर लगाने लगी हैं। इनके नेत्र झर रहे हैं।

इन शिशुओंने कलेऊ नहीं किया है अबतक। इनको कुछ खिलाये बिना यज्ञ-स्थलमें ले जाना उचित नहीं और अब इनमें-से एकको भी एकाकी यहाँ छोड़कर कोई भी हटना नहीं चाहता।

दाऊ, भद्र, तोक—सब रूठ गये थे। कोई मुख ही नहीं खोलता था। भाभीने मनुहार कर लिया; किंतु मधुमङ्गल ही उनके करका मोदक नहीं पकड़ता तो दूसरे माखन कैसे खायँगे और ये व्रजेश्वरी नहीं मना पातीं तो दूसरा कोई मना पावेगा इन सबको ?

'मैया !' श्यामने जननीका हाथ पकड़ा—'मैं खाऊँगा ! ना, हाथपर दे तू मुझे !' इसे भी क्या आज इतना रोष है कि भाभीके हाथसे मुखमें नहीं लेगा ?'

'दादा ! मुख खोल !' ओह; तो हमारा नीलमणि सखाओंको मनाने लगा है। यह अपनी दो अँगुलीसे उठाकर तनिक-सा माखन दे रहा है, पर अब कोई मुख बन्द नहीं रखेगा। अब तो सब व्रजेश्वरी भाभीके करोंसे भी लेने लगे हैं। इनसे भी माँगने लगे हैं। कहीं शिशुओंका रूठना भी देर तक टिकता है। ये सब कलेऊ कर लें तो इनको लेकर यज्ञकार्य सम्पन्न किया जायगा।



बाल-क्रीड़ा

कुबड़ा, काना, एकाक्षपिङ्गली, कुरूप हूँ मैं ; किंतु सभी श्रुतिके मन्त्रसे मुझ राजाधिराजका स्तवन करते हैं ; क्यों कि भगवान् कपालमालीने मुझे कामेश्वर-धनाध्यक्ष बना दिया अपनी अहैतुकी कृपासे। अतः कामनाका कलुषित कीट जिन्हें काटेगा, उनको तो कुबेरकी शरण लेनी ही पड़ेगी। सम्पत्तिके बिना सांसारिक भोग सुलभ नहीं होते और भगवतीश्रीने शिवके प्रसादसे मुझे कोषाध्यक्ष स्वीकार कर लिया है।

कैलासवासी करुणामय भगवान् कपर्दीने अपने इस किङ्करको अनुजके रूपमें अपनाया। अपने आवासके समीप अलकामें इसे आश्रय दिया। अब यह उनका ही अनुग्रह है कि मैं अपनेको भगवद्भक्त पुत्रोंका पिता पाता हूँ। अदृश्य रहकर गोकुल जाता हूँ तो देवी योगमाया मुस्करा कर रह जाती हैं। मेरे वहाँ पहुँचनेपर उन्हें आपत्ति नहीं है। अन्यथा आजकल उनकी अनुकम्पाके बिना गोकुलके गगनमें भी किसीका प्रवेश असम्भव है।

मेरे दोनों पुत्र नल कूबर और मणिग्रीव सुन्दर नहीं हैं तो क्या हो गया। मुझ पिता की कुरूपता मिली उन्हें। पहिला मेरे समान ही कुब्ज हो गया। मैं बहुत दुःखी था, वे बहुत व्यसनी हो गये थे। पिताकी बिना परिश्रमके प्राप्त हुई सम्पत्ति पुत्रोंको कैसा मदान्ध कर देती है, इसका मैं भुक्त भोगी हूँ।

मैं मानता हूँ कि मेरे ओढरदानी आशुतोषसे मेरा अनुताप सहा नहीं गया। उन सदा शिवकी प्रेरणासे ही देवर्षि मेरे दोनों सुतोंके समीप पहुँचे थे और सदय होकर उन्हें शाप दे दिया था। ऐसा शाप—जो वरदानके रूपमें माँगनेका भी साहस मुझमें नहीं है। पुत्र गोकुलमें नन्दपौरिपर अर्जुनके वृक्ष हो गये। डेढ़ सौ वर्ष वहाँ रहनेका सौभाग्य मिला उन्हें और अब श्रीनन्दनन्दनका स्पर्श, उनका आशीर्वाद प्राप्त करके वृक्षयोनि त्यागकर पुनः अलका आ गये हैं।

आदित्यके उदय होनेपर अन्धकार तो रह नहीं सकता। परम प्रकाशस्वरूप पुरुषोत्तमका स्पर्श पाकर मेरे पुत्र पुनीत हो गये। उनके हृदयोंमें भगवती भक्तिदेवीका पदार्पण हुआ। मैं ऐसे पुत्रोंको पाकर कृत-कृत्य हो गया।

मेरे स्वामी भगवान शशाङ्कशेखर गोकुल हो आये! वे उन सौन्दर्य-सुधा-सार श्रीनन्दनन्दनकी शोभाका वर्णन करते विभोर हो जाते हैं। मुझे लगता है कि उन्हींमें तन्मय रहते हैं। यदा-कदा ही भगवती पार्वतीके अनुरोधसे अपनेको सावधान कर पाते हैं और तब उनके श्रीमुखसे कुछ सुननेका सौभाग्य इस सेवकको भी सुलभ हो जाता है।

मैं भी उन मयूरपिच्छाभरण नन्दात्मजके पावन-पदोंमें प्रणिपातका अवसर पाता—भले अदृश्य रहकर ही यह कर पाता; किंतु साहस नहीं समेट पाता था। जहाँ भगवती श्रीसेविका बनी कण-कण सजानेमें सदा लगी रहती हैं, वहाँ नरवाहन कुबेर कैसे पहुँचनेका साहस करे! उस सौन्दर्य, सौकुमार्य, सौष्ठवके दिव्यधाममें केवल धनाध्यक्ष होनेसे ही तो इस कुरूप, कुब्जके पहुँचनेकी धृष्टता योगमाया क्षमा नहीं कर देंगी।

मेरे प्रभु तो श्मशान-प्रिय हैं। ये प्रेत-पिशाचोंको भी परिकर बना लेते हैं, अत: कुबेर अनायास इनके पदोंके पास प्रवेश पा गया; किंतु गोकुल—वह तो धरापर गोलोककी अवतीर्ण भूमि हैं!

'वे पुरुषोत्तम इतने उदार, इतने अनन्त कृपासिन्धु कि स्वयं बन्धन स्वीकार करके उन्होंने हम दोनोंको जड़त्वसे मुक्त कर दिया!' मेरे दोनों पुत्र अब इसे सोच-सोचकर विह्वल बने रहते हैं। उनके इस वर्णनने—बार-बारकी विह्वलताने मुझे साहस दिया।

मैं व्यर्थ ही अपनेको धनाध्यक्ष मानकर फूला फिरता था। कामनाओंके किङ्कर स्तुति करके, चाटुकारिता पूर्ण उक्तियोंसे मुझे राजाधिराज कहते हैं; किंतु व्रजके वैभवको देखते ही कुबेरने समझ लिया कि वह कङ्गाल है। प्रत्येक गौ जहाँ कामधेनु है, प्रत्येक कंटक तरु-क्षुप भी जहाँ कल्पवृक्ष है, किस गणनामें है कुबेर वहाँ। मैं कुछ भी तो वहाँ उन अरुण मृदुल नन्दनन्दनके पदोंमें अर्पित करने योग्य अपने पास नहीं पाता। मैं भगवती रमाका प्रसाद-भोजी किङ्कर और वे वहाँ सामान्य सेविका बनी श्रम करते श्रान्त होकर प्रसन्न होती हैं।

सब सत्य ; परंतु परम सत्य यह कि उन कृष्णचक्रकी कृपाका कोई पार नहीं है। मैं भगवान् आशुतोषका पार्श्ववर्ती भी उनकी अपार कृपावारका अनुमान करनेमें असमर्थ हूँ। मेरे पुत्रोंके परित्यक्त उन उखड़े वृक्ष देहोंको भी उन्होंने अपने विनोदका साधन बना लिया है। सखाओंके साथ उनकी शाखाओंपर क्रीड़ा करते हैं। इधरसे उधर चढ़ते हैं, कूदते हैं, किलकते हैं।

सच्चिदानन्दघन श्रीविग्रह नन्दनन्दनका स्पर्श-सान्निध्य प्राप्त करके वे दोनों मेरे पुत्रोंके व्यक्त देह भी चिन्मय हो गये हैं, यह तो मैं देख ही सकता हूँ। अब उनको कोई जीव क्या जीवन देगा। उन्हें कहाँ अधिदेवताकी अपेक्षा है। वे छिन्नमूल भी हरित हैं। उनके पत्रोंपर तनिक भी शीर्णत्व नहीं। अब उन्हें कहाँ मूलके द्वारा रसाकर्षण करना है। रसराज—रसरूप तो उनपर किलकता कूदता रहता है दिन भर।

अब राम-श्याम इन तरुओंके पत्र सखाओंके साथ तोड़कर उनकी सीटियाँ बना लेते हैं और उनका स्वर सुनकर प्रसन्न होते हैं।

प्रभात होते ही गोकुलके शिशुओंको नन्द-पौरिपर पहुँचनेकी पड़ती है और अग्रजके साथ श्याम-सुन्दर तो सखाओंकी प्रतीक्षा ही करते रहते हैं। माता रोहिणी पुकारते-पुकारते परिश्रान्त होती हैं कि दोनों भाई कलेऊ कर लें, पर क्रीड़ामें लगे शिशु-नाटच करने वाले श्रीश सुनते कहाँ हैं।

धूलि-धूसर श्रीअङ्ग, बिखरी अलकोंमें लगा अकेला मयूरपिच्छ, विशाल भाल एवं लोचन अञ्जन रञ्जित, नन्हें मुक्ताओंकी मालाके मध्य कण्ठमें कौस्तुभ और वृक्षपर श्रीवत्स, करोंमें मणि कङ्कण, कटिमें किङ्कणी, पदोंमें नूपुर, अरुण मृदुल कोमल चरणांगुलिकाओंकी नखमणि-चन्द्रिका—यह ज्योत्स्ना अन्तरमें बनी रहे, बस !

कैसे लीलामय ! माताने कटिमें जो कछनी बाँध दी, उसे खोलकर गिरे वृक्षकी किसी शाखापर डाल दिया। शिशुओंकी पीली, नीली, पाटल, श्वेत कछनियोंसे भूषित ये वृक्ष !

अभी कछनी कहाँ बाँध पाते हैं श्रीनन्दलाल। कभी बाँध लेनेका मन होता है तो उसे लेकर अग्रजके सम्मुख आ खड़े होते हैं अथवा जो गोपी समीप दीख जाय, उसके पास पहुँचते हैं।

मैयाके लिए अवश्य कठिनाई बढ़ गयी है। अब प्रातःसे सायं अन्धकार होने तक इन चपल शिशुओंको वृक्षोंपर चढ़ने-कूदनेकी क्रीड़ामें ही लगे रहना प्रिय हो गया है। इन्हें कलेऊ करना है, भोजन करना है, कुछ विश्राम भी करना है, यह कहाँ स्मरण आता है।

व्रजराज भोजनके लिए बैठ जाते हैं; किंतु राम-श्याम अङ्कमें न बैठ जायँ तो उनसे ग्रास उठाया ही नहीं जाता और व्रजेश्वरी स्वयं न जायँ, चाहे जिसे भेज लें, ये दोनों किसीकी सुनने ही नहीं।

'दाऊ! राम! तुम्हारे अनुजको भूख लगी है लाल! देखो न, इसका पेट कितना पिचक गया है!' मैयाके कहते ही दाऊ छोटे भाईके पेटकी ओर देखने लगेंगे और उन्हें मैयाकी बात सत्य लगेगी—'यह श्रान्त हो गया। इसके मुखको देखो, कैसा अरुण हो चला है और उसपर स्वेद कण आ गये हैं। अब तुम इसे लेकर आ जाओ! इसे अब भोजन करना चाहिये!'

दाऊ जानते हैं कि उनके बिना उनके अनुज अकेले नहीं जायँगे और 'सचमुच यह सुकुमार आज श्रान्त हो गया है। इसे क्षुधा लगी होगी।' तब दाऊको इसे लेकर मैयाके समीप पहुँचना ही चाहिये। मैया ठीक तो कहती है कि कलेऊ किये विलम्ब हो गया। सूर्य बहुत ऊपर आ गया। अब इतने आतपमें श्यामको यहाँ नहीं रहना चाहिये।

सायङ्काल अन्धकार बढ़ने लगता है। मैयाको कभी कोई और कभी कोई बहाना करना पड़ता है—'आज अमुक पर्व है। तुम दोनोंको स्नान करके, अलंकृत होकर विप्रोंको गोदान करना है। महर्षि शाण्डिल्य पूजाके लिए तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।'

मैया किसी भी पूजाके लिए महर्षिको बुलवायेगी ही यदि उसके ये नटखट किसी दूसरे कारणको सुनकर भोजन करने नहीं आते। इन्हें देरतक तो धूपमें खेलने नहीं दिया जा सकता।

कभी सब बालकोंको समझाकर उनके घरोंको विदा करके और कभी सबको स्नेह पूर्वक किसी बहुत सुस्वादु भोजन, अलङ्करण, खिलौने अथवा अर्चा-विशेषमें सम्मिलित होनेको कहकर साथ लेकर मैया अपने कन्हाईको अंकमें उठा पाती है और दाऊका कर पकड़कर तब गृहमें प्रवेश करती है।

बालक ही तो हैं सब। भागेंगे, इधर-से-उधर पत्तोंमें छिपेंगे अथवा मैयाके ही चारों ओर घूमने लगेंगे। नहीं आवेंगे तो सुनेंगे नहीं और आवेंगे तो सब एक साथ गोदमें आना चाहेंगे। तोक, अंशु, देवप्रस्थ, तेजस्वी, भद्र सब श्यामके साथ व्रजेश्वरीके अङ्कमें, कन्धोंपर चढ़ेंगे और इन वात्सल्यमयीके अङ्कमें स्थानका अभाव कहाँ होता है। गोपियाँ हँसेगी इतने बालकोंको उठाये आती इनको देखकर और माता रोहिणी मिल गयीं तो उनके कन्धे, झोड़ी भी भर जायगी।

मेरे दोनों पुत्र इस नन्द-पौरिपर दिव्य सौ वर्ष रहे। मैं तो अब यहाँ आनेका अवसर पा सका हूँ। अब कुछ दिन—हम देवताओंकी कुछ घटिकाएँ मैं यहाँ व्यतीत कर लूँ तो अलकामें मेरी अनुपस्थितिसे कोई अनर्थ नहीं होने वाला है।

मेरे पुत्रोंने पिताको भी पुनीत होनेका अवसर दिया उन्हें भगवद्-भक्तिका भव्य प्रसाद प्राप्त हुआ तो मुझे भी इन श्रीनन्दनन्दनके शैशवकी झाँकीका साहस हो गया है। मेरा पुत्र-स्नेह सार्थक हुआ। सफल हुआ मेरा पितृत्व। सुतोंके सौभाग्यसे मैं सनाथ हुआ।

कृष्णचन्द्र किसीको अपूर्ण नहीं अपनाते। ये चिदानन्द अपनाते हैं तो अपनेसे पूर्णतः अभिन्न कर लेते हैं। इसी प्रकार इनसे एकत्व प्राप्त संत-भगवद्भक्त किसीपर कृपा करते हैं तो उसमें कोई कार्पण्य नहीं रखते। देवर्षिकी दयाने पुत्रोंको परमपावन किया तो मुझे भी पवित्र कर दिया।

मुझे तो पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय हो गये हैं उनके पृथ्वीपर पड़े ये उच्छिन्न मूल वृक्ष देह! ये इतने हरित, इतने सुशोभित—कोई सीधे खड़े तरु यह सौभाग्य तो नहीं प्राप्त कर सकते कि उनकी शाखाओंपर शिशु नन्दनन्दन सखाओंके साथ चढ़ने-कूदने, पत्तोंमें छिपनेकी क्रीड़ा करें। मेरे पुत्रोंका वृक्ष-जीवन धन्य और धन्य-धन्य! परम धन्य उनका वृक्ष-जीवनका त्याग भी!



वृकोपद्रव

महावन श्रीहीन क्यों हो गया ? सर्वलोक, महेश्वर श्रीकृष्ण गोकुलमें विद्यमान हैं और इसका त्याग करके वन लक्ष्मी कहीं अन्यत्र चली गयीं, यह बात सम्भव कैसे हुई ?

कई दिनोंसे मैं इसी चिंतामें हूँ। सृष्टिमें इन श्रीकृष्णको छोड़कर ऐसा कोई नहीं है, जिसकी शक्ति मेरा स्पर्श भी कर सके और मैं नहीं समझ पाता हूँ कि यहाँकी सम्पत्ति, शोभा सौष्ठव क्यों सहसा लुप्त हो रहा है ?

गोपोंको कहते सुना है मैंने कि पूरे महावनमें जो मणियाँ प्रकट थीं, वे लुप्त हो गयीं। उन्हें चुनते, उठाते किसीको देखा नहीं गया। अब सुनता हूँ कि हरित तृण भी वनमें अल्प हो गये हैं। पशुओंको अपना पेट भरनेके लिए दूर-दूर तक चरना पड़ता है। सेवक काष्ठ लेने जाते हैं और अपर्याप्त ईन्धन लेकर लौट आते हैं। वे कहते हैं कि वनमें शुष्क काष्ठ बहुत कम हो गया है। हरे, तरु तो तोड़े नहीं ही जाने चाहिये।

मनुष्योंके अपकर्मसे धरा ऊसर होती है। मानवोंके अपराधसे वनश्री विदा हो जाती है। मनुष्य पापकर्मा हों तो मेघ समयपर वर्षा नहीं करते और लता-तरु सम्यक् फल-पुष्प प्राप्त नहीं कर पाते। मनुकी सन्तान जब सत्पथ त्यागकर कुपथका अवलम्बन करती है तब उसे आवास, आजीविका एवं आमोदके साधन अप्राप्य होते हैं; किंतु श्रीकृष्णके स्वजनोंको तो कल्मषका स्पर्श नहीं होता। समस्त पुण्य जिनके पादपद्मोंके स्मरणकी परिणति पाकर सार्थक होते हैं—वे स्वयं यहाँ हैं और यहाँसे सम्पत्ति, शोभा, सुविधाका लोप हो रहा है—यह क्या लीला है ? इनकी इच्छाके बिना तो योगमाया ऐसा प्रमाद नहीं कर सकती।

आज मैंने लक्षित किया कि यमलार्जुनके पत्र भी शीर्ण होने आरम्भ हो गये। क्या हुआ कि इन दोनों वृक्षोंकी जड़ें उखड़ गयी हैं। रसको जिनकी अनुकम्पासे रस प्राप्त होता है, वह स्वयं रसराज इनपर क्रीड़ा करता है और ये शुष्क होने लगे ?

मुझे कन्हाईसे ही इसका कारण पूछना था। यह चपल एकान्तमें मिलता नहीं था और सबके सम्मुख तो यह सब पूछा नहीं जा सकता। मुझे सृष्टिकी, संसारकी स्रष्टाकी मर्यादाओंकी चिन्ता नहीं। ये मर्यादाएँ रहें या मिटें; किंतु मेरे श्यामको सन्तुष्ट रहना चाहिये। इसे सुख मिलना चाहिये। इसकी क्रीड़ामें कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिये। यह सब इसकी इच्छा है तो ठीक है और किसी अन्यका उत्पात है तो वह सुर हो या असुर मैं उसे समझ लेनेमें असमर्थ नहीं हो गया हूँ। मैं उसे वह शिक्षा दूंगा कृष्ण-क्रीड़ामें बाधक बननेकी कि उसे कल्पों तक पुनः ऐसा दुस्साहस नहीं होगा।

आज मैं कुछ अधिक ही उत्तेजित हो गया था। प्रभातमें यमलार्जुन-पृथ्वीपर पड़े वृक्षोंके समीप एकाकी आया और पाँच-सात पत्र तरुओंके शीर्ण, स्वतः शाखाच्युत पड़े दीखे। ये पत्र हममें किसी सखाके द्वारा तोड़े अथवा क्रीड़ामें टूटे नहीं हो सकते। हमारी क्रीड़ामें तोड़े-टूटे पत्र तो अब तक अम्लान पड़े हैं। वे कहाँ शुष्क होते हैं। तब ये शीर्ण पत्र—अब क्या कोई इतना दुस्साहसी हो गया है कि ज्येष्ठ—(दरिद्रा) को हमारी पौरितक प्रेषित करने लगा है ?

मैं एक शाखापर बैठकर आज सोच लेना चाहता था कि यह सब क्या है ? तभी कन्हाई दौड़ता आ गया और समीप आकर शाखापर मुझसे सटकर बैठ गया। सखा अभी कोई आये नहीं थे, परन्तु श्याम इतना गम्भीर क्यों है ?

'दादा !' प्रतिदिनके समान मेरे कण्ठमें भुजाएँ डालकर मेरे वाम स्कन्धपर इसने अपना सिर नहीं रखा। इसकी गम्भीरताने चौंकाया मुझे। मैं इसीकी ओर देखने लगा। बोला यह—'दादा ! यह वन तो अब रहने योग्य नहीं रहा। आर्य ! यहाँ तृण चर लिया गया। शुष्क काष्ठ समाप्त हो गये। वृक्ष श्रीहीन हो गये। सघन महावन तो उजाड़ प्राय हो गया। गोष्ठमें लगे वृक्ष भी आग सुलगानेसे झुलस गये। आस-पास जल भी घट गया। अब काष्ठ तथा शाक साधारण लोगोंको क्रय करना पड़ता है। ये वनमें सुप्राप्य नहीं रहे। यह तो नगरों जैसी बात हो गयी !'

मैं उत्तेजित हो उठा। कृष्ण कहना क्या चाहता है कि प्रकृति अब इसकी सेवामें प्रमाद करने लगी है ? अथवा पृथुने धरित्रीको जो पाठ दिया था, वह उसे विस्मरण हो गया ? यह सब हुआ है, हो रहा है, यह तो

मैं भी देख रहा हूँ ; किंतु इसमें यदि कन्हाईकी इच्छा नहीं है तो यह किसीका कृत्य हो, मैं अभी परिवर्तित कर दूंगा यह सब !

'यह तो निर्गुण वन है !' मैं कुछ कहता, इससे पहले ही कनूंने अपना कर मेरे कन्धेपर रखा—' अब हम इसे त्याग कर अन्यत्र चलें !'

'अच्छा, यह बात है! अब इसे यहाँ रहना नहीं है। यह सब इसकी ही लीला है 'यह निर्गुण वन है ?' निखिल दिव्य गुण-गणैक धाम जब इसे त्यागकर अन्यत्र जाना चाहता है तो यह निर्गुण तो हो जायगा। श्री अब वहाँ वन-सज्जित करने चली गयी है , जहाँ यह जाना चाहता है।

व्रजमण्डलका यह बहिरावरण महावन—गोकुलमें केवल शैशवकी क्रीड़ा ही तो सम्भव है। यहाँ वात्सल्यका स्नेह ही सुविधापूर्वक स्वच्छन्द पाया जा सकता है। अब इसे अन्तरङ्ग मण्डलमें—वृन्दावनमें पहुँचनेकी उत्सुकता हो गयी है और इसलिए यह पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो रही है।

'दादा ! यहाँ केवल अपनी यह कालिन्दी है; किंतु गिरिराज गोवर्धन कहाँ हैं ? कहाँ है आपका भव्य भाण्डीर वट ? अब हम वहाँ जायँगे।' मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी। मैं अभी साथ चलनेको प्रस्तुत हूँ। लेकिन हम दोनोंको ही तो नहीं जाना है। सखा हैं , मैया हैं , ये गोप–गोपियाँ– इन्हें क्या कृष्ण त्याग सकता है ? वहाँ अन्तरङ्ग मण्डलमें पहुँचकर फिर लौटना क्या !

'अपने और भी सखा हैं आर्य !' यह भी कोई कहनेकी बात है। अभी तो कृष्णका अन्तरङ्ग मण्डल ही अपूर्ण है। उसीके मुख्य दो हमारे साथ नहीं आये। कन्हाई अपनोंसे कब तक दूर रह सकता है।

'ये गोप बहुत वर्षोंसे यहाँ बसे हैं। इस स्थानका मोह सरलतासे नहीं छोड़ पावेंगे !' यही बात मुझे कृष्णकी मान्य नहीं है। कोई गोप, कोई गोपी कुछ प्रहर भी कन्हाईको छोड़कर रहनेकी कल्पना नहीं कर सकता। इसे चलना है तो यह कहकर देख ले , सब अपना सर्वस्व–गोधन तक त्यागकर तत्काल चल देंगे यदि यह ऐसा आग्रह करेगा और मुख मोड़-कर भी पीछे नहीं देखेंगे। यह जिनके सम्मुख आ गया एक क्षणको भी, उनके मानसको मोहकी मलिन छाया स्पर्श करनेमें समर्थ कैसे हो सकती है।

'आर्य ! आपके श्रीचरण यहाँ पड़े ! आपने अपनी क्रीड़ासे इस पृथ्वीको पावन किया।' मैं देखने लगा कि मेरा कन्हाई कहना क्या चाहता

है ? यह कहता गया—' मैं इस गोकुलको, महावनको ऐसे ही असुरक्षित कैसे छोड़ सकता हूँ कि कंसके क्रूर राक्षस यहाँ अपना आवास बनायें अथवा इसपर अधिकार करके यहाँ विचरण करें । मैं इसे उनके लिए अतिशय भयप्रद बना दूँगा ! '

सहसा श्रीकृष्णके रोम-रोमसे भेड़िये प्रकट होने लगे। किञ्चित् अरुणाभ भूरे रंगके कालेमुख वाले भयंकर भेड़िये ! वे दस-पाँच नहीं प्रकट हुए। शतशः, सहस्रशः प्रकट हुए और बड़े-बड़े यूथोंमें विभक्त होकर सीधे वनकी ओर भागे। दस, बीस, पच्चीस, सौ तकके उनके यूथ बने और वे हमारे नेत्रोंके सम्मुखसे दूर-दूर भागते चले गये।

मुझे हँसी आ गयी। ये श्रीकृष्णाङ्ग समुद्भव वृक—इनका विशाल परिपुष्ट शरीर ! कल-परसों कोई मथुराकी ओरसे आया था तो कहींसे सुन आया था—' कंसने अपने किसी सेनानायक राक्षसको सेनाके साथ नन्दनन्दनको बन्दी बना लानेके लिए नियुक्त किया है। ' मैं उसपर अपनी मुष्टिका बल देखना चाहता था, परंतु अब वह इन सुरासुर-अजेय असंख्य वृकोंके यूथोंमें प्रवेश भी पा सकेगा ?

गायों, बछड़ों, बालकोंके लिए कोई भय नहीं है। ये वृक उनके सम्मुख भी नहीं आवेंगे; किंतु यह मेरा नटखट अनुज गोपोंको आतंकित करके यहाँसे प्रस्थानकी शीघ्रता करना चाहता है, यह स्पष्ट हो गया।

अबतो मैया आतेही इन वृकोंके पदचिह्न देखते ही चौंकेगी। सखाओंके साथ इन तरुओं पर क्रीड़ा अब समाप्त होनेवाली है, इसीलिए तो इनके पत्र शीर्ण होने लगे हैं।



गोकुलत्यागका प्रस्ताव

बड़े होनेका दायित्व भी बड़ा होता है। मैंने आग्रह करके अपने मध्यम भाई नन्दको ब्रजराजकी पगड़ी दिलायी पितासे। वे प्रबन्ध-पटु तो हैं; किंतु अपनी ही ओरसे उदासीन रहते हैं। सद्गुण है यह उसके लिए कि जो सर्वोपरि हो, वह सबको सुख-सुविधा देकर तब उनका स्वयं सेवन करे; किंतु नन्दका यह सद्गुण दोषकी सीमा स्पर्श करने लगा है। ब्रजने कितनी आराधना, उपासनाके पश्चात् श्रीहरिकी कृपासे तो युवराज पाया और अब ये उसकी सुरक्षाके प्रतिभी उदासीन हैं। कुछ कहूँ तो कह देंगे— 'आपतो सिरपर हैं ही, तब मुझे क्या चिन्ता है।'

मैं सब भाइयोंमें बड़ा हूँ, अतः सबकी—व्रजकी और व्रजराजकी भी चिन्ता मुझे ही करनी है। मैं उसी दिन चौंक गया जब नन्दपौरिपर प्रतिष्ठित यमलार्जुनके पेड़ गिर पड़े। न अन्धड़, न चक्रवात और दोनों वृक्ष समूल उखड़कर तब गिरे, जब हमारा सर्वस्व श्याम उनके मध्यमें था। श्रीनारायणने रक्षा की— वे सदा उसकी रक्षा कर लेते हैं।

वे दोनों विशाल दिव्यवृक्ष तो महर्षि शाण्डिल्यके आदेशानुसार हमारे गोष्ठमें हमारे पिताने लगाये थे। गोपियाँ उनकी पूजा करती थीं। वे गोष्ठके रक्षक देवता थे। उनके गिरनेके कारणपर गोपोंने कम ध्यान दिया। हमारा कन्हाई सुरक्षित हमें मिल गया और हम सबको इन्द्रयागकी शीघ्रता थी, अतः उस समय मैं भी अधिक सोच नहीं सका।

बालकोंने बतलाया था कि उन दोनों वृक्षोंके मूलसे दो देवता निकले थे और वे आकाशमें जाकर अदृश्य हो गये थे। शिशु अबोध थे, वे असत्य बनाकर नहीं बोल सकते। उनके द्वारा प्राप्त यह सूचना बहुत महत्वकी है, इसपर मेरा ध्यान रात्रिमें गया। मुझे रात्रिमें निद्रा नहीं आयी।

वे दोनों तरु दिव्य थे। देवता तो थे ही। उनकी पूजासे गोपियोंकी कामनाएँ पूर्ण होती थीं। गोष्ठके रक्षक वे गोकुलके अधिदेवता गोकुलको छोड़ गये। वे स्वयं त्याग गये यह स्थान। वृक्षोंके गिरनेका दूसरा कारण

हो नहीं सकता। वे देवताओंके आवास थे। देवता जाने लगे तो उनको गिरा गये। जब किसी गृह या ग्रामके अधिदेवता उसका त्याग कर देते हैं तो वह प्राणहीन शवके समान अपवित्र-अमंगल बन जाता है। वह आवासके अयोग्य हो जाता हैं। उसका शीघ्र त्याग कर देना चाहिये ; क्योंकि जैसे शव सड़ने लगता है, ऐसेही अधिदेवतासे त्यक्त स्थान उत्पातोंका आवास बन जाता है। उसे उजड़ जानेसे बचाया नहीं जा सकता। वहाँ बसे रहनेका प्रयत्न करनेवाले अशान्ति, कष्ट ही पाते हैं और स्थान-त्यागको विवश होते हैं। गोकुलके अधिदेवताओंने इसे त्याग दिया तो अब यहाँ शीघ्र उत्पात होने लगेंगे। यह अब रहने योग्य नहीं रहा।

'हम सबको अब कहीं अन्यत्र रहने योग्य स्थान देखना चाहिये!' मैंने प्रातःकाल अपने छोटे भाई सन्नन्दसे कहा—'हमारा सर्वस्व तो श्याम ही है और वह जबसे उत्पन्न हुआ, उसके ऊपर आपत्तियाँ ही आ रही हैं। वह राक्षसी पूतना आयी थी, फिर शकट उलट गया और वह राक्षस तृणावर्त......' मैंने कहा—'कंस तो इस शिशुके पीछे पड़ा ही है, अब गोकुलके अधिदेबता भी यह स्थान त्यागकर चले गये। अतः जब तक आधिदैविक उत्पात भी नहीं आ टूटते, उससे पहिले ही हम सबको यह स्थान त्याग देना चाहिये।'

छोटे भाई सन्नन्दने महर्षि शाण्डिल्यसे सुना वर्णन बतलाया—'बर्हिषत् से ईशान, यदुपुरसे दक्षिण, शोणपुरसे पश्चिमकी भूमि माथुर-मण्डल हैं। इसके अन्तर्गत साढ़े बीस योजनका भूभाग दिव्यभूमि है। इस दिव्य भूभागका हृदय है वृन्दावन।'

'भैया! माथुर मण्डलके सब वनोंमें वृन्दावन सर्वश्रेष्ठ है।' सन्नन्दने कहा—'वहाँ गोवर्धन गिरि है। कालिन्दीका प्रवाह है तथा उनका प्रशस्त पुलिन है। वृहत्सानुपुरके स्वामी वृषभानुजी अपने अभिन्न मित्र हैं। उनके पुरसे समीप ही नन्दीश्वर गिरी है। वह आवासके योग्य है। वहाँ हम कंससे दूर हो जायँगे। वृषभानुजीके समीप हमारा बल द्विगुण हो जायगा। वृन्दावन नवीन बन है। सघन, छोटे, हरित वृक्ष हैं। वहाँ पर्याप्त जलकी सुविधा है और हमारे पशुओंके लिए मृदुल तृणोंसे वह परिपूर्ण है।'

'कंसके कुटिल प्रयत्नोंसे इतने निकट मथुराके रहकर हम कबतक बचे रहनेकी आशा कर सकते हैं!' सन्नन्दकी सम्मति मुझे उचित लगती थी। उन्होंने कहा—'हम गोप दुर्बल नहीं हैं; किंतु वह क्रूर सम्मुख

संग्राम करने तो कदाचित् आवेगा ही नहीं। वह कूट चेष्टा करता रहेगा। उसके पास मायावी राक्षस बहुत हैं। अतः हम सबको यह महावन त्यागकर यहाँसे चले ही जाना चाहिये।'

वृन्दावन मेरा अनेक बारका देखा था; किंतु सम्पूर्ण गोकुलको लेकर वहाँ बस जाना हो तो एकबार पुनः उसे देख लेना आवश्यक लगा। मैं प्रभातमें ही छकड़े जोड़कर उसमें बैठा और चल पड़ा। लौटकर मैंने जो कुछ सुना—बहुत भयङ्कर था। मेरा अनुमान सत्य निकला। अधिदेवताओंके त्यागते ही गोकुलमें उत्पात आरम्भ हो गये।

मैं लौटकर सायंकाल छकड़ेसे उतरा ही था कि पत्नीने सुनाया—'यहाँ गोकुलमें सबेरेसे कितनी बार देवर व्रजराजने आपको बुलानेके लिए सेवक भेजे। उन्होंने सब गोपों-गोपनायकोंको बुलवाया है और आपको आते ही भेज देनेको कहा है। पता नहीं, गोकुलका क्या होने वाला है! श्रीहरि रक्षा करें।'

'मैं स्वयं जो कुछ सुनकर आया था, वह नन्दरायको सुना देनेको उत्सुक था; किंतु यहाँ क्या हो गया?' मैंने पत्नीसे पूछा।

'क्या होनेसे नारायणने बचा लिया, यह पूछो।' पत्नीने कहा—'देवरानी ब्रजेश्वरीने देख लिया, यही कुशल हुई। कन्हाई अग्रजके साथ भवनसे कलेऊ किये बिना ही निकलकर उन बड़े गिरे वृक्षोंपर आ बैठा था। तुम जानते ही हो कि जबसे ये वृक्ष गिरे हैं, सब शिशु दिनभर उन्हीं-पर चढ़ते-कूदते हैं। यशोदा दोनोंको कलेऊ कराने बुलाने निकलीं और वहाँ चारो ओर कुत्तों-जैसे, पर बहुत भारी पदचिह्न देखकर चौंक गयीं।'

'भेड़ियोंके पदचिह्न?' मैं धक्से होगया—'वे नन्दद्वार तक आ पहुँचे थे? श्याम-राम सकुशल तो हैं? गोकुलमें कोई उत्पात तो उन्होंने नहीं किया?'

'वे कब आये थे, किसीको पता नहीं।' पत्नीने कहा—'सम्भवतः रात्रिमें आये होंगे। कुछ कर नहीं सके और कहीं वनमें चले गये। यशोदाने वहींसे पुकारना प्रारम्भ किया तो छोटे देवर नन्दन दौड़े पहुँचे। उन्होंने पहिचाना कि वे वृकोंके पद चिह्न हैं। पता नहीं वे कितने थे और किधर गये। सहस्रों पद चिह्न हैं वहाँ और सब दिशाओंमें उनके यूथ गये लगते हैं। देवरने दौड़-दौड़ कर सबको सूचित किया। गायें आज चरने नहीं जा सकीं।'

'महावनमें सभी पशु शान्त स्वभावके ही थे।' मैं बोल उठा—'केशरी भी कुछ थे; किंतु उन्होंने कभी गोष्ठमें प्रवेश नहीं किया था। वनमें भी कभी किसी गौ या बछड़े पर आक्रमण नहीं किया था। वृक यहाँ थे ही नहीं। ये भेड़िये तो बहुत धूर्त और भयंकर होते हैं। ये यूथोंमें रहते हैं और अपने स्ववर्गका भी शव नोच खाते हैं, दूसरोंपर दया कैसे करेंगे।'

'अब पशुओंको वनमें ले जाना अशक्य हो गया।' पत्नी बहुत घबड़ायी थी—'वनसे तृण, शाक, काष्ठ लेने सेवकोंको भेजना अत्यन्त निष्ठुर कार्य बन गया। ऐसे गोकुलका जीवन कैसे चलेगा? गोप सशस्त्र आज गलियोंमें घूम रहे हैं; किंतु रात्रिमें प्रतिदिन यह सावधानी कैसे रखी जा सकेगी। सबसे कठिन समस्या शिशुओंकी है। इनको आज तो सबने व्रजराजके भवनमें पहुँचा दिया है। श्याम आज मैयाकी मानकर भवनसे नहीं निकला दिनभर; परंतु कब तक वह या उसके चपल सखा मानेंगे?'

'तुम व्यर्थ मत डरो! मैं इसकी व्यवस्था सोच चुका हूँ!' मैंने पत्नीको कह दिया—'प्रातः ही पूरे सब गोप सदाके लिए गोकुल त्याग देंगे। हम सब अब वृन्दावनमें बसेंगे। तुम प्रस्थानके लिए प्रस्तुत बनो।'

पत्नीसे कहकर मैं व्रजपतिके गोष्ठ पहुँचा तो वहाँ मेरी ही प्रतीक्षा हो रही थी। सबका यथोचित सम्मान स्वीकार करके मैं ही पहिले बोलने उठ खड़ा हुआ। मैंने कह दिया कि 'पत्नीसे वृकोंके पद-चिह्न पाये जानेकी बात मैं सुन चुका हूँ।'

'कंसका सगा भाई सुनामा राक्षसोंकी भारी सेना लेकर आज लगभग मध्याह्नमें यमुनाके इस पार उतरा।' मैंने जो समाचार पुलिन्दोंसे पाया था वह सबको सूचित किया।

'वे उन मायावी राक्षसोंके पदचिह्न थे? वे वृक बनकर आये थे यहां?' युवकों में-से एक अंगार नेत्र किये भल्ल उठाये उठ खड़ा हुआ।

'लेकिन पद-चिह्न प्रभातमें पाये गये थे!' हमारे छोटे भाई नन्दनने शंका की।

'अभी तो वृक हमारे शत्रु नहीं—सहायक ही सिद्ध हुए हैं!' मैंने सबको शान्त करके पूरा समाचार दिया—'सुनामाकी सेनाको कंसने आदेश दिया था कि वह हमारे राम-श्यामको बन्दी बनाकर मथुरा ले आवे। बहाना यह कि हम गोपोंने उसे वार्षिक कर बराबर नहीं दिया है।'

'कंसको कर देना अनिवार्य तो नहीं है ?' उत्तेजित हो जाना युवकोंका स्वभाव हैं। अनेक उठ खड़े हुए थे—' हम अब तक मथुराके सिहासनको सम्मानके प्रतीक रूपमें कभी-कभी स्वेच्छासे कर देते रहे हैं। गोकुल मथुराके परतन्त्र तो कभी नहीं माना गया ! सुनामाकी सेना और कंससे भी संग्राममें समझ लेंगे हम । अब उसे कभी यहाँसे कर नहीं मिलेगा ।'

' सुनामाने तो जैसे ही महावनमें प्रवेश किया, उसकी सेनापर चारों ओरसे भेड़ियोंके यूथ टूट पड़े।' मैंने पुलिन्द-गणसे प्राप्त पूरा समाचार सुना दिया –' ऐसे अद्भुत भेड़िये कि राक्षसोंके शस्त्रोंसे उनमें-से एकभी मारा नहीं गया । उलटे राक्षसोंकी आधीसे अधिक सेना उन्होंने समाप्त कर दी। सुनामा किसी प्रकार शेषको लेकर यमुनामें कूदा और तैर करके उसपार पहुँचा ।'

युवकोंमें हर्ष व्याप्त हुआ; किंतु वे कंससे अभी निबट लेनेके पक्षमें थे। मैंने उन्हें समझाया—' सबसे पहिली आवश्यकता है अपने राम-श्याम-को सुरक्षित करना। हम सब वैष्णव हैं । वृकोंको वैसे भी पालतू नहीं बनाया जा सकता। अब यहाँ गायोंको वनमें ले जाना सम्भव नहीं रहा। वनसे तृण-काष्ठ नहीं लाया जा सकता। वृकोंका समुदाय कितना बड़ा है, कोई अनुमान नहीं है। शिशुओंकी, गायोंकी, सबकी ही सुरक्षा इसीमें है कि हम सब गोकुल त्याग दें और यहाँसे वृन्दावन चलें । मैं वहाँ नन्दीश्वर गिरिका परिसर देख आया हूँ। हम सबके लिए सब प्रकारकी ही सुविधा-सुरक्षा वहां उपलब्ध है।'

हम गोपोंमें सबसे बड़ा सद्गुण हमारा संगठन है। मैं तो सबसे बड़ा हूँ वयमें ; किंतु सबसे अल्प वयका भी कोई ऐसी बात कहता तो उसपर मतभेद होनेकी सम्भावना कम ही थी। बहुत असंगत हानिकर बात हो तो कहने वालेको सरलतापूर्वक समझा दिया जा सकता है। ऐसा अवसर भी अत्यन्त कम आता है। हमारे यहाँ कोई बात उठाता ही है बहुत सोच-समझकर और सब उसका समर्थन करेंगे, इस सम्बन्धमें वह आश्वस्त रहता है।

सबने सदाकी भाँति मेरी बात मान ली। हम कल प्रभातमें ही चल पड़ेंगे, यह निश्चय हो गया। सबसे छोटे भाई नन्दन और उनसे बड़े सन्नन्द-पर व्यवस्थाका भार छोड़कर मैंने नन्दरायको साथ लिया ; क्योंकि अभी

महर्षि शाण्डिल्य तथा सभी ऋषि-मुनियोंको साथ चलनेको प्रस्तुत करना था। हम किसी भी प्रकार उनको त्यागकर तो जा नहीं सकते थे।

'वत्स! मैं स्वयं तुमसे मिलने आ रहा था।' हम दोनों प्रणाम करके बैठे ही थे कि महर्षिने कहा— 'मैंने आज मध्याह्लोत्तर सभी विप्रवर्गको बुलाया था। प्रातः वृकोपद्रवका समाचार पाकर मुझे चिन्ता हो गयी। हिंसक पशु, मूषक, शुक एवं अन्य ऐसे प्राणियोंकी वृद्धि जो मानवकी आजीविका तथा जीवनके लिए आतंक बननेवाले हों आधिदैविक उत्पातोंमें ही गणना की जाती है। अकाल, महामारी आदिके समान इनके प्रतिकारका दायित्व भी हम ब्राह्मणोंपर ही है।'

यजमानके हितको उससे भी पहिले सोच लेनेके कारण ही पुरोहितका यह नाम सार्थक है। महर्षि शाण्डिल्य इसमें प्रमाद कर नहीं सकते थे। हम गोपोंपर उनका अपार वात्सल्य है। भूल मेरीं ही है, मुझे पहिले इन श्रीचरणोंमें आना था।

'मुझे बहुत दुःख है वत्स!' महर्षिने कुछ सखेद स्वरमें कहा— 'हममें-से कोई ऋषि या मुनि ध्यानमें एकाग्र होकर भी इन वृकोंके स्वरूपको समझ नहीं सका। हम सब अपनी अथवा अपने यजमानोंमें भी किसीको ऐसी कोई त्रुटि नहीं देखते, जिससे यहाँ किसी देवताका कोप मूर्तिमान बने। अतः हम सबने यही सम्मति देना निश्चित किया है कि तुम सबको अब गोकुल त्याग देना चाहिये! सम्भवतः भगवान नारायणकी यही इच्छा है।'

हमारा कार्य सुगम हो गया। महर्षि सबके साथ प्रातः सन्ध्या समाप्त करके ही प्रस्थान कर देंगे, यह निश्चय हो गया।



वृन्दावनकी ओर

सबसे छोटा होनेके कारण सबका स्नेह ही पाया है मैंने शैशवसे। मेरे सब अग्रज मुझे केवल अपनी मल्लक्रीड़ामें ही लगे रहनेका प्रोत्साहन देते रहे हैं। कोई दायित्व नहीं मुझपर और सबसे अधिक सुविधाएँ दी गयीं मुझे। व्रजराज भैया तक स्वयं भले वनमें गायोंको देखने चले जायँ, मुझे कभी नहीं कहा इन्होंने किसी कार्यके लिए।

हम सबके सौभाग्यसे हमें कितनी प्रतीक्षाके पश्चात् तो युवराज प्राप्त हुआ और क्रूर कंस हमारे इस सुकुमार हृदय-धनके पीछे ही पड़ गया है। वह कोई-न-कोई उत्पात गोकुलमें करता ही रहता है। अब कहींसे असंख्य वृक आ गये हैं महावनमें। बड़े भाई उपनन्दजी बहुत बुद्धिमान हैं। उनकी सम्मति सदा निर्दोष होती है। बहुत कठिन अवसरपर वे हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं। उन्होंने कल सायंकाल गोकुल-त्यागकी उचित सम्मति दी। वृन्दावन सब प्रकार उपयुक्त है। मुझे प्रस्थानका प्रबन्ध तथा मार्गमें सुरक्षाका दायित्व सम्भालनेको वे न भी कहते तो भी मुझे यह करना ही था। असंख्य वृक आ गये हैं कहींसे वनमें और कंस कब क्या कुटिल क्रूर चेष्टा करेगा, किसे पता है। अपने गोकुलको, अपने शिशुओंको हम असुरक्षित तो नहीं छोड़ सकते।

महर्षि शाण्डिल्य सर्वज्ञ हैं। शिशुओंपर असीम स्नेह है उनका। उन्होंने प्रभातमें प्रस्थानका मुहूर्त सूचित करके मेरा कार्य सुगम कर दिया। अन्धकारमें यात्रा बहुत आशंकाप्रद होती। वनमें असंख्य वृकोंके रहते ब्राह्ममुहूर्तमें प्रस्थान नहीं किया जा सकता था। बालकोंको बहुत शीघ्र अब उठाना आवश्यक नहीं रहा।

मैंने एक-एक गोपसे बात कर ली है। मैं सबसे छोटा हूँ अतः सबके घरोंमें मैं जाकर देख सकता हूँ कि प्रस्थानके प्रबन्धमें क्या सहायताकी जा सकती है। मेरी ताई-चाची हैं, वृद्धाएँ हैं और शेष प्रायः भाभियाँ हैं। मैं कुछ अनावश्यक सूचनाएँ भी दे जाऊँ तो कोई बुरा नहीं मानती।

बालकोंको मार्गमें कलेऊ कराना होगा मध्याह्न हम भोजन करेंगे मार्गमें और आगे मार्गमें ही विश्राम करेंगे रात्रिको। दूसरे दिन भी हम सबको वृन्दावन पहुँचकर अपने आवास व्यवस्थित करनेमें व्यस्त रहना पड़ेगा। अतः मैंने सबको कह दिया है कि दो दिनके लिए पर्याप्त कलेऊ, भोजन तथा बालकोंके आवश्यक वस्त्र, खिलौने वे अपने साथ अपने ही छकड़ोंपर रखें। शेष सब सामग्री बाँधकर छकड़ोंपर पृथक एक साथ चलेगी। प्रातः हम सब यहीं गोदोहन करेंगे।

मेरी अपनी दुर्बलता है, मुझे लगता है कि हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष सबकी ही यह दुर्बलता है कि श्यामको देखे बिना रहा नहीं जाता। रात्रिमें देर तक, जबतक कन्हाई भवनमें जाकर सो न जाय, सब व्रजराजके यहाँ बैठे रहते हैं और प्रातः उठते ही किसी प्रकार गोदोहन करके वहाँ पहुँचनेकी पड़ती है। गोचारण, गृहकृत्य करने ही पड़ते हैं; किंतु बड़े कष्टकर हो गये हैं यह कृत्य। कृष्ण पता नहीं कैसे पहुँच जाता है गोष्ठोंमें, गृहोंमें। वह न पहुँचे तो मैं तो यह कुछ कर न पाऊँ। वह मेरे व्यायामको देखकर हँसता है, कूदता है, किलकता है, कुछ पूछता है, इसीसे तो व्यायाम नियमित बना है।

प्रातः प्रस्थानकी प्रस्तुतिमें गया तो मैं गोकुलके सभी गृहोंमें; किंतु रानी भाभीने हँसकर ठीक ही व्यंग किया कि मैं प्रायः रात्रिभर घूम-फिरकर उनके ही प्रांगणमें बना रहा। पहिली बार शयन करते नीलमणिको समीपसे देखनेकी सुविधा प्राप्त हुई थी। उसपर दृष्टि जानेपर पद कहाँ कहीं जानेको उठ पाते हैं।

राम-श्याम दोनों एक ही शैयापर सटकर सो रहे थे। राम निद्रामें भी अनुजपर दक्षिण कर रख जैसे उसे सम्हाले था और कन्हाई तो बड़े भाईसे लिपटा ही था। रानी रोहिणी भाभीको तनिक भी अवकाश नहीं था। उन्हें प्रस्थानके समय क्या सामग्री कहाँ किस छकड़ेपर रहेगी, यह सब सम्हालना था।

व्रजेश्वरी भाभी सदासे सीधी हैं, और जबसे श्याम उनके अंकमें आया है, इस चंचलने उन्हें और पगली बना दिया है। केवल कन्हाई ही कहाँ है, हम सबके सभी बालक तो इन्हीं को घेरे रहते हैं। सबके अभियोग सुनने हैं इन्हींको। सबको जो कुछ चाहिये, इन्हींसे लेना है और सबकी सुधि भी इन्हींको रखनी है।

कल कब कन्हाईको क्या चाहिये, इतनी ही बात होती तो कोई कठिनाई नहीं थी; किंतु क्या सर्वज्ञ सृष्टिकर्ता भी सोच सकता है कि ये शिशु मार्गमें क्या माँग बैठेंगे ? सब चाहे जब अपने छकड़ोंसे कूदकर भाभी-के छकड़ेपर उनके अंकमें आ बैठेंगे और बालक तो समझ नहीं सकता कि उसकी बात उसी समय क्यों पूरी नहीं की जा सकती।

ये खिलौने, ये वस्त्र, यह कलेऊकी विविध सामग्री—व्रजेश्वरी भाभी हैं यह सब सजाने-सम्हालने को, अतः मेरी गृहिणी ही नहीं, सब गोपियाँ निश्चिन्त हो गयीं हैं। मैं जिस किसीके घर में गया, पुरुषोंके लिए पर्याप्त भोजन-सामग्री बनायी है सबने। अपने गृहोपस्कर सम्हालकर छकड़ोंपर लाद दिये हैं; किंतु सब अपने शिशुओंकी ओरसे निश्चिन्त हैं। मेरी पत्नीके समानही सब हँसकर कह देती हैं—'उसे जीजी सम्हाल लेंगी। वह कहाँ श्यामको छोड़कर मेरे समीप रहने या कलेऊ करने लगा है।'

ये व्रजेश्वरी भाभी हैं कि इन्हें अपनी भी सुधि नहीं है। मैंने पूछा था—'भाभी! मुझे आप मार्गमें कलेऊ तो करा दोगी ?'

हँसकर उत्तर दिया—'भैया! तुम रोहिणी जीजीसे यह सब पूछ लो। उन्होंने तुम्हारी, तुम्हारे भैयाकी, अतुलाकी और मेरी भी व्यवस्था की होगी। मैं तो तुम्हारे नीलमणि, राम, भद्र, तोक, विशाल आदिकी व्यवस्था ही बना नहीं पा रही हूँ। मुझे तनिक सहायता करो, यह बताओ कि ये बालक कब क्या माँगने लगेंगे।'

मैंने हाथ जोड़ा। हम पुरुष क्या जाने बालकोंको पालना। मैं उनकी आवश्यकताका अनुमान कैसे कर सकता हूँ। स्वयं मेरी आवश्यकताका पता भी मेरी पत्नीसे अधिक इन भाभीको रहता है। ये खिलौनोंकी राशियाँ, वस्त्र, बहुत अधिक खाद्य-सामग्री अपने ही छकड़ेमें सेवकोंको रखनेको दे रही हैं। स्वयं जाकर सामग्रियोंको इधर-उधर सजाती हैं कि आवश्यकता होनेपर तत्काल उन्हें पाया जा सके।

'देवर, मेरा छकड़ा व्रजेश्वरीके छकड़ेके समीपही रखना!' सबकी आज एकही माँग है; किंतु मैं जानता हूँ कि कोई मुझसे असन्तुष्ट नहीं होगी; क्योंकि सबकी उससे पहिले माँग है—'कन्हाईकी सुरक्षाका पूरा ध्यान रखना मल्ल देवर! कंसके मायावी राक्षस भेड़ियोंसे भी अधिक भयंकर सुने जाते हैं।'

रक्षाका दायित्व मुझपर है और मैं आश्वस्त हूँ। मेरे सब साथी तरुण गोप शस्त्र-सज्ज साथ रहेंगे ! कल-परसों मार्गमें कोई आनेका साहस कर देखे उसमें शक्ति हो तो। मैंने सबको निश्चिन्त कर दिया है । भेड़िये तो देखनेको भी नहीं मिलेंगे ; क्योंकि ये यूथबद्ध विचरण करनेवाले पशु हम मानवोंके कोलाहल मात्रसे दूर भागते हैं।

× × ×

'गायें आगे चलेंगी ! ' बड़े भाई उपनन्दजीकी यह बात मर्यादाकी थी, अतः मैंने मस्तक झुकाकर मान ली; किंतु मैं जानता था कि ऐसा करना कभी सम्भव नहीं होगा। कन्हाई अपने छकड़ेपर होगा तो कोई गाय या बछड़ी आगे बढ़ेगी ही नहीं। हम गोप हैं, गायें हमारी देवता, हमारी पूज्य, सदा हमसे आगे किंतु वे श्याम खेलता मिल जाता है प्रातः या सायं तो उसे घेरकर खड़ी हो जाती हैं। सायं उसे गोष्ठमें ले जाना पड़ता है, तब वे गोष्ठमें जाती हैं। प्रतिदिन भाभीसे प्रार्थना करनी पड़ती है मुझे कि गायोंके वनमें चले जानेपर गृहसे नीलमणिको निकलने दें। अब यात्रामें गायोंको गोप कोई भी प्रयत्न करके आगे ले कैसे जा सकते हैं।

प्रभातमें ही सन्ध्या-तर्पण समाप्त करके महर्षि शाण्डिल्य ऋषियों-मुनियोंके साथ अपनी अग्नियाँ लिये हमारे वृषभ-रथोंपर आ विराजे। आज मधुमंगलने मेरी मनुहार ढेरसे मोदक लेकर मान ली। वह भगवती पूर्णमासीके साथ बैठ गया छकड़ेपर और मुनिमण्डलीके साथ आगे रहना उसे योग्य लगा। मैंने कहा था—'हम सब कलेऊ, भोजन विप्रवर्गको कराके ही करेंगे। तुम आगे चलोगे तो यह सत्कार सुलभ होगा।'

'चाचा ! तुमको क्षुधा सताये तो मेरे समीप आ जाना !' यह चपल आज उदार बन गया—'मैं अपना प्रसाद मोदक दूँगा तुम्हें !'

किसी प्रकार यह आगे तो रहे। यह कोई चपलता करता छकड़ेसे उतरेगा तो सब उतरनेको मचलने लगेंगे। श्याम मानेगा ही नहीं।

सब ओर शंखनाद करके, शृंगोंकी तुमुल ध्वनिके मध्य मुनि-मण्डलीसे भी आगे हमने गाँयोंको हाँक दिया ; किंतु बात मेरी ही सत्य निकली। सब गायें, वृषभ, बछड़े, बछड़ियाँ तक पीछे भाग निकलीं। सद्यः-प्रसूता गौओंने भी अपने बछड़े उठाये गोपोंका साथ छोड़ दिया। सब हुंकार करती भागीं पीछे। इन्हें गोप कैसे रोक सकते थे। श्याम शकटपर

अग्रजके साथ न आ बैठा होता तो कदाचित सब नन्दभवनमें भीतर ही प्रबिष्ट हो जातीं। राम-श्याम अपनी माताओंके साथ शकटपर साथ बैठे हैं, साथ चल रहे हैं, यह देखे बिना हमारे ये पशु यहाँसे आगे नहीं बढ़ाये जा सकते थे।

मेरा अपना बनाया व्यूह नष्ट हो गया; किंतु मुझे इससे प्रसन्नता हुई। हमारा श्याम अब बहुत अधिक सुरक्षित हो गया। मैंने व्रजेश्वरी भाभीके साथ ही रानी भाभीको एक ही छकड़ेपर रहनेकी प्रार्थनाकी थी। राम-श्याम साथ रहेंगे उनके पास तो इन दोनोंको वे नीचे नहीं उतरने देंगी। इनके सखा अपनी माताओंके साथ छकड़ोंपर इनके आगे, पीछे पार्श्वोंमें समीप हैं ही। केवल भद्र है आगे; किंतु वह व्रजराज मैयाके अंकसे नहीं उतरेगा। गोपियोंके छकड़ों को घेरकर आगे-पीछे दूर तक वृद्धोंके शकट और फिर सामग्रियोंसे लदे विशाल शकट। इस पंक्तिके दोनों ओर तथा पीछे भी शस्त्र-सज्ज मेरे तरुण साथी। हमारे गोधनने मेरे व्यूहमें प्रवेश करके हम सबको विवश कर दिया है कि हम बालकोंकी रक्षाका दायित्व गायोंपर छोड़कर और पीछे हट जायँ और केवल सामग्री-की सुरक्षा देखें! इन गायोंकी सुरक्षा तो हमारे स्वभावमें है और इन लक्ष-लक्ष गायोंकी, वृषभोंकी हुंकार करती दृष्टि जहाँ लगी है, पूरे व्रजके उस सर्वस्व तक पहुँचना अब किसी वनपशु अथवा राक्षसके लिए सम्भव नहीं है।

मुझे सुरक्षाकी सावधानी मिली है। आज मैंने उस बड़वाको वाहन बनाया है, जिसपर मथुरासे रानी भाभी गोकुल पधारी थीं। कितनी सधी गति है इसकी और कितनी समझदार है यह अश्विनी—मैं रश्मि-संकेत दूं—इससे पूर्व जान लेती है कि मैं कहाँ जाना चाहता हूँ। शकटोंके, गायोंके इस अपार समुदायमें भी सरलतापूर्वक मार्ग बना लेती है और हमारे गायें, वृषभ—सबकी तो यह सुपरिचिता है। समीपसे निकलती है तो सब हुंकार करके इसे सप्रेम मार्ग देते हैं।

श्यामके शकटके समीप जाकर उसे देख लेना आवश्यक हो या न हो, मन कहाँ मानता है इसके बिना। ये बालक बहुत चञ्चल हैं। चलते शकटोंपर बार-बार उठ खड़े होते हैं। किलकते हैं, ताली बजाते हैं—कभी अपनी मातासे कुछ पूछते हैं और कभी दूसरे छकड़ेपर बैठे सखाको पुकारने लगते हैं।

बालक बहुत प्रसन्न हैं। इन्हें प्रथमबार वन देखनेको मिला है। कोई पुष्प, कोई फल, कोई दल, कोई तरु, वनपशु या कोई पक्षी दीखा और राम या श्याम रानी भाभी या व्रजेश्वरी भाभीके कर खींचकर, उनके कपोलपर कर रखकर उधर दिखाते हैं अथवा किसी सखाको संकेत करते हैं।

'भैया! मैं वह फल लूँगा!' कन्हाई ही नहीं, कोई बालक हठ करे तो कठिनाई नहीं है। पार्श्व-रक्षक तरुणोंमें-से कोई तोड़कर दे देगा; किंतु यह चञ्चल नीलमणि अनेक बार अड़ता है—'चाचा! मैं वह पुष्प अपने आप तोड़ूँगा।'

इसके शकटको वृक्षके नीचे लाकर समझाना पड़ेगा कि 'लाल! पुष्प बहुत ऊपर है। वह तेरे करोंमें नहीं आवेगा।'

मेरा कार्य बढ़ गया है। ये बालक कोई पुष्प या फल मँगाते हैं और दूसरे किसी सखाको देना चाहते हैं। मुझे ही यह मध्यस्थता करनी है। मैं पक्षियोंकी उपेक्षा कर दे सकता था। कोई अशुभ पक्षी दृष्टि नहीं पड़ा। कपोत, शुक, मयूर, सारिकाएँ, हंस यदि उड़कर शकटोंपर आ बैठते हैं तो अच्छा ही है। अन्य शकटोंपर तो ये तब बैठते हैं जब श्यामके समीपसे उड़कर आते हैं अथवा वहाँ बैठनेको स्थान नहीं होता। राम-श्याम इनसे उलझे रहें, इनको कुछ चुगाते चलें तो और कोई ऊधम तो नहीं करेंगे।

रानी भाभी पक्षियोंको कुछ-न-कुछ खिलाती चल रही हैं। कन्हाई और दाऊभी अपने करोंसे कुछ दे रहे हैं और ये इनको करोंसे ही तो लेना चाहते हैं।

हमारे दोनों ओर वन-पशुओंकी पंक्ति लग गयी है। शशक हैं, मृग हैं, गवय हैं, भल्लूक हैं, केशरी हैं और व्याघ्र हैं; किंतु वृक एक भी कहीं नहीं दीखा मुझे। इतने अधिक वृकोंके पदचिह्न पाये गये थे; किंतु यह प्राणी कपटी है, कोलाहलसे दूर रहता है। छिपकर कुटिलतापूर्वक आक्रमण करता है। लाख-लाख गायों-वृषभोंकी हुंकृति, उनके गलेमें पड़ी घण्टियोंका शब्द, शकटोंकी घर्र-चर्र ध्वनि, बालकोंका कोलाहल भी मुझे कम लगा था। मैंने गोपोंको कह दिया है कि एक यूथका शृङ्गनाद समाप्त होतेही दूसरा यूथ प्रारम्भ कर दे। इस गगन-गुंजित करते अविराम कोलाहलमें वृक समीप आनेका साहस नहीं कर सकते।

इन एकत्र वन-पशुओंपर कोलाहलका कोई प्रभाव नहीं। सब सिमट आये हैं पथके समीप इन स्नेहशील पशुओंसे भला भय क्या। इनसे तो हमारी वछड़ियाँ तक नहीं बिदकतीं। बछड़े इन्हें सूँघकर सिरसे ठेल तक लेते हैं। इनको अपने ही शरीरकी सुधि होती तो ये अनेक सर्प मयूरोंकी कण्ठमाला बने भूमते ?

कपियों, भल्लूकोंको अधिक सुविधा है वृक्षोंपर बैठकर कन्हाईको देखनेमें। ये ही नहीं, केहरी और व्याघ्र तक श्यामके शकटके समीप बढ़ आये होते यदि हमारी गायोंने उनको अपने यूथमें आने दिया होता।

श्याम बार-बार नन्हें कर हिलाकर मुझे समीप बुलाता है—'चाचा! वह कौन है?' कभी किसी पशुका नाम पूछना है इसे, कभी किसी पक्षीका। कभी किसीको पकड़ना चाहता है, कभी किसीको कुछ खिलानेको उत्सुक होता है। जब अपनी मैया या माँसे पूछकर नहीं जान पाता, कहकर नहीं करवा पाता तो मुझे बुलाता है।

'मैं वह बिल्लियाँ लूँगा!' दोनों भाभियाँ हँस रही हैं। यह अवश्य उनसे माँगकर खीझनेके पश्चात् मुझसे हठ कर रहा है। व्याघ्र अपनी संगिनी और दो शिशुओंके साथ आया है। श्याम उसके बच्चोंको पकड़ना चाहता है।

'लाल! वे बिल्लियाँ नहीं हैं। वे उस बड़े व्याघ्रके बच्चे हैं!' मैं जानता हूँ कि मेरा समझाना यह नहीं सुनेगा। मैं उन बच्चोंको उठाकर इसे दे सकता हूँ; इसमें व्याघ्र-दम्पति आपत्ति नहीं करेंगे, इतना पता है मुझे; किंतु कठिनाई यह है कि तब वे दोनों भी कन्हाईके शकटके समीप आना चाहेंगे। इसमें गायें उत्तेजित होकर उनको आहत कर दे सकती हैं। पशुओंको सब स्नेहशीलोंका स्नेह समझाया तो नहीं जा सकता।

'मैं उन्हे लूँगा!' नीलमणि अब मुझसे मचलने लगा है। इसे तो ब्रजेश्वरी भाभी ही मना सकती हैं।

'तू उनको पकड़ेगा तो उनकी वह मैया रोयेगी!' मेरी विवशतापर भाभीको दया आ गयीं। उन्हें भी भय तो है ही कि उनका यह लाल शकटसे उतरनेका आग्रह न करने लगे।

कोई रोये, दुःखी हो यह हमारा युवराज नहीं सह पाता। यहींसे हाथ हिलाकर व्याघ्र-दम्पतिको यह आश्वासन देने लगा है कि उनके

बच्चोंको नहीं पकड़ेगा। अब इसके करका मोदक उन बच्चों तक पहुँचा देनेमें मुझे क्या आपत्ति है।

कलेऊ तो बालकोंको चलते शकटोंपर ही कराना था; किंतु सभी आज भूख-प्यास भूल गये हैं। प्रथम बार कानन देखा है इन्होंने। नवीन वृक्ष, लताएँ, फल-पुष्प, किसलय, पशु-पक्षी—इतने आकर्षण हैं इनके लिए कि भाभीने जब कुछ राम या श्यामको खिलाना चाहा, वह किसी पशु या पक्षीका भाग बन गया। मैंने समीप जाकर अनेक प्रयत्नोंके पश्चात् नीलमणिको कुछ खिलाया।

'लाल! मुझे भूख लगी है।' मैं कभी भी कहूँ तो यह मैयासे माखन, मोदक कुछ-न-कुछ सदा माँग लाता रहा है। मेरे घर हुआ तो 'चाची-चाची' करता मेरी पत्नीसे ले आवेगा और अपने करसे मेरे मुखमें देना चाहेगा।

'मैं अकेले नहीं खाता। तू भी खा!' मेरे मुख हटा लेनेपर हँसेगा, तनिक सा मुखमें डालेगा और फिर मैं मोदक या माखन इसकी मुट्ठी सहित मुखमें ले लूंगा। यह हँसेगा, दूसरा हाथ भी मुखमें डालना चाहेगा अथवा मेरे श्मश्रुमें नचावेगा।

'तुम लोग भी तो कलेऊ ले लो!' रानी भाभी अनेक बार आग्रह कर चुकीं।

'मेरा पेट तो मेरे इस मोहनने भर दिया है।' मैं सच ही कहता हूँ—'औरोंको कलेऊ करनेके लिए आगे स्थान निश्चित किया है बड़े भैयाने। आपका यह मल्ल देवर तो खड़े-भागते भी खा लेता है।

कलेऊ तो करना था कालिन्दी कूलपर और वहाँ समीपसे ही सेतु द्वारा सबको यमुना पार होना था। बालकोंको यहाँ सम्हालना सबसे अधिक आवश्यक हो गया; क्योंकि शकट जैसे ही रुके, सब नीचे उतर पड़े और यह देखने भागे कि आगे क्या है?

गायें भी तृण चरना भूलकर कन्हाईके शकटकी ओर ही दृष्टि लगाये हुंकार करती चलती आयी हैं। इन्हें भी कालिन्दी पार करके चरनेको प्रेरित करना पड़ेगा; किंतु यह कन्हाई भागा जा रहा है आगे। यह तो कूदता-पुकारता जा रहा है—'भद्र! तोक! मधुमंगल! विशाल! अर्जुन!'

ये सब बालक ऐसे मिलकर प्रसन्न हैं जैसे वर्षोंके पश्चात् मिले हों। अब श्याम अपने बाबाके समीप पहुँच गया है। भैया नन्दराय इन सबको सम्हाल लेंगे। मैं गायोंको पार उतारनेका प्रबन्ध कर सकता हूँ। गायोंके लिए तो सेतु बन नहीं सकता था। यह नौकाओंका सेतु शकटोंको, हम सबको पार पहुँचने का साधन है। गायें तो तैरकर ही पार होंगी।

श्याम बहुत चञ्चल है। वह सखाओंके साथ सेतु पर भाग गया। भया नन्दराय पुकार रहे हैं—'नीलमणि! राम! सब तनिक रूको! मुझे समीप आने दो।'

भैया इन बालकोंके साथ दौड़ तो नहीं सकते। मुझे ही कन्हाईको सम्हालना पड़ेगा। यह तो समीप आतेही पूछने लगा है—'यह नौकाएं डूबती क्यों नहीं? जलपर सेतु कैसे बना? इनके मध्यसे तो बीच-बीचमें जल बह रहा है? यह सेतु इतना क्यों हिलता है?'

अब इसके प्रश्नोंकी सीमा नहीं है। इसकी समझमें यह कैसे आ सकता है कि गायें सेतुपर-से क्यों नहीं आ रही हैं। वे जलमें स्नान करेंगी तो यह क्यों नहीं कर सकता और गायें डूबती नहीं तो यह भी क्यों उनके समान तैर नहीं सकता।

'लाल! तुम सब छोटे हो। बड़े हो लो तो मैं सबको तैरना सिखला दूँगा!' मैं इन सबको लेकर पहिले सेतुके पार पहुँचा दूँ। सेतुपर तो ये कूदकर उसे हिलाते हैं, इधर या उधर जलमें झाँकते हैं। उसपार पहुँचकर व्रजराज भैया इन्हें सम्हाल लें तो मैं गायोंको पार उतारूँ।

'चाचा! सब गायोंको और धर्मको, गौरवको भी तुमनेही तैरना सिखलाया है?' कन्हाई पूछता है।

'गायों-वृषभोंके चार पैर हैं। उन्हें तैरना सिखलाना नहीं पड़ता। वे अपने-आप तैरने लगते हैं।' बालकोंको उनकी बातका उत्तर तो दिया ही जाना चाहिये!

'कनूँ! तुम सब लोग यहाँ अपने बाबाके पास खड़े रहो! पानीके पास मत जाना; यहींसे गायोंको तुम बुलाओ तो!' हमारा कन्हाई जानता है कि यह हाथ हिलाकर बुलावेगा तो गायें सीधे दौड़ी आवेंगी इसके समीप।

'वहाँ और पास जाकर पुकारेंगे!' मधुमंगल नटखट है। यह तट पर जाना चाहता है।

'वहाँ जाओगे तो पानीमें भीगी गायें भगती आवेंगी और तुम सबको भिगा देंगी।' मैंने इसे तनिक धमका दिया है—'कामदा, कृष्णा, धर्म सब तुझे भीगी पूँछसे अभिषेक करेंगे !'

'इतना अभिषेक ? ना – हम सब यहीं रहेंगे।' मधुमंगल स्वय कहता है—'वे पूँछसे मुझे पोंछने भी लग सकते हैं।'

सचमुच कन्हाईके कर हिलाते ही गायोंका समूह उतर गया जल में। बालक कितने प्रसन्न इनका तैरना देख रहे हैं। सब एक-एक का नाम लेकर पुकारने लगे हैं—'वह निकला धर्म ! वह आयी कूदती कामदा !' यह अरुणा सीधी ही आ गयी !'

पशुतो पानीसे निकलकर अंग झाड़ेगे, तनिक कूदेंगे ही और बालकोंके लिए यह बहुत बड़ा विनोद बन गया है।

'चाचा ! इन गायोंको तो स्नान नहीं कराया ?' श्याम मेरे पास दौड़ आया है—'ये तो सेतुपर-से आ रही हैं !'

'अभी इनके बच्चे बहुत छोटे हैं। इन सद्यःप्रसूताओंको शीत लग सकता है।' श्यामको पता नहीं क्या-क्या पूछना है। इसे तो यह भी समझाना है कि छोटे बछड़ोंको गोप तैरनेमें क्यों सहायता दे रहे हैं। उन्हें सेतु परसे क्यों नहीं लाया गया ? कन्हाई कहाँ जानता है कि बछड़े उससे बहुत अधिक चञ्चल हैं। वे सेतु परसे उछल कूदमें अपनेको आहत कर ले सकते हैं। उन्हें तो गोदमें उठाकर अथवा बाँधकर-पकड़कर ही सेतु परसे लाना पड़ता है।

× × ×

'नीलमणि कहाँ गया ? राम कहाँ है ? सब बालक किधर गये ?' मेरी ब्रजेश्वरी भाभीका व्याकुल होना उचित है। उनका सन्देश आया तो मैं आश्वासन देने भागा उनके समीप। बालकोंको व्रजराज भैया सम्हाल सकते हैं, इस पर उन्हें विश्वास ही नहीं होता। मुझे शीघ्र लौटाया—'वे सब बहुत चञ्चल हैं। पानी प्रायः सब बालकोंको प्रिय है। सब जलमें न उतरें !'

हमको कालिन्दी-कूलपर ही रात्रि-विश्राम भी करना था। मध्याह्न के समय स्नान-सन्ध्या, भोजन करके महर्षि शाण्डिल्य मुनि-मण्डलके साथ प्रथम चल पड़े। इन परम पूज्य तपस्वियोंने रात्रि-विश्राम वृक्षोंके नीचे ही

किया। गोपोंको भी गायोंके समूहके समीप ही रहना था और मुझे अपने तरुण साथियोंके साथ तो रात्रिमें सतर्क रहना था। हमारे लिए निद्रा लेनेका प्रश्न ही नहीं था। शिशुओंको तथा स्त्रियोंको शकटोंके घेरेमें रात्रि-विश्रामके लिए बड़े भैयाने वस्त्र-शिविरों कीं व्यवस्था कर दी थी।

बालकोंकी यहाँ वनमें जानेसे रोका नहीं जा सकता था। श्याम अपने सखाओंके साथ मयूरपिच्छ एकत्र करता, गुञ्जा संग्रह करता, पुष्प-गुच्छ, किसलय तोड़ता बहुत देर तक घूमता-दौड़ता रहा। मैं थोड़े साथियोंके साथ बालकोंकी सुरक्षाके लिए उनके साथ रहा; किंतु हम उनकी सहायता ही तो कर सकते थे। हम उनको बलपूर्वक रोकते तो उनका उत्साह भंग होता। सब बहुत देर तक दौड़ते-खेलते रहे। श्याम ढेरों गुंजा, मयूर पिच्छ संग्रह करके मुझे देता रहा। अन्धकार हो जानेपर सब श्रान्त होकर सोये हैं। मैंने बड़े भैयासे कह दिया है कि प्रभातमें इन शिशुओंको शीघ्र नहीं उठाना है। हम सब स्नान-सन्ध्या यहीं करके प्रस्थान करेंगे।

× × ×

बड़े भैयाने सेवक पहिलेही भेज दिये थे। वृषभानुजीका सम्पूर्ण सहयोग स्वाभाविक ही मिलना है। हम सबको नन्दीश्वर गिरिके पार्श्वमें ही रहना है, यह निश्चय तो पहिले ही हो चुका है। वहाँ स्थान समतल करना है, घास छीली जानी है। बड़े भैया उपनन्दजी ब्राह्ममुहूर्तमें ही चले गये हैं। उन्होंने हम सबको वहाँकी व्यवस्था समझा दी है।

एक योजन मध्यभाग चौड़ा रखकर दो योजनमें अर्धचन्द्राकार छकड़ोंको खड़ा करके हम वहाँ अपना प्रारम्भिक आवास बना लेंगे। काँटेदार वृक्ष चारों ओर गाड़कर उसे सुरक्षित कर लेंगे। सुविधानुसार भवन बनते जायँगे। भैया नन्दरायका भवन नन्दीश्वर गिरिपर हम सर्व-प्रथम बनायेंगे।

'चाचा! वह ऊँचा-ऊँचा हरा क्या है?' कन्हाईको कुतूहल होता है तो वह मुझे समीप बुलाता है—'अपने छकड़े तो उधर ही जा रहे हैं।'

'वे गिरिराज गोवर्धन हैं!' मैं बतलाने लगा हूँ—'उनके एक ओर वह नन्दीश्वर गिरि है। हम उसके समीप ही रहेंगे। वह वृहत्सानुपुरका शिखर दूसरी ओर है!'

'गिरिराज ? हम गिरिराजके समीप रहेंगे।' श्याम मेरी पूरी बात सुननेसे पूर्व ही प्रसन्न होकर ताली बजाने लगा है। इसे पर्वत-वन प्रिय होंगे, अन्ततः हम गोपोंका ही युवराज है।

'चाचा! तुम छकड़े खड़े क्यों नहीं करते ?' मुझे फिर बुलाया इस चपलने। भाभी कहती हैं—'अपने इस भ्रातृपुत्रको अब तुम्हीं समझाओ। यह अड़ा है—गिरिराज आ गये। अब आगे क्यों जा रहे हो ?'

'हम सबको जल भी तो चाहिये !' मैंने हँसकर समझाया—'गिरिराजके समीप जहाँ यमुनाजी हैं, वहाँ रहेंगे हम लोग।'

'यमुना हैं वहाँ ?' कन्हाई तो दाऊको, दूसरे सखाओंको पुकारने लगा है—'वहाँ यमुना भी हैं तोक! विशाल, वहाँ गिरिराज भी हैं, यमुना भी हैं!'

'वे दीखती हैं यमुनाजी !' मैंने हाथ उठाकर संकेत किया।

'वे उजली दूध जैसी।' श्याम माताके अङ्कमें चलते शकटपर सुप्रसन्न खड़ा एकटक देखने लगा है।

'वह तो तटके समीपका पुलिन है।' मैंने हँसकर समझाया—'पुलिनसे सटा सघन वृन्दावन और उज्ज्वल पुलिनके दूसरी ओर वह नीली धारा।'

'वृन्दावन ?' आज हमारा कन्हाई बहुत प्रसन्न है। प्रत्येकके नाम सुनकर यह खिलखिल उठता है। पता नहीं क्या समझता है इन नामोंसे।

'मैं पुलिनपर खेलूंगा !' अब यह सखाओंको पुकारने लगा है।

शकटोंको कुछ अधिक वेगसे चलानेको कहता है। वहाँ हम सबको मध्याह्नसे पूर्व पहुँच जाना चाहिये, जिससे सूर्यास्त तक सब व्यवस्था की जा सके। बहुतसे वृक्ष जो काँटेदार होंगे या अनुपयुक्त स्थानोंमें होंगे, काटने पड़ेंगे। सेवक तथा गोप बड़ी शाखाओंको तथा गोपियाँ छोटी डालोंको घसीट लेंगी। हमें सबसे पहिले गायोंका गोष्ठ सुरक्षित करना है। काटे गये कण्टक-तरुओसे सुदृढ़ बाड़ बनायी जा सकती है।

'चाचा! ये हमारे पक्षी कहाँ रहेंगे ?' कन्हाईको कब क्या स्मरण आवेगा, कौन कह सकता है। महावनके वन पशु तो कालिन्दीके उसी पार बहुत-से रह गये। जो आये हैं वे वनमें रह लेंगे; किंतु सब पक्षी तो आवासके बिना नहीं रह सकते—'हम समीपके वृक्षोंपर इनके लिए घट तथा दूसरे कृत्रिम घोंसले टाँग देंगे !' मेरी बात मोहन मान गया है।

नन्दगाँव

परम पुरुष पुरुषोत्तम पृथ्वीपर पधारे हैं और मैं देवशिल्पी होकर भी उनकी सेवाका सुअवसर नहीं पाता हूँ, इस कष्टको कोई कलाकार ही समझ सकता है कि जब कलाके मर्मज्ञ उसकी कलाको व्यक्त होनेका अवसर नहीं देते, तब उसे अपना जीवन ही क्यों व्यर्थ लगने लगता है।

सुरोंकी सेवा, स्वर्गके सौधोंकी सज्जा सब मैंने की ; किंतु सर्वेशके श्रीचरणोंकी सेवाका अवसर न मिले तो मेरा विश्वकर्मा होना ही व्यर्थ हो गया। मैं केवल विलासी सुरोंके विनोदका ही माध्यम बना रहा ; किंतु व्रजमें तो भगवती योगमायाकी अनुकम्पाके बिना प्रवेश ही प्राप्त नहीं हुआ करता।

गोकुलमें मैं कुछ नहीं कर सका। किसी गोपने गृह-निर्माणके समय मेरा स्मरण भी कर लिया होता तो उसके करोंको अव्यक्त सान्निध्य देकर मैं अपनी कलाको कृतार्थ मान लेता ; किंतु यह भी कहाँ हुआ। गोकुल तो व्यक्त हो गया सीधे धरापर और भगवती सिन्धु-सुता स्वयं जब वहाँ सजावट करने उपस्थित हो गयीं, मैं किस गणनामें रह गया था।

सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र गोकुलसे स्वजनोंके साथ वृन्दावन पधारने लगे, तब मुझे लगा, अब भी यदि मुझे सेवाका अवकाश नहीं मिलता तो फिर कभी नहीं मिलेगा। मैं अत्यन्त आर्त्त होकर पुकारने लगा था उन आद्या अनुकम्पा स्वरूपिणी योगमायाको।

'वत्स ! व्रज-मण्डलमें कृत्रिम अथवा नूतन कोई निर्माण सम्भव नहीं।' मुझे सर्वमङ्गलाने आश्वासन दिया—'यहाँ तो नित्यधामको केवल व्यक्त होना है। तुम्हारी कलाको स्वयं श्रीकृष्ण अवसर देंगे आगे द्वारिका-निर्माणके लिए और इन्द्रप्रस्थमें भी अपने सुहृद पाण्डु-पुत्रोंके भवन बनानेके लिए। यहाँकी नित्य धराका तुम केवल दर्शन कर सकते हो।'

मैं मूर्ख था। भगवती योगमाया स्वयं यदि यवनिका न उठा दें, इस नित्यधामका स्वरूप सुर भी कैसे समझ सकते हैं। मैं इस नन्दीश्वर गिरि तथा इनके पार्श्व-परिसरसे—इनकी महिमासे सर्वथा अपरिचित यहाँ

निर्माणका अवसर चाहता था ? कितने बड़े अपराधसे बच गया, यह अब समझ सका हूँ।

कितनी अद्भुत बात है। सामान्य मानवकी क्यों चर्चा करूँ—सुर भी समझ नहीं सकते कि देवदेवेश्वर भगवान विश्वनाथके साक्षात् वाहन यहाँ शिलामूर्त्ति बनाये घुटने मोड़े बैठे कितने युगोंसे तपोनिरत हैं। इसलिए कि श्रीनन्दनन्दनका स्पर्श सुलभ हो जाय। मैं इनके श्रीविग्रहपर छेनी-हथौड़ीका प्रयोग करके निर्माण करनेकी सोचता था—कितना अशुभ-सङ्कल्प !

साष्टाङ्ग प्रणिपात किया मैंने तो मुझे संकेतसे समीप बुला लिया उन्होंने। सदय दृष्टिसे देख लिया। हम सुरोंको व्यक्त वाणीकी आवश्यकता परस्पर भावाभिव्यक्तिके लिए तो होती नहीं। सङ्कल्पकी भाषा ही हमारी भाषा है। मेरे मनमें कुतूहल उठ रहा था। सङ्कल्पकी भाषामें ही मुझे सन्तुष्ट कर दिया उन साक्षात् धर्मके श्रीविग्रहने।

'मेरे स्वामी अनन्त करुणावरुणालय आशुतोष हैं ! वे आनन्द-विह्वल थे—बार-बार पुलकपूरित हो रहे थे कि श्रीनन्दनन्दन नित्यधामसे धराको धन्य करने पधार रहे हैं। उनका दर्शन, सान्निध्य सुलभ हो जायगा। उनकी कुछ सेवा सम्भव हो सकेगी।'

'स्वामी इतने उत्कण्ठित थे, अतः मेरे हृदयमें भी भावना उठी—'मैं भी उन आनन्दकन्दका पादस्पर्श प्राप्त कर पाता !' मेरे औढरदानी प्रभुके लिए कुछ अदेय नहीं। उन्होंने मेरी पीठपर अपना दक्षिण कर धर दिया—'वत्स ! वे तुम्हारे ऊपर आवास बना लेंगे ; किंतु तुम अपना एक स्थूल-भौतिक गिरिरूप बना लो और गिरिराजके समीप कुछ काल बैठकर तपोनिरत रहो !'

मैं अपने आधिदैवत रूपसे अपने स्वामी भगवान शशाङ्क-शेखरका वहन करता हूँ। वह मेरी धर्मकी अधिष्ठातृ वृष-मूर्त्ति है और यहाँ मैंने यह अपना आधिभौतिक स्वरूप बना लिया है। जब आनन्दकन्द श्रीनन्दनन्दन धरापर पधार रहे हैं तो उनकी सर्वाधिक सेवा इसी रूपमें मुझे सम्भव लगती है। मैं महेश्वरका वाहन हूँ। मुझे मेरे सर्वज्ञ स्वामीका वरदान मिल गया है। अतः अवश्य वे सर्वेश्वर मेरे पृष्ठ प्रदेशको अपने आवासके योग्य स्वीकार कर लेंगे।'

'वत्स ! तुम चकित मत बनो !' तनिक रुककर वे विश्ववन्द्य वृषभध्वज वाहन उसी भाषामें समझाने लगे—'यहाँ इस नित्यधरामें बैठनेका स्थान प्राप्त होना मेरे लिए भी सौभाग्य ही है और सदाशिवका वरदान न होता तो वह सुलभ नहीं होता। योगमाया भगवतीने तुम्हें दृष्टि दे दी है। तुम गिरिराजका दर्शन करके स्वयं मेरी स्थिति समझ सकते हो।'

गिरिराजकी ओर देखते ही मैंने वहीं साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। यह सम्पूर्ण शैल साक्षात् श्रीनारायण—प्रत्येक शिला शालिग्राम ? वरदान-प्राप्ता भगवती वृन्दा-गण्डकीके अतिरिक्त भी धरापर श्रीहरि अपने इस आधिभौतिक शालिग्राम रूपमें कहीं निवास करते हैं, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।

'श्रीकृष्णांशोद्भव ही हैं श्रीनारायण एवं मेरे प्रलयङ्कर प्रभु भी।' नन्दीश्वरने ही मुझे चकित देखकर समझाया—'गिरिराज गोवर्धन श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीविग्रहमें वक्षस्थलके भागसे व्यक्त हुए। अतः ये शालिग्राम स्वरूप तो हैं ही। धरापर ये हिमवानके यहाँ पधारे और त्रेतामें मर्यादा-पुरुषोत्तमके लिए जब सेतु-बन्धन होने लगा, पवन-पुत्र इन्हें उठा लाये पितृगृहसे उन साकेताधीशके दर्शनका आश्वासन देकर; किंतु इन्हें उस रूपके दर्शनसे कहाँ आनन्द मिलना था। अतः उन्हीं लीलामयकी आज्ञानुसार सब कपियोंको वे जहाँ थे, वहीं अपने करके पाषाण डाल देने पड़े। पवन-पुत्र अपने प्रभुकी आज्ञा-पालनको विवश इन्हें व्रजमें रख गये। उन वायुनन्दनकी विवशता सुनकर राघवेन्द्रने हँसकर द्वापरमें इनपर विहार करनेका वचन दे दिया।'

'देवी वृन्दा सरिद्वरा गण्डकी बनी बहती हैं हिमवानके अङ्कसे और सुरसरिमें अपनेको लीन कर देती हैं; किंतु यहाँ तो वे वनदेवी बनी नित्य निवास करती हैं। उनका ही तो है यह वृन्दावन। अपने स्वामी भगवान शालिग्रामका सान्निध्य वे कैसे त्याग सकती हैं और शालिग्राम तो यहाँ गिरिराजके रूपमें उपस्थित हैं !'

नन्दीश्वरका मानस भावार्द्र हुआ। मानसिक भाषा भी स्खलित होने लगी—'जहाँ साक्षात् श्रीहरि शालिग्राम-स्वरूप धारण करके पर्वत बने उन आनन्दकन्दके पाद-स्पर्शकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, वहाँ यदि मेरे पशुपति प्रभुका प्रसाद मुझे प्राप्त न होता, मुझ पशुको प्रवेश मिलता इस निखिल-लोक पावन प्रदेशमें ?'

'तुम यहाँ कुछ करनेका सङ्कल्प त्याग दो !' सस्नेह मुझे सूचित किया गया। वह सङ्कल्प तो मैं इन भगवान नन्दीश्वरके गिरिभूत विग्रहको देखते ही त्याग चुका था—'केवल व्यक्त होते नित्यधामका दर्शन करो !'

यह भी कितना महान सौभाग्य था मेरा। मैं योगमायाका अनुग्रह-भाजन इस अवसरपर बन गया था। नित्यधाम सहसा उस नीरव-निशीथमें व्यक्त हो गया। तब व्यक्त हो गया जब गोप, गोपियाँ, गायें, वृषभ, बछड़े सब सो रहे थे। सब यात्रा करके आये थे। यहाँ पहुँचकर सब निश्चिन्त हो गये थे। गोप-गोपियाँ सब मध्याह्नसे अन्धकार होनेके पश्चात् तक आवास-व्यवस्थामें व्यस्त रहे थे और बालक लगे रहे थे क्रीड़ामें। सब अत्यन्त श्रान्त थे। प्रगाढ़ सुषुप्तिमें थे सब और भगवती योगमायाके किञ्चित् भ्रूसंकेतसे नित्यधाम व्यक्त हो गया। जैसे रङ्गमञ्चपर पड़ी यवनिका उठ गयी हो।

मुझे बहुत लज्जा आयी। मैं यह धाम कभी कल्पनामें भी ला सकता था ? यहाँ निर्माणके लिए आतुर मैं प्रार्थना कर रहा था ? इस धामके प्रत्यक्ष होनेपर भी मैं इसका स्वरूप समझ नहीं पा रहा हूँ ! मैं सुर-शिल्पी विश्वकर्मा इसे समझ नहीं पा रहा हूँ—बनानेकी बात तो मुझ बालककी अज्ञता थी।

ये मणि-मन्दिर, ये रत्न-सौधोंकी पङ्क्तियाँ ; किंतु कहाँ ? यह कोई पाञ्चभौतिक पदार्थ हैं कि इनका एक रूप निर्दिष्ट किया जा सके ? इनका रूप तो अद्‌भुत है, क्षण-क्षणमें परिवर्तित होता, नित्य नूतन रूप। ये सबके सब चिद्‌घन भवन। यहाँ चित्सत्ताने, भगवान श्रीहरिकी सन्धिनी महा-शक्तिने ही नाना पदार्थोंके आकार धारण कर लिये हैं।

समतल भूमि-सम्पूर्ण व्रजधरा एक साथ ज्योतिर्मय रत्नभूमि और रज-मण्डित सामान्य धरा भी। जलाशयोंमें उतरनेके सम मार्ग—पशु भी उतर सकें, ऐसे ढालवें ; किंतु यदि इनका चिद्‌घनत्व भूल जाया जाय—तब इनके निर्माणमें लगे एक रत्नकी समता भी स्वर्गकी समस्त रत्नराशि नहीं कर सकेगी। ये ज्योतिर्मय रत्न और साथ ही केवल कठोर धरित्री मात्र।

सम्पूर्ण वृन्दावन नवीन, हरित, पुष्पित-फलभारसे झुके वृक्षोंसे परिपूर्ण। लहराती लताएँ। धरित्री सुकोमल तृणोंका हरित वसन धारण अपने सौभाग्येशके स्वागतमें सम्पूर्ण सज्जिता है।

शकटोंके अर्धगोलाकार मण्डलके चारों ओर कण्टक तरु आरोपित किये थे सायङ्काल गोपोंने। अब तो नित्यधाम व्यक्त हो गया है। कल्पवृक्ष-से प्रार्थना की जाय कण्टक तरु बन जानेकी तो कदाचित वह इतना सघन, सुन्दर, सुरभित पुष्पोंसे परिपूर्ण बन सके।

वनके गिरे बड़े-बड़े वृक्षोंकी वाह्यभागमें विशाल परिखा—वृन्दावनमें तो कोई म्लान पत्रतक नहीं ; किंतु ईंधनके लिए वनसे किसीको शुष्क काष्ठ लानेका श्रम भी क्यों करना पड़े।

मध्यमें पंक्तिबद्ध बछड़े-बाँधनेके लिए व्यक्त ये खूंटे—इनमें-से एकके मूल्यमें भी कुबेरका सम्पूर्ण कोष अल्प है और इनके नाना आकारोंमें जो कला है—यह नैसर्गिक कला कृतित्वकी कृत्रिमतामें किसी प्रकार नहीं आ सकती।

ये रत्न सौध—फूसके भोपड़ोंमें पलपल प्रतीयमान हो रहे हैं। नन्दीश्वर गिरिके उच्च पृष्ठपर-से नीचे तक यह व्रजराजका महासदन और कालिन्दी-कूलपर उनकी यह बैठक।

गृहोंमें तक्र-प्रवाहनकी मार्ग-नालियाँ और गृह-पार्श्वमें तक्र-कुण्ड। पशुओंको जल पीनेकी यहाँ आवश्यकता कम ही पड़ेगी।

गोपोंकी मल्लभूमि। स्थान-स्थानपर मोटी-पतली रज्जुओंकी राशियाँ। गृहोंमें विशालतम गोरस भाण्ड—मैं जहाँ, जिधर देखता हूँ, मुझे एक-एक वस्तु वह चिद्घन न भी हो तो भी अपनी निर्माण-सामर्थ्यसे परेकी लगती है।

पृथ्वीपर सब ओर गीले-सूखे उपलोंकी पंक्तियाँ अथवा उच्च पर्वताकार स्तूप। दधि-मन्थनके समय उड़ते सीकरोंसे, गो-स्तनोंसे झरते दुग्धसे सम्पूर्ण भूमि स्निग्ध, दूर तकके वृक्षोंके तने वृषभोंके शरीर तथा शृङ्ग रगड़नेसे सुचिक्कन बने। इस दिव्य भूमिमें यह नित्य दृश्य अभी व्यक्त होकर पुनः अदृश्य हो गया। यह क्रमशः व्यक्त कर देगा अपनेको।

गोष्ठोंके द्वारोंपर काष्ठके कुण्डे लगे हैं। मध्य भूमिमें पर्याप्त विस्तार है, जलाशय हैं, सघन छाया है नीप, तमाल, कदम्ब वृक्षोंकी। सम्पूर्ण वातावरण आज ही माखन तप्त करके घृत बनानेकी सुरभिसे व्याप्त है। मुझ सुरकी अत्यन्त प्रिय-पोषक यह सुरभि। इसका प्रसाद प्राप्त करके मुझे सुधा स्वादहीन लगने लगी है।

अद्भुत दिव्य भूमि—स्वर्गाधिपके सदनको भी सङ्कोच हो इतने सम्पन्न, सज्जित, ज्योतिर्मय मणि-मण्डित, रत्नभित्ति निर्मित ये गोप-भवन और साथ ही ये केवल फूसोंकी झोपड़ियाँ हैं। गोमयोपलिप्त स्वच्छ गोष्ठ मात्र हैं और अभी गोपियों-गोप कुमारियोंने गृहोंके सम्मुख रांगुलीके विविध अलङ्करणका अवसरतक नहीं पाया है।

मैं देख सकता हूँ कि इस दिव्यधरामें सङ्कोच-विस्तारकी असीम क्षमता है। गोष्ठ, गृह-कक्ष, प्राङ्गण-भूमि सब अत्यन्त अल्प और बहुत बिस्तीर्ण हो सकती है। आवश्यकताके अनुसार यह सङ्कोच-विस्तार स्वतः प्राप्त करनेकी क्षमता विश्वकर्माकी कलामें तो नहीं है।

ब्राह्ममुहूर्तमें मुनि-मण्डलके साथ ही प्रायः सब गोपियाँ जाग गयीं। दधि-मन्थनका मङ्गल शब्द ! गोपोंको गोदोहन करना है। धन्य भगवती योगमाया—किसीको भी तो नहीं लगता कि वह कल ही इस स्थानपर आया है। सबको अपने आवास सुपरिचित लगते हैं। जैसे ये सदासे यहीं रहते आये हैं।

श्रीनन्दनन्दन अब उठ गये हैं। इनकी चरण-वन्दना यहाँ मैं ऐसे अदृश्य रहकर ही कर सकता हूँ और अब मुझे भगवती योगमायाका संकेत यहाँसे विदा होनेका प्राप्त हो गया है। इस दिव्यधराका यह दर्शन-क्षण मेरी स्मृतिमें नित्य बना रहे, यही इन व्रजराजकुमारके पदोंमें मेरी प्रार्थना !



नये सखा

यह स्थान तो अपने गोकुलसे भी मुझे अच्छा लगा है। कितना बड़ा तो पर्वत पास है और यमुनाका प्रवाह है ही। हम सब पुलिनपर खूब खेलेंगे।

कल हम सब आये तो बरसानेके वृषभानु बाबा पहिले ही मिले। उनके साथ बहुत-से ब्राह्मण थे और बड़े गोप थे। ये लोग इतनी दूर क्यों आये थे ? हम लोग तो यहाँ आ ही रहे थे। माँ कहती है कि वे हमारा स्वागत करने आये थे। स्वागत करने ऐसे दूरतक आगे आना पड़ता है ? छकड़ोंमें भरकर कितनी सारी तो वस्तुएँ लाये थे वे और सब हम लोगोंको दे दीं।

वृषभानु बाबा बहुत अच्छे हैं। वे हमारे नन्द बाबासे कह रहे थे कि हम सब लोग उनके गाँवमें ही चलें और वहीं रहें; किंतु हमारे नन्द बाबाने पता नहीं क्यों उनकी बात नहीं मानी। माँ कहती है कि दूसरेके घर जाकर रहना अच्छी बात नहीं है। पता नहीं ये बड़े लोग ऐसी बातें क्यों करते हैं। मुझे और मेरे सखा श्यामको भी तो सब गोपोंके घर जाना अच्छा लगता है। सब तो हमको बुलाते हैं, खिलाते हैं।

श्यामको तो वृषभानु बाबाने आते ही गोदमें उठा लिया था। वह मुझसे बहुत छोटा भी तो है। गोदमें तो छोटे बच्चे ही लिये जाते हैं। दाऊ दादा कहाँ किसीकी गोदमें चढ़ता है। कन्हाई तो उनके भी श्मश्रुओंको करोंसे छूने लगा था। मेरे बाबा कहते हैं, किसीके श्मश्रु नहीं छूना चाहिये; किंतु कनूँ बहुत चपल है। वह किसीकी नहीं मानता।

वृषभानु बाबाके साथ उनके दोनों कुमार आये थे। हमारे दाऊ दादाके समान ही दोनों गोरे हैं। दोनों दाऊ दादाके समान ही नीली कछनी बाँधे थे। मैयाने दोनोंको बुलाया समीप। भला कोई मैयासे भी सङ्कोच करता है ? दोनों तो मैयासे भी सङ्कोच करते थे।

संकोच तो मुझे भी लगा था जब मुझे वृषभानु बाबाने समीप बुलाया और खिलौने देने लगे। वे तो हम सबको वस्त्र, आभूषण, खिलौने

देनेको लाये थे ; किंतु हमारे कनूँको किसीसे सङ्कोच नहीं लगता। वह सबके समीप झट चला जाता है और कुछ भी कहने लगता है। वह तो पता नहीं वृषभानु बाबासे क्या-क्या कहता रहा था।

कनूँ हाथ पकड़कर बरसानेके दोनों कुमारोंको मैयाके समीप खींच लाया। मैयाने दोनोंको हम सबके साथ कलेऊ कराया। कन्हाईको किसी भी बालकको मित्र बनानेमें कितनी देर लगती है। मुझे भी ये दोनों सखा बहुत अच्छे लगे। बड़ा श्रीदाम मुझसे तो छोटा ही है और सुबल तो उससे भी छोटा है।

सुबल कितनी तो विचित्र बातें कहता था। वह कहता था कि उसकी बहिन उसके ही जैसी है और कोई दोनोंको पहिचान नहीं पाता कि उनमें कौन लड़का या लड़की है। यह कैसे होगा ? कन्हाई ठीक कहता था कि वह अपनी बहिनको एक दिन हमारे यहाँ खेलने ले आवे। हम सब देखेंगे कि हम पहिचान पाते हैं या नहीं।

बरसानेसे आये सब बालक मुझे तो बहुत अच्छे लगे। हम सबको इतने नये सखा मिल गये। अब हम सब साथ खेलेंगे।

श्रीदाम कह गया है कि वह प्रतिदिन प्रातः अपने सब साथियोंको लेकर सम्मुख पुलिनपर पहुँच जाया करेगा। हमारे कन्हाईके साथ खेलना किसे अच्छा नहीं लगेगा। सुबल तो इससे इतना घुलमिल गया आज ही जैसे इसका सगा भाई ही हो। श्रीदाम भी आया तबसे श्यामके साथ ही तो लगा रहा।

हमारा कनूँ है ही ऐसा कि अपने सब खिलौने सबको बाँटता रहता है। मैयासे माँग-माँगकर सब खिलौने उठा लाया ; किंतु सुबल कहता था कि उसकी मैयाने मना किया है—'वहाँसे कुछ मत लाना !' क्यों मना किया होगा ? मेरी माँ तो मुझे कभी मना नही करती। मैं मैयाके दिये, कनूँके दिये खिलौने, वस्त्र, चाहे जो घर उठा लाता हूँ। कनूँको भी माँ देती हैं तो वह उठा ले जाता है। वह तो जाकर मैयाको दिखाता है। मैं एक दिन सुबलके साथ उसकी मैयाके पास जाऊँगा; किंतु मुझे तो संकोच लगता है किसी नई गोपी या गोपके पास जाते। सुबलकी मैयाको देखनेको जी करता है। श्यामको कहूँगा। वह कहीं जानेमें संकोच नहीं करता। उसके साथ हम सब बरसाने चलेंगे। वृषभानु बाबा तो बुला गये हैं। वे

तो कन्हाईको बहुत बार कह गये—'लाल! अपने इन ये मित्रोंके साथ वहाँ आ जाया करो। वह भी तुम्हारा ही घर है।'

वृषभानु बाबा भी गोप ही तो हैं। हमारा श्याम बहुत बातें जानता है। कहता है—'सब गोपोंके घर अपने ही घर हैं।' गोकुलमें कोई गोपी मुझे तो अपने घरमें आनेपर मना नहीं करती थी। सब तो माखन देकर कहती थी—'लाला रे! अपने श्यामको साथ ले आया कर!'

गोपियाँ विचित्र हैं। कन्हाईको बुलाती हैं और आता है तो इससे कलह करने लगती हैं। श्रीदाम कहता है कि उसके यहाँ कोई गोपी कलह करना जानती ही नहीं। सब बहुत अच्छी होंगी वहाँ। कन्हाई ऊधमी तो है। वहाँ जाकर कोई ऊधम करेगा तो क्या वे चुप बनी रहेंगी?

मधुमङ्गल दाऊ दादासे दो वर्ष बड़ा क्या है, बड़े गोपोंसे भी बात करने लगता है। वह वृषभानु बाबाके समीप गया तो बाबाने दोनों हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया। ब्राह्मण है, इसलिए बड़े गोप भी प्रणाम तो उसे करते ही हैं। बाबाने उससे भी कहा—'आप हमारे पुरमें पधारो और अपने पदोंसे हमारा घर भी पवित्र करो!'

यह मधुमङ्गल कैसे पवित्र करेगा? माँ तो कहती है कि गायोंके खुर, पूँछ पवित्र होते हैं। बछड़ोंके भी खुर पवित्र होते हैं। वे जहाँ पड़ते हैं, वहाँ धरती पवित्र होती है। पवित्र कैसे होती है? क्या होता है पवित्र—पता नहीं, परंतु मधुमङ्गल तो गाय या बछड़ा नहीं है।

मधुमङ्गलने तो बाबासे कहा—'मैं तो ब्राह्मण हूँ। ऐसे कैसे आऊँगा आपके यहाँ। मेरे सखाकी आप सगाई कर दो अपनी कन्यासे तो मैं उसके विवाहमें साथ आऊँगा। बहुत-सी दक्षिणा लूँगा।'

ऐसी बात भी कोई कहता है! श्याम तो भाग गया मैयाके समीप लज्जित होकर; किंतु सब बड़े गोप हँसने लगे थे। वृषभानु बाबा मधुमङ्गलपर बिगड़े नहीं। वे तो कहने लगे—'आप ब्राह्मण हैं, अतः आप ही यह काम करा दें! मैं आपको इसमें भी बहुत-सी दक्षिणा दूँगा।'

मधुमङ्गल ब्राह्मण है, इसीसे कोई इसे डाँटता नहीं। यह तो हँसता-हँसता बोला—'मैं आपका पुरोहित नहीं बनूँगा। आप अपने पुरोहितसे प्रार्थना करो। मैं अपने सखाके साथ वहाँ आऊँगा।'

मधुमङ्गल वृषभानु बाबाका पुरोहित बन जाता तो इसका क्या बिगड़ा जाता था। श्रीदाम या सुबलके साथ चला जाता वहाँ। अपने कन्हाईकी सगाई होती तो आनन्द कितना आता! लेकिन मैं मधुमङ्गलसे कुछ कह नहीं सकता। यह मुझसे बड़ा है और मुनियोंके साथ भी मन्त्र पढ़ने लग जाता है। ब्राह्मणोंकी बात वह ठीक ही जानता होगा।

सुबल भागा-भागा आया था श्यामके समीप। मैं भी उसके साथ आया यह देखने कि यह क्या कहता है कन्हाईसे। मुझे लगा कि मधुमङ्गलकी बातसे यह रूठ न गया हो। पहिले ही दिन तो इतने अच्छे सखा यहाँ आकर मिले, ये रूठ जायँ, यह अच्छी बात तो नहीं है। सुबल रूठता तो मैं उसे बतलाने आया था कि उसके बाबाको क्रोध नहीं आया है। उनकी बात मधुमङ्गलने मान ली होती तो हम सब कल ही कन्हाईकी सगाई उससे करा लेते।

'तू मेरी बहिनसे सगाई करा ले!' सुबल तो कन्हाईके कानके पास मुख लगाकर बोल रहा था—'वह मेरे जैसी ही है। बहुत भोली है। किसीसे भी लड़ना नहीं जानती। मेरी सब बातें झटसे मान लेती है। तेरी भी बात मान लिया करेगी।'

मधुमङ्गल बहुत नटखट है। वह बाबाके पाससे भागता, हँसता आया और उसे देखकर सुबल लज्जित हो गया। मधुमङ्गलको तो मोदक माँगनेका बहाना चाहिये। वह अब इसी सगाईके नामपर मोदक माँगने मैयाके पास जाता होगा; किंतु यह मैयासे सीधे मोदक क्यों नहीं माँगता? मैया तो किसीको भी कभी मना नहीं करती।

बड़े लोगोंको खेलना नहीं आता। केवल नन्दन चाचा कभी-कभी हम सबके साथ खेलने आ जाते हैं; किंतु वे तो मल्ल चाचा हैं। हम सबको भी उठना-बैठना और पता नहीं क्या-क्या सिखलाने लगते हैं। दूसरे बड़े गोप तो मिलेंगे भी तो जाकर कहीं बैठ जायँगे और केवल बातें करेंगे। इन लोगोंको खेलना क्यों नहीं आता?

हम सबको नये सखा मिले हैं। कन्हाई सबको लेकर पुलिनपर आ गया है; किंतु मैं देख आया हूँ कि वृषभानु बाबा और उनके साथके सब गोप हमारे उपनन्द ताऊ आदिके साथ उस भारी मौलिश्री तरुके नीचे बैठ गये हैं और बातें करने लगे हैं। अच्छा ही है, ये बड़े लोग परस्पर बातें नहीं करेंगे तो अवश्य आकर हम बालकोंके खेलनेमें बाधा डालेंगे।

अच्छा—सुबल और भद्रकी यह श्यामके साथकी जोड़ी तो अच्छी है। कन्हाईने सुबलके कन्धेपर वामभुजा और भद्रके कन्धेपर दाहिनी भुजा धर ली है। ये तीनों परस्पर सिर सटाये हँस रहे हैं। मैं दाऊ दादाके समीप रहूँगा, नहीं तो ये तीनों मिलकर मुझे चिढ़ावेंगे। कन्हाई वैसे ही नटखट है, भद्र भी इसीका साथ देता है, सुबल और मिल गया इसे। लेकिन श्रीदाम भी आ रहा है। मुझे ये सब 'बूढ़ा दादा' ही तो कहेंगे। माँ कहती है कि किसीके कहनेसे कोई बूढ़ा नहीं होता। मुझे तो अपने उपनन्द ताऊके श्वेत श्मश्रु बहुत अच्छे लगते हैं। मेरे भी श्मश्रु-मूँछें आ जायँ तो मैं कन्हाईको चिढ़ाऊँगा।

वृषभानु बाबा क्यों पुकारते आ रहे हैं श्रीदामको? ये हम सबको अपने यहाँ चलनेको कहते थे, ये क्यों यहीं नहीं रह जाते? इनको भी अपनी गौयें देखनी होंगीं; किंतु श्रीदाम, सुबलको क्यों यहीं नहीं रहने देते? कन्हाई इनसे कहे तो क्या रहने देंगे?

व्रजराज बाबाने श्रीदाम-सुबल दोनोंको गोदमें उठा लिया। वृषभानु बाबा श्याम-भद्रको अङ्कमें लेकर हँसने लगे हैं; किंतु कन्हाईकी बात तो इन्होने नहीं मानी। श्रीदाम-सुबल प्रतिदिन खेलने आ जाया करेंगे, यह तो इतना ही आश्वासन देते हैं। अब ये बड़े हैं, इनकी बात तो माननी पड़ेगी।



प्रथम परिचय

मैं जो विधातासे माँगनेकी सोच भी नहीं सकती थी, वह सब उसने मुझे दिया—ऐसा दिया कि भगवान सबको ऐसा दें। मेरे दोनों लाल सरल हैं, सुन्दर हैं और किसीने कभी हँसीमें भी इनका कोई अवगुण मुझसे नहीं कहा है और अपनी लालीकी बात मैं क्या कहूँ। मेरी यह राधा—यह तो अचानक मेरी गोदमें आ गयी जब मैं भगवती कात्यायनीके मन्दिरमें पूजन करने गयी थी। यह ज्योतिकी रेखा कैसे प्रकट हुई—लेकिन मैं भूलती हूँ। इसके सम्बन्धमें जब सोचने लगती हूँ तभी भूलने लगती हूँ, यह क्यों होता है ? यह तो मेरे सुबलकी सहोदरा-युग्मजा है। दोनोंको पहिचाननेमें मुझसे अनेक बार भूल होती है. दूसरे तो भूल करते ही हैं।

यह लाली—इसकी नासिकाके अग्रभागका लाल तिल देखकर महर्षि गर्गाचार्य कहने लगे—'यह तो लोकमहेश्वरी है।' इतनी भोली, सीधी मेरी कन्या—यह मेरी लाली है, इतना ही बहुत है। मुझे ईश्वरी-महेश्वरी नहीं चाहिये।

गोपियाँ सूतिकागृहमें ही इसे देखकर कहने लगीं—'कीर्त्ति रानीने ऐसी कन्या पायी है जो माताके उदरसे ही सौभाग्य बिन्दु और सिन्दूर लगाये आयी है।' इसके भालका वह अत्यन्त सुन्दर लाल विन्दु—इतना सुन्दर एवं ज्योतित सौभाग्य विन्दु तो किसी सुहागिनीके शीशपर मैंने नहीं देखा और इसके सिरके सघन केशोंके मध्य जो सीधी सिन्दूर रेखा है, वह तो सदा स्पष्ट ही रहती है। मैंने अनेक बार इसके सघन, सुकोमल घुँघराले काले केश बिखराकर देख लिया, इसके केश ही ऐसे हैं कि इसकी माँग, उस माँगकी स्वाभाविक सिन्दूर रेखाको ढका नहीं जा पाता।

महर्षि गर्गाचार्यने नामकरणके समय देर तक इसको अपने अङ्कमें रखा था और इनके पदोंको ही देखते रहे थे। इन ऋषि-मुनियोंकी बात मैं पूरी समझ नहीं पाती। पूछनेपर उन्होंने जो कुछ कहा, कम ही मैं स्मरण रख सकी। आह्लादिनी, परमा आदि क्या जाने क्या-क्या कह गये। मेरे पल्ले इतना ही पड़ा कि इसके वाम-पदके सब चिह्न नन्दनन्दनके दाहिने

पद-चिह्नोंसे और दाहिने पद-चिह्न वाम पद-चिह्नोंसे मिलते हैं। महर्षिने बतलाया नहीं, परंतु मैं समझ गयी कि वे गोकुलमें यशोदाके लालको देखकर ही आये होंगे।

महर्षिके चले जानेपर मैंने ध्यान देकर इसके पद देखे थे। कमल, यव, ध्वजा-पताका, अंकुश, स्वस्तिक आदि चिह्न और किसी शिशुके पदमें मैंने कभी नहीं देखे। महर्षिकी बातका मैंने एक ही अर्थ समझा कि यह यशोदाके अङ्क-धनकी ही बनेगी और यह तो मेरी, मेरे स्वामीकी सदाकी कामना ही थी।

महर्षि शाण्डिल्यकी सम्मति मानकर हमने सगाई तो गुप्त रूपसे कर दी ; किंतु कबतक समाजसे, इसे गुप्त रखना पड़ेगा ? कंस बड़ा क्रूर है—मेरे महर कुछ सोचेंगे ही। मुझे तो विधाताका वरदान मिल गया—गोकुल वहाँ मथुराके पड़ोससे उठकर मेरे पार्श्वमें आ गया।

मैंने समाचार पाया तो अपना पूरा भवन सजानेमें लग गयी थी। मैं तो समझती थी कि वे यहाँ आ जायँगे। हम यह भवन भेंट कर देंगे उन्हें। वृहत्सानुपुरमें उनके सब गोपोंके आवासकी उत्तम व्यवस्था हो जायगी। आवश्यकता हुई तो यह पुर पूरा उनको अर्पित करके हम पासमें और नगर अपने लिए बसा लेंगे। अन्ततः अपनी पुत्रीको ही तो यह सब देना है मुझे—मेरे पुत्र समर्थ होंगे तो स्वयं अपने पुर बसावेंगे।

मेरे स्वामी बहुत सङ्कोची हैं और मैं कैसे वहाँ जा सकती थी। ये प्रार्थना भी पूरे बलसे नहीं कर सके। कहते हैं—'व्रजराजका पूरा व्रज अपने नगरमें मिल जाय, यह प्रार्थना धृष्टता होती।'

इसमें क्या धृष्टता थी ? इनके पिताने व्रजराजकी पगड़ीको जिस दिन प्रथमोपहार अर्पित करके इनको उनका पार्श्व-रक्षक बनाया—उसी दिन वे बड़े हो गये। अपने बड़ोंने अपना बड़प्पन उन्हें अर्पित कर दिया तो हम अपना नगर अर्पित कर देते—अधीश्वर तो उन्हींको रहना था।

अब तो वे सब प्रकार बड़े हैं। अन्ततः हमने अपनी सुताकी सगाई कर दी है उनके लालसे ; किंतु कभी मिल सकी तो यशोदाको उलाहना अवश्य दूँगी कि हमको एक दिनके सत्कारके योग्य भी उनके स्वामीने नहीं माना। आते ही आवासकी व्यवस्था पृथक कर ली। यह व्यवस्था वहीं—जहाँ स्थान उन्होंने स्वीकार किया था, वृहत्सानुपुरपति कर देते—शीघ्र

कर देते। हम इसे पहिले कर देते यदि हमें तनिक भी पता होता कि व्रज-राज गोकुलको लेकर यहाँ बसना स्वीकार करेंगे। अकस्मात् आगमन हुआ और हमें एक रात्रिके आतिथ्यका अवसर भी नहीं मिला। अब यह उत्साह तो पूरा करेगा मेरा नीलसुन्दर ! वह तनिक बड़ा हो जाय तो…।

वह कैसा है ? कभी तो इधरसे निकलेगा ? एक दृष्टि उसे देख लेनेकी उत्कण्ठा तो स्वप्नमें भी बनी रहती है। उसी दिनसे मेरे दोनों कुमार अब यहाँ टिकते ही नहीं हैं। दोनों प्रातः उठते ही अब यमुना-पुलिन-पर भाग जाना चाहते हैं। अबतक अपने यहाँके बालकोंसे भी इनकी ऐसी प्रीति नहीं थी। दोनों घूम-फिर कर घर आ जाते थे और अपनी बहिनके साथ ही खेलनेमें लगे रहते थे। मैंने कितनी बार इन्हें चिढ़ाया, कहा—'लड़कियोंके साथ कहीं लड़के खेलते हैं ; किंतु अभी ये हैं ही कितने बड़े। अपनी बहिनमें तो प्राण बसते हैं इनके और वह भी तो इनको ' दादा ! दादा !' करती इनके साथ ही लगी रहती है—परंतु अब ये दिन-दिन भर इसका भी स्मरण नहीं करते। मुझे प्रतिदिन इन्हें नन्दीश्वरपुरसे बुलाने सायङ्काल किसी-न-किसीको भेजना पड़ता है।

' मैया बहुत अच्छी है। मैया मुझे कनूँसे भी अधिक मानती है। मया मुझे अपने हाथसे ही खिलाती है !' इस श्रीदामकी अब यशोदा मैया हो गयी है। यह आते ही ' मैयाने आज यह कहा, मैयाने आज यह दिया, मैयाने आज यह खिलाया ' का वर्णन करने लगता है और यही वर्णन करते-करते सो जाता है। रोहिणी रानी तो रानी हैं, यशोदाका भी इन दोनों पर अपने पुत्र जैसा ही वात्सल्य स्वाभाविक है। मैंने बहुत बार अनेकोंसे सुना है कि वे गोकुलके सब बालकोंको अपना ही पुत्र मानती हैं।

मैं उनके नीलसुन्दरको अपना बना लेनेका स्वप्न ही अभी देख रही हू और मेरे दोनों लाल तो उन्होंने अपने बना लिये। इनका कलेऊ, इनका भोजन, स्नान, शृङ्गार अब सब उनके यहाँ, उनके करोंसे होता है। मैं कितना कहती हूँ इन दोनोंको कि हमें उनके यहाँसे कुछ लेना नहीं चाहिये; किंतु शिशु इस मर्यादाको समझ तो नहीं सकते। इनके हाथों उनके कुमार-को प्रतिदिन कुछ भेजते रहकर ही मुझे सन्तोष करना है। यद्यपि यह तो कर्त्तव्य है मेरा।

मेरे सुबलको इसके नीलसुन्दर सखाने इतना सम्मोहित कर लिया है कि अब इसको दूसरे किसीकी बात ही नहीं करनी। पहिले ही दिन वहाँसे लौटते ही बोला—'मैया ! बहुत सुन्दर है कनूँ !'

'कैसा सुन्दर ?' मैंने पूछा—'वह तो काला है न ?'

'क्या हुआ काला है तो !' सुबलके स्वरमें मेरे चिढ़ानेसे रोष आ गया—' मेरी बहिन जैसा ही सुन्दर है। इससे भी अधिक सुन्दर है और बहुत अच्छा है। यह तो बहुत कम बोलती है। चलेगी भी तो चिड़ियाकी भाँति और वह खूब हँसता है, दौड़ता है, कूदता है। मुझे तो बहुत मानता है। मुझे अपने साथ ही लिये घूमता रहा।'

'बहिनसे सुन्दर तो नहीं है !' श्रीदामने प्रतिवाद किया—' तुझसे सुन्दर है !'

'मैं हँसती रही। मेरे सुबलमें और लालीमें कोई अन्तर नहीं है, यह बात श्रीदाम नहीं मानेगा ; किंतु सुबल अपने अग्रजका सम्मान करता है। इससे झगड़ेगा नहीं, पर सदाकी भाँति रूठकर अलग जा बैठा। इसे इतना भी सहन नहीं कि इसके नवीन सखाको कोई इसकी सगी बहिनसे भी कम सुन्दर कहे।

'तू अपनी बहिनका विवाह करेगा उस अपने सखासे ?' कल एक सेविकाने सुबलसे हँसीमें कहा। वह समझती होगी कि मैं कहीं दूर हूँ।

'हाँ, उसीसे करूँगा !' सुबल प्रसन्न बोला—' दूसरे किसीसे करूँगा ही नहीं।'

'तेरी बहिन तो बड़ी है और वह काला है।' सेविका हँसना भूल गयी। सुबल रुष्ट हो गया। मैंने पहिली बार इसे क्रोधमें देखा—' तू काली है ! बूढ़ी है ! मेरा सखा बहिनसे बहुत बड़ा है। तू नाप ले चलकर !'

मेरी लाली कुछ ही मास तो बड़ी है नीलसुन्दरसे। इससे क्या अंतर पड़ता है। यह छुई-मुई जैसी और कृशकाय। सुबलको आयुके अन्तरके बड़प्पनका कहाँ पता लगता है। यह तो समझता है कि दोनोंको सटाकर साथ खड़ा करो और देख लो कि बड़ा कौन है। दोनों साथ सटकर खड़े हो जायँ—मैं कब इस शोभाको देख सकूँगी। वह यहाँ आता तो मैं इसी सुबलकी बातका बहाना बनाकर अवश्य दोनोंको साथ खड़ा कर लेती।

'तू हमारे साथ चल ! मेरा सखा बहुत अच्छा है ! मैया तुझे बहुतसे खिलौने देगी !' मैंने सुन लिया कि सुबल अपनी बहिनको समझाने लगा है—'वहाँ बहुत सखा हैं। उज्ज्वल कोमल पुलिन है यमुनाका। तू वहाँ चलेगी तो प्रसन्न होगी। यहाँ तो यह भवन है और तेरे साथकी लड़कियाँ हैं। तू इन सबको ले चल।'

'ये सब मुझे चिढ़ावेंगी !' मेरी लाली सहमत हो गयी भाईके साथ जानेके लिए ; किंतु कोई सहेली नहीं ले जायगी। मैं इसे मना नहीं कर सकती। मैंने और इसके पिताने भी तो कभी किसी बातके लिए मना नहीं किया इसे। यह इन दिनों खिन्न रहने लगी है। दोनों भाई प्रात: चले जाते हैं वहाँ खेलने और अन्धकार होनेपर लौटते हैं। यह अबतक भाइयोंके साथ ही तो लगी रहती थी। अब उदास रहने लगी है। लड़कियाँ आती हैं ; किंतु यह चुपचाप बैठी रहती है—जैसे कुछ सोचती बैठी हो। मुझसे इसकी यह उदासी तो नहीं देखी जाती। वहाँ जायगी तो प्रसन्न होगी। बहुत अबोध थी तब सगाई की गयी। इसे तो पता है नहीं। वहाँ भी औरोंको पता नहीं है। रहना अन्तमें इसे वहीं है। उनकी तो है ही। पहिले वहाँसे परिचित हो ले, वे इस मेरी सुमन-सी सुताको देख लें तो कोई हानि नहीं लगती।

× × ×

मेरी लली लौटी है नन्दगाँवसे। यह शैशवसे अत्यन्त सङ्कोचशीला, अपने यहाँके लड़कोंमें ही नहीं खेल पाती जो इसे श्रीदाम-सुबलके समान ही सगी अनुजा मानते हैं तो वहाँ अपरिचित लड़कोंके साथ कैसे खेल सकती थी। श्रीदाम इसे लौटा गया है, इतना ही बहुत हुआ। अकेली तो यह कहीं भी जा नहीं पाती !

प्रात: भाईके साथ चुपचाप कब चली गयी, मुझे पता ही नहीं लगा, अन्यथा मैं अपनी कन्याको असज्जिता जाने देती। यों यह है ऐसी कि इसे कोई कितना भी आभूषण पहिनाओ, वह आभूषण ही इसके अङ्गपर पहुँचकर सुन्दर लगता है। यह तो जितनी अनलंकृता रहती है, उतनी अधिक मनोहर प्रतीत होती है मुझे। मैं राई-नमक उतारती रहती हूँ कि इसे मेरी ही दृष्टि न लग जाय।

सुबल कहता है कि मेरी ही भाँति वहाँ यशोदाने भी इसपर राई-नमक उतारा। उन्होंने इसके केशोंमें सुगन्धित तैल लगाकर वेणी गूँथ दी है। मोतियोंसे माँग भर दी है इसकी और मल्लिका-माला वेणीमें सजा दी है। इसके कर्णोंमें, कण्ठमें, भुजाओंमें—सम्पूर्ण अङ्गोंमें तो उन्होंने रत्नाभरण सजा दिये हैं। मैं समझ सकती हूँ कि किस उल्लास-आनन्दसे उन्होंने यह सब किया होगा और यह तो इतनी सङ्कोची है—लज्जाशीला है कि अस्वीकारका भी साहस इसमें नहीं है।

सुबल कहता है कि यह यहाँसे तो बहुत उत्साहसे गयी थी; किंतु वहाँ उनके ग्राममें पहुँचते ही ठिठक गयी। यह तो लौट ही आना चाहती थी, पर करे क्या, भाई साथ आना नहीं चाहता था और अकेली आनेका साहस नहीं था। किसी प्रकार सुबल इसे ले गया व्रजराजके भवनके बहिर्द्वार तक और वहाँ सटकर भित्तिसे खड़ी हो गयी। 'यह स्वयं किसी प्रकार भीतर जा ही नहीं रही थी।' सुबल कह रहा था--' मैंने सखाको जाकर बतलाया तो वह दौड़ा आया इसके पास और इसका हाथ पकड़कर ले गया मैयाके समीप।'

'मैया, यह श्रीदामकी बहिन आयी है!' श्यामने कहा—'यह यहाँ आती ही नहीं थी। द्वारसे चिपकी थी। तुझसे भी डरती है यह?'

'लाली आयी है!' सुबलने बड़े उत्साहसे सुनाया—'मैयाने तो इसे गोदमें ही बैठा लिया। कनूँको भी बैठाया अङ्कमें इसके पास और आँख मूँदकर, अञ्चल फैलाकर कुछ प्रार्थना करती रही। फिर इसकी चोटी करने, इसे सजानेमें लग गयी।'

'माँ! यह तो वहाँ गूँगी बन गयी थी।' सुबल नटखट होता जा रहा है। लगता है कि इसका सखा वह नीलसुन्दर बहुत चपल है। अन्यथा बहिनको पहिले तो इसने कभी चिढ़ाया नहीं था। 'मैयाने बहुत पूछा, बहुत प्रयत्न किया, पर बोलती ही नहीं थी। कनूँसे भी किसी प्रकार ही दो-एक शब्द बोली। मैयाने हम सबको हटा दिया कि यह हमारे सामने कुछ खायगी नहीं। पीछे भी पता नहीं कुछ खाया या नहीं। वैसे भी तो छोटी चिड़िया जितना खाती है।'

लली आज मुझसे भी सङ्कोच करने लगी है। खुलकर हँसते, बोलते, भाइयोंमें भी किसीसे झगड़ते तो मैंने इसे कभी देखा नहीं। इसे दूसरी बालिकाओंके समान दौड़ना, कूदना, खेलना भी कभी नहीं आया। मेरे

पूछनेपर भी प्रायः यह सिर या हाथके संकेतसे ही उत्तर देती है। अब सिर हिलाकर हाँ करती है तो यशोदा रानीके करोंसे मुख जूठाकर आयी होगी। मुख ही तो जूठा करती है यह सदा भोजनके नामपर।

'मैयाने कहा है कि लली भूखी ही गयी है, यह मैं अवश्य बतला दूं।' सुबलकी बात यशोदा रानी कैसे मान लेतीं कि यह इतना अल्प खाती ही है। इससे बहुत छोटे शिशु भी इससे पर्याप्त अधिक खाते होंगे। अब उनको असन्तोष है कि लालीकी रुचि वे नहीं जानतीं, इसको प्रिय लगे ऐसा कुछ नहीं खिला सकीं, मैं इस सन्देहको कैसे दूर कर सकती हूँ। इसकी कुछ रुचि भी है, यह तो इसकी जननी होकर भी मैं आज तक नहीं जान सकी।

'मैयाने इसे फिर बुलाया है।' सुबल अपने उत्साहमें है—'मेरे सखाने भी इससे बहुत मनुहार करके कहा है कि यह उसके साथ खेलने आ जाया करे। मुझसे भी कहा कि मैं अपनी बहिनको साथ ले आया करूँ।'

'तूने नहीं कहा कि वह यहीं आ जाया करे?' मैंने पूछ लिया। उसे भी तो यहाँ आना चाहिये।

'वह तो आ जायगा!' सुबलको अपनेपर विश्वास है—'मैं कहूँगा तो झट चला आयेगा। मेरी तो कोई बात नहीं टालता; किंतु वहाँ खेलनेको कितना कोमल पुलिन है। मैया तो कहती है कि हम सब वहीं सामने पुलिनपर या उसके सदनमें खेलें। वहाँ सखा भी तो बहुत हैं।'

'तू सबको ले आना!' मैंने नीलसुन्दरको देखनेका मार्ग निकाला—'मेरी लली वहाँ नहीं जायगी। तू जानता तो है कि यह लड़कोंके साथ नहीं खेलती। इसे कितना सङ्कोच होता है वहाँ।'

'कनूंसे भी कोई सङ्कोच करता है!' सुबलको अपने सखाके सामने संसारमें कोई जँचता ही नहीं अब और वह ऐसा कहाँ है कि उससे कोई आग्रह करे। उन्हें यहाँ लानेका भी आग्रह मेरे पुत्र नहीं कर पावेंगे, जानती हूँ। मेरे पुत्रोंके स्वभावमें ही आग्रह करना नहीं है।



माधुरी दासी

पनघट

भगवानने ऐसी कृपा कदाचित् ही किसीपर की होगी। मुझे उस महिमामयने दासी बनाया—नन्दभवनकी दासी। मैं सारे संसारकी स्वामिनी होकर भी इतनी सुखी नहीं हो सकती थी। दयामय दीनबन्धु ! मुझे इसी प्रकार जन्म-जन्ममें भी दासी ही बनाना—इसी घरकी दासी !

मेरी स्वामिनी व्रजेश्वरी इतनी सीधी, सरला हैं कि उनको समझाना कठिन होता है मुझे कि मेरी उपस्थितिमें उनको श्रम नहीं करना चाहिये। वे मुझे सखी कहकर ही संतुष्ट हो जातीं तब भी एक बात थी, वे तो मुझसे पूछने लगती हैं, मेरी बात ऐसे मान लेती हैं जैसे स्वामिनी वे न हों, मैं होऊँ और उनकी चलने दूँ तो मेरी सब सेवा वे स्वयं करें। उनकी सेवाका अवसर ही मुझे कितना कम मिल पाता है।

रोहिणी रानीजी आयी हैं, तबसे और कठिनाई हो गयी है। वे सब कार्य स्वयं ही कर लेना चाहती हैं। उनके मुखसे बहिन और जीजी सुनकर तो धरतीमें गड़ जानेको जी करता है। कोई काम करने लगो और आकर हाथ पकड़ेंगी—'बहिन, तुम रहने दो ! तुम बहुत श्रम कर चुकीं। इतना श्रान्त होनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं है।'

जैसे हम सब बैठी ही रहनेको बनी हैं। श्रम करना केवल रानीजी का स्वत्व है। इस श्रममें, सेवामें जो सुख है, स्वर्गमें भी तो किसीको सुलभ नहीं होगा। लेकिन रानीजी जब सुनें ! वे मथुराके राजभवनसे आयी हैं, पता नहीं वहाँ कैसी परिपाटी होगी। सहस्र-सहस्र दासियोंमें सेवाका किसी-को अवकाश ही कितना मिलता होगा। यहाँ हम कुछ करने लगें तो रानी-जीको लगता है, हम बहुत थक गयी होंगी। वे बहुत बड़ी हैं, उनको उत्तर भी तो नहीं दिया जा सकता। कठिनाई कम है हमारी ? व्यवस्थाका पूरा सञ्चालन उन्होंने ले लिया है। उनके चरण-पकड़कर यह दासी कुछ सेवा माँगकर पा जाती है, यही बड़ी कृपा इसपर उनकी।

'यमुना जल लानेकी सेवा स्वामिनी मुझे दे दें !' मैंने चरण पकड़े—वे कृपामयी अस्वीकार तो नहीं करतीं ; किंतु कह दिया—'बहिन ! बहुत

यमुना जल लगता है। तुम अकेली नहीं ला सकोगी। एक काम अवश्य मेरा कर दो! कन्हाई सखाओंके साथ पुलिनपर ही आजकल खेलता है। सब बालक चपल हैं। इनपर दृष्टि रखना। ये जलके समीप न जायँ और अधिक आतपमें न रहें। मैं कम ही उधर आ पाती हूँ।'

मेरे साथ जल लानेके लिए सेविकाओंकी एक सेना ही लगा दी है रानीजीने और सबको यही आदेश है। भवनके सम्मुख ही है पुलिन और उसके पार कितनी कम दूर है कालिन्दी-कूल, मैं क्या अब इतनी दुर्बल हो गयी हूँ कि सौ-पचास घड़े जल भी लानेमें श्रान्त हो जाती; परंतु रानीजी-को कैसे समझाऊँ कि मैं सशक्त हूँ, उनके समान सुकुमारी नहीं हूँ। वे तो हम सबको अपनेसे सौगुनी अधिक सुकुमारी मानती होंगी, तभी तो हमारी श्रान्तिकी, सुविधाकी इतनी चिन्ता रहती है इन्हें।

नीलमणि पुलिनपर ही दिनभर आजकल खेलता है। इसे देख लेने-की लालसासे ही तो मैंने जल लानेकी सेवा माँगी थी। हमारी रानीजी मुझे तो अन्तर्यामिनी जगदम्बा भगवती ही लगती हैं। जब मनमें जो लेकर इनके समीप जाती हूँ—कण माँगने जाऊँ तो बिना माँगे मन भर देंगी। अब मुझे नीलमणिपर दृष्टि रखनेकी सेवा मिल गयी है। मुझे और मेरी साथ-की सबको स्पष्ट कह दिया गया है कि 'जल लाना मुख्य कार्य नहीं है। शिशुओंकी सम्हाल मुख्य कार्य है।'

हम सम्हालेंगी श्यामको? आधी घड़ी भी नहीं बीतेगी और स्वय रानीजी झाँक जाया करेंगी। मेरी व्रजेश्वरी स्वामिनी तनिक-तनिक देरपर आती रहेंगी। नीलमणिकी ताइयाँ, चाचियाँ, दूसरी सब गोपियाँ तो पुलिन-पर ही मिलनी हैं हमें। सब सम्मान्या हैं हमारी। सभीके शिशु हैं और नीलसुन्दरपर किसका स्नेह कम है। हम इसे देखनेका लोभ लेकर जल-भरनेकी सेवा माँगने गयीं और रानीजीने इस लालको देखनेकी सेवा ही सौंप दी।

यह मेरा लाल!—मेरा ही तो है यह। बोलने लगा तबसे चाहे जब अङ्कमें आ बैठता है। इसे तो हम सबको केवल 'माँ' कहना आता है और जब वह गोदमें बैठकर, अपना छोटा-सा सुन्दर मुख ऊपर उठाकर 'माँ' कहता है, दूधसे अञ्चल तो वृद्धा मुखराका भीग जाता है, मैं तो अब भी बुढ़िया नहीं हूँ।

× × ×

अब यहाँ गोकुल छोड़कर आ बसनेपर क्या यह नवीन प्रथा प्रचलित हो गयी है ? गोकुल भी तो कालिन्दी कूलपर ही था। जल भरनेका काम तो सेविकाएँ ही करती थीं वहाँ। गोप कुमारियाँ केवल गृहमें पूजाके लिए छोटी कलसियोंमें जल ले जाती थीं। गृह स्वामिनी विशेष अतिथिके लिए, विशेष पूजनके अवसरपर ही स्वयं जल भरती थीं ; किंतु यहाँ क्या अब सबको सेविकाओंके द्वारा लाया जल अप्रिय हो गया है ?

मेरा यह नीलमणि सखाओंके साथ पुलिनपर दिनभर खेलता रहता है। इसे देखे बिना किसीसे रहा नहीं जाता। यह स्वयं सबके घरोंमें चला जाता था वहाँ गोकुलमें तो सबने उलाहना दे-देकर स्वामिनीको इतना तङ्ग किया कि अन्ततः उन्होंने इस सुकुमारको ऊखलसे बाँध दिया। श्रीनारायण-ने रक्षा की—अन्यथा कितने बड़े थे वे दोनों अर्जुनके वृक्ष ! दोनों समूल उखड़कर इसके समीप ही गिरे ! शिशु डरेगा नहीं ? अब किसीके घर कैसे जा सकता है। अपने उलाहनोंका फल भोगो। यह सबका स्वयं जल भरनेको आना इसे देखनेका बहाना है, मैं क्या इतना नहीं समझती हूँ।

यहाँ हमारा नन्दगाँव अर्धचन्द्राकार कालिन्दी-किनारे ही तो बसा है। पूरा कूल समतल है। कोई भी अपने गृहके सम्मुख स्नान करे, जल भरे; किंतु सबको जब केवल जल ही भरना हो तब तो। अब तो बरसाने-की भी बहुत-सी यहीं आने लगी हैं। जल भरकर देरतक बैठी रहेंगी। सिरपर घट उठाये मार्गमें खड़ी-खड़ी बालकोंकी क्रीड़ा देखती रहेंगी। मेरे मोहनको देखकर क्या किसीको अपनी सुध-बुध रह जाती है। मेरे जैसा ही मन तो सबके समीप है।

'अर्जुन ! तू इसके बड़े धटपर कङ्कड़ मार सकेगा ?' यह नीलमणि बहुत चञ्चल हो गया है। अर्जुन तो बहुत सीधा बालक है। वह क्यों किसीका घड़ा फोड़ने लगा।

'अरे नहीं ! ऐसा नहीं करते ! यह मैयासे कह देगी तो मैया मारेगी !' मैं मना करने लगी थी ; किंतु बालक कहाँ मेरी सुनते हैं। नीलसुन्दरने कंकड़ मारकर इसके बड़े घड़ेमें फट्से छिद्र कर दिया।

'देख ! कैसी पानीकी धारा निकली है ! मेरी अँगुली जितनी धारा !' ताली बजाकर कन्हाई हँसने-किलकने-कूदने लगा है।

'भाड़ाम्, बहुत क्रोधी लगती है यह गोपी। इसने तो अपने सिरके दोनों घड़े और कक्षमें दबा घड़ा भी पटक दिया।

'हँसते, ताली बजाते ये बालक भाग चले हैं एक ओर। यह श्यामकी पीठपर लहराती अलकें—यह अब भी हँसता, हिलता जा रहा है। इसका हास्य, इसका भागना देखकर तो यह भी हँस पड़ी। चलो अच्छा हुआ, मैं तो डर गयी थी कि यह जाकर व्रजेश्वरसे कहेगी तो वे पता नहीं क्या करें।

'मैं मैयासे कहूँगा कि घड़ा मैंने फोड़ा है।' भद्र अब अपने सखासे कहने लगा है—'तू बोलना मत। इसे उलाहना देने आने दो। मैया मुझे नहीं मारेगी।'

यह क्या उलाहना देने आवेगी? मुझे तो ऐसा नहीं लगा। हँसती चली गयी अपने घर; किंतु भद्र कितना भला है! मेरे नील सुन्दरको बचानेके लिए कितना उद्यत!

× × ×

अनुमान मुझसे अधिक नन्हें भद्रका ही सत्य निकलेगा, यह मैं कहाँ जानती थी। यह केवल वस्त्र बदलने अपने घर गयी थी। आज तो बड़ी सरलतासे बालकोंने मेरी बात मान ली थी। मैं बुलाने गयी—'नीलमणि! मैया बुला रही हैं। सबके साथ आकर कलेऊ कर लो!' सब लगता है भूखे होंगे। श्याम शीघ्र दौड़ आया मेरे समीप। सबके सब मेरे चारों ओर ऐसे ही लिपट जाते हैं।

बालकोंने कठिनाईसे कलेऊ किया और यह तो आ धमकी। अब? लेकिन भद्र बोल उठा—'मैया! इस गोपीका घड़ा······।'

'मैंने इसका एक घड़ा फोड़ दिया!' नीलमणि बीचमें न बोलता तो उत्तम होता। भद्र भी रुष्ट होकर इसे देखने लगा है; किंतु मेरा लाल सखाको असत्य क्यों कहने दे। यह तो सदा सखाओंके अपराध भी अपने मानता आया है।

'तूने घड़ा फोड़ा!' व्रजेश्वरीका स्वर सुनकर मैं धकसे रह गयी।

'इसके सिरपर दो घड़े थे मैया! इतने बड़े-बड़े!' नील सुन्दर दोनों हाथ फैलाकर बतलाता है—'एक इसने कक्षमें ले रखा था। कितनी तो यह दुबली है। लगता था कटिपरसे टूट जायगी। ऐसे तो यह चलती थी।'

अब मटककर चलकर यह नटखट दिखाने लगा तो किसीकी हँसी रुक सकती है। कहता है—'मैंने तो इसके एक घड़ेमें छोटासा छिद्र किया था। सब घड़े इसने स्वयं पटककर फोड़ दिये। तू इसे मार लगा।'

'क्यों री! तू घड़े फोड़ा करती है?' हमारी स्वामिनी हँस रही हैं। वह स्वयं हँस रही है। मेरा लाल तो तुझे टूटनेसे बचाने लगा था और तूने घड़े फोड़ डाले?'

लेकिन ये सब चपल भागकर फिर उछलते-कूदते पुलिनपर पहुँच गये हैं, अतः मुझे भी जल भरनेकी सेवा करनी है। घट लेकर मुझे भी वहीं कालिन्दी कूल जाना है।

× × ×

बालक तो चपलता करेंगे ही। इन गोपियोंको कौन कहे कि तुम अपने घट अन्यत्र भर लिया करो। इनको तो घट फुड़वाने हैं। अब तो और भी आने लगी हैं। दिनमें कई-कई बार आती हैं। बालकोंको तो एक क्रीड़ा चाहिये। ये जितनी खीझती हैं, आँखें दिखाती हैं, उतना ही नील सुन्दर हँसता है, कूदता है और इनको चिढ़ाता है।

एक बात अवश्य हो गयी कि अब उपालम्भ कदाचित ही कोई कभी देने आती है। सब वहाँ पुलिनपर तो बहुत बड़बड़ाती हैं—'चल आज कहती हूँ नन्द-रानीसे!' किंतु सबको स्मरण आ जाता होगा श्यामका वह ऊखल-बन्धन, वह वृक्षोंका गिरना, उपालम्भका साहस ही मर जाता होगा इस स्मरणसे।

सब अपराध मेरे नीलमणिका ही तो नहीं है। गोपियाँ ही तो इसे छेड़कर ऊधम करनेको उद्यत करती हैं। अब यह धातु कलश लेकर आयी और अँगूठा दिखाती मटकती गयी है। क्रोध तो इसके मटकनेपर मुझे आया, श्याम कैसे सह लेता? लेकिन इसके कलश तो फोड़े नहीं जा सकते थे।

मेरा यह सुन्दर सुकुमार समझदार हो रहा है, इसमें इतनी युक्ति है, मैं अपने लालपर गर्व करती हूँ। सखाओंने परस्पर देखा ही था। उनकी दृष्टि कह रही थी—'इसके अँगूठा दिखाकर चुनौती देनेका कोई उपाय है?'

बिना बोले कैसा दबे पैर नील सुन्दर गया था इसके पीछे। एक कलश भरकर इसने तट पर रखा, दूसरा भरने लगी तो तटका कलश इसने ठेल दिया। जल गिराता वह तो लुढ़कता यमुनामें चला गया। अब दूसरा तटपर रखकर पहिलेको निकालने बढ़ी तो यह भी जलकी ओर चल पड़ा। 'अब कटिसे ऊपर जलमें उतरकर निकाल और भीग। फिर मेरे लालको अँगूठा दिखावेगी ?'

यह मुझे हाथ जोड़ने लगी है। मैं क्यों कहने लगी अपनी स्वामिनीसे। मेरा नील सुन्दर सखाओंके साथ सुप्रसन्न हँस रहा है इसे देख-देखकर। वह घड़े फोड़ता तो भी तो इतना ही भीगती।

× × ×

इन गोपियोंको कोई और काम नहीं है ? ये क्या रात-दिन मेरे मोहनसे उलझनेकी ही सोचा करती हैं ? यह अकेला कलश लेकर आयी है। अँगूठा दिखाकर, मटककर मुस्कराती इसीलिए मुझे भी देखती जाती है। सचमुच अब मेरा कन्हाई इसका क्या कर लेगा ?

'माँ !' नीलसुन्दर मुखपर तर्जनी रखकर मुझे चुप रहनेका संकेत कर रहा है। यह तो तटपर वस्त्र, कण्ठाभरण भी रखकर कलश लेकर स्नान करने उतर गयी है और यह श्याम झुका आ रहा है। यह क्या इसके वस्त्र अथवा आभूषण जलमें डालेगा ?

अरे, यह तो वस्त्राभरण सब समेटकर भाग खड़ा हुआ। सब बालक ताली बजाकर हँसने लगे हैं। सब कूद रहे हैं। कन्हाई कहीं छिपा आया इसके वस्त्र। मैं जानती हूँ—देखा है मैंने कि यह कहाँ गया था ; किंतु मैं क्यों बताऊँ ? मुझे संकेतसे मनाकर रहा है—'अब तूने जिसे अँगूठा दिखाया था, उसके हाथ जोड़। ऐसे कैसे तेरे वस्त्र तुझे मिल जायँगे। तू खीझ चाहे जितना ; किंतु तेरा अपना पुत्र भी इस समय अपने सखाका ही साथ देगा।

× × ×

मैं कल बहुत डर गयी। मोहन अब इतना ऊधमी हो गया है कि व्रजेश्वरी अब क्षमा नहीं कर पावेंगी। मुझे समझमें ही नहीं आता था कि क्या करूँ।

कल बरसानेकी कुमारियाँ आयीं छोटी कलशियाँ लिये जल भरने। वहाँके अधीश्वरकी कुमारी और उनकी सखियाँ---कोई पूजा होगी वहाँ अन्यथा क्या ये कुमारियाँ स्वयं जल भरने आतीं। इतनी दूर इसी घाटसे जल लेनेका भी कोई कारण ही होगा। किसी विशेष पूजामें पानी भी तो विशेष स्थानका ही लगता है। किसी ऐसे ही कारणसे कोई बड़ी-बूढ़ी साथ भी नहीं आयी।

'तू मेरी बहिनकी कलशीका क्या करेगा ?' सुबलने न छेड़ा होता तो श्यामको उत्पातकी सूझती नहीं ; किंतु कोई चुनौती दे दे तो यह मानने वाला कहाँ है। यह सखाओंके कानमें कुछ कहने लग गया था।

'तुम सब हमारे घाटपर क्यों आयीं ? हमारा कर देकर तब जल ले जाओ !' हे भगवान् ! इस नन्हें नटखटको करकी बात कहाँसे सूझी ?

'यमुनापर घाट भी किसीका होता है ?' किसी बालिकाका ही स्वर है। मैं कहाँ बरसानेकी इन बालिकाओंको पहिचानती हूँ। 'जल भरनेका कर लगना तो हमने कभी सुना नहीं। हम तो भरेंगी जल !'

बालिका तेजस्विनी लगती है। छोटी-छोटी बालिकाएँ ही तो हैं सब। मैं मूर्खा मुग्ध देखती रह गयी। मुझे रोकना चाहिये था। अपनी स्वामिनी अथवा रोहिणी रानीजीको बुला सकती थी ; किंतु इतनी सुन्दर भोली बालिकाओंका समूह देखकर मैं तो ठगी-सी रह गयी। 'यह बरसानेके स्वामीकी लली—' परमात्मा मेरे नीलमणिसे इसका सम्बन्ध हो जाय ! यह संकोचमयी सुन्दरताकी मूर्ति ! नीलमणिके उपयुक्त यही है।'

मैं अपनी ही अभिलाषामें नहीं समझ पायी कि मेरे नेत्र कब बन्द हो गये। चौंकी तब तक तो नीलसुन्दर सखाओंके साथ इन सबसे उलझ पड़ा था। सबकी कलशियोंका जल उन्हींपर उलटने लगा था। लड़कियाँ अपनी कलशियाँ दुबकाती थीं ; किंतु कितनी सुकुमार बालिकाएँ—ये सब उन्हें गुदगुदा कर, ठेलठाल कर कलशियाँ उनके ऊपर ही गिरा देते थे।

श्रीदाम-सुबल भी तो थे। ये दोनों भी तो छीना झपटीमें ही लग गये थे। नीलसुन्दरने ज़ब कीर्त्तिकुमारीकी कलशी पकड़ी, मैं चिल्ला ही पड़ने वाली थी ; किंतु वह तो इतनी भोली है कि नीलमणिके मुखकी ओर देखकर स्वयं अपनी कलशी इसके करोंमें दे दी। यह भी तो उसके ऊपर

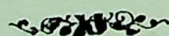
जल नहीं गिरा सका। समीपकी उसकी सहेलीको ही स्नान कराके कलशी दे दी इसने।

बालकोंका तो खेल हो गया; किंतु मैं चिंताके मारे अधमरी हो गयी। बरसानेसे कोई उलाहना आवेगा मेरी स्वामिनीके समीप तो वे श्यामको क्षमा कर पावेंगी? मैं कुछ कह भी नहीं सकती। केवल प्रार्थना ही तो कर सकती हूँ भगवानसे कि कोई उलाहना न आवे।

× × ×

कहाँका उलाहना! बरसानेसे तो मेरे नीलमणि तथा इसके सखाओं-के लिए उपहार आये हैं। अन्ततः कीर्त्तिदा-नन्दिनी बालिका हैं तो क्या हुआ, राजनन्दिनी हैं। उनकी सहेलियाँ उनकी ही बात तो मानती होंगी। क्या सुन्दर हृदय पाया है उस बालिकाने! सबने वहाँ जाकर बहाना बना दिया। बरसानेसे तो बहुत-बहुत कृतज्ञतापूर्वक कहलाया गया है—'बालिकाएँ मानती नहीं। ये अपनी पूजाके लिए स्वयं जल लेने चली गयीं। किसी बड़ेके साथ जानेसे सबोंको सङ्कोच होता। पता नहीं कहाँका कोई उत्पाती बन्दर इनपर झपट पड़ा था। ये सब बहुत भीरु हैं, बन्दरका भी दोष नहीं होगा। ये उसे देखकर ही भागी होंगी। नीलमणि दौड़ा आया सखाओंके साथ। बहुत सदय है वह। उसने इन्हें कपिको भगाकर आश्वासन दिया। जो गिर गयी थीं, उन्हें उठाया। लताओंमें उलझे इनके वस्त्र, वेणियाँ सुलझा दीं। हमारी बालिकाओंको बचाया व्रजके युवराजने!'

मैं सुनकर वृषभानु-नन्दिनीके शीलपर मुग्ध हो गयी। उन्हें आशीर्वाद ही तो दे सकती हूँ; किंतु अब उनकी सहेलियोंको इसी घाटपर जल भरनेकी हठ हो गयी है और ये बालक तो हठी हैं ही। नीलसुन्दर इनसे अब ऐसे ही उलझता रहेगा!



गोदोहन

क्षीराब्धि-मन्थनसे सुरभिका प्रादुर्भाव हुआ तो सुरोंने उनके शरीरमें स्थान प्राप्त कर लिया। मुझे अभिमान था कि मैं श्रीनारायणकी प्रिया, मेरा स्वयं आह्वान किया जायगा। देवी सुरसरि भी मेरे उन्हीं स्वामीकी चरणोद्भवा, वे भी नहीं गयीं। लेकिन सुरभिको हमारी आवश्यकता ही नहीं थी। वे गोलोककी अधीश्वरी, स्वयं शोभा, ऐश्वर्य सम्पन्ना। अन्तत: अभिमान त्यागकर सुरसरि पहुँचीं तो उन कामधेनुके अङ्गोंमें कोई स्थान ही रिक्त नहीं था। सुरभिकी कृपासे सुरसरिको उनके मूत्रमें स्थान मिला। मैं सबसे पीछे पहुँची। अब वे दयामयी भी क्या करतीं, उन्होंने अपने गोबरमें मुझे निवास दे दिया। यह तो मैं अब समझ सकी हूँ कि मुझे और सुरसरि देवीको सर्वश्रेष्ठत्व प्राप्त हो गया था। उस समय तो अत्यन्त उपेक्षिता हो जानेके भयसे ही मैंने यह आवास स्वीकार किया था। यह मेरी विवशता ही महामङ्गलायतन बन जायगी—मुझे कहाँ पता था।

निखिल-लोकेश्वर श्रीगोलोकाधिपति गोकुलमें पधारे। मुझे गोबरमें स्थान मिला था—मैं तो इस माध्यमसे पहिले ही दिन सूतिकागारमें पहुँच गयी। वे गोपाल ही बनने तो आये हैं। उनकी सेवा उनका सान्निध्य सुगम कर दिया है गोमाताने मेरे लिए। वह पूतना आयी थी गोकुल, उस दिन तो गोपियोंने इन मुकुन्दको गोमूत्रसे स्नान ही कराया और जब इनके अङ्गोंमें गोबर लगाकर रक्षा की गयी, मुझे इनके सभी अङ्गोंका स्पर्श प्राप्त हुआ।

श्रीवत्सके रूपमें इनके वक्षस्थलपर वास बहुत औपचारिक है। सनाथ तो किया मुझे अपने शैशवमें ही इन पुरुषोत्तमने। गोष्ठमें घुटनोंके बल सरकते आ जाते थे और गोबर अथवा गोमूत्र देखते ही बैठ जाते थे सखा अथवा अग्रजके साथ जमकर। एक दूसरेके अङ्गोंपर वह अङ्गराग लगाते थे। वह हरे, पीले, भूरे आदि गोबरसे चर्चित इनका श्रीअङ्ग—वह शोभा, वह मुझे ही तो स्पर्शदानकी अनुकम्पा थी।

एक दिन ऐसे ही गोष्ठमें सरकते आये। अपनी कामदाके उसी अवसरपर किये गये गोबरके समीप बैठकर दोनों करोंसे उसको पकड़ने लगे। मुझे लगा--यह मुझे आलिङ्गन-दानकी अनुकम्पा है। मैया आ गयी उसी समय। मैयाके सम्मुख तो मुझे करसे नहीं पकड़ सकते थे। बस कुछ कड़े, तनिक उष्ण गोबरपर झुककर अलक-मण्डित मस्तक रखा और मुख घुमाकर मैयाको देखने लगे। वह गोबरको इनका उपधान बनाना !

इधर यहाँ नन्दगाँव आकर लगता था कि सखाओंके साथ क्रीड़ा करनेमें मुझे भूल ही गये हैं ; किंतु नहीं, ये कहीं किसी अपने चरणाश्रित-को भूलते हैं। अब निश्चित हो गया कि प्रतिदिन प्रातःकाल ही गोष्ठमें मुझे दर्शन प्राप्त होंगे।

अपने सखा भद्रकी देखा-देखी इनको भी अब गोदोहनकी धुन लगी है। भद्रने कह दिया—' यह दूध मैंने दुहा है।'

' तू गाय दुह लेता है ? ' बड़े आश्चर्यसे पूछा इन्होंने।

' मैं तो कबसे दुहता हूँ। इतनी मोटी दूधकी धार निकालता हूँ ! ' भद्रने अपनी कनिष्ठिका दिखलायी।

भद्र व्रजराजके समीप ही सोता है। शिशु था तब भी इसकी जननी इसके सो जानेपर ही इसे उठा ले जा पाती थी। कम ही दिन यह क्रम चला। रात्रिमें भी जगनेपर रो-रोकर विवश कर देता था माताको और वे उसी समय व्रजेश्वरीके समीप ले आती थीं—'जीजी ! अपने लालको सम्हालो !' भद्र तो यशोदाजी और रोहिणी माताका ही दूध पीता रहा। तनिक बड़ा हुआ और व्रजपतिके पास सोने लगा। उनके साथ उठकर कब गोदोहन करने लगा, स्वयं उनको भी अब स्मरण नहीं है।

मैं गाय दुहूँगा !' श्यामसुन्दर सबेरे चुपके उठकर गोष्ठमें आ गये। बिखरी अलकें, कपोलोंपर फैला कज्जल, कछनीका कहीं पता नहीं। डगडग पदों चलते, जम्हाई लेते बाबाकी दक्षिण भुजा पकड़कर खड़े हो गये हैं। पिताके कन्धेपर सिर रखकर अभी नेत्र बन्द कर लिये हैं।

' गाय तो बड़े गोप दुहते हैं।' व्रजपतिने दोहनी रख दी। वे गोदोहन समाप्त कर चुके हैं। अब अपने इन नीलसुन्दरको भुजाके भीतर अङ्कमें स्नेहपूर्वक लिया उन्होंने—' तुम बड़े हो जाओ तो गोदोहन करना।'

'भद्र तो मुझसे छोटा है। यह तो गाय दुहता है !' अब नेत्र खोलकर सावधान हो गये श्यामसुन्दर।

'तू छोटा है मुझसे !' भद्र क्यों अपनेको छोटा मान ले। भद्रसे भले नौ महीने छोटे हों, ये कहाँ मानते हैं कि भद्र इनसे बड़ा है। भद्रने चुनौती दे दी—'आ ! माप करके देख ले !'

अब यह चुनौती तो सहन करये योग्य नहीं है। ये उतरे बाबाके अङ्कसे। ये दिगम्बर और कछनी बाँधे भद्र, दोनों कन्धोंपर भुजाएँ रखकर, सटकर, सिरसे सिर सटाकर खड़े हैं। दोनों नीचे देखते हैं कि कोई ऊँचाईपर तो नहीं खड़ा है।

'बाबा ! मैं बड़ा हूँ ?' दोनों पूछते हैं। दोनों पञ्जे उठाकर उचकते हैं। इसमें बाबा कैसे देख सकते हैं कि भद्र एक अंगुल बड़ा है।

'तुम अपनी मैयासे पूछो।' बाबा मुस्कराते हैं। उन्हें भी दूध लेकर भवनमें जाना है। इस कन्हाईके लिए पद्मगन्धा कामदाका दूध तो वे स्वयं दुहते हैं।

'अरे, कहाँ चला गया था तू !' मैया लग गयी थी उठते ही दूध, दधि-मन्थन सम्हालने तथा अपने नीलमणिके लिए नवनीत प्रस्तुत करनेमें और ये चुपचाप गोष्ठमें पहुँच गये थे। मैया ढूँढ़ने ही निकलने वाली थी। भद्र और श्याम दोनों दौड़ते आये और उसके पैरोंको भुजाओंमें भरकर खड़े हो गये। मैयाको इन्हें कलेऊ कराना है। वह चाहती है, झटपट इनका मुख धुला दे।

'मैया ! मैं भद्रसे बड़ा हूँ न ?' कन्हाईको अभी निर्णय कराना है।

'यह मुझसे छोटा है। तू मापकर बता दे।' भद्रको भी यह झगड़ा अभी मिटाना है।

'तुम दोनों बड़े हो।' मैया हँसती नहीं—'मैं छोटी हूँ। अब मुख धुलवाओ।'

'नहीं, भद्र छोटा है।' श्याम ऐसे कैसे मान ले।

'भद्र बाबाका है न ?' मैयाको सदा कोई-न-कोई युक्ति सूझ जाती है।

'बाबाका है तो क्या हुआ ?' कन्हाईका स्वर शिथिल पड़ गया है। भद्र बाबाका है, बाबाके पास सोता है। श्याम मैयाका है।

'बाबा बड़े हैं, मैं भी बड़ा हूँ।' भद्र अपनी विजय मनाने लगा है ताली बजाकर।

'मैं गाय दुहूँगा!' कृष्णचन्द्रको अब इस विवादमें विजय नहीं मिलती दीखती तो अपना आग्रह क्यों छोड़ दें।

'जा दुह ले!' भद्र नटखट है। हँसता है—'सब गायें दुही जा चुकीं। तू किसे दुहेगा?'

'हेमाको दुहूँगा!' कन्हाईको कहाँ पता है कि वर्षभरकी बछड़ी हेमा अभी दूध नहीं देती।

'हेमा चरने चली गयी।' भद्र हँसता है।

× × ×

मैं गोष्ठमें गोमयमें तादात्म्य करके, गृहमें सेविका बनकर, वनमें शोभा बनकर अपने आराध्यका सान्निध्य प्राप्त करने ही तो यहाँ व्रजमें आयी हूँ। गोमाताने मेरा यहाँ प्रवेश सुलभ किया है तो मैं उनकी पदधूलिके माध्यमसे सर्वत्र पहुँचकर सेवाका सौभाग्य क्यों छोड़ दूँ।

आज फिर सबेरे उठ गये मेरे स्वामी। गृहमें-से एक नन्हीं स्वर्णकी छोटी कलशी (लुटिया) उठा लाये हैं। मैयाकी दृष्टि बचाकर ही आये होंगे। आज आलस्य नहीं है। सावधान हैं कि बाबाके समीप जायँगे तो फिर वे अङ्कमें उठा लेंगे। सीधे देखा इधर-उधर और पीली बछड़ी हेमाके समीप पहुँच गये। व्रजराजने अपने लालको देख लिया है—'यहाँ आ जाओ!'

'मैं इसे दुहूँगा!' बाबाके समीप कहाँ जाना है अभी। अभी तो इस हेमाको दुहना है। हेमा इन्हें सूँघने लगी है।

'इसे कैसे दुहेगा?' भद्र उठकर खड़ा हो गया है अपनी दोहनी लिये—'इसका बछड़ा कहाँ है? तू बछड़ा बनेगा इसका?'

'हाँ, बनूँगा!' कन्हाईको चुनौती कभी अस्वीकार नहीं होती। क्या हुआ कि हेमाका बछड़ा नहीं है। अभी तो इसने बच्चा दिया ही नहीं है; किंतु यह बात ध्यानमें कहाँ थी कि दूध दुहनेसे पहिले बछड़ा चाहिये। बछड़ा दूध पी ले तब दुहा जाता है। अब भद्र चुनौती देता है तो यह हेमाको ही दुहेगा स्वयं बछड़ा बनेगा इसका। अनेक बार तो

गायोंके स्तनोंमें मुख लगाकर दूध पीता है, अब हेमाको ऐसे क्यों नहीं पी सकता ?

कन्हाईने अपनी छोटी दोहनी धर दी और हेमाके पैरोंके पास बैठ गया। मुख उठाकर हेमाके नन्हे स्तनोंमें अधर लगा दिये इसने। मैं क्षीराब्धि-सुता स्पष्ट देख सकती हूँ! गायोंके स्तनोंमें स्वयं मेरे पिता क्षीरसागरके अधिदेवताने आवास पाया है। हेमाके स्तनमें ये अखिलेश्वर मुख लगाये हैं तो क्या वहाँ क्षीरसिन्धु अपनेको व्यक्त करनेमें प्रमाद कर लेते ?

व्रजराज चकित देख रहे हैं कि उनकी सुनहली बछड़ीने पैर फैलाये, कुक्षि नीची की, मूत्र-त्याग किया और उसका आयन बढ़ा—फूलता चला गया। उसके स्तन मोटे-मोटे हो गये। तीनों स्तनोंसे दूधकी धारा गिरने लगी है। एक तो श्यामके मुखमें है।

'तेरा दूध तो गिर रहा है!' भद्र चेतावनी देता है। नीलसुन्दर स्तनसे मुख हटाकर अपनी कलशीमें दूध लेने लगते हैं।

'भद्र तो बिना पूजा किये गाय दुहता है।' अब व्रजराज उठकर समीप आ गये। अपने पुत्रको अङ्कमें उठा लिया—'मैं आज ही महर्षि शाण्डिल्यसे पूछूँगा। मेरा लाल अच्छे मुहूर्तमें गो-पूजन करके नन्दिनीको दुहेगा।'

× × ×

मुहूर्त सदा श्याम-सुन्दरका साथ देते हैं। सभी बालकोंने—बरसानेके बालकोंने भी नन्दगोष्ठमें ही गोदोहनका मुहूर्त करना निश्चित किया है। महर्षि एक साथ एक ही स्थानपर तो पूजन करा सकते हैं। बालकोंने सायङ्काल ही अपनी-अपनी मणिजटित स्वर्ण-दोहनियाँ चुन ली हैं। रात्रिमें सोते समय उसे समीप ही रखकर सोये।

कर्मारम्भ-मात्रमें गणपति, गौरी, नवग्रह, योगिनीका पूजन तो अनिवार्य है ही। गोपोंने रात्रिमें ही गोष्ठ सज्जित कर दिया था। भरपूर सजा दिया था। सबकी दूध देनेवाली गायें व्रजराजके गोष्ठमें अलंकृत होकर आ गयी थीं। आज राम-श्यामको, सभी शिशुओंको माताओंने अलंकृत किया है। तैलस्निग्ध अलकोंमें लगे मयूर-पिच्छ, मल्लिका-सुमन और आज सबने कछनी बाँधी हैं—रंग-बिरंगी कछनियाँ।

गायोंका पूजन, बछड़ोंका पूजन, दोहनी-पूजन, रज्जु-पूजन—व्रजमें यह निर्योग-पाश (नोवनेकी रज्जु) केवल पूजन तथा स्कन्धपर रखनेकी सामग्री है। किसी गौको दुहते समय पाद-बन्धनकी आवश्यकता नहीं होती। कोई बछड़ा बाँधा नहीं जाता।

चञ्चल बछड़ोंके मस्तकपर तिलक है और गलेमें पड़ी पुष्पमाला हिलाते ये बालकोंको सूँघ-सूँघकर कूदने लगे हैं। गायें हुङ्कार करने लगी हैं। सबने पैर फैलाये, मूत्र त्याग किया और सबके स्तनोंसे दूध टपकने लगा है।

महर्षिके साथ मुनि-मण्डलीका पूजन किया बालकोंने और महर्षिने सबको रक्षा-सूत्र बाँधकर तिलक लगा दिया है। भालपर कुंकुम-तिलक, उसपर चिपके अक्षत, राम-श्यामको बाबाने अपने करसे पूजित दोहनियाँ दे दी हैं। अब ये बैठ गये गोदोहन करने।

दोहनियाँ रखकर बछड़ोंके कण्ठमें भुजाएँ डालकर बालक ला रहे हैं कि वे तनिक दूध पी लें। गौरवको यह लाये श्यामसुन्दर—'तू दूध पी! पहिले पी तू!'

बछड़ोंने स्तनोंमें केवल मुख लगाया। आज ये प्रसन्नतासे फुदकनेमें मग्न हैं। ये लगीं लाल-लाल कोमल पतली अँगुलियाँ कन्हाईकी नन्दिनीके स्तनोंसे। यह घुटनोंके मध्य स्वर्ण दोहनी! यह गोपाल गोदोहन करने बैठे हैं। इनकी अँगुलियोंका स्पर्श पाकर तो स्तनोंसे क्षीरसागरको उमड़ना ही है।

मुझसे अधिक सौभाग्य है देवि सुरसरिका। गायें तनिक-तनिक मूत्र-त्याग मध्यमें भी करती हैं। गोमूत्रमें निविष्ट भगवती गङ्गा—स्तनोंसे झरती अजस्र उज्ज्वल दुग्ध-धारा।

दोहनियाँ पात्रोंमें भरनेपर गोप रिक्त करते हैं और पात्र लानेको दौड़ रहे हैं। आज किसी भवनमें कोई जल-कलश भी क्यों दूधसे भरे बिना रह जाय। भगवान महेश्वरके मन्दिरमें तो आज अहर्निशि अखण्ड दुग्धाभिषेक होना ही है, समस्त आसपासके देव-मन्दिरोंमें लक्षाभिषेककी व्यवस्था प्रारम्भ हो गयी है।

मैं सेविका हूँ। मुझे आज्ञा-पालन करना ही है। महर्षि मन्त्रपाठ-पूर्वक मेरा आह्वान करते हैं और उनका स्मित स्पष्ट कर देता है कि इन सर्वज्ञको मेरी उपस्थितिका पता है। आह्वानकी आवश्यकता तो किसी सुरको नहीं है; किंतु महर्षिको भी तो मर्यादाका मान रखना है। इस मर्यादासे विवश ही मुझे पूजा स्वीकार करनी है।

मेरी अपनी भी रुचि है। आज सम्पूर्ण व्रज, यहाँके पशु-पक्षी तक श्याम-सुन्दरके इस प्रथम गोदोहनके दूधसे बने पायसका प्रसाद प्राप्त करेंगे। मैं व्रजराज-तनयके पावन पदोंकी विनम्र दासी—वह प्रसाद मेरी परम रुचि है और वह तो मैं प्राप्त करूँगी ही।

बहुत चपल हैं मेरे ये स्वामी और इनके सखा। एक गौके नीचेसे उठकर दूसरीके नीचे बैठ जाते हैं। आज किसको अपने करोंसे दोहन करने-के सौभाग्यसे वञ्चित करते ये कृपामय? सब सखा स्थान परिवर्तित करते हैं—'तू धन्याको दुह! मैं अरुणाको दुहूँगा।'

गोपियाँ मङ्गल गान कर रही हैं। वाद्य तथा शङ्ख बज रहे हैं। विप्रगण गायोंका श्रुतिके सूक्तोंसे स्तवन कर रहे हैं। गौएँ हुङ्कार कर रही हैं। बछड़े फुदक रहे हैं और गोदोहन चल रहा है। गोपोंमें पात्र लाने, दूध धरनेकी दौड़ा-दौड़ चल रही है। पूरा गोष्ठ पिच्छल हो गया है गोदुग्धसे। बालकोंके अंग दुग्धके उज्ज्वल बिन्दुओंसे भूषित हो रहे हैं।

'वत्स! अब गो-दोहन समाप्त करो!' महर्षिने श्यामसुन्दरके समीप जाकर सस्नेह आशीर्वाद दिया। आकाशमें अरुणिमा व्याप्त हो गयी है। अब समाप्त हुआ यह गो-दोहन। बालकोंने अपनी अलकें सम्हालीं। सब सुप्रसन्न हैं। अब यहाँ व्रजमें तो दिनभर उत्सव चलना ही है।

× × ×

गायें उठते ही गोबर करती हैं। मैं उस गोमयमें स्थित प्रभातसे पूर्व ही अपने स्वामीका दर्शन एवं पाद-स्पर्श पा जाती हूँ। अब बिना बालकों-के तो गोदोहन सम्पन्न नहीं हो सकता। गायें हुङ्कार करने लगती हैं। बछड़े गोष्ठ द्वार उन्मुक्त पा जायँ तो सीधे नन्दभवनके भीतर पहुँचे। गोप कितना भी प्रयत्न करें, नीलसुन्दरके आये बिना ये कहाँ अपनी माताओंके स्तनमें मुख लगाते हैं।

मैया व्रजेश्वरीकी उलझन बढ़ गयी है। वे जानती हैं कि गायोंकी हुंकृति सुनते ही उनका नीलमणि गोष्ठकी ओर भागता है। उसे यदि पहिले उठाकर मुख न धुला दिया जाय तो बिना मुख धोये ही गोष्ठमें चला जायगा और लौटनेमें तो विलम्ब होता है। लौटते ही माखन माँगेगा। क्षुधा कहाँ सही जाती है शिशुओंसे। लेकिन ये माँगते ही भर हैं—मुख जूठा हुआ और बस। फिर तो मना-फुसलाकर कुछ थोड़ा खिला सको तो खिलाओ।

बालकोंकी अँगुलियाँ स्पर्श करती हैं गायोंके स्तनोंसे और उनसे दूध झरने लगता है। गोपोंको तो केवल अब पात्र भरने रहते हैं। व्रजमें अब गोदोहन तो ये नन्हें बालक करने लगे हैं।



वत्स चारण

मैं व्रजराजके सदनका सेवक—कबसे सेवक हूँ, मुझे स्मरण नहीं। लगता है कि जन्म-जन्मका इसी सदनका सेवक हूँ और जन्म-जन्म तक इसी सदनका सेवक रहना चाहता हूँ। मैंने अपना शैशव इसी सदनमें बिताया है और नन्दराय तो मेरे अङ्कमें खेले हैं। पता नहीं क्यों लोग मुझे साधु कहने लगे। अब यही मेरा नाम पड़ गया। श्याम ही है जो मुझे साधु दाऊ कहता है। इसे पहिले ताऊ कहना आता नहीं था। ताऊके स्थानपर दाऊ कहता था और अब भी मुझे दाऊ ही कहता है।

यह नीलमणि—यह कभी अङ्कमें आ बैठता है और अपने दोनों कर मेरे उज्ज्वल श्मश्रुके केशोंमें लगाकर अँगुलियाँ नचाता है। इसे कभी कोई पुष्प चाहिये, कभी कोई पक्षी या बछड़ा पकड़ना है और कुछ नहीं तो कर-पर या कन्धेपर बैठी तितली उड़ानी है। मेरे समीप आ खड़ा होगा अथवा अङ्कमें आ बैठेगा। मुझे भी तो और कोई कार्य नहीं है। नन्दराय तो चाहते हैं कि बैठा रहूँ मैं और वे मेरी सेवा करें। हँसी आती है उनके मुखसे यह सुनकर—'चाचा ! तुमने बहुत सेवा की है हम सबोंकी। अब तो हमको कुछ अवसर दो।'

मेरी काया क्या इतनी दुर्बल हो गयी ? मैं अब भी किसी तरुण गोपसे अधिक भार उठा सकता हूँ और उससे दूर तक बिना थके जा सकता हूँ ; किंतु मैं कुछ करने लगूँ तो यशोदा बहू आकर हाथ पकड़ती हैं—'चाचा, आप तो अब यह रहने दो।'

मेरी यह व्रजेश्वरी बहू और मथुरासे आयीं रानी बहू तो महारानी हैं, उनकी समता कोई स्त्री संसारमें क्या करेगी। उन्होंने समझा कि मैं बैठा-बैठा तो बहुत बूढ़ा हो जाऊँगा। उन्होंने मुझे कार्य दे दिया—'चाचा ! ये आपके राम-श्याम बहुत चञ्चल हैं। इन्हें आप सम्हालते रहें !'

बालक चञ्चल तो होंगे ही, कन्हाई कुछ अधिक ही चपल है। मैं तब भी इसे सम्हाल नहीं पाता था, जब यह घुटनों सरकता था और अब

तो दौड़ने लगा है। वैसे तो सम्मुख ही खेलता रहता है ; किंतु कब कहीं भाग निकलेगा, पता नहीं रहता। एक बार नेत्रोंसे ओझल हो जाय तो मैं कहाँ इसे ढूँढ़ पाता हूँ। ढूँढ़ भी लूँ तो इसे रोकना सम्भव है ? यह केवल व्रजेश्वरी बहूकी ही कुछ मानता है।

'साधु दाऊ !' श्याम यह कहकर जब मेरी ओर देखकर हँस देता है, मुझे अपने शरीरकी ही सुधि नहीं रह जाती। इस मोहनकी किसी बातको कोई भी क्या अस्वीकार कर सकता है ?

लेकिन अब कितनी विचित्र है इसकी हठ, अभी पूरे तीन वर्षका नहीं हुआ और हठ पकड़ चुका है कि गायें चरायेगा। यह हठ व्रजराज कैसे मान लें ? गायें कितनी दूर जाती हैं, कहाँ-कहाँ दौड़ जाती हैं, कितना भटकना पड़ता है उनके पीछे, इसकी कल्पना भी कृष्णको कैसे हो सकती है ?

इसके बरसानेके सखा बहुत संकोची हैं। मैं कितनी बार बुलाता हूँ यशोदा बहूके कहनेसे ; किंतु सदनमें चलनेका नाम सुनकर ही भाग खड़े होते हैं। उसी समय इनको अपने घर पहुँचनेकी शीघ्रता लगती है। मुझे लगता है कि कालिन्दी-कूलका यह पुलिन नन्दभवनके सम्मुख ही होनेसे उनको यहाँ भी खेलनेमें सङ्कोच होता होगा। यहाँ तो गोपियाँ, गोप दिन-भर पहुँचते ही रहते हैं। व्रजेश्वरी बहू ही दो घड़ी बीतने नहीं देतीं, स्वयं बालकोंको बुलाने बार-बार पुलिनपर पहुँचती हैं। इससे बरसानेके बालकों-ने ही श्यामको यह गोचारण सुझाया होगा। श्रीदाम बड़ा है, चतुर है। उसने सोचा होगा कि गोचारणके लिए चलनेपर नन्दग्राम और बरसानेके समीपके वनमें भली प्रकार स्वच्छन्द सब खेल सकेंगे। कन्हाई बहुत भोला है। किसीकी बातमें शीघ्र आ जाता है।

× × ×

'चाचा ! आप अपने इस नीलमणिको मनाओ तो सही।' यशोदा बहूकी व्याकुलता मैं समझ सकता हूँ। इसके बड़े-बड़े नेत्रोंमें आँसू क्या देखे जा पाते हैं। यह मचलता है, माखन फेंक देता है, दूध ढुलका देता है, मैया-की गोदमें ही आना नहीं चाहता। दिनमें कई-कई बारका इसका यह रूठना कैसे देखा जायगा ? कितना दुर्बल हो गया यह इन्हीं चार दिनोंमें। कुछ खाता ही नहीं तो दुर्बल नहीं होगा ?

'मैं गायें चराने जाऊँगा!' इसकी यह हठ भी क्या मानने योग्य है? मैंने कहा था कि मैं साथ ले चलूँगा। सब गोप साथ रहेंगे; किंतु यह हठपर है कि कोई बड़ा गोप साथ नहीं जायगा। मैं भी साथ नहीं जाऊँ। केवल शिशुओंको इन लक्ष-लक्ष गायोंके साथ वनमें कैसे भेजा जा सकता है।

'मैं गायें चराऊँगा! सबकी सब गायें!' इसे हठ चढ़े तो किसीकी सुनता कहाँ है। 'मेरे सब सखा साथ रहेंगे। दाऊ दादा साथ रहेंगे!'

दाऊ केवल एक ही वर्ष तो बड़ा है इससे; किंतु इन बालकोंको तो लगता है कि इनका दाऊ संसारमें सब कुछ कर सकता है। वह बलवान है यह ठीक; किंतु गायें बहुत अधिक हैं और वह भी तो निरा बालक ही है।

नीलसुन्दरका क्या किया जाय? यह रोता है, मचलता है, गोष्ठ-में बड़े वृषभोंकी, गायोंकी सींग पकड़कर झूल जाता है। गोबर, गोमूत्रमें लोटपोट होता है गायोंके पैरोंके बीचमें। गायें सब सीधी हैं। कोई वृषभ किसीको सिर भी नहीं हिलाता। सब पशु भी श्यामसे स्नेह करते हैं; किंतु पशु ही तो हैं। अनजानमें वे हिल सकते हैं, सिर हिला सकते हैं। कितने तीक्ष्ण श्रृङ्ग हैं इनके और इनके खुर—बहुत सुकुमार है नीलसुन्दर। मैं इसके साथ ही लगा रहता हूँ; किंतु इसका रुदन, इसका यह हठ—लगता है कि हृदय फट जायगा।

'कुछ करना चाहिये!' मैंने नन्दरायसे बहुत सङ्कोचपूर्वक कहा—'बालक हठपर आया है और यह पशुओंके पेटके नीचे इसका लेटना, सींग पकड़कर झूलना—यह तो वृषभोंके ऊपर तक चढ़ जाता है, जब वे बैठे होते हैं! नारायण इसकी रक्षा करें!'

'क्या करना चाहिये चाचा?' नन्दरायने नेत्रोंमें अश्रु भरकर मेरी ओर देखा—'मुझे आजकल इस चिन्तामें निद्रा तक नहीं आती; किंतु कुछ सूझता नहीं। गोप-बालकका यह उत्साह तो उत्तम है; किंतु नीलमणि कितना छोटा है।'

मैं अपने नेत्र पोंछता चुपचाप हट आया। मुझे ही कहाँ माग सूझता है। मुझे मार्ग सूझता तो मैं यशोदा बहूको इतनी चिन्तित, दुःखी देख पाता? वे कितनी व्यथित हैं इन दिनों अपने कन्हाईके रूठने, आहार न करने और गोष्ठमें इस प्रकार मचलनेसे।

× × ×

'लाल ! तू तनिक और बड़ा हो जा तो गायें चराना।' नन्दराय बहुत स्नेहसे समझाते हैं।

'मैं बड़ा तो हो गया !' कन्हाई मानने वाला कहाँ है।

'देख, गोप बड़े हैं, वे बड़ी गायें और वृषभ चराते हैं।' व्रजपतिने एक मार्ग निकाल लिया—'तू छोटा है, तू छोटे बछड़े चराया कर।'

'हाँ, मैं बछड़े चराऊँगा।' मोहन प्रसन्न हो गया है। यह बछड़ों-की ओर देख रहा है। बछड़े तो इसे गायोंसे भी अधिक अच्छे लगते हैं। अबतक बछड़े चरानेकी बात क्यों नहीं सूझी इसे। मैं नन्दरायकी सूझपर प्रसन्न हूँ, युक्ति उत्तम है। बछड़ोंको चरना तो रहता नहीं। वनमें जाते इन्हें स्वयं सङ्कोच होगा। कुछ देर आसपास ही उछलकूद करके स्वयं गोष्ठमें भाग आवेंगे।

'मैं बछड़े ले जाऊँ ?' कन्हाई इधर-उधर लकुट देखने लगा है।

'अभी नहीं लाल ! मैं महर्षि शाण्डिल्यसे मुहूर्त्त पूछने चल रहा हूँ। तुम साथ चलो ! बछड़ोंकी पूजा करके तब उन्हें चराने ले जाना !' यह बात पिताकी नीलसुन्दरको स्वीकार है। जानता है कि प्रत्येक कार्यका प्रारम्भ पूजासे होता है। महर्षि इसे मुहूर्त शीघ्र बतला देते हैं।

× × ×

वत्स-चारण-महोत्सव व्रजके लिए नवीन बात है; किंतु हमारा कृष्णचन्द्र वनमें जायगा बछड़े चराने तो दूसरे बालक घरोंमें तो नहीं बैठे रहेंगे। सब गोपोंने यह महोत्सव मान लिया है। बरसानेमें पहिले मना लिया गया यह और अपने व्रजके तो सब बालकोंके संस्कार साथ ही होते हैं। बछड़ोंको चराना कहाँ है। अतः छोटे तोकका भी यह संस्कार कल ही सम्पन्न होगा।

कल नीलमणि वत्स-चारण प्रारम्भ करेगा। आज वह बड़े उत्साह-में रहा दिनभर। उत्साहमें तो हम सब हैं। पूरा व्रज और वन-पथ स्वच्छ, सज्जित किया गया है। मुझे तो लगता है कि पथके तरुओं, लताओंको भी कलके महोत्सवका पता है। नवकिसलय, फलभार एवं पुष्पोंसे ये इतने लदे और कभी तो झुके नहीं दीखते थे। कितनी कोमल हरित दूर्वा उगी है मार्गमें। बछड़े चरें तो हमारे व्रजके समीप ही सुकोमल पर्याप्त तृण हैं।

महर्षि मुनिगणोंके साथ सदा सूर्योदयके पश्चात् पधारते हैं। अपना प्रातःकृत्य करके ही तो वे आ सकते हैं। आते ही पूजन प्रारम्भ कर दिया उन्होंने। आज पूजन तो राम-श्यामको करना है। कितना समझदार हो गया है यह मेरा नीलसुन्दर। महर्षि केवल मन्त्र-पाठ करते हैं। यह स्वयं कब क्या पदार्थ उठाना है, क्या करना है, करता जा रहा है। दूसरे बालकोंको तो इसका अनुकरण करना है।

कन्हाई—हमारा व्रज नवयुवराज आज गोपाल बन रहा है। व्रजके लिए, गोपोंके लिए इससे बड़ा महोत्सव और क्या होगा? प्रत्येक गोष्ठ, प्रत्येक गली सजी है। गृहद्वारोंपर तोरण हैं, फल-भारसे झुके कदलीस्तम्भ हैं, सुपूजित कलशोंपर प्रदीप हैं। गोप, गोपियाँ, बालक सब सजे हैं। सब वस्त्राभरण भूषित हैं। सुसज्जित, शृङ्गार किये हैं हमने सब पशुओंके।

महर्षिने आते ही मेरी ओर सस्मित देखा था, जब मैंने उनके पदोंमें मस्तक रखा। बोले—'आज तो साधु गोष्ठाधिप बन गया है!'

गोष्ठेश्वर तो है मेरा यह नीलमणि। मैं इस गृहका सेवक—श्वेत कौशेय उष्णीष, श्वेत रत्न-खचित कञ्चुक, श्वेत कौशेयकी कछनी और हीरक एवं मौक्तिकाभरण और किस दिनके लिए मैंने व्रजपतिसे पाये थे। मेरा यह रत्नखचित रजत-दण्ड—मेरा युवराज गोपाल बनकर चलेगा तो मुझे उसके पीछे प्रधान सहायक बनकर भी तो चलना है। आज तो उसके सब ताऊ, चाचा भी मुझसे स्पृहा नहीं कर सकते।

आज अन्तःपुर गोपियोंसे भरा है और बाहर गोपोंकी भीड़ है। गोपियोंने व्रजेश्वरी बहूको अपने उपहार अर्पित कर दिये हैं और अब गाने, नाचने तथा अनेक विनोद करनेमें लगी हैं। तरुण गोप अपने शस्त्र-कौशलका प्रदर्शन कर रहे हैं। व्रजराजके उपहार देकर, परस्पर तिलक करके, अङ्कमाल देनेके अनन्तर उनका कला-प्रदर्शन चल रहा है।

सूत, मागध, बन्दी सभी उत्सवोंपर स्तवन, वंशविरद-गान करने आते ही हैं। आज तो नट-नर्तक तथा अन्य कला-जीवियोंका समुदाय ही आ गया है।

वाद्य-ध्वनि, कला-प्रदर्शन, नारियोंका सङ्गीत सब सहसा रुक गया। कपिला कामदा अपने कर्पूर-श्वेत बछड़े गौरवके साथ स्वयं आ गयी पूजन-स्वीकार करने। मुनि-मण्डलका मन्त्रपाठ और शङ्खध्वनि गूँज रहा

है। व्रजराज श्रीनन्दरायके वामपार्श्वमें अलंकृता बहू यशोदा अपने लाल-का गो-पूजन मुग्ध नेत्रोंसे देख रही हैं।

श्यामने कामदाको अर्घ्य दिया। पाद-प्रक्षालन किया। मध्यमें यह बाबा या मैयाकी ओर देख लेता है कि वह ठीक तो कर रहा है। यह तो ऐसे पूजन कर रहा है जैसे सदासे गो-पूजन ही करता रहा हो।

श्रीनन्दरायने अङ्कमें उठाना चाहा था श्यामको जिससे वह कामदा-के शृङ्ग, जल-सिञ्चित कर सके; किंतु कामदाने सिर भुकाकर शृङ्गोंपर जल लिया, भालपर तिलक कराया और कण्ठमें पुष्प-माल्य स्वीकार की। गन्ध-धूप, दीप और कन्हाईके करोंसे मृदुल दूर्वाके साथ मोदक। यवस (भीगे अन्न) में तो केवल मुख लगाया है इसने। गो-माताकी यह हुंकृति उनका आशीर्वाद ही तो है।

सम्पूर्ण पूजन तो लिया है चपल बछड़े गौरवने शान्त खड़े रहकर। केवल कण्ठमें पुष्पमाल्य पड़नेपर प्रसन्न होकर सिर हिलाकर तनिक उछला है। इसे भी क्या पता है कि इस माल्यसे इसकी शोभा बढ़ी है?

व्रजराजका हिमशिखरके समान श्वेत-उत्तुंग वृषभ धर्म। यह सिर न भुकाये तो इसके शृङ्गोंपर जल चढ़ाना मेरे लिए भी थोड़ा कठिन ही होगा; किंतु वत्स-पूजन होते ही यह आ गया स्वयं पूजन लेने और श्यामके करोंकी पूजा तो लगभग भूमिसे मुख लगाकर ले रहा है।

महर्षिने सब बालकोंसे एक-एक गौ, बछड़े और वृषभका एक साथ पूजन करा दिया। शेष सब गायों, बछड़ों, वृषभोंका पूजन करनेकी आज्ञा दे दी गोपोंको। सबको पूजन करके यवस दे दिया गया।

नीलसुन्दर उत्साहमें है। आचार्यका पूजन, विप्रवर्गका पूजन, वृद्ध गोपोंका पूजन—व्रजराज कर दे सकते थे यह; किंतु श्याम आज स्वयं यह सब करना चाहता है। सबके चरणवन्दन कर आया—वन्दना तो इसने आज मेरी भी की। गोपियोंका अभिवादन करने चला गया अन्तःपुरमें।

× × ×

मोहन अन्तःपुरसे आया। वेत्र-लकुट, मृदुल रज्जु, शृङ्ग और मुरलिका—इन सबका भी तो पूजन करना है। पूजनके पश्चात् व्रजराजने उठाकर अपने लालके करोंमें लकुट दिया। इसे लेकर कृष्णचन्द्र आज

गोपाल हो गया। महर्षि तथा पिताके पदोंमें मस्तक झुकाया मोहनने। महर्षिने शृङ्ग दिया और वृद्ध बड़े ताऊने वाम स्कन्धपर रज्जु सजा दी। वंशी स्वयं इसने उठाकर कछनीमें लगायी।

मस्तकपर लहराता मयूरपिच्छ, तैलस्निग्ध घुँघराली काली सघन सुकोमल अलकावली, कर्णोंमें पद्मराग कुण्डल, भालपर कुंकुम-तिलकपर चिपके चार अक्षत, अञ्जन-रञ्जित विशाल लोचन, कज्जल-रेखा-सी कुटिल भ्रू, कण्ठमें लालमणि, वक्षपर लहराती मुक्तामाल, वनमाला पीत-पट्टुकेके मध्य, वाम स्कन्धपर लिपटी रज्जु, भुजाओंमें रत्नाङ्गद, कलाइयोंमें कङ्कण—दक्षिण करमें वेत्रका अरुण लकुट, पीत कछनीमें लगी वंशी, पदोंमें स्वर्ण नूपुर—यह व्रजका युवराज आज अपने सम्पूर्ण वेशमें मेरे सम्मुख खड़ा है। मैंने नीलाम्बरधारी, एक कुण्डली अग्रजके साथ इसे देखा—सफल हो गया जीवन। सम्पूर्ण जीवनफल मुझे आज मिल गया।

वेत्र करोंमें उठा और गौरव कूदता गोष्ठसे निकल पड़ा। सहस्र-सहस्र गोवत्स निकले उसके साथ और उनके पीछे यह चला सखाओंके सङ्ग अग्रजको साथ लिये गोपाल। वाद्योंके घोष, भेरीनाद, शङ्खनाद, गोपोंकी शृङ्गध्वनि, गोपियोंका मङ्गलगान—सबको तो इसी समय सार्थक होना है।

इस मध्याह्नमें गगन मेघोंसे ढका है और नन्हे सीकरोंके साथ गगनसे सुमनोंकी झड़ी लगी है। ब्राह्मण स्वस्ति पाठके साथ अक्षत-पुष्प निक्षिप्त कर रहे हैं। गोपियाँ लाजा-दूर्वाङ्कुर फेंक रही हैं। विप्र-पत्नियोंने आशीर्वादकी वर्षा प्रारम्भ कर रखी है।

बालकोंके पीछे मुझे अपने सहायकोंके आगे चलनेका सम्मान मिला है। सुरभियोंका समूह है हमारे पीछे और उनके पीछे हैं गोपगण। आज केवल ग्राम-सीमा तक जाकर लौटना है। बहुत विलम्ब हुआ है। कन्हाई बहुत सुकुमार है। थक गया होगा यह। लेकिन आज तो सब विधियोंको इसीको पूरा करना है। व्रजराजके मना करनेपर भी सब सखाओंका इसने स्वयं शृङ्गार किया था तो अब क्या मानेगा!

मैं इसी चिंतामें था कि मोहन बहुत थक गया होगा, इतनेमें वाद्य दो भागोंमें विभक्त हो गये। विप्रवर्ग दोनों ओर हो गया मार्गके और मध्यसे मोहन लौटा। सहस्रों रङ्ग-बिरंगे बछड़े, सब अलंकृत, सबके कण्ठोंमें हीरक एवं पुष्पोंकी मालाएँ, सब उछलते-कूदते बालकोंकी ओर ही बार-

बार लौटते हैं। श्याम लकुट उठाता है तो सब सिर उठाकर उस लकुटको ही सूँघने लगते हैं।

दाहिने राम, बायें श्रीदाम, पीछे भद्र, सुबल और सहस्रों बालकोंका अलंकृत समुदाय है। गायोंके खुरोंसे उड़ी धूलि अलकोंपर, भालपर, वक्षपर छायी है। मेरा यह युवराज थक गया है। भालपर स्वेद झलमला आया है। मुख अरुणी हो उठा है। यह लौट रहा है।

गोपीने चाहा था कि गायोंको वनमें चरने ले जायँ; किंतु कन्हाई लौट रहा है तो वे वनमें क्यों जायँ? उनका उदर तो यवससे भरा है। सब लौट पड़ी हैं। सब बछड़ोंके साथ भागकर मिल गयी हैं। गोपाल बना है आज कृष्ण तो सबका ही चरवाहा तो उसीको रहना चाहिये। हुङ्कार करती, स्तनोंसे दुग्धधारा बहाती गायोंके दुग्धसे मार्गमें बिछे सुमन, दूर्वा-दल, लाजा सब आर्द्र हो गये हैं—धुलते आ रहे हैं।

विप्रोंके सम्मुख सिर झुकाये, उनके स्वस्तिपाठके मध्य, उनके अभय करोंकी छायामें मोहन चला आ रहा है। मुझे अब अपने साथियोंके साथ अनुगमन करना है। वाद्योंकी ध्वनि द्विगुणित हो गयी है। मेरे पीछे आता गोपोंका समूह पुष्प-वर्षा कर रहा है। महर्षि शाण्डिल्य विप्रवृन्दके साथ उसके पीछे, उनके ही पीछे चलेंगे ये अभी पार्श्वमें खड़े नन्दराय श्रीवृष-भानुरायके साथ। नट, नर्तक, वाद्य सबसे पीछे और उनके भी पीछे आना है इन दोनों ओर खड़ी गोपियोंके समूहको मङ्गलगान करते।

× × ×

श्यामसुन्दरने गोष्ठमें प्रवेश किया। अभी गोष्ठ-पूजन होना है। महर्षिने इस बार शीघ्रता की पूजन करानेमें। गौ, गो-वत्स, वृषभका पूजन प्रत्येक बालक एक-एकका कर ले, इतना पर्याप्त है। शेष सबका पूजन तो गोप-गण करेंगे ही।

आचार्यका तथा ब्राह्मणोंका पूजन करके, भोजन कराके उन्हें दक्षिणा देकर विदा करना उचित था। वे अग्र-पूज्य हैं। व्रजेश्वरी बहूने ब्राह्मण-पत्नियोंको भली प्रकार अलंकृत कर दिया। वृद्ध गोपों तथा सम्बन्धियोंका और नट-नर्तकादिका सत्कार भी समझमें आता है। आज हमारा नूतन गोपाल स्वयं सबको उपहार देता है, यह भी उचित है; किंतु हम सेवक तो घरके हैं, हमारा सत्कार? हमारी समझमें यही बात नहीं आती। मेरे सब साथी चकित हैं।

'साधु दाऊ ! मैं तुमको कुण्डल पहिनाऊँगा !' अब यह कान्ह अङ्कमें आकर बैठ गया है। रोहिणी बहू इसे उत्साहित कर रही हैं। आज गोपाल बने अपने युवराजके करोंका उपहार मैं मना भी कैसे कर सकता हूँ। इसे भी कहाँ कुण्डल पहिना कर ही सन्तुष्ट होना है। नन्दराय ही किसीको देते सन्तुष्ट नहीं होते और यह उनका लाल तो उदारतामें पितासे बहुत आगे है।

'बहू ! मोहन बहुत थका है आज।' मैं रानी बहूसे प्रार्थना करती हूँ—'बहुत भूखा होगा। इसे पहिले कुछ खिलाओ। मैं और मेरे साथी तो इसी घरके हैं। हमें तो आपका प्रसाद ही पाना है।'

'आप अपने पौत्रको समझाइये !' रानी बहू सस्मित कह देती हैं—'श्याम कहता है कि आज सब आपके साथियोंको स्वयं परसकर खिलावेगा। सबको भोजन कराके तब भोजन करेगा सखाओंके साथ। अतः शीघ्रता तो आप सबको करनी है।'

हे भगवान ! यह नन्हा नीलमणि अभीसे इतना सावधान, सेवकोंका इतना ध्यान रखनेवाला हो गया। यह इतना हठी है कि इसके हठके कारण ही तो यह वत्स-चारणकी नवीन परम्परा चलानी पड़ी व्रजपतिको। अब इस समय तो यह जो कहे, वही मान लेना है।

सब बालक एक-से हैं। राम, भद्र, श्रीदाम, सुबल, तोक—कोई नहीं खायेगा बिना कन्हाईको साथ लिये और कन्हाई जुटा है हम सबोंको खिलानेमें। इन बालकोंको स्वयं भोजन करनेकी अपेक्षा दूसरोंको भोजन करानेमें, दूसरोंको देनेमें आनन्द आता है, यह इनकी पैतृक संस्कार-सम्पदा है।

सबको भली प्रकार भोजन कराके, भरपूर उपहार देकर नन्दरायने परितुष्ट कर दिया है। अब कहीं यशोदा बहूका अङ्कधन अपने सखाओंके साथ भोजन करने बैठा है। इसका यह उल्लास, यह मित्रोंको हँसाकर परसना और भोजनकी इस पंक्तिमें प्रधानता तो मधुमङ्गलकी ही रहनी है। यह ब्राह्मणोंके साथ बहुत मनानेपर भी नहीं बैठा और अब व्रजेश्वरीके सम्मुख जमा बैठा है—'भैया ! इन सबको रहने दे। मैं अग्रभोजी ब्राह्मण हूँ ! तू मुझे ढेर-से मोदक दे दे !'



वेणुवादन

सुरोंका मैं सङ्गीत-शिक्षक हूँ। अप्सराएँ, गन्धर्व मुझसे वाद्य-वादन सीखते हैं। देवर्षि नारद चाहते हैं कि मैं उनके साथ ही रहूँ। उन ब्रह्मपुत्र-का अनुग्रह कि मुझे सखा मानते हैं; किंतु जहाँ तक सङ्गीतकी बात है, वीणाकी अनेक वादन-पद्धतियाँ, अनेक राग-रागिनियाँ उन्हें मैंने बतलायी हैं। भगवान नीलकण्ठ एवं जगदम्बा भगवती उमाने मुझे अपना शिष्य स्वीकार किया और आशुतोष उमा-महेश्वरका दान अपूर्ण तो नहीं होता। मुझे तो उनका अतिशय वात्सल्य मिला।

परम पुरुष पृथ्वीपर पधारे। हम गन्धर्व उनका स्तवन तो करेंगे ही; किंतु मुझ शिवके साक्षात् शिष्य, सुरोंके स्वर-शिक्षक, गन्धर्वोंके गायन-गुरुका कर्त्तव्य तो इतनेसे पूर्ण नहीं हो जाता। मुझे प्रसन्नता हुई उन पुरुषोत्तम वनमाली शिखि-शिखण्ड मौलि नवघनसुन्दर नन्दनन्दनने वत्स-चारण संस्कारके समय वंशी अपने करोंमें ली। गन्धर्वोंका अग्रणी मैं उस समय व्रजके गगनमें व्रजराजकुमारका कीर्त्तिगान करने उपस्थित न रहता, यह तो असम्भव था। सुर, गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ सब स्तवन, सङ्गीत, नृत्य, वाद्यके द्वारा सेवा करनेमें लगे थे। मुझे लगा कि मैं साक्षात् सेवाका समय पा सकता हूँ। ये जब वत्सचारणके लिए वनमें पधारेंगे, वेणु-वादन मैं आकर सविनय सिखला दिया करूँगा।

सहस्र-सहस्र बालक साथ निकलते हैं। सब रत्नजटित स्वर्णालङ्कार सज्जित। सब इतने सुन्दर कि सुरों और गन्धर्वोंमें इस सौन्दर्यको स्वप्नमें भी नहीं देखा जा सकता! सब श्रृङ्ग लाते हैं और वनमें पत्ते तोड़कर सीटियाँ बनाते-बजाते हैं। मुझे समय मिल जाय तो मैं सबको अपनी सम्पूर्ण सङ्गीत-कला सिखलाकर अपनेको धन्य ही मानूँ।

रङ्गारङ्ग-वन तो शोभा-सम्पन्न ही तब होता है जब प्रातः श्वेत, श्याम, पीत, अरुण—अनेक रङ्गोंके बछड़े-बछड़ियाँ आती हैं और अपने कण्ठोंमें पड़ी क्षुद्र घण्टिकाओंको ध्वनित करती, मालाओंको हिलाती वनमें कूदती-उछलती क्रीड़ा करने लगती हैं। समीपके ही नहीं, दूर-

दूरके वन-पशु वन-सीमापर शान्त प्रतीक्षा करते होते हैं और पक्षी वन-प्रान्तके वाह्य तरु-पंक्तियोंपर बैठे देखते होते हैं। पक्षी ही उड़कर, आनन्द कलरव करके स्वागतका समय पहिले पाते हैं। कपि तो नन्दग्रामसे साथ ही कूदते आते हैं। पशु वनमें पहुँचते ही बालकोंके समूहमें मिल जाते हैं और बछड़े उन्हें सूँघकर कूदते हैं, उनके साथ खेलने लगते हैं।

बालकोंको सदा वनमें पहुँचते ही प्रसाधन-सामग्री एकत्र करनेकी सूझती है। नवकिसलय, गुंजा, पुष्प, गैरिक, हरताल आदि वन-धातुएं—जिसको जो सूझ जाय। सबको श्रीनन्दनन्दनको सजाना है और श्रीश्यामसुन्दरको भी स्वयं अपने करोंसे सबको सजाना है। अलकोंमें सुमन-गुच्छ, किसलय, पक्षियोंके श्वेत, हरितादि पिच्छ, कर्णपर कर्णिकारके पीतपुष्प, कण्ठमें मालाएँ, भुजाओंमें, कलाइयोंमें गुंजा, वनपुष्प—उदरपर वक्षपर, पृष्ठपर, बाहुओंपर वन-धातुओंके चित्र—सबका अद्भुत वेश बन जाना है। सब सजाते हैं एक साथ श्रीकृष्णचन्द्रको अथवा इनके साथ किसी सखाको घेरकर सजाने लगते हैं। जिसे जो रुचे, जो अङ्ग मिल जाय, उसीको सजानेमें लग जाता है।

मैं चित्रकार नहीं हूँ; किंतु हम गन्धर्व कोमल कलाओंमें सबसे ही कुछ परिचय तो रखने ही हैं। मैं स्वयं भले चित्राङ्कन न कर सकूँ—इस कलाको समझनेकी मेरी शक्तिपर तो कभी सन्देह नहीं किया गया। समझ नहीं पाता कि इन शिशुओंके करोंमें क्या भगवती शारदा स्वयं निवास करती हैं? इतना सजीव चित्राङ्कन और इतने सहज सरल ढङ्गसे? इतनी भव्य शृङ्गार-कला? ये तो जब कोई रेखा कोई बिन्दु बना देते हैं तब मैं समझ पाता हूँ कि उसकी वहाँ कितनी आवश्यकता थी। कोई किसलय पुष्प, गुञ्जा जबतक ये लगा नहीं देते, मैं भी नहीं समझ पाता कि शृंगारमें उसे लगाकर श्रीवृद्धि सम्भव है।

सब शिशु हैं। कोई सावधानी, तन्मयता कहाँ सीखी है इन्होंने। हँसते, बोलते, एक दूसरेकी कृतिको देखते अपनी सज्जा अथवा चित्र-निर्माणमें लगे रहते हैं और जो कर देते हैं, करते जाते हैं, कलाकी अधिष्ठात्री उसमे कृतार्थ होती हैं।

इनको कहाँ अपनी कलाको नित्य रखने अथवा उससे अपना नाम अमर करनेकी इच्छा है। ये तो शृङ्गार करके खेलनेमें लग जाते हैं और

शिशुओंके शृङ्गार क्या क्रीड़ामें बने रहेंगे ? अद्भुत बात है—शृङ्गारमें-से जो चित्रांश मिट जाता है क्रीड़ामें लगनेपर, जो पिच्छ, पुष्प - गुच्छ, गुंजामाला टूट गिरती है, वह अधिक शोभा बढ़ाती है। लगता है कि वह अंश मिटकर, वह किसलय या गुच्छ गिरकर कलाको अधिक भव्य कर गया और यह क्रम चलता रहता है।

इन बालकोंकी क्रीड़ाका भी कोई क्रम सम्भव है ? कोई उड़ते पक्षियोंकी छायापर पद रखते दौड़ रहा है, कोई मयूरके साथ नृत्य करता उसे चिढ़ा रहा है, कोई मण्डूकके समान बैठा मण्डूकके साथ कूद रहा है, कोई बकके समीप उसी प्रकार बैठा है। कोई शशकको दौड़ा रहा है, कोई कपियोंके साथ छोटे वृक्षकी शाखापर चढ़ा जा रहा है। किसीने कपिके बच्चेको पकड़ लिया है। कोई काले कपिकी लांगूल पकड़कर लटक गया है। कोई कपिको चिढ़ा रहा है 'खी - खी' करके, दाँत दिखाकर। मृग, केशरी, बछड़े अथवा किसी पक्षीकी बोलीका अनुकरण कर रहे हैं अनेक और कई प्रतिध्वनिके साथ ही उलझे हैं। कठोर शब्द बोलते हैं और प्रतिध्वनि आती है तो हँसते हैं, अधिक उच्च स्वरसे बोलते हैं।

एक दूसरेके शृङ्ग, वेत्र फेंक देते हैं अथवा लेकर भागते हैं। वह दौड़ता है तो दूसरेको फेंककर दे देते हैं। एक दूसरेके पीछे स्पर्श करने दौड़ते हैं। मल्लयुद्ध करते हैं।

क्रीड़ा चलती रहती है। मध्यमें कोई सेवक या सेविका बुलाने आ जाती है। व्रजेश्वरी बार - बार सन्देश भेजती हैं कि अपने अनुजको लेकर राम अब लौट आवें; किंतु बालक क्रीड़ामें लगनेपर कहीं किसीकी सुनते-मानते हैं! कलेऊ आता है। लानेवाली सेविकाएँ मनुहार करती हैं। मनमें आ जाय तो सब बैठ जायँगे भोजन करने। एक दूसरेको खिलाने लगेंगे। मनमें आ जाय तो लाने वालियोंके ही मुखमें पदार्थ डालने लगेंगे। मनमें आ जाय तो पशु-पक्षियोंको खिलाने लगेंगे। श्रीनन्दनन्दन जो करें, जो कह दें, सबको वही प्रिय लगेगा। इनका मन ही सबका मन है।

मैं यह शृङ्गार, यह क्रीड़ा - कौतुक, यह कलेऊ, विनोद देखता हूँ—अपने शरीरको भूलकर देखता हूँ; किंतु मैं इस दिव्य क्रीड़ाके दर्शन मात्रके लिए तो यहाँ नहीं आया। मुझे समय मिलेगा ? इनके विनोदमें बाधा दिये बिना मैं सेवाका सुअवसर पा सकूँगा ?

बालकोंमें अनेकोंने पत्रोंकी सीटियाँ बनायीं। मैं सोचने लगा— 'व्यक्त हो जाऊँ ? कुछ स्वर - सौष्ठव तो मैं इन सीटियोंमें भी स्थापित ही कर सकता हूँ।'

'सुबल ! वंशी बजायेगा तू ?' मुझे लगा कि नवघनसुन्दर अधोक्षज अन्तर्यामी हैं, यह श्रुति अकारण नहीं कहती। इन हृषीकेशने मेरी भावनाको समझकर ही कटिकी कछनीमें लगी वंशी निकाली है।

'बजाऊँगा ! तू सिखा।' स्वर्णगौर, नीलवसन, कमलनयन सुबल समीप आ गया है।

यह वंशी ? मेरा ध्यान ही अभी तक मुरलीपर नहीं गया था। यह वेणुकी कौन-सी जाति है ? वंशीके जा भेद होते हैं, लम्बाई, मोटाई, छिद्रोंकी संख्या आदिके कारण, वे सब मुझ सङ्गीत - शिक्षा - गुरुके द्वारा ही प्रायः आविष्कृत हैं; किंतु यह कैसी वंशी है ? एक ही दृष्टिमें मैं समझ लेता हूँ कि मेरा आविष्कारक होनेका अहङ्कार कितना ओछा है। इसमें तो सब विशेषताएँ हैं। मेरे द्वारा आविष्कृत वेणुके सब भेदोंकी सब विशेषताएँ। इससे सबके स्वर, सबका सङ्गीत सरलतापूर्वक निकल सकता है। मेरी पद्धतिपर वंशी - वादन करने वालेको अनेक आकार - प्रकारकी अनेक वंशी रखनी होंगी; किंतु इस एकने सबको व्यर्थ बना दिया है। सम्भावना है कि इससे और भी अधिक उत्तम स्वरभेद, राग-भेद अधिक स्पष्ट व्यक्त हों।

नीलकमलके अङ्कमें जैसे स्वर्ण सरोज आ गया हो। अद्भुत छवि - छटा ! सुबल खड़ा हो गया है और उसके करोंमें वंशी देकर उसके पीछे खड़े होकर दोनों भुजाओंमें उसे घेरे श्यामसुन्दर वंशी - वादन सिखाने लगे हैं। सुबलके अत्यन्त सुन्दर मुखके वाम पार्श्वसे सटा इनका इन्दीवर-सुन्दर श्रीमुख—मुझ गन्धर्वराजको भी इसकी उपमा सूझती नहीं है।

'यहाँ अँगुलियाँ रख ! इस छिद्रमें फूंक।' ये सखाको शिक्षा दे रहे हैं। मैं सिर झुका लेता हूँ। इतनी सरलतासे, इतने सुबोध ढङ्गसे, इतनी सम्पूर्ण वंशी करमें लेनेकी शिक्षा देनेकी योग्यता मुझमें कदापि नहीं है। शिक्षा देनेकी कला मैं इनसे सीख सकता हूँ।

'सुबल श्रृङ्ग बजावेगा। वंशी तू बजा !' भद्रका बाधा देना मुझे अच्छा नहीं लगा। मेरा पाठ अपूर्ण रह गया; किंतु भगवती शारदाका

स्वभाव ही है कि उनको चौर्य नहीं रुचता। मैं अव्यक्त रहकर, बिना विनम्र बने ही सीख लूँ—यह वे वरदा नहीं स्वीकार करेंगी।

'तू बजा वंशी ! आ, तुझे सिखलाता हूँ।' आज इनको अपनी प्रशिक्षण - कला प्रदर्शित ही करना है क्या ?

'मुझे यह लड़कियों - जैसा पीं - पीं पसन्द नहीं।' भद्रने शृङ्ग लगाया अधरसे और वन गूँजने लगा। 'सायङ्काल देखना, मैं बाबाका बड़ा शङ्ख बजाऊँगा।'

'शङ्ख सायङ्काल बजाना। अभी वंशी बजा!' श्रीनन्दनन्दनने सखाके करोंमें अपनी वंशी दे दी है शृङ्ग छीनकर। भद्र तो सब छिद्रोंको अँगुलियोंसे रुद्ध करके फूँकने लगा है। ऐसे कहीं स्वर निकलता है। सब अँगुलियाँ झल्लाकर हटा लीं और फूँक मारकर सीटी बजा दी इसने वंशी-से। मैं व्यक्त हो जाऊँ ? इस बालकको बतला दूँ ? लेकिन तब वञ्चित हो जाऊँगा, अभी ये सखाको शिक्षित करेंगे तो मैं इनकी प्रशिक्षण-पद्धति सीख सकता हूँ। ये तो पेट पकड़कर हँस रहे हैं।

'तू बजा अब ?' भद्रने हाथ पकड़ा और वंशी करोंमें दे दी— 'यहाँ इस तमाल - मूलमें खड़ा हो और बजा !'

यह भी अच्छा है। पहिले इनका वेणु - वादन सुन लेना चाहिये मुझे। बिना सुने शिक्षा देनेकी सेवा मैं कैसे कर सकता हूँ।

इन्होंने वंशी ली और सब बालक दौड़कर समीप आ गये। कुछ खड़े हैं, कुछ भूमिपर बैठ गये, कुछ अधलेटे हो रहे हैं हरित भूमिपर। सघन नील तमाल मूलसे सटे खड़े हो गये श्रीनन्दनन्दन ललित त्रिभङ्गिसे। घुँघराली काली अलकोंमें पाँच मयूरपिच्छ लगे हैं। अनेक रङ्गोंके पुष्प, किसलय सखाओंने सजाये हैं। माताके करोंसे सजायी मुक्तामाल है। वाम स्कन्धकी ओर झुका यह मस्तक।

विशाल भालपर गोरोचनकी खौरके मध्य कुंकुम - तिलक, पतली धनुषाकार काली भौहोंके नीचे विशाल अर्धमुकुल कमल - लोचन अञ्जन-रञ्जित, कपोलोंपर अरुण - पीत बिन्दुओंसे बना मण्डल, कर्णोंपर लगे पीत कर्णिकार पुष्प, वाम स्कन्धपर टिका कपोल और कर्णकुण्डल, रक्तिम रेखा जैसे पतले अधर, नन्हा - सा मुख और उससे सटी स्वर्ण मुरलिका रत्नजटित। मुरलिकाके छिद्रोंपर पतली कुसुम-कलिका - सी लाल - लाल अँगुलियाँ और उनके नखोंकी अमृत - धवल ज्योत्स्ना।

भुजाओंमें रत्नाङ्गद, कलाइयोंमें कङ्कण अब सुमन - मालाओंका सामीप्य पाकर अधिक सुशोभित हो गये हैं। भुजाएँ ही नहीं, सम्पूर्ण श्रीअङ्ग—वक्ष, उदर, पृष्ठ देश सब गैरिक, पीत, श्वेत वन धातुओंसे सखाओंने चित्रित कर दिया है।

कण्ठमें कौस्तुभमणि मुक्तामाल, वनमालाके मध्य उद्भासित है। स्कन्धपर पीतपट है। वक्षपर लहराती जानुपर्यन्त लटकती वनमालामें-से झाँकता स्वर्णिम श्रीवत्स चिह्न, उदरकी रोमावली, त्रिवली, गम्भीर नाभि, कटिकी पीतकौशेय कछनीपर रत्नमेखलासे भूषित नितम्ब भाग। अङ्गकान्तिसे पीत कछनी हरितवर्णाप्राय हो रही है।

घुटनोंसे नीचे तक वनमाला। दोनों ओर लटकता पीताम्बरका किञ्चित उड़ता छोर। पदोंमें रत्ननूपुर और ललित त्रिभङ्गिसे स्थित चरणोंकी यह भङ्गी। यह सुकोमल, लाल दक्षिण चरण तल। ये लाल-लाल उभरे, चिक्कन ज्योतिर्मय पद - नख—मैं कितने ही क्षण इस छविको देखकर पद-नखोंकी छवि - छटा देखनेमें तल्लीन रहा। मुझे तो वंशीके स्वरने जगाया!

वंशीका यह स्वर—सङ्गीतमें सुधाका अजस्र - स्राव मैंने सुना नहीं। केवल यह जानता हूँ—कर सकता हूँ कि सङ्गीतसे शिलाएँ मृदुल हो जायँ—अपना काठिन्य त्याग दें; किंतु यह स्वर तो सृष्टिके अणु - अणुको सुधा - सिञ्चित कर रहा है। कण - कणमें सुधाका सञ्चार—सत्य कहूँ तो यह भी नहीं। ठीक शब्द नहीं मिल पा रहे हैं—कण - कणको सुधाका उद्गम बना रहा है।

गोप - बालक तो इन त्रिभुवन सुन्दरके सखा हैं। इनकी स्थितिका वर्णन व्यर्थ है। बछड़े, मृग, केशरी मूर्त्तिके समान जड़ - स्थिर हैं। स्थिर हैं वृक्ष शाखाओंपर पक्षी। गन्धवह मरुतके भी पद - सञ्चारका पता नहीं। प्रत्येक पत्र स्थिर है।

कपि कूदने जा रहा था दूसरी शाखापर। वह हाथ उठाये उसी मुद्रामें मानो मूर्त्ति बन गया। पक्षीने पङ्ख फैलाये थे, वह पक्ष समेट नहीं सका है। मृगी मुखमें तृण लिये स्तब्ध खड़ी है। उसके शिशुने माताके स्तनमें मुख लगाया था, शिशुके मुखके पार्श्वोंसे मुखका दूध बह रहा है। नीलकण्ठने चारा पकड़ा था चञ्चुमें। चारा छूट गिरा और वह कृमि वहीं स्थिर है जीवित होनेपर भी। नीलकण्ठ पृथ्वीपर ही पक्ष फैलाये, मुख खोले रह गया है।

गतिका नाम नहीं है किसी पिपीलिका तकमें। सबके एक-एक रोम उत्थित हैं और उनसे स्वेद, नेत्रोंसे अश्रु झर रहे हैं। रोमाञ्च तो वृक्षोंमें लक्षित हो रहा है। पृथ्वीका एक - एक तृण ऊर्ध्वमुख खड़ा है। तरुओंकी शाखाओंसे, तनेसे, पत्र - मूलसे रसस्राव हो रहा है। शिलाएँ— कङ्कड़ तक केवल मृदु नहीं हुए हैं—उनसे अजस्र रसधारा बहने लगी है।

गति नहीं है किसी चरमें - चेतनमें। सब जड़के समान स्थिर हैं; किंतु गति है, सर्वत्र गति है—समस्त अचर - जड़ गतिशील हो गये हैं। सबके शरीरसे स्वेद चल रहा है। सब वृक्ष - लताओंसे मधुधारा झर रही है। सब शिला - पाषाण निर्झरोंको प्रकट कर रहे हैं। कालिन्दीकी धारा उलटी अपने उद्‌गमकी ओर बहने लगी है। उत्ताल तरंगें उठ रही हैं यमुनामें और राशि - राशि पद्म - पुष्प पता नहीं कहाँसे लाकर सूर्यसुता उत्सर्ग कर रही हैं अपने इन आराध्यके श्रीचरणोंमें।

प्रकृति नीरव है। भृङ्ग, मक्षिका तकका कोई स्वर कहीं नहीं। केवल वंशीका नाद—वंशीकी ध्वनि गूँज रही है। सम्पूर्ण अन्तरालको गुञ्जित करती, अद्‌भुत आह्लादमें स्नात करती वंशी-ध्वनि गूँज रही है।

सब शान्त, सब समाधिस्थ, सब आनन्द - निमग्न; किंतु यह अभागा तुम्बरू क्यों वञ्चित है? यह स्वर्गका सङ्गीत - शिक्षा - गुरु क्यों इस अद्‌भुत सुधाके स्पर्शसे अछूता है? यही सर्वाधिक अरसिक, पाषाण - हृदय है? पाषाण भी पिघलकर द्रव हो गये और तुम्बरू चकित - थकित केवल चारों ओर देख रहा है?

देवर्षि! दयामय देवर्षि! आप कहाँ हो? आपने तो सृष्टिमें सर्वत्र भक्ति भगवतीके प्रचारकी प्रतिज्ञा की है और आप जिसे सखा कहते हो, उसीका हृदय इतना शुष्क?

मैं अमर न होता तो कहीं मस्तक पटककर मर जाता; किंतु कहाँ? कोई शिला तो इस समय ऐसी कठिन कहीं नहीं जिसपर सिर पटक सकूँ। इस समय तो केवल मेरा सिर, मेरा हृदय वज्र बना है।

मैं अधिक सहनेमें असमर्थ हो गया। देवर्षि अपने पिताके पास होंगे, इस आशामें ब्रह्मलोककी ओर दौड़ा। मैंने देख लिया कि स्वर्गके किसीको शरीरकी सुधि नहीं है। सुरोंने नन्दनकाननके कल्पतरु-सुमनोंकी अञ्जलि सजायी थी सम्भवतः व्रजराजकुमारके चरणोंपर चढ़ानेके लिए; किंतु वे

ज्यों - के - त्यों रह गये हैं। नृत्योद्यता अप्सराएँ, वाद्य उठाये किन्नर, गानको मुख खोले गन्धर्व, सब मूर्त्तिके समान बन गये हैं।

मुझे लगा—देवर्षि कहीं कैलाश चले गये हों तो? मैं उधर मुड़ गया; किंतु वहाँ मेरे सङ्गीत-गुरु भगवान गङ्गाधर स्वयं भाव - समाधिमें निमग्न थे। मैं भगवती शैल - सुताकी चर्चा क्यों करूँ। भूत, भैरव, विनायक, प्रेत - पिशाच, योगिनियाँ, भृङ्गी, नन्दी कोई तो मुझे सावधान मिलता। कोई तो ऐसा होता कि मैं उससे कुछ पूछता। सब स्थिर - निस्पन्द, सबके नेत्रोंमें अश्रुधारा, सबके शरीर पुलकपूरित।

मैं ब्रह्मलोक गया। कितनी ग्लानि लिये गया—कैसे बतला दूँ। मैं प्रेत - पिशाचोंकी अपेक्षा भी अकरुण, अत्यन्त नीरस सिद्ध हो चुका। अब तो केवल सृष्टिकर्त्ता ही शरण हैं। ये निर्माता क्या एकबार और किसी भी साधनसे प्रसन्न होकर मेरे हृदयका पुनर्निर्माण स्वीकार करेंगे?

सृष्टिकर्त्ता थे अपने सरोजासनपर। देवर्षि भी थे और सब सिद्ध, महर्षिगण भी थे। सनकादिकुमार, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरादि प्रजापति—किसी कारण जनलोक, तपोलोक, महर्लोकके सब महापुरुष और संयमिनीके स्वामी यमराज भी उपस्थित मिले; किंतु उसी अवस्थामें जो मैं स्वर्गमें, धरापर, कैलाशमें देख आया था।

'तुम्बरू, तुम? अच्छे आये इस समय!' ब्रह्मलोकमें मैं आधे पल ही रुका कि सृष्टिकर्त्ता सावधान हुए। धरापर तो यह समय बहुत होता। वंशीका स्वर विरमित हो चुका था। उज्वल श्मश्रु ब्रह्माजीने अपने आठों नेत्र पोंछे और मुझसे पूछने लगे—'तुम तो सङ्गीतके परमाचार्य हो। यह जो अभी स्वर गूंज रहा था, यह कौन - सा राग था? मेरी सृष्टिमें इतना अधिक परिवर्त्तन पलभरमें करनेवाला यह कौन - सा तत्त्व है, मैं अपनी बुद्धिसे सोच नहीं पाता हूँ। वृद्ध हो गया, लगता है स्मृति साथ नहीं दे रही है।'

मैं देवर्षिके पदोंपर गिर पड़ा। उन दयामयने उठाकर हृदयसे लगा लिया। उनके संकेतपर सनत्कुमारजीने समझाया—'सङ्गीताचार्य! आप व्रजमें शिक्षक बननेका अभिमान लेकर गये थे। आप जानते ही हैं कि अहङ्कारकी शिलासे कठिन सृष्टिमें कुछ नहीं है। श्रीकृष्णकी वंशी - ध्वनि कर्ण - कुहरोंसे अंतरमें उतरे, इसके लिए अहङ्कारका कम-से-कम सुषुप्त हो जाना तो आवश्यक ही है।'



वत्सोद्धार

भगवत्सान्निध्य किसीको किसी भी रूपमें अकस्मात् प्राप्त नहीं होता। किसीका कोई पुण्य भगवत्प्राप्ति करानेमें समर्थ नहीं है। जन्म-जन्मके पुण्योंका उदय केवल यही कर सकता है कि परमात्माकी प्राप्तिकी कामनाका उदय हो अन्तरमें। यही कामना प्रबल होकर साधना, पिपासा बनते हुए जब अभीप्सा बनकर प्रीतिमें परिवर्तित हो जाती है, तब जीवका जीवन धन्य होता है; क्योंकि तब जगदीश्वर उसे अपनाये बिना रह नहीं सकता। जिस हृदयमें भक्ति भगवतीका आलोक आ गया, उसमें आये बिना भगवान रह कैसे सकता है? प्रम-स्वरूप जो है, वह प्रेमसे पृथक् कैसे रहेगा?

एक—केवल एक उपाय और है, और वह है किसी श्रीहरिके निज जनका सान्निध्य प्राप्त हो जाय। यह भगवद्भक्त, सन्तका सान्निध्य-सामीप्य किसे प्राप्त हुआ, कैसे प्राप्त हुआ, यह प्रश्न नहीं है। अग्निमें कोई काष्ठ पड़े, सम्मानपूर्वक आहुति बनकर—समिधाके रूपमें पड़े अथवा तिरस्कारपूर्वक अग्निको ताड़ित करनेके लिए निक्षिप्त किया जाय, काष्ठको अग्नि आत्मस्वरूप देगा ही। श्रीहरिके जो अपने हो गये हैं, वे तो उनसे अभिन्न हैं। उनके मिलनका अर्थ ही है कि स्वयं श्रीहरि प्राप्त हो गये। अब वे मिलेंगे ही।

असुरोंको यही साधन सरल लगता है। जीव अपने स्वभावसे विवश है। राजस-तामस स्वभाव पाकर साधना सम्भव नहीं हो पाती। असुरोंका अपराध नहीं है, वे अपनी प्रकृतिके परवश श्रुति, सुर, साधुके विरोधी बन जाते हैं। यह द्वेष जहाँ उन्हें दुष्टताकी ओर, पर-पीड़नकी ओर प्रवृत्त करता है, प्राय: उनके उद्धारका उपाय भी बन जाता है। इसी प्रवृत्तिके कारण वे महात्माओंका अपराध करके शाप-भाजन बनते हैं और सत्पुरुष शाप देकर प्रसन्न तो नहीं हो सकते। आवेशमें किसीके कष्टका कारण स्वयं बन जानेपर उसके समुद्धारकी चिन्ता स्वत: उत्पन्न हो जाती है और किसी हरि-भक्तकी चिन्ता तो श्रीहरिकी अपनी चिन्ता है।

मुझमें ही क्या था ? मैंने क्रोधवश शाप दिया था निमिको। उन्होंने मेरी प्रतीक्षा न करके अन्य पुरोहित वरण कर लिया अपने यज्ञमें। लोभने मेरा विवेक नष्ट कर दिया था। मैंने निमिको मरणका शाप दिया तो निमिने वही शाप मुझे देकर कुछ अनुचित नहीं किया। मैं शापका पात्र था। आयुका जब ठिकाना नहीं, पुण्य - सङ्कल्पको कलपर नहीं टालना चाहिये, यह निमिका तर्क निर्दोष था। अन्य पुरोहितके वरणमें उनका विवेक था, मेरे अपमानकी आकांक्षा नहीं थी।

निमि भगवद्भक्त थे, ज्ञानी थे। यह तो मुझे तब ज्ञात हुआ जब मैंने जाना कि उनके वंशको अपने आविर्भावसे भगवती आद्या शक्तिने धन्य किया। निमिके शापसे मैं पवित्र हो गया। कहाँ तो मैं अप्सराको देखकर काम - मोहित मित्र और वरुणका पुत्र था और कहाँ उस शापने मुझे सृष्टिकर्त्ताका साक्षात् मानस पुत्रत्व प्रदान कर दिया। मुझे आग्रह करके उन चतुर्मुखने अयोध्याके राजकुलका पुरोहित बनाया। मर्यादा पुरुषोत्तमने अवतार धारण किया तो उनके गुरु होनेका गौरव मिला वशिष्ठको और उसके अनन्तर यह सप्तर्षि मण्डलमें स्थानका सम्मान— यह मेरे कर्मोंका, मेरी साधनाका तो सुफल नहीं है। यह है निमि जैसे तत्त्वज्ञ महापुरुषके शापका प्रसाद, जिसने पुनः शरीरको स्वीकार ही नहीं किया।

सप्तर्षि बन जानेका दायित्व भी बड़ा होता है। असुर मुरका पुत्र प्रमील घूमते हुए एक दिन मेरे आश्रमपर आ गया। उसे मेरी होमधेनु नन्दिनीको देखकर लोभ लगा। इस कामधेनुके लोभके कारण ही विश्वा-मित्रसे मेरा विरोध हुआ था। असुरके मनमें यह लोभ जागा तो आश्चर्य क्या। जानता था कि अस्त्रबल और तपःशक्तिसे सृष्टि करनेकी शक्ति पाकर भी गाधि - नन्दन इस धेनुका अपहरण करनेमें समर्थ नहीं हुए थे। अतः असुरको मेरे साथ बल - प्रयोगका साहस नहीं हुआ। उसने छल करनेका निश्चय किया। मायावी दैत्य ब्राह्मण बनकर आया मेरे समीप और उसने याचना की—'ब्रह्मर्षि ! मैं अकिञ्चन दरिद्र ब्राह्मण आपकी होमधेनुकी याचना करता हूँ। इससे मैं अपने परिवारका पालन करते हुए सुखपूर्वक साधन - रत रह सकूँगा। आप पूर्णकाम, धर्मज्ञ ब्रह्मपुत्र अतिथि-को निराश नहीं करेंगे, इसी आशासे दूरसे चलकर आया हूँ।'

मुझे ध्यान करके तथ्य जाननेकी आवश्यकता नहीं थी। वत्स रामभद्रने त्रेतामें प्रथम बार जब मुझे प्रणाम किया था, बिना बोले यह दक्षिणा उसी समय दे दी थी कि कोई भी माया मेरी दृष्टिका आवरण बननेमें असमर्थ हो गयी। मुझे तो असुरका ब्राह्मण - रूप पारदर्शी अत्यन्त अपदार्थ दीख रहा था। उसके आवरणमें अवस्थित असुरको मैं स्पष्ट देख सकता था। लेकिन वह ब्राह्मण बनकर मेरे यहाँ आया था, अतः मैं सोचने लगा कि क्या कर्त्तव्य है ऐसी अवस्थामें।

मेरी नन्दिनीने दो क्षणका भी मुझे अवकाश नहीं दिया। उसने शाप दे दिया—'तू दैत्य होकर ऋषिकी गौका छलसे अपहरण करने आया है, अतः गोवत्स बन!'

उसका ब्राह्मण शरीर अदृश्य हो गया। असुर शरीर भी अदृश्य हो गया। हृष्ट - पुष्ट काला बछड़ा बन गया वह और मेरे पदोंपर उसने मस्तक रख दिया। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा चल रही थी। अनुताप पर्याप्त प्रायश्चित्त होता है। नन्दिनीने शापकी कोई अवधि निश्चित नहीं की थी; किंतु मेरी प्रसन्नता गोवत्सका रूप मिटाकर किसी जीवको पुनः दैत्य - देह दे दे, यह तो किसी प्रकार भी उचित नहीं था।

नन्दिनी क्षीरोदधि - मन्थनसे आविर्भूत कामधेनुकी आत्मजा है और वे कामधेनु गोलोककी पूज्या सुरभिकी अंशोद्भवा हैं। अतः नन्दिनीके शापसे समुद्धार श्रीगोलोकबिहारी गोपाल करें, दैत्यको उनके श्रीचरण प्राप्त हों, यही समुचित सङ्गति थी।

सृष्टिमें निर्दोष कुछ नहीं होता। नन्दिनीके शापमें भी एक बड़ा अनर्थ अन्तर्हित था। गोवत्स ही बढ़कर वृषभ होता है। वृषभ साक्षाद्धर्म हैं। वत्स है विश्वास। विश्वासको ही धर्म बनना है बढ़कर। इस विश्वासमें आसुरभाव—दैत्यको प्रवेश दे दिया नन्दिनीने। आसुरभावयुक्त विश्वास विनाश ही तो करेगा विश्वमें। इस विश्वासका—आसुर - विश्वासका विनाश श्रीकृष्ण स्वयं करें तो हो। आकर्षणकी सत्ता तो वही हैं। वही असुरतामें विश्वासको अपनी ओर आकृष्ट करनेमें समर्थ हैं। नन्दिनीके शापसे बने बछड़ेका उद्धार उन गोपालको ही करना चाहिये। यह सब सोचकर मैंने कह दिया—'वत्स! प्रतीक्षा करो कुछ दिन। द्वापरान्तमें गोलोकेश्वर गोपाल व्रजमें आकर तुम्हारा उद्धार कर देंगे।'

× × ×

मेरे आशीर्वादका सम्मान तो मेरे मर्यादा पुरुषोत्तमको ही रखना है। जानता हूँ, वही व्रजमें नन्दनन्दन बनकर आया है। उससे मुझे अनुरोध भी कहाँ करना है। वह मेरा आदेश माँगेगा ; किंतु वहाँ जानेमें एक बड़ी बाधा है। मुझे देखते ही वह वही साकेतका सङ्कोचीनाथ बन जायगा। उसके उन्मुक्त विहारमें अवरोध बनने मेरा जाना उचित नहीं है। मेरे भाई देवर्षि नारदको व्यसन है घूमते रहनेका। आजकल व्रज उनके आकर्षणका केन्द्र बन गया है। अतः मुझे वहाँका सम्वाद प्रतिदिन उनके द्वारा प्राप्त हो जाता है।

'महर्षि ! व्रजराजकुमारका दर्शन करते आप ! वह अयोध्यामें हो या वृन्दावनमें, दूसरा नहीं हुआ करता।' आज देवर्षिने सुनाया—'वनमें देखने योग्य शोभा थी गोपोंके बालकोंकी। आप अब भी गद्‌गद हो जाते हैं यह कहते कि खेलमें भी श्रीराम सखाओंको विजयी बनाते थे और स्वयं हार जाते थे। आज मैं यह प्रत्यक्ष देख आया हूँ।

मल्लयुद्धमें श्याम सबसे सुकुमार है। आपके इस सर्वेशको सब गोपकुमार पटकनी दे देते हैं। बड़े उत्साहसे उठकर फिर ताल देता है—'आ अबकी तुझे अवश्य पटक दूँगा !'

सखा इसके अङ्गको पकड़ते भी सम्हालकर हैं; किंतु इसे तो किसीसे भी विजयी बनना नहीं आता। अवश्य इस बार नटखटपन आ गया है। गिरकर भी पराजय नहीं स्वीकार करता। सखाने कोई अनियमितता की है, यही कहता कूदता रहता है।

आँख - मिचौनी तक तो खेलनी नहीं आती। इसके बड़े - बड़े लोचन किसी बालककी हथेलीसे ढक नहीं पाते ; किंतु इसीका कोई लाभ नहीं तो बेचारी सर्वज्ञता क्या करे। दाऊको, तोकको, अंशुको, तेजस्वीको, देवप्रस्थको इसे छूना नहीं है। ये समीप खड़े हों तो भी नहीं। ढूँढ़ना है श्रीदामको, भद्रको, बहुत हुआ तो सुबल अथवा वरूथपको। अर्जुन, ऋषभ, विशाल सहायता करके स्वयं स्पर्शमें न आवें तो सदा यही दाँव दे।

यह छिपे भी कहाँ ? क्या करे अपनी अङ्गकान्तिका ? जहाँ छिपेगा, मयूरोंका समूह वहीं केकाध्वनि पुकारेगा। भ्रमर, कपि, शशक, पक्षी सब उधर ही भागेंगे। यह भी क्या छिप सकता है ?

आज लाठी चलाना सीखना था। भद्रने कहा—'मुझे मार !' तो आपने लाठी ही फेंक दी और फूट-फूटकर रोने लगे भद्रके कण्ठसे लगकर। सखा अपने ऊपर लाठी चलानेको कहे, इतना भी सुनना सह्य नहीं है।

'तू रोता क्यों है ?' भद्र भौचक्का पूछने लगा पुचकार कर।

'तू मेरे किस अपराधसे कहता है कि मैं तुझे लाठी मारूँ ?' यह कहते रुदन क्रन्दन बन गया।

'लाठी सीखेगा कैसे ?' भद्र हँसने लगा—'मुझे लाठी लगेगी नहीं। तुझे तो मेरी लाठीपर लाठी मारनी थी।'

'मैं नहीं सीखता !' कन्हाई रूठ गया—'तू अच्छा नहीं है।'

देवर्षि अनन्त कालतक तन्मय यह वर्णन करते रहते यदि मैं बाधा नहीं देता। मैंने रोककर पूछा—'वह नन्दिनीके शापसे बछड़ा बना मुरका पुत्र प्रमील, वृन्दावन नही पहुँचा ? आपने बतलाया था कि कंस उसे पकड़कर मथुरा ले गया था। वह शापित बछड़ा तो कभी वृषभ बनेगा नहीं।'

'आप अभी उसीकी चिन्ता कर रहे हैं ? नन्दनन्दनने उसे सदाके लिए बछड़ा बना दिया। वह गोलोकमें उनकी कृष्णाका बछड़ा बनकर पहुँच गया।' नारदजीने नेत्र खोलकर मेरी ओर देखा—'आपने जिसपर अनुग्रह किया, आपका वह त्रेताका शिष्य इतना असावधान तो नहीं है कि उसे भूल जाय। आप देखेंगे कि पुत्रके नाते उसके पिता मुरका भी उद्धार करने वह एक दिन भौमासुरके नगर पहुँच जायगा। अब मुरारि बने बिना वह मानेगा नहीं।'

जानता हूँ—मेरा राघवेन्द्र किसीको अपनाता है तो उसके पूरे परिकरको पवित्र कर देता है। वह अब कृष्ण बना है तो भी कृपा-कृपण तो होनेसे रहा। मैंने देवर्षिकी ओर इस अभिप्रायसे देखा कि वे इस बछड़े-की उद्धार-कथा तो सुना ही दें।

'कुछ बड़ा वर्णन नहीं है।' देवर्षिने हँसकर कहा—'कंसने ही भेजा था उसे वृन्दावन। सहस्रों बछड़ोंमें जाकर मिलनेमें उसे कोई कठिनाई नहीं हुई; किंतु उसे ध्यान भी नहीं होगा कि दूसरे बछड़ोंकी अपेक्षा उसमें कुछ अन्तर है। उसके मस्तकपर पूजाका कुंकुम-तिलक नहीं था, यह उसके

काले वर्णमें लक्षित नहीं किया जा सकता था ; किंतु उसके कण्ठमें पूजाकी पुष्पमाला भी नहीं थी। केवल मौक्तिकमाल स्वर्ण - घण्टिकाओंसे युक्त मायासे बना ली थी उसने अन्य बछड़ोंको देखकर।

'दादा, कितना सुन्दर बछड़ा है यह !' श्यामने देखते ही पहिचान लिया—'इसने इतनी शीघ्र कण्ठकी पुष्पमाला कहीं उलझाकर तोड़ दी ?'

'तू इसे पहिचानता है ?' श्रीसंकर्षणने साभिप्राय देखा अनुजकी ओर।

'इसके उद्धारका जिन्होंने दायित्व दिया है, उनके पावन पदोंको पहिचानना अधिक आवश्यक है !' कन्हाईने अग्रजके कर्णसे मुख सटाकर कहा और मुस्कराया।

नन्दनन्दन दबे पैर धीरे - धीरे चला उस बछड़ेकी ओर। ऐसे चला जैसे बहुत सुन्दर, बहुत अच्छा लगा यह बछड़ा उसे और पुचकारने ही जा रहा हो।

'यह नया बछड़ा कहाँसे हमारे बछड़ोंमें आ मिला ?' सभी गोप-बालक चकित देखने लगे उसी ओर। यह न नन्दव्रजका था, न वृहत्सानु-पुरका। इतने लाल - लाल नेत्रोंका बछड़ा कभी देखा नहीं था बालकोंने। कितने ही ऐसे ही काले, हृष्ट - पुष्ट बछड़े थे उनके यूथमें ; किंतु ऐसा तो कोई नहीं था कि कन्हाईको अपनी ओर आते देखकर भी उदासीन बना रहे। घास चरनेमें लगा रहे। कूदकर श्यामको सूँघने समीप न पहुँच जाय।

कृष्णचन्द्र समीप पहुँचे। बछड़ा तनिक गर्दन टेढ़ी करके यही देख रहा था। उसने अपना पिछला एक पैर चलाकर प्रहार किया ; किंतु पूँछ-के साथ वह पैर गोपालने पकड़ लिया। दूसरा पैर चलाया उसने तो दूसरे हाथसे पकड़ लिया और फिर उसे मस्तकके चारों ओर घुमाते स्वयं घूमने लगे।

'कनूँ, यह दैत्य है !' बालक चीत्कार कर उठे। नन्दिनीका शाप श्रीकृष्णके स्पर्शके साथ समाप्त हो गया। अब वहाँ बछड़ा नहीं था। काला, भयङ्कर, रक्तनेत्र, रक्तकेश, भयङ्कर दाढ़ोंवाला दैत्य था, जिसके पैर पकड़कर कन्हाई स्वयं तीव्रगतिसे घूम रहा था। दैत्यके लिए अपने हाथ भी समेटना सम्भव नहीं हो रहा था।

गोपबालक भौचक्के रह गये थे। उनका सुकुमार कन्हाई इतने बड़े दैत्यको कबतक घुमावेगा ? लेकिन दो क्षण लगे और श्यामने फेंक दिया पूरे बलसे दैत्यदेह एक भारी कपित्थ-वृक्षके ऊपर। कपित्थका वृक्ष टूटकर गिर पड़ा। दैत्यका शरीर फटकर चिथड़े हो गया और आपका कृपापात्र तो पुनः बछड़ा बनकर गोलोकमें सुरभिके समीप पहुँच गया था।

गोपकुमार दौड़कर अपने सखाको अङ्कमाल दे रहे थे। श्रीसंकर्षण भाईका कर अपने करोंमें लेकर सहलाने लगे थे। मैं सुरोंको सुमन - वर्षा तथा स्तुति करते छोड़कर आपको समाचार देने यहाँ चला आया।'

देवर्षिका वर्णन सुनकर मैं क्या कहता। मेरे वचनोंका सम्मान मेरे रामभद्रने इस अवतारमें भी इतना रखा—मङ्गल हो नन्दनन्दनका !



बकोद्धार

सृष्टि त्रिगुणात्मिका है। इसमें केवल एक गुणकी प्रधानता कहीं भी रह नहीं सकती। सर्वत्र, सबमें तीनों ही गुण कभी - न - कभी प्रबल हो जाते हैं। रजस - तमस गुणोंकी जिनमें प्रधानता है, वे प्राणी अपने स्वभावके अनुसार ही आहार - व्यवहार करेंगे, यह जानते हुए भी मैं अपने क्रोधको नियन्त्रित नहीं रख सका, यह मेरी ही दुर्बलता थी।

अधिकांश समुद्रीय मत्स्य सरिताओंके जलमें उस स्थानपर अण्डे देने आते हैं, जहाँ सरिताके समुद्रमें मिलनेके कारण दलदल बनता है। मत्स्यजीवी वर्ग इसे जानता है। अतः अपने आखेटके उपयुक्त स्थान वह इसीको मानता है। उसे मछलियोंके प्रजनन समयका पता होता है। इसी प्रलोभनके कारण दैत्यराज हयग्रीवका पुत्र उत्कल गङ्गा-सागरके समीप पहुँचा था।

मैं उन दिनों महर्षि कपिलके सान्निध्य, संरक्षणको स्वीकार करके गङ्गा - सागर द्वीपमें ही आश्रम बनाकर रहता था। तपस्या मेरा स्वभाव है—व्यसन है। उन दिनों सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान कर्दमात्मजसे सांख्यका श्रवण - चिन्तन भी चल रहा था। उन आदि पुरुषने कृपा करके मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लिया, जब मैं उनके श्रीचरणोंमें समित्पाणि उपस्थित हुआ।

सचराचर समुद्धारिणी, श्रीहरि - चरण समुद्भवा, शिव - शिर - विहारिणी, भवतारिणी भगवती सुरसरिके समुद्र - सङ्गमका वह परम - पावन तीर्थ, मेरे साक्षाद्गुरु सुरासुर समाराधित भगवान कपिलका आश्रम, मेरी अपनी तपस्थली और वहीं मेरे सम्मुख ही दैत्य हयग्रीवके उस मदान्ध - पुत्र उत्कलने मत्स्य पकड़नेके लिए बंसी डाल दी जलमें।

मैंने मना किया। वह अन्यत्र कहीं जाकर अपनी जिह्वा - लोलुपता-का साधन जुटा सकता था, इस अत्यन्त पवित्र क्षेत्रमें ही प्राणि - हिंसाकी कोई अनिवार्यता उसे नहीं थी; किंतु मेरी बात उसने सुनी ही नहीं। क्यों सुनता? उसने अपने पराक्रमसे समरमें सुरोंके साथ शक्रको भी

पराजित कर दिया था। जिससे अमरावतीके अधिपति भी आशङ्कित रहते थे, वह एक शीर्णकाय ब्राह्मणकी बातपर क्यों ध्यान दे? वह अपनी बंसीकी ओर ही नेत्र लगाये स्थिर बैठा रहा।

उचित यह था कि मैं वह आश्रम त्यागकर अन्यत्र चला जाता। भगवान कपिलके समीप जाकर बैठ जाता तो भी चित्त शान्त हो जाता; किंतु असुरके इस सामीप्यने मेरे अन्तःकरणमें भी उत्तेजना उत्पन्न कर दी। मेरे भीतर रजोगुण प्रबल हो गया। रोष आ गया मुझे। मैंने गङ्गा-जल लेकर शाप दे दिया—'तू अपनी शक्तिके अहङ्कारमें अन्धा होकर इस क्षेत्रकी पावनताको नहीं देखता, तीर्थका असम्मान कर रहा है, यहाँके अधिष्ठाता भगवान कपिलका अनादर कर रहा है, मुझ ब्राह्मणकी बात बधिरके समान अनसुनी करके बकके तुल्य मत्स्य पकड़नेके लिए बैठा है, अतः बक हो जा!'

उसी क्षण वह दैत्य विशाल हिमाच्छादित गिरि-शिखरके समान बगुला हो गया। इस आकस्मिक परिवर्त्तनसे व्याकुल होकर उसने तो मेरे पदोंपर मस्तक रखा ही, मैं भी पश्चात्ताप-विजड़ित हो गया। यह मैंने क्या किया? अपने तपका विनाश कर लिया मैंने शाप देकर और मछलियोंको भी मैंने मृत्युके मुखमें झोंक दिया। यह दैत्य था तो मछलियाँ केवल इसके स्वाद-परिवर्त्तनका साधन थीं और अब यह बक होकर तो केवल मत्स्याहारपर रहेगा! मैंने मूल जलजीवियोंका यह संहार-साधन उत्पन्न कर दिया आवेशके अज्ञानमें।

बकको आश्वासन देकर मैं भगवान कपिलके समीप पहुँचा। शिष्य-की त्रुटियोंको सुधारनेका, आश्रितके पापको पुण्य बना देनेका दायित्व होनेके कारण ही तो गुरुदेव गौरवमय हैं। मेरे अनन्त करुणार्णव गुरुने मुझे कोई उपालम्भ नहीं दिया। उन्होंने कहा—'वत्स! मेरा यह अवतार तो तत्त्व-प्रसंख्यानके लिए है। अधिकारी मुमुक्षु ही मुझसे मोक्षका मार्ग पाते हैं। असुरोद्धारकी क्रीड़ा अखिलेश्वर द्वापरान्तमें व्रजमें आकर करेंगे। तुम्हारा शाप वरदान बनानेमें समर्थ वे सर्वज्ञ अवश्य इसे अपना लेंगे, यह आश्वासन तुम अभी दे सकते हो इस असुरको।'

मैंने बक बने उत्कलको आश्वासन दे दिया। वह वहाँसे उसी समय उड़ गया। सृष्टिके नियमानुसार वह आसुर बक शरीरमें उत्पन्न हुआ पूतनाका छोटा भाई और अघके अग्रज रूपमें। बक अघका अग्रज ही तो

होता है। श्वेतकाय - मूर्त्तिमान सात्त्विकता दीखे ऐसा शरीर, एक पैरपर स्थिर, शान्त, जलमें ऐसा खड़ा रहे जैसे महान ध्यानस्थ योगी; किंतु ध्यान मत्स्यपर—मछली आयी और टप् पकड़ निगल ली। अघका अग्रज यह दम्भ—अत्यन्त सात्त्विक वेश, एकाग्रता, ध्यान, तपका उत्कट दिखावा और दृष्टि भोगपर, छलसे भोग प्राप्त करनेपर। इतना क्रूर-कुटिल हृदय कि किसीकी हत्यामें, किसीको कुछ भी कर देनेमें किञ्चित् भी हिचक नहीं। केवल अपने स्वार्थ, अपने सुखपर दृष्टि। यह दम्भ पापका बड़ा भाई ही तो है। कोई भी साधन इसका समुद्धार करनेमें समर्थ कहाँ है। साधनको ही स्वार्थके लिए प्रयुक्त किया गया तो वे पतनके हेतु हो गये, अब उनसे उद्धारका क्या सम्बन्ध। इस उत्कलका उद्धार तो निखिलकलैकधाम, षोडश - कला - सम्पूर्ण श्रीकृष्ण स्वयं करें अपने करोंसे तभी सम्भव है।

मैं अपने ही अपकृत्यसे व्यथित था। शाप देकर जो अनुताप मुझे हुआ, उसकी पीड़ा मुझे अब अशान्त बनाये थी। महर्षि कपिलने आदेश दिया— 'वत्स ! तुम व्रजमें जाकर महर्षि शाण्डिल्यके समीप कुछ दिन निवास करो। तुम्हारे द्वारा प्रशप्त उत्कलका उद्धार तो होगा ही, तुम भी परम पुरुषका प्रेम प्राप्त करके पूर्ण हो सकोगे।'

मैं व्रजमें आ गया। न आया होता तो कभी जान न पाता कि मेरा तप, मेरा ज्ञान, मेरी साधना कितनी तुच्छ-अकिञ्चित्कर थी। इस भूमिमें आकर मैं, मेरा जीवन धन्य हो गया। महर्षि शाण्डिल्यने मुझे आदरपूर्वक अपने आश्रमके समीप आवास दिया।

सुन लिया मैंने कि कंस दिग्विजयसे लौटा तो दूसरे पराजितोंके समान बक और अघको भी पराजित करके मथुरा ले आया।* पूतनाको उसने बहिन बना लिया था, अतः अघ और बकको अनुचरके स्थानपर भाई ही मानने लगा था।

पूतना गोकुल आकर देवी यशोदाके स्तनन्धयको दुग्धपान करानेकी कुचेष्टामें अपनी आसुरतासे परित्राण पा गयी। मुझे तभी आशा हो गयी कि पूतनाका अनुज बक भी अपनी बहिनका पदानुगामी अवश्य एक दिन होगा; किंतु वह गोकुल आनेका साहस नहीं कर सका।

* 'भगवान वासुदेव' में यह कथा पूरी आयी है।

गोकुल त्यागकर व्रजपति गोपोंके साथ वृन्दावन आ गये, तब महर्षि शाण्डिल्यके साथ मैं भी आ गया। मैं कबका उस कदर्य बकको विस्मृत हो चुका था। यहाँ व्रजमें आकर व्यक्ति अपने शरीरको—साधना-को ही स्मरण नहीं रख पाता तो किसी भूतकालीन शापकी स्मृति कैसे रखी जा सकती है। यहाँ आकर तो स्नान, सन्ध्या, हवन भी औपचारिक हो गये हैं। अब तो एक ही साधना बन गयी है—समित्, कुश, पुष्प, फल, बिल्वदल आदि कुछ भी संग्रह करनेके बहाने प्रातःकृत्य झटपट समाप्त करके वनमें जाओ और गोप-बालकोंके साथ वत्स-चारणको पधारे श्रीनन्दनन्दनको इतनी दूरसे देखते रहो, जिसमें उन्हें सङ्कोच न हो।

श्रीकृष्णचन्द्र और उनके सब साथी बहुत श्रद्धालु हैं, सङ्कोची हैं। देखते ही दौड़े आवेंगे। भूमिमें लेटकर प्रणिपात करेंगे। वहीं अपने उत्तरीय बिछा देंगे बैठनेको और उन निखिलेश्वरके उत्तरीय बनानेका साहस कम-से-कम मुझमें तो नहीं है। मैं बहुत दूर छिपा-छिपा अग्रजके साथ उन सौन्दर्यैक-धामका दर्शन करता रहूँ, उनकी चारु चपल क्रीड़ा देखता रहूँ—इतना बड़ा सौभाग्य मिला मुझे मेरे दयासिन्धु गुरु भगवान् कपिलकी कृपासे। धृष्टता करके यह सुअवसर मैं कैसे खो सकता हूँ।

ध्यान करता हूँ—यह कहना ठीक नहीं है। ध्यान होता है, समाधि रात्रिभर स्वतः मुझे अपनेमें लीन रखती है। इन व्रजेन्द्रनन्दनको देखकर क्या फिर ध्यान—समाधि करना पड़ता है? ये बछड़ोंको लेकर सखाओंके साथ नन्दभवन चले जाते हैं तो हृदयमें इनकी क्रीड़ा अविश्राम चलती रहती है।

इन श्रीनन्दनन्दनकी क्रीड़ा क्षण-क्षणमें नव-नवानन्दका सृजन करती, अन्तःकरणके अपने अतर्क्य सुखमें स्नान करती रहती है। परम धन्य हैं ये गोपकुमार। श्रीकृष्णचन्द्र तनिक दूर गये और ये दौड़े—'मैं पहिले—मैं पहिले स्पर्श करूँगा!'

इन गोपकुमारोंके साथ कितना स्नेह, कितनी आत्मीयता है इन परात्पर परम पुरुषकी। कोई तनिक देरके पश्चात् समीप आता है तो ये ऐसे आतुर भुजाएँ फैलाकर हृदयसे लगाते हैं, जैसे अनेक वर्षोंके पश्चात् मिला हो वह सखा। स्वयं नृत्य करते हैं और गोपकुमार तालियाँ बजाते हैं। स्वयं गाते हैं, ताली बजाते हैं जब सखाओंमें कोई नृत्य करने अथवा

गायन करने लगता है। ये प्रशंसा करते हैं सर्वलोकनमस्कृत इन गोप-कुमारोंके नृत्य अथवा गायनकी। कहीं तुलना है इन बालकों-बछड़ोंके सौभाग्य की।

मैं इन श्रीनन्दनन्दनकी क्रीड़ा-दर्शनमें निमग्न सरोवरके समीप झुक आयी लताओंकी ओटमें छिपा देख ही नहीं सका कि महाबक बना वह दैत्य उत्कल कब आकर लगभग मेरे समीप ही जलके तटपर आ बैठा। मैंने तो इसे तब देखा जब बालकोंके साथ, अग्रजके साथ चलते श्यामसुन्दर बछड़ोंको जल पिलाने आये सरोवरके समीप और बछड़े अकस्मात् भागने लगे भयभीत होकर।

गोप-बालकोंने पूरे हिम-शिखरके समान विशाल बकको देखा। उनका भयातुर होना स्वाभाविक था। सब जहाँके तहाँ बगुलेकी ओर समीत देखते खड़े रह गये। केवल कृष्णचन्द्र भाईके समीपसे कुछ पद आगे दौड़ आये! जैसे वे इतने बड़े बगुलेको निकटसे देखनेको उत्सुक हों।

उत्कल अकस्मात नहीं आया था। वह अपनी बहिन पूतनाका परिशोध लेने कंसकी प्रेरणा से ही पहुँचा था। इतने बड़े बकको श्रीकृष्ण तक पहुँचनेमें केवल दो डग धरने पड़े। पहुँचते ही चोंच बढ़ाकर नन्दनन्दनको उसने 'टप्' उठा लिया अपनी चोंचमें।

मुझे पता था कि क्या होने वाला है। मैं जानता था कि दम्भ जब स्वयं सर्वेश्वरको निगल कर उसका स्थान लेने जाता है, मृत्यु – भस्म होना ही उसका निश्चित परिणाम है; किंतु मेरा यह ज्ञान उस समय कहाँ चला गया, कह नहीं सकता। असुरको शाप देकर भस्म कर सकता हूँ, यह भी स्मरण नहीं रहा। जैसे किसी अल्पप्राण प्राणीको धधकते दावानलमें फेंक दिया जाय—मन, प्राण सब जैसे दग्ध हो उठे। केवल दृष्टिने देखा—बछड़े, गोप, बालक सबके शरीर जैसे निष्प्राण हो गये। रक्तहीन, श्रीहीन, श्वेत और स्पन्दन-रहित। केवल भगवान संकर्षणका श्रीमुख अरुण हो उठा था। नेत्र, अङ्गार उगलने लगे थे। वे कुछ अघटित करने ही वाले थे।

पलकोंके गिरनेमें जितना समय लगता है, उसका भी अर्धकाल—बक छटपटा उठा। जैसे उसने तप्ताङ्गार मुखमें उठा लिया हो, इस व्याकुलतासे उगल दिया उत्कलने श्रीकृष्णको। अपनी चोंच खोलकर—

पूरी खोलकर श्वास ली उसने। ग्रीवाको झटका दिया दो बार इधर-उधर और फिर पूरी ग्रीवा पीछे करके चोंचकी चोट करने टूटा।

'चल !' मयूर-मुकटीने हाथ बढ़ाकर बककी चोंच पकड़ ली। दोनों करोंसे बलपूर्वक खोलकर नीचे झुकाया और वामपाद प्रविष्ट कर दिया मुखमें। वाम चरणसे चोंचका निम्न भाग धरापर दबाकर दाहिने करसे बककी चोंचका ऊपरका भाग उठाते चले गये।

हुआ क्या, यह मैं भी ठीक नहीं देख सका। उत्कलका यह बक-देह इतना विशाल था कि नन्हे श्यामसुन्दर दोनों करोंसे उसकी चोंच खोल-कर सरलतापूर्वक उसमें खड़े हो सकते थे। इससे बकका कुछ बिगड़ता नहीं था; किंतु जो वामनसे पलार्धमें विराट् बन जाते हैं, उनका दक्षिण कर कहाँ तक उठता गया होगा, कोई कैसे समझ सकता है। मैं केवल यह देख सका कि बकका शरीर द्विधा विदीर्ण हो गया है। जैसे तृण-पात्र निर्मित करनेवाले एरका तृण चीर देते हैं, बकका देह चीर दिया गया था। दैत्य उत्कलका दिव्यीकरण हो गया। वह बकसे हंस बनकर इन परम प्रभुके नित्यधामकी वापीका भूषण बनने जा चुका था। गो सक

सबसे पहिले भगवान रामने दौड़कर अपने अनुजको अङ्कमाल दी। बछड़े-बालक सब सचेत, सावधान, सुप्रसन्न दौड़े। सुरोंकी सुमन-वृष्टिकी ओर किसीकी दृष्टि नहीं गयी, न गगनमें गूँजते गानको, स्तवनको किसी-के श्रवण सुन रहे थे। बछड़े श्यामसुन्दरको सूँघ लेनेको समुत्सुक थे। सखाओंमें प्रत्येक कर, चरण, सर्वाङ्ग भली प्रकार देखनेमें लगा था कि कहीं कोई क्षत-चिह्न तो नहीं है।

'तू क्या देखता है ?' हँसकर नन्दनन्दनने भद्रके स्कन्धपर दक्षिण कर रखा। भद्रने वहीं इन्हें बैठनेको विवश कर दिया था और अपने पटुकेसे बार-बार पोंछकर पादतल देख रहा था। भद्रका पटुका चरणोंमें लगे बकके रक्तके कारण कई स्थानोंपर लाल हो उठा था। वैसे उसके नीले पटुकेमें यह रक्त-चिह्न चमक नहीं सका था।

'तेरे पद कितने लाल हो गये हैं !' भद्रको उत्तर देनेका अवकाश नहीं था। वह चरण-तलमें बहुत सावधानीसे अँगुली सरकाता पूछ रहा था—'तुझे कहीं पीड़ा होती है ?'

'पीड़ा ? नहीं तो !' हँसते नटनागर बोले—'मैं तो देख रहा था कि बगुला मुखमें मछली लेता है तो उस मछलीको कैसा लगता है।'

'तू कोई मछली है !' विशाल हँसने लगा। इन बालकोंको कैसे पता लगेगा कि उनका यह सखा सचमुच मत्स्य भी है। इतना बड़ा महामत्स्य कि प्रलय-पयोधि भी उसके विहारसे व्याकुल हो उठा था। उस मत्स्यको मुखमें ले सके ऐसा बक सृष्टि समुत्पन्न नहीं कर सकती—सृष्टिकर्त्ताका समस्त कौशल भी नहीं; किंतु इनकी मत्स्योंसे सहानुभूति सजातीय के प्रति स्वाभाविक है।

'तेरा पटुका अपवित्र हो गया।' मधुमङ्गलको अपना ब्राह्मणत्व स्मरण आ गया—'यह कन्हाई तो बगुलेके मुखमें जाकर समूच्छा उच्छिष्ट हो गया। तुम सबने इसको स्पर्श किया है, अतः स्नान करो और ब्राह्मणको कुछ दान करके शुद्ध बनो।'

'अच्छा महाराज !' सबसे छोटा तोक मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है। कितना पटु है यह अभीसे अभिनय करनेमें। दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर कैसी कृत्रिम विनम्र मुद्रा बना ली इसने—'अपने अग्रज द्वारा किया गया यह आखेट—बगुलेके समूचे दोनों खण्ड, उसके पैर, पङ्ख, चोंच सब मैं आपको समर्पित करता हूँ।'

'छिः !' मधुमङ्गल मुख बनाकर मुड़ गया हट जानेके लिए। सब हँस रहे हैं। हँस रहे हैं ये हृषीकेश मेरे शापको वरदान बनाकर, मेरे सम्मुख ही सखाओंके मध्यमें खड़े होकर।



परिचय

मेरी सखी—स्वामिनी सुनना ही इसे स्वीकार नहीं, इसलिए सखी कहती हूँ। हम बालिकाओंमें वैसे भी बड़े-छोटेका भेद बना नहीं रहता और रखनेका कोई मन भी करे तो मैया कीर्तिकी कन्या कहती है कि वही सबसे छोटी है। किस बातमें छोटी है, यह कोई पूछ देखे। इसे समझमें ही नहीं आता कि इसके सौन्दर्यकी, शीलकी, सुरुचिकी, सद्‌गुणकी, विद्याकी, विनयकी, कलाकी, प्रतिभाकी इस अल्प वयमें ही सृष्टिमें कोई समता नहीं। यह तो मानती है कि इसकी सब सखियाँ इससे अधिक सुन्दर हैं—कुरूप केवल यही है। सब बुद्धिमान हैं, चतुर हैं और प्रत्येक कलामें कुशल हैं। यह कहेगी—'मुझे कुछ भी तो नहीं आता।'

'स्वामिनी!' एक बार सौष्ठवाने कहा था। यह उसी समय नेत्रोंसे बिन्दु टपकाने लगी—'सखि! मैंने ऐसा क्या अपराध किया है कि तू मुझे अपनेसे इतनी दूर कर रही है? सच बता, राधा तेरी सेविका बनकर रहे तो तू सन्तुष्ट होगी?'

सौष्ठवाने इसके पद पकड़नेकी भूल कर ली। परिणामतः यह उसके पैर पकड़कर रोने लगी और इसके कर्णस्पर्शी खञ्जनमञ्जु दृगोंमें अश्रु देखना क्या किसीके बसका है?

'स्वामिनी—जन्म-जन्मकी स्वामिनी मेरी। मैं सदा-सदाकी इसके श्रीचरणोंकी दासी!' यह बात हृदय अहर्निशि रटता है तो रटे; किंतु मुखपर यह बात आनी नहीं चाहिये। मुखसे तो इसे सखि ही कहना है और कोई सम्मान प्रदर्शित करो तो रूठी धरी है। सेवा भले ले लो, उसके लिए तो सदा समुत्सुक ही रहती है; किंतु इसके सुकुमार कर तो अंगराग लगाते भी अत्यन्त अरुण हो उठते हैं।

छोटे भैया सुबलको अपने सखाकी प्रशंसा इतनी प्रिय है कि वह यह भी नहीं देखता कि उसकी यह अनुजा कितनी कोमल-हृदया है। इसके सम्मुख वह 'मेरा सखा ऐसा, मेरा सखा वैसा' कहता ही रहता है।

कुशल यही है कि प्रभात होते ही चला जाता है वनमें वत्सचारणके लिए और मध्याह्न-भोजन नन्दग्राममें अपने सखाके साथ करके सायङ्काल अन्धकार होनेपर लौटता है। वह भी तब लौटता है जब कोई लेनेके लिए मैया भेजती है।

बड़ा भैया श्रीदाम भी कम स्तवन नहीं करता अपने श्यामका ; किंतु सुबलसे इसे सङ्कोच नहीं होता। यह उसके आते ही हम सबको भूलकर भाईसे जा चिपटती है। सच बात यह है कि हममें-से भी कोई ऐसी नहीं जो मध्याह्नके पश्चात्से ही सुबलके लौटनेकी प्रतीक्षा न करने लगती हो। उसके मुखसे उसके सखाके रूप, गुण, विक्रमका वर्णन सुननेको सभीके श्रवण समुत्सुक रहते हैं।

व्रजराज श्रीनन्दबाबा जिस दिन आये थे यहाँ गोकुलसे गोपोंके साथ, बाबाके साथ श्रीदाम-सुबल भी गये थे और व्रजेश्वरी मैयाके लालने हमारे इन दोनों भाइयोंको तभी मित्र बना लिया। सुबल तो ऐसा मोहित हुआ कि बहिनको वहाँ ले जाकर ही माना। उसकी चले तो वह आज विवाह कर आवे बहिनका अपने सखासे।

मेरी सखी भाईके साथ चली तो गयी ; किंतु लौटी तो लगा कि कुछ दूसरी ही हो गयी। वृषभानुबाबाकी नन्दिनी ऐसी अनमनी तो कभी नहीं रही थी। इसीको सुप्रसन्न करनेके लिए हम सब इसके साथ छोटी कलशियाँ लेकर जल-भरने नन्दग्रामके पनघटपर जाने लगीं।

वहाँ नन्दग्रामके सब बालक बहुत नटखट हैं। हमारे दोनों भाई भी उनसे मिलकर वैसे ही हो गये, अन्यथा ये तो हम बहिनोंको बहुत मानते थे। लेकिन सब बालकोंमें वे नवघनसुन्दर—वे कुछ करें, कितना भी चिढ़ावें, कलशियाँ लुढ़का दें अथवा फोड़ डालें—उनका वह हास्य, वह ललित रूप—वह तो हृदयमें ही बस गया है। मेरी भोली सखी उनको देखे बिना नहीं रह पाती तो इसका क्या दोष है।

हम सब जीवनभर उसी पनघटपर प्रतिदिन इसी प्रकार जाती रहतीं ; किंतु पता नहीं व्रजराज बाबाको क्या सूझा कि अपने लालको वत्स-चारणके लिए वनमें भेजने लगे। वहाँ नन्दीश्वरपुरमें गोपोंका अभाव है क्या ? मैं यहाँ अपने बाबासे कहकर बहुत-से सेवक भिजवा देती। एक ही तो उनके कुमार हैं और इस अल्प वयमें उन्हें वनमें बछड़े चराने भेजने। लगे। वे जाने लगे तो हमारे यहाँके भी हमारे कोई भाई घरमें कैसे टिकते

मेरी सबसे बड़ी समस्या यह कि मेरी सखीका कमलमुख म्लान रहने लगा। यह पाटलकलिका मुरझाने लगी। मैया, बाबा सब चिन्तित हो गये थे। मैंने भगवती पूर्णमासीके पास जाकर पूछा। भगवती हम सब बालिकाओंको अपनी पुत्रीके समान स्नेह-भाजना मानती हैं। मुझे अङ्कमें बैठा लिया उन्होंने। बड़े प्यारसे कहा—'विशाखे! अपनी सखीसे ही तू पूछ। ध्यान करके उसके चित्तका स्पर्श करनेमें कोई योगीन्द्र-मुनीन्द्र-मानस भी समर्थ नहीं है।'

मैं इस कीर्ति मैयाकी कुमारीसे कुछ पूछनेमें इसीलिए संकोच करती हूँ, इसका अपने विशाल लोचनोंमें अश्रु भर लेना मुझसे देखा नहीं जाता। अन्यथा यह तो इतनी भोली है कि कुछ सखियोंसे छिपाया भी जा सकता है, यह सोच भी नहीं सकती। लेकिन यह प्रतिदिन पीली पड़ती जा रही, कृशकाय पहिलेसे है—और सूखती जा रही, यह भी कैसे सहा जाता।

'विशाखे! तेरे पास कोई विष है?' मेरे पूछते ही कण्ठसे लिपटकर फफककर फूट पड़ी—'तू कहींसे मुझपर कृपा करके ला दे!'

'विष खाकर मरें तेरे विरोधी।' मैंने इसे हृदयसे लगाया—'लेकिन बात क्या है? तेरा किसीने तिरस्कार किया है?'

'सखि! यही तो अत्यन्त दुःख है मुझे कि मैं सबके द्वारा तिरस्करणीया हो गयी हूँ और कोई भी मेरा तिरस्कार नहीं करता।' क्रन्दन करते मेरी सरला सखिने कहा—'देह-त्यागके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है मेरे लिए। मैं प्रतिक्षण असह्य दावाग्निमें दग्ध हो रही हूँ। तू मुझपर दया नहीं करेगी?'

'तू कुछ कह तो सही!' मैं अपना हृदय निकालकर देना होता तो उसी क्षण दे देती। अपनी इस सखिका रुदन देखनेसे मृत्यु सहस्र गुनी सुखद लगेगी मुझे।

'अच्छा तू सुन! बहुत लज्जा लगती है; किंतु तुझसे न कहूँ, ऐसी तो कोई बात नहीं है। कम-से-कम तू तो साक्षी रह कि तेरी राधा कितनी विवशा बन चुकी थी।' कीर्तिकुमारीने कहना प्रारम्भ किया—

'उस दिन भैया सुबल मुझे नन्दीश्वरपुर ले गया। मैं सङ्कोचवश भवनके द्वारसे सटी खड़ी रह गयी। सुबलके कहनेपर उसके वे नीलसुन्दर सखा दौड़ते आये और आकर मेरा हाथ पकड़ लिया। वह कर-स्पर्श जैसे

मेरे रोम-रोममें उसी क्षणसे बसा है। लगता है कि मेरा कर अब भी उनके ही करोंमें है।'

'बस ?' मैं हँस पड़ी—'इसीलिए तू इतनी व्याकुल है ? बाबासे मैं न भी कहूँ तो भी वे तेरा विवाह अपने मित्र व्रजराजके कुमारसे ही करनेवाले हैं। तू रोती क्यों है ?'

'मेरा विवाह उनसे ?' मेरी सखी कितनी भोली है, जानती हूँ। कहने लगी—'तूने कहाँ देखा उन्हें विशाखा। वे सौन्दर्यके भी अधिदेवता हैं। राधा उनके पदोंके पास भी बैठने योग्य नहीं है। लेकिन मैंने उसी दिन देख लिया कि वे कितने सदय हैं। मेरा इतना अधिक सम्मान किया उन्होंने, मुझे इतने स्नेहसे साथ लिये रहे, उनके सद्‌गुण-शीलको देखकर मुझे आशा हो गयी थी कि वे अपनी ओर देखकर, अपनी कृपाके कारण ही मुझ अनधिकारिणीको अस्वीकार नहीं करेंगे।'

'उन्होंने अस्वीकार कर दिया ?' मैं चौंकी। मेरी इस सौन्दर्यकी देवी-जैसी सखीको भी कोई अस्वीकार कर सकता है ?

'उनसे भी तुझे ऐसी आशा है ?' सखि रो रही थी—'नहीं विशाखे, मैं जानती हूँ कि उनका हृदय नवनीतसे अधिक सुकुमार है। उनसे किसीके प्रति भी निष्ठुरता सम्भव नहीं। मेरा तो उन्होंने स्वयं कर पकड़ा था। मुझे सानुरोध बार-बार बुलाया था। मैं ही भाग्यहीना हूँ। उनके योग्य मैं नहीं रही !'

'तुझे क्या हो गया ?' मैंने कठिनाईसे मूर्छिता सखिको सचेत किया।

'कोई एक और कहीं अपने आसपास आ गया है। मैयाने अचानक नाम लिया उसका। मेरे शरीरका रोम-रोम झनझना उठा। लगा कि मैं जन्म-जन्मातरसे उसी नामकी जापिका हूँ। अब अहर्निशि मेरे हृदयके स्पन्दनमें वह नाम बस गया है। अब तू ही बता, मैं क्या करूँ ?' बहुत सङ्कोचपूर्वक, लज्जासे लाल मुख सखिने धीरेसे कहा--'यह कृष्ण कौन है ?'

'तू कृष्णसे विवाह करेगी ?' मैं खुलकर हँस पड़नेसे अपनेको किसी प्रकार ही रोक सकी।

'तू विवाहकी बात करती है ? मुझे तो मरनेके अतिरिक्त कोई परित्राणका पथ नहीं दीखता। ये दो ही होते तो भी कुछ बात थी; किंतु--

'कोई तीसरा भी है क्या ?' मैंने तनिक सशङ्क पूछा। इस अत्यन्त सीधी सखिके मनमें क्या आ गया ?

'यह वंशी-ध्वनि तू नहीं सुनती ?' सखिकी बात सुनकर मेरा मन आश्वस्त हो गया। अब उसकी हिचकियाँ मेरे लिए विनोद-दायिनी बन गयी थीं—'वह ध्वनि आती है श्रवणोंमें और जी चाहता है कि दौड़ी जाऊँ और उसके वादकके पदोंपर मस्तक रख दूँ। उस समय मैं उसकी—केवल उसकी रह जाती हूँ। अब यह तीन पुरुषोंके प्रति मेरी आसक्ति—तू मुझे धिक्कारती क्यों नहीं ? तू ऐसे क्यों देख रही है मेरी ओर ? तू तो हँस रही है ?'

'मैं तीनको दो तो अभी कर देती हूँ।' मैंने हँसकर कहा—'ललिता सायङ्काल वनसे वत्स-चारण करके लौटते उस वंशीवादक कृष्णका आज ही तुझे दर्शन करा देगी।'

'वही वंशी बजाते हैं ?' सखि तनिक प्रसन्न हुई; किंतु तत्काल म्लान पड़ गयी। अपना दक्षिण कर पकड़कर चिन्ता-मग्न हो गयी—'भैया सुबलके ये सखा !'

'वे भी वनसे वत्स-चारण करके सायङ्काल लौटते हैं !' मैं हास्य नहीं रोक सकती थी। उठकर भाग आयी वहाँसे। मेरी सखी कुछ समझ नहीं सकी।

सायङ्काल ललिताने झरोखेमें बैठाकर वत्स-चारणसे लौटते, वंशी अधरसे लगाये, गोधूलि-धूसर सुबलके सखा कृष्णको दिखलाया तो मेरी सखि दृष्टि पड़ते ही मूर्छित हो गयी है। अब उसे मैं शीघ्र सचेत कर लूँगी। मेरी चिन्ता मिट गयी है।



तुलसी-पूजन

बाबा वृषभानुकी बालिका मेरी स्वामिनी है, सखि है; किंतु इसे समझाऊँ कैसे कि मैं इसके चारु चरणोंकी जन्मान्तरकी चर्चिका हूँ। यह तो संकेतसे भी सम्मान प्रदर्शित करते ही चौंकती है—'सखि! मुझसे प्रमाद हो जाय तो तू प्रताडित कर लिया कर; किंतु इस प्रकार प्रणति देकर मुझे पूजाकी पात्री बनाकर दूर मत कर! मुझे तो तेरा दास्य करना भी प्रिय लगेगा…'

अब इसके मुखपर हाथ रखकर, इसके कण्ठमें बाहु डालकर मना लेनेके अतिरिक्त उपाय क्या है। मैंने अनेक बार हँसकर कहा है—'तू मानती क्यों नहीं कि तू छोटी है और मैं बड़ी हूँ।'

'मानती तो हूँ। मैं तो तुझे सदा बड़ी मानती हूँ। कान पकड़ूँ अपने?' यह चौंक जाया करती है। एक ही बात बार-बार कहने पर भी चौंकती है।

'तब मुझे रोकती क्यों है?' यही मेरा महास्त्र है, जिससे मुझे इसकी सेवाका किञ्चित् अवसर मिल जाता है—'मैया हम सबकी चोटी गूँथती है अपने करोंसे, सबका शृङ्गार करती है, सबको स्नेहसे खिलाती है। मैया बड़ी है या तू? बड़ोंका स्वत्व है छोटोंकी सेवा करना स्नेहपूर्वक। अतः चुपचाप मैं करूँ, उसे स्वीकार कर लिया कर!

'तू मैया जितनी बड़ी हो गयी है?' यह ऐसे आश्चर्यसे देखती है कि सबको हँसी आकर ही रहती है। मेरे हाथ जोड़ने लगेगी और मेरे कण्ठमें ऐसे लिपट जायगी जैसे मैयाके कण्ठमें लिपट जाती है।

मैया कहती हैं—'मेरी लालीको क्रोध करना, रूठना, कुछ माँगना कभी नहीं आया।'

इसे मैं भली प्रकार जानती हूँ कि केवल कृपा करना, देना इसे आता है और यह तब रुठती है जब कोई इसकी श्रेष्ठ मानकर स्तवन करने लगे। इसको हम सब अपनी नेत्र-पुतलियोंके समान पलक बनी

पल-पल न सम्हालें तो अपने स्नान, आहारकी भी सुधि नहीं आवेगी। यह तो पुष्पाभरण लेते भी देखती है कि किसी सखी की अलकें अनलंकृता तो नहीं हैं। इसने कहाँ जाना कभी कि कोई इसकी अपनी वस्तु भी है।

बाबा इसका मुख जोहते हैं—' मेरी लाली क्या चाहती है ?'

मैया मनुहार करती रहती है— ' राधा तू कितनी दुबली होती जा रही है। मेरी लाली, तनिक तो खा ले !'

दोनों भाइयोंके लिए जो कुछ मिले, वह सब इस अनुजाके उपयोग-के बिना अनुपयोगी है; किंतु यह है कि इसे शैशवसे हम सबकी ही नहीं, वृद्धा दासियों तककी ही चिन्ता रहती है। यह यही देखा करती है—किसे दिया जा सकता है, किसे खिलाया जा सकता है, किसे किस सेवासे सन्तुष्ट किया जा सकता है।

इसकी क्रीड़ाकी मैं साक्षी हूँ। कभी तो यह खुलकर खेलनेमें लगी होती! कभी तो इसे कोई क्रीडनक प्रिय प्रतीत हुआ होता! पता नहीं क्यों, इसे केवल पूजा प्रिय है। यह तो जब घुटनों सरकती थी, तब भी हम सबको समेट लेती और धूलिकी राशि बनाकर उसपर पुष्प चढ़ाती और वहाँ मस्तक रखकर पड़ी रहती—अनेक बार प्रणाम करती-करती वहीं सो जाती थी।

पूजा—केवल पूजा प्रिय है इसे और वह भी भगवती अम्बिका की। हम कन्याओंकी आराध्या भवानी गौरी ही हैं, यह मैंने मैयासे सुना है; किंतु मेरी सखीको तो अब इन दिनों तुलसी-पूजन प्रिय हो गया है। पहिले भी यह प्रातः सायं मैयाके साथ तुलसी-पूजनमें सम्मिलित होनेमें प्रमाद नहीं करती थी। शीतकालमें भी स्नान तो सुबह हम सब कर लेती हैं और हमारी यह सखी जब पूजन करती है तो हम सब सम्मिलित तो रहेंगी ही। इसके बिना भी क्या कहीं रहा जा सकता है।

यह स्वीकार ही नहीं करती कि इसकी पूजाके लिए हममें-से कोई चन्दन घिस देगी या जल धर देगी। मैयाके रुष्ट होनेका भय न हो तो यह स्वयं सुमन-सञ्चय भी करे और माल्य ग्रन्थन भी; किंतु कितनी कोमल हैं इसकी अँगुलियाँ। इसकी चरणांगुलि तक तो पाटल-पुष्पसे अधिक सुकुमार हैं, मैया इसे सूचिका स्पर्श नहीं करने देतीं, यह उचित ही है।

अपनी पूजाकी स्वयं सामग्री संचय करना श्रेष्ठ बात होगी। मेरी इस सखीने पता नहीं भगवती पूर्णमासीसे पूछकर या सुनकर क्या-क्या सीख लिया है। रहती मैं भी इसके सदा साथ ही हूँ ; किंतु इसके समान स्मृति, समझ तो कोई कहाँसे लावे। यह ऐसी है कि पूछो तो कोई बात ऐसी नहीं जो न बता सके और समझती यह है कि इसे कुछ आता नहीं।

तुलसी-पूजनमें रोली भी उठावेगी अपनी मध्यमापर, तो हममें-से किसीकी ओर देखेगी, मैयासे समर्थन चाहेगी कि यह ठीक विधिसे ही चढ़ाने जा रही है। लेकिन भगवती पूर्णमासी कहेंती हैं—'लालीकी अपेक्षा अधिक उत्तम पूजा-प्रक्रिया तो कोई मुनि-कन्या भी नहीं जानती।'

भगवती पूर्णमासी और जाने क्या-क्या कहती हैं इसे। यह आद्या, अखिलेश्वरी, सर्वसेव्या……लेकिन यह मेरी सखी ठीक कहती है कि ऋषि मुनि और भगवती जैसी तपस्विनी सर्वत्र जगदम्बाको ही देखती हैं। इनकी सब बातें हम बालिकाओंकी समझमें नहीं आ सकतीं।

'तू इतनी पूजा क्यों करने लगी आजकल ?' मेंने इससे परसों पूछ लिया। पूजा तो यह तुलसीकी पहिले भी करती ही थी, पूरी श्रद्धा, सम्मान, सावधानीसे करती थी; किंतु अब तो इसने प्रायः पूरा दिन और रात्रिका प्रथम प्रहर भी पूजनमें ही लगाना प्रारम्भ किया।

प्रातः मैयाके उठानेसे पूर्व ही उठ जानेका इसका अभ्यास हम सबको वैसी ही बना चुका है। मैया अनेक बार समझाती है—'तुम सब इतनी शीघ्रता मत किया करो। तुम सब तनिक देरसे उठो तो कोई हानि होती है ? बालिकाओंको अन्धेरा रहते नहीं उठना चाहिये।'

'मैया ! तेरी यह राधा मान ले तो हम सब मान लेंगी।' मैयाके लिए तो हम सब समान हैं। वह हँसती रही हैं सदा सुनकर और उनकी यह बात हममें-से किसीके कण्ठमें उतरनेसे रही कि उनकी राधाके उठ जानेपर भी हम पड़ी सोती रहें। हमें तो इससे पहिले शीघ्रता करनी रहती है, अन्यथा यह उठकर उलटे हमारी सेवा करने लगेगी। यह हमारे लिए दन्तधावन, तैल, उपलेप प्रस्तुत करनेमें लग जायगी, और दासियोंको संकेतसे दूर कर देगी। यह अपने लिए भी कुछ करने योग्य तो है नहीं।

सूर्योदयसे पूव स्नान करके तुलसीके समीप इसके साथ हम सबको पहुँच जाना ही है। अब इसने अपनी पूजाके लिए पृथक तुलसीका वीरुध आरोपित कर लिया है। मैयाके साथ अव उनके ही वीरुधकी पूजा नहीं करती। मैयाको कहाँ अवकाश है दोपहर तक इसके साथ पूजामें लगे रहनेका। यह तो पूजा करनेमें ही पूरा प्रहर व्यतीत कर देती है और फिर ध्यान करने बैठती है, जप करती है।

मैयाकी बात मैं बालिका होनेपर भी समझती हूँ। इतनी अल्पवयमें इतनी पूजा अनावश्यक है। यह कुसुम कलेवर आतपमें कितना अरुण हो जाता है। क्या हुआ कि शरद् ऋतुका अन्तिम मास चल रहा है, शीत प्रारम्भ हो चुका है; किंतु मेरी सखी क्या सूर्य-रश्मि सहन करने योग्य है? यह लगभग चार वर्षकी आयु क्या तपस्या करनेकी आयु है?

यह तप, यह पूजा किसलिए? मेरे मनमें उत्सुकता हुई और इसे सखियोंसे छिपाना कहाँ आता है। मैया भी मना नहीं कर पातीं, वे भी इसकी तन्मयता, तत्परतामें बाधा डालनेमें हिचकती हैं और उनकी बात ठीक है कि यह म्लान बनी रहे, दिन-दिन सूखती जाय, कुछ भी आहार लेना बन्द करके प्राय: नेत्रोंमें अश्रु भरी रहे, इससे अच्छा है कि पूजामें ही लगी रहे।

इसका मुख आतपसे अरुण हो उठता है। हम सखियाँ अपने अंगोंकी छाया किये खड़ी रहें, यह भी इसके अनजानमें ही करना पड़ता है; क्योंकि इसे यह भी असह्य है। मेघ गगनमें आ जाते हैं, यह सत्य है; किंतु उनमें-से भी तो रविका ताप आता ही है। इसके अङ्गोंसे स्वेद धारा चलती है। यह अवश्य उष्णताके कारण होता है; किंतु इसका रोम-रोम उत्थित क्यों रहता है? यह तो कठोर शीतमें होता है। इसके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलती है और इसके लाल-लाल नन्हें पतले अधर प्राय: काँपते रहते हैं। यह कुछ प्रार्थना करते रोती रहती है?

'तू क्या प्रार्थना करती है तुलसीसे?' मैंने परसों इससे पूछ लिया।

'सखि! तू जानती ही है कि मुझमें कुछ नहीं है।' यह सिसकती बोली—'मुझसे अधिक ही सुन्दर हैं बरसानेकी सभी बालिकाएँ और संसारमें जाने कितनी होंगी। मुझे कुछ भी तो नहीं आता। कोई कला, कोई गुण नहीं मुझमें।'

'तो ?' मैं इसका मुख देखती रह गयी। इसमें किसीके प्रति ईर्ष्या जगे, किसीसे प्रतिस्पर्धा करना चाहे यह मेरी सखी, मैं स्वप्नमें भी सोच नहीं सकती। इसके मनमें स्वयं किसीके सौन्दर्य, सद्‌गुण, विद्याको देखकर तो सर्वदा उल्लास ही आता है और संसारमें ऐसी कौन-सी रूपवती, गुणवती निकल आयी कि इसके सम्मुख ठसक दिखलानेका साहस करे और उससे क्षुब्ध होकर यह तपोलीना बने।

'तूने तो देखा है भैया सुबलके उन नीलसुन्दर सखाको वनसे वत्स-चारण करके लौटते समय !' मेरी प्राणसमा सखी रुदन करने लगी— 'उनके सौन्दर्यकी संसारमें कहीं छाया भी है ? वे जब मुझे नन्दीश्वरपुरमें प्रथम ही दिन मिले थे, मैं समझ गयी थी कि केवल विशुद्ध प्रीतिसे उनका परम सुन्दर शरीर बना है। सद्‌गुणोंके वे एकमात्र धाम और उनकी कला, विद्या—' तूने भी तो उनकी वंशी, ध्वनि सुनी है। अब सुबल भैया उनके पराक्रम सुनाता है। उन्होंने दैत्यको जो बछड़ा बनकर आया था, खेल-खेलमें घुमाकर मार दिया। गिरि शिखरसे भी बहुत विशाल बकको चीर फेंका।'

'लेकिन तू क्यों तपस्या करने लगी है ?' मैं नहीं रोकती तो मेरी सखी पूरी रात्रि ही उन नन्दनन्दनका वर्णन करती रहती—यह मैं भली प्रकार जानती हूँ। वह इधर जब पूजासे अवकाश पाती है तो हम सबसे उस मयूर-मुकुटीके सम्बन्धमें ही पूछती है, अथवा उसीका वर्णन सुनाने बैठ जाती है। मैंने हँसकर कहा—' अपने बाबाक़ी व्रजराजसे बाल मैत्री है। वे व्रजराज कुमारको जामाता बनाना चाहेंगे तो नन्दीश्वरपुरके स्वामी अस्वीकार नहीं करेंगे। बाबासे तू नहीं कह सकेगी तो मैं कह देती हूँ। बाबा क्या मेरी कोई बात टालते हैं ? इसमें इतनी पूजाकी आवश्यकता क्या है ?'

'सखि ! वे सकल सद्‌गुणैक धाम पिताकी बात स्वीकार कर लेंगे जानती हूँ।' सखीने मेरे कण्ठमें भुजाएँ डाल दीं—' उनके पादपद्मोंकी प्राप्ति हो जायेगी। उनके बिना तो मेरा कहीं स्थान नहीं है। यह भी जानती हूँ कि संसारमें कोई सुन्दर, गुणवती, शीलवान कन्या होगी तो सबके पिता उसे इनको ही अर्पण करना चाहेंगे। सब इनकी आतुर पाणि-प्रार्थिनी बनेंगी।'

'तू सपत्नियोंकी चिंतामें घुली जा रही है ?' मुझे आश्चर्य हुआ। मेरी सखीमें यह अकल्पनीय भाव कहाँसे कैसे आ गया ?

'छिः !' मेरी उदार-चक्र-चूड़ामणि सखीने मेरे मुखपर हाथ धर दिया—'तू यह क्या कहती है ? वह कन्या भाग्यहीना होगी, जिसके भालको उनके कर सिन्दूर - भूषित न करें। सखि ! इन सौन्दर्यघनको समर्पिता होनेमें ही तो सम्पूर्ण स्त्रीत्वकी सार्थकता है। मैं तो धन्य-मानूँ अपनेको कि संसारकी सब सुन्दर कन्याएँ—तुम सब इन्हींका वरण कर लो और मुझे सबसे कनिष्ठा बनकर सबकी सेवाका सौभाग्य मिल जाय।'

मैं अपनी सखीका मुख देखती रह गयी। इस औदार्यकी भी कोई सीमा है कि यह भोली मैया कीर्तिदाकी कन्या अपने अन्तरमें जिनकी एकमात्र आराधना लिये इतनी तपस्विनी बनी है उस अपने स्वामीको भी सबको—हम सखियोंको ही नहीं, संसारकी परिचिता-अपरिचिता सबको सौंप देनेको, सबसे कनिष्ठा रहनेको समुत्सुक है, अपना सौभाग्य मानती है !

'तू समझती नहीं है।' मुझे स्तब्ध देखकर स्वयं कहने लगी—'वे अनन्त दयाधाम हैं। मुझे अपनी अनुचरी सुनेंगे तो अस्वीकार नहीं करेंगे। पिताकी आज्ञा भी स्वीकार ही करेंगे; किंतु मैं किस गुणसे उन्हें प्रसन्न कर पऊँगी ? मुझमें न रूप है और न कोई गुण। वे प्रेमकी सचल साकार मूर्ति हैं और मुझमें प्रीतिका लेश भी तो नहीं है। भगवती तुलसी प्रेमकी परमाधिदेवता हैं। श्रीहरि इनके प्रेमके, इनके पातिव्रतके, इनकी निष्ठाके ऐसे परवश हुए कि इनका सान्निध्य प्राप्त करनेके लिए शालिग्राम शिला तक बनना स्वीकार कर लिया उन सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् ने। तू तो प्रतिदिन सायंकाल वनसे लौटते उन मयूर मुकुटीको देखती ही है। उनकी वनमाला किसी भी दिन तो तुलसीके बिना नहीं बनती। उनके वक्षको विभूषित करने वाली भगवती वृन्दा—ये इस वृन्दावनकी अधिदेवता अनुकम्पा करें तो मेरे भी इस रस-रहित, प्रेमरहित, पाषाण हृदयमें उनके प्रेमका कोई पावन अंकुर उग सकता है !'

मैं अपनी सखीके पदोंमें प्रणिपात नहीं कर सकती। इससे प्रसन्न होनेके स्थान पर बहुत संकुचित होगी; किंतु यह मेरी परम गुरु, यह

मेरी उपदेष्ट ! इसने इस प्रकार मुझे—सबको उपदेश ही तो किया है। यह प्रेमकी परम प्रदाता—यही पथ-निर्देश न करे तो मेरे जैसी अबोध, अज्ञ और कहाँ जायँ ?

मैं भी तुलसी-पूजन करूँगी—नियमसे करूँगी, नित्य-नित्य करूँगी। अपनी इस सखीके समान श्रद्धा, सम्यक् विधि, तल्लीनता तो कहाँ मुझमें; किंतु जैसी मुझसे बन सकेगी, पूरी सचाईसे करूँगी। कल प्रात:से ही प्रारम्भ कर दूँगी।

मुझे प्रीति चाहिये—जन्म-जन्म अपनी इस बाबा वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधाके पदारविन्दोंमें पावन प्रीति चाहिये। भगवती वृन्दा अनुकम्पामयी मुझ बालिकापर प्रसन्न होकर इसीके चरणोंमें मेरी प्रीति सुस्थिर कर दें!



व्योम-वध

मायावियोंका परमाचार्य मय मेरा स्नेह भाजन है तो क्या हो गया। वह परम शैव कभी श्रीकृष्णका शत्रु हो नहीं सकता। उसे तो श्रीकृष्णका संरक्षण ही मिलना है। मयने अपने आराध्यकी इच्छाको सदा सादर सहर्ष स्वीकार किया है। मैंने इसीलिए तो उसे स्नेह दिया; क्योंकि उस परम-शैवने तब भी पाताल-प्रवेशमें कोई खेद नहीं प्रकट किया, जब उसे पता हो गया कि भगवान पुरारि उसके पुत्रोंके साथ त्रिपुर-भस्म करने जा रहे हैं। मय मेरा स्नेहपात्र इसलिए कि अपने उन्मार्गगामी पुत्रोंके प्रति वह कभी ममताग्रस्त नहीं हुआ।

मयका पुत्र व्योमासुर—पितासे मायाकी शिक्षा क्या पा गया, उन्मादी हो गया। इतना तो इसे ध्यान होना चाहिये था कि मुझ सन्धिनी स्वरूपा योगमायाके अधीश्वरके समीप मायाका कौतुक केवल मृत्युका ही कारण बन सकता है।

व्योमकी मायामें मनुष्य मात्र मोहित होते हैं। व्योमकी माया—शब्दकी माया मुनियोंको भी मोहित कर सकती है; किंतु श्रीकृष्णके शरणापन्नोंपर उसका क्या वश? जिनको श्यामसुन्दरके चरणोंका स्वप्नमें भी सान्निध्य प्राप्त हो गया—वाणीकी बकवाद क्यों सुनने लगे वे। उन्हें केवल वाग्जालमें उलझाना असम्भव है। मैं उनकी संरक्षिका हूँ यदि वे कहीं भटकने भी लगें; क्योंकि समस्त श्रीकृष्ण मन्त्रोंकी अधिदेवता होनेके कारण यह मेरा दायित्व है।

व्योमासुर व्यर्थ ही मरने मृत्युलोक नहीं आया। उसके उद्धारका अवसर आ गया था। मय भगवान महेश्वरका परम प्रीति-पात्र—उसीके पुत्रको मायाके मोहजालमें अनन्तकाल तक तो मग्न नहीं रहने दिया जा सकता।

व्योमने कालनेमिको मित्र मान रखा था। कालनेमि कंसके रूपमें धरापर उत्पन्न हुआ, तब भी व्योम अपने मित्रसे मिलना नहीं भूला; किंतु

मथुरा आकर वह लौट जाय अपनी दुष्प्रवृत्तियोंमें मग्न रहने, यह मुझे स्वीकार नहीं। मथुरा मेरे अग्रजकी आविर्भाव भूमि—यहाँ आनेपर प्राणीको उद्धारका पथ प्राप्त होना चाहिये।

कंस अत्यन्त आतङ्कग्रस्त था। वह जिसे भी भेजता था व्रजमें, वह लौटता नहीं था। नन्दनन्दनके समीप जाकर कोई संसारमें लौटा करता है। पूतना, उत्कच (शकटासुर) श्रीधर, काक, तृणावर्त गोकुल गये थे और अब वह प्रमील-वत्सासुर, बकासुर भी व्रज जाकर समाप्त हो गये। दृश्य, अदृश्य, अर्धदृश्य, मनुष्य-पशु-पक्षी किसी भी वेशमें वहाँ जाकर कोई सफल नहीं हुआ और कंसको लगता है कि उसका काल प्रतिदिन-प्रतिक्षण बढ़ रहा है, सबल होता जा रहा है। उसने मित्रको अपनी मनोव्यथा सुना दी। व्योमासुरने उसे आश्वासन दिया। दानवेन्द्र मयके पुत्रपर कंस भरोसा कर सकता था।

व्योम जैसे ही गोप बालक बना, मैं चौंक गयी। मेरी दृष्टि ही दग्ध कर देती उसे; किंतु व्रजमें आकर इसका समुद्धार होना चाहिये और वह करनेमें श्रीकृष्ण ही समर्थ हैं। मुझे उनके भ्रूभङ्गका संकेत भी मिल जाता—मेरा सिंह आतुर हो रहा था उस मायासे गोप बालक बने दानवका रक्तपान करनेके लिए; किंतु इन सर्वलोकेश्वरकी क्रीड़ामें मैं बाधक तो बन नहीं सकती थी।

व्योम गोप बालक बन गया था। इतना समझ गया था कि श्रीकृष्णके सखाओंको कोई शब्द जाल उन दामोदरसे दूर नहीं कर सकता, अतः स्वयं समीप पहुँच गया। श्रीकृष्णने कब किसीको अस्वीकार किया है। कोई भी, कैसा भी हो, किसी भी प्रकार आवे श्यामसुन्दरको अस्वीकार करना नहीं आता। व्योमने जब गोप बालकका वेश बना लिया, बिना पूछे भी वह इन मधुसूदनकी मित्र-मण्डलीमें मिल जाता तो कोई मना नहीं करता। उसने तो सङ्कोचका पूरा अभिनय करते समीप आकर कहा—'दूरके गाँवसे तुम्हारी मित्रता पाने आया हूँ। मुझे भी अपने साथ खेलने दोगे?'

'हाँ-हाँ! आओ!' कृष्णचन्द्रके दीघ दृगोंमें जो किञ्चित् व्यङ्ग झलक गया, उसे केवल मैं लक्षित कर सकती थी। मुझे इनके भ्रूभङ्ग समझनेका अनादिकालसे अभ्यास है। व्योम प्रसन्न हो सकता था मनमें।

उसकी मुट्ठियाँ एक बार कसकर खुल गयीं। मुझे हसी आयी—' यह मूर्ख समझता है कि इसकी योजना कोई जानता ही नहीं।'

सहज सरल गोप बालकोंको यह हृष्ट-पुष्ट सखा अच्छा लगा। श्यामके सभी जनोंका स्वभाव बन जाता है कि जो समीप आवे, उसे स्नेह-से अपना लेते हैं। ये तो सब शिशु हैं, इन्हें अपने-परायेका भेद पता ही नहीं।

' क्या खेलोगे तुम ?' नवीन सखाको सम्मान देनेके लिए नन्दनन्दन-ने पूछा। अच्छा है कि आज इनके अग्रज नहीं आये हैं वत्स-चारणके लिए। अपने जन्म-नक्षत्रके कारण उन्हें रुकना पड़ा है, अन्यथा व्योमका वे क्या बनाते--कहना कठिन है। मैं भी उनके स्वभावके सम्बन्धमें कभी पूर्वानुमान नहीं कर सकी। वे शान्त रहें, सह लें तो बड़े-से-बड़े अपराधोंपर दृष्टि न उठावें और न सहें तो अनुजके प्रति किञ्चित् अवमानना असह्य हो जाय उन्हें। वे जब आवेशमें आते हैं, उनके असीम तेजको सहनेमें कौन समर्थ है ? उस समय उनके सम्मुख जानेका साहस मैं अपनेमें नहीं पाती, यद्यपि अनुजा होनेके कारण मैं नित्य उनकी अनुग्रह-भाजना हूँ।

' हम सब भेष-चौर्य खेले !' व्योमने प्रसन्न होकर प्रस्ताव किया— ' तुम सबको न आता हो तो मैं बताऊँगा। बहुत आनन्द आवेगा।'

आते समय गिरिराजमें एक गम्भीर गुफा यह देख आया है। उसके द्वारको पूर्णतः अवरुद्ध कर सके ऐसी भारी शिला समीप रख आया है। अपनी योजना पहिले ही बना चुका है। लेकिन मेरे इन लीलमय अग्रजकी योजना क्या है ?

' हम सब खेलेंगे, तुम बतलाओ !' कृष्णचन्द्र प्रसन्न हैं। नवीन सखाओंको प्रोत्साहित कर रहे हैं।

' सीधा-सा खेल है।' व्योमने बतलाया—' दस चोर, दस रक्षक और शेष सब भेड़ें। भेड़ बने मित्र हाथ पैरोंसे चलेंगे। सब सटे रहेंगे, पर चारों ओर मुख किये इधर-उधर थोड़ा चलते रहेंगे। रक्षक लकुट लिये उनको चरावेंगे, रक्षा करेंगे। चोर कुञ्जोंमें छिपे रहेंगे और अचानक आकर जिस भेड़को छुएँगे, वह उनके साथ भागती जाय। उस बालकको चोर जहाँ बैठा देंगे, वह तब तक बैठा रहे, जब तक रक्षक ढूँढ़कर उसका स्पर्श न कर दें। फिर आकर भेड़ोंमें वह मिल जायगा। यदि चोर सब

भेड़ें चुरा ले जा सकें तो वे जीतेंगे और यदि रक्षक सब चुरायी भेड़ें ढूँढ़ लें तो वे जीतेंगे।'

'कौन रक्षक बनेंगे कौन चोर?' भद्रने पूछ लिया।

'मैं चोर बनता हूँ और इनको रक्षक बना दो।' व्योमने कहा—'मेरे साथ नौ और आ जाओ जिसका जी करे और इनको अपने साथी छाँट लेने दो।'

व्योमको पञ्च महाभूत - पञ्च तन्मात्राकी दस संख्या स्वभावसे स्मरण आ गयी थी। वह अपनेको अब प्रधान दिखलाने लगा था प्रोत्साहन प्राप्त करके। दल बननेमें देर नहीं लगी। लकुट लेकर रक्षक बने श्रीकृष्ण—ये गोपाल सदासे ही तो पशुप्राय प्राणियोंके यही रक्षक हैं।

व्योम बहुत सावधानी रख रहा था। उसने अपने दलके साथियोंको भी अपनेसे पृथक विभिन्न दिशाओंमें नियुक्त कर दिया। वह भेड़ बने बालकको स्पर्श करके अपने साथ ले जाता था और तनिक आड़ मिलते ही माया मोहित करके उस गुफामें रख आता था। गुफा-द्वारपर-से बार-बार शिला हटाने तथा फिर द्वार बन्दकर देनेमें उसे कोई श्रम नहीं होना था।

मैं इन व्रजराज-कुमारकी क्रीड़ामें बाधक नहीं बन सकती थी। इन बालकोंको गुफामें कष्ट न हो, इसलिए व्योमकी मायासे ये मूर्छित बने रहें, इसका मैंने मूक समर्थन कर दिया। अन्यथा दानवकी माया मेरी अनुज्ञाके बिना श्यामके सखाओंका स्पर्श करनेमें असमर्थ थी। दानव यदि कोई भी क्रूरता करना चाहता इन बालकोंके साथ तो मैं क्षणार्धमें उसे अपने खप्परकी अग्निमें आहुति बना देती; किंतु वह अभी केवल मूर्छित करके इनको गुहामें अवरुद्ध कर रहा था। यह तो उस मूर्खकी मान्यता थी कि 'इनको यहाँसे कोई निकाल नहीं सकेगा और ये क्षुधा-पिपासासे ही मर जायँगे।'

व्योम श्रीकृष्णको अकेला करके पकड़ना चाहता था। वह भेड़ बने बालकोंको शीघ्रतासे ले जा रहा था। दूसरे चोर बने बालक जिन भेड़ बने बालकोंको ले जाते थे, प्रायः रक्षक बालक उन्हें ढूँढ़ लेते थे। किसी चुरायी गयी भेड़के मिलनेपर सब प्रसन्न होते थे। ताली बजाते थे, हँसते थे।

लकुट लिये, कटिकी कछनीमें मुरली लगाये, पीठपर अलकें लहराते वनमाली मयूर मुकुटी ये भुवनसुन्दर सखाओंके साथ इधरसे उधर दौड़ रहे हैं। रक्षक मित्रोंको उत्साहित कर रहे हैं– 'सुबल, उधर ध्यान रख ! भद्र, वह कहाँ ले गया होगा इस बार भेड़को ? तू उस कुञ्जको देख तो सही।'

रक्षक बालकोंमें अधिकांशको कुञ्जें देखनी रहती हैं। वे जाते हैं एक ओर तो चोरोंको अवसर मिल जाता है। रक्षकोंको समीप आते देख चोर भाग खड़े होते हैं तो रक्षक हँसते हैं।

'यह नया सखा बहुत चतुर है और बहुत स्फूर्ति है इसमें !' सुबल अभी प्रसन्न है। व्योमके कपटको यह सरल क्या समझे।

'तुम इतने समीप भेड़ लाकर क्यों बैठाते हो कि रक्षक ढूँढ़ लेते हैं ?' व्योमने चोर बने एकसे कहा—'मेरी लायी भेड़ें तो कोई ढूँढ़ ले।'

'तुम कहाँ बैठाते हो उनको ?' बालकने सहज उत्सुकतावश पूछा।

'चलो, दिखा दूँ तुमको !' व्योम उसे साथ ले चला, परन्तु थोड़ी दूर ले जाकर उसे भी माया-मोहित करके गुफामें धर आया।

'कनूँ ! अब अपनी भेड़ें तो केवल दो रह गयीं और चोर बने बालकोंमें भी सब कहाँ चले गये ?' भद्र सशङ्क हुआ—'अकेला उज्वल नये सखाके साथ चोरी करने आता है। अपने भी रक्षक साथी पता नहीं कितनी दूर कुञ्जोंमें ढूँढ़ने चले गये। उनको तो लौटना चाहिये था। इतनी देर तो उनके लौटनेमें नहीं लगनी चाहिये ?'

'अच्छा देखें कि यह नया सखा कहाँ भेड़ें ले जाता है। इसीको ढूँढ़ना चाहिये।' अब व्योमके व्यामोह भङ्गका समय समीप आ गया। ये ढूँढ़ने चले तो वह कहाँ छिपेगा ?

'कनूँ ! यह उज्वलको क्यों पीठपर लादे जा रहा है ? उज्वल तो चोर बना था। इसके दलका है। उज्वल हो कैसा रहा है ?' भद्रने केवल एक बार देखा श्यामकी ओर और उसे नये सखापर सन्देह हो गया।

भद्र दौड़ने वाला था लकुट लेकर। वह आगे जाकर रोककर पूछना चाहता था नये सखासे—'तू इसे कहाँ ले जा रहा है ? इसे क्या हो गया ?'

कहाँ अवसर मिला भद्रको। सहसा कन्हाई सिंहके समान कूदा और नये बालकको इसने धर दबाया। उज्वल उसकी पीठपरसे छूटकर भूमिपर गिर पड़ा। श्रीकृष्णका अङ्ग-स्पर्श मिलनेपर दानवकी माया टिकती ? वह तो श्यामके समीप पहुँचते ही समाप्त हो गयी। उज्वल उठ खड़ा हुआ। वे भेड़ बने बालक तोक, देवप्रस्थ भी भाग आये समीप।

'यह तो दैत्य है !' तोक चिल्लाया और दौड़ा अपना लकुट लेने। श्रीकृष्णके करोंमें पड़ते ही व्योमने अपना विकराल रूप प्रकट कर दिया।

'तुम सब दूर रहो !' लकुट लेकर आते भद्रको मधुसूदनने मना कर दिया। दानव व्योम-विशाल कज्जल कृष्ण काया, भयङ्कर नेत्र-दंष्ट्रा, अरुण केश और अखिल भूमण्डल अपने मित्र कंसको दे देनेका अहङ्कार—अब तो यह छटपटा रहा है। इसे व्रजेन्द्र-नन्दनने पटक लिया है ओर वाम करसे कण्ठ पकड़ रखा है इसका। चीत्कार भी नहीं निकल सकती मुखसे। फटे-फटे नेत्र बाहर निकल आये हैं।

चरणोंके और दक्षिण करके थप्पड़, घूसोंके अनवरत आघात—यह हुंकार—'तू मेरे सखाओंका अपहरण करने आया है !'

इतना क्रोधारुण मुख, ऐसी कुटिल भौंहें, ये दाँतोंसे दबे अधर, यह काँपता श्रीअङ्ग और यह हुंकार—भयभात तो मैं और मेरा सिंह हो रहा है जो मृत्युको मुखमें लेनेको दौड़ सकता है तो बेचारा भद्र और उसके साथियोंका भय-स्तब्ध हो जाना क्या आश्चर्यकी बात है। वे समझ ही नहीं पाते कि उनके सुकुमार सखाको क्रोध भी आता है। इन सर्वेश्वरेश्वर-को इतना क्रुद्ध तो मैंने भी कभी नहीं देखा। इनको क्रोध ? इनको ही क्रोध आवेगा तो कृपण प्राणीको कृपा किससे मिलेगी ? किंतु ये भक्तवत्सल भक्तापराध क्षमा नहीं कर पाते और यही भयानक भूल भ्रमवश व्योमने कर डाली है।

वज्र भी पड़े शक्रके करोंसे पूरी शक्तिके साथ तो ऐसा नहीं होगा जसे इनके घूसे, थप्पड़, पदाघात पड़ रहे हैं। दानव व्योमका अस्पष्ट 'गों-गों' भी समाप्त हो गया। वह पैर पटकता, इससे पहिले उसके पदों-की अस्थियाँ इनके पदाघातसे चूर-चूर हो गयीं उसके दोनों हाथ मरोड़-कर तोड़ दिये इन्होंने। वह तो कबका मर चुका; किंतु क्रोधाधिक्यमें

उसकी काया इनके अनवरत आघातसे फटती जा रही है—लोथड़ा बन चुकी है।

'मार भी दे इसे!' भद्रको दया आ गयी। उसका सखा इतना निष्ठुर है? आगे बढ़ा वह लकुट उठाये—'तू नहीं मारता तो मैं मार देता हूँ।'

सखाके मुखपर दृष्टि न जाती तो पता नहीं कब इनका क्रोध शान्त होता। चरणोंकी ठोकर देकर व्योमका फटा, रक्त लथपथ शरीर फेंक दिया। स्वयं रक्तसे सम्पूर्ण स्नात हो गये हैं।

व्योमकी यह कुत्सित काया—लेकिन यह कुत्सित तो कभी थी। श्रीकृष्णके स्पर्शसे पवित्र हो गयी यह। अब मेरा केशरी इसे आनन्द पूर्वक आहार बना लेगा। व्योमकी कायाका कुछ भी होता, अब उसे क्या? वह कहाँ अब इस कायाकी ओर देखने चला है। इतना क्रोध, इतना आक्रोश; किंतु इन व्रजराज कुमारका श्रीविग्रह ही कृपामय है। किसीको अपनाकर त्यागना इन्हें आता नहीं। दानव व्योम अवश्य मर गया; किंतु उसके चेतनका तो दिव्यीकरण हो गया। वह सखा बनकर आया था। गोलोकमें उसे गोपकुमारका—इनके नित्य सखाका स्वरूप प्राप्त हो गया। धन्य हो गया मयका पुत्र।

'अपने सखा कहाँ हैं?' भद्रको सखाओंकी चिन्ता है। उसे उत्तर नहीं मिला; किंतु कन्हाई दौड़ता चल पड़ा है तो उसे तथा साथके बालकोंको पीछे दौड़ना ही है।

गुफा द्वारकी शिला सूखे पत्तेके समान एक ओर फेंक दी श्रीव्रजेन्द्र-नन्दनने और गुफामें प्रवेश किया। बस—बालकोंकी मूर्छा समाप्त! दानव-की मायाका प्रभाव तो तभी मिट गया जब श्रीकृष्णने उसे पटका वह व्याकुल हुआ। उसके सङ्कल्पसे समुद्भूता माया तो उसके मनके सन्त्रस्त होते ही समाप्त हो गयी; किंतु बालक उस समय सचेत हो जाते तो बन्द गुफामें बहुत व्याकुल होते। उन्हें कुछ क्षण और सुषुप्त रखनेकी सेवा मुझे करनी ही चाहिये थी।

भव महागुहाका मोह-विधान फेंककर जो सदासे स्वाश्रित जनोंको प्रबुद्ध करने पधारता है, वह पहुँच गया आलोक स्वरूप तो अज्ञानान्धकार-

की सत्ता कहाँ ? बालक एक साथ उठे और प्रायः सबने पुकारा—'कनूँ ! वह नया सखा गोप बालक नहीं है। वह कोई दुष्ट है। वह हम सबको यहाँ बन्द कर गया।'

'तुम सब यहाँ और मत सोओ ! अपने बछड़े पता नहीं किधर गये होंगे ! ' अब ये लीलामय ऐसे बन गये हैं, जैसे कुछ नहीं जानते।

'इसने उस दुष्टको मार दिया। वह तो बड़ा भारी राक्षस था। वहाँ थोड़ी दूरपर पड़ा है उसका लोथड़ा।' तोक कूद-कूद कर बतलाने लगा है कि उसके कन्हाईने राक्षसको कैसे मारा।

'यह बहुत निष्ठुर है !' भद्रको अब भी सखाका वह क्रोध भूलता नहीं है—'बेचारे राक्षसको इसने बहुत तड़पा-तड़पा कर मारा।'

गोप कुमारोंकी सुकुमार दृष्टिमें वह फटा, विकृत दानव देह क्यों आये ? मेरे केशरीने शीघ्रतापूर्वक उसे सार्थक कर दिया। अन्ततः श्रीकृष्ण-ने जिसे स्वयं मारा, उसके देहको शृगाल, गीध, काक नोचकर खायें—यह तो नहीं हो सकता था और अपने अग्रजके आखेटपर तो अनुजाका अधिकार है ही।

'तुम सब इसको अङ्कमाल देकर अपवित्र हो गये ! सबके शरीरोंमें असुरका रक्त लग गया। अब सब स्नान करके शुद्ध बनो।' मधुमङ्गल ऐसे अवसरों पर महापण्डित बन जाया करता है। मुझे यहाँसे कहीं जाना तो है नहीं; किंतु दानवेन्द्र मयको सुसमाचार दे देना है कि उसके पुत्रका आसुरी योनिसे उद्धार हो गया। वह परम शैव इससे प्रसन्न होगा।



अघोद्धार

अत्यन्त अप्रिय कार्य है मुझे ; किंतु कोई उपाय नहीं, न्यायका कार्य--दूसरोंके गुण-दोष-दर्शनका दायित्व मुझे दे दिया गया। सेवामें प्रिय-अप्रिय क्या ? सर्वेश्वर ही सब रूपोंमें सदा-सर्वत्र क्रीड़ा करते हैं, परंतु उन अन्तर्यामीने अपनी इस क्रीड़ाके लिए स्वयं कुछ नियम निर्धारित किया और उस श्रुति-शास्त्र रूप अपनी ही वाणीमें आबद्ध होकर मुझे निर्णायक बना दिया। मैं उनकी सेवा करता हूँ। इस सेवाका प्रसाद प्राप्त हुआ है मुझे—उन अपार करुणावरुणालयने मुझे अपना माना है। भगवती भक्ति देवीके पावन-पथके द्वादश प्रदर्शकोंमें एक मेरा भी नाम है।

प्राणी विषयोंके प्रलोभन-वश इन्द्रियोंके असंयमके कारण पाप करता है। पुण्य तो परिणाममें सुखद है। प्रारम्भमें प्रायः पीड़ाप्रद ही प्रतीत होता है। अतः मनुष्य बहुत अभ्याससे, सत्संगति-शुद्ध अन्तःकरण होने पर पुण्यकर्मोंमें प्रवृत्त होता है ; किंतु पाप तो प्रलुब्ध करता है। अघका आपात रमणीय आकर्षण मनुष्यको अकस्मात् अधिकांशतः अनजानमें ही अपने उदरमें लेकर आत्मसात् कर लेता है।

पापके पेटमें गया और पतनके गर्भमें गिरता चला गया। पुनरुत्थान प्रायः अशक्यप्राय हो जाता है। तब तो नरकाग्निमें पुनः-पुनः पचना और बार-बार पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गादि योनियोंको पाते रहना ही प्राणीका प्रारब्ध बनता रहता हैं।

पाप प्रलुब्ध करता है पुण्यात्माओंको भी। प्रबल मनोबल, दृढ़ संयम, सतत सत्संग, सबल शास्त्र-निष्ठा साधन हैं अघके आकर्षणसे सुरक्षित रहनेके। किञ्चित शैथिल्य आया और पद प्रकम्पित हुए तो गये पतनके गम्भीर गर्तमें !

सच्चे सत्पुरुष तो श्रीहरिके अभिन्न स्वरूप हैं। उनकी अनुकम्पा और कृष्ण-कृपा कभी दो तो होती नहीं। यह जिन्हें प्राप्त है, सृष्टिमें वे सर्वथा सुरक्षित हैं। लेकिन सबल वे हैं जो श्रीकृष्णके अपने हैं। वे नितान्त

निर्भय—पाप-पुण्य बना करता है उनकी पद-रजके प्रसादसे। वे अघके उदरमें पहुँच जाय तो अघको ही मरना पड़ता है ; क्योंकि अघारि उनका अपना स्वभाव है और उस यशोदा—अङ्कधनका स्वभाव है कि जहाँ उसके सखा, सेवक, उसका स्मरण, वह वहाँ स्वयं। जहाँ स्वयं परात्पर परम पुरुष पुरुषोत्तम पहुँचेगा, वहाँ पुण्य ही प्रवेश नहीं पाता तो पापके पङ्कका लेश कैसा। वहाँ एकमात्र आनन्द—अविकल उन्मुक्त रसराजकी क्रीड़ा।

अघ—पापका परमाधिष्ठाता भी मर जाता है यदि वह श्रीनन्द-नन्दनके स्वजनोंके पथमें पड़ जाय और वे उसे अपनी क्रीड़ाके लिए अपनाना चाहें। श्यामके सखा जहाँ जिससे खेलना चाहें, वहाँ उसे उनका केवल क्रीडनक बन कर रहना है। पुरुषोत्तम जिनका प्राणधन है, उनके पद पहुँच जायँ तो पापको पुण्य बनना पड़ता है। अघको मरकर निष्प्राण होकर उनका आक्रीड़-गह्वर होनेको बाध्य होना पड़ता है। पापकी प्रलोभिका शक्ति—उसका बाह्याकर्षण, आपात रमणीय रूप—रस सूख जाता है। मर मिट जाता है उसका विष, उसकी दुर्गन्धि, दग्ध हो जाती है उसकी दुःखदायिनी अन्तर्हित शक्ति। वह केवल कङ्काल—क्रीड़ा कौतुकमात्र रह जाता है; क्योंकि जो कृष्णके अपने हैं, वे उसके कङ्कालसे क्रीड़ा करना चाहते हैं।

कभी व्रजमें यह घटना घट गयी, सो नहीं। मैं कर्म-नियन्ता जानता हूँ कि यह श्रीकृष्ण स्वाश्रितोंके लिए सदा यही करते रहते हैं ; किंतु व्रजमें कुछ व्यापक रूपमें घट गयी उस दिन और अपनी अनुजाकी अनुकम्पासे मैं भी उसकी झाँकी पा गया।

मेरी अनुजा कालिन्दी कबसे कठिन तप करती इन्द्रप्रस्थमें यमुना जलमें स्थित है।* व्रजमें अपनी अधीश्वरी श्रीवृषभानुकुमारीकी सेवामें संलग्न रहना उसका सौभाग्य और यह मेरा सौभाग्य भी बन गया, अन्यथा यमकी काली छाया व्रजमण्डलके गगनको भी नहीं छू सकती। सुर विमानों पर बैठे प्रायः श्यामसुन्दरकी क्रीड़ा देखने यहाँ नभमें बने ही रहते हैं, लेकिन मैं महिष-वाहन बनकर तो यहाँ प्रवेश ही नहीं पा सकता। भगवती योगमाया यमुनाका अग्रज होनेके कारण मुझे आ जाने देती हैं और सुरोंके

* यह पूरी कथा 'श्रीद्वारिकाधीश' में गयी है।

समान गगनसे नहीं, अदृश्य रहकर समीपसे भी साक्षात्कारका सुअवसर मुझे सुलभ हो गया है।

अपनी अनुजाके इन सौभाग्य सर्वस्वकी मङ्गल-क्रीड़ा किसे आकर्षित नहीं करती। मेरे तो ये सदाके आराध्य हैं ; किंतु आजकल इन्हें मैयाको खिझा देना अच्छा लगता है। ये लीलामय—मैया नहीं चाहतीं कि ये वनमें वत्स-चारणके लिए जावें और इन्हें धुन चढ़ी है कि मध्याह्नमें भी नहीं लौटेंगे। अब जननी खीझती हैं, चिन्तित होती हैं, पर करें क्या, उनके ये लाड़िले मानते कहाँ हैं।

कई दिनोंसे चल रही है माता-पुत्रकी यह प्रेम-कलह। मैया चाहती हैं कि ये वनमें जाते ही हैं तो प्रथम-प्रहर व्यतीत होते ही लौट आवें और ये हैं कि मध्याह्नमें भी नहीं लौटते। बार-बार सेवक जाते हैं। व्रजेश्वरी दोनों देवरोंको भी भेजकर देख चुकीं ; किंतु कृष्णचन्द्र किसीकी नहीं सुनते। वनमें सखाओंके साथ स्वच्छन्द विचरणको छोड़कर क्यों गृह लौट आवें। अब वनमें ही छाक तो भेजनी ही पड़ती है।

'सब पुरुष एक-से हैं।' व्रजेश्वरी कहती हैं रोहिणी मातासे तो मुझे हँसी आती है—' महर और देवर सब कह देते हैं कि 'बालक वनमें प्रसन्न हैं तो उनकी क्रीड़ामें बाधा नहीं देना चाहिये। वहाँ वे खेलते-कूदते, वृक्षोंपर चढ़ते हैं। इससे उनके अङ्ग बलवान बनते हैं। गोप बालकोंका वन-प्रेम उत्तम ही है।' इनमें कोई नहीं समझता कि नीलमणि कितना सुकुमार है। कितना श्रान्त लौटता है सदा। वनमें दौड़ते-दौड़ते थक जाता है। वहाँ कण्टक हैं, कङ्कड़ हैं, पता नहीं कितने कटु-कुपथ्य फल-पुष्प हैं। बालकोंको कुछ ध्यान रहता है ? समीपके ही वनमें ये रहेंगे, इसका कुछ ठिकाना है ? बछड़े कहीं भी भाग कर जा सकते हैं और ये सब उनके पीछे दौड़ेंगे।'

मयाकी समस्याएँ अनन्त हैं। वे दिनभर इन्हीं चिन्ताओंमें अशान्त रहती हैं। दूसरी ओर उनके ये लाल हैं कि प्रातः-सायं प्रतिदिन मैयासे खीझते हैं मैया इन्हें सबसे पहिले क्यों जगा नहीं देती। दाऊ दादा पहिले उठकर मुख धोकर शैयाके समीप आ खड़े हों तब उठा जाय, यह भी कोई बात है। सब सखा गोदोहन करके आ जाते हैं तब कहीं कलेऊ करना पड़ता है, यह इन्हें स्वीकार नहीं है। सायं प्रतिदिन मैयाको सावधान करते हैं कि इन्हें शीघ्र जगा दे।

मैयाको लगता है कि गायें बहुत अँधेरे हुङ्कार करने लगती हैं। दाऊ पता नहीं क्यों शीघ्र उठ जाता है। नीलमणि तनिक और सोता रहे, इतना सबेरे न उठे तो अच्छा और कलेऊ तो यह सखाओंके बिना कर ही नहीं पाता।

'कल सब वनमें ही कलेऊ करेंगे !' अब यह नवीन योजना बालकोंने बना ली है। सायङ्काल ही मैयासे कह दिया—'मेरा छीका सजा देना। मैं उसे अपने आप ले जाऊँगा। कल मुझे दादासे पहिले उठा देना !'

'कल दाऊका तो जन्म नक्षत्र है। वह नहीं जायगा वनमें।' मैयाने कहा—'तुम सब कल यहीं रहो !'

'मैं जाऊँगा। सब सखा जायँगे। तू मेरा छीका अभी भर दे !' श्यामसुन्दरकी चले तो छीका सिरहाने रखकर सोयें। वंशी, लकुट तो शैयापर रखकर सोये ही, शृङ्ग भी साथ रख लिया।

अब व्रजेश्वरीको बाध्य होकर बहुत प्रातः उठकर विविध पक्वान्न बनाने हैं। छीका तो विशाल ले जायगा ; किंतु श्यामका छीका भरा नहीं गया तो रूठ सकता है यह और क्या पता—घरसे भेजा गया कलेऊ लेना अस्वीकार ही कर दे। बालकोंको भूख लगेगी तो कच्चे-पक्के फल खाने लगेंगे। इससे अच्छा है कि इनके साथ उत्तम कलेऊ दिया जाय। अब ये मध्याह्नमें तो लौटते नहीं।

'धू ! धूतू धू !' सचमुच श्यामसुन्दर बहुत शीघ्र प्रातः उठ गये। सबसे पहिले बड़े भाईके साथ गोदोहन समाप्त किया और मैयासे छीका माँगने लगे। शृङ्ग बजाकर सखाओंको पुकारने लगे। अत्यन्त प्रसन्न हैं आज सबसे प्रथम उठकर।

इनका शृङ्ग पुकार रहा है ! जगा रहा है ! यही तो सदा अज्ञान-निद्रामें निमग्न प्राणीको पुकार कर जगाते हैं। ये न पुकारें तो क्या अनन्त-कालसे इनसे पराङ्मुख प्राणी इनकी ओर उन्मुख होकर इनका अनुगमन कर पाता है। ये शृङ्ग बजाकर जगा रहे हैं ! पुकार रहे हैं सदा-सदासे सबको। आओ और इनके साथ आनन्द-क्रीड़ा करो !

सभी बालकोंने अपनी माताओंको सायङ्काल ही कह दिया था कि वे कलेऊ साथ ले जायँगे। सब घरोंमें रातमें ही विविध व्यञ्जन बन गये।

आज बालकोंने शृङ्ग, वेत्र, रज्जुके साथ रङ्ग-बिरंगे छीके लटकाये हैं कन्धोंपर। सब शीघ्रतापूर्वक घरोंसे निकले। सबके सहस्र-सहस्र अनेक रङ्गोंके बछड़े कूदते-फुदकते पथपर आ गये और दौड़े नन्द-भवनकी ओर।

'लाला रे ! सब मिलकर कलेऊ करना।' मैयाने छीका विशालको सम्हलाया—'आज दाऊ नहीं जा रहा, तू अपने इस छोटे भाईको सम्हालना। इसे वृक्षपर मत चढ़ने देना। धूपमें सब मत खेलना। कहीं पानीमें मत उतरना और वनके फल मत खाना !'

मैयाको पता नहीं कितनी बातें कहनी हैं। कितनी ही सूचनाएँ देनी हैं। सभी सखाओंसे श्यामको सम्हालनेका अनुरोध करना है; किंतु बालकोंको तो वनमें भागनेकी शीघ्रता है। कोई ध्यान ही नहीं देता मैया-की सूचनाओंपर। सब 'हाँ हूँ' कर देते हैं।

'मैं इसे साथ ही रखूँगा !' भद्र आश्वासन देता है; किंतु मैया बालकोंके आश्वासनपर भरोसा कहाँ कर पाती है।

'बछड़े कहीं भाग भी जायँ तो वनमें मत भटकना। वे अपने आप आ जायँगे या गोप उन्हें लावेंगे। तुम सब बछड़ोंकी चिन्ता मत करना। परस्पर झगड़ना मत !' बाबाको भी प्रतिदिन बहुत-सी बातें बालकोंको बतलानी रहती हैं और बीच-बीचमें तो गोपोंको भेजना ही है कि बालकों-को देख आवें। स्वयं अपना मन भी बाबाका कहाँ मानता है। बालकोंको सङ्कोच न हो, इतनी दूरसे देख आते हैं कई बार। सबको समीप ही रहने-को सचेत भी कर आते हैं।

× × ×

कपि प्रातः आ पहुँचते हैं और इन्हें भवनोंपर कूदते साथ ही जाना है। पथके दोनों ओर गोप खड़े रहते हैं। द्वारपर गोपियाँ खड़ी रहती हैं और भवनोंके गवाक्षोंपर कुमारियाँ दृष्टि लगाये रहती हैं। नन्दनन्दन वनमें जाते हैं, मानो बहुत दिनोंके लिए विदा हो रहे हों। दृष्टि पथसे हृदयमें इनकी यह शोभा बैठा लेनी है।

अनेक रङ्गोंके बछड़े-बछड़ियाँ पूँछ उठाये फुदकते आगे जा रहे हैं। इन सहस्रोंमें-से प्रायः सभी बार-बार पीछे लौटते हैं और श्यामको सूँघकर कूदते हैं। कोई हाँकनेको वेत्र उठाये तो उस वेत्रको ही सूँघ लेना चाहते

हैं ! इनके पीछे मयूर मुकुटी , वनमाली कृष्णचन्द्र सघन अलकावलीसे घिरा चन्द्रमुख , भालपर गोरोचन-तिलक , बड़े-बड़े चपल लोचनोंमें अञ्जन। कण्ठमें कौस्तुभ , मुक्तामाला , कन्धेपर पट्टुका , कटिमें पीली कौशेय कछनी , भुजाओंमें रत्नाङ्गद । कङ्कण , किङ्किणी भूषित ये भुवन मोहन। कछनीमें मुरली, कक्षमें श्रृङ्ग, वाम स्कन्धपर वेष्टित रज्जु, करमें अरुण वेत्र दण्ड । इनके पीछे सहस्रों सुन्दर बालक और सबके कन्धोंपर छीके हैं अनेक रङ्गोंके । बिना छीके केवल दो हैं, ये स्वयं और मधुमङ्गल । ब्राह्मण मधुमङ्गल तो क्रीड़ाके लिए ही आता है । उसे कहाँ वत्स-चारण करना है और वह छीका क्यों लाये ? उस अग्रभोजीका स्वत्व तो सबमें है ।

वनके सब पशु-पक्षी स्वागतमें वन सीमापर समुद्यत मिलते ही हैं। अनेक दौड़कर आगे आकर बछड़ोंमें मिल जाते हैं और पक्षी गगनमें उड़कर वितान ही नहीं बनाते, बछड़ोंकी पीठपर भी आ बैठते हैं ।

बालकोंको वनमें क्रीड़ा ही तो करनी है। ये वन पुष्प, कटेरी, त्रिपतिका, गुञ्जादिके फल, किसलय, वनधातु ढँढ़ेंगे। परस्पर श्रृङ्गार करेंगे। मधुमङ्गलके उदरपर नन्दनन्दन रामरज, गैरिकसे भारी कपि बनावेंगे तो भद्र उसके कपोलपर काली पिपीलिकायें अङ्कित करेगा । तोक उसकी पीठपर काक बनाकर कूदेगा-हँसेगा। सब एक दूसरेको अलंकृत करेंगे, उनके अङ्गोंपर चित्र-रचना करेंगे ।

दोनों हाथ फैलाकर घूमना और गिरकर हँसना, पशु-पक्षियोंके साथ दौड़ना, नृत्य करना, गायन, कपियोंके साथ वृक्षोंपर चढ़ना तो नित्यकी क्रीड़ाएँ हैं । आज एक नवीन विनोद सूझा है बालकोंको । अवसर पाते ही किसीका छीका उठाकर भाग पड़ते हैं और वह समीप आता है तो छीका दूसरेको पकड़ा देते हैं । ताली बजाते हैं, हँसते हैं । कइयोंने दूसरे सखाओंके छीके छिपा दिये हैं। भद्रने अर्जुनके छीकेकी सब सामग्री अपने, ऋषभके और विशालके छीकेमें भर ली और अब चिढ़ा रहा है अर्जुनको—'तू घरसे खाली छीका लाया था या कोई कपि तेरा कलेऊ खा गया ?'

कपि , काक , गिलहरी अथवा कोई पशु-पक्षी तो इन बालकोंके शाखाओंपर लटकाये छीकोंको छुएगा भी नहीं। पिपीलिका तक नहीं सूँघेगी कोई पदार्थ । ये दें तब भी कोई प्राणी यहाँ ऐसा नहीं जो इनके बिना कलेऊ किये कुछ मुखमें डाल ले । ये जन्म-जन्मके हरिभक्त यहाँ आ

गये हैं अनेक रूपोंमें अपने इन आराध्यके सान्निध्यके प्रलोभनवश, यह मैं जानता हूँ। ये सदाके प्रसाद-ग्रहणके व्रती, इनको तो इन बालकोंका केवल उच्छिष्ट चाहिये।

× × ×

'गगनमें यह इतनी हलचल क्यों? देवता आतङ्क-ग्रस्त क्यों लगते हैं?' मैं बहुत देर तक देख ही नहीं सका कि नभमें सुरोंके विमान भी आ गये हैं। श्रीकृष्णचन्द्र सम्मुख हों तो दृष्टि अन्यत्र कहाँ जाती है। ये कुञ्ज-में तनिक गये, तब मुझे अपनी सुधि आयी। सुर दीखे और देवताओंकी सशङ्क दृष्टिका लक्ष्य क्या है, यह मैंने देख लिया। अमृतपान करके भी अमर आशङ्कित रहते हैं अघासुरसे। जिस पुण्यने अमरावती पहुँचाया, पापका यह अधिष्ठाता उसे पचा जा सकता है और तब पतन अनिवार्य हो जायगा। अतः अमरोंकी आशङ्का उचित ही है। अघासुर इनके लिए अदम्य आतङ्क है।

मेरी बात मेरे कृपामयने—इन मेरे आराध्य पुरुषोत्तमने ही पृथक रखी है। मैं तो इनका पदाश्रित हूँ। पाप-पुण्यके निर्णायक संयमिनीके स्वामीको कर्मस्पर्श नहीं किया करते। मेरे सामने तो इस अघासुरका इतिहास भी स्पष्ट है –

शङ्खासुरका अत्यन्त सुन्दर पुत्र मलय-पर्वतपर पहुँचा और अपने अभाग्यके कारण अष्टावक्रजीका अनुकरण करनेकी सूझ गयी उसे। खर्वाकृति, काले कुरूप, कई स्थानोंसे वक्र-विकृत देह; किंतु अमित तेजस्वी महामुनि अष्टावक्रकी गति—उनके चलनेका ढङ्ग शरीरके वक्र होनेसे अटपटा है। असुर कुमार उनको दिखाकर उनके समान ही मचकते हुए अटपटा टेढ़ा-मेढ़ा चलने और हँसने लगा। अष्टावक्रजीको रोष आ गया—'अरे दुर्बुद्धि! तू पापियोंके समान कायाको ही देखता है और सर्पके समान वक्र चलकर मेरा उपहास करता है, अतः अघका अधिष्ठाता अजगर हो जा!'

मदान्ध दुर्मति दुष्टोंको दण्ड ही निर्दोष दृष्टि दे पाता है, यह मैं दण्डधर भली प्रकार जानता हूँ। महर्षिके शापको सुनते ही असुरका अहङ्कार नष्ट हो गया। वह आर्त होकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा—'अघके अधिष्ठाताका उद्धार कौन करेगा प्रभु?'

ऋषि भी शाप देकर सचिन्त हो गये। उनकी सन्निधि किसीके क्लेशका --पतनका कारण तो नहीं होनी चाहिये ; किंतु पापीका परित्राण हुआ करता है, पापके अधिष्ठाताका परित्राण ? पापको पुण्य बनानेवाला कौन ? श्रुतिमें भी कोई साधन नहीं। कई घटिकाओं तक महर्षि वहीं ध्यानस्थ रहे। अन्तमें नेत्र खुलनेपर बोले—' सर्वसमर्थ सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट होंगे तब तुम्हारा समुद्धार होगा। तुम प्रतीक्षा करो और मैं भी तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा ! '

महर्षि अष्टावक्रके शापसे यह असुरकुमार एक कोस लम्बे शरीरका अजगर बन गया। कंसकी दिग्विजय यात्रामें वनमें इसने उसे लपेटा तो कंसने इसे इतना मर्दित किया कि मरने लगा। इसे मथुरा ले आया वह अपने कण्ठमें लपेटकर माला बनाकर।

महर्षि इसके परित्राणके लिए मलय पर्वतपर परमपुरुषसे प्रार्थना कर रहे हैं युगोंसे। आज यह कंसकी प्रेरणासे यहाँ आया है। कंस अघासुर-को व्रज भेजकर अपने असुर साथियोंके साथ आज अशङ्क अट्टहास कर रहा है। वह समझता है कि यह उसे लौटकर सफल होनेका समाचार देगा।

अघके अधिष्ठाताको अहिंसा तो प्रिय नहीं होगी ? अजगरका आहार ही प्राणी हैं और व्रजराजकुमारने तो इसके अग्रज बक तथा बड़ी बहिन पूतनाको मार दिया है। यह अपने बड़े भाई-बहिनका बदला लेने व्रज आया है। इसका क्रोध-आक्रोश और सबसे बड़ी बात कि इन मयूर मुकुटी पुरुषोत्तमको महर्षि अष्टावक्रकी प्रार्थना भी तो पूर्ण करनी है। यह अजगर पता नहीं कब किधरसे सरकता आया है और यहाँ पूरा मुख खोल-कर मार्गमें पड़ गया है। इसीको देखकर देवता आशङ्कित हुए।

बालकोंने भी देखा अजगरको और कुतूहलवश समीप पहुँच गये। भय क्या होता है, इनसे सर्वथा अनभिज्ञ ये शिशु ! इन्होंने सुना भी नहीं कि कोई इतना बड़ा महासर्प भी होता है।

' यह क्या है ? ' बालकोंमें जिज्ञासा उठी।

' यह पर्वतकी गुफा है ; किंतु कैसी सर्पके मुखके समान है ! भद्रने कहा।

' सचमुच। सर्पकी दाढ़ोंके समान इसमें उज्ज्वल शृङ्ग हैं। ' सुबलने झाँककर देखा —' सर्पकी फटी जिह्वाके समान इसमें दो मार्ग हैं भीतर जानेको। '

'इसका नीचेका भाग वनधातुसे लाल है और सूर्य किरणोंके पड़नेसे ऊपरका भाग उसके प्रतिविम्बसे लाल हो गया है।' ऋषभने गम्भीर होकर कहा—'इसमें भीतर दावाग्नि लगी होगी। वे ऊपर सर्पके नेत्रोंके समान दोनों गुफाएँ लाल-लाल दीख रही हैं।'

'दावाग्निमें जले प्राणियोंकी दुर्गन्धि लेकर इसमें-से उष्ण वायु ऐसे आ रही है जैसे सर्पकी श्वास हो।' वरूथपने कहा—'गुफा तो यह बहुत बड़ी लगती है। सर्पके गले जैसी गम्भीर।'

'हम सब इसमें छिप जायँ तो ?' नन्हे तोकने कहा—'बछड़े भी भीतर हाँक दें। कनूँ ढूँढ़ेगा। हम सबको। बड़ा आनन्द आवेगा।'

'कहीं यह सचमुचका सर्प ही हुआ ?' देवप्रस्थने शङ्का की—'हम सबको भीतर जानेपर खा ही जायगा।'

'डर लगता है तुझे ? वह नाच रहा है मयूरके साथ अपना कन्हाई।' तेजस्वी हँसा—'तूने देखा नहीं कि कितने बड़े बगुलेको चीर फेंका उसने। यह सर्प भी हुआ और हमें खाने लगा तो श्याम इसे मारे बिना छोड़ेगा ?'

देवप्रस्थ शङ्का न करता तो सम्भव था कि बालक दुर्गन्धित गुफामें न भी जाते; किंतु देवप्रस्थकी शङ्काने सबको उत्तेजित कर दिया। तेजस्वीने बछड़े हाँक दिये भीतर और सबके सब ताली बजाते हंसते दौड़ पड़े। केवल पीछे देखकर पुकारा उन्होंने—'कनूँ !'

मैं चौंक गया। प्रमाद हुआ मुझसे। ये बालक जब इस अघासुरके मुखको गुफा मानकर चर्चा कर रहे थे, मुझे इसे मार देना था। मेरा अमोघ काल-दण्ड स्मरण करते ही करों में आ जाता; किंतु अब तो वह भी व्यर्थ है। इस अजगरके मुखमें पहुँच गये बछड़े और बालक। अब इसपर आघात नहीं किया जा सकता।

चौंक गये नन्दनन्दन भी मेरे समान ही। बालकोंकी ताली सुनकर मुड़कर देखा और पुकार उठे—'अरे नहीं ! नहीं !' लेकिन हँसते—ताली बजाते बालकोंने कहाँ सुनी इनकी पुकार। पापके द्वारा प्रलुब्ध प्राणी कहाँ सुन पाता है उसमें प्रविष्ट होते समय इन हृषीकेश अन्तर्यामीकी पुकार। ये पुकारनेमें तो प्रमाद नहीं करते।

सामान्य प्राणीको पचा सकता है पाप ; किंतु ये श्रीकृष्णके स्वजन—मैंने देखा कि इन सर्वेश्वरका सदा प्रफुल्ल मुख गम्भीर हो गया। ये भी मुड़े और पर्याप्त शीघ्रतापूर्वक अघके मुखमें प्रविष्ट हो गये। बस समाप्त—पुरुषोत्तमके पहुँचनेपर कोई अघ, अघ नहीं रहा करता।

अघासुर प्रतीक्षा कर रहा था। बालकों-बछड़ोंके मुखमें जानेपर भी इसने मुख बन्द नहीं किया। मधुसूदनके मुखमें आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। यह दूसरी बात है कि बालक-बछड़े सब भीतर पहुँचते ही असह्य ऊष्मा तथा दुर्गन्धिसे मूर्छित होकर गिर पड़े।

गोपालके गलेमें पहुँचते ही मुख बन्द करना चाहा सर्पने ; किंतु अब क्या यह उसके वशकी बात थी ? जो क्षणार्धमें वामनसे बिराट बन जाते हैं उन्होंने अपने शरीरको ऐसा गोल, बड़ा कर लिया कि सर्पके सब श्वास-मार्ग अवरुद्ध हो गये। वह अपनी पूँछ पटकता ऐंठने लगा।

सब द्वार अवरुद्ध होनेपर मातरिश्वा पवनको योगीके ब्रह्मरन्ध्रसे निकल जानेका पूर्वाभ्यास है। सर्प फूलता गया—फूलता गया और फट्के भारी शब्दके साथ उसका मस्तक फट गया। अवरुद्ध वायु निकला, वायुके साथ रक्तकी फुहार निकली और सब बालक, बछड़ोंके शरीर हरित कोमल तृण-राजिपर वेगपूर्वक आ गिरे। साथ ही निकली अघासुरकी जीव-ज्योति। दिशाओंको आलोकित करती वह अन्तरिक्षमें घूमने लगी। जिसके अन्तःकरणमें एक बार इन व्रजराजकुमारकी मनःकल्पित मूर्ति आ जाती है, उसकी कर्मराशि भस्म हो जाती है, इसके भीतर तो ये परात्पर पुरुष स्वयं पधारे। अब कोई लोक जिसका कर्म शेष ही नहीं, उसे आकृष्ट कैसे करे। यह प्रतीक्षा कर रही है—निष्कलुष, कर्माशय-रहित जीव जिसका अंश है, अपने अंशीमें ही तो मिलेगा। यह उनकी प्रतीक्षा कर रही है ; क्योंकि वे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भले इसके परित्यक्त शरीरमें अभी हों—वे तो सर्वव्यापी हैं ; किंतु इसे तो अब शरीर-प्राप्ति सम्भव नहीं रह गयी।

निकले श्रीव्रजराजकुमार। मन्द पदोंसे चलते मृत अघासुरके मुखसे ही निकले। त्वरित गतिसे गये थे सखाओंको बचाने ; किंतु अब कोई शीघ्रता नहीं। मन्दगयन्द-गतिसे झूमते निकले।

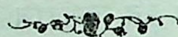
अघासुरकी अन्तरिक्षमें स्थित जीव-ज्योतिने परिक्रमा की और पादारविन्दमें प्रविष्ट हो गयी। इन्हें तो अपने सखाओंको, बछड़ोंको केवल

देख लेना है। जिनकी दृष्टि पाकर जड़ प्रकृति कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंका सृजन करनेमें समर्थ हो जाती है, उनकी अमृत दृष्टि—सुधा-स्राविनी दृष्टि पड़ी और बालक उठ खड़े हुए। बछड़े उठकर कूदने लगे।

गोप-कुमारोंने दौड़कर आलिङ्गन दिया और भुजाएँ फैलाये एक-एकसे नन्दनन्दन मिले। मानो युगोंके पश्चात् सखासे मिले और उसे अङ्कमाल दे रहे हैं।

अघासुरका शरीर—अब तो परम पावन हो गया यह शरीर। श्रीकृष्णके सखाओंने इसे अपना क्रीड़ा-गह्वर बनाना चाहा था, अतः अब तो यह प्रकृतिका दायित्व बन गया कि इसे शीघ्र शुष्क कर दे। गोप-बालकोंको इसे छिपनेकी गुफा तो बनना ही पड़ेगा। बहुत दिनों तक पड़ा रहेगा यह गुफा बना।

सुरोंका जयनाद, उनकी सुमन-वर्षा और स्तवन—यह मेरे लिए भी सुअवसर है उनके साथ सम्मिलित होकर स्तुति करने और इन आराध्य पदोंपर पुष्पाञ्जलि अर्पित करनेका।



वन-भोजन

मैं नित्य श्रीराधाकी सेविका हूँ। इनके चारु चरणोंमें विशाखा बनकर बैठनेका प्रसाद है कि स्वामीका वियोग तो कभी मेरा स्पर्श करता ही नहीं। सूर्य-सुता, कलिन्दगिरि-नन्दिनी, यमानुजा मेरा आधिभौतिक प्रवाहरूप और आधिदैविकरूप जो इन्द्रप्रस्थके समीप जलमें तपोनिरत है, वह तो मेरा वाह्यरूप मात्र है। मेरा वास्तविक रूप तो अपनी स्वामिनी श्रीवृषभानु-नन्दिनीके पादपद्मोंके समीप ही प्रकट रहता है।

मेरी कृपामयी सखीने अपनाया मुझे और जब वे अपना लें, श्रीव्रज-राजकुमारकी कृपा-प्रार्थना पृथक्से कहाँ करनी पड़ती है। मुझे नित्य सान्निध्य प्राप्त रहा श्रीनन्दनन्दनका और मेरी आह्लादिनी श्रीराधाके प्रसादसे ये नवघनसुन्दर मुझे सदासे अपनाये रहे हैं।

मेरे प्रवाह-तटपर ही अपना आविर्भाव-स्थल स्थापित किया इन मयूर-मुकुटीने। मैं इनकी आज्ञासे धरापर कबसे अपने जलरूपमें आकर प्रतीक्षा कर रही थी। दिव्यधाम आया धरित्रीपर और जब उसके अधीश्वर अवतीर्ण हुए—आविर्भावकी ही रात्रिमें, प्राकट्यके प्रहरमें ही अपने पाद-स्पर्शका अवसर प्रदान किया मुझे इन पुरुषोत्तमने।

मुझे सबसे अल्प प्रतीक्षा करनी पड़ी है। अपने इस अवतार-विग्रह-का सान्निध्य मुझे सबसे प्रथम देना स्वीकार कर लिया आनन्दकन्दने और गोकुलमें जैसे ही भवन-द्वारसे बाहर आने लगे, मुझे दर्शन प्राप्त होने लगा। अब यहाँ वृन्दावनमें तो पहुँचते ही मेरे पुलिनको ही अपना क्रीड़ा-स्थल बना लिया। वत्स-चारणके इस वन-विहारमें कम ही अवसर आता है जब मेरे तटसे कुछ दूर जाते हों। घूम-फिरकर सखाओंके साथ बछड़ोंको लिये मेरे समीप आ जाते हैं।

स्नान ही नहीं, कर-प्रक्षालन और प्रवाहमें पुष्पपूरित पत्र-पुटक सखाओंके साथ प्रवाहित करके सुप्रसन्न होनेके अनेक बहाने बनाते हैं। मैं जानती हूँ कि यह मुझे सान्निध्य-दानकी कृपा है ; किंतु मेरी स्वामिनी

श्रीराधाका ही तो यह सुफल है, अन्यथा कृष्णकाया, यमानुजा, कुटिलगतिका, कच्छपाश्रया कालिन्दीमें क्या आकर्षण है कि ये भुवनमोहन इसे इस प्रकार भाँति-भाँतिसे अपना पाद-स्पर्श प्रदान करते रहें। किस पुण्यसे किसी तप-जपसे जिनके पाद-पद्मोंमें प्रीति जन्म-जन्मान्तरमें भी ऋषि-मुनि प्राप्त करनेकी कामना ही करते हैं, वे ये श्रीव्रजराजकुमार मेरे सलिलमें, मेरे पुलिनपर सखाओंके साथ विहार करते रहते हैं, यह किसी मेरे सद्गुणका, मेरे साधनका प्रभाव तो सम्भव नहीं है। यह मेरी स्वामिनी, इनकी नित्यप्रिया भामिनीका प्रभाव है कि उस श्यामाकी प्रीतिके कारण उसकी यह पाद-सेविका कृष्णा भी इन श्रीकृष्णचन्द्रको भा गयी है।

आज सब सुर ही नहीं, सृष्टिकर्ता भी साक्षी हैं कि इन अघारि—अघोद्धारक परम पुरुषने इस सूर्य-सम्भवाको कितना सम्मान दिया है। सखाओंके साथ अघासुरके मुखसे निकले और बछड़ोंको लिये सीधे मेरे समीप आ गये। सबको स्नान करना था और अपने बछड़ोंको भी स्नान कराना था। मैं सदाकी इनकी सेविका -मेरा प्रवाह वैसा, जैसा इनकी सेवासे सार्थक हो सके। ये स्नान करना चाहें तो सुकोमल वालुकायुक्त अल्प जल, स्वच्छ नीर, मन्द प्रवाह और ये केवल पत्र-पुटक प्रवाहित करना अथवा देखकर प्रसन्न होना चाहें तो तरङ्गायित अतलस्पर्शी यमुना।

मुझे सेवाका सौभाग्य इसलिए इतना प्राप्त होता है; क्योंकि मैं अपने पर स्वामिनीकी कृपासे संयम रखनेमें समर्थ हो गयी हूँ। अन्यथा ये समीप आते हैं तो हृदय तरङ्गायित नहीं होगा ? इनका स्पर्श प्राप्त हो और शरीर स्तब्ध नहीं बनेगा ? लेकिन सेवा अपने सुखका उत्सर्ग करके प्राप्त होती है। अपनी सुधि-बुधि विस्मृत हो जाय तो सेवा कैसे बनेगी ? जो अपने अन्तरको, अपनी गतिको, अपने स्वरूपको सानुकूल न रख सके, उसे स्वामी सेविका स्वीकार करेंगे ?

महाभावस्वरूपा समस्त प्रेमाराधनाधिष्ठातृ परमाशक्ति मेरी स्वामिनी श्रीराधाके चारुचरणारविन्दोंकी रेणु शीशपर चढ़ाये बिना इन लीलामय, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, पूर्ण पुरुष, स्वच्छन्दगति पुरुषोत्तम तथा इनके स्वरूपभूत सखाओंकी सेवा आना असम्भव ही है। ये कब क्या करेंगे, क्या चाहेंगे, इन सर्वनियन्ता, हृषीकेशको कोई कैसे समझेगा ? इनके सानुकूल नहीं रहेगा तो उसे ये सेवा-प्रदान करेंगे ? इन पूर्णकामको

कभी अन्यकी सेवा अपेक्षित होती है? लेकिन ये प्रेमघन प्रीति प्रदान करनेके लिए प्रमोद-दानके लिए क्या नहीं करते।

सखाओंके साथ इनका स्नान—परस्पर जल-सिञ्चन और बछड़े-बछड़ियोंको ठेलकर जलमें लाकर धोनेका प्रयास अद्भुत है। इन्होंने इसे भी क्रीड़ा बना लिया है। यह इनका स्नानार्द्र सर्वाङ्ग—सखाओंके साथ इनके स्पर्शका यह सौभाग्य मिला मुझे।

वन-धातुओंके अङ्गोंपर बने चित्र धुल गये हैं। सुमन-मालाएँ और अलकोंमें लगे पुष्प जलमें प्रवाहित हो गये हैं। घुँघराली अलकोंसे विन्दु टपक रहे हैं। अङ्गोंकी यह सुचिक्कन आर्द्रता—किसी भी सखाने अपने अङ्ग पोंछनेकी कोई चेष्टा नहीं की। बछड़े जलसे निकले और शरीर हिलाते, पूँछ उठाये कूदने लगे। हँसते निकले उनके पीछे सखाओंके साथ मदनमोहन।

'यह कितना उज्ज्वल, कितना कोमल पुलिन है। पर्याप्त उज्ज्वल है, स्वच्छ है।' श्यामसुन्दरने एकबार इधर-उधर पुलिनको देखा, प्रसन्न हो गये।'

'अभी रेतमें नहीं खेलना है।' भद्रने बीचमें ही रोका—'तेरी अलकें कितनी आर्द्र हैं, देख। उनमें यह रेत भरेगी तो मैया खीझेगी। तनिक आगे चल और तमालतरुके समीप बैठ तो मैं तुझे पुनः सज्जित किये देता हूँ।'

'मैं अच्छे किसलय लाऊँ?' तोकने पूछा। अब किसीको पुष्प, किसीको गुञ्जा, किसीको कोई वनधातु लानेकी सूझी है।

'मुझे तो भूख लगी है।' ये उदार चक्रचूड़ामणि, इन्हें कैसी भूख लगती है—जानती हूँ। मित्रोंको बहुत विलम्ब हो जायगा यदि शृङ्गार करनेमें सब लगे तो, इसलिए इनको क्षुधा स्मरण आ गयी है—'कितना ऊपर आ गया है सूर्य। आज तो हम सबने अभी कलेऊ भी नहीं किया। छीके उठा लाओ, हम सब यहीं भोजन करें। अपने बछड़े जल पी ही चुके, धीरे-धीरे यहीं समीप चरेंगे। पर्याप्त हरित तृण हैं यहाँ पास ही।'

'मैं तेरा छीका उठा लाऊँ?' मधुमङ्गलको यह प्रस्ताव बहुत प्रिय लगा। लेकिन उसे कोई छीका मिलना नहीं है। सब दौड़ गये हैं और

यह कहाँ आवश्यक है कि अपना ही छीका उठाया जाय। अपना - पराया क्या ? जो भी एक या दो छीका हाथमें आ जाय इस दौड़ा-दौड़ीमें, वही अपना। भोजन तो सबको साथ ही करना है।

छीके उठाकर सबने इधर-उधर वनमें देखा और अपने लिए पात्र पाना चाहा। पत्ते, बाँसकी गाँठोंपर लगी बड़ी सुचिक्कन सुपेलियाँ, विशाल पुष्पोंकी पङ्खड़ियाँ, सम चिकना शिला-खण्ड—जिसे जो मिल गया, जो प्रिय लगा, उठा लाया।

'तू क्या लेगा, कमलपत्र या शिला ?' भद्रको लगता है कि कन्हाईका उदर बहुत पिचक गया है। अब इसे उठकर कहीं नहीं जाना चाहिये। इसे भूख लगी है तो यह सुकुमार चल कैसे सकता है।

'तू अपने लिए भी तो कुछ नहीं लाया !' श्रीव्रजराजकुमार पुलिनकी रेतमें ही बैठ गये थे उसी समय जब क्षुधाकी बात कही थी। अब भद्रकी ओर देखने लगे हैं कि वह अपना और इनका छीका उठाकर दौड़ तो आया ; किंतु अपने लिए कोई पत्र तक नहीं तोड़ सका शीघ्र लौटनेकी चिंतामें—'मैं तो अपने हाथपर ही लूँगा।'

'तब ले तू !' भद्रको पलोंकी भी प्रतीक्षा सह्य नहीं। उसका यह अतिशय सुकुमार सखा भूखा है। इसे तत्काल कुछ देना है। छीका खोलकर फैला लिया और उज्ज्वल सुगन्धित भात मधुर दधिमें मिलाकर धर दिया श्यामके सुन्दर वाम कर-कमलपर। इतनी देरमें इन्होंने स्वयं छीकेमें-से उठाकर अपनी हथेलीकी अँगुलियोंके सिरोंपर तनिक-तनिक अचार-चटनी चिपका ली हैं और अँगुलियोंकी सन्धियोंमें टेंटी जैसे कुछ फल दबा लिये हैं। इनके हाथपर ग्रास देकर भद्र जमकर बैठ गया है सम्मुख दोनों छीके अपने पास फैलाये—'मैं छीकेमें-से ही खाऊँगा।'

एक ग्रास केवल भद्र बनाकर रख सका और इतनेमें सब सखा भागते आ गये। मध्यमें व्रजराजकुमारको करके सब मण्डलाकार बैठ गये। एकके पीछे दूसरा, दूसरेके पीछे तीसरा—यह मण्डलोंका क्रम ; किंतु कोई भी किसीके ठीक पीछे नहीं है। किञ्चित् पार्श्व लेकर बैठे हैं, जैसे कमलपुष्प-की पङ्खड़ियाँ होती हैं। सबके समीप छीके हैं। अपना छीका या किसी औरका अथवा दोके मध्य भी एक छीका है तो हानि क्या। सबके मध्य मानों कमलपुष्पकी कर्णिकापर आसीन हों, इस प्रकार मैया यशोदाके लाल

बैठे हैं। ऐसे बैठे हैं कि मैं भी नहीं समझ पाती कि इनका पृष्ठ भाग किधर है। सबको अपने सम्मुख ही दीखते हैं। अन्ततः श्रुति इनके लिए ही तो कहती है—

'सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।' गीता० १३.१३

मस्तकपर मयूरपिच्छ घुँघराली अलकोंमें लहराने लगा है। अलकें सूख गयी हैं। भालपर न तिलक है, न दृगोंमें अञ्जन। कपोल-पल्लीके समीप मणि-कुण्डल झूल रहे हैं। कण्ठमें कौस्तुभ है, मुक्तामाल है; किंतु वनमाला नहीं है। कन्धेपर पटुका है। रत्नाङ्गद-भूषित भुजाएँ, कलाइयोंमें कङ्कण, कटिमें कछनीपर रत्नमेखला, चरणोंमें स्वर्णनूपुर, कछनीमें दक्षिण भागमें मुरली लगी है और वाम कक्षके नीचे शृङ्ग तथा वेत्र-लकुट दबा रखे हैं। वाम करकी हथेलीपर दधि-भातका उज्वल ग्रास है और अँगुलियोंके सिरोंपर, सन्धियोंमें अचार-चटनीने स्थान पाया है। ये विश्वम्भर भोजन करने बैठे हैं। दक्षिण करसे तनिक-सा उठाते हैं और मुखमें डालते हैं। अरुणाधर दधिसे उज्वल हो गये हैं।

गोप-बालक कोई विद्वान् व्रतनिष्ठ ब्राह्मण तो नहीं हैं कि मौन होकर चुपचाप बैठकर भोजन करेंगे। इनमें कोई भी उठकर इन नवघन-सुन्दरके समीप आ जाता है और सीधे अपने हाथसे इनके मुखमें ग्रास देता है—'मुख खोल! देख तो सही कितना कोमल मधुर पुआ बनाया है मेरी माँ ने।'

ये कभी भी किसीके भी मुखमें करका ग्रास हाथसे उठाकर देने झुक पड़ते हैं। इनके हाथका ग्रास परिवर्तित हो रहा है। एकको उठाकर किसीके मुखमें देते हैं तो कोई दूसरा मित्र अपनी रुचिका पदार्थ वहाँ रख देता है। अनेक सखा अपने करसे ही इनके मुखमें ग्रास देते हैं।

'तेरा मोदक तो मीठा नहीं और कठोर भी है।' किसीको भी चिढ़ा देना है मुख बनाकर—'तेरा दही तो खट्टा है!'

'तेरी मैया कृपण है। इतनी कम शर्करा इस हलवेमें!' केवल परिहास—सखा तनिक म्लानमुख हो, तनिक दूसरी ओर ध्यान दे तो वह पदार्थ झपटकर पूरा मुख भर लेते हैं—'यह तेरे खाने योग्य नहीं है।'

साधारण बात है किसीकी ओर कर बढ़ा कर फिर वह ग्रास अपने अथवा समीपके अन्य सखाके मुखमें देकर हँस पड़ना। ऐसे ही इनके कर-पर रखा ग्रास उठाकर कोई हँस सकता है—'अब तू क्या खायेगा?'

कोई करपर ग्रास रख ही दे उसी क्षण, क्या आवश्यक है ? कहने वालेके छीकेसे भी कुछ उठा लिया जा सकता है और संकेत पाकर उसका पूरा छीका कोई सखा अपने सम्मुख धर लेगा।

'ब्राह्मणको दिये बिना स्वयं भोजन करना दोष माना जाता है !' मधुमङ्गलने अपना पाण्डित्य प्रकट किया।

'भूल हो गयी मुनिवर !' भद्र हँसा—'किंतु अब तो अपराध क्षमा करें ! हम गोपकुमार उच्छिष्ट आपको दे नहीं सकते। आप भी उच्छिष्ट कैसे खायेंगे ! ब्राह्मण व्रतनिष्ठ होते हैं और आप व्रत न करें तो किसी वृक्षपरसे फल तोड़नेका कष्ट कर लें !'

'इस भोले भद्रकी सुनो!' मधुमङ्गलने मुख गम्भीर बनाया—'इसे इतना भी पता नहीं कि वृन्दावनमें यमुना-पुलिनपर श्रीकृष्णके सान्निध्यमें कुछ उच्छिष्ट नहीं होता। मिष्टान्न भी कहीं उच्छिष्ट हुआ करता है। तुम सब केवल मोदक-मिष्टान्न प्रदान करो। श्रद्धा-सहित आये पदार्थको ब्राह्मण कभी अस्वीकार नहीं करता। मैं तुम सबको आशीर्वाद दूँगा।'

'इसका पेट तो मुखके मार्गसे भर नहीं रहा था। अब यह सीधे उदरमें प्रविष्ट करने लगा है।' तोकने मधुमङ्गलकी नाभिमें दधि-भात भर दिया और हँसने लगा है। सब खिलखिलाकर हँस रहे हैं। मधुमङ्गल अपने उदरकी ओर देखने लगा, इतनेमें उसके सम्मुख मोदकोंकी राशि रख दी सबने।

दधि-भातका ग्रास सखाकी ओर बढ़ाकर श्यामने अपने मुखमें डाल लिया और अब उसे अँगुली दिखाते हैं—'तू इसे चाट ले !'

वह इनकी सुकुमार दधि-मण्डित अँगुली मुखमें लेनेका ऐसा अवसर क्यों चूक जाय !

यह बालकोंका वन-भोजन—यह व्रजनवयुवराजकी आनन्द क्रीड़ा, हास्य इन कुमारोंका, इनका यह परस्पर एक-दूसरेके मुखमें ग्रास देना, यह एक-दूसरेके सम्मुखसे छीका हटा लेना अथवा पदार्थोंकी राशि लगा देना, इनकी खिलखिलाहट—यह छविछटा कल्पनामें भी आ जाय तो प्राणी कृतार्थ हो जाय। मेरे पुलिनपर, मेरे प्रवाहके समीप, मेरे समक्ष इन आनन्द-कन्दका यह वन-भोजन ! मैं इसमें कुछ सेवा कर पाती—कुछ समर्पित कर पाती किसी भी कुमारके करोंमें ; किंतु इतनी स्पृहा उचित नहीं। यह दर्शनका सौभाग्य ही कहाँ कम है।

'अरे ! अपने बछड़े कहाँ गये ?' वरूथपको सबकी अपेक्षा बछड़ोंकी अधिक चिन्ता रहती है। यह अपनेको अग्रणी मानता है वत्स-चारणका। बछड़े कब किस दिन किधर ले जाये जायँ, यही निर्णय करता है। कोई बछड़ा दूर जाय तो स्वयं भागेगा उसे लौटाने अथवा अर्जुन, विशाल, ऋषभ, उज्ज्वलमें-से किसीको भेजकर मानेगा। बछड़ोंके ऊपर इसकी सतर्क दृष्टि रहती है।

'यहाँ कहीं समीप नहीं लगते !' अर्जुनने पुकारा और कोई एक भी बछड़ा बोला नहीं, कूदता नहीं दीखा तो सशङ्क हो गया। अब सबके हाथ रुक गये। सब पीछे वनकी ओर देखने लगे।

'मैं जाता हूँ !' कोई सखा उठे, इससे पहिले श्रीव्रजेन्द्रनन्दन उठ खड़े हुए—'तुम सब भोजन करना बन्द मत करो ! मैं अभी आया सबको लौटाकर !'

'तू क्यों जायगा ! बैठ और भोजन कर !' भद्र उठ खड़ा हुआ—'अभी तेरी क्षुधा कहाँ मिटी है। अभी तो तेरा उदर पिचका ही है।'

'तू जायगा तो मैं क्या तेरे आये बिना खा सकूँगा ?' श्यामसुन्दरने सखाकी ओर दृष्टि उठायी—'तू जायगा या कोई और जायगा तो पता नहीं कितनी देर लगेगी। मैं जाऊँगा तो मेरे पुकारते ही सब बछड़े दौड़ आवेंगे। मुझे कहाँ भागना पड़ता है उनको बुलानेके लिए। तुममें कोई जायगा तो उसे भागना पड़ेगा। मैयाने मना किया है कि भोजन करके दौड़ना नहीं चाहिये।'

'अच्छा, तू ही जा !' भद्र आधे मनसे कहकर बैठा है—'दूर मत जाना ! बछड़े दूर गये हों तो शृङ्ग बजाकर बुलाना अथवा लौट आना। बाबाने कहा है कि बछड़े वनमें चले जायँ तो भटकना मत। उन्हें गोप जाकर लौटा लावेंगे।'

'बछड़े बहुत दूर नहीं गये होंगे। मैं अभी उन्हें लेकर लौटता हूँ।' बायें हाथपर दधि-भातका ग्रास लिये ही श्यामसुन्दर भोजनसे उठकर चले गये। मेरा मन खिन्न हो गया। उनके चले जाने पर कोई बालक छीकेकी ओर—भोजनकी ओर कहाँ देखता है। सब तो वनकी ओर दृष्टि लगाये जाते अपने मयूरमुकुटी सखाकी ओर ही देख रहे हैं। लेकिन यह क्या ? यह चतुर्मुख सृष्टिकर्ता सब बालकोंको माया-मोहित करके कहाँ ले चले ?

विधि-व्यामोह

सर्वेश्वरकी यह क्या लीला है कि जो जितना बड़ा है, उसका व्यामोह भी उतना ही बड़ा होता है। जो बहुत शक्तिशाली है, उसे उतनी ही अधिक आशङ्काएँ घेरे रहती हैं। जो विश्रुत विद्वान् है, उसके अन्तरमें उतने ही सन्देह स्थान प्राप्त कर लेते हैं।

मैं सृष्टि-सृजनमें समर्थ, श्रुतियोंका आदि द्रष्टा, लोकपितामह, चतुर्मुख और इसीलिए चारों वेदोंका वक्ता, स्वयं सरस्वती मेरी सहचरी ; किंतु मैं ही भ्रान्त होकर अपने ही भ्रममें भटकता रहा। मुझ विधिके विधानकर्त्तासे ही अपने विधानके विरुद्ध अक्षम्य अपराध होते रहे। अपार महिमा है भगवती योगमायाकी। कृपासिन्धु कृष्ण ही कृपा करें तो कोई मायाके मोहावरणसे बहिर्भूत होकर बर्हिबर्हावतंस परमहंस-सर्वस्व मुनि-मानस-हंस इन नन्दनन्दनके माहात्म्यको समझ इनके पदारविन्दका प्रश्रय पानेकी पुण्य कामना प्राप्त करता है।

मैं इनका साक्षात् सुत—मुझे क्षमा कर दिया इन क्षमासिन्धुने, अन्यथा मेरे अपने ही विधानके अनुसार तो मेरे अपराध क्षमाके योग्य नहीं थे। मैं लोकमर्यादाका निर्माता ही उनको भङ्ग करनेका अपराधी था।

अपार जयनाद—असीम कोलाहल हो रहा था। मुझे कुतूहल हुआ—देवताओंने ऐसा क्या देखा अथवा प्राप्त कर लिया है कि इतने उल्लासमें उनके वाद्य बज रहे हैं ? सब एक साथ जयघोष कर रहे हैं ? मैं जानता था कि सुरेन्द्र कोई उत्सव नहीं कर रहे हैं। उत्सव होता अमरावती-में तो मुझे आमन्त्रण अवश्य आता। असुर-विजयका भी प्रश्न नहीं ; क्योंकि असुरोंमें अभी कोई आक्रान्ता होनेको उत्कण्ठित नहीं। तब अमरोंके इस असीम आनन्दनादका कारण ?

वाद्य-गायन, जयनाद इतना विपुल था कि मुझे लगा कि वह ब्रह्म-लोकके वाह्य भागमें ही उठ रहा है। अपने हंसपर आरूढ़ होकर मैं निकला। मेरी दृष्टिको देशकी दूरी तो आवृत नहीं करती ; अतः मैंने देख लिया कि

देवताओंके विमान व्रजमण्डलके गगनपर हैं और यह आनन्द-ध्वनि धराको धन्य करनेवाले किसी कृत्यके कारण है।

देवताओंको इतना अधिक प्रसन्न कर सके, ऐसा पृथ्वीके किस पुण्यकर्माका क्या पुण्य कर्म है ? मेरे मनमें कुतूहल था। मेरे हंसको आदर-पूर्वक अमरोंने प्रणिपात पुरःसर आगे आ जानेका अवकाश दे दिया अपने विमानोंको एक ओर करके।

पापका परमाधिष्ठाता अघासुर पृथ्वीपर पड़ा था और निष्प्राण हो चुका था। उसकी आलोकमयी जीवज्योति अन्तरालमें अवस्थित थी। इसी समय नवीन नीरद-श्याम श्रीकृष्ण शोभाधाम उस मृत महासर्पके मुखसे बाहर आये। उस जीव-ज्योतिने उनकी परिक्रमा की और उनके पादार-विन्दमें लय प्राप्त कर लिया।

देवताओंके आनन्दका कारण अघका मरण था, यह स्पष्ट हो गया। अमरावतीका सबसे बड़ा आतङ्क था अघ। उसे श्रीकृष्णने समाप्त कर दिया, अतः सुरों द्वारा उनका स्तवन तथा उनपर सुमन-वर्षा सर्वथा अवसरोचित थी। मैं प्रसन्न हुआ कि मेरी यह सात्विक सन्तति सम्पूर्ण रूपसे कृतज्ञ है और मानवका सम्मान करनेमें भी सङ्कोच नहीं करती।

मानवका सम्मान ? अपने मनमें उठे इस अकस्मात् भावसे मैं स्वयं चौंक गया। कोई कितना भी समर्थ मर्त्य हो, अघको तो नहीं मार सकता ? जीव-ज्योतिका लय तो साक्षात् श्रीहरिके अतिरिक्त अन्यमें होना सम्भव नहीं है ?

असुरोंका अधर्मसे आक्रान्ता धराके दुःखसे द्रवित मैंने स्वयं देवताओं-के साथ क्षीरोदधिके समीप पहुँचकर प्रार्थना की थी कि प्रभु अनन्तशायी अब अवतार ग्रहण करें ; क्योंकि भूमिपर आसुर बल इतना बढ़ गया है कि उसका प्रशमन अब हम सब सुरोंकी शक्तिमें—सम्मिलित शक्तिमें भी नहीं रहा।

मुझे अपनी समाधिमें परमपुरुषकी वाणीका आश्वासन प्राप्त हुआ था। प्रभुने मेरी प्रार्थना मान ली थी ; किंतु मेरे विशाल ज्ञानने ही मुझे भ्रममें डाल दिया। श्रीहरिके चरणोंका आश्रय, पुरुषोत्तमके पावनपदोंमें आस्थाको पृथक् रखकर जब बुद्धिपर बल दिया जायगा तो वैदिक विद्या भी कितना व्यामोह उत्पन्न कर देगी—यह अब मैं जान गया। द्वापरका

युगावतार भगवान् अनन्त हैं। उन सहस्रशीर्षा अनन्त पराक्रमकी अचिन्त्य शक्तिसे प्रशमित न हो सके, ऐसी कोई आसुर-सामर्थ्य सम्भव नहीं ; किंतु यह जीव-ज्योतिका विलय – भगवान अनन्त परमाचार्य हैं प्राणियोंके ; किंतु प्राणीका विलय तो अपनेमें वे स्वीकार नहीं करते ?

मैं देख रहा था कि वे स्वर्णगौर एककुण्डली आज वनमें नहीं आये हैं। आज वे नन्दभवनको ही अलंकृत कर रहे हैं। इसका अर्थ है कि ये नवघनसुन्दर श्रीहरि साक्षात् हैं और धरापर अनुकम्पा करके अग्रजके साथ आ गये हैं।

मैंने अपने सृष्टि-कर्ममें संलग्न रहनेके कारण इन सौन्दर्यसिन्धुकी कोई क्रीड़ाका दर्शन नहीं किया। इन आनन्दघनकी रुचिर क्रीड़ाके दर्शनका सौभाग्य इनके दिव्यधाममें पहुँचकर प्राप्त करनेका अधिकार तो केवल उन्हें मिलता है, जिनको ये स्वयं अपना परिकर स्वीकार कर लेते हैं। सुरोंको—मुझे भी यह सुअवसर तो इनके पृथ्वीपर पधारनेपर ही प्राप्त होता है। मैंने इनको अघासुरके मुखमें प्रवेश करते भी नहीं देखा था। अपूर्ण ही लीला देखी अघोद्धार की। अतः मेरा अन्तर उद्वेलित हुआ— 'कोई सम्पूर्ण रुचिर क्रीड़ा देखकर मेरे नेत्र धन्य हों !'

मुझे सन्देह भी हो गया—साक्षात् सरस्वतीके सर्वस्व मुझ स्रष्टाको सन्देह हो गया ? श्रीव्रजराजकुमार सखाओंके साथ पुलिनपर बैठ गये भोजन करने। गोप-बालकोंको श्रीनन्दनन्दन अपना उच्छिष्ट प्रदान कर रहे थे, यह बालकोंका परम सौभाग्य ; किंतु प्रत्येक बालक अपने मुखसे लगा पदार्थ स्वादिष्ट कहकर इन यज्ञ-भोक्ताको अपने करोंसे दे रहा था और ये प्रसन्न होकर उसे ग्रहण कर रहे थे ? सावधानीपूर्वक प्रस्तुत पवित्र-तम सामग्री तपःपूत ब्राह्मण सस्वर श्रुतिके मन्त्रों द्वारा जिन्हें सादर समर्पित करते हैं और अपने ही अग्निरूप मुखमें आयी उस आहुतिको भी जो यज्ञपुरुष सङ्कोचपूर्वक ही स्वीकार करते हैं, वे इन यज्ञोपवीतहीन, संस्काररहित गोप-बालकोंका उच्छिष्ट इतने उल्लाससे स्वीकार कर रहे हैं ?

श्रुति-शास्त्रके विधि-विधानका विधाता मैं। मुझे बहुत अधिक वितृष्णा हुई। बालकोंपर मुझे कुछ क्रोध भी आया। मुझे लगा कि ये अज्ञानवश ही सही, अतिशय अक्षम्य अपराध कर रहे हैं। मैं रजोगुणका

अधिष्ठाता—कर्मकी बाह्य शुद्धिपर मेरा पूरा आग्रह अस्वाभाविक तो नहीं है ?

मैं कोई और रुचिर क्रीड़ा इन कृपासिन्धुकी देखना चाहता था। मेरे सङ्कल्पकी पूर्त्तिके लिए ये लीलामय भगवती योगमायाको संकेत कर चुके थे और उन महामायाने मेरे मानसको मोहाच्छन्न कर दिया था, यह मैं उस समय कहाँ समझ सका।

सहसा बछड़े तृण-लोभसे चरते हुए वनमें कुछ दूर चले गये। विषयोंका प्रलोभन ही तो प्राणीको परम-पुरुषसे विमुख करके भवाटवीमें भटकाता है। मुझे एक उपाय सूझा, मैंने सब बछड़ोंको अपनी मायासे प्रसुप्त किया और वहाँसे उठाकर सुमेरुकी एक गुहामें सुला आया। इस दिव्य प्रदेशमें किसीको कोई कष्ट नहीं होना था।

बहुत शीघ्र बालकोंका ध्यान अपने बछड़ोंकी ओर गया। उन्हें न देखकर कुछ व्याकुल हुए ; किंतु श्यामसुन्दर सखाओंको आश्वासन देकर स्वयं उठ खड़े हुए बछड़ोंका अन्वेषण करने।

इतना सम्मान—इतना श्रेष्ठत्व इन बालकोंको प्राप्त है कि ये भोजन करते रहें और स्वयं सर्वेश्वर इनके सेवकके समान अपना भोजन अधूरा छोड़कर वनमें बछड़े ढूँढ़ने चल पड़ें ?

जीव सेवक है और पुरुषोत्तम सेव्य हैं, यही मैंने पढ़ा-समझा है। यही सृष्टिकी पावन परम्परा है। इसमें इन अज्ञानी बालकोंके द्वारा बना यह व्यतिक्रम मुझे अनुचित प्रतीत हुआ। व्रजराजकुमार वनमें जैसे ही आगे बढ़े, मैंने बालकोंको भी माया-सम्मोहित किया और बछड़ोंके समीप ही सुला दिया सुमेरुकी गुहामें।

सृष्टिका कार्य मुझे बहुत व्यग्र रखता है। मैं ब्रह्मलोक जाकर एक बार अपने आरम्भ किये कार्योंको व्यवस्थित करके लौटना चाहता था ; क्योंकि मैं अधूरे निर्माण छोड़कर चला आया था। लेकिन ब्रह्मलोकके द्वार-पर पहुँचकर मेरा जो अपमान हुआ—वह मेरी भयङ्कर भूलोंके सम्मुख बहुत अल्प था।

मेरे अपने लोकके द्वारपालोंने मुझे अपमानित-प्रताड़ित करके लौटने-को विवश न कर दिया होता ; पता नहीं मुझे ब्रह्मलोकमें कितने क्षण लगते। मैं द्वारपर-से ही लौटा तो केवल एक त्रुटि (ढाई पल) लगे थे और

इतनेमें पृथ्वीका पूरा वर्ष प्राय: व्यतीत हो गया था। मैं ब्रह्मलोकमें प्रविष्ट हो पाता तो पृथ्वीपर पुरुषोत्तमकी लीलामें बहुत बाधा पड़ती ! इन अखिलेश्वरने मैं ब्रह्मलोकमें प्रविष्ट ही न हो पाऊँ, इसका प्रबन्ध करके मुझपर अनुकम्पा ही की।

द्वारपालोंने मुझे देखते ही वेत्र उठा लिये। उन्होंने मेरी एक नहीं सुनी। सृष्टिके परम संचालकने मेरे स्थानपर कोई और चतुर्मुख ब्रह्मा नियुक्त कर दिया- यही मैंने समझा उस समय। मैंने पूछा भी—'क्या कोई और ब्रह्मा अधिपति होकर यहाँ आ गये हैं ?'

द्वारपालोंने मेरा उपहास किया—'कोई और क्यों आवेंगे ? हमारे स्वामी स्वयं आये हैं। वे हमें सावधान कर गये हैं कि तू मायावी असुर उनका रूप बनाकर यहाँ प्रवेशका प्रयत्न करेगा ! हम तेरे रूप और शब्दोंके, स्वरके भ्रममें नहीं पड़नेवाले हैं।'

मैं समझ गया कि मैं सर्वेश्वर द्वारा पदच्युत कर दिया गया। मेरा स्वर, मेरा स्वरूप किसीको भी अपने सङ्कल्पसे ही प्रदान करनेमें वे समर्थ हैं। सचमुच मैं असुर तो हो ही चुका ; क्योंकि मैंने श्रीकृष्णके स्वजनोंपर माया-प्रयोगकी धृष्टता की। मैंने यह भी नहीं सोचा कि बछड़े एवं बालकों-के प्रारब्धमें मातृ-पितृ-स्वजन-वियोग तथा उनके स्वजनों, माता-पिताके प्रारब्धमें, पुत्र-वियोग है भी या नहीं। प्राणियोंके प्रारब्धकी उपेक्षा करके केवल अपने अहङ्कारके वशीभूत, अपनी मानी मर्यादापर दूसरोंके गुण-दोषका निर्णय करके उनको अपनी इच्छाके अनुसार चलानेका प्रयत्न असुर ही तो कर सकता है।

योगमायाके द्वारा सम्मोहित मैं तब भी नहीं समझ सका था कि व्रजके ये बालक—ये बछड़े मेरी सृष्टिके हैं भी या नहीं। इनके शरीर कर्म-प्रारब्धकी परिणति नहीं हैं और इनको मेरी माया स्पर्श भी नहीं करती यदि इनके ही अधीश्वरकी इच्छाका अनुमोदन न होता, यह तो मैं अब समझ सका हूँ। उस समय तो मैं अपनी भूलके सुधारनेके भ्रममें शीघ्र लौट पड़ा। मुझे अपने पदभ्रष्ट होनेका वैसा दु:ख नहीं था, जैसा अपनी भूलका पश्चात्ताप था।

पहिले व्रजमें इस एक वर्षमें क्या परिवर्त्तन हो गया। बछड़ों और बालकोंके अदृश्य हो जानेसे, यह देख लेना और उसके अनुरूप कुछ करना आवश्यक था ; किंतु मैं गगनमें पहुँचते ही हक्का-बक्का रह गया। नीचे

सब बछड़े, सब बालक श्रीकृष्णचन्द्रके साथ वैसे ही क्रीड़ा कर रहे थे। वही बछड़े, वही बालक--सबके रङ्ग-रूप अङ्गोंकी आकृति, स्वर, स्वभाव वही। केवल एक वर्षकी आयुका अन्तर आकारोंमें आया है और बालकोंमें अधिकांशके उत्तरीय, कछनी, आभूषण नवीन हैं।

'ये क्या उसी दिन उस गुफासे यहाँ आ गये ?' मैं सुमेरुकी गुफा देखने हंसको उड़ा ले गया। वहाँ देखता हूँ कि वे सब जिन्हें मैं जैसे सुला गया था, वैसे ही सो रहे हैं। उनमें किसीने तनिक भी संज्ञा प्राप्त की हो, ऐसा कोई लक्षण नहीं है। तब वृन्दावनमें व्रजराजकुमारके साथ क्रीड़ा करनेवाले ?

मैं फिर व्रजके गगनपर आया ; किंतु कोई अन्तर नहीं यहाँ। सब बछड़े और बालक यहाँ भी श्यामसुन्दरके साथ उपस्थित हैं ? अपने हंसको तनिक और ऊपर उठाकर मैंने अपने दो मुख व्रजकी ओर और दो सुमेरुकी ओर किये। मेरी दृष्टिको देश, काल, पदार्थ कोई अवरुद्ध नहीं करते। मैंने देखा कि नीचे भी और सुमेरुकी गुफामें भी स्थिति जैसी मैंने देखी, वैसी ही है। यह है क्या ?

नित्य सर्वज्ञ केवल ये सर्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र हैं। मैं सप्रयत्न ही भूत एवं भविष्यका साक्षात्कार कर पाता हूँ। यही ससीम सर्वज्ञता सृष्टिमें तप, योगादिसे उसके अनुपातमें ऋषि-मुनि-महात्मा-सिद्धोंको मिलती है। मैंने प्रयत्न किया कि देख लूँ कि मेरे यहाँसे विदा होनेके पश्चात् क्या-क्या हुआ।

बहुत अल्प शक्ति है मेरी। मुझे बहुत स्पष्ट कुछ नहीं ज्ञात हुआ। केवल व्रजराजकुमारने जितना देखने दिया—वही देख सका। मध्यका अनेक स्थान, अनेक समय मेरी दृष्टिके सम्मुख पूरा प्रयत्न करनेपर भी नहीं आया। इस दिव्य भूमिमें किसीकी सिद्ध दृष्टि काम नहीं दिया करती। यहाँ तो वर्तमानका भी उतना ही दर्शन होता है, जितना प्राणीको उसके प्रेमके कारण ये परात्पर पुरुष अथवा भगवती योगमाया प्रदान कर दें।

मैंने देखा कि अपने वामकरपर दधि-भातका ग्रास लिये श्रीव्रजराज कुमार वनमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने पुकारा—'गौरव ! अरुण ! आलोक !' अपने बछड़ोंका नाम ले-लेकर पुकारते वे सघन कुञ्जोंमें झाँकते कुछ दूर गये और फिर लौट पड़े। सम्भवतः अपने सखाओंको साथ लेने लौटे थे।

पुलिनपर छीके, पत्र-पुष्प-पाषाण, पात्र ज्यों-के-त्यों पड़े थे। उनपर अनेक प्रकारके व्यञ्जन थे; किंतु बालक वहाँ नहीं थे। तनिक दूरसे ही यह देखकर श्रीव्रजेन्द्र-नन्दन पुनः वनकी ओर लौटे।

'भद्र ! सुबल ! श्रीदाम ! तोक ! विशाल ! अरे तुम सब कहाँ हो ? कहाँ छिप गये हो तुम सब ?' अब सखाओंका नाम ले-लेकर पुकारने लगे। पदोंकी गतिमें वेग आ गया है। मुखपर कुछ आकुलताके लक्षण हैं—'अरे, छिपो मत ! बोलो तुम कहाँ हो ? मैं थक गया हूँ तोक !'

एक-एक कुञ्ज, एक-एक सघन झाड़ियाँ, गिरिराजकी गुफाए, गह्वर तक ढूँढ़, रहे हैं—देख रहे हैं। बहुत व्याकुल होकर पुकार रहे हैं। 'ये सर्वज्ञ ?' मैं सशङ्क हो गया। अब तो समझ चुका हूँ इनकी अनुकम्पासे कि यही सबको पुकारते हैं। जीवोंके ये परम सखा ही पुकारते हैं। यही अन्वेषण करते हैं। ये न पुकारें, स्वयं न ढूँढ़ें तो प्राणीका कोई भी प्रयत्न इन अनाम-अरूप तक कैसे पहुँच पावे।

कपि और पक्षी अपनी भाषामें कहते हैं। ऊपर देखकर, उड़कर संकेत करते हैं। इतने स्पष्ट संकेत भी ये समझते नहीं ? यह सर्वेश सर्वज्ञ होंगे ?

मैंने मनमें शंका की और अधिकांश लीला देखनेमें असमर्थ हो गया। प्रयत्न करनेपर—बहुत संयम करनेपर देखता हूँ कि सब बालक, सब बछड़े साथ हैं। सबके अङ्ग-आभूषण, वस्त्र, वेत्र, लकुट, छीके आदि समस्त उपकरण जैसे थे, वैसे ही हैं। कहीं कोई अन्तर नहीं है।

मेरा सृष्टिकर्त्ता होनेका अहङ्कार गलित हो गया। मैं प्राणियोंको केवल उनके प्रारब्धानुसार शरीर देता हूँ। जीव, जीवका अन्तःकरण, उसका कर्माशय कर्म-राशि और शरीरके समस्त उपकरण पञ्चभूत मुझे प्राप्त होते हैं परमात्माकी ओरसे। ये सब अनादि हैं। मैं केवल इनका संयोग करके आकृतिका सृजन करता हूँ। मैं कुछ भी नवीन नहीं बनाता। आकृतका मानचित्र भी नहीं—वह भी जीवका प्रारब्ध मुझे प्रदान करता है। यहाँ मैं श्रीकृष्णकी सृजन-शक्तिका ऐश्वर्य साक्षात् देख रहा हूँ। इन बछड़ों-बालकोंके शरीर, आभरण, वस्त्र, वेत्रादिमें कहीं पञ्चभूतका लेश नहीं। कहीं न कोई जीव है, न कर्माशय, न कर्म-प्रारब्ध और समस्त आकार-व्यवहार है। यह क्या है ?

भूतकालका साक्षात्कार और विवेचन एक साथ सम्भव नहीं। अतः मैं केवल देखता हूँ—देखना चाहता हूँ। बछड़े-बालक व्रजमें लौटते हैं। कितनी उत्कण्ठा है गोपों-गोपियोंमें। सबके वेत्र प्रतीक्षा-रत हैं पथपर। बालकोंको उनके पिता-माता अपने अङ्कोंमें समेट लेते हैं। अपने-अपने बछड़े अपने गोष्ठोंमें ले जाते हैं और गायें हुङ्कार करती दौड़ना चाहती हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि इनसे छोटे बछड़े जिनके हैं, वे गायें भी इन्हीं बछड़ोंको चाटने लगी हैं। ऐसी आतुरतासे चाटने लगी हैं, जैसे इनके पूरे शरीरको ही चाट लेंगी। स्तनोंसे क्षीर झर रहा है इनके।

'आज तू अकेला आया है?' माता यशोदा किञ्चित् आश्चर्य करती हैं। सदा सब बालक साथ आते थे। आज श्रीकृष्णचन्द्र अकेले अपने बछड़ोंको लेकर पहुँचे हैं। बछड़े भी सब पहिले नन्द-गोष्ठ आते थे। आज सब अपने-अपने गोष्ठ चले गये। मैयाके समीप समाधान है--' सब दिन भर आज वनमें रहे हैं। बहुत भूखे और श्रान्त होंगे।'

प्रातःकाल माता रोहिणीने सन्देह किया—' नीलमणि ! आज तेरा कोई सखा नहीं आया अब तक ? सुना भद्र भी कल अपने भवनमें सोया ?'

भद्र शैशवसे व्रजराजके समीप सोता रहा, वह अपना भवन ही नहीं जानता था। कल उसे क्या हो गया ? लेकिन श्यामसुन्दरके समीप सबका उत्तर है। ये अधिक प्रसन्न हैं—' भद्र मुझसे रूठ गया होगा। मैं अब सबको शृङ्ग बजाकर जगाऊँगा। सब आलसी हैं, अभी सो रहे होंगे।'

अग्रजके साथ निकले आज और शृङ्ग अधरोंसे लगाकर गूँजने लगा। बछड़े पथपर आये और उनके पीछे हँसते—परस्पर कुछ कहते बालक। अब यह क्रम तो चल पड़ा। प्रतिदिनका यही क्रम। श्रीव्रजेश्वरी बहुत कहती हैं— ' तुम सब मध्याह्नमें लौट आया करो। दिन भर वनमें रहकर तेरे सखा श्रान्त हो जाते हैं। क्षुधातुर होते हैं। कोई अब न प्रातः यहाँ आता, न सायं आ पाता।'

श्रीनन्दनन्दनको माताका मना करना स्वीकार नहीं। केवल इनके अग्रज मौन हैं इस विषयमें। इन अनन्तकी यह गम्भीर भङ्गी मुझे आतंकित करती है।

उत्पत्तिके क्षणसे वीतराग, दूसरोंको भी प्रवृत्तिके विरुद्ध परामर्श देनेका व्यसनी मेरा मानस-पुत्र नारद क्यों इन गोप-बालकोंके विवाहके

लिए ऐसा उत्सुक हो उठा है ? इसने तो पूरे व्रजमें प्रचार ही प्रारम्भ कर दिया— 'विवाहका इतना उत्तम मुहूर्त आगामी बारह वर्षोंमें नहीं आना है। इसी वर्ष बालकोंका विवाह कर दो।'

वैसे ही गोप जाति शिशुओंका विवाह-सम्पन्न कर देनेमें प्रसिद्ध है। अब नारदके प्रचारके कारण केवल वृषभानुजीने अपनी नन्दिनीका विवाह नहीं किया, कुछ सखियाँ रह गयीं उसकी और नन्दनन्दन अविवाहित रहे— यह आश्चर्य नहीं है। अग्रजसे पूर्व इनका विवाह व्रजराज कैसे कर दें ? मथुरामें कंसका आतङ्क रहते अभी वसुदेवजी रामके विवाहकी बात सोचेंगे भी नहीं और क्षत्रिय-कुमारोंका विवाह तो उनके समर्थ हो जानेपर ही शोभा देता है। नन्दव्रजके अन्य सब बालकोंका विवाह हो गया।

'कनूँ! यह सब क्या है ?' मैं भयाक्रान्त काँप उठा जब मैंने भूतकालके साक्षात्कारके प्रयत्नमें देखा कि भगवान संकर्षण आज प्रथम प्रहरमें ही वनमें अपने अनुजकी ओर सशङ्क देखकर पूछने लगे। मुझे भूल ही गया कि यह भूतकालका दृश्य है और भयका अब कोई कारण नहीं है।

वत्स-चारण करते बालक बछड़ोंके साथ गिरिराजके शिखरके समीप नीचे पहुँच गये थे। इसी ओर ऊपर गोप अपनी गायें ले आये थे। गायोंकी दृष्टि नीचे बछड़ोंपर पहुँची और वे पूँछें उठाये, कर्ण उत्थित किये हुंकार करती दौड़ पड़ीं। उन्होंने मार्ग देखा ही नहीं। सीधे शिलाएँ कूदती, झाड़ियाँ रौंदती, खड्ड फाँदती हुंकार करती भागती आयीं और अपने-अपने बछड़ोंके समीप आकर उन्हें आतुरतापूर्वक चाटने लगीं। बछड़े दूध पीने लगे।

गोपोंने अपनी लाठियाँ उठायीं। गायोंको रोकने दौड़े। बहुत प्रयत्न किया ; किंतु जिधर पहुँचे— गायोंने उधरसे मुड़कर दूसरा मार्ग पकड़ लिया। एक भी गायको कोई रोक नहीं सका। बड़ा क्रोध आया सबको। नाचे बालक देख रहे थे, लज्जा भी थी कि वे अपने पिता, चाचा, ताऊको असफल देख रहे हैं। गायोंके समान तो झाड़ियों, शिलाओं, गह्वरोंको कूदते आ नहीं सकते थे। सब क्रोधमें भरे, हाँफते, स्वेदस्नात, लाठी उठाये दौड़ते कुछ घूमधाम कर नीचे पहुँचे। जो श्रद्धालु गोपोंने कभी नहीं किया, वह क्रोधावेशमें सम्भवतः आज हो जाता। वे लाल मुख, अरुणाभ नेत्र, गायोंपर अत्यन्त क्रुद्ध ही आये थे। ऐसेमें हाथ उठ जाना अशक्य तो नहीं है।

अचानक पुत्रोंपर—बालकोंपर दृष्टि पड़ी और गोपोंके हाथोंसे लाठियाँ छूट गिरीं। नेत्रोंमें वात्सल्य उमड़ पड़ा। सबने गायोंकी ओर देखा ही नहीं। दौड़े और अपने पुत्रोंको भुजाओंमें उठाकर हृदयसे लगा लिया। नेत्रोंसे प्रेमाश्रु टपकने लगे। देर तक खड़े रह गये ऐसे ही। कठिनाई-से बालकोंको छोड़ सके। गायें ही नहीं, गोप भी लौट-लौटकर अपने बालकोंको देखते हुए गये।

'तुम सबके आत्मस्वरूप सच्चिदानन्दघन। तुम समीप हो और गाय, गोप, गोपियोंका ध्यान भी तुम्हारी ओर नहीं जाता?' श्रीसंकर्षण सशङ्क कह रहे थे—'पहिले तो ऐसा नहीं था। सबका जैसा होना चाहिये, वैसा अतिशय अनुराग तुम्हारे प्रति ही था। अब इस वर्ष क्या हो गया है? बछड़ों, बालकोंके प्रति व्रजकी गायों, गोपों, गोपियोंकी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, यह कैसे हो रहा है?'

'कोई तुमसे पराङ्मुख करके व्रजके लोगोंको पथभ्रष्ट करनेका प्रयत्न कर रहा है, यह शङ्का पहिले मेरे मनमें आयी।' भगवान अनन्त भाईकी ओर ही देख रहे थे—'असुरोंको उत्पीडनका अवकाश मिल जाय यदि तुमसे यहाँके लोगोंकी प्रीति न रहे। सुर भी सदासे प्राणीको तुमसे दूर ही लगाये रखनेमें संलग्न रहते हैं। धर्म, तपादिका पथ सुझाते हैं; किंतु प्रीति तो कोई प्रदान नहीं कर पाता। व्रजके प्राणियोंमें यह मोह नहीं, प्रेमका प्रवाह उमड़ रहा है, यह मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ और यह प्रेम बालकों-बछड़ोंके प्रति? किसी सुर, असुरकी माया मेरा स्पर्श नहीं करती। मैं इसे नहीं समझ पाता तो यह तुम्हारी ही कोई लीला होनी चाहिये। इस असङ्गत लीलाका अभिप्राय? तुमने अपनी ओर आकर्षित करनेके स्थानपर प्राणियोंको अपने अपत्यादिमें आसक्त करनेका व्रत कबसे बना लिया?'

'दादा! बूढ़े ब्रह्माजीको हम बालकोंसे उपहास सूझ गया।' श्यामसुन्दर हँस पड़े—'तू रोष मत कर। वे आ गये हैं ऊपर गगनमें। मैं कुछ पलमें सब यथावत् कराये देता हूँ। वे हमारे बछड़े-बालक एक वर्ष पूर्व ही उठा ले गये, अतः मुझे ही सब बनना पड़ा है।

ओह! तो ये सर्वरूप, सर्वात्मा ही बछड़े बालक, उनके वस्त्राभरण, छीके, लकुट सब बने हैं? तभी तो श्रुति शास्त्र कहते हैं—

'सर्वं विष्णुमयं जगत्।'

'वासुदेवः सर्वम् ।'—गीता ७.१९

श्रीकृष्णचन्द्र उठे खड़े हुए और अग्रजसे कुछ दूर आगे आ गये मैं भूतकालका साक्षात्कार करता वर्तमानमें पहुँच गया। सहसा सब बछड़े, सब बालक चतुर्भुज वनमाली, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, कौस्तुभ-कण्ठ श्रीवत्स-वक्षा भगवान् श्रीहरिके रूपमें प्रकट हो गये। कोई भ्रम, कोई सन्देह स्थान नहीं पा सकता था। सारूप्य प्राप्त श्रीनारायणके पार्षदोंके कण्ठमें कौस्तुभ और वक्षपर श्रीवत्स नहीं होता, यह मैं जानता हूँ। तुलसी-दलोंको केवल वे परम पुरुष ही पाद-स्पर्श प्रदान कर सकते हैं और यहाँ सबके मस्तकोंसे चरणोंतक नव-तुलसी-दलकी मालाएँ परम पुण्यवान इनके प्रीति-प्राप्त महापुरुषोंने अर्पितकी थीं।

अणिमा-महिमादि सिद्धियाँ, सब सिद्धेश्वर, सनकादि, देवर्षि तथा प्रजापतिगण प्रभृति मेरे सब पुत्र, जय-विजय प्रभृति भगवत्पार्षद, स्वय माया देवी और श्रुतियाँ साकार होकर भगवान शिवके साथ इन सब प्रत्यक्ष श्रीहरिके रूपोंकी स्तुति कर रही हैं। सबके समीप एक-एक मेरे समान ब्रह्मा भी हाथ जोड़े स्तवन कर रहे हैं।

मेरा शरीर काँपने लगा। मैं इनमें एकके भी सम्मुख समुपस्थित होनेका साहस नहीं कर सकता था। मैं असमर्थ हो गया यह अनन्त ऐश्वर्य देखनेमें। मैंने हंसकी पीठपर ही हाथ जोड़े और अपने आठों नेत्र बन्द कर लिये।

मुझे लगा कि स्तुतिकर्त्ताओंका सस्वर मन्त्र-पाठ समाप्त हो गया है। मैंने डरते-डरते दृष्टि खोली। नीचे सावधानीपूर्वक देखना पड़ा। वही फलभार-नम्र विटप, वही पुष्पोंसे लदी भूमती लताएँ। वही हरित व्रज-भूमि। कहीं कोई बालक नहीं, कोई बछड़ा नहीं। श्रीनन्दनन्दन वही वाम कक्षमें शृङ्ग-वेत्र दबाये, कटिमें वंशी लगाये, वाम हथेलीपर दधि-भातका ग्रास रखे, दधि-उज्ज्वल अधर एवं दक्षिण कर, वनमें सखाओंको ढूँढ़ते घूम रहे हैं। पुकार रहे हैं—'भद्र! सुबल! श्रीदाम! तोक! कहाँ हो तुम सब?'

मैं अपने हंससे पृथ्वीपर कूदा और इन मयूर-मुकुटी, पीताम्बर-परिधान व्रजराजकुमारके सम्मुख दण्डके समान गिर पड़ा। मेरा सौभाग्य—मैंने अपने चारों मुकुटोंके किरीटाग्रसे इनके पद्मपदोंका स्पर्श किया। मैंने

अपराध किया था—अक्षम्य भक्तापराध और ये सर्वेश शान्त खड़े थे। मुझे प्रताड़ित करनेकी कोई भङ्गी नहीं। रोषकी कोई रेखा नहीं। प्रसन्न खड़े थे मेरे सम्मुख। मैं साहस करके उठता था और फिर विह्वल होकर भूमि-पर प्रणिपात करते गिर जाता था। सहस्र-सहस्र प्रणिपात किये मैंने और तब कहीं अपनेको इतना स्थिर कर सका कि स्तुति कर सकूँ।

भगवान शेष सहस्र मुखोंसे अनन्तकालसे जिनके गुण-गानमें संलग्न हैं, श्रुतियाँ जिनके स्वरूपके सम्बन्धमें 'नेति-नेति' करके नीरव हो जाती हैं, मैं केवल चार मुखसे इन अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परम पुरुषकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकता था।

ये गोपकुमार बनें या अनन्तशायी—मैं इनका ही शिशु, इन्हींके नारायण रूपके नाभिकमलसे समुद्भूत। मुझे केवल यही तो कहना था—'माता-पिता अपने अबोध बालकके विनोदको अपराध मानेंगे तो उसपर कृपा कौन करेगा? माता तो शिशुके अपराधको भी देखकर आनन्दित होती है। मैंने अहङ्कारवश कुछ कर दिया है; किंतु आपका हूँ। आपका पदाश्रित हूँ। आपकी कृपाका आकांक्षी हूँ। आपके स्वरूप, आपकी महिमा-से सर्वथा अनभिज्ञ हूँ। अब आप ही अपनी ओर देखकर अनुकम्पा करें!'

'मैंने आपके स्वजनोंका अपराध किया है। ये ऐसे महाभाग कि आप भी इन्हें कुछ देनेमें असमर्थ हैं; क्योंकि विष पिलाने आयी बाल-घातिनी पूतनाको आपने माताका पद प्रदान कर दिया तो अब क्या रहा जो आप इनको दे सकें? इनको—जिन्होंने अपना सर्वस्व, अपने प्राण-शरीर सब आपको अर्पित कर रखे हैं और केवल आपकी सेवाको, सुखको अपना सर्वस्व बना लिया है।

मैंने आपके इन स्वजनोंका अपराध किया है, इस व्रजमें कहीं कोई तरु, गुल्म, लता, तृण मुझे बना देनेकी कृपा करें, जिससे यहाँके किसी पशु-प्राणीकी पद-रज कभी उड़कर मुझपर पड़े और मैं पवित्र हो सकूँ।'

इतना पुण्यात्मा, सौभाग्यशाली मैं नहीं था कि मुझे व्रजकी दिव्य भूमिमें किसी भी रूपमें स्थान दिया जा सकता। केवल संकेत मिला मुझे और मैं सुमेरुकी गुफामें-से बालकों और बछड़ोंको उठा लाया। बछड़ोंको मैंने वनमें श्रीनन्दनन्दनके समीप छोड़ दिया। बालकोंको पुलिनपर ले गया तो चौंका। भगवती योगमायाने उस दिनके वे छीके, भोजन, पत्र-

पाषाणादि पात्र वैसे ही सुरक्षित कर दिये थे। भूमिपर पड़े कण तक ज्यों-के-त्यों थे। मैंने बालकोंको उन्हीं स्थानोंपर बैठा दिया, जहाँ वे पहिले बैठे थे।

मुझे ब्रह्मलोक जानेका संकेत मिला। समझ गया कि अब वहाँ मेरा प्रवेश अवरुद्ध नहीं होगा। आज्ञाको अस्वीकार करनेकी धृष्टता नहीं कर सकता था।

व्योममें मैंने अपने वाहनको पर्याप्त ऊपर ले जाकर स्थिर किया। देखा—बछड़ोंको लिये श्यामसुन्दर अग्रजके साथ चले आ रहे हैं। बालक प्रसन्न होकर बोले—'अच्छा, दादा आ गया ? कनूँ, तू बहुत शीघ्र लौटा। हमने अबतक एक ग्रास भी नहीं खाया है।'

अब मण्डलके मध्यमें गौर-श्याम दोनों विराजमान हो गये। वही भोजन-क्रीड़ा। सबने यमुनामें मुख-कर धोये। सायं व्रज लौटते अघासुरका शरीर दिखलाया श्रीकृष्णने सखाओंको। सुबलने स्पर्श करके कहा—'यह तो सूख गया। आज धूप तीव्र थी। अब यह अपने छिपनेकी अच्छी गुफा हो गयी।'



गोचारण

मर्यादाका मान रखनेके लिए ही जब किसीकी सेवा-पूजाकी जाय, जब सुप्रसन्न होकर भी वह कुछ दे न सके, तब उसे सङ्कोच होना ही चाहिये और यदि वह सुबुद्धि है तो स्वेच्छासे सेवकत्व स्वीकार कर लेगा। मुझे व्रजमें यह सुअवसर भी सुलभ नहीं। सुरोंमें मैं प्रथम पूज्य हुआ अपनी श्रद्धा तथा देवर्षिकी दयासे। मुझे यह सम्मान प्राप्त हो गया और सर्वत्र प्रत्येक शुभारम्भमें गणेश-स्मरण किया जाने लगा। श्रद्धालु गोप शास्त्र-विधिका सम्यक् पालन करेंगे ही और महर्षि शाण्डिल्यसे प्रमाद सम्भव नहीं। व्रजके प्रत्येक शुभारम्भके प्रारम्भमें मुझ साम्ब-शिवके सुतकी समाराधना होती है। पूजनके पश्चात् देवताओंका विसर्जन हो जाता है; किंतु गणपतिका विसर्जन न करना विधि बन गयी है। अतः व्रजमें बने रहनेको मैं विवश हूँ और बहुत ही मधुर—अत्यन्त आनन्ददायिनी है यह बाध्यता।

गणेशकी प्रथम गणना—केवल इसलिए यह प्रथम पूजा कि यह विघ्नराज—विघ्न करने वाले—भूत-प्रेत-विनायकादिका अधिपति है। कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता, यदि गणनायकका प्रारम्भमें ही पूजन न हो और मेरा असन्तोष आक्रोश बन जाय।

सभीत, सप्रयोजन सेवा कोई सेवा है? प्राणी अपनी आवश्यकतासे विवश होकर तो मल-मूत्र-त्यागके स्थानोंपर भी जाता है और उन्हें भी स्वच्छ रखता है; किंतु क्या यह उन स्थानोंका सम्मान है? सम्मान तो है जब बिना आवश्यकताके केवल प्रीति अथवा श्रद्धाके कारण कोई निष्प्रयोजन पहुँचता है। यह सम्मान मनुष्य अपने सम्बधियोंको और देवालयको देता है। व्रजने मुझे यही सम्मान दिया है।

इस दिव्य भूमिमें देवी योगमाया नित्य अप्रमत्त संरक्षिका हैं। उनकी अनुमतिके बिना यहाँ देवता तक प्रवेश नहीं पाते। मैं असन्तुष्ट भी बना रहूँ तो मेरा आक्रोश यहाँ क्या कर लेगा? क्या कर पाता हूँ मैं जब योगमाया किसी असुरको यहाँ आ जानेकी इच्छाका अज्ञात अनुमोदन कर देती हैं और वह आकर आतङ्क उत्पन्न करता है?

जिनके नाम-स्मरणसे विघ्न विलीन हो जाते हैं, उनकी—उनके स्वजनोंकी सेवा करनेमें गणेश कहाँ समर्थ है। भगवती धरा यहाँ केवल प्रयोजन-पूर्त्ति मात्रके लिए कुश-कण्टक प्रकट करती हैं। पूरे व्रजमें विघ्न बन सके ऐसा कोई मशक, मूषक, वृश्चिकादि भौतिक अथवा आधिदैविक प्राणी नहीं। मैं स्वयं आहूत न होता—आ सकता, इसमें सन्देह है, तब मेरा कोई गण आ सकेगा ?

कोई विघ्न ही नहीं आ पाता तो विघ्न-वारणका प्रश्न उठता है ? लेकिन श्रद्धालु गोप समस्त कर्मारम्भोंमें मेरी सेवा करते हैं। यह निष्काम-निष्प्रयोजन सेवा ! यह सम्मान अन्यत्र सुरोंको युगोंमें भी अप्राप्य है और ये गोप—साक्षात् श्री यहाँ सेविका हैं इनकी। स्वयं मेरे तातचरण अनेक बार आते हैं व्रजराजकुमारके दर्शन करने। मेरी माता—निखिल भुवन-धात्री महाशक्ति यहाँ अपनेको छिपाये व्रजेन्द्र-सदनमें सेविकाके रूपमें समुपस्थित हैं। महर्षि शाण्डिल्यने मुझे कभी विसर्जित नहीं किया, अतः मेरा स्वत्व—मेरा सौभाग्य कि मैं यहाँ बना रहूँ। सेवा कोई मुझे यहाँ सुलभ नहीं ; किंतु साक्षी रहूँ, श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके दर्शन करता रहूँ, यह परम दुर्लभ आकांक्ष्य तो मुझे प्राप्त हो ही गया है।

श्रीकृष्णचन्द्रके सखाओंमें मधुमङ्गल मुझे परमप्रिय है। अनेक बार सन्देह होता है, मैं उसीका अंश तो नहीं हूँ। मेरे ही समान मोदक-प्रिय, लम्बोदर और उसकी कर्पूरगौर अङ्गकान्ति तो मुझे अपने पूज्य पिताका स्मरण कराती रहती है।

केवल कभी-कभी कष्ट होता है मुझे—व्यथा होती है जब श्रीव्रजेश्वरी, व्रजराज खिन्न होते हैं अथवा व्रजराजकुमार श्रान्त होते हैं। मैं विघ्न-वारक हूँ, क्लेश-हारक हूँ ; किंतु अत्यन्त असमर्थ हूँ यहाँ। श्रीकृष्णकी प्रीतिसे समुत्थित परम पुण्यमयी व्यथाको किञ्चित् भी तो कम नहीं कर पाता !

कल सायङ्काल गोचारणसे लौटते ही व्रजराजकुमार बाबाके अङ्कमें आ बैठे। वनमें सखाओंके साथ मन्त्रणा कर आये थे, अब उसे मूर्त्त करनेका उपक्रम प्रारम्भ हो गया। बाबाके कण्ठमें दोनों कर डालकर पूछा—'बाबा ! मैं अब बड़ा हो गया ?'

बाबाने स्नेह-भरित स्वरमें कह दिया—'हाँ, मेरा लाल अब बहुत बड़ा हो गया है। बुद्धिमान भी हो गया है।'

'बड़े गोप तो गायें चराते हैं।' अब वास्तविक बात कही गयी— 'कलसे मैं सब गायें और वृषभ चराने ले जाया करूँगा !'

अब श्रीव्रजराज चौंके। यह तो कल्पना ही नहीं थी कि उनका यह सुकुमार कुमार ऐसी बात कहेगा। अब वे कितना भी कहें कि 'गायोंको बनमें दूर ले जाना पड़ता है। इतनी अधिक गायें हैं और उनमें बहुत-सी इधर-उधर भागती हैं। उनके पीछे बहुत भटकना पड़ता है। वृषभ परस्पर लड़ने लगते हैं तो उन्हें किसीके घायल होनेका ध्यान नहीं रहता। बालकोंके वशका यह काम नहीं है। अभी बछड़े चराना ही उचित है श्यामसुन्दरको।'

इन सबका उत्तर पहिलेसे इन्होंने सोच रखा है। इनके पादारविंद-के स्मरणसे देवी सरस्वती प्रतिभाकी अधिष्ठातृ हुई और मैं बुद्धिदाता बना—इनके समीप क्या युक्तियोंका अभाव है ? कहते हैं— 'मैं बड़ा तो हो गया। अब पूरे दिन वनमें रहकर थकता तो नहीं हूँ। गायें मेरे पुकारनेसे पास आ जाती हैं। बहुत दूर भी गयीं तो शृङ्ग बजाकर बुला लूँगा। वृषभ मेरे मना करनेपर लड़ते नहीं।'

इन बातोंका प्रतिवाद किसीके पास नहीं। गोप जानते हैं कि इनके पुकारनेपर सब पशु दौड़ आते हैं। ये समीप आ जायँ तो लड़ते वृषभ लड़ना छोड़कर इन्हें सूँघने आ खड़े होते हैं। अब ये कहते हैं कि— 'मैं कल सब गायों-वृषभोंको प्रातः पुकार लूँगा।'

इसका कोई उपाय नहीं। ये पुकार लें तो गोप प्रयत्न करके भी कोई पशु पृथक नहीं ले जा सकेंगे। व्रजराज जानते हैं कि उनके ये कुमार कितनी हठी हैं। अतः अब इनकी बात तो माननी ही है। केवल एक बात ये सदा मान लेते हैं— 'महर्षि शाण्डिल्यसे पूछकर, पूजन करके तब गोचारण प्रारम्भ करना चाहिये।'

'तुम चलो महर्षिके समीप। मैं साथ चलूँगा।' यह भी स्वीकार नहीं कि बाबा अकेले जायँ।' महर्षिको मना कर दें तो ?

'तुम अभी स्नान कर लो, कलेऊ कर लो। महर्षि अभी तो संध्या-हवनमें लगे होंगे !' लेकिन व्रजराज जानते हैं कि उनके कुमार अब महर्षिके आश्रममें गये बिना माननेवाले नहीं है।

'नीलमणि अब पाँच वर्षका हो गया है !' उपनन्दजी सदा श्याम-का पक्ष लेते हैं—'गोप-कुमारके लिए गोचारणका उत्साह उज्वल आशाका सूचक है। बालकका उत्साह-भङ्ग उचित नहीं है।'

बड़े भाईकी बात व्रजराज कभी टाल नहीं सके हैं और महर्षि शाण्डिल्यके मुहूर्त तो मानो श्यामकी इच्छाकी ही प्रतीक्षा करते रहते हैं। उन्होंने परसों कार्तिक शुक्ल अष्टमीका मुहूर्त निर्दिष्ट कर दिया। 'अच्छा है, अष्टमीको यह महोत्सव, अगले दिन ही अक्षय नवमका स्नान-दान-तीर्थयात्रा और एक दिनके अन्तरपर हरि-प्रबोधिनी एकादशी। इससे बालकोंको बराबर प्रारम्भसे श्रान्त नहीं होना पड़ेगा।' यह समाधान मिल गया सब गोपोंको।

सबसे अधिक आकुल हैं माता व्रजेश्वरी और जब उन्हें ही कोई मार्ग नहीं मिल रहा, मैं तो यहाँ कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ। मेरा काम आरम्भोंका अनुमोदन है। प्रारम्भसे पूर्व ही किसी कार्यको स्थगित करा देना मेरे स्वभावमें नहीं। स्वयं श्रीयशोदानन्दन जब कुछ करना चाहते हैं, मैं या कोई भी बाधक बननेकी शक्ति कहाँ रखता है। केवल समर्थन किया जा सकता है।

माता व्याकुल रहती हैं दिनभर। इनके लाल वत्स-चारणको चले जाते हैं वनमें, यह भी इन्हें स्वीकार नहीं। विवश हैं कि इनका मोहन मानता नहीं। अब गायें चराने जायगा यह ? 'व्रजमें क्या गोपोंका, सेवकों-का अभाव हो गया कि व्रजराजकुमार इस अल्पवयमें गौओंके पीछे वन-वन भटके ? चञ्चल बालक वनमें पता नहीं क्या-क्या करें। कब क्या हो जाय ! पता नहीं कितने असुर हैं संसारमें। आये दिन कोई-न-कोई आता ही रहता है ! गायें, वृषभ क्या थोड़ेसे हैं ?......'

बहुत आशङ्काएँ हैं—इतनी कि कोई गणना नहीं ; किंतु उपाय भी कुछ नहीं है। व्रजेश्वरीने कभी अपने स्वामीका प्रतिवाद नहीं किया। व्रजराजकी इच्छाको सदा सुप्रसन्न स्वीकार किया है। कितना भी कड़ा करें अपना हृदय ; पर जानती हैं कि महरको मना करनेके लिए मुख नहीं खुलेगा। अब मना करना सम्भव भी नहीं है। बड़े जेठने 'हाँ' कर दिया तो बात समाप्त हो गयी। उनकी बात व्रजमें तो वेद-वाक्य ही है। अब तो महर्षिने मुहूर्त्त भी निश्चित कर दिया है।

'महर करते भी क्या ? मोहन हठ पकड़ लेता है तो मानता है ? कह तो रहे थे कि गोष्ठमें जा खड़ा हुआ कि सब पशुओंको ले जायगा। पूजन करके प्रारम्भ करेगा, यह मान गया, इतना ही बहुत हुआ।'

× × ×

कलसे गोचारण-प्रारम्भ होना है। आज गोपकुमार पूरी उमङ्गमें हैं। श्रीकृष्णचन्द्र सखाओंके साथ वनमें मयूरपिच्छ ही नहीं, हंस, शुकादिके पङ्ख भी संग्रह करने लगे हैं— 'यह कामदाके लिए। यह नन्दिनीको। यह अरुणाके कण्ठमें अच्छा लगेगा।' गुञ्जा, मणियाँ, पुष्प, पल्लवादिके संग्रहमें सब पूरे दिन व्यस्त रहे। आज कोई अन्य क्रीड़ा किसीको सूझती ही नहीं। वनसे लौटकर भी राम-श्याम तथा सखागण अपना-अपना संग्रह मैयाको, माता रोहिणीको, व्रजराजको, सब बड़े गोप-गोपियोंको दिखलाते दौड़ते रहे। सब अपने संग्रहको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

नन्दीश्वरपुर और वृहत्सानुपुरमें सब बालकोंका गोचारण संस्कार कल ही होना है। यह संस्कार पृथक-पृथक करनेकी न प्रथा है और न यह सम्भव है। दोनों ग्रामोंके मध्यमें वृहत् मण्डप गोपोंने बना दिया है। गोप-गोपियाँ सब व्यस्त हैं—व्यस्त रहे हैं दिनभर और पूरी रात्रि ऐसे ही व्यस्त रहना है। भवन, द्वार, मार्ग, मण्डप सब सज्जित हो चुके हैं; किंतु अभी तो बहुत काम पड़ा है।

उपलिप्त पथ-वीथियाँ, कलश, कदली स्तम्भ, प्रदीप सज्जद्वार तोरणालंकृत, नाना रङ्गोंसे सुचित्रित पथ, ध्वज-पताकाएँ-तोरण-पुष्प-माल्यादिकी सज्जा सम्पूर्ण हो गयी; किंतु कल यज्ञ होगा, समस्त पशुओं-की, पशु-पालकोंकी पूजा होगी देव एवं विप्र पूजनके पश्चात्। रात्रि पूरी इस प्रस्तुतिमें लगनी है।

मण्डपमें विप्रोंने वेदियोंपर मण्डप बना लिये रात्रिमें ही। गोपोंने आज्य, दधि, दुग्ध, शर्करा, मधु, तिल, अक्षत, चन्दन, सुगन्धित औषधियाँ, तीर्थजल, समिधाएँ, दूर्वा, कुश, कुंकुमादि सब एकत्र कर दिया और शाकल्य-की राशि सजा दी। गोपियोंको अपेक्षाकृत अधिक ही श्रम करना पड़ा। कलके यज्ञ, गो-पूजन, ब्राह्मण एवं सम्पूर्ण गोकुलके सहभोजकीसामग्रियाँ तो बनानी ही थीं, गोपोंको, बालकोंको, गायों-वृषभों, बछड़ोंको भी समलंकृत करनेके लिए वस्त्र, भूल, रत्नाभरण निकालना—स्वच्छ करना था।

मैं देख सकता हूँ कि भगवती श्री स्वयं समस्त सिद्धियोंको लिये सेवामें लगी हैं। मेरी माता अन्नपूर्णा व्यस्त हैं; किंतु सब सावधान हैं— किसी गोपीको, गोपको इनकी उपस्थितिका आभास हो जाय तो सेवाका सौभाग्य समाप्त ही हो जायगा।

गृहोंमें, गोष्ठोंमें, पथोंमें पूरी रात्रि प्रकाश प्रज्वलित किये सब व्यस्त रहे। सर्वत्र आवागमन-कोलाहल व्याप्त रहा। व्रजराजकुमार सखाओंके साथ बहुत रात्रि बीते बार-बार मैयाके अनुरोधपर विश्राम करनेको प्रस्तुत हुए। सब सखा आज नन्द-भवनमें ही रात्रि-भोजन करके सोये। बहुत रात्रि तक सब गोष्ठोंमें, मण्डपमें दौड़ते भागते रहे थे। सबकी जिज्ञासा— सबको आज ही जान लेना था—'यह क्या है? यह क्यों बनाया गया? इसका क्या होगा? यह कहाँ लगेगा? अमुक देवताकी वेदी कौन-सी? महर्षि या बाबा कहाँ बैठेंगे? कपिला या धर्म कहाँ खड़े होंगे?'

बालकोंके अनन्त प्रश्न हैं; किंतु उन्हें ही आज पूरा उत्तर सुननेका अवकाश नहीं था। कुछ पूछा, कुछ सुना और अन्यत्र दौड़ गये।

किसी प्रकार रात्रिमें सोये भी तो सब ब्राह्ममुहूर्त्तमें ही जाग गये। श्रीकृष्णचन्द्रने सबसे पहिले उठकर पूछा माता रोहिणीसे—'सबेरा हो गया?'

सखाओंको व्रजराजकुमारने जगा दिया—'अब उठो! अपनी गौयें हम लोग स्वयं सजावेंगे।'

आज तो सर्वत्र पथमें प्रकाश है। गोप-गोपियोंका आवागमन है सब ओर। बालकोंको अपने गृहों तक कोई पहुँचाने जाय, इसकी अपेक्षा ही नहीं। श्रीव्रजेश्वरी रोकें, प्रबन्ध करें, इसके पूर्व ही सब भाग गये।

× × ×

अरुणोदयके साथ ही शङ्ख-ध्वनि हुई और तत्काल शृङ्ग, दुन्दुभियाँ बजने लगीं। गायोंने हुङ्कार की। गायें, वृषभ, बछड़े सब स्नान कराके अलंकृत किये जा चुके हैं। सबके शरीर रत्नजटित झूलोंसे सजे हैं। खुर रजत-मण्डित हैं और शृङ्गोंपर स्वर्णावरण है। कण्ठोंमें मणि-मालाओंके मध्य स्वर्ण-घण्टिकाएँ हैं। वृषभ, गायें, बछड़े सब गोष्ठोंसे निकले और वाद्य-ध्वनिके साथ मण्डपके समीप पहुँचकर शान्त खड़े हो गये। बछड़े तक आज केवल कभी-कभी सिर मात्र हिला लेते हैं।

गोप-गोपियाँ सबने आज नवीन वस्त्रधारण किया है। भली प्रकार अलङ्कारोंसे अलंकृत हैं। रङ्ग-बिरंगे वस्त्रोंमें सज्जित, अच्छी प्रकार आभूषित, मुकुट-उष्णीष पहिने, लकुट लिये गोप कुमार पंक्तिबद्ध बैठ गये हैं।

मुझे मस्तक झुकाकर प्रथम पूजन स्वीकार ही करना पड़ता है। मैं देखता हूँ कि कोई सुर नहीं जो संकुचित न हो रहा हो किंतु व्रजराज-कुमार पूजन करें तो उसे साक्षात् स्वीकार करनेका सौभाग्य छोड़ा भी तो नहीं जा सकता।

धरा और गगन दोनों वाद्य-ध्वनिसे गूँज रहे हैं। सुमन-वृष्टि हो रही है नभसे। गोपियोंका मङ्गल गान, सूत-मागधोंका स्तवन, विप्रवर्गका मन्त्रपाठ और नभमें अप्सराओंका नृत्य, धरापर नटोंका प्रदर्शन—कहना कठिन है कि धराके इन कलाकारोंमें कितने अमरावती अथवा अन्य दिव्य-लोकोंसे आकर मिल गये हैं।

श्रीव्रजेन्द्रनन्दन पूजन कर रहे हैं। महर्षि केवल मन्त्रोच्चारण करते हैं और ये बिना संकेत सविधि अर्चन करते जा रहे हैं। मातृका, नवग्रह, लोकपाल-दिक्पालादिका पूजन समाप्त हो गया। अरणि-मन्थनका तो नाम करना था। मन्थन-रज्जु घूमी और हव्यवाह प्रकट हो गये। अग्न्याधान करके महर्षिने पूजन कराया—यज्ञ सम्पन्न हुआ। पूर्णाहुति दी गयी आज्य-की अखण्ड वसुधारा देकर।

'धर्म !' वास्तविक पूजन तो अब आरम्भ हुआ। अर्घ्यपात्र उठा-कर श्रीकृष्णचन्द्रने पुकारा और हुंकारके साथ हिमधवल व्रजराजका महा-वृषभ आकर खड़ा हो गया। मैं देखता हूँ कि सत्त्वमूर्त्ति साक्षात् धर्म ही पधारे हैं यहाँ। चरण धोये नवघनसुन्दरने। श्रृङ्गोंपर जल डालकर महर्षि-ने उसके सीकरोंसे श्यामसुन्दरको सिञ्चित किया। चन्दन, अक्षत, माल्य, धूप-दीपके द्वारा सम्यक् पूजन हुआ। गोपालने अञ्जलि भरकर मोदक, अन्न और मृदुल दूर्वादल देकर नीराजनके अनन्तर पदोंपर पुष्पाञ्जलि दी और प्रणिपात किया सम्मुख भूमिमें पड़कर।

'भद्र ! तू पहिले पूजन कर नन्दीका।' अब सखाओंको प्राथमिकता देने लगे हैं।

'कृष्णचन्द्र ! तुम लोग एक-एक धेनु तथा वत्सका पूजन कर लो!' महर्षिने स्नेहपूर्वक कहा— 'गोप सबका पूजन कर देंगे।' महर्षिकी बात

उचित है ! लक्ष-लक्ष गोधन एकत्र है। बालक केवल तिलक भी कर तो समय कितना लगेगा ?

'हम सबका पूजन करेंगे !' गोपाल आज किस वृषभ, गाय अथवा बछड़ेको अपने करोंकी अर्चासे वञ्चित करें। इस समारम्भमें किस पशुको यह सम्मान देनेसे पृथक रखें ये पशुपाल ? इनका आग्रह भी उचित है— 'हमसब सबका पूजन करेंगे।'

महर्षिका मुख गम्भीर हो गया। मौन स्वीकृति दे दी उन्होंने और नेत्र सजल हो गये। मेरी दिव्य दृष्टि भी असमर्थ हो रही है—सबका, सब वृषभोंका, सब गायोंका, सब बछड़ोंका श्रीकृष्णचन्द्रने पूजन किया है ! इनके सब सखाओंने पूजन किया है प्रत्येकका और बिना आतुरताके सम्पूर्ण विधिसे किया है। कैसे इतने अल्पकालमें यह हो गया ? जो विश्वरूप हैं, सदा-सर्वत्र हैं, उन अनन्त ऐश्वर्यका यह ऐश्वर्य समझमें आना असम्भव ही है।

आचार्य-पूजन, विप्र-पूजन और व्रजेश्वरी द्वारा विप्र-पत्नियोंका पूजन सम्पन्न हो गया। गोदान, स्वर्ण-रत्न-अन्नदानका उल्लेख—गणना मैं भी नहीं कर सकता। विप्रोंकी ही बात नहीं, सूत-मागध-बन्दी तक असमर्थ हो गये अपनी प्राप्त पुरस्कार-राशिको ले जानेमें। उनके लिए भी व्रजराजको विशेष व्यवस्था करनी पड़ी। वे किसीको देना भी चाहें तो यहाँ दें किसको ?

'बच्चे क्षुधातुर होंगे !' व्रजेश्वरीने बहुत धीरेसे कहा। कहाँ तक वे यह बात मनमें दबाये रहतीं। आज कलेऊ भी तो किसीने नहीं किया। अब मध्याह्न हो रहा है।

'वत्स कृष्णचन्द्र !' महर्षिने आदेश दिया—'अब तुम लोग प्रसाद ले लो। गोचारणसे पूर्व कलेऊ किया जाना चाहिये।'

माताका सन्तोष नहीं है और इनका असन्तोष उचित है। सचमुच बालकोंने केवल कुछ ग्रास मुखमें डाले और आचमन कर लिया। मुझ लम्बोदरकी क्षुधा बहुत मोदक माँगती है। मुझे तो लगा कि व्रजके बालकोंने केवल पदार्थोंका मुखसे स्पर्शमात्र किया है। बालकोंमें आज वनमें गौओंको ले जानेकी उत्सुकता है।

× × ×

आगे शृङ्ग, दुन्दुभियाँ, भेरी आदि वाद्य तथा पथके पार्श्वमें पङ्क्तिबद्ध शङ्खनाद करते गोपगण। वृषभों, गायों, बछड़ोंका अलंकृत, पूजित अपार समूह। ये बार-बार घूमते हैं और अपने गोपालको देखते हैं। हुंकार करते हैं। झर रही हैं गायोंके स्तनोंसे अखण्ड उज्वल धाराएँ। मार्ग दुग्ध-पिच्छल होता जा रहा है।

मयूर-मुकुट लहरा रहा है। सुमन-सज्जित अलकोंपर मौक्तिक माला है। सर्वाङ्ग रत्नाभरण-भूषित, अङ्गरागखचित है। भालपर कुंकुमका उर्ध्वपुण्ड और उसपर चिपके हैं महर्षिके करोंसे लगाये गये चार अक्षत। अञ्जन-रञ्चित दीर्घ दृग, कर्णोंमें रत्नकुण्डल, स्कन्धपर पीतपट एवं कोमल कामरी, कछनीमें लगी मुरलिका, कक्षमें दबा शृङ्ग, दक्षिण करमें वेत्र-लकुट लिए अपने नीलाम्बरधारी अग्रजके साथ व्रजराजकुमार आज गोपाल बन गये हैं। गोचारणार्थ चले हैं। पीछे है सज्जित लकुट हस्त सखाओंका समुदाय। गायोंके दोनों पार्श्वोंमें दण्ड लिए गोपोंका सावधान समूह।

महर्षि शाण्डिल्य विप्रवर्गके साथ स्वस्तिपाठ करते चल रहे हैं बालकोंके पीछे-पीछे। सस्वर साम-गानके साथ अभिषेक चल रहा है। अनवरत सुमनवर्षा चल रही है सुरोंकी। व्रजेन्द्र वृद्ध गोपोंके साथ अनुगमन कर रहे हैं। उनके पीछे सेवक, सूत-बन्दी और सबसे पीछे व्रजेश्वरीको मध्यमें लेकर मङ्गल गान करता चला आ रहा है गोपियोंका समूह।

वन-सीमा दृष्टि-पथमें पड़ी और मृगोंका यूथ भागता आकर गायोंमें मिल गया। मिल तो गया आज इन गायोंमें केहरी, महिष, गवय आदिका दल भी। शशक गायोंके पदोंके मध्य कूदते चलने लगे।

'कनूं! तू इनको भी चरायेगा?' बालकोंको बहुत आनन्द आया है।

'इनकी पूजा तो हुई नहीं!' तोक ताली बजा रहा है—'इनको एक-एक फूल ही दे दे।'

पक्षी पशुओंकी पीठपर आ बैठे हैं और गगनमें उड़ते चल रहे हैं। ऐसा पालक-चारक प्राप्त हो तो कौन इसके सञ्चालनमें चलना नहीं चाहेगा।

× × ×

'वत्स ! आज वन-सीमासे ही तुम सबको लौटना है।' महर्षिने समीप होकर आदेश दिया।

श्रीकृष्णचन्द्र सखाओंके साथ गायोंके मध्यसे आगे बढ़ गये। सम्मुख जाकर मुड़े और लकुट उठाया। पशुओंने मुख कर लिया नन्दीश्वरपुरकी ओर। वाद्य आगे आ गये। विप्रवर्ग, गोप, सेवक, गोपियाँ सब दो दलोंमें पथके दोनों ओर हो गयीं। सबके मध्यसे वाद्य, गायोंका समूह और उनके पीछे सखाओंसे घिरे गोपाल चलते आ रहे हैं।

प्रशस्त विस्तृत भूमिमें पहुँचते ही मध्यमें खड़े होकर धर्मने हुङ्कार की। वाद्य, गोप, विप्रवर्ग, सेवक, गोपियाँ सब शीघ्रतापूर्वक भूमिके चारों ओर किनारे चले गये। केवल श्यामसुन्दर सखाओंके साथ मध्यमें खड़े रहे धर्मके समीप।

उत्सवका सबसे आकर्षक अंश स्वतः प्रारम्भ हो गया। गायों और वृषभोंने कान उठाये। वन-पशुओंने भी हुंकार की। सब पूँछ उठाकर दौड़ने लगे। लेकिन शीघ्र ही वन-पशु अपनी असमर्थता समझकर मध्यमें सिमटकर शान्त खड़े हो गये। केहरी कूद सकते हैं, मृग छलाँगें ले सकते हैं, गवय दौड़ सकते हैं; किंतु गो जातिके समान नृत्य करते दौड़ना तो इनमें-से किसीके वशका नहीं है।

शशक पहिले ही पुचकारकर बालकोंने समीप बुला लिए थे। उनके कुचल जानेका भय था। वन-शुओंके साथ ही बछड़े-बछड़ियाँ भी कूद-फुदककर शान्त खड़ी हो गयीं। वृषभोंको भी अन्ततः गायोंके सम्मुख आज थकित होना पड़ा। गायें दौड़ती रहीं—दौड़ती रहीं और धर्म स्थिर हुङ्कार करता रहा। इस उत्सवका अग्रणी-सञ्चालक व्रजेश्वरका विशाल वृषभ धर्म।

'नन्दिनी!' बालक नाम ले लेकर पुकारने लगे हैं। गायोंमें अब अधिकांश थकित होकर मन्द पड़ने लगी हैं।

'कामदा!' भद्र उल्लसित पुकार रहा है।

'कृष्णा!' दाऊका स्वर हर्ष-विह्वल है।

'कपिला!' सबसे अन्त तक दौड़ती रही कपिला। यह जैसे थकेगी ही नहीं। गोपालने अपनी वनमाला उतारकर फेंक दी कपिलाके गलेमें।

कपिलाने अपने पद स्थिर किये और दौड़कर श्यामसुन्दर कपिलाके कण्ठमें भुजाएं डालकर लिपट गये।

सबको—एक-एक पशुको पुचकारा सस्नेह व्रजराजकुमारने और तब वन-पशुओंको विदा करनेका प्रयत्न किया—'अब तुम सब जाओ!'

यह कार्य सरल नहीं है। गोप पृथक करते हैं तो भी ये भागकर गायोंमें मिल जाते हैं। सुबल हँसता है—'इन्हें भी गोष्ठमें बाँधना पड़ेगा।'

'आज सब पशु धर्मका आतिथ्य स्वीकार करें।' व्रजराजने अपने महावृषभकी पीठपर हाथ रखकर कहा।

'सब व्रजवासी आज व्रजेन्द्रनन्दनके अतिथि रहें!' महर्षि शाण्डिल्यका सदा गम्भीर मुख स्मित-शोभित हो गया।

'व्रज तो श्रीचरणोंका आज्ञानुवर्ती है; किंतु…' श्रीवृषभानुजीने आपत्ति की—'हमारे गोपोंको और गोधनको आप क्षमा करें!'

'श्रीनन्दराय आपके गोधनको अपना नहीं कहेंगे, यदि यह इनके गोष्ठमें जाय!' महर्षिने गोपोंकी चर्चा नहीं की।

'मेरा सौभाग्य होता यदि ये ऐसा करते।' वृषभानुजीने व्रजेश्वरकी ओर देखा।

अब जब वृद्धोंमें भी विनोद आ गया तो तरुणों तथा बालकोंकी चर्चा क्यों की जाय। गोपोंने परस्पर दधि, दूध, नवनीत उछालना प्रारम्भ किया। गोपियोंने व्रजेश्वरी तथा माता रोहिणीजीको रंग दिया भली प्रकार। बहुत देर तक चलता रहा यह विनोद। सबने एक साथ यमुना-स्नान किया।

वृषभानुजी यहाँसे अपना समूह लेकर विदा हुए। अब नन्दीश्वरपुर तथा वृहत्सानुपुर दोनोंमें समान महोत्सव चलना है। दोनों ही पुरोंमें गोपोंको, गोपियोंको बहुत अनुरोध करके नवीन वस्त्राभरण धारण कराये गये।

गोप-बालकोंका पूरा समुदाय साथ है; क्योंकि महर्षिको अभी विधिवत् मण्डपमें आकर देवताओंका विसर्जन करना था। यह तो मेरा तथा भगवती लक्ष्मीका सौभाग्य है कि हमको विदा नहीं किया जाता। हमको सदा रहनेकी अनुमति मिल जाती है।

व्रजेश्वरके गोष्ठमें पशु सत्कृत हो रहे हैं। आज तो वन-पशु भी यहाँ स्थान-सत्कार पा गये हैं और ऐसा आवास मिले तो केहरी भी क्यों मोदक न खाय। सबके समीप गोपोंने घृतदीप रखा है।

व्रजेश्वरने गोपोंको लेकर भजन-कीर्त्तन प्रारम्भ कर दिया है। गोपियाँ व्रजेश्वरीके साथ पूरी रात्रि मंगलगान करनेवाली हैं। केवल बालक सो गये हैं। बहुत श्रान्त हो गये थे सब। मैयाने शीघ्र भोजन करा दिया। श्रीकृष्णचन्द्र आज स्वत: शीघ्र सो गये।

सब गोप-गोपियाँ रात्रि-जागरण संलग्न हैं। सब शयन भी करते— मुझे सेवा कहाँ मिलनी थी। जहाँ विघ्नकी गति ही नहीं, विघ्नेश अपनेको वहाँ इनके दर्शनसे ही सौभाग्यशाली मानकर तो सन्तुष्ट रहेगा।



दधि-दान

'बहिनको क्या हो गया है ? वह इतनी उदास क्यों रहती है ?' मैंने ललितासे पूछा। इधर बहुत दिनोंसे मुझे अवसर ही नहीं मिलता दिनमें घर रहने का। श्यामसुन्दर जबसे बछड़े चराने जाने लगा है, सबेरे ही उठकर न भागो तो पता नहीं नन्दीश्वरपुरके सखा किधर निकल जायँ अपने बछड़े लेकर और वनसे चाहे सायंकाल लौटो या दो घड़ीमें ही लौटो, नीलसुन्दर मुझे आने कहाँ देता है। रात्रिका अन्धकार होने लगता है तब कहीं श्रीदाम भैयाके साथ मुझे मैया किसी न किसी सेवकको पहुँचाने भेजती हैं।

'तुझे क्या है, तू तो पूरे दिन अपने सखाके साथ रहता है। वह तुझे कन्धे पर हाथ रखे चिपकाये घूमता है। तुझे हम सबकी क्यों चिन्ता होने लगी। हम उसका मुख देखनेको तरसती रहती हैं और……ललिता तो रोने ही लगी—'तुम सबोंको पता नहीं बछड़े चरानेकी क्यों सूझ गयी थी। अब तो तू भी उसके साथ गायें चरायेगा। दिन भर वनमें खेलेगा, कूदेगा, ऊधम करेगा ! एक दिन घर बैठकर देख तो पता लगे कि हमारी क्या दशा है ! आज तूने क्यों नहीं भोजन किया ? तू क्यों सबेरेसे मुँह बनाये है ? तू क्यों बार-बार द्वारकी ओर भागता है ? अपनी तो सोचता नहीं और बहिनकी पूछता है ? हम तो पनघट पर तनिक मिल लेती थीं ; उससे भी गयीं।'

सचमुच मैंने यह तो कभी नहीं सोचा मैं कन्हाईके बिना रातमें घर कैसे रहता हूँ, मैं ही जानता हूँ। आज मेरी वर्षगाँठ है, वनमें जानेको नहीं मिला। बाबा और मैयाके कितना मना करने पर भी मैया श्रीदाम चला गया गायें लेकर। उसका जाना ही उचित था। मैं तो घर रह ही गया इस वर्षगाँठके बवालमें, भैया भी क्यों व्यर्थ मेरे मोहनके समीप रहनेसे वञ्चित रहता। मैंने ही उसे कह दिया कि वह अवश्य चला जाय।

आज कन्हाई सबेरे ही मिलकर चला गया मेरा हृदय छटपटा रहा है। दिन पता नहीं कितना बड़ा हो गया है। पता नहीं कब सन्ध्या होगी और श्यामसुन्दर लौटेगा। वर्षगाँठमें क्या-क्या हुआ, मुझे कम ही पता है। मैं तो यही सोचता रह गया कि सखा वनमें कहाँ होंगे, क्या करते होंगे। आज अवश्य कनूँ उज्वल या भद्रके कन्धे पर अपनी वाम भुजा रखेगा। आज क्या-क्या करेगा वह ? अवश्य आज वह उदास रहेगा। सदाके समान उल्लसित नहीं रहेगा। अपने सुबलको बार-बार स्मरण करेगा।

वह भी मेरे बिना कहाँ रह पाता है। किसी दिन तनिक देर हो जाय, वनमें तनिक दूर किसी कुञ्जमें हो जाऊँ तो पुकारने लगता है, उलाहना देता है, ढूँढ़ने चल देता है—'तू कहाँ चला गया था ? अब तक कहाँ था ? क्या करने लगा था ?'

आज थक भी जायगा तो किसके कन्धेपर भुजा रखकर विश्राम करेगा ? किसके उरुको उपधान बनाकर सोयेगा ? कितना तो संकोची है। किसीसे कहेगा भी नहीं कि थक गया है ! बहुत बुरी है वर्षगाँठ ! मैं कहूँगा कल उससे कि इस असुरीको भी मार दे। यह आती है तो मुझे उसके साथ वनमें जानेको नहीं मिलता।

वही क्यों आज शीघ्र नहीं लौट आता ? इतनी देर तो हो गयी। गायोंका पेट कबका चरकर भर गया होगा। कुछ पहिले आज आ जाय तो क्या उसे बाबा कुछ कहने वाले हैं ? मैया तो प्रतिदिन कहती है कि हम सब वनसे शीघ्र आ जाया करें।

आज वनमें कोई उस बछड़े, बगुले अथवा अजगरके समान असुर आ गया हो तो ?

'तू तो रोने ही लगा !' ललिताने मेरे आँसू पोंछ दिये अपने अञ्चलसे—'मेरी बातका बुरा मान गया ? अपनी बहिनसे पूछ देख !' 'तू भी तो बहिन है !' मैं ललिताके गले लगकर फूट पड़ा। मैं अपनी ही सोचने लगा था और भूल ही गया था कि ये लड़कियाँ भी तो मेरे समान ही मोहनको चाहती होंगी। बहिन बिचारी केवल सुबह-शाम अब दूरसे गवाक्षसे ही तो उसे देख सकती है।

'तूने ही तो अपनी बहिनको पहिले वहाँ लेजाकर उससे मिलाया था।' ललिताने कहा—'तनिक-सा अवकाश था पनघट पहुँचनेका। तुम सब वनमें विचरण करने लगे तो अब कोई वहाँ क्या अपना सिर फोड़ने पहुँचे। तू तो अभी जब तेरा सखा लौटेगा, दौड़ा जायगा और उसके कण्ठसे जा लिपटेगा। उसके साथ ही चला जायगा उसके सदन और अँधेरा होनेपर आवेगा। हम सबको तो गवाक्षसे ही उसे देखना है। तेरी बहिनने आज एक बहुत सुन्दर माला गूँथी है। उसे तू पहिनकर जायगा?'

'मैं उसे लेकर जाऊँगा और कनूँके गलेमें अपने करोंसे पहिना दूँगा!' मैं बहिनके समीप दौड़ गया। मेरी बहिन मुझसे तो संकोच नहीं करती है और इस छुई-मुईने कैसे माला गूँथी होगी? इतना श्रम इसे करने कैसे दिया माँने? लगता है कि मेरी वर्षगाँठमें सब व्यस्त रहे और इसे अवसर मिल गया। मैं भी तो आज कितने दिनों पर इसे दिनमें देख सका हूँ। आज ही देखा मैंने कि यह इतनी उदास रहती है। प्रतिदिन सखाके समीपसे लौटता हूँ तो देखते ही दौड़कर लिपट जाती है—'भैया आया—सुबल भैया!' सो न जाऊँ तब तक मुझसे सटी बैठी रहती है। पूछती रहती है कि मैं दिन भर कहाँ रहा, क्या-क्या करता रहा? मैं क्या नहीं जानता कि इसे मेरे सखाका वर्णन सुनना है।

'राधा! तेरा गूँथा हार कहाँ है?' मैंने पूछा तो बहिनका मुख लज्जासे लाल-लाल हो गया।

'तुझे किसने कहा?'

'ललिताने। देखें तुझे हार गूँथना आता भी है?' मैं हँसी न करूँ तो दिखलायेगी नहीं। अन्यथा मेरी बहिनके करोंकी कलाको तो देखकर भी कोई अनुकरण नहीं कर पाती।

'अभी नहीं। सायंकाल तुझे पहिना दूँगी।' बहिनको कुछ छिपाना भी तो नहीं आता।

'मैं कन्हाईको पहिनाऊँगा उसे!' मैंने बहिनके संकोचको मिटा दिया—'आज मेरी वर्षगाँठ भी तो है।'

'तुम सब दिनभर घरमें क्या किया करती हो? वनमें क्यों नहीं आतीं?' अचानक मेरे मुखसे निकल गया—'हम सब यहाँ समीप ही तो रहते हैं—साँकरी घाटीके समीप।'

'अब तेरी बहिन बछड़े चरायेगी ?' ललिता हँस पड़ी—'तू तो अब गायें चराने लगा है।'

'क्यों, तुम सबोंको वनमें आनेके लिए कोई बहाना नहीं है ?' मैं ललिताके चिढ़ानेसे झल्ला गया—'दिनभर घरमें मुख लटकाये बैठी रहो, इससे तो उत्तम है कि दही बेचा करो।'

बात पता नहीं कहाँ पहुँचती ; किन्तु वनकी ओरसे वंशीध्वनि आने लगी थी। श्याम लौट रहा होगा गायों, सखाओंके साथ। बहिनने मुझे अपनी गूँथी माला दे दी और मैं द्वारसे बाहर भागा।

× × ×

'सुबल ! तू राधाको समझा तो सही।' मैं रात लौटा तो मैयाने मुझसे कहा—'अब यह अड़ी है कि कलसे दही बेचने जायगी। तेरी बात सुनती है। मैं मना करूँ तो रोयेगी और मैं इसकी आँखोंमें आँसू देख नहीं सकती। तेरी बहिन दही बेचेगी यह क्या उचित है। तेरे बाबाका नाम उज्वल होगा ?'

'मैया !' मैंने मैयाके मुखपर हाथ रख दिया। मुझे लगा कि श्रीदाम भैया सुनेगा तो बहुत रुष्ट होगा। मैयाके कानसे मुख सटाकर मैंने कहा—'इतनी सारी इसकी सखियाँ साथ रहेंगी और गोप-कन्या दही बेचे तो बुरा क्या है ? घर में बैठी-बैठी प्रसन्न रहती है यह ?'

'कहाँ प्रसन्न रहती है। मैं तो इसीकी चिन्तामें मरी जा रही हूँ।' मैयाने कहा—'दिन भर उदास रहने लगी है। मेरी सुमन-सुकुमार लाड़िलीको पता नहीं क्या रोग हो गया है। स्नान, शृङ्गार, भोजनकी भी सुध नहीं रहती इसे। अब तो बहुत आग्रह करनेपर मुख जूँठा कर लेती है। तू आता है रात्रिमें लौटकर तभी मैं इसे प्रसन्न देख पाती हूँ। मेरे घरमें नारायणने सब तो दिया है। अब यह दही बेचने क्यों जाय ? व्रजमें दही कौन लेगा ?'

'दही बेचने सब जायँगी तो इसमें इनका मन लगा रहेगा। इससे प्रसन्न रहेंगी।' मैंने मैयाको समझा दिया—'इनका दही तो मैं खाऊँगा, मेरे सब सखा खायेंगे।'

मैया हँसकर रह गयी। जानता हूँ कि अब कोई घरमें विरोध नहीं करेगा। मैया मना लेगी बाबाको और बाबा, मैया तो मेरी बहिन जैसे प्रसन्न रहे, उसीको करते हैं।

× × ×

'कनूँ! हम सब आज साँकरी घाटीके समीप ही रहेंगे।' मैंने गोचारणको चलते ही सखाके कानसे मुख लगाया। वरूथपको ही निर्णय करना रहता है कि गायें किधर जायँगी; किंतु वह कन्हाईकी बात तो नहीं टाल सकता। मैं कहूँ तो पता नहीं क्या-क्या पूछने लगे। श्यामको तो मैंने बिना पूछे बतला दिया—'बहिन आज अपनी सखियोंके साथ दही बेचने आवेगी उधर।'

श्यामसुन्दर हँस गया। अब यह जिधर चलेगा, गाय अपने आप उधर जायँगी। वरूथप इसके पीछे आनेको विवश है। उससे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं।

गायें वनमें समीप ही चरती हैं। तृणोंका कोई अभाव है कि इनको दूर जाना पड़े। मैं कई बार चढ़ गया श्याम पर्वतपर; किंतु मुझे कोई आती नहीं दीखी। लगता है कि मैयाने रोका होगा। वह सबेरे-सबेरे तो बहिनको आने नहीं दे सकती। लेकिन मेरा श्रम सफल हो गया। मैंने शिखरपर-से देख लिया कि लड़कियाँ आ रही हैं। मैंने श्यामको संकेत कर दिया।

'श्रीदाम! सखियोंके साथ तेरी बहिन दही बेचने लगी है!' कन्हाई नटखट है। यह भैयाको पहिले न बतलाता तो इसका कुछ बिगड़ जाता था?

'कनूँ! तू मुझे चिढ़ावेगा तो अच्छा नहीं होगा।' भैयाको इससे सदा झगड़ना ही सूझता है।

'मैं चिढ़ाता नहीं हूँ। तू स्वयं शिखरपर जाकर देख ले। सुबल अभी देख आया है।' श्यामने गम्भीर मुख बनाया—'बुरी बात है। तेरी बहिन क्या दही बेचने योग्य है? तेरे बाबाके घरमें क्या अभाव है?'

भैयाने मेरी ओर देखा। मैंने सिर हिलाकर 'हाँ' कर दिया तो बिगड़कर बोला—'आने दो इन सबोंको, आज इतना डाँट पिलाऊँगा कि इसे भी स्मरण रहेगा।'

कन्हाई ताली बजाकर हँस पड़ा। मैं भी हँसने लगा। भैयाकी दुर्बलता हम दोनों जानते हैं। श्यामने बिना व्यङ्गके ही कहा— 'सचमुच तू बहिनको डाँट सकेगा ? वह सामने आ जायगी तो तू उससे कुछ कह भी पावेगा ?'

भैया संकुचित हो गया। सिर झुका लिया उसने। बहिन हम दोनोंको प्राणोंसे प्यारी है। वह देखते ही 'भैया' कहेगी और फिर तो भैया भूल ही जायगा कि वह बहिनको डाँटना भी चाहता है।

'देख मैं बतलाता हूँ।' श्यामने समझाया— 'हम सब यहाँ छिप जाते हैं दोनों शिखरोंके पीछे और कुञ्जोंमें। वे सब श्वेत-श्याम पर्वतोंकी सँकरी घाटीमें पहुँच जायँ तो कुछ सखा पीछे पहुँच जायँगे। हम सब इनका दही खा लेंगे छीनकर तो अपने आप ये घर लौट जायँगी।'

अपने घरका दही है। सब सखा खायँगे, यह सुनकर भैया प्रसन्न हो गया। केवल इतना कहा— 'मैं आगे नहीं जाऊँगा।'

कन्हाई हँस गया— 'आगे तो सुबल भी नहीं जायगा। तुम दोनोंको भूख न लगे तो दही भी मत खाना। मुझे तो भूख लगी है।'

× × ×

मैं शिखरपर ऊपरसे छिपकर देखता रहा। सब सखा छिप गये हमारी योजना सुनकर। सब प्रसन्न हुए। दाऊ दादाको कुछ कहना नहीं पड़ा। वह कुञ्जमें बैठा है। उसे मैं एक पूरी दहेंड़ी दे आऊँगा। अभी तो श्याम मेरे समीप पेटके बल पर्वतसे चिपटा छिपा है। लड़कियाँ आ रही हैं। सबने सिरपर दहेंड़ी रखी है। सब इधर-उधर देखती आ रही हैं। सब हम सबोंको ढूँढ़ती लगती हैं। बीच-बीचमें सब खड़ी हो जाती हैं। वनकी ओर देखती हैं।

ललिता मेरी बहिनको हाथके संकेतसे धर्मको दिखला रही है। अब सब आश्वस्त हो गयी लगती हैं कि हम समीप ही हैं। मैंने एक बार गायोंकी ओर देख लिया। गायें चर चुकी हैं, पानी पी चुकी हैं। अब तो वृक्षोंके नीचे बहुत-सी बैठकर पागुर कर रही हैं। केवल बीच-बीचमें पूँछ हिलाती हैं। कुछ थोड़ी ही गायें और वृषभ खड़े हैं। ये भी विश्राम ही कर रहे हैं।

मैं कन्हाईको निश्चिन्त करता हूँ—‘ अपनी गायें—वृषभ चरकर विश्राम करने लगे हैं। अब बहुत देर तक इनमें कोई कहीं नहीं जायगा। ’

लड़कियोंको ढोंग करना बहुत आता है। अभी तो सब इधर-उधर देख रही थीं, वनमें देखती थीं और रुक-रुककर परस्पर कुछ कहती थीं और अब हमारा वृषभ दीख गया तो सीधे सिर झुकाये चल पड़ी हैं, जैसे सचमुच इन्हें कहीं जाना है।

लड़कियाँ पहुँचीं दोनों पर्वतोंके मध्य तो श्याम उठकर खड़ा हो गया। इसने ताली बजा दी। भद्र सखाओंका एक समूह लेकर पीछे पहुँच गया और श्याम इन सबोंके सामने मार्ग रोककर दोनों कर कटिपर रखे खड़ा हो गया है।

‘ हमको जाने दो ! मार्ग क्यों रोकते हो ? ’ चन्द्रावली बोलती तो बहुत दृढ़तासे है।

‘ तुम सब कहाँ जा रही हो ? ’ कन्हाई भी दृढ़ स्वरमें पूछता है।

‘ कहीं जायें, तुम्हें क्या करना है ? ’

‘ यह वन हमारा है। इसमें-से कुछ बेचने जाना है तो हमारा कर देकर जाओ ! ’ कनूँको भी कितनी युक्तियाँ आती हैं—‘ विक्रयकी वस्तुपर कर देना पड़ता है ! ’

‘ वन कबसे तुम्हारा हो गया ? ’ चन्द्रावलीके नेत्र निकालनेसे श्याम क्या डरनेवाला है। वह कहती है—‘ व्रजमें तो गोरस-विक्रयपर कर लगते सुना नहीं। ’

‘ वन मेरा है या नहीं, वृषभानु बाबासे जाकर पूछ लेना ! ’ मुझे हँसी आ गयी। यह कनूँ अपने बाबाका नाम नहीं लेता। अब मेरे बाबासे कोई क्या पूछेगा। पहिलेसे पता है कि पूछनेपर वे तो कह देंगे ही कि—‘ वन, गोष्ठ, गायें और हम भी सब व्रजराजकुमारके। ’

‘ कर लगता है। मैंने लगाया है। तू बहिरी तो है नहीं। नहीं सुना तो अब कान खोलकर सुन ले ! ’ मोहन भी झगड़नेमें कम नहीं है।

‘ मार्ग छोड़ो ! हम कर-वर किसीको नहीं देते। ’ चन्द्रावलीने डाँटा—‘ पता भी है, राजनन्दिनी साथ हैं। बहुत अशिष्टता मत करो, यह कहे देती हूँ। बाबासे सब कहूँगी जाकर। ’

'तुझे जिससे कहना हो, कह लेना। कोई साथ हो, कर तो तुम सबको देना पड़ेगा। ऐसे मार्ग नहीं मिलेगा।' कन्हाईने दोनों पैर फैलाकर रहा-सहा मार्ग भी रोक लिया है। अब कर लो जो करना हो।

'हम लौट जायँगी !' चन्द्रावली आगे है। उसे इतना भी पता नहीं कि भद्र सखाओंका पूरा दल लिए पीछे मार्ग रोके खड़ा है ?

'तुम क्या लौटने भी नहीं दोगे ? ' अब बहुत क्रोध आया लगता है इसे।

'मैं इतना बुद्धू नहीं हूँ कि तुम सब पीछे लौटनेको कहकर किसी और मार्गसे निकल जाओ।' मेरा सखा कहता तो ठीक है— 'मेरा कर दे दो, फिर आगे जाओ या पीछे लौटो !'

'कर कैसा ? कह तो दिया कि कर हम नहीं देंगी।' अब भी यह अकड़ रही है।

'देगी कैसे नहीं ? मुझे लेना आता है !' अब और बोलती जा ! मोहनने झपटकर इसकी दहेंड़ी छीन ली है। क्या हुआ कि दहेंड़ी थोड़ी फूट गयी।

'कनूँ ! मुझे भूख लगी है।' मधुमङ्गल दौड़कर समीप आ गया। यह भोजन दीख जाय तो दूर रह नहीं सकता। 'पहिला भाग ब्राह्मणका होता है उपार्जनमें।'

'लूटमें क्यों नहीं कहता ? ' चन्द्रावली पीछे मुख करके हँस पड़ी है। सब लड़कियाँ हँसने लगी हैं।

'तू भोग लगा !' मेरा सखा सदासे परमोदार है। यह स्वयं तो तब खायगा, जब सबको मिल जायगा। मधुमङ्गल जम गया दहेंड़ी लेकर श्वेत-पर्वतकी शिलापर।

'सुबल ! तू दादाको दे आयेगा ? ' भला यह भी पूछनेकी बात है। मैं तो यह सोचे ही बैठा हूँ। अब छीना-झपटी चलने लगी है। इसमें दहेंड़ियाँ फूटेंगी, दही फैलेगा। लड़कियोंके वस्त्र कुछ फटेंगे, आभूषण—विशेषतः हार टूटेंगे। ये सब भी तो कम हठी नहीं हैं। अपनी दहेंड़ियाँ गोदमें दुबकाकर उसीपर झुकी हैं। श्याम अब इन्हें गुदगुदाये नहीं, बल न लगाये तो दहेंड़ी पावेगा ? एक पूरी दहेंड़ी बिना फूटे पा गया तो यह दादाको मिलनी ही चाहिये।

‘ तू आँखें क्यों दिखाती है ? ले, दही खा ले !’ भद्रने रत्नाके मुख-पर पूरी मलाई फेंककर उचित ही किया। इन लड़कियोंको भी तो कुछ दही मिलना चाहिये। अब तो सभी सखा यह क्रीड़ा करेंगे ही।

लड़कियाँ हँसती भी हैं और रुष्ट भी होती हैं। यह एक साथ हँसना-रोना लड़कियोंको आ कैसे जाता है ?

‘ कनूँ ! अभी तेरी दहेंड़ी रह गयी है !’ भद्र हँसता क्यों है ? यह तो मैं भी देखता हूँ कि मेरी बहिन सखियोंके मध्यमें सिकुड़ी है। यह कितनी तो भीरु है। इसे क्या झगड़ना आता है ?

श्यामका भाग है मेरी बहिनकी दहेंड़ीका दही, यह मैं भी जानता हूँ। लेकिन बहिनसे दही छीन लेना सरल नहीं है। सब सखियाँ उसीपर झुकी उसकी रक्षा करने लगी हैं। अब इन सबोंकी दहेंड़ियाँ हाथसे चली गयीं तो एक तो सब मिलकर बचा लें।

कन्हाईको कठिनाई तो हुई ; किंतु मेरा सखा असफल होना नहीं जानता। गुदगुदाकर, झकझोरकर यह बहिनकी दहेंड़ी भी पा गया है और अब मुझे संकेत मिल गया है। हम दोनों इसी एक ही दहेंड़ीमें साथ दधि खायँगे।

फूटी दहेंड़ियोंके खण्ड और दही फैला है पथमें, श्वेत-श्याम दोनों पर्वतोंकी समीपकी शिलाओंपर। तोक नाचता है, चिढ़ाता है लड़कियोंको एक फूटी दहेंड़ी भर दही लिए खाता हुआ—‘ सब बैठ जाओ और इन कपियोंके साथ तुम सब भी यह दही चाट लो !’

लड़कियाँ हँसती हैं , चपत दिखाती हैं। इनके वस्त्र कहीं-कहीं फट गये हैं। प्राय: सबके हार टूट गये हैं ; किंतु अपने अङ्गोंपर पड़ा दही भी ये पोंछती नहीं हैं। ये तो कपियोंसे भी आज नहीं डरती हैं। कपि कूदकर इनमें-से किसीको सूँघते हैं या दाँत दिखाते हैं, तब केवल चौंककर वह समीपकी सखीसे लिपट जाती है।

मेरे सखाके सम्पूर्ण अङ्गोंपर और वस्त्रपर भी दही पड़ा है। अब यह बैठ गया है मेरे सम्मुख दही खाने। लड़कियाँ खड़ी-खड़ी इसीकी ओर एकटक देख रही हैं और यह भी तो मुखमें दही लेकर उन सबोंकी ओर ही देखकर बार-बार अँगूठा हिलाता है।

× × ×

'क्यों रे ! वनमें कितने बन्दर भरे पड़े हैं ? एक साथ सब टूट पड़े थे लड़कियोंपर ?' मैं रात घर लौटा सखाके समीपसे तो मैयाने मिलते ही पूछा—'पता नहीं लड़कियाँ वनमें क्यों गयीं। मार्ग भूल गयी होंगी। तेरे सखा नन्दनन्दनने बचाया किसी प्रकार बन्दरोंको भगाकर इन्हें। तुम सब उस सुकुमारको अकेला वनमें छोड़कर चले जाया करते हो ? ऐसा नहीं करते बेटा ! बहुत भला है वह और अभी बहुत कोमल है। उसे साथ ही रखा करो खेलते समय।'

मैयासे यह सब ललिताने कहा है। चन्द्रावली भी यही कह गयी है। दोनों बहुत बुरी हैं। हम सबको ये बन्दर बतलाती हैं। मैं ललितासे पूछूँगा। लेकिन इनमें किसीने मैयासे मेरे सखाकी बुराई नहीं की है। अच्छी हैं सब। इनको अपने आभूषण टूटने, वस्त्र फटने तथा दहेंड़ियाँ फूटनेका कुछ कारण तो बतलाना था।

× × ×

अब तो यह प्रतिदिनकी बात बन गयी। हम सबको अब दही नहीं ले जाना पड़ता कलेऊके लिए। इन लड़कियोंसे घरमें बैठा रहा नहीं जा पाता। बहिन अब प्रसन्न रहने लगी है। वह अपनी सहेलियोंसे सुना है लौटकर हँसती-बोलती रहती है। वह प्रसन्न रहे तो मैया उसे दधि बेचने जानेसे मना नहीं करेगी।

इन सबोंके समीप बहाने बहुत हैं। कभी कोई भल्लूक दीखेगा और कभी केहरी। डरकर भागेंगी तो कँटीली झाड़ियोंमें गिरनेसे दहेंड़ियाँ फूटेंगी, वस्त्र फटेंगे, आभूषण टूटेंगे।



सखा-समूह

उत्सव सब अच्छे होते हैं, लेकिन वर्षगाँठ बुरी होती है। आज मेरी वर्षगाँठ क्या आई मैं वन में ही नहीं जा सका। पूजन करनेमें मेरी प्रीति तो है ; किंतु तब जब श्याम भी समीप रहे। आज तो प्रातः पूजन कराने महर्षिके साथ जो मुनिगण आये थे, उनमें एक उजली दाढ़ी वाले महात्मा कहींसे नये-नये ही आ गये थे। पूजनके पीछे मुझसे पूछने लगे—'लाल ! मुझे अपने सखाओंका रूप-रङ्ग स्वभाव समझा दे !'

'आप क्या करोगे ?' महात्मा कुछ पूछें तो बतलाना चाहिये, यह मेरी मैया कहती है ; किंतु सखा क्या दस-पाँच हैं कि मैं बताऊँगा। मैंने कहा —'महाराज ! सखा तो सैकड़ों हैं हमारे !'

'मैं तेरे व्रजमें अभी आया हूँ। चाहता हूँ कि तेरे राम-श्याम के जो सखा हैं, वे सायंकाल आवें तो देखते ही दूर से पहिचान लूँ। कोई समीप आवे तो उसका नाम न पूछना पड़े। मैं राम-श्याम को तो जानता हूँ।' मुनि महाराजने कहा—'तू मुख्य-मुख्यको तो बता ही दे।'

हम सखाओंमें तो सब समान हैं। हममें मुख्य-अमुख्य क्या होता है ? लेकिन ये मुनि महाराज मानेंगे नहीं। मैया कहती है कि मुनि जो चाहते हैं, करके ही मानते हैं। अतः इन्हें कुछ तो गिनाने पड़ेंगे। इनके पूजा-पाठका समय होगा तो अपने आपसे चले जायँगे। मैंने इनको बतलाना प्रारम्भ किया।

हममें आयुके अनुसार सबसे बड़ा मधुमङ्गल है। हमारे दाऊसे दो वर्ष बड़ा लगता है ; किंतु मैया कहती है कि यह कोई योगीश्वर है। बढ़ता ही नहीं अपने मनसे। कोई नहीं जानता कितना बड़ा है। ब्राह्मण है, इसलिए क्या पता यह भी आप सबके समान मुनि भी हो। मन्त्र-पाठ तो करता है महर्षिके साथ कभी-कभी पूजाके अवसरपर।

उजले शङ्ख जैसा श्वेत वर्ण है। श्वेत वर्णके ही वस्त्र पहिनता है और श्वेत पुष्पोंकी माला प्रिय है इसे। मोटा-सा लम्बा पेट है। लम्बा

मुख है। देह भी मोटा है और मोदक मिल जाय तो क्या पूछना—तत्काल जमकर बैठ जायगा। कोई काम नहीं करता। गायें भी घेरने नहीं जाता ; किंतु हम सबको बहुत प्रिय है। सबको हँसाता रहता है। ब्राह्मण है, अत: इसे पहिले तो खिलाना ही चाहिये ; किंतु कहता है—'मिष्टान्न जूँठा नहीं हुआ करता।'

ऋषभ मेरे उपनन्द ताऊका पुत्र है। दाऊ दादासे दो दिन ही छोटा है। गेहुँआ रङ्ग है। पुष्ट लम्बा शरीर है और हरे वस्त्र पहिनता है। बहुत गम्भीर है। सीधा इतना है कि हँसीमें भी कुछ कहो तो सच मान लेता है। झगड़ना तो जानता ही नहीं, न कभी चिढ़ता है। रहता है दाऊ दादाके साथ लगा ; किंतु कन्हाईपर दृष्टि लगाये रहता है कि श्यामको कुछ चाहिये। मोहनको कुछ करना है। कुछ कहेगा भी किसीसे तो ऐसे बोलेगा जैसे प्रार्थना कर रहा हो, पर इसकी बात तो कन्हाई भी आदेशके समान मानता है। हम सब इसको आदरसे 'बूढ़ा दादा' कहते हैं।

अर्जुन सन्नन्द चाचाका पुत्र है। ऋषभसे सात दिन छोटा। साँवला रङ्ग, इकहरा शरीर, केशरिया वस्त्र पहिनता है। बहुत सीधा है, ऋषभसे भी सीधा। गायें यही घेरने जाता है। कम बोलता है और हममें-से कोई काम बता दे तो तत्काल करने लग जाता है।

मेरा नाम विशाल है। महानन्द बाबाका पुत्र हूँ। मैया कहती है कि पिताके समान ही मैं तप्तताम्र वर्ण हूँ और सखाओंमें सबसे ऊँचा शरीर है मेरा। मुझे ये केशरिया वस्त्र ही प्रिय हैं। गोपियाँ मुझे शैशवमें—'श्यामका अश्व' कहकर चिढ़ाती थीं। इसमें बुरा क्या है? मैं दाऊ दादासे एक मास छोटा हूँ। कन्हाई मेरी पीठपर बैठ जाता था और मैं उसे लेकर घुटनोंके बल घूमा करता था। अब भी किसी ऊँचे वृक्ष-लतासे फल या पुष्प तोड़ना होता है तो वह आकर मेरे कन्धेपर ही बैठता है। वह जब दौड़कर आकर मेरे कन्धोंपर बैठकर 'दादा' कहता है, जान जाता हूँ कि इसे कुछ काम है।

वरूथपको तो कोई भी देखते ही पहिचान लेगा। यह गोपनायक अभय चाचाका पुत्र है। सब इसे दुहरी देहका कहते हैं, पर देह तो इसके एक ही है। अवश्य बहुत सुगठित शरीर है। श्यामवर्ण है, तनिक ठिगना है। सतरङ्गी पगड़ी, दुरङ्गा पटुका, श्वेत कछनी इसे सुहाती है। गायें किधर चरने जायँगी, यह निर्णय यही करता है।

श्रीदाम तो वृषभानु बाबाका पुत्र है। सुबलका बड़ा भाई। वृषभानु बाबाके दोनों पुत्र श्रीदाम, सुबल और उनकी लाली राधा भी—तीनों तप्तस्वर्ण-वर्ण हैं। तीनोंको नील वसन ही प्रिय है। श्रीदाम है तो दाऊ दादासे एक दिन छोटा; किंतु कृशकाय है। कन्हाईके साथ ही लगा रहेगा और कन्हाई भी इसे खिझाता ही रहता है।

सुबल तो ऐसा है कि अपनी बहिनके साथ खड़ा रहे तो पता नहीं लगे कि दोनोंमें भाई कौन, बहिन कौन। कन्हाई चलते समय भी इसके कन्धेपर ही वाम भुजा रखता है।

भद्रसेनको हम सब तो भद्र ही कहते हैं। सबसे छोटे चाचा नन्दनजीका यह ऋषभके समान गेहुँए वर्णका है। कन्हाईके समान पीली कछनी बाँधता है और इसका नीला पटुका तो दाऊ दादाके पटुकेसे परिवर्तित होता ही रहता है। श्याम केवल इसकी कुछ मानता है। सबको यह आज्ञाके स्वरमें ही कहता है और इसकी तो माननी पड़ती है। हमारे कन्हाईसे लगभग नौ महीने बड़ा है; किंतु कन्हाई इसे बड़ा तभी मानता है और 'दादा' कहता है जब कोई काम ही आ पड़े। देखनेमें तो श्यामके बराबर ही लगता है। दाऊ दादाके पीछे चलेगा श्यामसे सटा और दाऊ न हो तो दाहिने दीखेगा।

देवप्रस्थ ऋषभका छोटा भाई है। हम सब इसे 'देव' कहते हैं। देवता जैसा ही सुन्दर, सुकुमार पाटलदलके समान वर्णवाला। इसे सब रंगोंके वस्त्र शोभित होते हैं। कब कैसे वस्त्र पाहनेगा, निश्चित नहीं रहता।

तेजस्वी मेरा छोटा भाई है। मेरे समान ही तप्तताम्रगौर; किंतु उसे सिंदूरी वस्त्र अच्छे लगते हैं। बड़े-बड़े नेत्र हैं। सब गोपियाँ कहती हैं—'यह व्रजराजकुमारका सेनापति है।' बहुत तेज है। दाऊ दादासे भी आदेशके स्वरमें यह बोल लेता है और दादा इसको बहुत मानते हैं।

अंशु तो दाऊ दादाकी दूसरी मूर्त्ति ही है। यह अर्जुनका अनुज दाऊके समान ही नील वस्त्र पहिनता है। तेज स्वभाव है; किंतु कन्हाईके साथ ही लगा रहता है।

तोककृष्ण छोटा भाई तो है भद्रका; किंतु शरीरके वर्ण, वस्त्र, स्वरूपमें गोपियोंको भी इसे देखकर बहुधा श्यामका भ्रम हो जाता है।

सबसे छोटा है सखाओंमें। कन्हाई इसे इतना मानता है कि यह रूठे तो कनूं रूठा धरा है। इसपर अतिशय स्नेह है श्यामका और यह भी उसीके सङ्ग रहता है।

'लाल ! तू अब केवल नाम बतला दे !' मुनि महाराजने कहा— 'मुझे मध्याह्न-सन्ध्याके लिए स्नान करना है। फिर आऊँगा और तुझसे तेरे सब सखाओंका वर्णन सुनूंगा। तू अभी जिनका वर्णन कर गया है, उनके साथ रहनेवाले, उनके दलके सखाओंके नाम ही मुझे गिनाता जा।'

'ऋषभ, अर्जुन, मैं, वरूथप—हम सबकी कोई रुचि नहीं है दल बनानेमें।' मैंने मुनि महाराजको बतलाया— 'ऐसे ही अंशु, तेजस्वी, तोक इतने छोटे हैं कि ये मण्डली नहीं बनाते। ये सब तो कन्हाईकी मण्डलीमें ही मिले रहते हैं।

भद्रसेनकी मण्डली है। उसमें सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रवर्धन, वीरभद्र, गोभट, भद्राङ्ग यक्षेन्द्रभट, विजय प्रमुख हैं। इनमें भी मण्डली-भद्र ही वस्तुतः दलनायक है। भद्रसेन कहाँ दल बनाता है। सब दल उसीके हैं। आप श्यामवर्ण, पाटलवस्त्र, मयूरमुकुटी, मोटा लकुट लिए मण्डली-भद्रको देखते ही पहिचान लोगे।

देवप्रस्थ प्रायः अपने सिरपर पाश लपेटता है। इसे गेण्डुर लिए आप देख सकते हैं। मरन्द, कुसुमपीड, मणिबन्ध, करन्धमको इसके दलमें कह सकते हैं।

श्रीदाम अनेक बार पीतवस्त्र पहिनता है; किंतु उष्णीष सदा ताम्रवर्ण बाँधता है। इसके हाथमें शृङ्ग प्रायः रहता है। इसके दलमें वसुदाम, दाम, सुदाम, किंकिणीदाम, विलासी, पुण्डरीक, विटङ्काक्ष, कलविंक हैं। वैसे तो यह तोक, अंशु, भद्रसेनको भी अपने ही दलमें गिनता है; क्योंकि ये सब नियुद्ध और लाठी चलानेकी क्रीड़ामें रुचि लेते हैं।

सुबल भी भाईके समान कभी-कभी हरित वस्त्र पहिनता है। इस कमल-लोचनको भी दलसे कोई काम नहीं; किंतु उज्वलका दल इसीका दल कहा जाता है। सदा परिहास करनेवाला उज्वल अरुण वस्त्र पहिनता है। महुएके मीठे पुष्पोंके ऐसे-ऐसे आभरण बनाता है कि देखकर मन मुग्ध हो जाय। यह तनिक हरित-नीलवर्ण मणिमाला प्रिय है और अत्यन्त

चपलेक्षण है। गन्धर्व और वसन्त इसके अनुगामी हैं। अनेक बार अर्जुनको भी अपने दलमें बुला लेता है। कन्हाईकी कोई बात सुबल-उज्ज्वलसे किञ्चित् भी छिपी नहीं रहती ; किंतु ये सब ऐसे हैं कि पूछनेपर भी हँसते हैं। कुछ नहीं बतलाते।

महाराज ! आप हमारे दाऊ दादाको श्यामके दाहिने देख लेना। बहुत विशाल बाहु हैं उसके और चौड़ा वक्षस्थल कस्तूरीसे बने चित्रसे चित्रित रहता है। गुंजामाल, नीलवस्त्र, उत्पलोवतंसपर गूँजते अलिगण— दाऊ दादा तो केवल दाहिने कर्णमें कुण्डल पहिनता है।

कन्हाई अतसी-कुसुम-श्याम है। पीतपट्टुका, पीत कछनी, वन-माली, मयूरमुकुटी रहता है। उष्णीष कब किस रङ्गका कैसे बाँधेगा, पता नहीं रहता ; किंतु तिरछी अवश्य बाँधेगा। गोरोचनकी खौरके मध्य कस्तूरिका-बिन्दु लगाता है भालपर। कभी मुरली कटिमें लगी रहती है, कभी करमें। इसके वाम कन्धेपर कभी-कभी काली कमली होती है। करमें क्रीड़ासे कमल भी ले लेता है। वाम स्कन्धपर पट्टसूत्रसे बना विद्युत्के समान चमकती कुण्डलीकृत रज्जु रखता है। स्वर्णाग्र-मण्डित तीन हाथ ऊँची अरुणवर्णकी वेत्र-यष्टि होती है वाम करमें और वाम कक्षमें ही शृंग रहता है।

'बस वत्स !' मुनि महाराज उठ खड़े हुए। मेरे मस्तकपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। मैं तो भूल ही गया था कि इन्होंने केवल नाम गिनानेको कहा था और दाऊ तथा श्यामको पहिचानते हैं।



कालिय-दमन

सम्पूर्ण सृष्टि मेरी क्रीड़ा-स्थली है ; क्योंकि मेरे स्वामीका सृजन है संसार। इसमें कोई मुझे कहीं कुछ करनेसे मना करे, यह उसकी अनधिकार चेष्टा है। सौभरि मुनिको अपने तपका गर्व हो गया था। वे व्रजमें वृन्दावनके समीप यमुनाह्रदमें तप करते थे जलके भीतर बैठकर। मुझे उनसे कोई द्वेष नहीं था। मैं दूरसे आया था और क्षुधातुर था। ह्रदके समीपका महाकदम्ब मेरा भार सह सकता था क्योंकि मैं जब अपनी माताको नागमाता कद्रूके दासत्वसे मुक्त करनेके लिये नागोंके कहनेसे अमरावतीसे अमृतकलश बलपूर्वक आहरण करके ला रहा था तो कुछ अमृतके सीकर गिर पड़े थे इस कदम्बपर। अतः इसमें अपार शक्ति आ गयी थी। जैसे ही मैं वृक्षपर बैठने लगा, सौभरिने जलसे मस्तक निकालकर मना करना प्ररम्भ किया—'यहाँ नहीं, यहाँ मत बैठो! अन्यत्र जाओ! यहाँ आखेट करना वर्जित है।'

यह अच्छी रही। इस मुनिने जटाएँ बढ़ा लीं और थोड़े दिन जलमें रहकर जप क्या कर लिया, समझने लगा कि वही संसारमें समर्थ है। इसे इतना भी पता नहीं कि जो दूसरोंको उद्विग्न करता है और दूसरोंसे उद्विग्न होता है, वह महात्मा नहीं है। इसे स्थानसे और जल-जीवोंसे मोह हो गया है। स्थानको अपना मानने लगा है।

मैंने जलमें जो सबस बड़ा मत्स्य मिला, वहाँ उसे पकड़ लिया और अपने उदरमें डाल लिया। प्राणीके लिए परमात्माने जो प्रकृति दी है, उसके अनुसार ही उसका आहार निश्चित कर दिया है। मैं शाकाहारी तो नहीं बन सकता। वहाँसे अन्यत्र जाकर भी उदर-पूर्ति कर सकता था ; किंतु संसार मेरे स्वामीका है तो सौभरि मना करनेवाला कौन ? मुझे उसके मना करनेसे रोष आ गया था।

'गरुड़ यदि पुनः यहाँ आकर किसी प्राणीको आहार बनावेगा तो तत्काल मृत हो जायगा!' सौभरिने लाल-लाल नेत्र करके शाप दे दिया।

मैं चाहता तो उसी समय दूसरा मत्स्य पकड़कर सिद्ध कर देता कि किसीका शाप श्रीहरिके सेवकका स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं है ; किंतु मेरे स्वामी तपका सम्मान करते हैं, अतः मुझे भी उस शापका सम्मान उचित लगा। अब उस ह्रदमें केवल अल्पाकार मछलियाँ थीं। उन क्षुद्र जन्तुओंमें मेरा कोई आकर्षण नहीं था। मैं यह भी समझ गया था कि सौभरि अब अपने मत्स्य-मोहके कारण तपोभ्रष्ट होने ही वाला है। अतः मैं वहाँ उससे विवाद किये बिना चला आया।

मैंने सौभरिको छोड़ दिया ; किंतु मेरे स्वामीका स्वभाव है कि अपने जनोंका संकेतसे भी अपमान करनेवालेको वे क्षमा नहीं करते। जिस तपके अभिमानमें सौभरिने मुझे शाप दिया था, वह तप मछलियोंके कारण ही नष्ट हो गया। मछलियोंकी क्रीड़ाने सौभरिके मनको भ्रान्त बनाया और उसने जाकर महाराज मान्धाताकी पचास कन्याओंका पाणि-ग्रहण कर लिया। मुझे शाप देनेसे उसका संचित तप तो उसी क्षण समाप्त हो गया था।

सौभरि जिस ह्रदको अपनी तपःस्थली मानकर वहाँके प्राणियोंकी सुरक्षा चाहता था, वहाँ मेरे स्वामीने कालियको ला बसाया और ह्रदमें भीतर ही नहीं, ह्रदके ऊपर भी पक्षियोंका उड़ना तक असम्भव कर दिया। यह भी किया मुझको ही निमित्त बनाकर। जिसमें मैं उनके भृत्य-वात्सल्यको समझ सकूँ।

यह ऐसे हुआ—समुद्रका रमणक द्वीप नागालय है। मेरी माताको नागमाता कद्रूने और नागोंने छल करके सेविका बनाकर बहुत सताया था। मुझे भी बचपनमें नागोंने अपना वाहन बना रखा था। अतः उनसे मेरी जन्मजात शत्रुता है। उनके कहनेपर अमरावतीसे अमृत लाकर माताके साथ मैं उनके दासत्वसे मुक्त हो गया। तबसे नाग मेरे प्रिय आहार हैं। मैं चाहे जब उनके आवास रमणकमें पहुँच जाता था और फिर शत्रुओंका सम्हालकर तो आखेट कोई करता नहीं। जो भी मिल जाता, मैं उन्हें मारने ही जाता था।

भगवान शेष सम्मान्य हैं मेरे। मैं अपने स्वामीके अनन्तर उन्हींका आदर करता हूँ। वे नागोंकी आर्तावस्थाके कारण आतुर हुए। उन्होंने मध्यस्थ होकर मेरी सन्धि करा दी नागोंके साथ। यह निश्चित हुआ कि मैं रमणक द्वीपमें केवल पूर्णिमाको आऊँ और द्वीपमें जो महावट है, उसके

नीचे अपने लिये समर्पित बलिको लेकर सन्तुष्ट रहूँ। नाग भी प्रत्येक पूर्णिमाको उस वृक्षके नीचे मेरे लिए पर्याप्त आहार तथा अपनेमें-से एक महानागको वहाँ प्रस्तुत रखा करें।

भगवान अनन्तका आदेश मैंने मान लिया। बहुत समय तक यह क्रम चलता रहा ; किंतु अपने शतैकशीर्षा होनेके अभिमानमें कालियने इस सन्धिको भङ्ग किया। बहुत अहङ्कार था उसे अपने विषका। उसने एक पूर्णिमाको वृक्षके नीचे मेरे लिये प्रस्तुत आहार नागोंके रोकनेपर भी स्वयं खा लिया। मैं उस समय वहाँ उतरने ही वाला था। मैंने कालियकी दुष्टता देख ली थी। दूसरे सब नाग मुझे गगन उतरते देखकर अपने बिलों-में भागकर जा छिपे ; किंतु कालिय अपने फणोंको फैलाकर खड़ा हो गया था फूत्कार करता हुआ।

मैंने पृथ्वीपर उतरनेसे पहिले ही अपने वाम पक्षका एक साधारण-सा आघात कालियपर किया। इस आघातसे ही वह जाकर समुद्रमें गिरा रमणक द्वीपसे दूर। जलमें डुबकी लगाकर भागा। उस कायरके कारण उस दिन उसकी जातिका कितना विनाश हुआ, यह भी उसने नहीं देखा।

कालिय समुद्रसे सुरसरिमें और उनसे कालिन्दीमें होता वृन्दावन पहुँचा। उसे सौभरिके शापका किसीके द्वारा पता हागा। बहुत दिना तक उसे मेरे स्वर्णके समान पक्षके प्रहारका स्वप्न आया होगा। अपना पूरा परिवार उसने बुला लिया। कालिन्दीका सौभरि ह्रद इस प्रकार मेरे स्वामीने कालिय-ह्रद बना दिया।

× × ×

मेरा कामरूपत्व क्या काम आवे, यदि इसे मैं अपने आराध्यके सन्निकट रहनेका साधन न बना लूँ। जिस दिनसे मेरे स्वामी धरापर आये, मैं सामान्य पक्षी बना प्रायः इनके सान्निध्यमें हूँ। मेरा कोई एक रूप नहीं, जब जिस रूपसे स्वामीका सामीप्य प्राप्त हो, वही मेरा स्वरूप। श्रीव्रजराज-के सदनमें और गोप-गृहोंमें अपने नवघनसुन्दरके साथ लगा मैं गौरैया बना घूमता हूँ तो वनमें मुझे हंस, सारस या शुक बन जानेमें भी कोई कठिनाई नहीं है। इस प्रकार सखाओंके साथ इन व्रजेन्द्रनन्दनका उच्छिष्ट प्राप्त करनेका परम सौभाग्य मुझे मिल जाता है।

घुटनों सरकने लगे थे मेरे स्वामी तभीसे ये मुझे देखकर प्रसन्न होते थे। मेरी ओर आते थे उल्लाससे और अब तो मैं जब इनके समीप

खड़े किसी वृषभ या गौकी पीठपर बैठ जाता हूँ, हँसते हैं। अनेक बार स्वयं मुझे प्रसाद प्रदान करते हैं।

आज मुझसे सेवामें किञ्चित् प्रमाद हो गया। ये सखाओंके साथ गायोंको लेकर सबेरे कालिन्दीके प्रवाहकी ओर चले तो मुझे मना करना चाहिये था। मैं शुक बना था, अतः मानव-भाषा बोल तो सकता ही था; मुझे सावधान करना चाहिये था कि इसी दिशामें कालिन्दीमें कालिय-ह्रद है; किंतु कठिनाई यह है कि इन कृष्णचन्द्रके सम्मुख आनेपर कुछ स्मरण नहीं रहता।

मुझे तो तब भी स्मरण नहीं आया जब बालक गायोंको लेकर ह्रदकी ओर चल पड़े। ये आनन्दपूर्वक पुलिनके पास तमालतरुके नीचे रेतमें खेलनेमें लगे थे और मैं तमालपर बैठा इनके श्रीचरणोंमें दृष्टि लगाये था।

ग्रीष्मका प्रचण्ड प्रताप तो वृन्दावनमें कभी प्रकट नहीं हुआ; लेकिन मार्तण्डकी चण्ड किरणोंका कुछ प्रभाव तो होना ही था। इधर कहीं कोई सरोवर या निर्झर नहीं। मध्याह्न होनेको आया तो गायोंको, गोपकुमारोंको प्यास लगनी ही थी। कालिन्दीके इस पुलिनपर यहाँ केवल एकमात्र सघन कदम्ब है। दूसरा तो तृण भी कालिय-ह्रदकी विषैली वायुके कारण नहीं बचता। उस कदम्बकी छायाके प्रलोभनवश पशु और गोप-कुमार सीधे वहीं पहुँचे।

ग्रीष्ममें मध्याह्नकी संतप्त पुलिन-रेणुका है। सब दौड़कर ही गये होंगे। प्यासके कारण पहुँचते ही ह्रदका जल पी लिया सबने और निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

गोपोंने, गोपियोंने, मैयाने बार-बार समझाया था सबको कि इधर न आवें। कहा था— 'कालिय-ह्रदमें महासर्प है। ह्रदका और आगे कालिन्दीका भी जल विष-दूषित है। उधर भूलकर भी मत जाना।' लेकिन बालकोंको स्मरण कहाँ रहता है। इनको क्या पहिचान कि यही कालिय-ह्रद है।

मेरी दृष्टि भी तब उधर गयी जब मेरे मयूर-मुकुटी स्वामीने उधर देखा और चौंककर मुट्ठीमें उठाई रेत फेंककर सहसा दौड़ पड़े। मैं भी उड़ा; किंतु आज शुक न होकर कोई बड़ा पक्षी बना होता तो इस संतप्त

पुलिनपर आतपमें दौड़ते इनके ऊपर अपने शरीरकी छाया तो कर पाता। सामान्य पक्षी भीत हो कि कालिय-ह्रदके स्पर्शसे आयी वायु लगनेसे मर जायगा। सर्प-विष मेरा क्या बिगाड़ सकता था। मैं कदम्बपर जा बैठा।

सब गायें, सब गोपकुमार, सब वृषभ-बछड़े भूमिपर निष्प्राण पड़े थे। सबके शरीर नीले पड़ चुके थे। मुखोंसे नीलकृष्ण फेन निकला था। मुझे क्रोध आया कालियपर। मैं ह्रदमें-से उसको पूरे परिवार-सहित मारकर खा लेता—सौभरिके शापका भय मुझे कभी नहीं हुआ। श्रीहरिके चरणारविन्दका स्मरण सामान्य प्राणीको सर्वत्र अभय कर देता है और मैं तो उनका सेवक हूँ। साक्षात् सम्मुख हैं मेरे आराध्य। लेकिन इनके स्वयं उपस्थित रहते मेरा क्रोध या कृपा कुछ भी करना अपराध होगा। इनका असम्मान होगा। मैं केवल संकेतकी प्रतीक्षा करता सावधान हो गया। ये तनिक दृष्टि उठा दें तो अमरावतीसे अमृत-कलश उठा लानेमें मुझे कुछ पल लगेंगे।

श्रीकृष्णचन्द्रने आते ही एक बार देखा कालिय-ह्रदको और स्थिर खड़े हो गये। सर्प-विष तो मेरे स्मरणसे निष्प्रभाव हा जाता है, यहाँ तो मेरे स्वामी भी जिनमें अंश बनकर अन्तर्भूत हैं, वे साक्षात् खड़े थे। एक ओरसे दृष्टि घूम गयी गायों, वृषभों, बछड़ों और गोपकुमारोंपर। सब सहसा ऐसे उठ खड़े हुए जैसे निद्रा लेकर उठे हों। शरीरोंकी विषके व्याप्त होनेसे जो नीलाभा हुई थी, वह कब दूर हुई, यह मैं भी देखनेमें समर्थ नहीं हुआ।

'यह तो कालिय-ह्रद है!' उठते ही सबसे पहिले मधुमङ्गलको स्मरण हुआ—'तो हम सब पशुओंके साथ इसका जल पीकर मर गये थे?'

'वह खड़ा है अपना कनूँ!' भद्रने इधर-उधर देखा और श्यामपर दृष्टि पड़ते ही बोला—'इसने हम सबको जीवित कर दिया है।'

छीके, शृङ्ग, वेत्र, पटुके पड़े रहे जहाँ-तहाँ और सब उठकर सहसा दौड़े। पशुओंने भी दौड़कर घेर लिया। सब पशुओंको सूँघ लेना था गोपालको। सब बालकोंको अङ्कमाल देना था; किंतु आज श्रीनन्दनन्दन स्थिर खड़े ह्रदको देख रहे हैं। अपने सखाओंकी ओर भी ध्यान नहीं दिया इन्होंने। मैं इनकी दृष्टिका प्रभाव अनुभव कर रहा हूँ। कालिय-ह्रदका पूरा पानी इस अमृत दृष्टिके पड़नेसे निर्विष, शीतल हो चुका है। उस

जलको स्पर्श करके शीतल वायु चलने लगा है। विषसे निरन्तर खौलते रहनेवाले जलमें लहरियाँ उठने लगी हैं।

'तू उधर क्या देखता है ?' भद्रने कन्धेपर कर रखा— 'यह बुरा स्थान है। यहाँसे हम सब वनमें चलें।

'यह कालिय-ह्रद है। भयानक सर्प है इसमें।' मधुमङ्गलके स्वरमें भय था— 'सब शीघ्र यहाँसे भागो !'

'तू देखता नहीं कि कितनी प्रचण्ड धूप है। पुलिनकी रेत कितनी संतप्त है !' अब श्यामसुन्दरने सखाकी ओर देखा— 'यहाँ शीतल छाया है। बहुत सुखद वायु है। हम सब यहीं खेलेंगे। दिन ढलेगा तब यहाँसे जायँगे।'

भद्रने बैठकर सखाके सुकोमल पादतल देखे। आतपमें आनेसे वे अधिक अरुण हो उठे हैं। विशाल समीप आ गया— 'तू मेरे कन्धेपर बैठ जा।'

'श्रीदाम ! तू अपना कन्दुक लाया है ?' विशालको उत्तर देना आवश्यक नहीं लगा— 'अपनी गायें बैठने लगी हैं। पशु विश्राम करना चाहते हैं।'

बालकोंने देखा कि बछड़े प्रायः सब बैठ गये हैं। बहुत-सी गायें और वृषभ भी कदम्बकी छायामें सिमटकर बैठ गये। जो खड़े भी हैं, वे अब जुगाली करने लग गये हैं। पशुओंके विश्राममें बाधा देना किसीको अच्छा नहीं लगा। सबने अब छीके कदम्बकी शाखाओंपर लटकाये। लकुट, शृङ्ग, पटुके सम्हाले। 'लाया हूँ !' श्रीदामने दौड़कर अपने छीकेमें-से लाल, स्वर्णखचित, रत्नजटित सुन्दर कन्दुक निकाल लिया।

कन्दुक-क्रीड़ा चलने लगी ; किंतु बहुत कम समय चली। शीघ्र विवाद प्रारम्भ हो गया। कन्दुक जबतक छायासे बाहर श्रीदामके या अन्यके करोंसे जाता रहा, वह उठाकर लाता था और दे देता था उस सखाको, जिसकी कन्दुक उछालनेकी बारी होती थी ; किंतु जब नन्दनन्दनको उठाकर लाना पड़ा—ये कन्दुक दे ही नहीं रहे। श्रीदामने आकर कछनीकी फेंट पकड़ ली है— 'तेरा दाँव है। तुझे दाँव देना पड़ेगा। हमारा दाँव था तो हम सब भी तो भागते फिर रहे थे। मुझे कन्दुक दे। मैं फेंकूंगा। तू पकड़ ले सके तो तू फेंकना।'

'नहीं देता दाँव ! क्या कर लेगा तू ?' अब ये अड़ गये हैं।

'दाँव कैसे नहीं देगा ? ' श्रीदामका मुख लाल हो उठा है। वह अब झगड़ा करेगा। कन्दुक छीन लेगा।

'ऐसे नहीं दूंगा !' यह क्या ? इन्होंने तो कन्दुकको फेंक दिया ह्रदमें। वह जलपर ऐसे तैरने लगा है, मानों अरुणपद्म खिल गया हो इस नील जलराशिमें।

भद्र यह विवाद सुलझा देने समीप आ चुका था। वह सम्भवतः स्वयं दाँव दे देता श्यामके स्थानपर और कन्हाई उसके कहनेपर कन्दुक अवश्य दे देता ; किंतु⋯—⋯बालकोंने चौंककर कन्दुककी ओर देखा। श्रीदामकी दृष्टि उधर गयी और कर शिथिल हुए। इस अवसरका लाभ उठाकर कृष्णचन्द्र कछनी छुड़ाकर दौड़े और कदम्बपर चढ़ गये। पर्याप्त ऊपर तक चढ़ते चले आये !

श्रीदाम पीछे दौड़ा। कदम्बपर कुछ ऊपर तक चढ़ आया ; किंतु वृक्षपर बहुत चढ़नेका अभ्यास नहीं। मोटी शाखापर पहुँचकर बैठ गया।

'आ ! कन्दुक लेगा ! ' अब ये सखाको अँगूठा दिखा रहे हैं।

'तू कब तक ऊपर रहेगा ? ' श्रीदामके अधर काँप रहे हैं क्रोधसे। नेत्रोंमें अश्रु भर आये हैं। शाखापर बैठ गया—'कभी तो उतरेगा ! '

बालक सशंक हो गये हैं। किसीको नहीं सूझता कि क्या किया जाय। कन्दुक मैं उठाकर ला सकता हूँ ; किंतु इससे यह क्रीड़ा देखनेको नहीं मिलेगी। क्या होता है, यह देखना अच्छा है। कन्दुक तो किसी पल दे दिया जा सकता है।

'तू कन्दुक ही तो अपना लेगा ! ' सखाके नेत्रोंमें अश्रु सम्भवतः असह्य हो गये इन वात्सल्य-सिन्धुको। अलकें समेट लीं। पटुका कटिमें कस लिया और ऊपर चढ़ने लगे। सबसे ऊपर ह्रदकी ओर पहुँची शाखापर जा पहुँचे।

'कनूं ! उधर मत जा। उतर आ तू ! ' सब सखा एक साथ चिल्लाये। श्रीदाम चौंककर उतरने लगा। वह जहाँ है, वहाँसे अब वह कन्हाईको देख नहीं पाता। नीचे आकर देखा और हृदय धक्से हो गया। वह भी चिल्लाया— 'जाने दे कन्दुकको। तू उतर आ ! '

इस पुकारके ही पलमें श्रीनन्दनन्दनने ताल ठोंकी और कूद पड़े। ह्रदका जल सौ धनुषतक उछला और फैलता चला गया।

मेरी दृष्टि देख सकती थी। ह्रदके भीतर तल तक पहुँचे श्याम-सुन्दर ! कालियकी पत्नियाँ—नागिनोंने इनका भुवनसुन्दर रूप, सुकुमार श्रीअङ्ग देखा और फुफकारनेके स्थानपर पुकार उठीं—'अरे बालक ! कहाँ आ गया तू ? शीघ्र भाग। हमारे स्वामी कुशल है कि सो रहे हैं। उनकी एक फूत्कारसे भस्म हो जायगा !'

'हुँ !' किसीकी ओर देखे बिना कालियकी पूँछपर पदाघात करके आप जलमें ऊपर आ गये और ऐसे तैरने लगे जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

पूँछ कुचल गयी। पीड़ासे तिलमिलाकर कालिय उठा फूत्कार करता। नागिनें स्तब्ध, भयभीत एक ओर हट गयीं। ह्रदतल तक मथित हो रहा था। जैसे मन्दराचलसे क्षीरोदधिका मन्थन हो रहा हो। ह्रदमें उत्ताल तरंगें उठ रही थीं इन अखिलेशके भुज-दण्डोंके सञ्चालनसे।

कालिय क्रुद्ध ऊपर उठा। उसने एक बार फण उठाकर देखा और कूद पड़ा। मर्मस्थानमें वक्षके ठीक मध्यमें दंशन किया उसने और अपने भोगमें लपेटकर क्रोधाधिक्यके कारण सभी एक-सौ-एक फणोंको छत्रके समान उठाये स्तब्ध खड़ा रह गया।

मैं जानता हूँ कि सर्प-विष इनका कुछ नहीं कर सकता। अभी अपनी दृष्टिपातमात्रसे इन्होंने कुछ ही पहिले विषको निष्क्रिय कर दिया है। कालियके भोगमें आबद्ध ये मूर्छितके समान अपनेको दिखाते निस्पन्द पड़े हैं, यह इनकी क्रीड़ा है। मुझे कालियकी अशिष्टतापर अत्यन्त क्रोध आया; किंतु कुछ करूँ तो क्रीड़ामें बाधा पड़ेगी।

जानता हूँ कि ये जनार्दन जगतको कुछ ज्वलन्त शिक्षा ही देने आये हैं। अब ये प्रकट कर रहे हैं कि मानवकी इन्द्रियाँ ही कालिय हैं। पञ्चमुख कालिय शतैकशीर्षा बना है प्रत्येक मुखको अनेक बनाकर। इन्द्रियोंके भी तो असंख्य भोग हैं। विषय ही विष हैं। विषयाकृष्ट इन्द्रियोंमें—इन्द्रिय-भोगमें आसक्त-आबद्ध मनुष्यका अन्तर्यामी यह वासुदेव मूर्छित ही तो होता है। इन हृषीकेशकी ही चरण-शरण ली जाय तो यही कालिय-दमन करें। केवल अपने उद्योगसे—अपनी साधनाके सहारे जो इन्द्रियोंपर सम्पूर्ण

संयम स्थापित करना चाहता है, उसे इस कालियका विष—विषय किसी क्षण मूर्छित करके भोगाबद्ध कर दे सकते हैं।

मैं इस आध्यात्मिक सत्यकी ओर एक पलको आकृष्ट हो गया था। इतनेमें देखता हूँ कि समस्त बालक मूर्छित होकर गिर पड़े हैं। सब पशु निष्प्राण मूर्तियोंके समान खड़े हैं। उनमें क्रन्दन तककी शक्ति नहीं रही। मुझे एक ही मार्ग सूझा। मैं उड़कर इन परम पुरुषके अग्रज भगवान संकर्षणको सूचना दे दूँ। आज वे अपना जन्म-नक्षत्र होनेके कारण वनमें नहीं आये। वे आ जायँगे तो अपने अनुजकी क्रीड़ा तथा सखाओंको भी सम्हाल लेंगे।

× × ×

सुर प्रायः प्रमाद नहीं करते। वे शकुन, अपशकुनके द्वारा मानवको अग्रिम सूचना देकर सावधान करते रहते हैं। व्रजमें शकुनोंके अधिष्ठाताओं-ने अपना कार्य तत्काल आरम्भ कर दिया। वहाँ एक साथ सबको बार-बार अनिष्ट-सूचक अपशकुन प्राप्त होने लगे।

'मेरे सब दाहिने अङ्ग फड़क रहे हैं!' व्रजेश्वरी व्याकुल हुई। व्रजराजके वाम अङ्गोंमें स्फुरण हो रहा था, अतः महर्षि शाण्डिल्यको बुलाया गया था।

'बार-बार बिल्ली मेरा मार्ग काटती है।' माता रोहिणी आतुर दौड़ी आयीं।

'सब कुत्ते एक साथ सिर उठाकर संगीतके समान रुदन कर रहे हैं!' चाचा नन्दनजी दौड़े आये—अपने ग्राममें दिनमें ही शृगालोंका समूह निर्भय आ गया है और शृगालियाँ फेत्कार कर रहीं हैं!'

कहीं अकारण दधि-भाण्ड गिरकर फूटा और कहीं जल-कलश। किसीको देवमूर्तिके नेत्रोंमें अश्रु-दर्शन हुआ था, किसीको सूर्यकी ज्योति मलिन लगने लगी थी।

'दिशायें धूलि-भरी हैं। वायु खर-स्पर्श चल रहा है। उपनन्दजीने आते ही पूछा—'नीलमणि कहाँ है?'

'दाऊ आज यहीं हैं? इनके बिना श्यामसुन्दर बालकोंके साथ वनमें गये हैं?' वृषभानु बाबा भाइयोंके साथ भागते आये थे। दाऊको देखते ही चौंके—'नारायण व्रजके युवराजको सकुशल रखें!'

'मेरा नीलमणि !' मैयाने किसीकी ओर नहीं देखा। वह उन्मादिनीकी भाँति भवनसे निकली और वनकी ओर चलने-दौड़ने लगी।

'श्यामका अन्वेषण किया जाना चाहिए !' महानन्दजी जैसे वृद्धने जब लकुट उठाया तो सब साथ चल पड़े। गोपियाँ भी सब साथ हो गयीं। इस सङ्कटकी सम्भावनाने नन्दगाँव-बरसानेमें सबका सङ्कोच समाप्त कर दिया।

मैं कुछ कहता भगवान संकर्षणसे, इसका अवसर ही नहीं आया। वे स्वतः सबके साथ चल पड़े थे। अत्यन्त गम्भीर देखा मैंने आज उन्हें। एक शब्द किसीसे उन्होंने नहीं कहा।

'बालक आज किधर गये हैं ?' एक क्षणको आगे चलते महानन्दजी रुके।

'इधर, यह आजका गोबर है। यह गोमूत्रकी रेखा बनी है।' सन्नन्दजी शीघ्रतासे बढ़े— 'ये तृण कुचले तो हैं खुरोंसे ; किंतु गायें यहाँ इधर-उधर दौड़ती रही हों तो ?'

'ये पद-चिह्न मिल गये नीलमणिके।' तनिक आगे बढ़कर भूमिको ध्यानसे देखकर नन्दनजीने पुकारा। बालकोंके पदचिह्नोंके मध्य ध्वज, वज्र, कमल, यव, अंकुशके चिह्नयुक्त पदचिह्नोंकी पहिचान कठिन नहीं थी। 'सब कालिय-ह्रदकी ओर गये हैं।'

'कालिय-ह्रदकी ओर ?' सबके ही हृदय धड़कने लगे। सबके मुख आशङ्कासे पीत पड़े। सब दौड़ने लगे।

सहसा दाऊ दौड़े। इन्हें इस त्वरापूर्वक दौड़ते मैंने कभी नहीं देखा था, दूसरोंने तो क्या देखा होगा। सब गोप दौड़ रहे थे ; किंतु सबसे आगे, कई क्षण पहिले पहुँचे। एक दृष्टि डालकर पीठ कर ली कालिन्दी-ह्रदकी ओर और आते गोपोंकी ओर मुड़े।

'नीलमणि !' मैयाने देखा ह्रदमें भुजगभोगमें मूर्छित अपने श्यामको और उन्मादिनीकी भाँति फटे-फटे नेत्र हो गये। वह दौड़ती चली।

'मैया !' दाऊने दोनों हाथ फैलाकर रोका। मैया कहाँ उनकी ओर देखती है। गोपियोंको उन्होंने पुकारा पूरे स्वरमें— 'मैयाको रोको ! रोको मैयाको।'

'कन्हाईको कुछ नहीं हुआ। वह अभी आता है सर्पको फेंककर। दाऊके स्वरमें जो दृढ़ आश्वासन है, उसने गोपियोंको किञ्चित् सावधान किया। सबने व्रजेश्वरीको पकड़ा। वे प्राणहीनकी भाँति गिर पड़ीं और एकटक, स्थिर उन्मादिनीकी भाँति ह्रदकी ओर देखने लगीं। उठने, हिलनेकी भी शक्ति शरीरमें नहीं रह गई।

'मेरे लाल !' बाबा दौड़े चले आ रहे थे।

'बाबा !' दौड़कर दाऊने आगे भुजायें फैलायीं तो इस तनिकसे धक्केके कारण गिर पड़े और अब उठ नहीं सकते।

'तुम सब···!' दाऊने सम्मुख जाकर केवल दृष्टि उठाकर देखा। बरसानेकी बालिकाएँ ह्रदके समीप पहुँच चुकी थीं; किंतु इस दृष्टिके पड़ते ही मूर्छित होकर गिर पड़ीं।

भगवान अनन्तका यह ऐश्वर्य मैं देख रहा था। लगभग साढ़े छः वर्षके दाऊ सबको रोक रहे थे—रोक लेनेमें सफल हो गये थे। ये न रोकते तो एक भी नहीं था जो ह्रदमें कूदनेको न दौड़ पड़ा हो। सबको ही इन्हें सम्हालना पड़ा।

'कनूँ !' ह्रदकी ओर मुख करके अनुजको केवल पुकारा संकर्षणने। मैं इस प्रकारका अर्थ समझता हूँ। इसमें उपालम्भ है, आदेश है, आग्रह है—'अब क्रीड़ा बहुत हो चुकी। इस सर्पपर शयन करके तुम अपनी सनातन शय्याको अवमानित मत करो। उठो अब !'

सहसा सर्पके शरीरमें कम्प हुआ—वह हिला। अब तक तो वह क्रोधके आधिक्यसे स्वयं फण उठाये स्तब्ध-स्थिर था। उसके भोगमें लिपटे सर्वेशने जब अपना शरीर किञ्चित् स्थूल किया, सर्पको लगना ही था कि उसका देह टूटने ही वाला है। अपनी कुण्डलियाँ शीघ्रतासे सीधी करके सर्प उछला और दूर कूद गया।

'सर्पने श्यामको छोड़ दिया ! कन्हाई सकुशल है !' एक साथ पुकार उठे गोप-गोपियाँ और सबमें चेतनाका संचार हुआ। सब उठ खड़े हुए। पशु तथा बालक भी सचेत हुए। सब सिमट आये ह्रदके समीप और देखने लगे एकटक।

श्रीनन्दनन्दन अब जलमें तैरने लगे हैं। कालियके साथ पैंतरे ले रहे हैं। कालिय पुनः दंशनके लिए अवसर देखता इधरसे उधर घूम रहा है;

किंतु ये जलके थपेड़े जो पड़ रहे हैं उसके फणोंपर इनसे ही बचना कठिन हो रहा है उसे। वह अपने फणोंको बचाता इधर-उधर भागने लगा है। अब कालिय बाध्य हो गया है अपनी रक्षाको। प्रत्याक्रमण तो अब श्रीकृष्णचन्द्र कर रहे हैं। उनके करोंके द्वारा अजस्र जलके थपेड़े पड़ रहे हैं कालियके ऊपर।

'सर्प समीप आ गया!' सखा पुकारते हैं अनेक बार सावधान करनेको; किंतु सर्प क्या समीप आवेगा? वह तो स्वयं दूर भागना चाहता है। समीप तो ये श्यामसुन्दर बने हैं उसके और इनके दाहिने-बायें शीघ्रतासे मुड़कर तैरनेके कारण सर्प घूमता-मुड़ता श्रान्त-शिथिल होने लगा है। उसे इतनी व्याकुलता है कि यह भी भूल चुका है कि वह जलमें डूबकर तलमें पहुँच सकता है।

जलमें डूबकर तलमें पहुँचना एकमात्र उपाय था कालियके लिये बचनेका; किंतु मूर्खतावश-क्रोधाधिक्यके कारण वह उससे भी वञ्चित हो गया। वह शिथिल तो पड़ ही चुका था। जलके थपेड़ेसे बचनेको मस्तक झुकाया उसने तो श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रतापूर्वक उसके मस्तकपर जा खड़े हुए।

सृष्टिने सम्भावनासे परेका दृश्य देखा। सर्पके सिरपर खड़े श्यामसुन्दरने अब तक कछनीमें लगी मुरली निकाल ली और अधरोंसे लगाया। उनका नृत्य प्रारम्भ हो गया। कटिसे घुटनोंतक भीगा पीतपट चिपका है और ये सर्वकलानिधान नृत्य करने लगे है। इनके नृत्य-समुद्यत होते ही सुरों तथा गन्धर्वोंने अपने वाद्य सम्हाल लिये है। नभसे पुष्ट-वृष्टि प्रारम्भ हो गयी।

'वह उठाया सर्पने सिर!' गोपकुमार बार-बार पुकारते है। सब व्रजजनोंके नेत्र-प्राण ह्रदमें लगे हैं।

तुम्बरू जैसे नृत्य-सङ्गीताचार्य भी चकित-स्तंभित हैं। चकित तो मैं देखता हूँ स्वयं भगवान भवानीनाथको। वे भी ताण्डव करते हैं; किंतु श्रीकृष्णका यह चित्र-ताण्डव! कभी 'ता थेई, ता थेई, ताता थेई थेई' का मन्द्र और कभी 'द्रां द्रां द्रां—द्रुम् द्रां द्रां' का द्रुत!

इन चिद्घनके लिये कहाँ आवश्यक है कि नीचे देखें। इनके तो पद-नख भी दृगोंके समान देखनेमें समर्थ हैं। सर्प जो फण उठाता है, इस

ताण्डव ताल पाद-प्रहार करता उसी पर टूटता है। फटते जा रहे हैं कालियके फण ! रक्तकी फुहारें उन फणोंसे फूटकर इनके चरणोंको चर्चित कर रही हैं। ये लाल-लाल पद्मारुण पादतल और सर्पके मस्तककी मणियोंका इन पर प्रकाश ! सर्पके सिरसे निकलते रक्तसे इनकी जो शोभा बनी है।

कालिय शिथिल पड़ता जा रहा है। कोई भी सिर उठानेमें असमर्थ होता जा रहा है। वह मरणासन्न है ; किन्तु इनके श्रीचरणोंका स्पर्श मिला उसे, धन्य है कालिय !

× × ×

सहसा नागवधुयें अपने पुत्रोंको आगे करने जलमें-से ऊपर उठीं। सबने स्तवन प्रारम्भ कर दिया। गोप, गोपियाँ, गोपकुमार चौंके ; किन्तु दूर-दूर ह्रदयमें खड़ी दयनीय लगती नागिनोंको देखकर आश्वस्त हो गये।

नागिनोंकी स्तुति क्या— 'सर्वेश्वर ! आपके द्वारा दण्डित होना भी स्वामीके सौभाग्यका सूचक है। कहाँ सुलभ होता है यह सौभाग्य किसी-को कि आप स्वयं उसे दण्डित करें। इन्होंने अपराध तो किया ही था।

दैत्यराज बलि केवल पा सके थे अपने मस्तक पर आपका पाद-स्पर्श ; किन्तु उन्होंने सम्पूर्ण त्रिभुवनका राज्य श्रद्धा-सहित समर्पित किया था और हमारे स्वामीको यह अकस्मात् मिल गया।

अब आप हम अपनी किंकिरियों पर कृपा करके हमको अपने पति-का प्राण प्रदान करें। अब आपका और पाद-प्रहार हुआ तो इनके प्राण चले ही जायँगे। हम आपकी शरण हैं।'

'अरे, छोड़ भी दे बेचारे सर्पको।' इसी समय भद्रने पुकारा— 'उसके सब सिर तो कुचल गये। अब वह किसीको कभी नहीं काटेगा।'

नागिनोंकी प्रार्थना, सखाका सम्बोधन सुना और कालियके सिरसे कूद पड़े श्रीकृष्णचन्द्र जल में। मूर्छित कालिय कुछ पलमें सचेत हुआ। दीर्घ श्वास लेते बोला— 'परम प्रभु ! सृष्टि आपका सृजन है। आपने ही सर्पोंको तामसिक तथा अत्यन्त क्रोधी बनाया है। अपना स्वभाव कोई छोड़ नहीं पाता। आपके बनाये स्वभावके अनुसार मैंने आचरण किया। अतः अब आपको मुझपर क्रोध या कृपा जो उचित लगे, करें।'

कालियकी बातका सचमुच कोई उत्तर नहीं था। श्रीकृष्णचन्द्रने उसे आदेश दिया— 'महासर्प! तुम अब सपरिवार यहाँसे अपने आवास नागालय रमणक द्वीपमें चले जाओ। कालिन्दीका जल सर्वत्र पशुओं तथा मनुष्योंके स्नान-पानके योग्य रहना चाहिये। तुम्हारे मस्तकपर मेरे पद-चिह्न स्थायी रहेंगे। अतः अब गरुड़ तुम्हें आतंकित नहीं करेंगे।'

मुझसे तो कालिय तभी निर्भय हो गया जब वह कालिन्दीमें आकर रहने लगा। ये सूर्य-सुता मेरे स्वामीकी सहधर्मिणी हैं। जो उनके गर्भमें रह चुका, वह इनका पुत्र हो गया! मेरा तो यह सम्मान्य भाई हो चुका। अब इसपर इस कृपाका रहस्य भी मैं समझ गया। सौभरि द्वारा की गयी मेरी अवज्ञाके प्रतिकारका साधन बनाया इसे स्वामीने तो इसे पुरस्कृत करके अपनाना वे कैसे भूलते।

× × ×

कालियकी प्रार्थनापर एक बार कुछ पलको पुनः जलके तलमें गये। उसने अर्चना की। वह सपरिवार विदा हुआ ह्रदसे सुरसरिमें होता समुद्रमें जानेको और मेरे ये स्वामी नागमणियोंके दिव्याभरणोंसे अलंकृत, कमलमाला धारण किये जलसे बाहर आये।

मैयाने, बाबाने, गोपोंने, गोपियोंने, सखाओंने किस उत्कण्ठासे इन्हें हृदयसे लगाया, कैसे वर्णन करूँ। केवल इनके अग्रज अङ्कमाल देते समय बहुत खुलकर हँसते रहे। श्रीदामासे मिलते समय उसे कन्दुक दिखा-कर बोले— 'अब तुझे नहीं मिलेगा।'

श्रीदामाके नेत्र भर आये। वह भरे कण्ठ कह सका— 'इसे रख! कहेगा उतने कन्दुक और ला दूँगा; किंतु अब सर्पपर सोने कभी गया तो फिर तुझसे नहीं बोलूँगा।'

यह सब तो हुआ; किन्तु इसमें सायंकाल हो गया। सूर्यास्त हो चुका था। उपनन्दजीने ही कहा— 'अब बालकोंको लेकर इस समय लौटना उपयुक्त नहीं है। अन्धकार शीघ्र हो जायगा और वनका मार्ग बीहड़ है। सब यहाँ उपकूलपर रात्रि-विश्राम करें!'

'तुम सबोंके छीकोंमें कुछ है?' माता रोहिणीने विशालसे पूछा।

'हाँ, छीके तो अभी सबके भरे हैं।' विशालने बतलाया— 'हमने दिनमें तो खाया ही कितना है।'

'सब अपने छीके उठा लाओ !' सन्नन्दजीने वनमें कुछ भीतर निर्झर ढूँढ़ लिया था। सब वहाँ आ गये। मैयाने छीके मँगा लिये और सब बालकोंको भोजन करा दिया। शेष सबने गायें दुहीं और गोदुग्ध लिया। वहीं सब भूमिपर तृण-पत्ते बिछाकर सो गये। मैं भी समीपके वृक्षपर सो गया।

× × ×

सबसे पहिले मेरी निद्रा भंग हुई। मैंने शुकके सामान्य स्वरमें चिल्लाना प्रारम्भ किया। गायें, वृषभ, बछड़े शीघ्र उठे और उन्होंने करुण चीत्कार प्रारम्भ की। वनमें दावाग्नि लग चुका था। यह स्थान चारों ओरसे घिर गया था। अग्नि बढ़ता आ रहा था। यह तो पीछे पता लगा कि यह आंगिरस अग्नि, सेवा करने आया था। कालियके विषसे दूषित वायु लगकर जो तृण-तरु दूषित हो गये थे, उन्हें भस्म करके वनको पवित्र-निर्दोष बना देना था अग्निदेवको। वे बहुत धीरे मध्य केन्द्रकी ओर आ रहे थे।

पशुओंका क्रन्दन सुनकर गोप, गोपियाँ सब जाग गये। सब अत्यन्त भयातुर हो उठे। मैंने देखा—किसीको भी अपनी मृत्युका भय नहीं था, परन्तु सब श्यामसुन्दरके लिए सचिन्त हो उठे थे। सबने पुकारना प्रारम्भ किया—'राम ! महाबाहु राम ! श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! यह अग्नि बढ़ा आ रहा है। यह हम सबको भस्म कर दे, इससे पहिले कोई उपाय करो ! हम सब तुम्हारे हैं। हमें बचा लो श्यामसुन्दर !'

मैं मुखमें भी जल लाकर डालता तो अग्नि शान्त हो जाता; किन्तु बहुत कठिन है सेवाधर्म ! स्वामीके समीप संकेत पाये बिना मैं कुछ भी कर नहीं सकता था। भगवान संकर्षणने अनुजकी ओर देखा।

'सब लोग अपने नेत्र बन्द कर लो !' श्यामसुन्दरने उच्चस्वरसे कहा। सबने नेत्र बन्दकर लिये। मैंने देखा कि दक्षिण करका संकेत हुआ तनिक आगे आकर और मुख खोल लिया इन यज्ञपुरुषने। अग्निदेवकी लपटें उस मुखमें समाती चली गयीं। पलभरमें तो सम्पूर्ण अग्नि अपने उस आदि उद्गम-स्थानमें लीन हो चुका था।

'मैया !' लौटकर श्रीकृष्णचन्द्रने मैयाका कर-स्पर्श किया।

'अग्निका क्या हुआ ?' व्रजेश्वरीने नेत्र खोला और चकित इधर-उधर देखने लग गयीं।

'वह तो भाग गया !' प्राची क्षितिजमें अरुणोदय होने लगा था। आपने बहुत भोलेपनसे उधर अंगुलि-संकेत किया—'वह भागा जा रहा है।'

सबने नेत्र खोल लिये। अब तो गौओंको आगे करके, अधरोंपर वंशी धरे, सखाओंके साथ आज व्रजकी ओर चल पड़े हैं। गोप, गोपियाँ, बालिकायें बहुत प्रसन्न हैं कि उनके ये गोपाल आज दिनभर उनके मध्य ही रहेंगे।

मैं शुक बना भी साथ चल सकता हूँ; किन्तु गौरैया बननेमें अधिक सुविधा है। मैं तब स्वामीके अधिक सन्निकट रह सकता हूँ।



धेनुक - ध्वंस

अत्रि-नन्दन महर्षि दुर्वासा भगवान शङ्करके साक्षात् अंश हैं। शिव—कल्याणकर्त्ता ही प्रलयङ्कर होता है ; क्योंकि पृथ्वीपर जो कूड़ा एकत्र हो जाता है, जो जीर्ण जीवनके लिये दुर्भर बन चुका है और जिसका सुधार-सम्हाल—सम्भव नहीं रहा, उस सबको मिटाये, भस्म किये बिना नवसृजन सम्भव नहीं होता। स्रष्टाको स्वच्छ पृष्ठभूमि प्रलय ही प्रदान करती है। परम प्रशान्त महेश्वर इसीलिए रुद्र हैं। इसी प्रकार महर्षि दुर्वासा प्रमत्त-पापीजनोंको पवित्र करते रहते हैं अपने क्रोध-शापके साधनसे। उनके क्रोधसे किसीका अकल्याण कभी नहीं हुआ और वे भी जहाँ शीघ्र कुपित होते हैं, आशुतोष हैं।

दैत्यराज बलिका पुत्र साहसिक अपने लोक सुतलसे पृथ्वीपर आया। वह गन्धमादनपर पहुँचा तो अप्सरा तिलोत्तमा भी वहाँ आयी थी। दोनोंका पूर्व परिचय था। दोनों मिले तो परस्पर हास-परिहास प्रारम्भ हो गया। दोनों खिलखिलाकर हँसने लगे। दैत्य तो भारी अट्टहास करनेका अभ्यासी था। इन्होंने ध्यान ही नहीं दिया कि महर्षि दुर्वासा समीप ही ध्यानस्थ बैठे हैं।

'तुम दोनों मूर्ख हो!' ध्यानमें बाधा पड़नेपर महर्षिने क्रोधपूर्वक देखकर शाप दिया—'तू गधेके समान उच्चस्वरसे शब्द करता है, अतः गधा हो जा! यह अप्सरा होकर असुरके साथ क्रीड़ा करती है, अतः आसुर योनिमें जायगी।'

दोनोंने शाप सुना तो व्याकुल होकर महर्षिके चरण पकड़ लिये। दुर्वासाजीने शापोद्धार किया—'अप्सरा तेरे दैत्य-कुलमें ही उत्पन्न होगी। तेरे साथ सटी खड़ी है, अतः तेरे भाई बाणकी पुत्री बनेगी और श्रीवासुदेवके पौत्रका वरण करके पवित्र हो जायगी। तू भगवान संकर्षणके करोंसे मरकर उनका नित्यधाम प्राप्त करेगा।'

देहाध्यास—शरीर और शरीरके नामको ही अपना सब कुछ मानकर इसीके पीछे पड़े रहना, इसीके लिए समस्त श्रम समर्पित करते जाना

अज्ञान है। यही गर्दभत्व मनुष्योंको खा लेता है। मनुष्य-जीवन ही इसके मोहमें नष्ट हो जाता है। यह तो मरे तब जब श्रीकृष्णके सखा—श्रीहरिके जन कृपा करें और उनके अनुग्रहसे आचार्यकी शरण-ग्रहण की जाय। गुरु-कृपाके बिना कहीं देहाध्यास मिटा है। निखिल जीवाचार्य संकर्षण मारें तब धेनुक मरे।

यह आधिदैवत धेनुक असुर व्रजमें—वृन्दावनके समीप बस गया था तालवनमें। उसने उस ओर आने वाले मनुष्यों-पशुओंका इतना आहार किया कि उधरसे निकलना मनुष्योंका असम्भव हो गया। पूरे परिवारके साथ यह असुर गर्दभ वहाँ बस गया था। ये असुर तृण तो चर नहीं सकते थे। अपने वनसे बाहर तक धावा करते थे। तालवनमें मानव तथा पशुओंके कङ्काल पड़े थे स्थान-स्थानपर। केवल पक्षी ही प्रवेश पाते थे वहाँ।

× × ×

मैं अब ब्रह्मलोकमें भी दो घड़ी ही रुकता हूँ। वहाँसे चलता हूँ तो मेरे पद स्वयं मुझे व्रजमें पहुँचा देते हैं। पर्यटन करते रहना मुझ परिव्राजक-की प्रकृति है और अब इन दिनों यह पर्यटन प्रायः व्रज तक परिमित हो गया है ; क्योंकि मेरे भुवनमोहन आराध्यकी आनन्द-क्रीड़ा यहाँ चलती रहती है। नारद जिनके गुण-गानका व्यसनी है, मेरी वीणा जिनके भुवन-पावन यशकी झङ्कारसे ही झंकृत रहती है, वे मयूर-मुकुटी वृन्दावन-विहारी बने हैं तो नारदका अन्यत्र प्रयोजन क्या ? केवल अन्तरिक्षमें अदृश्य रहना पड़ता है मुझे, जिससे इनके बाल-विनोदमें बाधा न बनूं।

आज व्रज पहुँचा तो प्रायः मध्याह्न हो चुका था। इस पावसारम्भमें आतप प्रखर होता है। पशु वृक्षोंकी छायामें इधर-उधर खड़े या बैठे विश्राम कर रहे थे और बालक सघन मौलिश्रीके नीचे एकत्र थे।

मैंने समीप पहुँचकर देखा कि उस वृक्षके नीचे बालकोंने बहुत सावधानीपूर्वक मृदुल किसलयोंकी मोटी शय्या सजायी है। अरुणाभ हरित किसलय कितने कलापूर्ण ढङ्गसे सजाये गये हैं ! किसलयोंके ऊपर श्वेत, सुकुमार, सुरभित पुष्पोंकी कमनीय सजावट है। उनके मध्यमें जहाँ-तहाँ पाटल-दल एवं पद्म-पुष्पके पीत, नील, अरुणदल ऐसे सज्जित हैं जैसे कोमल कलाकी अधिदेवता सरस्वती ही ने बहुत सावधानीसे यह श्रम किया हो।

'दादा ! तू श्रान्त हो गया है। यहाँ विश्राम कर !' अग्रजका हाथ पकड़कर श्यामसुन्दर ले आये—'विशालके अङ्कमें मस्तक रखकर लेट !'

'मैं श्रान्त तो नहीं हुआ।' दाऊका मना करना अब काम नहीं आवेगा, यह वे जानते हैं।

'तू श्रान्त हो गया है। तेरे भालपर स्वेद-सीकर हैं और तेरे चरण कितने अरुण हो गये हैं।' ये आग्रह कर रहे हैं और विशाल बैठ गया है अंकमें मस्तक रखने तो संकर्षणको स्वीकार ही करना चाहिए कि वे श्रान्त हो गये हैं। अब श्रीकृष्णचन्द्र भद्रके साथ बड़े भाईका पाद-संवाहन करने बैठ गये। दोनोंने एक-एक चरण अंकमें ले लिया है। श्रीदाम और उज्वल पद्म-पत्र लेकर वायु करने लगे हैं।

'कनूँ ! तू भी तो श्रान्त हो गया है।' देवप्रस्थने प्रस्ताव किया—'दादाके समीप तू सुबलके अंकमें सिर रखकर सो ! मैं तुझे पद्म-पत्रसे वायु करूँगा।'

'मैं अभी बहुत दौड़ सकता हूँ। तू श्रान्त हुआ है तो सो जा दादाके समीप।' श्यामसुन्दरने हँसकर वरूथपकी ओर देखा।

'दौड़ तो दादा भी सकता है।' यह तेजस्वी किसीकी सुनता नहीं। यह केवल आदेश देना जानता है। यह पद्म-पत्र तोड़ लाया है व्यजन करनेको तो कन्हाईको क्यों श्रान्त नहीं होना चाहिये। इसने आदेश दे दिया—'तेरे भालपर भी स्वेद-कण हैं। उठ और दादाके समीप सो जा चुपचाप !'

पल्लव-तल्प पर्याप्त विस्तृत है। उसपर विशालके अङ्कमें श्रीसंकर्षण और सुबलके अंकमें श्रीकृष्णचन्द्र मस्तक रखकर लेट गये हैं। श्रीदाम, उज्वल, देवप्रस्थ, तेजस्वी ये दो-दो बालक पद्म-पत्र लिये बैठे हैं एक-एक ओर और व्यजन कर रहे हैं। भद्र तथा वरूथपके अंकमें बलरामके और अर्जुन तथा ऋषभके अंकमें श्यामके पद्मारुण पद हैं। अत्यन्त सावधानीसे कोमल करोंसे पाद-संवाहन चल रहा है।

'तेरे कर स्वतन्त्र रहेंगे तो तू कुछ उत्पात करता ही रहेगा।' श्रीकृष्णचन्द्रने लेटे-लेटे अग्रजकी अलकोंमें शय्यासे उठाकर एक श्वेत सुमन लगा दिया तो मधुमंगल और मणिभद्र दोनों भाइयोंके मध्य आ बैठे

हैं। मधुमंगलने कन्हाईका दक्षिण कर अंकमें ले लिया और मणिभद्रने दाऊ-का वाम कर-संवाहन प्रारम्भ कर दिया। दो बालक दोनोंके दूसरे पार्श्वमें बैठ गये हैं इनके विशाल बाहु अपनी गोदमें लेकर।

अनेक मुखसे ही भ्रमरके समान गुञ्जारकी ध्वनि करने लगे हैं। अनेक मधुर स्वरमें अपने इन राम-श्यामका सुयश-गान करने लगे हैं। इसमें मेरी वीणाका स्वर सम्मिलित होने पर भी कोई ध्यान नहीं देगा।

वेत्र-लकुट, शृंग, रज्जु सब समीप धारी हैं। वृक्षोंपर भ्रमरा-वली गुंजार करती है। पक्षियोंका समूह बैठा है समीपके तरुओंपर; किन्तु केवल कोकिल, पपीहा जैसे सुस्वर पक्षियोंका स्वर सुनायी पड़ रहा है।

'दादा! तूने ताड़ खाया है?' श्रीदामने यह देखकर पूछा कि अब ये दोनों भाई अपने चरण सिकोड़ने लगे हैं। अब ये उठने ही वाले हैं।

'तू ले आया है क्या?' श्यामसुन्दर उठकर बैठ गये।

'यहाँ तो ताड़ वृक्षोंका बहुत बड़ा वन है।' वरूथपने बतलाया— मुझे ध्यान ही नहीं रहा। इधर पशु नहीं लाने चाहिए थे।'

'क्यों! कृष्णचन्द्रने पूछा।

'ताड़वनमें दुरात्मा धेनुक गधा रहता है अपने परिवारके साथ।' वरूथपने जो कुछ वृद्ध गोपोंसे सुना था, कह दिया— 'बाबाने मना किया है उधर जानेसे। वह गधा पशुओं और मनुष्योंको भी खा जाता है।'

'तब वह राक्षस होगा!' भद्रने कहा।

'दादा! वहाँ वृक्ष पके फलोंसे लदे हैं। वे फल गिरते ही रहते हैं।' श्रीदाम अपने मनकी कह रहा है— 'वायुमें उन फलोंकी सुगन्धि है। वे गधे न स्वयं फल खाते, न किसीको वहाँ आने देते। केवल पक्षी वहाँ पहुँचते हैं और वे ताड़ खा नहीं सकते। मेरा मन ताड़ खानेको कर रहा है। तू चलेगा?'

'मैं ताड़ खाऊँगा!' तोक उठकर कूदने लगा— 'उसकी गुठली रख दूंगा। अंकुर आवेगा उसमें तब कुठारसे काटनेपर उज्वल, मीठी गिरी निकलेगी।'

तोक ऐसे चटखारे ले रहा है जैसे ताड़की गिरी अभी इसके मुखमें पहुँच गयी है।

'दादा ! उठ न। यह ले अपना लकुट।' तेजस्वीने लकुट उठाकर दे दिया— 'हम सब ताड़ खाना चाहते हैं। उठ और चलकर हमें ताड़ दे !'

'अच्छा ! अपने पशु भी उठ गये।' दाऊने बैठे-बैठे ही देखा और उठ खड़े हुए— 'ताड़ोंके मध्य अच्छी ऊँची घास उगी होगी। गायें चरकर तृप्त हो जायँगी।'

मैं समझ गया कि महर्षि दुर्वासाके शापकी समाप्तिका समय आ गया। अब धेनुकका उद्धार कुछ क्षणोंकी बात रह गयी है।

× × ×

काले, ऊँचे, पुष्ट वृक्ष ताड़ोंके इतने सघन कि उनके सिरके छत्राकार पत्र प्रायः सटे हुए हैं। पत्रोंकी जड़ोंमें पूरे वृक्षके सिरेको घेरे कृष्ण पीत किञ्चित् अरुणाभ ताड़-फलोंके भारी गुम्फ हैं सभी वृक्षोंमें। फल गिरे हैं, मध्यमें भद्के शब्दके साथ गिरते हैं; किन्तु बहुत सघन घास है। इसमें गिरे फल सहसा दीखते नहीं हैं।

'अभी गायोंको इधर ही रोके रहो।' श्रीसंकर्षणने सखाओंसे कहा ताड़वृक्षोंकी और देखकर— 'कोई समीप मत आना। मैं ताड़ गिराता हूँ।'

ताड़को उचित ही तृणराजका नाम मिला है। इसका तना कितना भी ऊँचा हो, उसकी अन्तःरचना तृणके समान ही है, इसमें काष्ठ कहाँ है; किन्तु संकर्षणने इसके विशाल वृक्षको तृणके समान दोनों करोंसे पकड़कर हिलाया न होता तो मुझे यह नाम इसका स्मरण नहीं आता। वृक्षको बलने ऐसे झकझोर दिया कि उसके पके-अधपके फल भी भदाभद गिर पड़े।

मदमत्त गर्दभ धेनुक मध्याह्नमें सो रहा था अपने साथियोंके संग। एक साथ इतने फलोंके गिरने, वृक्षके हिलनेसे उसकी निद्रा भंग हो गयी। क्रुद्ध होकर बोला— 'कौन मतवाला गज मरने आ गया।'

धेनुक समझता था कि ताड़को इस प्रकार कोई गज ही हिला सकता है। अपने वनमें इस प्रकार गजका अनपेक्षित प्रवेश उसे सह्य नहीं। वह

स्वयं आकारमें विशाल गज जैसा है और शक्तिमें सम्भवतः शतगुणित ही होगा। भयानक गर्दभनाद 'चीपों ! चीपों !' करता वह दौड़ा।

बालक वृक्षका हिलना रुकते ही दौड़ आने वाले थे; किन्तु गर्दभकी ध्वनि सुनकर सशंक देखने लगे। धेनुक दौड़ता आया और दाऊके समीप आकर तनिक आगे जाकर अपने पिछले पैरोंसे दुलत्ती झाड़ी उसने। श्रीबलराम तनिक एक ओर हट गये।

गधा धेनुक क्रोधमें भरकर कुछ पद दौड़ गया। घूमकर समीप आया और फिर मुख घुमाकर पिछले पदोंसे प्रहार किया उसने। इस बार दाऊने उसके दोनों पैर दोनों हाथोंमें पकड़ लिये और मस्तकके चारों ओर घुमाने लगे। धेनुक तो मर गया इस घुमानेमें ही। उसके नेत्र और जिह्वा निकल आयी। सहसा दाऊने उसे पूरे वेगसे फेंक दिया एक विशाल ताड़-वृक्षपर। इस आघातसे ताड़ टूट गया और समीपके वृक्षसे टकराया। अनेक वृक्ष टूटे परस्परकी टकराहटसे और पूरा वन प्रकम्पित हो उठा, जैसे प्रबल अन्धड़ आ गया हो। वृक्षोंके पके फलोंके गिरनेसे पृथ्वी पट गयी।

पूरा वन प्रकम्पित हुआ, अतः उसके अन्तरालमें स्थित धेनुकके सब साथी गर्दभ एक साथ क्रुद्ध होकर 'चीपों-चीपों' कोलाहल करते दौड़े।

'गधे—बहुत गधे आ रहे हैं!' बालकोंने अपने लकुट उठाये; किंतु कन्हाईने रोक दिया—'तुम सब यहीं रहो। मुझे दादाके साथ तनिक क्रीड़ा कर लेने दो।'

'ये सब राक्षस हैं!' मधुमङ्गलने मुख बनाया—'गधे होते तो हम सबकी सहायताकी आवश्यकता पड़ती। इन्हें तो अपना कनूँ अकेला ही मार देगा।'

सचमुच राम-कृष्णकी क्रीड़ा चलने लगी है। गधे आक्रमणकी एक ही पद्धति अपनाते हैं। आये, कुछ पद आगे गये और पास खिसके वेग-पूर्वक, पिछले पैरोंसे प्रहार किया। राम और श्याम दोनों गधोंके पैर पकड़ लेते हैं, जब वे प्रहार करते हैं और एक बार घुमाकर फेंक देते हैं किसी ताड़-वृक्षपर।

असुर गर्दभोंके वृक्षपर पटके जानेसे फटे शरीर रक्तस्नात बिछ गये पृथ्वीपर। ताड़वनके बहुत अधिक वृक्ष टूटे—अधटूटे गिर गये। ताड़-फलोंको अब ढूंढ़ना नहीं है। हरित भूमिपर वे कृष्णपीत फल पटे पड़े हैं।

बालकोंने तालियाँ बजायीं। पशुओंको हाँक दिया इस वनमें। इतनी बढ़ी, वृक्षोंके मध्य होनेसे मृदुल घास मिली तो पशु चरने लग गये। बालकोंने दौड़कर दाऊ-कन्हाईको अंकमाल दी। दोनोंके करोंको भली प्रकार देखा—सहलाया।

'तू ऐसे कैसे खाएगा? श्यामने एक ताड़फल उठाकर अधरोंसे लगाया तो मुझे हँसी आ गयी। भद्र समीप दौड़ आया। इसने एक छोटी लकड़ी ढूँढ़ी और ताड़के छिलकेके भीतर बलपूर्वक प्रविष्ट करके निकाल दी समीप। लकड़ी घुमानेसे केशरिया गूदा नवनीतके समान निकल आया—'ले, इसे खा।'

'मैं अपने आप निकालूँगा।' कन्हाईने फल ले लिया। अब इसे निकालना'आ गया है तो स्वयं क्यों यह कौतुक न कर देखे।

'दादा तू ले!' दाऊको सब अपने हाथसे ही यह ताड़का गूदा खिलाना चाहते हैं।

'सब गुठलियाँ समेटकर रख दो! वरूथपने समझाया—' ये अंकुरित होंगी तब हम इनको काटकर भीतरकी मधुर गुठली खायँगे।'

'तू इसे काट दे!' कन्हाईको इतना धैर्य कहाँ कि अंकुरित होनेकी प्रतीक्षा करे।

'अभी यह किसी कामकी नहीं होगी।' वरूथपने गुठली काटकर दे दी।

'दो हैं इसमें। कितनी उजली हैं। चिकनी हैं।' लेकिन कृष्णने मुखमें लगाया और थूककर फेंक दी गुठली तो सखा हँसने लगे। स्वादहीन, बहुत चिकनी यह गुठली श्याम कैसे खा सकता था।

'तू नहीं खायगा?' मधुमङ्गलको चुपचाप खड़े देखकर मणिभद्रने एक ताड़ देनेको उठाया।

'ये अपवित्र फल हैं।' मधुमङ्गलने मुख बनाया—'इसे द्विजाति नहीं खाते। तुम सबोंको अब स्नान करके गोमूत्र पीकर शुद्ध होना पड़ेगा।'

बालकोंका विनोद चल रहा है।



प्रलम्ब - परित्राण

यजमान प्रमाद कर ले तो पुरोहितका कर्तव्य हो जाता है उसको सुधारना। सुरोंका पौरोहित्य मैंने स्वीकार किया तो उनके प्रमादसे पीड़ितोंके परित्राणका दायित्व स्वतः मेरे सिर आ गया।

यक्षराज कुबेर लोकपाल हैं। उन धनाध्यक्षके लिये कृपणता कभी उचित नहीं हो सकती। उनकी पुष्प-वाटिकाके पुष्प भगवान पुरारिके पूजनार्थ हैं, इतना ही पर्याप्त नहीं है। यह औदार्य भी आवश्यक था कि अन्य जन भी उसके पुष्पोंसे अपने आराध्यकी अर्चा कर सकें। प्रवासमें पुष्प प्राप्त करना सुगम नहीं होता। आर्थिक साधन-रहित अर्चक भी विवश होता है कहींसे पुष्प लेनेको। अतः जो वाटिका बनाते हैं, उनमें उदारता आवश्यक है। अवश्य इतना प्रतिबन्ध होना चाहिए कि अपना अलंकरण बनानेको पुष्प कोई न ले सके। श्रद्धा-सहित लगायी गयी वाटिकाके सुमन विलासके उपकरण न बनने लगें।

सुरांगनाओंको, गन्धर्वोंको भी अपने अलंकरणके लिए पुष्प आवश्यक होते हैं। ये सब वैश्रवणकी वाटिकासे पुष्प चोरी करने लगे थे। इन्हें व्यसन है कैलासके समीप सौगन्धिक काननमे विहारका और कुबेरके सेवक यक्ष, वाटिकासे पुष्पोंकी चोरी बचा नहीं पाते थे।

उत्तम पुष्प कोई भी उतार लेता था। कुबेरको बुरा लगा जब बराबर उनको अपनी पूजाके लिए पर्याप्त पुष्प पाना कठिन हो गया। उन्होंने शाप दे दिया— 'मेरे उपवनसे पुष्पोंका अनुमति लिए बिना चयन करने वाला असुर हो जायगा।'

इस शापको यक्षराज अङ्कित कराके उपवनमें लगवा देते तो अच्छा होता। ऐसा कुछ नहीं किया उन्होंने। यह प्रमाद हो गया।

गन्धर्वश्रेष्ठ हू हू का पुत्र विजय एक दिन उधर आ निकला। वह परम वैष्णव हरि-गुण-गान करता आया। वहाँ स्नान किया उसने और अपनी अर्चाके लिए शापसे अनजान पुष्प-चयन करने लगा। इस अपराध-

से असुर हो गया। प्रमाद उससे भी हुआ—वाटिकाके रक्षकोंसे पूछ लेना चाहिए था उसे।

यक्षराज भी मेरे यजमान हैं और गन्धर्व भी। अनजानमें ही कुबेरसे भक्तापराध बन गया था और विजय अपने प्रमादसे असुर हो गया था। अब कुछ दिन कुबेरको अपने अपराधके फलस्वरूप असुरके उत्पात सहनेको बाध्य होना पड़ा। विजय असुर होकर प्रलम्ब हुआ तो अमरावतीकी अपेक्षा यक्षपुरी उसके उत्पातका अधिक स्थान बनी। उसने यक्षोंको अधिक उत्पीड़ित किया। यद्यपि मेरी सम्मतिसे वैश्रवणने शपोद्धार कर दिया था कि द्वापरान्तमें भगवान संकर्षणके करोंसे प्रलम्ब मुक्त हो जायगा।

प्रलम्ब तो प्रतीक बना इस आधिदैवत तथ्यका कि प्रसिद्धिकी वासना बहुव विशाल एवं प्रबल होती है। लोकैषणा लुब्ध करके बड़े-बड़े साधकों-सिद्धोंका भी पतन करा देती है। श्रीकृष्णकी सन्निधिमें उनके सखाओंमें भी प्रलम्ब प्रवेश पा जाता है। साधनकी उच्चतम अवस्थामें भी यशेच्छा आकर्षित कर लेनेमें समर्थ है और नाम-वासना देह-वासनाका ही दूसरा रूप है।

प्रलम्बसे—प्रबल लोकैषणासे परित्राण केवल आचार्यका अनुग्रह—गुरु-चरणोंका आश्रय ही देनेमें समर्थ है। प्रलम्ब जब संकर्षणका हरण करता है तो उसे मरना पड़ता है। दाऊ ही उसका समुद्धार कर सकते हैं।

× × ×

प्रलम्बको पराजित करके कंस मथुरा ले आया था। उसीने उसे वृन्दावन जानेकी प्रेरणा दी। कंसको प्रलम्ब चाहे जितने आश्वासन दे आया हो, प्रमत्त नहीं था और बुद्धिहीन भी नहीं था। अनजानमें ही उसके गन्धर्व-शरीरके संस्कार उसे संचालित कर रहे थे। उस समयके अपने ही आराध्यपर आक्रमण, कोई कठोरता उसके अन्तर में नहीं आयी। वह केवल अवसर देखकर दाऊको मथुरा ले जानेका मनोरथ कर सका।

मैं भी सुरोंका आचार्य हूँ। सत्य कहूँ तो प्रलम्बका पाखण्ड—प्रशंसाकी वासना मुझे भी प्रभावित करती है। अतः प्रलम्बका उद्धार हो, यह मुझे अधिक चिंता थी। इसी कारण जब वह असुर वृन्दावनकी ओर चला, अलक्ष्य रहकर मैं उसके साथ हो गया।

वृन्दावन पहुँचकर व्यक्ति अपनेको विस्मृत हो जाता है। मैं इसका अपवाद नहीं था। बालकोंके साथ श्रीकृष्णचन्द्रकी क्रीड़ा चल रही थी। इसमें किसे कोई और स्मरण रहता है।

अद्भुत क्रीड़ा—जो सकलेश्वर नित्य सर्वज्ञ हैं, ब्रजमें आकर सखाओंमें सबसे कम समझ सूचित करने लगे हैं अपनेमें। वरूथप अपनी झोलीमें-से भरमुट्ठी आमलक निकालता है। बालकोंको अनुमान करना है कि कितने आँवले उसके हाथमें हैं। दाऊ प्राय: ठीक संख्या सूचित कर देते हैं।

'मैं बताऊँगा।' श्रीकृष्णचन्द्र आगे आ गये।

'तू पीछे बतलाना' वरूथप विवाद बचाना चाहता है। इसे पता है कि श्याम कभी ठीक संख्या नहीं बता पाता और फिर झगड़ेगा—'यह सडा आँवला है, यह कम पका है। संख्या मेरी बतलायी ठीक है। मैं कच्चे, सड़े गिनता नहीं।'

कोई पहिले ठीक संख्या न बतला सके तो वही नेत्र बन्द करेगा। औरोंसे पूछना नहीं पड़ेगा। इस कन्हाईके नेत्र बन्द करनेमें भी झगड़ा है। यह नेत्र बन्द करेगा तो अंगुलियोंकी सन्धिसे या वस्त्र हटाकर देखे बिना मानेगा नहीं। इसको श्रीदाम अथवा मधुमंगलको ही छूना है। दाऊ दादाको तो कोई नहीं छूता और तोक, अंशु, देवप्रस्थको भी सब टाल देते हैं। इन छोटे सखाओंको सभी सुप्रसन्न रखना चाहते हैं।

भद्र और सुबल समीप हों तो भी श्याम इन्हें छूना नहीं चाहता। यह तो श्रीदामको ढूँढ़ेगा और फिर झगड़ेगा। तोक अवश्य इसकी ओरसे आ जाता है समर्थन करने। तोकका तर्क उचित है—'कनूँ जब कहीं छिप नहीं पाता तो इसे दूसरोंको देख लेनेकी छुट्टी क्यों नहीं होनी चाहिए।'

श्रीकृष्णचन्द्र कहीं छिप नहीं पाते। जहाँ जिस कुन्जमें जायँगे, मयूरोंको, शशकोंको, गिलहरियोंको वहीं दौड़ जाना है। किसीके लिए इतनी सूचना पर्याप्त है। सब पक्षी वहीं पहुँचना चाहते हैं। व्रजके ये पशु-पक्षी—परमहंस महामुनीन्द्र ही तो यहाँ इस रूपमें श्रीनन्दनन्दनका सान्निध्य प्राप्त करने आये हैं। सदाका इनका स्वभाव कहाँ जाय। ये सदा ही तो प्राणीको श्रीकृष्ण तक पहुँचनेका पथ-संकेत करते आये हैं।

सखा बालकोंके साथ इनका यह विवाद चल रहा है। किसीको स्वीकार नहीं कि इनके स्थान पर तोक या दाऊ दाँव दे दें और ये बिना पर्याप्त झगड़ा किये माननेसे रहे। यह गोपकुमारोंकी आँखमिचौनी चल रही है।

'आप सब मुझे अपने साथ सम्मिलित करेंगे ?' यह प्रलम्ब पहुँच गया। गोपकुमारका वेश तो बना लिया इसने ; किन्तु काली सुपुष्ट ऊँची काया ही इसकी बनी है।

'अच्छे आये तुम !' श्रीकृष्णचन्द्रके समीप कोई कैसे भी पहुँचे, इनको अस्वीकार करना नहीं आता। ये केवल अपनाना जानते हैं ; किन्तु इनके हाथ पकड़ते ही प्रलम्ब काँप गया है, यह मैं देख सकता हूँ। कपट-पाप स्वत:में ही शंकालु होता है। प्रलम्बको भय लगता है— 'ये पहिचान तो नहीं गये।'

मुझे यह भी दीखता है कि दूसरे बालकोंको यह अपरिचित मोटा काला बालक कुछ पसन्द नहीं आया, किन्तु प्रतिवाद किसीने नहीं किया। कन्हाईने इसका कर पकड़ा तो अब इसे साथी स्वीकार ही करना पड़ेगा, यही सबकी मुद्रा है।

'तुम क्या खेलोगे ?' नवीन सखाको नन्दनन्दन नि:संकोच कर देना चाहते हैं।

'हम सब उस वट तक हिरण-चौकड़ी भरें दो दल बनाकर।' प्रलम्बने सुझाव दिया — 'जो दल पराजित हो वह फिर यहाँसे वट तक विजेता दलके साथीको अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जाय।'

प्रलम्ब मनमें सशंक है। यहाँ देर तक रहना उसे अपने लिये विपत्ति जान पड़ता है। वह सोचता है— 'यह मयूरमुकुटी असह्य है। इसीने अनेक असुरोंको मारा है। पूतना, उत्कच, तृणावर्त, वत्स, बक, अघासुर नहीं, इससे उलझना अपनी मृत्यु बुलाना है। मैं इसके अग्रजको मथुरा पहुँचा दूँ तो यह भी उनको ढूँढ़ते आवेगा। महाराज कंसको जो करना हो, स्वयं करें।'

'तुम किसके साथ रहोगे ?' श्रीकृष्णचन्द्रने पूछा— 'तुम्हारी जोड़ी तो दाऊ दादासे है।'

'वे एक ओर और मैं एक ओर।' प्रलम्बने अनुरोध किया— 'तुम मेरे साथ आ जाओ।'

बालकोंके दो दल शीघ्र बन गये। सबने वहाँसे छलाँगे लेना प्रारम्भ किया भाण्डीर वटकी ओर; किन्तु इसमें प्रलम्ब जान-बूझकर छोटी छलाँगें लगा रहा है। नन्दनन्दनका दल हारने वाला ही था। ये स्वयं भी तो सबसे छोटी छलाँग लगाते हैं। अधिक बालक दाऊके लक्ष्य तक पहिले पहुँच गये। अब तालियाँ बजीं और सब पहिले स्थान तक दौड़ आये।

प्रलम्बने यह क्रीड़ा ही इसलिये पसन्द की थी कि शीघ्र इसे अवसर प्राप्त हो जाय। दाऊको पीठपर बैठाकर हाथ और घुटनोंके बल सबसे पहिले चल पड़ा। दूसरे बालकोंने भी यही किया। कोई वाहन बना और कोई उसका आरोही।

'सुबल! तू कितना धीरे चल रहा है।' वरूथपने कहा— 'देख वह मोटा लड़का दादाको लेकर कितनी अच्छी गतिसे जा रहा है।'

'वह गधे जैसा मोटा भी तो है।' सुकुमार सुबलके लिये वरूथपको ढोना भारी पड़ रहा है।

'आज तू अच्छी पकड़में आया है!' श्रीदामा हँस रहा है। वैसे यह केवल श्रीकृष्णकी पीठका स्पर्श किये है। चलता अपने ही पैरोंके बल-से है। श्याम इस प्रकार हाथ और घुटनोंसे इतनी दूर चला चले, यही बहुत है। इसपर भार तो नहीं डाला जा सकता।

'चल! तुझे गड्ढेमें ही गिराऊँगा।' कन्हाई हँसता है। अपना शरीर बार-बार हिलाता है। कभी धप्से पेट पृथ्वीसे लगा देता है और कभी पीठ ऊँची ही करने लगता है।

'चल घोड़े चल!' उज्वलको आनन्द आ रहा है विशालकी पीठ-पर बैठकर।

'बस! अब अपने भाण्डीर वट तक आ गये।' दाऊने नवीन सखासे कहा। यह इतनी गतिसे आया है और इतना ऊँचा है कि रुके तब इसकी पीठसे उतरा जा सकता है; किन्तु यह तो भागता ही जा रहा है। दाऊ समझते हैं कि यह अपना पौरुष-प्रदशन कर रहा है कि इतनी दूर आकर भी श्रान्त नहीं हुआ।

दाऊ भले इसे क्रीड़ा मानें–इनकी ऐश्वर्य-शक्ति तो प्रमत्त नहीं होतीं इन अनन्तका भार सहसा बढ़ गया है। प्रलम्बके भालपर स्वेद आ गया। लगा कि कटि टूट जायगी। इस रूपमें इनको ढोना सम्भव नहीं। सहसा दाऊके दोनों पद पकड़कर तनिक उचका। पीठ परसे गर्दनपर लिया और उठ खड़ा हुआ। अब अपना असुर-रूप प्रकट कर दिया उसने और पृथ्वीपर-से आकाशमें उछल गया।

'सुबल ! वह दादाको वटसे आगे लिये जा रहा है।' वरूथप चौंका— 'वह तो जैसे दौड़ रहा है।'

सुबलने वरूथपको लुढ़का दिया पीठसे और उठ खड़ा हुआ। वरूथप भी खड़ा हो गया।

'भद्र ! वह सखा नहीं, राक्षस है।' ऋषभने कहा— 'वह दादाको लेकर उड़ने लगा है।'

'क्या ?' भद्रने भी ऋषभको पीठसे लुढ़काया और दौड़ते-दौड़ते पुकारा— 'कनूँ ! वह राक्षस है।'

'राक्षस है ?' श्रीदाम चौंका और इतनेमें कन्हाई उसे लुढ़काकर उठ खड़ा हुआ। सब दौड़ पड़े।

कज्जल-कृष्ण, पर्वताकार प्रलम्ब अब अपने स्वरूपमें प्रकट है। मस्तकपर स्वर्ण-मुकुट, भुजाओंमें स्वर्णाङ्गद, लाल-लाल केश, जलते अंगार जैसे नेत्र, कठोर भृकुटि, भयानक दाढ़ें—यह असुर कन्धेपर नीलाम्बरधारी तप्तकाञ्चन-गौर श्रीबलरामको बैठाये उड़ा जा रहा है। अपनी भुजाओंसे संकर्षणके दोनों पद इसने वेष्टित कर रखे हैं। यह तो वायुवेगसे जाना चहता है, किन्तु बढ़ नहीं पाता। बहुत भार है भगवान अनन्तका। गति शिथिल होती जा रही है। 'किसी प्रकार मथुरा तक पहुँच पाता ··!' असुरके शरीरसे स्वेद छूटने लगा है।

'यह भयानक असुर कहाँ ले जा रहा है मुझे ?' दाऊने देखा और तनिक भयका भाव मुखपर आया— 'श्यामने इसे सखा स्वीकार कर लिया। मैं अब इसे मार भी तो नहीं सकता !'

'दादा ! संकोच मत कर। मार दे इसे।' नीचे दौड़े आते श्यामसुन्दरने तनिक दूरसे ही ललकारा— 'तुझे स्मरण नहीं कि मैंने सखा बने व्योमासुरको मार दिया था !'

इतनी ही पुकारकी तो प्रतीक्षा थी। दाऊने अपने दाहिने हाथका घूँसा उठाया और धर दिया प्रलम्बके मस्तकपर पूरे वेगसे। प्रलम्बके मस्तकपर वज्र भी पड़ता तो इतना भयंकर शब्द नहीं होता। मस्तककी अस्थि ही चूर-चूर नहीं हुई, पूरा सिर धड़के भीतर प्रविष्ट हो गया। प्रलम्बकी निष्प्राण प्रचण्ड काया पृथ्वीपर गिर पड़ी।

प्रलम्बका क्या होना था। श्रीकृष्णने उसे सखा स्वीकार कर लिया था। उसे तो चिन्मय गोपकुमारका दिव्यदेह मिल गया और वह गोलोक चला गया। अब वह न असुर रहा, न गन्धर्व। अपने आराध्यका नित्य सान्निध्य सुलभ हो गया उसे।

गोपकुमारोंने दाऊको घेर लिया। सब इनके दक्षिण करको देख लेना चाहते हैं। सबको ही इन्हें अकंमाल देनी है। मेरा प्रयोजन पूरा हो गया। मैं अब अमरावती प्रस्थान कर सकता हूँ।



ढुण्ढाकी होली

देवर्षि भी अद्भुत हैं। कोई ऐसा नहीं जो इनकी दयाका पात्र न हो सके। किसीको इनकी दया दुर्लभ नहीं। कभी-कभी मुझ निसर्ग क्रूर ग्रह-पर भी कृपा करते और कोई सेवा समझा जाते हैं। कल पधारे और पहुँचते ही बोले— 'सूर्यनन्दन ! तुम्हें स्मरण है या नहीं कि तुम्हारी अनुजा यमुना जिसको प्राप्त करनेके लिए तपो-निरत हैं, वे इन दिनों व्रजमें बालक्रीड़ा करते हैं।'

'स्मरण है भगवन् !' मैंने कहा— 'कालिन्दीके सम्बन्धसे मुझ जैसे अशुभ ग्रहको भी सौभाग्य मिलेगा श्यालक कहलानेका उन सर्वेशका।'

'कुछ सेवा भी उनकी करनी है ?' देवर्षिने पूछ लिया।

'अहोभाग्य मेरा यदि कोई अवसर मिले।' मैंने हिचकते हुए कहा— 'अभी वे शिशु हैं और जानते ही हैं कि शनैश्चर सोलह वर्षकी वयतक निष्प्रभावप्राय रहता है। फिर मैं उन निखिलेश्वरको सुयोग भी क्या दे सकता हूँ।'

'केवल यह करो कि कल सायं वृन्दावनमें एक स्थान पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखो ?' देवर्षि हँसे।

मैं चौंक गया— 'देव ! मेरी दृष्टि वृन्दावनमें ? इस दृष्टिका तो दुर्निवार्य प्रभाव है और वह अशुभ है !'

'सुनो !' देवर्षिने समझा दिया— 'हिरण्यकशिपुकी बहिन होलिका प्रह्लादको भस्म करनेके लिए अग्निमें बैठी। उसका वरदान प्राप्त वस्त्र और वह स्वयं भस्म हो गयी; किन्तु भक्तापराध करके कृत्या हो गयी। प्रह्लाद जैसे भक्तका संसर्ग पाकर भी कब तक यह इस अधम देहमें कष्ट पाती रहेगी। वैसे तो अनन्त काल तक भी इसके उद्धारका उपाय नहीं था; किन्तु प्रह्लादसे अधिक श्रीकृष्णके प्रिय सखा इसे भस्म कर दें तो यह परिपूत हो जाय। स्वयं श्रीकृष्ण इसका उद्धार नहीं करेंगे। भक्तापराधीका उद्धार उनका स्वभाव नहीं है।

'मैं इसमें क्या सहायता करूँगा देव ?' मैंने पूछा।

'कंसने उस कृत्याको अनुकूल कर लिया है और कल वह वृन्दावन पहुँचेगी।' देवर्षिने आदेश दिया— 'तुम केवल उसपर दृष्टि रखो, जिससे वह अपनी आकाश-गमन और अदृश्य होनेकी शक्ति स्तम्भित पावे। इसके अतिरिक्त जो करना है, वह स्वयं सब गोपकुमार कर लेंगे।'

देवर्षि विदा हो गये। वैसे भी मैं सामान्य शुद्ध नीलमधारीको सुप्रभाव प्रदान करता हूँ, व्रजधरा तो साक्षात् महानीलकान्त श्रीकृष्ण-चन्द्रसे सुशोभित है। ये श्यामसुन्दर जिस हृदयमें हैं, शनि सदा उसके सानुकूल रहेगा ही। अतः व्रज-दर्शनमें मुझे बाधा नहीं दीखती।

नन्दग्राम-बरसाने सब समारोह प्रायः संयुक्त होते हैं, यह सुन चुका हूँ। दृष्टि नहीं उठा सकता; किन्तु श्रवण सर्वदा सावधान इधर ही लगे रहते हैं और सभीको संसारका अधिक ज्ञान तो श्रवणेन्द्रिय द्वारा ही होता है। कोई देख भला कितना सकता है।

श्रीपञ्चमीको ही बालकोंने दोनों ग्रामोंके लगभग मध्यमें अरण्डका तरु आरोपित किया और तबसे ही प्रतिदिन बालक सायंकाल उसपर शुष्क-काष्ठार्पण करते आ रहे हैं। कितना श्रुति-मधुर है इनका कीर्तन—

'नरहरि नख लाल। प्रह्लाद प्रतिपाल।'

श्रीव्रजेन्द्रनन्दन कितने उल्लसित होते हैं जब कहते हैं— 'प्रह्लाद प्रह्लाद प्रह्लाद !'

दूसरी ओर इनके अग्रजकी उत्कण्ठा है— 'नरहरि, नरहरि, नरहरि' की ध्वनि करनेमें और बालक तो अनेक बार 'नख लाल'के स्थान पर 'नन्दलाल' कहकर ताली बजाते हैं और अपने सखाका श्रीमुख देखते हैं।

आज भी व्रजेश्वरीको बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। मैं माताकी व्यथा समझता हूँ—उनके सुकुमार लाल इतना बिलंब करके आते हैं; किन्तु कोई उपाय नहीं। सखा सब साथ आते हैं और यहाँ भी गाते उछलते 'नरहरि नख लाल'का कोलाहल ही करते हैं। व्रजेश्वरी बालकोंके भगवान् एवं भागवत गुणगानमें बाधा कैसे डालें। स्वयं हँसती हैं और माता

रोहिणीके साथ स्वयं भी ताली बजाकर कीर्तन कर लेती हैं। इसके बिना बालकोंको शान्त करके विदा भी तो नहीं किया जा सकता।

× × ×

देवर्षिने तो केवल मुझे सौभाग्य दिया। व्रजमें मेरी दृष्टि क्या करती ? भगवती योगमाया जहाँ सतर्क रहती हैं सदा, वहाँ मैं सेवा कर सकता था ? लेकिन मैं शूद्र-ग्रह हूँ। असुरोंसे मेरा स्नेह है। इसलिए दयामय देवर्षिने मुझे शुद्ध होनेका समय दिया।

सेवा मैं कोई कहाँ कर सका। ढुण्ढा व्रजमें आयी तो स्वयं इतनी सशंक, भयभीत थी कि उसके भयने ही उसे स्तब्ध कर दिया था। वह तो लुकती-छिपती अन्धकार होनेके बहुत पीछे आयी। आकर भी उसे सूझ नहीं रहा था कि कहाँ जाय और क्या करे। कंसने उसे जो कुछ सुना दिया था, अपने अनुचरोंकी मृत्युका जो वर्णन कर दिया था, वह ढुण्ढाके आतंकको बढ़ानेवाला ही सिद्ध हुआ था। भले कंसने उसे सावधान करनेको वह सब सुनाया था। वह तो मार्गमें खड़ी सोचनेमें ही भूल गयी कि वह कहाँ क्यों खड़ी है।

होलिका-दहन होना है शान्तिके तृतीय प्रहरमें भद्रा-पुच्छमें। गोपोंने अपने ढंगसे इसके लिए सामग्री सजायी है। इस नवान्न्येष्टि यज्ञमें मुन्यन्नोंकी आहुति कुम्भोंसे घृतधारा देते हुए और फिर होला (अग्निमें सेंकी गेहूँ यवकी बालें) प्रस्तुत करके प्रसाद वितरण, इतना ही तो उन्हें करना है। महर्षि शाण्डिल्य विप्रोंके साथ पूजन करा देंगे और दूर खड़े मन्त्र-पाठ करेंगे। इस काष्ठ-राशिमें पूजनके पश्चात् अग्न्याधान तो बालकोंको ही करना है। व्रजराजकुमारको ही अपने सखाओंके साथ चन्दन-दण्डकी प्रथमाहुति देनी है।

श्रीव्रजेन्द्रनन्दन सखाओंके साथ आज इस काष्ठ-राशिमें काष्ठार्पण करके कुछ शीघ्र लौट गये हैं। मैयाकी बात बालकोंने मान ली है कि शीघ्र ब्यालू करके सबको सो जाना चाहिये, जिससे होलिका-दहनके समय उठा जा सके।

सबने दिनमें ही अपने-अपने चन्दन-दण्ड सम्हालकर रख लिये हैं। अब तो मैयाने समझाकर बालकोंको विदा कर दिया है। केवल राम-श्याम और भद्र रह गये हैं सदनमें। सबने ब्यालू साथ कर ही लिया। सदाकी

भाँति नन्दग्रामके भी बालक सीमा तक बरसानेके सखाओंको छोड़कर ही लौटेंगे ; किन्तु आज यह ढुण्ढा मार्गमें खड़ी है ! धीरे-धीरे बढ़ रही है ।

अरे ! इसके तो पद बालकोंको देखते ही स्थिर हो गये । कंसने इसे बतलाया है— 'दो बालक हैं, एक गौर, एक श्याम ।' दोमें-से किसी एकको इसे उठा ले जाना है ; किंतु मूर्ख है कंस । बालक भी कहीं हरे या कई रंगोंके होते हैं । ये सहस्रों बालक और इनमें कोई गौर है, कोई श्याम । भयातुर ढुण्ढाको कंसकी कही विशेषताएँ भूल गयी हैं । वह इतने बालकोंमें-से किसे उठावे ? उसमें तो अब एक पद उठानेका साहस नहीं । सब बालक उसे अपने काल दीखते हैं ।

'यह कौन ?' सबसे आगे आते वरूथपकी दृष्टि पड़ी और वह चौंका ।

'यह राक्षसी है !' विशालने धीरेसे कहा । पर्वताकार शरीर, कज्जल कृष्ण वर्ण, जलते नेत्र, चमकती दाढ़ें, खुले केश, वे भले न दीखें रात्रिमें कि अरुणवर्ग हैं, जो आकार सामने है, वह राक्षसी सूचित करनेको पर्याप्त है ।

'कनूँ !' मुख पीछे करके तोकने पुकारनेका प्रयत्न मात्र किया था, परन्तु तेजस्वीने उसके मुखपर हाथ धर दिया— 'कन्हाई, दादा और भद्र अभी तो शय्यापर गये होंगे । हम सब कोई दुर्बल हैं कि पुकार-कर दौड़ावें उनको ? इसे तो मैं ही मार दूँगा । राक्षसोंमें शक्ति ही होती तो अपना कन्हाई मार लिया करता उन्हें ?'

'यही प्रह्लादको जलानेवाली राक्षसी है ।' मधुमंगलने पाण्डित्य प्रकट किया— 'राक्षस मरकर फिर जी जाते हैं । यही होलिका है और यहाँ आ गयी है ।'

'तू भागकर समीपके भवनसे अग्नि लावेगा ?' सुबलने कहा— 'हम सब दारीको फिर जला देंगे । दादा ! तू वरूथपके पीछेसे घूमकर घेर तो इसे । भागने न पावे ।'

सुबलकी बात सुननेसे पहिले ही मधुमंगल अग्नि लेने दौड़ गया । श्रीदामा छोटे भाईकी सम्मतिके अनुसार गलीसे पीछे पहुँचनेको घूमा तो बालकोंका बड़ा-सा समूह उसके साथ हो गया । ढुण्ढा पीछे पलटी कि भाग जाये ; किन्तु उसे असंख्यों बालक पीछे भी दिखायी पड़े । वह एक क्षण तो

नहीं पा सकी सोचनेको। अपने दुर्भाग्यवश वह इन बालकों द्वारा एकत्र पर्वताकार काष्ठ-राशिके ही समीप थी। एकने काठ उठाकर फेंका— 'मारो ! दारीको मार दो।'

अब तड़ातड़ लकड़ियाँ पड़ने लगीं। ढुण्ढाके भयरुद्ध कण्ठसे क्रन्दन-चीत्कार भी नहीं फूट रही। वह केवल अव्यक्त 'गों-गों' करती है; किन्तु इन सहस्रों बालकोंके कोलाहलमें उसका शब्द कहीं सुनायी पड़ सकता है।

बालक कोई काष्ठ उठाते हैं और फेंक देते हैं राक्षसीके ऊपर। इतने हाथ काष्ठ फेंकने वाले। इस तड़ातड़ आघातने उसे पलक मारते मूर्छित कर दिया। कितनी आहत हुई थी, मैं भी देख नहीं सका।

'राक्षसी कहाँ गयी ?' मधुमंगल अग्नि लेकर लौटा और दौड़ता आया।

'हमने उसको दवा दिया इस काष्ठ-राशिमें।' पूरी पर्वताकार काष्ठकी ढेरीमें बालकोंने कई स्थानों पर एक साथ अग्नि लगा दी।

गोप दौड़े, सबने समझा कि बालकोंने होलिका-दहनमें शीघ्रता कर दी तो अब घृत मुन्यन्नादि भी हवन तो अभी करने पड़ेंगे। गोप सामग्री लेकर आये और बालकोंके चन्दन-दण्ड भी उठा लाये। राम-श्याम भी अपने दण्ड उठाये दौड़े।

'तुम सब गाली क्यों बक रहे हो ?' भद्रने पहुँचते ही सखाओंको डाँटा।'

'दारी राक्षसी आयी थी। वह प्रह्लादको जलानेवाली होलिका।' बालक होलिकाको गाली दे रहे थे और 'नरहरि नख लाल। प्रह्लाद प्रतिपाल।' का बीच-बीचमें कीतन करते थे। मधुमंगलने ही कहा— 'हमने उसे फूंक दिया।'

'राक्षसी ?' समीपका गोप सुनते ही चौंका— 'राक्षसी कहाँसे आ गयी ? कैसी राक्षसी ?'

गोपोंमें आशंका फैलने लगी। बालक अपने उत्साहमें बतलानेमें लगे हैं कि कितनी भारीं राक्षसी थी और उन्होंने उसे कैसे फूंक दिया।

'वह ढुण्ढा थी।' महर्षि शाण्डिल्य स्वतः आ गये थे केवल अपने तीन शिष्योंके साथ। उन्होंने व्रजराजको आश्वस्त कर दिया—'भद्रामुखमें

होलिका-दहन बलि लेता है, वह बालकोंने दे दी। अब आहुति दे दो।'

उसी अग्निमें सहस्रों घृत कुम्भकी धाराएँ पड़ने लगीं और सभी गोप अंजलियाँ भरकर अन्नाहुति डालने लगे।

मेरी दृष्टि अब वहाँसे स्वतः हट गयी। वहाँका मेरा कार्य पूर्ण हो गया। किन्तु श्रवण मेरे सदा इधर लगे ही रहेंगे।

× × ×

राक्षसीके दहनके कारण अथवा मेरी दुर्निवार अशुभ दृष्टि पड़नेसे — मैं कह नहीं सकता कि प्रभाव किसका पड़ा। प्रातः सब बालक एक साथ वहाँ आ गये। उन्होंने पहिले अग्निको बड़े लकुट लेकर कुछ अस्त-व्यस्त किया यह देखनेको कि राक्षसी जीवित होकर भाग गयी या नहीं। उसके शरीरके कुछ अवशेष देखकर आश्वस्त हो गये। अब इतना काष्ठ, इतना अन्न पड़ा उसमें, घृत कितना भी पड़ा हो, यह तो कई दिनों जलेगा ही। बालकोंमें-से श्यामसुन्दरने ही किनारेसे शीतल भस्म उठायी और श्रीदामके मुख पर मल दिया।

सब बालक राक्षसीको गाली दे ही रहे थे, अब परस्पर भस्म उछालने-मलने लगे।

भस्म गोबर-मिट्टीतक बढ़नी ही थी और उसमें पानी मिल गया तो कीचड़ बन गयी। इस प्रकार होलिका-दहनके धूलि-वन्दनमें गाली और कीचड़ प्रवेश पा गया।

उपनन्द बाबाने यह सब देखते ही पुकारा—'नीलमणि! राम! सब सुनो तो!' बड़े ताऊकी पुकार सुनकर सब संकोचसे सिमट आये। स्नेहपूर्वक ताऊने समझाया— "तुम सब कीर्तन करते हो 'नरहरि नख लाल' फिर कीचड़ क्यों? कुंकुम गुलालसे खेलो! मेरे लाल भी लाल बनेंगे और सबको लाल कर देंगे।"

'मैं इतनी गुलाल लूंगा।' तोकने दोनों कर पूरे फैला दिये।

'तुम लोग सब घर जाकर स्नान करो। अच्छे वस्त्र पहिनो।' ताऊने बालकोंको पूर्णतः सहमत कर लिया—'भोजन करके सब आओ।

मैं तब तक रंगका—कुंकुमका प्रबन्ध किये देता हूँ। फिर सायंकाल तक खेलना। '

चलते-चलते सुबलने कन्हाईके कानमें कहा— 'तू सबको लेकर हमारे आना आज। वहाँ बहिन तुझपर रंग डालेगी। '

इस प्रस्तावको उसी समय स्वीकृति मिल गयी। बरसानेमें सुबल-श्रीदामने पहुँचते ही दौड़-दौड़कर सबको सुना दिया— 'अभी नन्दगाँवके सखा सब कन्हाई—दाऊ दादाके साथ आवेंगे रंगकी झोलियाँ भरे। यहाँ सबको लाल-लाल कर देंगे। उन सबोंको भी रंगसे सराबोर करो सब मिल-कर। बड़ा आनन्द आवेगा। '

लड़कियोंमें दौड़ा-दौड़ प्रारम्भ हो गयी। जब भाइयोंके साथ पिता, चाचा, ताऊ रंग घोलने, प्रोत्साहित करने लगे तो माताओंको, दासियों-को भी स्वर्णकी रत्नखचित रेचिकाएँ (पिचकारियाँ) शीघ्र स्वच्छ करके अपनी लालियोंके करोंमें देना ही था। ये तो केवल ओटसे बालिकाओंकी यह आनन्द-क्रीड़ा देखेंगी।

अब यह जो रंगोत्सव आरम्भ हो गया इसमें तो अनेकों परिहास चलने हैं और कितने दिन यह सब चलेगा, कोई गणना नहीं।



दावाग्नि-पान

साक्षात् सृष्टिकर्त्ता-सुत, श्रुति-पारंगत उत।
महर्षि ब्रह्मर्षि प्रजापति - प्रधान अग्नि।
इस समय अजीर्णग्रस्त क्योंकि है मुख्याग्नि॥
हव्यवाह जाठराग्नि दोनोंका समस्त कार्य,
दुर्निवार्य,
मेरे लिए अनिवार्य।
किंतु भाई नारदने कहा है 'व्रजधरा धन्य'
सृष्टिमें पावनतम स्थल नहीं ऐसा अन्य।
अतः आज दर्शन करने हूँ यहाँ आया
जीवनका लाभ यहाँ आकर (सत्य) पाया।
अखिलेश्वर नन्दतनय संकर्षण सनातन,
इनके श्रीचरण - दर्शन [कृतकृत्य मन।]
सङ्ग सखा गोपबाल—
[ऋषि-मुनीन्द्र-प्रणतपाल।]
सौन्दर्य, शील सकल सद्गुण - निधान।
[चिद्घन वपु भा-समान।]
श्रीकृष्ण प्रेम-विग्रह साक्षात्।
हरि-हृदय प्रीतिपात्र।
दिवस मध्याह्न भाण्डीरवट यमुनाकूल।
उच्छलित आमोद—नाना सुरंग दुकूल।
इनका यह वन-भोजन श्रीकृष्ण-राम सङ्ग
[क्या आश्चर्य-स्रष्टा भूल गये अपना रङ्ग]
चारों ओर छायामें बैठे हैं समस्त पशु।
बालकोंकी क्रीड़ा—सब भोजन कर तन्मय अस;
विस्मृत पशु, विस्मृत परिस्थिति, समाज सब।
विस्मृतमें कोई उठा कैसा विवाद अब॥

श्रीदाम श्रीहरिप्रिय, हुए (हाय) इतने रुष्ट।
क्रीड़ामें —अरुण मुख [कठोर वाणी ! ओह ! कष्ट !]
'दाव नहीं देता तू, हारता है तब भी?
किसका है गर्व तुझे? मुझसे बढ़ अब भी!
किंतु नहीं—तेरे साथ अब न मुझे खेलना।
नित्यका झंझट नहीं है और झेलना।
सुबल! चल हम सब अब इससे पृथक रहें।
इससे न बोलेंगे—कोई कुछ भी कहे।'
यह क्या? कमललोचन इतनेसे दोनों कर मुखपर धर
बैठ गये; रुदन करते हैं हिचकी भर?
हो गया—इतना श्रीदामको सह्य कहाँ।
मान-रोष अब कैसा, देखा तक नहीं यहाँ।
कितना अपार स्नेह, वक्षसे लिपटा—
अपने दुकूलसे नेत्र पोंछ चिपटा—
पूछता है— 'कनूँ! तू रोने क्यों लगा?
मैंने तो कभी भी तुझे क्रीड़ामें नहीं ठगा।
चुप हो जा! बोल तू चाहता है क्या बता?
रोकर मुझे अब इतना तो मत सता।'
'अपने साथ रहने दो, अपना मुझे दो प्यार।'
'छिः! फिर रोता है?

यह तो तेरा अधिकार।'

'अधिकार कैसा सखाओंमें किसका?
हम सब समान ही हैं, करो जो जी जिसका।
किंतु मुझे अपना रखो, अपने साथ रहने दो।
कुछ मैं कह लूं तो भैया, मुझको भी कहने दो।
दुर्बल हूँ तुम सबसे—मुझको है स्वीकार
सदा सर्वत्र तुम सबसे मेरी हार।'
'अच्छा उठ!' शान्त हुआ जैसे ही यह विवाद
ओह! आ पड़ा यह पुनः कैसा विषाद?
अर्जुन, विशाल, ऋषभ, बालक वरूथप—
भागे दौड़े हाँफते गोपाल बाल यूथप—

आये हैं, एक स्वर चिन्ताग्रस्त—
[मुखश्री हा इतनी अस्त ?]
'दादा ! कनूँ ! अपनी सब गौएँ कहीं नहीं।
आसपास एक भी तो दीखती नहीं कहीं।
ढूँढ़ लिये हमने सब समीपके सघन कुञ्ज,
वृक्षपुञ्ज,
सुनती हुंकारकी भी न है कोई गूँज।
कनूँ ! कदम्बपर चढ़कर नेक टेर तू।
शृङ्ग बजा ! दाऊ दादा – ऊँचे चढ़ हेर तू।
कन्हाईकी टेर सुन दौड़ी सब आयेंगी—
नहीं तो हम सबको बहुत भटकायेंगी।'
एक साथ राम - श्याम, श्रीदाम मणिभद्र,
सुबल, मधुमङ्गल भी और उठे झट भद्र।
कदम्बकी ऊँची शाखाओंपर पहुँचकर—
बालक दूर तक देखते हैं इधर - उधर।
हाथसे दक्षिण उड़ाते हुए पीतपट,
उच्चस्वर पुकारते हैं आतुर मयूर-मुकुट—
'कामदा ! कपिला ! नन्दा ! अरुणा कहाँ हो ?
धर्म ! आनन्द ! गौरव ! बोलो भी जहाँ हो !'
बारबार अधरोंसे शृङ्ग लगा फूँकते हैं !
ऐसे पुकारते हैं— व्याकुलसे हूकते हैं।'
[पशुओंको पुकारते हैं नाम ले - लेकर।
व्याकुल ये देखते हैं अहो अखिलेश्वर।
इनको पुकारते हैं मुझसे महर्षिगण।
युग - युगसे, तपो - निरत तापस, योगीजन।
श्रुतिका सस्वर स्तवन सुनकर भी रहते मौन—
पशुओंको पुकारते यहाँ धन्य ऐसी धरा कौन]
यह क्या ? उतर आये बालक विषाद - ग्रस्त—
इतना मलीन मुख– [शशि ज्यों दिवस - अस्त।]
आज क्या रुदन-दिवस ? हृषीकेश रोते हैं ?
अश्रुधार चलती है—कपोल दोनों धोते हैं।

भद्रने लगा लिया अपने हृदयसे।
रो रहा वह भी है किंतु साथ भयसे।
नित्य सर्वज्ञ, सकलेश्वर और यह कातर वाणी—
[सम्मोहित होगा ही माया-मुग्ध क्षुद्र प्राणी।]
'भैया भद्र! अपने करेंगे अब क्या भला।
कुटिल नियतिको व्रजका वैभव खला!
गायें गयीं, वृषभ गये— पशु गये सब।
सद्यः प्रसूता शेष गोष्ठमें जो अब।
उतनेसे व्रजका बनेगा क्या भला।
गोप क्या करेंगे? क्या गोपियाँ अबला!
अब क्या बाबा हम सबके सेवक बनेंगे?
किसी सम्पन्नकी सेवा जा करेंगे?
कोई कहेगा नहीं हम सबको कुछ भी।
कैसे दिखलावेंगे उनको मुख हम भी।
ब्रजका धन गो-धन हाय हमने विलुप्त किया।
माता-पिताको यही सुख मिलकर दिया!
मैया व्रजेश्वरी, मैया श्रीदामकी—
दासी बनेंगी कहीं— सहेंगी आज्ञा कामकी?
बाबा व्रजराज अब आज्ञा सुनेंगे?
कैसे क्या होगा— कौन क्या-क्या करेंगे?
उजड़ेगा आज नन्दपुर— वृषभानुपुर?
जीविकाके लिए स्वजन होंगे परस्पर दूर?
हम सब मिलेंगे नहीं परस्पर अब कहीं?
यही हमारी नियति निश्चित क्या हो रही?'
हिचकियाँ लेते हैं—काँपता पूरा शरीर—
[सहा नहीं जाता] भद्र! हाय! वीर!'
सहसा प्रबुद्ध भद्र—दृढ़ हुई भृकुटी।
सिर घूमा देख लिया कहाँ पड़ी लकुटी।
पीठ सहलाता बोला— 'रो मत कनूँ मेरे!
गायें अभी लाता हूँ देख यहाँ मैं घेरे।
तनिक तू चुप हो जा—लकुट लिये जाता।

जहाँ तक भी वन है— पूरा ढूँढ़ लाता हूँ।
कितनी भी गयी हों दूर लेकर ही आऊँगा।
गायें लौटाकर तुझे मुख दिखलाऊँगा !'
'नहीं, तू अकेला नहीं। लकुट दे मेरे हाथ।
हम सब चलेंगे सखा भद्र अब तेरे साथ।'
पलभरमें सबने लकुट उठा लिये।
भद्र चल पड़ा है अवनिपर दृष्टि दिये।
[जीवाचार्य आद्य अनन्त अनुगामी हैं !
कैसा आश्चर्य आश्रित हैं— जो सबके स्वामी हैं !
भद्रकी प्रतिभा— सरस्वती क्षमा करें,
कृष्ण-सखा समता कहाँ—भोले ये स्वयं रहें।]
'देखो सब— गोबर यह अभीका है पड़ा।
गरम है, सूखा नहीं, पड़ा नहीं पपड़ा।
यह रही गोमूत्र-रेखा, तृण यहाँ कुचला।
गये हैं इधर ही पशु संशय कहाँ भला।
अरुणाने अङ्ग खुजलाया यहाँ सविशेष,
वृक्षमें ये रोम उसके दीखते हैं विशेष।
खुरोंसे वृषभने किसी यहाँ रज उठायी।
मिट्टी खुदी है, रज तृणोंपर छायी।
यहाँ सब कूदे हैं, दौड़े हैं, भागे हैं।
तृण कैसे कुचले हैं, वृषभ ही आगे हैं।
उनके खुरोंके चिह्न गोखुरसे मिटते।
अभी हम पहुँचते हैं उन तक।' सब सिमटे—
भद्रके पीछे चले आते हैं-- भागे।
भूमिपर देखता चलता भद्र आगे।
सहसा समाप्त वन आगे मुंज वन-घोर।
ग्रीष्म तप्त मूँजही स्वर्णवर्ण चारों ओर।
भद्र रुका, सब रुके— 'देख कनूँ कितनी,
मूँज मध्य हिलती हैं, सब क्या इतनी ?
अपने पशु इसीमें हैं, मार्ग नहीं पाते हैं।
थोड़ेसे घेरेमें घूम-घूम आते हैं।
करले विश्वास उनको पुकार तू।

बाहर ही बैठ थका होगा, न हार तू।'
'कामदा! कपिला! कृष्णा! आनन्द! अरुणा!
नन्दा! धर्म! गौरव! कुमुद! कर्बुरा! तरुणा!'
भद्र कुछ कहता और किंतु झट कन्हाईने
नाम ले-लेकरकी पुकार बलभाईने,
पशु हुंकार कर हर्षित हो बोले।
दौड़नेसे उनके मध्य मुंज-वन डोले।
किंतु पथ पाते नहीं पशु हुंकारते हैं।
बालक-मुंज मध्य चले—चलते पुकारते हैं।
पशु मिले हर्षित हुए बालक चिन्ता मिटी,
लेकिन मुंजवनमें ये लपटें! हैं क्यों उठी?
ओह! यह कृत्यानल कदर्य कंसका पला।
आसुर अग्नि आया है—देगा सबको जला?
मेरी भी भृकुटी कठोर नहीं मानता?
अग्नियोंके परमाध्यक्ष मुझको नहीं जानता।
सूखा अपार मुंजवन, ज्वाला उठती।
घेरकर चारों ओरसे हैं बढ़ी घिरती।
सहसा पशुओंने किया क्रन्दन लिया घेर—
बालकोंको मध्यमें करके रहे कातर हेर।
बालकोंने भी विपत्तिको लिया भांप।
राम-कृष्णको कर मध्य देह गये सबके कांप।
[धन्य प्रेम पशुओंका, पशुपाल बालोंका
पहिले भस्म हम होंगे दृढ़ निश्चय ग्वालोंका।
किंतु रही लपट दूर ताप भी लगा कहीं।
मिट जायगी मर्यादा सृष्टिकी सदाको ही।
अग्नि मिट जायँगे—अङ्गिरा मरेगा।
नहीं, इस आसुरसे ब्रह्मपुत्र क्या डरेगा?
शाप दे दूँगा इसे सौ धनुष दूरपर—
'हिम हो जा!' कंस लेगा क्या मेरा कर!]
बढ़ा आ रहा है दावाग्नि यहाँ चारों ओर।
रुई-सा मुंज-वन जलता जाता है घोर।

[फुँकार छोड़ते ज्यों महासर्प आते हों]
लपटें सनसनाती हैं, [वृषभ ज्यों जाते हों]
'बचा लो ! बचा लो ! हमें दाऊ ! कन्हाई।
केवल तुम्हारे हम, आश्रित तब भाई।
गोपाल ! गोपाल ! गायें बचा लो !
अपनोंको कृष्णचन्द्र अबकी बचा लो !'
आर्तस्वर गोपबाल एक साथ बोले।
क्रन्दन पशु सङ्ग-सङ्ग— देह नहीं डोले।
[देखता हूँ इस पुकारका मैं सत्य अर्थ—
प्राणमय इन्हें ? छिः ! कल्पना कनिष्ट-व्यर्थ।
सब चाहते हैं पशु और पशुपाल भी।
राम-श्याम सकुशल हैं— होवे हमें कुछ भी]
अरुण हो गये नेत्र सहसा बलरामके—
क्षणमें अनर्थ होता; किंतु कर श्यामके—
स्कन्ध पड़े, सहसा पुकारते व्रजचन्द—
'मित्रो सब शीघ्र करो अपने-अपने नेत्र बन्द !'
कर लिया नेत्र सबने बन्द, हलधरसे हौले—
स्कन्धपर कर धरे धीरेसे बोले—
'दादा ! तू केवल देख' पंकज-मुख दिया खोल।
वामकर इंगित—गये आसुराग्नि पद डोल।
[मैंने प्रलयकी प्रक्रिया निहारी।
कैसे कार्य सृष्टि लीन कारणमें सारी।]
[प्रबल झंझावात जैसे सहसा समेटे मेघ]
बलात् सिमट गयीं लपटें— मैं चकित देख।
पी लिया समस्त अग्नि तापत्रय-हारीने।
[पी लिया हलाहल था जैसे त्रिपुरारीने।]
चारों ओर महामुंजवन भस्ममात्र।
केवल मध्य पशुओंसे कुछ दूर अवशेष—
[दीर्घ रुग्णका हो ज्यों कङ्काल-मात्र शेषगात्र]
'इतना पर्याप्त नहीं— प्यासे पशु जल दूर।
सखा सब अबतक हो गये श्रान्त भरपूर !'

उठी दृष्टि ऊपर–हाथ जोड़ा योगमायाने।
निखिल महेश्वरी भगवती परापायाने*॥
अग्रज समस्त पशु सब सखा पशुपाल।
यमुनातट भाण्डीर-वट-निकट दीखे गोपाल॥
मधुमङ्गल श्रीदामके सिर चपत धर—
हँसकर बोले— 'नेत्र बन्द रखो दिनभर।'
शीतल सुमन्द वायु यमुनाका कलकल,
पक्षियोंका कलरव और कपियोंकी हलचल,
कृष्णकी विनोद-वाणी सुनकर चकित नेत्र खोल—
'मेरे कन्हाई' सब सके केवल इतना बोल।
आलिंगन सबको मिला, सबने दिया भावसे।
'देवता तू' कह दिया श्रीदामने चावसे।
'सचमुच बड़ा देवता हूँ, पूजा किया कर।
अपना पूरा छीका तू मुझको दिया कर!'
'देवता तू? वरदानमें मोदक सब—
देता रहे मुझको तो पूजा करूँ अभी अब।
देवता तो खाता नहीं, सूँघ लेना तू भले।
पत्र-पुष्प ले ले' मधुमङ्गलजी चले—
एक पूरी टहनी तोड़ शीश पर धरने।
छीन लिया आगे बढ़ कन्हाईके करने।
भङ्ग हुआ गाम्भीर्य-विलुप्त ऐश्वर्य-ज्ञान।
आनन्दकी क्रीड़ा आनन्दघन सब समान।
मैं हूँ महर्षि ब्रह्मपुत्र देता आशीर्वाद—
'अग्निसे अभय अब सब समय निर्विवाद।
राम-श्याम और इनके पशु सब पशुपाल।
सब कहीं सकुशल सानन्द रहें गोपाल।'
ब्राह्मण हूँ—माँगना स्वभाव है—न जायेगा—
ऐसा अवसर अङ्गिराके जीवनमें न आयेगा।
इतना उदार दाता, अमित दाता अनुकूल—
देकर भी जो सलज्ज मुख नीचे करे सानुकूल।

---

* उपलब्धि स्वरूपाने।

देकर भी जो स्वीकार करे— 'मैंने लिया।
जिसकी अनुभूति— 'कभी मैंने कुछ नहीं दिया।'
मणि दे हँसकर कहे— 'तेरे पत्थर गले बाधूंगा।
तू करे ना-नू तो बलात् तुझे साधूँगा।'
अमृत सुधा भक्ति दे और समझे— 'मैंने ठगा।
यही रहा भोला मैं सर्वदा रहा जगा।'
कृष्ण कृपासिन्धु ऐसा उससे न माँगूँ—
माँगूँगा कहाँ—अतः मङ्गन मैं, मागूँगा-माँगूँ—
'श्याम ! तुम्हारी कृपा रहे—न रहे।
करुणा इन गोपबालकोंकी बनी रहे !'

× × ×

यह क्या—मैं यहाँ आ काव्य करने लगा ?
आया था देखने अब तक रहा ठगा।
क्या आश्चर्य कृष्ण - क्रीड़ा चिन्तन स्वतः काव्य।
व्रजका माहात्म्य मुझ महर्षिको भी दुर्विभाव्य।



गोवर्धन-पूजन

अपने दस भाइयोंमें मैं सबसे छोटी बहिन हूँ। लेकिन मुझे इतना ही गिनना आता है जितनी मेरे दोनों हाथोंमें अंगुलियाँ हैं—दस। भाई तो मेरे इतने हैं कि मैं कभी गिन नहीं पाऊँगी। पता नहीं गोपियाँ क्यों मुझे अर्जुन और अंशु भैयाकी ही छोटी बहिन कहती हैं। दाऊ दादा है और कन्हाई भैया तो मुझे साथ ही लिये रहता है। बस तोक तनिक नटखट है। मुझसे दो महीने बड़ा क्या है, मुझे चिढ़ाता रहता है। वही मेरी चुटैया खींचता है। लेकिन मैं भी तो उसे चिढ़ाये बिना नहीं रह पाती।

मेरे सब भैया मुझे बहुत-बहुत प्यार करते हैं। वनसे लौटते हैं तो मेरे लिए ढेर सारी वस्तुएँ ले आते हैं। मैं गाँवसे बाहर तक दौड़ जाती हूँ, जब सबको आना होता है। दिनभर—दिन बहुत बड़े होते हैं, बहुत मनहूस, बड़ी कठिनाईसे बिताती हूँ। कन्हैया भैया दौड़कर मुझे लिपटा लेता है और सब एक साथ मुझे सजानेमें जुट जाते हैं।

'अजया ! तू देवी है। हम सब तेरी पूजा करते हैं।' कन्हैया भैयाकी भाँति कोई कह देता है। हाँ—देवी तो हूँ; किंतु छोटी-सी। मेरे इतने भैया सब देवता हैं और सब मुझसे बड़े हैं। मैं यह बात कहती हूँ तो सबके सब हँसते हैं।

ये सब भी मुझे कोई काम नहीं करने देते और मैया तो न गोबर छूने देती, न बर्तन। जो देखो वही कहता है— 'अजया ! तेरे ये छोटे-छोटे कोमल हाथ काम करनेको नहीं बने हैं।'

दाऊ दादा कहता है— 'अजया ! तू कुछ तो खाया कर बहिन ! चन्द्रमाकी किरण जैसी पतली और कोमल है।'

कितना तो खाती हूँ। सब तो मुझे खिलाते ही हैं और मैं कोमल-दुर्बल तो नहीं हूँ। तोकके बराबर दौड़ लेती हूँ। मैया मुझे ही क्यों कहती है— 'यह बहुत चंचल है !' तोकको, अंशको तो कहती नहीं है।

'माँ ! मेरी बहिनको कुछ कहा मत कर !' कन्हैया भैयाने कल मेरी मैयाको मना किया।

'यह लड़की है लाल ! किसी गोपके ही घर जाना है इसे।' माँ हँसी—'तू ही कल कहेगा कि इसकी सगाई करो।'

'मैं अपनी बहिन किसी अच्छे राजाको विवाह दूँगा !' मुझे मैया और कन्हैया भैया दोनोंकी बात बहुत बुरी लगी। लोगोंको बस यही एक बात ही आती है क्या ? लेकिन एक बात अच्छी हो गयी। कन्हैया भैयाने बहुत सारे विवाह करनेकी बात मान ली। मेरी बात भैया कभी टालता नहीं। बहुत-सी भाभियाँ मेरे लिए लावेगा। कितना आनन्द आवेगा !

'तू पहिले विवाह कर ! सब अपने सखाओंके कर।' मैंने रूठकर कहा था क्रोधसे।

'कर लूँगा' कन्हैया भैयाने कहा तो मैया हँस गयी।

'ऐसे नहीं, बहुतसे कर और सबके कर दे।' मैंने कहा

'अच्छा, तू रूठ मत। कहेगी वह कर दूँगा; किंतु तू क्या करेगी इतनी भाभियाँ लेकर ?' भैयाने पूछा।

'बहुत-बहुत भाभियाँ चाहिये मुझे।' मैंने ताली बजायी 'खूब सारी भाभियाँ ! तू पक्की बात कह।'

'अजया ! तुझसे मैं कच्ची बात कब कहता हूँ।' भैया सचमुच मुझसे कोई बात—कच्ची बात नहीं कहता। मैं उससे कुछ कह दूँ तो कभी भूलता नहीं। कोई काम कह दूँ तो उसे करके ही मानता है।

कितना बुद्धिमान है मेरा कन्हैया भैया और कितना जानता है। बड़े ताऊ तक इसकी बात मान लेते हैं। कल शामकी ही तो बात है। मैं तो वहीं थी, इसलिये भी थी कि सब गायें लेकर जल्दी लौटनेवाले थे। भैयाने कहा था! कि मेरे साथ वह बहुत दीपक सजावेगा। सजाये भी उसने; किंतु वह तो पीछेकी बात है। बाबा—व्रजराज बाबाने नन्दगाँव-बरसानेके मध्यमें एक बड़ा खम्भा गाड़ा। सब कहते थे कि वह इन्द्रध्वज है। उसके पास गोप ढेरों सामग्री लाने लगे। इतनेमें गायें आयीं। कन्हैया भैयाने दाऊ दादासे, सखाओंसे कुछ कह दिया होगा। सब गायें लेकर गोष्ठकी ओर चले आये और भैया अकेला दौड़ा-दौड़ा आया। वह आते ही अपने बाबाकी गोदमें बैठ गया।

'बाबा ! यह क्या हो रहा है ? किसकी पूजा होगी ? क्या होता है इस पूजासे ? इसमें क्या-क्या लगेगा। यह पूजा वेदमें कही है कि लोकमें ही चलती है ?' मैं तो खड़ी मुख देखती रही। कितनी बातें पूछता ही चला गया। बाबाकी दाढ़ीमें अपनी अँगुलियाँ नचाता जाता था। पीछे बोला— 'बाबा ! छिपाओ मत ! मुझसे सब सच-सच बता दो ? अपनों-से तो छिपाया नहीं जाता।'

'लाल ! तू जो मेघ देखता है, ये इन्द्रके भेजनेसे आते हैं। ये वर्षा करते हैं, तब घास, अन्न होता है।' बाबाने इसकी अलकें सहलायीं— 'उसी अन्नसे इन्द्रकी पूजा सब करते हैं। इन्द्रकी पूजा नहीं करनेसे अनर्थ होता है। अकाल पड़ता है। हम लोग भी कल इन्द्रकी पूजा करेंगे।'

कन्हैया तो झट बाबाकी गोदमें जो अब तक अधलेटा था, बैठ गया। बोला—'बाबा ! धूल उड़ती है और ऊपर जाती है तो उसीके कणोंपर पानीकी भाप जमती है। इससे मेघ बनते हैं। वायु इन मेघोंको ले आता है। इसमें इन्द्रका क्या अड़ंगा ? महर्षि शाण्डिल्य तो कहते हैं कि सब अपने ही कर्मका फल भोगते हैं। अपने ही कर्मसे सुख-दुःख होता है, फिर हम इन्द्रकी पूजा क्यों करें ?'

यह तो उठकर खड़ा हो गया—'इन्द्रकी पूजा हम नहीं करेंगे। पूजा करेंगे गिरिराजकी।'

मैं ताली बजाकर नाचने लगी—वाह ! इस गाड़े खम्भेसे तो गिरिराज बहुत बड़े हैं। भैयाने कितना बड़ा देवता दिखाया है।

'आज सब घरोंमें खीर-मालपुए, पूड़ी, हलवा ढेरसे रातभर बनवाओ। कल सब दूध-दही, घी ले लो और गिरिराजके समीप यज्ञ करो। अग्निमें आहुति दो। ब्राह्मणोंकी पूजा करके उनको खिलाओ और गोदान करो।' भैयाने पूरी बात बता दी—'गायोंकी पूजा करो, वृषभोंकी करो और इनको भी यवस दो। सबको दो—गिरिराजकी पूजा करके उनको भोग लगाओ। सब साथ बैठकर वहीं भोजन करो। शूद्र-चाण्डाल सबको खिलाओ। सब लोग—गोपियाँ भी नये-नये वस्त्र-आभूषण पहिनो और अन्तमें छकड़ोंमें बैठकर गिरिराजकी प्रदक्षिणा करो।'

सब गोप भैयाका मुख देखने लगे। भैयाने कहा—'हम लोग नगरमें रहते नहीं। गाँवमें भी कहाँ रहते हैं। हमारा तो व्रज है। वन-

पर्वतका वास है। न व्यापार करना है, न खेती। हमारा धन गोधन है। गिरिराज सन्तुष्ट रहेंगे तो गायोंको तृण मिलता रहेगा। वे स्वस्थ रहेंगी। अतः मेरी सम्मति तो गिरिराजके पूजनकी है। आप सबको अच्छा लगे तो यह करो।'

मैंने अपने बाबासे सुना था कि 'गोपोंमें दो मत नहीं हुआ करता।' अब एक मत भैयाका होगा तो सबको यह मानना पड़ेगा, नहीं तो गोपोंमें दो मत हो जायगा। बात तो इतनी है कि व्रजराज बाबाने यह खम्भा गाड़ दिया। इसमें झण्डा लगा दिया। इसको चन्दनका लेप करके, इसपर लाल रेशमी वस्त्र लपेट दिया, माला चढ़ा दी और इसकी पूजा कर दी; किंतु कहाँ यह खम्भा और कहाँ गिरिराज।

भैयाने फिर कहा— 'सब देवता और सब तीर्थ गौमें रहते हैं। गौओंको बढ़ानेवाले होनेसे गिरिराजका नाम गोवर्धन है। इनसे बड़ा देवता कौन होगा? महर्षि प्रतिवर्षके प्रारम्भमें पञ्चाङ्ग सुनाते हैं, तब उसमें मेघ, गज, समुद्रका नाम बतलाते हैं। शस्येश-मेघेश तो ग्रह गिनाते हैं। उनमें इन्द्रका तो कहीं नाम भी नहीं होता। सुना है कि ब्रह्माके एक दिनमें चौदह इन्द्र मर जाते हैं और श्रीहरिके एक निमेषमें ब्रह्मा मरते-जीते हैं। बाबा! श्रीहरि तो शालग्राम हैं न? ये गिरिराज शालग्राम-स्वरूप हैं। इनको छोड़कर किसी औरकी शरण लेना अच्छा नहीं।'

भैयाने सन्नन्द ताऊके समीप जाकर कहा— 'ताऊ! ब्राह्मण वेद पढ़ते हैं तो वे मन्त्र-यज्ञ करते हैं, क्षत्रिय रण-यज्ञ करते हैं, किसान हल-पूजन करते हैं, हम गोप हैं; अतः गिरि-यज्ञ करेंगे।'

'हम गिरि-यज्ञ करेंगे!' सन्नन्द ताऊने भैयाको अपनी गोदमें ले लिया— 'हमारा कृष्णचन्द्र ठीक कहता है। यज्ञ होगा, ब्राह्मणोंका— गायोंका पूजन होगा, सबको खिलाया जायगा, सब कुछ तो हो ही रहा है। इस ध्वजके स्थानपर गिरिराजकी पूजा—इतना ही तो परिवर्तन है। इन्द्रने तो हमें कभी दर्शन दिया नहीं। मैंने नहीं देखा कि वह कैसा देवता है। सूखे खम्भेके पूजनसे विशाल हरे-भरे गोवर्धनका पूजन भला। बालकका मन रहेगा और कलको यह यहाँ पूजनके समय कुछ उत्पात करने लगे तो पूजन पड़ा रहेगा, अपराध और होगा।'

'महर्षि शाण्डिल्यसे पूछना पड़ेगा। परम्परासे चली आयी पूजा छोड़नेकी बात है।' बड़े ताऊ उपनन्द बाबाने बहुत गम्भीर मुख करके कहा।

'मैं श्रीकृष्णके साथ हूँ।' महर्षि वहीं तो बैठे थे। वे बोले— 'श्रीव्रजराजकुमारकी बात बड़ी है। वही करनेमें सबका कल्याण है।'

बस निर्णय हो गया। महर्षिने मान लिया तो कोई और क्या कहेगा। मैं घर भागी मैयाको, सब भाइयोंको यह समाचार पहुँचाने। मुझे क्या पता था कि ये सब पहिलेसे सम्मति करके आये थे। अर्जुन भैया-ने कहा— 'यह तो वनमें ही कन्हाईने कह दिया था कि वह इन्द्रकी पूजा नहीं होने देगा। इन्द्र हमारी गौओंसे भी बड़ा देवता हो गया कि गायें बिचारी बँधी रहेंगी दिन भर और इन्द्र पूजा पावेगा।'

मेरे कन्हैया भैयाने कितने भारी सुन्दर सदेह देवताका पता लगाया, यह आज सब स्वीकार करते हैं। किसीको कहाँ गिरिराजका पता था। आज सबेरे ही छकड़ोंमें भरकर सामग्री ढोयी जाने लगी। रातभर मैया लगी रही अनेक व्यञ्जन बनानेमें, यह वह कहती थी। मैंने कहा— 'तू सोयी क्यों नहीं, थोड़ा कम बना लेती।'

'सब गोपियाँ रातभर लगी रही हैं।' मैयाने कहा— 'तेरे बाबा व्रजराजके छोटे भैया हैं। मैं कम बनाती तो सब मेरा नाम धरतीं। देवरानी-जेठानी सब कहतीं कि कुबला कृपणा हो गयी है।'

मैयाने स्नान किया। सबसे सुन्दर साड़ी पहिनी और अपने सब आभूषण पहिन लिये। अपनी चोटी की। उसमें मल्लिकाकी माला लगायी। बाबा घरमें आया तो हँसकर बोला— 'तुम तो आज ऐसी सजी हो जैसे पहिले दिन इस घरमें आयी थीं।'

'चलो! बच्चोंके सामने तो सोचकर बोला करो।' मैयाका मुख लाल हो गया। मैं ताली बजाकर हँसने लगी।

मैयाने अर्जुन और अंशु भैयाको पहिले स्नान कराके भली प्रकार सजा दिया था। वे दोनों चले गये थे। बाबा भी आज आभूषण पहिने था। पगड़ीमें हीरेकी कलङ्गी लगाये था। कञ्चुक पहिना था उसने और बड़ा कामदार जड़ाऊ उत्तरीय डाले था। मैयाने सबसे पीछे मुझे स्नान कराया। मेरी पाटल स्वर्णजटित साड़ी पहिना दी। चोटी की और तब इतने आभूषण पहिनाये कि मैं तो उनसे लद गयी। बाबा हम सबको छकड़ेमें बैठाकर ले गया। आज तो बैल, गायें भी सजाये गये थे। सबके शृङ्ग, खुर स्वर्ण मढ़े और गलोंमें मोतियोंकी माला।

मैं वहाँ पहुँचते ही कन्हैया भैयाके पास दौड़ गयी। सब बरसानेके उसके सखा भी साथ थे। वहाँसे सुबल मुझे अपनी बहिनके पास ले गया और जब राधा मिल जाय, मुझे छोड़ती ही नहीं। मैं भी उसकी सखियोंमें मिलकर दिनभर उसके साथ ही रही।

सब गोप हवन करनेमें लग गये। महर्षि शाण्डिल्य अपने सब ऋषि-मुनि तथा शिष्योंके साथ आये थे। बड़ा भारी यज्ञ हुआ। देर तक पहिले पूजा होती रही, फिर 'स्वाहा-स्वाहा' होने लगा। वह पूरा हुआ तो सब ब्राह्मणोंका पूजन हुआ। मैयाने गोपियोंके साथ ब्राह्मणोंकी पत्नियोंका पूजन किया। सबने बहुत सारी गायें दान कीं। तब गायोंका, वृषभोंका पूजन किया गया। सब गोपोंने, सब बालकोंने पूजन किया। हम सबने भी किया। मैं पूजन करने चली तो ललिताने टोका— 'लड़कियोंको पूजन नहीं करने देंगे!'

'तू चल। मैं भी चलती हूँ।' राधाने अपनी सखीको मना कर दिया। मुझे ललिताकी बात बुरी लगी थी। किसीने भी तो कुछ नहीं कहा। हम सबने पूजन किया। राधाने कहा भी ललिताको— 'तू अजयाको कभी रोकना मत किसी बातको। इसकी इच्छाके साथ मेरी अनुमति है।'

'ओह! राधा क्रोध भी कर सकती है, यह मैंने आज जाना। मुझे ललिताका उतरा मुख देखकर उसपर दया आ गयी।

सबसे आनन्दका पूजन हुआ गिरिराजका। इसमें तो कन्हैया भैया ही मानों पुरोहित बन गया। मैं तो गिन नहीं पाती, विशाखा कहती थी कि चौंसठ सोनेके कटोरोंमें गङ्गा-यमुनाका जल तुलसी डालकर पाँच पंक्तियोंमें रखा गया है।

सब पूजन वैसे हुआ जैसे नारायण भगवानकी बड़ी पूजा होती है। इसके अनन्तर सब आये पदार्थ जब तुलसी डालकर भोग लगानेको रखे गये तो गिरिराज भगवान साक्षात् प्रगट हो गये। वे माँग-माँगकर खाने लगे। गोप दौड़-दौड़कर थालपर थाल लाकर कन्हैयाके हाथमें देते थे और उससे लेकर पूरा थाल गिरिराज भगवान एक बार ही मुखमें डाल लेते थे। देवता ऐसा हो, भला वह खम्भा क्या खाता, जिसे कल व्रजराज बाबाने गाड़ा था।

राधाने हँसकर कहा— 'अजया ! देख तो सही, यह बड़ा भारी देवता तेरा भैया ही है या नहीं ?'

'उसके तो चार हाथ हैं !' मैंने कह तो दिया; पर चार हाथ न होते दो होते, इतना बड़ा पहाड़ जितना ऊँचा न होता तो यह सचमुच मेरे भैया कन्हैया ही जैसा तो है। वैसे ही नेत्र, अलकें, भुजाएँ, वस्त्र, आभूषण।

मुझे साहस आ गया। एक बड़ा मोदक मैंने दोनों हाथमें उठाया और दौड़ी चली गयी। देवताने मेरे हाथसे हँसकर मोदक लिया और मुँहमें धर लिया। मैं लौटने लगी तो बोला—' बहिन ! प्रसाद लेती जा।'

'वह भी मेरा भैया है। मुझे बहिन कहता है।' मैंने देवताका दिया मोदक लाकर राधाको दिया। वह राधाने फोड़ा तो उसमें-से दो कुण्डल निकले। ऐसे रत्न-कुण्डलकी उनकी चमकपर नेत्र नहीं टिकते थे। सब लड़कियाँ देखती रह गयीं। राधाने उसी समय मेरे कानोंके कुण्डल निकालकर उन्हें पहिना दिया।

'तू भी चल !' मैंने राधाका हाथ पकड़ा।

'नहीं अजया, देख अब देवताको सब प्रणाम कर रहे हैं।' सब गोप, गोपबालक, कन्हैया भी पृथ्वीपर लेटकर दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे। देवताने आशीर्वाद दिया— 'मैं तुम लोगोकी रक्षा करूंगा।'

देवता अदृश्य हो गया तब कन्हैयाने सबसे कहा— 'ये गिरिराज अपना अपमान करनेवालेको सिंह, रीछ बनकर मार देते हैं। उसके पशुओंको खा लेते हैं। जो इनका सम्मान करता है, उसकी रक्षा करते हैं। उसके सब मनोरथ पूरे करते हैं।'

'राधा मेरी भाभी बनेगी कन्हैया भैयाको वर बनाकर तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगी देवता।' मैंने हाथ जोड़कर अपने मनमें उसी समय मनौती की।

'तू क्या माँगती है अजया ?' ललिताने छेड़ा— 'तुझे कुण्डल तो मिल गये। अब ब्याह करेगी उस देवतासे ?'

'उस पहाड़ जैसे देवतासे तू ब्याह कर लेना। मेरा तो भैया बन गया है। फिर प्रगट होगा तो कह दूंगी।' मैंने कह दिया— 'मैं तो भैया कन्हैयाका ब्याह माँगती हूँ राधा ! राधा ! तू मेरी भाभी बनेगी ?'

राधाका मुख ऐसा लाल हुआ कि जैसे जपाका फूल। इतनेपर भी सिर हिलाकर उसने 'हाँ' कर दिया। मैं तो तभी भैयाके पास, व्रजराज बाबाके पास, व्रजेश्वरी मैयाके पास दौड़ जाती, मेरी बात तो कोई टालता नहीं, लेकिन तभी हम सबको पुकारा गया भोजन करनेको। बालकोंको एक ओर और हम बालिकाओंको एक ओर बैठाकर खिला दिया सबने।

हमारे खाते ही गोपोंकी और गोपियोंकी पंगत बैठी। भैया कन्हैयाने कहा था— 'हम सब सखा गोपोंको परसेंगे और लड़कियाँ गोपियोंको खिलावेंगी।'

मुझे इस परसनेमें इतना आनन्द आया कि क्या कहूँ। जो 'ना' करती, मैं उसीकी पत्तलपर मोदक या पुए डाल आती। कीर्त्तिमय्या, व्रजेश्वरी मैया—सबको परसकर खिलानेका समय क्या फिर आना था।

भोजन समाप्त हुआ और झटपट सब छकड़ेमें बैठ गयीं। हम सब बालिकाएँ साथ-साथके छकड़ोंमें बैठीं। राधाने मुझे अपने साथ बैठाया। बालक भी सब छकड़ोंमें बैठे। गोप पैदल चले परिक्रमा करने। गोपियाँ गाने लगीं तो मैंने भी कहा— 'राधा! हम सब भी गायें।' राधा ही मेरा नाम लेती है। बरसानेकी सब लड़कियाँ अब मुझे ननदरानी कहने लगीं। मैं भी सबको भाभी कहूँगी। मेरा भैया इन सबसे ब्याह कर लेगा।

मुझे अपने भैयाके गुणगानके कई गीत राधाने गाकर सिखा दिये परिक्रमामें। सात कोसकी परिक्रमा तो ऐसे पूरी हो गयी जैसे सात पग चले हों। परिक्रमा पूरी करते-करते आकाशमें मेघ उठने लगे थे। इसलिए छकड़े हाँक दिये गये। हम सब घर आ गये अपने-अपने। इतना आनन्दका उत्सव तो किसीने सुना-सोचा नहीं था।



गोवर्धन धारण

मेरे भाई देवर्षि नारदने मुझे कल्पारम्भमें ही बतलाया कि 'गोलोकमें श्रीकृष्ण-वक्षसे प्रकट श्यामवर्ण शालिग्राम स्वरूप उनका क्रीड़ा-पर्वत गोवर्धन पृथ्वीपर पहुँच गया है। वह शाल्मली द्वीपमें द्रोणाचलका पुत्र बनकर प्रकट हुआ है।'

मैं सहज भावसे भगवान शशाङ्क-शेखरका सेवक हूँ। उन धूर्जटिका धाम कैलास तो पर्वत है; किंतु उनकी प्रियपुरी वाराणसीमें कोई पर्वत ही नहीं। पार्वती-वल्लभकी पुरीको मैं इस पावनतम पर्वतसे अलंकृत कर सकूँ तो अपने आराध्य पुरारिका एक प्रिय कार्य करूँगा, यह सोचकर मैं शाल्मली द्वीपमें पहुँच गया।

गोवर्धनकी छटा देखने ही योग्य थी। मन मुग्ध हो गया। मैंने माँगा द्रोणाचलसे उसे काशीमें ले जाकर स्थापित करनेके लिए। प्रिय पुत्रके वियोगसे व्यथित होना स्वाभाविक था; किंतु मुझ जैसे अतिथिकी आशा भङ्ग करके वह शापकी शङ्कासे भी व्याकुल था। अन्ततः उस पर्वतोत्तमने पुत्रको आज्ञा दे दी— 'वत्स ! भारत भगवानकी प्रिय भूमि है। ऋषि-मुनियोंकी तपोभूमि बननेका सौभाग्य मिल रहा है, अतः महर्षिके साथ पधारो !'

'यदि महर्षि मुझे मध्यमें अपने करसे न त्यागें तो मैं इनके साथ चलूंगा।' गोवर्धनने कहा।

मैंने मध्यमें हाथसे न उतारनेका वचन दिया और उस आठ योजन लम्बे, पाँच योजन चौड़े, दो योजन ऊँचे पर्वतको आदरपूर्वक दक्षिण हस्तपर उठाकर चल पड़ा। पुत्र-वियोगसे व्याकुल द्रोणाचल भी मेरे पीछे-पीछे चलते चला आया भारतकी उत्तरी सीमा हिमालय तक।

कैलासके पार्श्वमें पहुँच कर मुझे अपने वचनका विस्मरण हो गया। मैंने पर्वतको हाथसे उतारकर अलकनन्दाके उद्गममें स्नान किया और अपने आराध्य गंगाधर प्रभुके पादपद्मोंमें प्रणिपात करने पहुँच गया। लौटकर

पर्वतको उठाने लगा तो वह फिर नहीं उठा। मेरे सब प्रयत्न निष्फल हो गये तो मैंने क्रोधमें आकर शाप दे दिया— 'तू प्रतिदिन तिल प्रमाण क्षीण होता जायगा और अष्टाविंशति कलिके पूर्ण प्रभावमें आनेपर पृथ्वीपर नहीं रहेगा।'

शाप देकर मैं चला तो आया; किंतु गोवर्धनसे मेरा स्नेह समाप्त नहीं हुआ। उसपर मैं अपना स्वत्व मानता हूँ, अतः जब भी कोई उसे उठाता है, मेरी दृष्टि बलात् उधर चली ही जाती है।

त्रेतामें जब मर्यादापुरुषोत्तम पधारे पृथ्वीपर और मेरे ही पौत्र रावणका उद्धार करने पयोधि-बन्धनका निर्णय किया उन्होंने, उनके प्रधान सेवक श्रीपवनपुत्र द्रोणाचलके इस पुत्रको उठाने पहुँच गये। यह कोई सामान्य पर्वत है कि शक्ति लगाकर उठाया जा सके; किंतु हनुमानने प्रलोभन दिया— 'श्रीराघवेन्द्रका दर्शन करा दूँगा' और यह उठ गया। इसे लेकर वे व्रजमें पहुँचे तो कपियोंने रघुनाथजीकी आज्ञा सुना दी— 'जो भी पर्वत उठाये जहाँ हो, अब पर्वत वहीं रख दे। सेतुबन्ध सम्पूर्ण हो गया।'

विवश वायुनन्दन इसे व्रजमें छोड़ गये और यह भी प्रसन्न हुआ व्रजधरा प्राप्त करके। अब यह जिसका अंगोद्भव है, वे स्वयं आ गये हैं। यह तो है ही उनका। मेरा स्वत्व तो क्या; किंतु मोह था, वह भी समाप्त हो गया। मैं तो गोवर्धनके इस मोहसे भी धन्य ही हुआ। मुझे यह दिव्य दृश्य देखनेका अवसर प्राप्त हुआ।

गोपोंने इन्द्रकी अवज्ञाकी—अवज्ञा तो थी; क्योंकि इन्द्रध्वज व्रजराजने आरोपित किया, उपलिप्त किया, आवाहन किया इन्द्रका और प्राथमिक पूजन तक कर दिया; किंतु फिर किसीने बेचारे सुरराजको पूछा तक नहीं। उसका सादर विसर्जन भी नहीं किया गया।

कर्मेन्द्रिय हाथ और उसका अधिदेवता इन्द्र। अब देवराज तो तुम उनके लिए हो जो कर्माश्रित हैं, करते हैं और भोगते हैं। जो सर्वेश्वरके स्वजन हैं, उनसे भी सम्मान पानेकी लिप्सा कर्मके देवताका अन्धापन—अज्ञता ही तो है। व्रजमें बुलाये गये, थोड़ी पूजा मिली–सन्तोष कर लेते; किंतु इन्द्रको क्रोधोन्माद हो गया। वह स्वयं नहीं समझता था कि वह जो कर रहा है, उसको सर्वेश न सम्हालें तो कितना अनर्थ होगा। इन्द्र तो पूरे कर्मलोकको ही नष्ट करनेपर उतर आया था, यह उसे दीखता नहीं था।

पूरा कर्मलोक—भारत भूमि नष्ट हो जाती तो यज्ञ करते मेरे वंशज असुर? देवता और उनका यह उन्मादी नायक आहुति पाये बिना भूखे मर जाते इन्द्रके अपने कर्मसे।

क्रोधमें आकर इन्द्रने प्रलयकालीन मेघोंको उन्मुक्त बन्धन करके आज्ञा दे दी—'पूरे व्रजको बहा दो! गोपोंके समस्त पशुओंको नष्ट कर दो! मैं स्वयं ऐरावतपर आरूढ़ होकर आ रहा हूँ। एक मरणधर्मा बालक कृष्णके कहनेसे इन सबोंने मेरा अपमान किया है! मैं इन गोपोंको देख लूँगा!'

मनमें तो आया कि जाकर कह दूँ—'देवेन्द्र आप धन्य हैं। असंख्य गोवधका संकल्प आपको शोभा देता है। देखिये सावधान रहिये। यह ऐरावत आपका नहीं है। यह क्षीरोदधिसे निकला है। इसके स्वामीका संकेत मिले इसे, तो यह आपको सूँड़से उठाकर अपने पैरोंके नीचे कुचल डालेगा! वज्रपर भी भरोसा मत करना! उसमें भी उन्हींका तेज है।'

लेकिन मैंने सोचा कि श्रीकृष्णको ही इस उन्मदको समझाने दो। मैंने दर्शक रहकर दूरसे ही देखना प्रारम्भ किया।

गोप-गोपियाँ अपने बालकों तथा पशुओंके साथ घरोंमें पहुँचे ही थे कि दिनके तृतीय प्रहरान्तमें प्रलयकारी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। प्रचण्ड पवन, पल-पलपर पविपात और अनवरत ओलोंका उत्पात। पहिले ही वज्रपातमें वह आरोपित इन्द्रध्वज भस्म हो गया। केवल इतना पौरुष इन्द्र व्रजमें प्रकट कर सका। इसके अनन्तर तो एक तृण तक उस दिव्य-धराका नहीं टूटा। भगवती योगमायाने उपलवृष्टि शिलाओंपर और वज्र-पात कालिन्दी जलमें केन्द्रित कर दिया; किंतु सहस्राक्ष तो क्रोधान्ध था, इसे देख कहाँ पाता था।

प्रलय-पयोदोंकी भरिशुण्डाधार वर्षा, प्रबल प्रचण्ड पवन—बहुत शीत बढ़ गया। वैसे भी कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा थी। शरद् ऋतुके द्वितीय मासका भी अन्तिम पक्ष। गायें, गोप, गोपियाँ सब शीतसे थर-थर काँपने लगे। सबको लगा कि उनके भवन अब पलभरमें भूमिसात् होनेवाले हैं। शिशुओंको गोदमें उठाकर उनको अपने शरीरसे झुककर छिपाये सब नन्द-भवनकी ओर भागते चले आये। वही एक आश्रय था सबका।

'कमलनयन कृष्ण! भैया नीलसुन्दर! बचाओ! अब इन्द्रसे हमारी रक्षा करो। हमने इन्द्रकी पूजा नहीं की' वह हमको नष्ट कर

देनेके लिए वर्षा कर रहा है। अब तुम्हीं बचाओ नन्दनन्दन ! मैंने गोपों-की-गोपियोंकी निष्ठा देखी। किसीने भी इन्द्रको हाथ नहीं जोड़ा। किसीने क्षमा नहीं माँगी। एकके मुखसे भी नहीं निकला कि यशोदाके चपल बालकका कहा करके कुछ अनुचित किया गया। आसन्न मृत्यु सम्मुख देखकर भी सब स्थिर एक चित्त, एक ही ओर उन्मुख।

अब तक तो जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसे वनमाली मयूरमुकुटी श्रीव्रजराजकुमार अग्रज, भद्रप्रभृति अनेक सखाओंके साथ भवनमें वर्षा देख रहे थे। कोई श्वेत ओला छिटक आवे, यह देखते थे और लाल पद्मपाणि फैलाकर उसपर बूँदें ले रहे थे। देवी यशोदा इन बालकोंको द्वारके समीपसे हटनेको आग्रह कर रही थीं ; किंतु अब यह अपनोंकी आर्त पुकार श्रवणमें पड़ी तो द्वारसे बाहर दौड़े।

जलमें छपाछप दौड़ते ये अरुण चारु चरण, यह अंगोंसे भीगकर चिपका पीतपट, यह भीगा मयूरपिच्छ और यह अलकोंसे झरती बूँदें— ये तो दौड़ते जा रहे हैं। मैया व्रजेश्वरी पीछे पुकारती भीगती आ रही हैं— 'नीलमणि ! बेटा नीलमणि लौट आ !'

सब सखा, सब गोपियाँ, गोप पीछे भागे आ रहे हैं। शिशुओं तकको गोदसे भवनमें छोड़ आनेकी सुधि नहीं। सबकी पुकार ही परिवर्तित हो गयी है— 'लौटो ! भवनमें लौटो कृष्णचन्द्र !' लेकिन इस समय किसीकी सुननेका अवकाश नहीं कृष्णचन्द्रको। आज इनके पदोंका वेग कोई पा नहीं सकता। सब पीछे—पर्याप्त पीछे छूट गये हैं।

दौड़ते आये और तनिक झुककर अंगुलीका संकेत मात्र किया होगा कि गोवर्धन ऊपर उठता चला आया। पूरा पर्वत वाम हस्तकी कनिष्ठिकापर उठाकर आप मध्यमें खड़े हो गये।

गोवर्धनके उठानेपर उसके नीचे पाँच कोस लम्बी, एक कोस चौड़ी भूमिका विशाल कक्ष बन गया। पहिले गोप पहुँचे दौड़ते, तो उन्हें आज्ञा दे दी— 'इस स्थानमें वर्षासे तीनों लोकोंकी रक्षा हो सकती है, अकेले व्रजकी तो बात क्या है। सब लोग लौट जाओ और अपने गृहोंका समस्त उपकरण, सब स्वजन, पूरा गोधन लेकर आओ। सब छकड़ोंमें भर लाओ। भय मत करना, मेरे हाथसे गिरिराज गिरेंगे नहीं।'

जिनका सङ्कल्प त्रिभुवनकी रक्षा करता है, उन्होंने जब गोबर्धन उठा लिया—रक्षामें क्या सन्देह रह गया। गोपियोंको भी लौटा दिया आपने और मैयाको भी— 'शिशुओंको यहीं छोड़ो और जाकर, घरमें जो हो सब समेटो—छकड़ोंमें भरो और झटपट ले आओ। मैया ! तू मेरे वस्त्र लावेगी ?'

मैयाको तो अब बहुत कुछ लाना है। उसका नीलमणि यहाँ वर्षासे सुरक्षित है तो उसे इसके लिए बहुत कुछ लाना पड़ेगा अब यहीं। केवल सखाओंको नहीं लौटाया— 'तुम सब अपने लकुट तो लगाओ बलपूर्वक !' हँसकर कह दिया और सब सखा लकुटकी टेक लगाकर स्थान-स्थानपर खड़े हो गये।

गोपों-गोपियोंने छकड़े भरे और अपना-अपना गोधन हाँक दिया। गायें, वृषभ, बछड़े, बछड़ियाँ पूँछ उठाये दौड़ती पहिले आ गयीं। उन्होंने शरीर हिलाया और पर्वतके नीचे खड़ी हो गयीं। छकड़े भी पहुँचे, वे भी पर्वतके नीचे चले गये। इन्द्र चिल्लाया— 'इस पर्वतको बहा दो ! मैं इसे चूर्ण-चूर्ण कर दूंगा।'

फिर मेरे मनमें आया कि समीप जाकर कह दूँ— 'वत्स शतक्रतु ! तू सहस्राक्ष है ? तनिक देख तो सही कि जब सब गोप-गोपियाँ नन्दभवन जा रहे थे, जब नन्दभवनसे व्रजराजकुमारके पीछे भागते पर्वत तक आये, जब पर्वतसे घरों तक लौटे और अन्तमें घरोंसे पूरा पशुधन लेकर छकड़े हाँकते आये हैं—इस चार बारमें खुले गगनके नीचे तू उनमें एकके अङ्गपर एक भी उपल-कण पहुँचा सका है ? तेरे वज्रपातसे किसी यहाँके श्वानका भी अनिष्ट हुआ है ? अब भी वृन्दावनमें तो पशु-पक्षी, कपि हैं उनका तू कोई रोम तोड़ सका है या किसी तरु-लताके पत्र ही गिरा पाया है ? अब तू वर्षा, उपलवृष्टि, वज्रपात पर्वतपर केन्द्रित करके क्या आशा करता है ?'

मुझे आशङ्का हुई—यह प्रलयवृष्टि पृथ्वीपर अनर्थ फैलावेगी ; किंतु नीचे पर्वत-शिखरपर देखकर तो स्वयं अपना शरीर ही विस्मृत हो गया। वहाँ श्रीहरिका सहस्रार सुदर्शन चक्र सम्पूर्ण तेजके साथ प्रज्वलित था। पर्वत सूखा पड़ा था। जलधाराएँ पड़तीं भी तो इस चक्रकी असह्य अग्निमें वाष्प बन जातीं ; किंतु चक्रकी नाभिपर दोनों पद स्थिर धरे खड़े थे मेरे परमाराध्य भगवान पुरारि अपना जटाजाल फैलाये और वर्षाका सम्पूर्ण जल अबतक उन प्रलयङ्करकी जटाओंका कोई अंश आर्द्र नहीं कर सका

था। अब यदि इन्द्र अन्धा हो गया है तो जो कर सकता हो, कर ले। इसके मेघोंमें पानी ही कितना है जो मेरे विश्वरूप प्रभुके मस्तकसे टपक पावेगा।

अब उत्कठा हुई अदृश्य रहकर पर्वतके नीचे झाँक लेनेकी। वहाँका दृश्य अद्भुत था। छकड़े जैसे भरे आये थे, वैसे लदे खड़े थे पंक्तिबद्ध। सब पशु परस्पर सटे चारों ओर बाहरकी ओर पीठ किये स्थिर देख रहे थे श्रीनन्दनन्दनकी ओर। गोप, गोपियाँ, बालिकाएँ सब एकटक देख रही थीं।

कर्मके देवता इन्द्रका भी उद्भव-स्थान श्रीकृष्णका कर। उसपर गोवर्धन उठाये खड़े हैं। कर्मके—करके भी अधिदेवताके ऊपर तो इन्होंने अपने वक्षसे उत्पन्न भाव-गिरि गोवर्धनको स्थापित कर दिया। केवल वाम करकी कनिष्ठिकापर स्थित है गोवर्धन। ललित त्रिभङ्गि खड़े हैं व्रजराज-कुमार।

चरणोंमें नूपुर, कटिमें पीत कछनी, नाभिका गम्भीर ह्रद, वक्षपर लहराती वनमाला, मुक्तामालाके मध्य झाँकता श्रीवत्स, कम्बुकण्ठमें कौस्तुभ, विशाल स्कन्धोंपर पड़ा पीतपट, स्मित-शोभित अरुण अधर, उन्नत नासिका, अनन्त कृपापूरित किञ्चित् अरुणाभ विशाल लोचन, वंकभृकुटि, तिलकाङ्कित भाल, अलक-जाल पुष्पमाल-मण्डित मयूरपिच्छ-भूषित और ये भवभयहारी रत्नाङ्गद-मण्डित विशाल भुजदण्ड—मैं देखता रह गया इस छटाको।

'कनूँ! तू थक गया होगा। यह पर्वत भद्र या श्रीदामको दे दे।' तोकने दक्षिण कर पकड़कर हिलाया— 'दूसरेको नहीं तो दाऊ दादाको दे दे।'

बालक ठीक बात कहता है। जिनके एक फणपर पृथ्वी प्रलय पर्यन्त टिकी रहती है, उनको इस नन्हे पर्वतको उठाना भारी नहीं पड़ सकता। वे तो समीप ही खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं कि अनुजका संकेत हो और सम्हाल लें।

'तुझे ही उठाये रहनेकी हठ है तो उठाये रह!' भद्रने आकर कहा— 'लेकिन पर्वत अब दाहिने हाथपर ले ले तो हम तेरे वाम बाहुको तनिक दबा दें।'

'तू मेरी मुरली दे पहिले मुझे!' व्रजराजकुमारकी माँग उचित है। यहाँ सबको पता नहीं कबतक ऐसे ही रहना है। क्षुधा-पिपासा-निद्रादि सबको विस्मृत करा देनेकी शक्ति तो इनकी वंशी-ध्वनिमें ही है।

वंशी बजने लगी और उसके अमृतनादमें मैं स्वयं सब विस्मृत हो गया। उस सुधा-संगीतने जब विराम किया मैं ऊपर आ सका देखने कि इन्द्रका क्या हुआ। मुझे भी कालका पता पानेके लिए मनःसंयम करके सर्वज्ञताका सहारा लेना पड़ा। सात दिन, सात रात्रियाँ व्यतीत हो गयी थीं और सात पल भी प्रतीत नहीं हुए।

प्रलयमेघ श्वेत वारि-विहीन शक्रके सम्मुख सिमट आये थे और सिसक रहे थे— 'देव ! एक सीकर जल नहीं हमारे समीप। कोई सम्भावना नहीं कि वह वाष्प बनकर पुनः प्राप्त होगा। पुरारिकी जटाएँ सब पी गयीं।'

'पुरारिकी जटाएँ ?' अब इन्द्र चौंका। उसने नीचे देखा और भय-पीत हो उठा— 'मुझसे परम पुरुषका अपराध हो गया ? भवानीनाथ उन पुरुषोत्तमके अतिरिक्त अन्यके कारण तो नहीं आते। वह श्रीहरिका महाचक्र ? '

इन्द्रके पद कम्पित होने लगे। केवल मेरे स्वामीके चरण आश्रय थे, वे चरण ही चक्रको दबाये थे। इन्द्रने उन चरणोंमें मस्तक झुकाया। मेघोंको लौटनेकी आज्ञा दी और ऐरावत अमरावतीकी ओर लौटाते हुए वायुको भी शिथिल हो जानेका उसने संकेत कर दिया।

मैं देख रहा था कि इन्द्र अपने वाम करसे अपनी दक्षिण भुजा दबाता लौट रहा था। बार-बार अनवरत सम्पूर्ण शक्तिसे सप्त अहर्निशि वज्राघात करते-करते अमृतपीत सुरपतिका भुजदण्ड भी श्रान्त, व्यथित हो चुका था। अब मैं प्रगट होकर भी क्या करता। शक्र अब दयनीय हो गया था, व्यङ्ग-पात्र नहीं रहा था और तथ्यका सन्धान इसने मेरे त्रिलोचन स्वामी तथा श्रीहरिके चक्रको देखकर पा ही लिया। मैं फिर पर्वतके नीचे अदृश्य रहता पहुँचा।

'भद्र ! भैया बाहर जाकर देख तो कि वर्षा बन्द हुई या नहीं ?' श्रीकृष्णचन्द्रने सस्मित कहा।

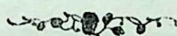
'उज्वल धूप निकली है !' भद्रसे पहिले एक गोप दौड़ गया जो पीछे खड़ा था और लौटते चिल्लाया— 'भूमिपर कहीं जल नहीं है। यमुनाजीमें भी बाढ़ नहीं दीखती।'

'अब सब लोग पर्वतके नीचेसे निकलो और अपने-अपने घरोंको चलो !' श्रीनन्दनन्दनने सखाओंकी ओर देखा— 'अपनी गायें भूखी हैं। हम इन्हें चरावेंगे।'

'तुम सब घर चलकर पहिले कलेऊ कर लो !' मैयाने आग्रह किया।

'तू चल ! मुझे भूख लगी है !' श्यामसुन्दरने अद्भुत मुख बनाया— 'बिना कलेऊ किये चला जायगा मुझसे ? हम सब आ रहे हैं।'

गोपोंने छकड़े जोड़े। पशु स्वयं बाहर भाग आये। गोपियाँ शिशुओंको उठाये बालिकाओंके साथ छकड़ोंपर बैठ गयीं। सबसे अन्तमें ग्वाल-बाल निकले। उन्हें गायोंको इधर-उधर भागनेसे सम्हालना था। श्रीसंकर्षण अन्तमें सस्मित मुख निकल आये, तब निकले श्रीकृष्णचन्द्र और एक ओर होकर तनिक झुककर पर्वतको पूर्वस्थानपर स्थापित कर दिया। स्वयं गोवर्धन उतर गया करसे, यह कहना चाहिये।



गोविन्दाभिषेक

मैं देवराज—कितना उपहासास्पद है मेरा यह देवराजत्व । इन्द्रियों-के देवता हैं और सब जानते हैं कि इन्द्रियोंका शास्ता मन है ; किंतु मन तथा इन्द्रियोंको जो भी भोग प्राप्त होते हैं, वह कर्मफलसे प्राप्त होते हैं, अतः कर्मेन्द्रिय करका अधिदेवता इन्द्र प्रधान मान लिया गया । स्वर्गमें भी सबको कर्मका ही फल भोगना है, अतः यहाँ अमरावतीका अधिपति भी यही करका अधिदेव इन्द्र ।

यह औपचारिकता भी आज प्रायः समाप्त हो गयी । पुरुषोत्तमने अपने करपर पर्वत प्रतिष्ठित करके प्रत्यक्ष कर दिया कि क्रिया शक्तिके भी वास्तविक अधिपति वे ही हैं । श्रुति उन्हींका इन्द्र नामसे स्तवन करती है । मैं मोहवश ही उसे अपनी स्तुति मानता रहा ।

इन्द्रका लोकपाल पद क्या, जब मेरे प्रलय-पयोदोंके पास भी पानी-की बूंद तक नहीं और न उसे पानेकी कोई प्रत्याशा है । वर्षासे पृथ्वी बीजोंको अंकुरित करती है, अन्न होता है तब अन्नसे यज्ञ सम्पन्न होता है । जो जल-वृष्टि कर सकेगा, यज्ञका स्वाहाकार उसका स्वत्व होगा । अब उसमें इन्द्रका क्या रहा ? और जब इन्द्र यज्ञाहुतिसे ही वञ्चित हो गया, सुर इसे अपना अधिपति स्वीकार करेंगे ?

पृथ्वीके प्राणियोंकी चिंता मुझ विलासीने कभी की है कि आज मैं उससे व्यग्र बनूंगा । पृथ्वीपर तो स्वयं अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डोंके प्रतिपालक पुरुषोत्तम विद्यमान हैं । उनके अंशावतार ऋषभदेवजीके समय भी मैंने रूठकर वृष्टि बन्द कर दी थी तो क्या बिगड़ा था वहाँ ? मेरी कल्पना थी कि प्राणी अकालसे मरने लगेंगे तो मेरी स्तुति करेंगे ; किंतु भगवान् ऋषभदेवने अपने योग-बलसे वृष्टि कर ली । मुझे अपनी कन्या जयन्ती देकर उन्हें जामाता बनाना पड़ा । अपनी अज्ञताके कारण मैं एक बार और भी तो अकाल उत्पन्न कर चुका हूँ । भगवती आद्याने अँगूठा दिखा दिया—'पृथ्वीको वर्षाकी कोई आवश्यकता नहीं !' वे शाकम्भरी बन गयीं और

अन्न, फल शाक ही सीधे उनके शरीरसे पूरी पृथ्वीपर बरसने लगे। उनके पादपद्मोंको पकड़कर मैं किसी प्रकार अपने पदकी प्रतिष्ठा बचा सका। वे अखिलात्मिका आद्या श्रीकृष्णचन्द्रकी अनुजा हैं इसबार। पुरुषोत्तम प्रभु स्वयं समर्थ हैं और केवल संकेत कर दें तो पानी कहीं गया तो है नहीं, भगवान धूर्जटिके जटाओंमें ही तो है। संकेत पाते ही वे पिनाकपाणि जटा झाड़ेंगे और पृथ्वी पानीसे परिसिक्त हो जायगी। पुरुषोत्तम हैं पृथ्वीपर तो वहाँ सब प्राणी पूर्ण निश्चिन्त-निर्भय हैं। मुझ इन्द्रकी वहाँ किसीको क्यों पड़े ?

मुझे अपनी पड़ी है। मैं अमरावती जाऊँ तो मेरा सुर सम्मान करेंगे अथवा उपहास ? में जलहीन होकर अब किस बातका लोकपाल हूँ कि लोकपालोंके साथ बैठ सकूँ। वरुण वैसे भी मुझसे सदा स्पर्धा रखते रहे हैं। वे असुरोंके स्वीकृत सम्राट् हैं और अब भी उनका ऐश्वर्य अक्षुण्ण है। उनके सागरोंमें अनन्त नीर है। कुबेरको भगवान महेश्वर भाई मानते हैं। अब वे वैश्रवण मुझे क्यों मानें ? श्रीकृष्णको सगी अनुजा विवाहनेके लिए उत्कण्ठित यम अपना काल-दण्ड उठाये इन्द्रको अपने नरकोंमें फेंकने जब तक नहीं आ जाते, तभी तक मैं यहाँ भी अवस्थित हूँ। वायु दिति-पुत्र हैं। माताने जिनकी उपासनाके बलपर उन्हें देवता बना पाया, उन श्रीहरिके वे होंगे या इन्द्रका साथ देंगे ? अग्निदेव मुझसे अप्रसन्न हैं ही। उन्हें अजीर्ण हुआ है, खाण्डवन भस्म कर पावें तब स्वस्थ हों। उनके इस उद्योगमें मैं बाधक बनता रहा हूँ। मुझे पदच्युत देखकर वे प्रसन्न होंगे। कोई तो अब मुझे अपना साथ देनेवाला दीखता नहीं है।

अमरावती अब मैं नहीं जाऊँगा—जा नहीं सकता। सृष्टिकर्त्ता समर्थ हैं अथवा श्रीकृष्णचन्द्र अपने अनुकूल चाहे जिसे इन्द्र बना लेंगे। मैं अयोग्य सिद्ध हुआ; किंतु मैं पुरन्दर अब कहाँ जाऊँ ? कहाँ स्थान पाऊँ ? मुझे तो पद टिकानेको भी कहीं ठौर प्रतीत नहीं होता। पुरुषोत्तमके अपराधीको कोई भी कैसे अपने आसपास भी बैठने देगा ?

मैं अमरावतीके द्वार-देशपर ही ऐरावतपर बैठा चिन्तामग्न था। सहसा चौंक गया घण्टेकी ध्वनिसे आते प्रणवका सुमधुर स्वर सुनकर। दृष्टि उठाकर देखता हूँ कि शत-सहस्र ज्योत्स्ना-धवल प्रकाश-राशिके मध्य कोई उज्वल गोकी आकृति उतर रही है। भयके कारण मेरा रोम-रोम काँपने लगा। मुझे लगा कि भगवान् भूतनाथका महावृषभ है और

उसीके कण्ठमें बँधे घण्टेका यह स्वर है। वे वृषभध्वज प्रलयङ्कर शूलपाणि त्रिलोचन अब मेरा वध करने आ रहे हैं। ऐरावतसे कूदकर भागने ही वाला था। जानता हूँ, कहीं भागकर परित्राण नहीं पुरारिके करसे प्रक्षिप्त त्रिशूलसे ; किंतु प्राण-भयसे भागनेके अतिरिक्त उपाय ? पाहि ! पुकार-कर परित्राण तो पानेसे रहा। पुरुषोत्तम-द्वेषीको आशुतोष भी क्षमा नहीं करेंगे।

'शक्र ! स्थित रह वत्स !' हाय, मेरे सहस्र नेत्र कहीं श्रवण होते ! मैं एक साथ इस अकल्पनीय सुधास्रावी स्वरका आस्वादन कर पाता ! मैंने आश्वासन पाया, प्राण पाया, अभय पाया—क्या नहीं पाया इस एक ही स्वरमें। देखता हूँ कि देवदेवेश्वरी महासुरभि स्वयं गोलोकसे उतरती समीप आ गयी हैं। मैं जबसे श्रीकृष्णचन्द्रके विपरीत हुआ, सहस्र नेत्र रखकर भी अन्ध हो गया हूँ। मैंने कृपाकी इन साकार देवीको महाकालका महावृषभ मान लिया था।

वहीं ऐरावतसे अम्बरमें ही कूदकर मैंने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। मेरा अङ्ग-अङ्ग काँप रहा था। अपने अपराधकी ग्लानिसे रुद्धकण्ठ मैं बोलनेमें असमर्थ था।

'मेरे साथ चल !' उन भगवतीने स्नेहपूर्वक जैसे शिशुको कहती हों, आदेश दिया—'सृष्टिकर्त्ताने अभी तेरे लिए एक सन्देश दिया है कि मेरे साथ वृन्दावन पहुँचकर हमारे गोपालका गायोंके इन्द्रपदपर अभिषेक कर आ। इन्द्रपदपर अभिषेक इन्द्रके करोंसे ही उत्तम होता है।'

मैं केवल कम्पित-गात्र देखता रहा। मेरी समझमें कुछ नहीं आ रहा था। सच बात यह कि समझनेकी शक्ति मुझमें-से बहुत पहिले समाप्त हो गयी थी।

'मेरी सन्तान बहुत निरीह हैं। मैंने देखा कि तू उन वाणी-विहीन सर्वपालिका गायोंके संहारपर ही उतर आया है तो तुझपर उनकी रक्षाका दायित्व नहीं छोड़ा जा सकता।' सुरभिके स्वरमें स्नेहपूर्ण उपालम्भ था—'मैं अपने गोपालके अतिरिक्त और किसीसे क्या कहती। उसीसे कुछ कहने गोलोकसे चली थी। ब्रह्मलोकमें ब्रह्माने मेरी पूजाकी और प्रार्थना की कि तुझे साथ ले जाकर श्रीकृष्णचन्द्रका गोपों-गायोंके इन्द्रपदपर अभिषेक करा दूँ। गायोंका नित्य दायित्व केवल गोपालपर रहे।'

'मैंने कितना बड़ा अपराध किया है।' अब मेरे मनको वाणी मिली— 'किस साहससे उनके सम्मुख उपस्थित हो सकूँगा ?'

'तू श्रीकृष्णसे भी भय करता है ? छिः !' सुरभिने मुझे झिड़क दिया— 'कृपार्णव कृष्ण प्यार करनेके लिए हैं या भय करनेके लिए ? जिसे किसीका कोई अवगुण-अपराध कभी देखना आता ही नहीं , तू उसके सम्मुख पहुँचनेमें भी कातर होता है ? ऐरावतपर बैठ ? मैं साथ चल रही हूँ।'

आदेशके उल्लंघनकी अशिष्टता अशक्य थी। मैं किसी प्रकार ऐरावतपर बैठकर चल पड़ा। मेरा ऐरावत इतना अल्पकाय लगा, जैसे भगवती सुरभिका सद्यःजात शिशु हो। इससे मैं ऐरावत-सहित उन तेजोमयीके पीछे सरलतापूर्वक छिपता आ सका।

'वह बैठा है मेरा गोपाल !' सहसा सुरभिदेवीने मेरी ओर मुड़कर कहा— 'अब तू उसके समीप चला जा और क्षमा माँग ले। मैं तबतक अपनी सन्तानोंसे मिल लेती हूँ। यह ऐरावत इतनेमें अपनी आठों सूँड़ोंमें अमरावतीसे स्वर्णघट लेकर आकाश-गङ्गाका जल भर लावेगा !'

श्रीसंकर्षणके साथ सब गोप-बालक कुछ दूर थे। एकाकी श्रीकृष्णचंद्र सम्भवतः मुझे समय देने चले आये थे और एक शिलापर विराजमान थे। इन व्रजेन्द्र-नन्दनका सस्मित श्रीमुख देखते ही मेरा सम्पूर्ण भय समाप्त हो गया। मैं ऐरावतसे सीधे पृथ्वीपर इनके सम्मुख दण्डकी भाँति गिरा।

मैंने समीप जाकर अपने किरीटसे इन परम-पुरुषके पादपद्मोंका स्पर्श किया, साश्रुकण्ठ स्तुति की, क्षमा माँगी, सुनते रहे सर्वेश्वर जैसे शिशुकी वाणी पिता सुनता हो। अन्तमें बोले— 'पुरन्दर ! तुम तो बहुत अच्छे हो। मेरे सब व्रजके लोगोंको तुमने इतने समय मेरे समीप एकत्र रखा !'

यह कृपा ! यह अपराधको भी आराधना माननेवाला शील और मैं अधम इनसे भय कर रहा था। मैं कुछ कहता, इससे पूर्व देवी सुरभि आ गयीं। सहसा उठकर गोपालने उन्हें प्रणिपात किया। अब मैंने देखा कि शिलातलपर पहिलेसे पूजन-सामग्री रखे बैठे थे। नारिकेल-पात्र उठाकर अर्घ्य दिया। पदोंपर, शृङ्गपर जल डाला और पुष्पाञ्जलि देकर पुनः प्रणिपात किया।

'अब शिलातलपर बैठकर गायोंके इन्द्रपदपर अपना अभिषेक करा लो !' सुरभिने मेरी ओर सस्नेह देखा—'इस इन्द्रपर मैं अपनी सन्तानोंका दायित्व नहीं छोड़ूँगी। ब्रह्माजीने भी यही हम दोनोंको कहा है।'

'आपकी आज्ञा ही पर्याप्त है !' श्रीकृष्णचन्द्रने अञ्जलि बाँधकर, सिर झुकाया। पटुका, वनमाला, मयूरपिच्छ उतारकर पृथक धर दिये और शिलातलपर विराजमान हो गये। देवी सुरभि आकाशमें ठीक उनके ऊपर इस प्रकार हो गयीं कि उनके चारों स्तनोंसे झरती दुग्धधारा श्रीकृष्णचन्द्र-को सिञ्चित करने लगी। ऐरावतने मुझे अवसर नहीं दिया, यह उत्तम ही हुआ। वह आठों सूँडोंसे आकाशगंगाका जल स्वर्णघटोंमें लाया था। उससे स्नान कराने लगा। मैंने इस सुयोगका लाभ उठाकर वह स्नानोदक अञ्जलि भरकर पी लिया। सुधामें ऐसा स्वाद कहाँ ; किंतु हँसकर पुरुषोत्तमने रोक दिया—'बस !'

स्नान समाप्त करके, वस्त्र परिवर्त्तन करके बैठे तो अभिषेकके अनन्तर मैंने कहा—'अब आप गायोंके इन्द्र गोविन्द हो गये। अब श्रावण-भाद्र केवल दो मास ही मनुष्य मेरे लिये निश्चित मानेंगे ! इनकी समाप्ति-पर इन्द्रकाल समाप्त समझा जायगा। भाद्र पूर्णिमाको ही इन्द्रध्वज आरोपित होगा। यति अपना चातुर्मास्य व्रत समाप्त कर दिया करेंगे इसी समय। आश्विन और कार्त्तिक आपकी पूजाके मास रहेंगे। मार्गशीर्ष पहिलेसे आपका मास है। आश्विनमें सरिता-सरोवरोंका जल स्वच्छ हो जाया करेगा। कमल खिला करेंगे !'

'अभी आपको और भी कुछ कहना है !' व्रजराजकुमारने मेरा सङ्कोच देखकर कहा।

'एक प्रार्थना ! कुन्तीदेवीके उदरसे उत्पन्न मेरा एक पुत्र है। उसका नाम है अर्जुन। आप उसे भी अपना सखा स्वीकार कर लें। वह आपकी आज्ञामें रहेगा।' मैंने बद्धाञ्जलि विनम्र होकर विनयकी—'पुत्र पिताका प्रतिनिधि होता है। मैं समझूँगा कि आपने मेरी सेवा स्वीकार कर ली है।'

'तथास्तु !' पूरी गम्भीरतासे कहकर प्रभु हँसे—'अर्जुन तो मेरा नित्य सखा है। मैं उसकी रक्षा करूँगा।'

भगवती सुरभिने ही संकेत किया कि मैं अब वहाँसे हट जाऊँ। मैं अदृश्य बन गया। गोविन्दाभिषेककी यह पावन तिथि कार्त्तिक शुक्ल अष्टमी-गोपाष्टमी धन्य है। मेरा हृदय अभी इसी भावमें अभिभूत था कि गोपकुमार हँसते-दौड़ते आये। पीत कछनी, नीलाम्बर-उत्तरीय-कुमारने आते ही कहा— 'गोविन्द ! तूने यहाँ स्नान किया है ?'

अपने सम्बोधनसे स्वयं वह इतना प्रसन्न हुआ कि ताली बजाकर नृत्य करने लगा। उसके साथ सब बालक ताली बजाने, नृत्य करने लगे—

'गोविन्द गोविन्द गोविन्द गोपाल।
गोविन्द गोविन्द गोविन्द नँदलाल॥
गोविन्द गोविन्द गोविन्द भाई।
गोविन्द गोविन्द केशव कन्हाई॥

मुझे आश्चर्य हुआ, इस गोपबालकको मेरे द्वारा अभी अर्पित यह नाम कैसे किसने बतलाया होगा ? मैंने तनिक प्रतीक्षा की और उनके परस्पर सम्बोधनसे जान लिया कि वह भद्र है। मैंने उसे अकेले पाकर पूछा— 'भद्र ! तुम्हारे सखाका गोविन्द नाम किसने रखा है ?'

'मैंने !' भद्रने बिना संकोच कहा—'अभी-अभी तो रखा है। यह नाम अच्छा नहीं है क्या ?'

'नाम तो अच्छा है।' मैंने कहा— 'इसका अर्थ होता है गायोंका इन्द्र।'

'तब तो सचमुच अच्छा नाम है।' भद्र प्रसन्न हुआ— 'वह कोई आकाशका देवता इन्द्र है—खम्भेमें बैठनेवाला। वह अच्छा नहीं है। उसे तो यह भी पता नहीं कि कब कहाँ कितना पानी बरसाना, गायोंका, हम गोपोंका भी इन्द्र यह हमारा कनूँ ही रहेगा।'

'लेकिन क्या वह इस नामसे बोलेगा ?' मैंने हँसकर पूछा।

'तुम कौन हो ? कहाँके हो ? लगते तो तुम कोई देवता हो। कैसे देवता हो ? इतना भी नहीं जानते।' अब भद्रने मुझे नीचेसे ऊपर तक भली प्रकार देखा— 'हमारे कनूँको पता कहाँ है कि उसका क्या नाम है। हम उसे कनूँ, कन्हाई, श्याम, नीलसुन्दर, मुकुन्द, केशव, माधव, मोहन, कृष्ण—कितने ही नामोंसे पुकारते हैं। अब मैंने गोविन्द नाम रख

दिया। तुम्हारे मनमें आये तो उसे गोली, गोलाल, योगिली, गुग्गुली कुछ कहो, वह किसी भी नामसे बोलेगा।'

'मैं उसे भद्र कहूँ तो?' मैंने हँसकर पूछा।

'इस पर तो मुझसे उसकी बात हुई है।' भद्रने कहा— 'वह कहता है कि कोई उसकी ओर मुख करके कोई नाम लेता है तो उसीको बुलाता है। उसे भद्र कहकर भूलसे तोकने पुकारा और वह बोल पड़ा तो मैंने पूछा कि तेरा 'भद्र नाम कहाँ है।' कहने लगा कि क्या भद्र नामका कोई तेरा ठेका है। बहुतसे ऋषि-मुनि मुझे भद्र कहते हैं।'

'एक बात है' भद्रने स्वयं कहा— 'एक दिन कोई एक कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! पुकार रहा था। मैंने कहा कि कनूँ! तू बोलता क्यों नहीं? वह तुझे पुकार रहा है कबसे। कहने लगा— 'संसारमें जाने कितने कृष्ण होगे। मेरी ओर पीठ करके क्यों पुकारता यदि मुझे पुकारना होता।' हमारे कनूँकी ओर मुख करके किसी नामसे पुकारो तो वह झट बोलेगा। मैया उसे नीलमणि कहती है। कभी क्रोधमें वानर बन्धु, उत्पाती भी कहती है। मेरे पिता नटखट कहते हैं। गोपियोंमें कई नागर कहती हैं। वह सब नामोंसे 'हाँ' करता है।'

मैंने भद्रको गुरु माना और हाथ जोड़े तो वह गोपकुमार हँसता ताली बजाता भाग गया।



शङ्का-सगाई

मेरे एक ही तो सन्तान थी और उसे भी सब वन्ध्या कहने लगी थीं। नीलमणि आया उसकी गोदमें तो ये सब गोप उसके पीछे पड़ गये हैं। उस नन्हे सुकुमारने इतना भारी पर्वत उठाकर इनकी वर्षासे रक्षा की और उसीको लेकर गोपोने आज गोपाष्टमीको ही पञ्चायत जोड़ ली है। वह चपल चला गया गौचारण करने वनमें, नहीं तो मैं उसे लेकर अपने यहाँ चली जाती। मेरी पुत्रीका पतिके सामने मुख नहीं खुलता और जामाताको क्या कहूँ। वह भी सबके सामने हाथ जोड़े रहता है। दूसरा कोई व्रजपति होता तो गोपोंको पता लगता कि व्रजेश्वरके ही विरुद्ध पंचायत कैसे की जाती है। यह तो ऐसा है कि किसी सेवकपर भी सक्रोध नहीं हो पाता।

स्वामी भी बैठे हैं, नहीं खरी-खरी तो मैं सुना देती सबको; किंतु देखूँ ये बूढ़े गोप करते क्या हैं। इन्होंने कोई अटपटी बात की तो स्वामीके पैर पकड़ूँगी— 'तुमको क्या करना है जातिको लेकर। अब अपनी पुत्री-जामाताको लो, नातीको उठाओ और इन लोगोंका व्रज इनका रहने दो। हमारे भी तो अब यह नीलमणि ही रहा है। नीलमणिको, नन्दको छोड़कर गोप रहते हैं तो रहें, फूलें-फलें। हमको इनकी जाति, गोष्ठ कुछ नहीं चाहिए। नारायण मेरे नीलमणिको सकुशल रखें, मैं उसके लिये राज-कन्या लाऊँगी। गोपकन्यायें वह चाहेगा तो यही गोप उसके पैर पकड़ेंगे।'

'नन्द! हम सबको तुम्हारे पुत्रके सम्बन्धमें सन्देह है!' बूढ़े पञ्चने कहा— 'तुम गोरे हो, यशोदा गोरी है और वह श्याम है?'

'श्याम तो मेरा तोक भी है।' नन्दन उठ खड़ा हुआ रोषसे लाल नेत्र किये बड़े भाईका साथ देने— 'कोई नियम है कि माता-पिता दोनों गोरे हों तो पुत्र श्याम न हो? मैं गिनाऊँ उन सब गोपोंका नाम जो स्वयं श्याम हैं और उनके माता-पिता गोरे थे?'

मैं मुखमें अञ्चल लेकर हँसी रोकने लगी। बूढ़े पञ्चको नन्दनने धोल भली लगायी। तेरे माता-पिता मर गये तो क्या हुआ, सब जानते हैं कि वे गोरे थे और तू अपना काला मुख दर्पणमें देख।

'नन्दन ठीक कहते हैं, यह नियम नहीं है। मैं स्वयं गोरे माता-पिताका श्याम पुत्र हूँ।' पञ्चने गम्भीर रहकर कहा— 'मैं तो सबकी ओरसे बोल रहा हूँ। सबने मुझे जो-जो कहा, जो शङ्काएँ कीं, वही सुना रहा था। पहिली शङ्का निर्मूल है।'

'दूसरी शङ्का ?' बड़े भाईके नेत्र तरेरनेपर भी नन्दन बैठा नहीं। भाई हो तो ऐसा। मैं तो मन-ही-मन उसको आशीर्वाद देने लगी।

'यह कृष्णचन्द्र सात दिनका भी नहीं था और इसने पूतना मार दी। तीन महीनेका था तभी लदा छकड़ा पैर मारकर पलट दिया। तृणावर्त दैत्यका गला दबाकर मार दिया इसने और विशाल अर्जुन वृक्षोंको अपनी भुजाओंके बलसे गिरा दिया।' पञ्च गिनाता गया— 'यहाँ नन्दीश्वरपुरमें आकर वत्सासुर, बकासुर, अघासुरको इसने मारा। यमुनाके ह्रदसे भयङ्कर विषैले कालियनागको निकाल दिया। अभी सात ही वर्षका है और इतना विशाल पर्वत इसने उठाये रखा हाथपर सात दिन-रात।'

'आप कहना क्या चाहते हैं ? हमारे नीलमणिका यह अपराध है कि नारायण असुरोंसे उसकी रक्षा करते रहे और उसने हम सबको वर्षामें बह-डूबकर मर नहीं जाने दिया, बचा लिया ?' नन्दनकी वाणीका व्यङ्ग मुझे तो अमृत जैसा लगा।

'नहीं भैया !' पञ्च उठकर हाथ जोड़कर बोला— 'तुम क्रोध मत करो ! केवल तुम्हारा ही नीलमणिपर अनुराग नहीं है। हम सबकी उसपर दुस्त्यज प्रीति है। इसीलिए लगता है कि वह गोप-बालक नहीं है।'

'वह मानव नहीं है, दैत्य है ? राक्षस है ? दानव है ?' नन्दनने गर्जना की— 'क्या तात्पर्य है आप सबका ?'

'किसके मुखमें दो हाथकी जिह्वा है जो यह सब कहेगा।' पञ्चने फिर हाथ जोड़ा— 'वह जन्मसे ही राक्षस, दैत्य, दानव तो मारता आ रहा है। यह तो संसार जान चुका कि वह असुर-शत्रु है।'

'तब देवता है ?' नन्दनने इस बार हँसकर पूछा— 'देवताओंके राजा इन्द्रकी पूजा तो रोक दी उसने और ऐसी पराजय दी कि इन्द्र जीवनभर नहीं भूलेगा। भला कौन-सा देवता होगा हमारा नीलमणि ?

उसका बड़ा भाई भी है और वह राम अपने अनुजसे बलमें भी बड़ा है। अब वह भी कोई बड़ा देवता होगा ? '

'राम राजकुमार है। क्षत्रिय गृहोंमें भगवान नारायण अवतार लेते ही रहे हैं।' पञ्च गम्भीर बना रहा—'हम ठीक ग्रामीण भी नहीं, वन-वन भटकनेवाले गोप हैं। हम पशुजीवी वैश्योंमें यह कृष्णचन्द्र कैसे आ गया ? '

'आप सब मेरी प्रार्थना सुन लें ! ' अब नन्दने हाथ जोड़कर खड़े-खड़े कहा—'इस बालकको उद्देश्य करके महर्षि गर्गाचार्यने जो कहा था, आप सब भी सुन लें !'

'भगवान शङ्करके साक्षात् शिष्य गर्गाचार्यजीने कहा था ? ' पञ्च बैठ गया था। कई बूढ़ोंने एक साथ पूछा। मैं भी उत्सुक हो उठी। मेरी पुत्रीने भी इसकी कोई चर्चा मुझसे नहीं की थी। मेरे दौहित्रके सम्बन्धमें उन संसारके सबसे बड़े भविष्यज्ञ सर्वज्ञने क्या कहा होगा ? गोपोंने पूछा—'मथुरामें उनके आश्रम गये थे आप ?'

'लोकमें कहा जाता है कि बात चार कानसे बाहर जाकर फूट जाती है।' नन्दने इधर-उधर देखा।

'हम गोपोंमें लाख कानोंमें पहुँची बात भी अपने पेटमें ही रही मानी जाती है।' पञ्चने कहा—'तुम निश्चिन्त रहो, यहाँ सब अपने हैं। इस गोष्ठीसे बाहर जाकर सब इस विषयमें गूंगे रहेंगे।'

'गोकुलमें महर्षि एक दिन स्वयं मेरे गोष्ठ पधारे।' नन्दने कहा—'मैंने प्रार्थना की कि वे बालकोंका नामकरण कर दें।'

'उन जैसा ज्योतिष शास्त्रका स्रष्टा मिले तो ऐसा अवसर चूक जाना ही अज्ञता होती।' पञ्चने सिर हिला दिया।

'उन्होंने संकेत किया कि वे यदुवंशके पुरोहित हैं। उनके नामकरण करनेसे कहीं कंस इस कुमारको देवकी-पुत्र होनेकी शङ्का करने लगे तो अनर्थ हो जायगा।' नन्दने कहा—'मेरी प्रार्थनापर उन्होंने गुप्त रूपसे यह संस्कार कराना स्वीकार किया। इसीलिए नामकरण सस्कार बालकोंका प्रकट नहीं हुआ।'

सब शान्त सुननेको उत्सुक थे। नन्दने कहा—'महर्षिने कहा था कि यह गोपोंकी, गायोंकी सब विपत्तियोंसे रक्षा करेगा। इसके साथ प्रीति

करनेवालोंको शत्रु पराभूत नहीं कर सकेंगे। यह श्री, कीर्त्ति, प्रभावमें नारायणके समान होगा। मैं तबसे इसे नारायणका ही अंश मानता हूँ।'

'भगवान नारायण समर्थ हैं। वे कच्छप, वाराह तक बन जाते हैं। उनके लिये गोपकुमार बनना बड़ी बात नहीं है।' पञ्चने दोनों हाथ जोड़कर मेरे जामाताको मस्तक झुकाया— 'व्रजपति ! तुम नारायणके पिता हो। हम सब पुत्रके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे। हमारा यह अपराध क्षमा कर दो ! केवल एक बात आजकी पञ्चायतकी और पूरी हो जाय तो अपने पदोंकी हमें पूजा कर लेने दो। वृषभानु कहाँ हैं ?'

मेरा जामाता बैठ गया और वृहत्सानुपुरके स्वामी हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। पञ्चोंके आगे तो कोई बड़ा हुआ नहीं करता। उनके खड़े होते ही बूढ़ा पञ्च गरजकर बोला— 'हम सबने तुमको जाति-बहिष्कृत कर देनेका निर्णय किया है ?'

'मेरा अपराध ?' बेचारे वृषभानुके नेत्र भर आये। उनका भयभीत मुख देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ।

'तुम्हारी कन्या इतनी बड़ी हो गई, तुमने उसका विवाह क्यों नहीं किया ?' पञ्चने क्रोधपूर्वक पूछा— 'गोप-कन्याकी सगाई तब हो जाती है, जब वह गोदमें रहती है।'

'सगाई तो मैंने तभी कर दी थी।' अब वृषभानुने भी पूरे बलसे पूछा— 'मैं विश्वास कर लूं कि गोपोंके लाख लोगोंमें कही बात भी पेटमें ही रहती है ?'

'अवश्य ! हम वचन देते हैं।' पञ्चका स्वर ढीला पड़ गया— 'किससे सगाई की ?'

'राधा आपकी ही कन्या है।' वृषभानु कुछ हँसकर बोले— 'आपको सगाई करनेको कहता तो किससे करते ?'

अरे ! तो मेरे नातीकी सगाई भी हो गयी और मुझे पता नहीं। मेरी बेटीने मुझसे भी यह छिपा रखा है। मैं आज ही सगाईका नेग लाऊँगी।

'यह भी पूछनेकी बात है वृषभानुजी ?' पञ्चका कण्ठ भर आया— 'राधा जैसी लालीके लिए व्रजराजकुमारको छोड़कर दूसरा वर कोई सोच भी सकता है ?'

'महर्षि गर्गाचार्यकी आशङ्का अकारण नहीं थी। गोकुलमें और यहाँ जितने असुर कृष्णचन्द्रपर आक्रमण करने आये, वे सब किसके भेजे आये, सब जानते हैं।' अब वृषभानुने कहा—'इसलिए मुझे महर्षि शाण्डिल्यके माध्यमसे अपनी लालीकी सगाई गुप्त रूपसे करनी पड़ी।'

'अब विवाह कर दो इसका।' पञ्च शान्त बोला।

'यह मेरे या आपके वशकी बात नहीं है।' वृषभानुने उदासीसे कहा—'अपनी कन्याके विवाहका उत्साह मेरे मनमें कम नहीं है; किंतु गर्गाचार्यकी बात हममें कोई टाल नहीं सकता। आज जब सुना श्रीकृष्ण नारायण है, तब समझ गया कि क्यों महर्षि वह आदेश दे गये।'

'भैया—अब कहने लगे हो तो बात स्पष्ट ही समझाकर कहो।' पञ्चने प्रार्थना की—'यहाँ तो सब अपने ही हैं।'

'गोकुलसे नन्दनन्दनका नामकरण करके गर्गाचार्य मेरे यहाँ पधारे थे। मैंने लालीको उनके पैरोंके पास रखकर नामकरणकी प्रार्थना की। इसका राधा नाम उनका ही रखा है।' वृषभानुने बतलाया—'मैंने पूछा कि इसका विवाह किससे होगा तो महर्षिने नन्दनन्दनका नाम लिया। तभी मैंने उनसे यह विवाह करा देनेकी प्रार्थना की।'

'यह मेरी शक्तिके बाहर है!' महर्षिने मना करते कह दिया—'तुम कन्यादान भी नहीं कर पाओगे।'

कन्या मेरी कहाँ है। यह स्वयं आविर्भूत हुई, अतः मैं कन्यादान न कर सकूँ, कोई बात नहीं; किंतु विवाह तो होना चाहिए इसका। मैंने पूछा—'कौन करावेगा?'

'केवल दो करा सकते हैं' महर्षि बोले—'एक मेरे गुरु भगवान भवानीनाथ; किंतु उनकी विवाह करानेमें कोई रुचि नहीं। पौरोहित्य उनके अनुरूप नहीं। दूसरे सृष्टिकर्त्ता स्वयं। वे बहुत व्यस्त रहते हैं। जब उनको अवसर मिलेगा, अपने आप आकर गुप्त रूपसे कन्यादान भी कर देंगे और विवाहका पौरोहित्य भी।'

'सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीको विवाह कराना है तो वह गुप्त रहेगा ही।' बूढ़े पञ्चने सिर हिलाया—'उनको सारी सृष्टि अदृश्य रहकर करनेका स्वभाव पड़ा है। वृषभानुजी! हम सबको लालीके उस समय पैर पूजनेका सौभाग्य तो मिलेगा नहीं। उसे यहाँ बुला नहीं सकते। अभी हम यहाँ

व्रजराजकुमारके पदोंका पूजन करके आ रहे हैं। आज ही आपकी लालीके भी चरण पूजेंगे। आपको यह तो स्वीकार है ?'

'लाली आप सबकी, मैं अस्वीकार करनेवाला कौन।' वृषभानुने हाथ जोड़े और आज्ञा लेकर उठे।

मैंने निकलते ही पकड़ा उन्हें— 'लालीके पदोंकी पूजा हम दोनों सविधि करेंगे। वह अब मेरी है।'

'मैया, लाली आपकी और मैं आपका नहीं ?' वृषभानु भी मेरे जामाता जैसा ही भोला है। लेकिन अब मुझे अपने स्वामीको लेकर शीघ्र अपने गोष्ठ जाना है। यह नेग तो कल प्रातः भेजना ही है। श्यामसुन्दर सखाओंके साथ आ गया। वह सीधा अपने बाबाके समीप गया है। गोप उसको गोदमें बैठाये मेरे जामाताकी सचमुच पूजा करने लगे हैं। यहाँसे वे बरसाने जायँगे। मुझे भी शीघ्रता करनी है।



दिव्यदर्शन

केवल राजसूययज्ञ कर लेनेसे कोई महान नही हो जाता। कभी पहिले दैत्य-दानवोंको विजित करके मैंने राजसूययज्ञ कर लिया ; किंतु पृथ्वीपर राजाधिराज वैश्रवण ही माने जाते हैं और श्रुतिके द्वारा उनका स्तवन होता है। मैं उनसे स्पर्धा नहीं कर सकता ; क्योंकि उन कुबेरको भगवान महेश्वरने अपना परिकर ही नहीं, अनुज मान लिया है।

वरुण जलचरोंका अधिपति—सबसे बड़ा जलचर मात्र माना जाता यदि रमा सिन्धु-सुता न हो गयी होतीं। उनके सम्बन्धसे सुर सम्मान करते हैं मेरा, शशाङ्क मुझे पिता कहकर सम्बोधित करते हैं और शेष-शायी भी सस्मित सिर झुका देते हैं। मुझ वरुणको जलाधिप होनेके कारण श्रीहरिको जामाता कहनेका स्वत्व प्राप्त हो गया।

बहुत विवादास्पद है श्रीनारायणसे मेरा यह सम्बन्ध। वे क्षीरोदधिशायी हों अथवा कारणार्णवशायी ; किंतु प्राकृत समुद्र तो उनकी सन्निधि पाता नहीं और वरुण तो केवल प्राकृत उदधिका अधिष्ठाता है। कुशल यह है कि उन रमाकान्तको तथ्यान्वेषणका व्यसन नहीं है। प्राकृत सागर उनके आवासका ही प्रतिफलन है, इतना पर्याप्त है वरुणके लिये पद्मजाको पुत्री माननेको और उसके पति केवल भावग्राही हैं। उस भावके औचित्यको नहीं, उसकी गम्भीरताको ही वे देखते हैं।

मैं उनकी ही अनुकम्पा मानता हूँ कि मुझे सर्वेश्वरेश्वर श्रीनन्द-नन्दनके स्वागतका सौभाग्य प्राप्त हो गया। अन्यथा मेरे अनुचरने तो अपराध कर ही लिया था। अनुचरका अपराध मेरा नहीं है, मैं किस मुखसे कहता ; किंतु करुणार्णव कृष्णचन्द्रको क्रोध करना कहाँ आता है। वे तो केवल अपनाना जानते हैं।

व्रजवासी स्वयं हम सब लोकपालोंके सम्मान्य हैं। उनकी पदधूलि भुवनको पवित्र करती है ; पर उनके स्वभावमें, आचरणमें भागवत धर्म आश्रय नहीं पावेगा तो उसका प्रतिपालन कहाँ होगा। जगतके जीव फिर

किनसे भागवत धर्मका आदर्श ग्रहण करेंगे। प्रबोधिनी एकादशी (कार्तिक शुक्ल एकादशी) को व्रजके पशु तक व्रत करते हैं। उपासना—अर्चा एवं हरिनाम-गायनका दिवस है यह व्रजमें।

दिनभर भगवान नारायणकी अर्चा होती रही। मैं वहाँ कलशाधिपके रूपमें बना रहा, मुझे भी पूजा प्राप्त हुई। सम्पूर्ण रात्रि व्रजके समस्त नर-नारी नामकीर्त्तनमें तन्मय रहे, मैं स्वयं इसका साक्षी रहा।

द्वादशी सूर्योदयके पश्चात् अल्प थी और उसीमें व्रत-पारण आवश्यक होता है। उससे पूर्व व्रजराजको स्नान करके अपना सब आह्निक कृत्य समाप्त करना था। गो-पूजन करके गोदुग्धसे शालग्रामको स्नान कराना था स्वयं गोदोहन करके। विप्रोंका पूजन करके उन्हें दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करना था। हम सुरोंका विसर्जन करना था। इतना सब करके तब वे पारण कर सकते थे। स्वाभाविक था कि प्रभातमें शीघ्र स्नान वे करना चाहते।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीकी रात्रि, गगनमें श्वेत सघन मेघ थे। वे अन्धकार नहीं कर पाते थे; किंतु चन्द्रमण्डल उनके पीछे अन्तर्हित हो गया था। इससे मेघोंसे आती ज्योत्स्ना मानवोंको प्रभात हो जानेका भ्रम उत्पन्न करती थी। ऐसी अवस्थामें व्रजराज श्रीनंद-राय स्नानके लिये ब्रह्ममुहूर्तसे मात्र कुछ पल पूर्व कालिन्दीमें प्रविष्ट हुए, यह उनका प्रमाद नहीं माना जा सकता। यह तो उनकी सतर्कता, पालनीय सत्कर्मके प्रति श्रद्धा थी।

प्रमाद हुआ मेरे भृत्यसे। उस मूर्खको परिस्थिति एवं पात्रके विवेकका कोई ज्ञान नहीं। वैसे उसका यही प्रमाद मेरे सौभाग्यका हेतु बन गया, अतः मैंने उसे पुरस्कृत किया है। यह श्रीकृष्णकी स्वाभाविक विशेषता है कि उनसे सम्बन्धित होकर अपराध भी आराधना बन जाती है।

मैं कलशाधिपके रूपमें वहाँ उपस्थित देख रहा था—व्रजराजके साथ ही दूसरे गोप स्नान करने आये थे। मुझे सृष्टिकर्त्ताने जलका अधीश्वर बनाया है। जलमें रात्रिका तृतीय प्रहर मेरे अनुचरोंके लिये सुरक्षित है। मैंने अपने सेवकोंको सामान्य आदेश दे रखा है कि 'जो स्थलीय प्राणी इस आसुरवेलामें जलमें प्रवेश करें, उन्हें वे अपना आहार बना लिया करें।'

मैं अपने उस समय कालिन्दीमें आये अपने सेवकको सावधान करनेका अवसर नहीं पा सका। केवल तीन पल शेष थे मेरी आसुरी बेलाके। अन्य गोप अभी तटपर ही थे। व्रजराज अकस्मात् जलमें उतर गये और उनकी चीत्कार सुनायी पड़ी— 'कृष्ण !'

मेरे असुर जलचर भृत्यने श्रीनन्दरायको अपने कालमें जलमें पाया तो उनके पैर पकड़ लिये। डूबते-डूबते व्रजराजने अपने पुत्रको पुकारा था। स्वाभाविक यह था कि वह जलचर उन्हें पेटमें पहुँचा देता; किंतु तत्काल बहुतसे गोप यमुनामें कूद पड़े। आसुरी बेला समाप्त हो चुकी थी। गोप डुबकियाँ लगाकर कालिन्दी-जलको मथित करने लगे थे। मेरा भृत्य भयातुर हो गया। उसने देखा कि सरिता प्राय: सर्वत्र अवरुद्ध हो उठी है। वह किसी ओर भाग नहीं सकता। वह सन्दिग्ध भी हो गया कि उसने भूल की है। इतने गोप जलमें उतरे हैं तो कहीं नन्दराय भी तो ब्राह्ममुहूर्तमें ही जलमें नहीं उतरे। अपने समयकी समाप्तिके पश्चात् यदि उसने किसीको पकड़ा है तो उसे स्वयं प्राणदण्ड प्राप्त हो सकता है सृष्टिकर्त्ताके विधानके अनुसार और वह अपनेको गोपोंसे घिरा पा ही रहा था। अत: उसने अपनी जन्मजात सिद्धिका सहारा लिया। व्रजराजको लेकर स्थूल आधिभौतिक जलसे आधिदैवत वरुण लोकमें मेरे सामने पहुँच गया।

'नन्दराय डूब गये ! व्रजराज डूब गये !' ऊपर गोपोंमें अपार कोलाहल प्रारम्भ हो गया। एक ही पुकार सब कण्ठोंसे— 'कृष्ण ! कृष्ण ! बचाओ !'

प्राय: सभी समर्थ गोप पानीमें कूद पड़े थे। सब डुबकियाँ लगा रहे थे; किंतु वहाँ कोई होता तब तो उन्हें मिलता। गोपोंका अन्वेषण— डुबकी लगाना, ढूँढ़ना, ऊपर आना अनवरत चल रहा था। उनकी पुकार सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र दौड़े और दौड़ते चले आये। मैंने अपने उस रूपसे जो वहाँ अवस्थित था, देखा गोपोंका—गोपियोंका प्रेम ! माता व्रजेश्वरी यह सुनते ही कि 'नन्दराय डूब गये' दौड़ी थीं। गोपियोंने उन्हें पकड़ रखा था; किंतु वे उन्मादिनी हो गयी थीं। उनकी फटी-फटी दृष्टि केवल प्रवाहको देख रही थी। उनमें चेतना आयी जब उनको श्रीकृष्णचन्द्र जलमें जाते दीखे। वे चिल्लायीं— 'नीलमणि !'

प्राय: सब गोपियाँ-गोप पुकार उठे। सब रोकना चाहते थे श्रीकृष्णचन्द्रको और जब वे जलमें दौड़ते जाकर अदृश्य हो गये, प्राय: सब

मूर्छित होकर गिरे। केवल जो जलमें थे, उन्होंने एक साथ डुबकी लगाकर अपने युवराजको पकड़ लेनेका प्रयत्न किया।

× × ×

श्रीनन्दरायको देखते ही मैने प्रणिपात किया। मैं अवश्य उस अधम भृत्यको एक ही प्रहारमें मार देता; परन्तु दयाधाम व्रजराज बीचमें आकर वारित करने लगे— 'इसे क्षमा कर दें! इसका कोई अपराध नहीं है।'

मैं संकुचित हो गया। मुझसे बहुत बड़ेने जब अपने अपराधीको क्षमा कर दिया, उसके अपराधका विचार भी करनेका मुझे अधिकार नहीं रह गया।

उन सुर-मुनीन्द्र - प्रणम्य श्रीव्रजराजकी पूजाका उपक्रम भी नहीं कर सका – कठिनाईसे मैने अर्घ्य-पाद्य देकर आसन दिया था। अर्चामें लगा ही था कि परात्पर पुरुष उनके पुत्र पहुँच गये। मैंने पिताके साथ उनकी भी शीघ्रतामें अत्यल्प पूजा की। मेरा वरुणलोक उनके आगमनसे धन्य हो गया। वे सर्वेश्वर मेरे सिंहासनपर बैठ गये, पवित्र हो गया मुझ असुरका वह आसन भी। श्रुतिके जो एक मात्र स्तोतव्य, मैं, मेरी वाणीमें उनके स्तवनकी शक्ति कहाँ। उन निखिलेश्वरकी कंगाल वरुण क्या पूजा कर पाता।

'मेरा भृत्य असुर ही तो है, अज्ञानी है। कार्य-अकार्य नहीं समझ पाता। आपके पिताको लाकर अपराध किया उसने और यह मेरा अपराध है। आप मुझे अपनावें या दण्ड दें!' करबद्ध किसी प्रकार मैं यह कह गया। 'आप सर्वज्ञ हैं। मेरे हृदयकी भी जानते हैं। पिताको ले जायँ; किन्तु मुझ अधम पर भी करुणा करें। मुझे भी अपने पावन पदोंकी प्रीति प्रदान करें।'

'आप तो मेरे आदरणीय हैं!' वे व्रजसुन्दर हँसे। समझ गया, यह संकेत रमाके सम्बधकी ओर है। बहुत ही संकुचित हुआ। पिताके साथ ये परमाराध्य पधारे और मैं कोई उत्तम अर्चा नहीं कर सका। अपने सर्वोत्तम मुक्ताओंकी माला, कुछ अलभ्य समुद्रीय पुष्प—जलाधीश इन सर्वेशको दे भी और क्या सकता था। मेरे कभी आर्द्र न होनेवाले वस्त्र उन्होंने स्वीकार कर लिये, यह उनकी कृपा।

'कोई अपराध नहीं हुआ। अपनोंके व्यवहारमें अपराधकी भावना नहीं की जाती।' उन्होंने उठते हुए कहा— 'अब अनुमति दें! आप समझते ही हैं कि वहाँ गोपावासमें लोग कितने आकुल होंगे।'

मैं कुछ क्षण भी रुकनेका अनुरोध नहीं कर सकता था। अनुगमन किया मैंने और यमुना-जलसे बाहर तो अब मुझे उस कलशाधिदैवत रूपमें ही सम्पूर्ण तादात्म्य कर लेना था।

× × ×

'व्रजराज आ गये! आ गया कन्हाई!' जलमें जो गोप थे, वे पहिले पुकारकर दौड़े।

'नीलमणि! व्रजेश्वरीने दोनों भुजाएँ फैला दीं। वे इतनी शिथिल हो गयी थीं कि दो पद भी दौड़ नहीं सकती थीं। स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र हँसते दौड़ते माताके वक्षसे लिपट गये आकर। गोपोंने श्रीनन्दरायको अंक-माल दी।

'भैया! आपके ये वस्त्र? ये तो भीगे नहीं हैं। और ये मुक्ताभरण? ये दिव्य पुष्प मालाके?' सन्नन्दने समीप आकर बड़े भाईका चरण-स्पर्श किया और चकित देखने लगे।

'अपना मुकुन्द भी आपादमस्तक ऐसे ही अनदेखे, अनसुने मुक्ताओंसे सजा आया है।' उपनन्दजी मेरे दिये वस्त्र स्पर्श करके देख रहे थे। उन्होंने पूछा— 'नन्द! यह सब कहाँ मिला तुम्हें पानीके भीतर?'

'मेरी समझमें कुछ अधिक नहीं आया। मैं यमुनामें उतरा तो कोई जलीय दानव मुझे पकड़कर कहीं ले गया। जो सुना है ऋषि-मुनियोंसे, उसके अनुसार वह वरुणलोक होना चाहिये; क्योंकि उस आलोकमय प्रदेशके अधिपति प्रचण्डकाय श्यामवर्ण ऐसे थे मानो उर्मियोंका वस्त्र पहिने हों और मौक्तिकाभरण-भूषित थे।' व्रजराजने मेरे सम्बन्धमें ठीक अनुमान कर लिया था— 'वे बहुत विनम्र हैं। मुझ मनुष्यको भी उन्होंने प्रणाम किया। मेरा सत्कार किया।'

'आप आये कैसे?' सन्नन्दने पूछा।

'अपना नीलसुन्दर शीघ्र पहुँच गया। यह तो जैसे सम्राट् हो और वरुणदेव बहुत क्षुद्र सेवक हों, इस प्रकार इसके सम्मुख हाथ जोड़कर

काँपते हुए वे इसकी स्तुति कर रहे थे। इसने उनकी स्तुति, अर्चा सब स्वीकार की। उनको कुछ आशिर्वाद-सा देकर मुझे लेकर आ गया।'

'वरुण लोकपाल हैं, वे कन्हाईकी स्तुति करते हैं?' व्रजराजने मुझे लगा कि अपनी सहज उदारतावश मेरे लोकके वैभवका वर्णन बहुत बढ़ाकर ही किया, अन्यथा वरुणका वैभव उनके इस व्रजके सम्मुख तो किसी गणनामें नहीं; किन्तु उनका वर्णन सुनकर चकित गोपमें-से एकने कहा—'तब अपना कन्हाई कौन होगा?'

'यह साक्षात् नारायण है, यह भी कुछ पूछनेकी बात है!' एक वृद्ध गोपका स्पष्ट स्वर सुनायी पड़ा—'कितनी बार तो यह सत्य हम सब देख चुके।'

'अपना दिव्य धाम कन्हाई हमें दिखावेगा?' बहुत उत्सुकता, अभिलाषा-भरा स्वर था उस गोपका।

मैं केवल यह देख सका कि जननीके अंकमें बैठे श्रीव्रजराजकुमारके नेत्रोंमें एक ज्योति चमक गयी। एक साथ सब गोप-गोपियाँ ऐसे स्पन्दन-हीन हो गये, जिसके सम्बन्धमें देवता होनेपर भी मैं अनुमानसे केवल एक शब्द दे सकता हूँ—'निर्विकल्प समाधि!'

× × ×

कई दिनों पश्चात् देवर्षि नारदके मिलने पर मैंने गोपोंकी उस अवस्थाके सम्बन्धमें जिज्ञासा की। देवर्षि गम्भीर होकर बोले—श्रुति एक अवाङ्मनसगोचर स्थितिका संकेत करती है। ब्रह्मसाक्षात्कार, आत्मानुभव, स्वरूपावस्थान जैसे शब्द भी उसका बहुत अधूरा संकेत देते हैं। जन्म-जन्मान्तरकी साधनाके पश्चात् अविद्या-निवृत्ति होने पर—गुणातीत, शब्दातीत जो है— बस वह! सर्वसमर्थ श्रीकृष्णचन्द्रके संकल्पने सबको एक साथ वहाँ पहुँचा दिया।

स्वाभाविक है कि उस ब्रह्महृदावगाहनके अनन्तर सबने गोलोकका साक्षात्कार किया होगा।

मैंने देखा था कि उत्थानके अनन्तर गोप-बालक परस्पर कह रहे थे—'वहाँ प्रकाश तो बहुत है; किन्तु अपने व्रजसे वह उत्तम नहीं है। सबसे बुरी बात वहाँ यह है कि अपना कन्हाई वहाँ दूर सिंहासनपर बैठ जाता है और इसके पास जानेसे भी वे चमकनेवाले देवता रोकते हैं। यहाँ

तो यह हमारे साथ गो-चारण करता है, खेलता है। अपना व्रज बहुत उत्तम है उससे।'

'अवश्य उत्थानके समय गोपोंने वैकुण्ठका भी दर्शन किया होगा। कारणार्णवशायीका साक्षात्कार करके ही चेतना इस लोकमें उत्थित होती है।' देवर्षिने कहा और चले गये।

गोप परस्पर चर्चामें श्रीहरिके साक्षात्कारकी बात कर रहे थे। 'कमलतन्तु-श्वेत, सहस्रफणमौलि भगवान् अनन्तके मस्तककी मणियोंका महालोक क्षीराब्धिकी तरंगोंको उद्भासित करता था। उन विशाल श्वेत शेषके भोगपर सुकुमार सुभग सुन्दर चतुर्भुज सर्वाभरणभूषित, श्रीवत्सवक्षा, पीताम्बरपरिधान, शंख-चक्र-गदा-पद्मपाणि श्रीनारायण कितनी कृपाभरे पद्मपलाश-लोचनोंमें सस्मित देख रहे थे।' यह बात गोपोंकी चर्चासे मैंने सुनी थी।

उस दिन तो श्रीनन्दनन्दन सहसा मैयाकी गोदसे उठे और आकर बाबाकी गोदमें बैठकर बोले—'बाबा! तुम स्वप्न देख रहे हो? उठो, पूजा करोगे, फिर तो पारण होगा।'

सबके नेत्र खुल गये। गोपोंमें यह विवाद कभी नहीं सुलझेगा कि उन्होंने जो कुछ देखा—स्वप्न था अथवा सत्य। श्रीनन्दराय मानते हैं कि उन्होंने यमुना-जलमें डुबकी ली तो नींदमें थे। वहाँ भी स्वप्न ही देखा था। केवल मेरे दिये वस्त्र, आभरण, पुष्प इस अनुमानके बाधक बने वहाँ हैं। द्वादशीके प्रभातमें पूजनोपरान्त कलशसे मेरा विसर्जन कर दिया गया।



चीर-हरण

व्रजमें मैं प्रत्यक्ष न रहूँ तो प्रत्यक्ष रहनेको स्थान कहाँ प्राप्त होगा मुझे। पौर्णमासीके रूपमें मैं प्रत्यक्ष रहती हूँ पृथ्वीपर व्रजमें; किंतु यह प्रत्यक्ष रहना जहाँ अनन्त सौभाग्य दान करता है, अपार संकोचमें भी डालता है। अब परम पुरुषकी स्वरूपभूता साक्षात् आह्लादिनी शक्ति अंकमें बैठकर जब अपने नलिनदलायुत नेत्रोंमें अश्रु भरकर पूछती हैं—'अम्ब! क्या करूँ।' मैं क्या कह दूँ उनको। मेरा यही अहोभाग्य कि मुझे उनका पाद-स्पर्श प्राप्त होता है। वे मेरे अंकमें बैठती हैं। उनका भोलापन—उनकी सभी सहेलियाँ तो शील, सौन्दर्य एवं सहज भोलेपनकी मूर्तियाँ हैं।

श्रीकीर्तिनन्दिनीको कैसे विश्वास दिलाऊँ कि उन महाभाव-स्वरूपाके स्मरणसे मानव-अन्तःकरणमें श्रीकृष्ण-प्रेमका आलोक उदित होता है। वे मानती ही नहीं कि उनमें प्रेम-लेश भी है और वे श्रीनन्दन उनके सदा इंगित-परतन्त्र हैं। अब मैं क्या साधन सुझा सकती हूँ। श्रीकृष्ण साधन-साध्य हों तो कोई साधनका निर्देश करे। वे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र केवल अपनी कृपासे ही प्राप्त होते हैं अथवा प्राप्त होते हैं अपने किसी स्वजनकी कृपासे।

बालिकाएँ बहुत व्याकुल हो गयी हैं -- विशेषतः नन्द - व्रजकी बालिकाएँ। उनकी आशंका उचित है—दूसरे दूरस्थ व्रजोंके गोपनायकोंकी कन्याएँ कुछ आशा भी रख सकती हैं; किंतु अपने ही व्रजराजकुमारको वर-रूपमें पानेकी तो सम्भावना भी नहीं बनती।

नन्दनन्दन पिताको वरुणलोकसे लौटा लाये और समस्त गोपों-गोपियोंको उन्होंने ब्रह्म-साक्षात्कार करा दिया। गोलोक-वैकुण्ठके दर्शन करा दिये। सबको स्वप्न कहकर गोप नहीं टाल पाते, इसमें आश्चर्य क्या। अब सबके मुखपर एक ही चर्चा है—'व्रजराजकुमार साक्षात् श्रीहरि हैं।' इस चर्चाने बरसानेकी बालिकाओंको भी व्याकुल बना दिया है। 'श्रीहरि—वे सिन्धु-सुताका वरण करेंगे। देव, गन्धर्व-नाग, त्रिभुवनमें कोई

कन्या उन्हें अलभ्य नहीं। हम ग्राम्या, अशिक्षिता गोप-कन्याओंके लिए कहाँ आशा रह गयी।'

पौर्णमासीका ही आश्रय लेती हैं ये बालिकाएँ अपने प्रत्येक प्रश्नको सुलझानेके लिए। पौर्णमासी इनका प्रत्यय कैसे भंग करे? इनका विश्वास—इनकी प्रतीति—क्या करे पौर्णमासी? श्रीनन्दनदनकी कृपाका ही अवलम्ब है। उन्होंने ही मर्यादा बनायी है अपने लोकमें कि मधुर भावको लेकर उनकी लीलामें, उनकी निकुञ्ज लीलामें प्रवेशके लिए कात्यायनीकी—ललिताकी अनुमति अपेक्षित है। इसी विधानका आश्रय लेकर पौर्णमासीने बालिकाओंको अपनी—कात्यायनीकी ही आराधना निर्दिष्ट कर दी है।

नन्दव्रज—वृहत्सानुपुरकी सब बालिकाओंने कार्तिक पूर्णिमासे ही व्रतारम्भ कर दिया है। श्रीवृषभानुनन्दनीने भी मातासे अनुज्ञा प्राप्त कर ली है। बालिकाएँ जब कहती हैं कि 'उनको भगवती पूर्णमासीने उपासना निर्दिष्ट की है, इसमें कोई पुरुष अथवा बड़ी नारी साथ नहीं जा सकतीं, केवल कुमारियाँ ही जायँगी।' तब माताएँ चाहे जितनी व्यथित हों, आराधनामें बाधा तो नहीं दे सकतीं।

कितनी नन्ही बालिकाएँ—इनमें कोई दस वर्षसे बड़ी नहीं है। सबसे बड़ी है चन्द्रावती और वह भी दस वर्षकी। अनेक तो आठ वर्षसे भी छोटी हैं। ये कुसुम-कलिका जैसी बालिकाएँ प्रातः अरुणोदय होते ही उठती हैं और अपनी डलियाँ उठाये निकल पड़ती हैं। एक दूसरीको पुकारती हैं। परस्पर एक दूसरीकी भुजाओमें भुजाएँ डालकर गाती हुई—श्रीनन्दनन्दनके गुण-गीत गाती हुई चल पड़ती हैं। ये सहज स्वभावसे भोली अबोध कन्याएँ—इन्हें अभी यह भी पता नहीं कि कुछ रहस्य भी रखा जाता है। ये सब एकका ही वरण करना चाहती हैं और परस्पर खुलकर उसीकी चर्चा करती खिलखिलाती हँसती हैं बीच-बीचमें।

एक ही अच्छी बात हुई इसमें। अब दिनभर इनमें-से कोई उदास नहीं रहती। सब व्यस्त बनी रहती हैं। सबको पूजासे लौटकर स्वयं अपनी डलिया भली प्रकार मलकर स्वच्छ करनी रहती है। सबको पूजाके एक-एक अक्षत, पुष्प, धूप, दूर्वा, सिन्दूर आदि सब सजाने रहते हैं। कभी कुछ लाती हैं, कभी कुछ सजाती हैं। कभी माल्य-ग्रन्थन करती हैं या कोई नैवेद्य बनाती हैं। श्रीराधा तक इसमें सखियोंके द्वारा कुछ नहीं

करातीं। सब स्वयं करेंगी। रात्रिमें ही डलिया सजाकर रख लेंगी। केवल पुष्प, दूर्वा प्रभातमें चयन करेंगी।

सबने नन्दग्राम-बरसानेके मध्यमें एक एकान्त कालिन्दी कूल स्नानके लिए निश्चित किया है। पहुँचते ही सब अपने वस्त्र उतारकर किनारे धर देती हैं। कौशेय वस्त्र किसीके अशुद्ध नहीं होते और इनके वस्त्र—इनकी पद-रज भी जगतीको परिपूत करती है। बालिकाएँ ही हैं सब, जलमें प्रवेश करके परस्पर जल-सिञ्चन करती हैं, विनोद करतीं हैं—यह स्वाभाविक है। सूर्योदयसे पूर्व इनका स्नान समाप्त हो जाता है

आर्द्र अलकें, भीगे शरीर झटपट वस्त्र पहिनकर सब पुलिनपर अपनी-अपनी डलिया लेकर सिमटकर बैठ जाती हैं। ऊपरकी रेत हटाकर गीली रेतसे एक स्तूपाकार पिण्डी बनाती हैं। जिनके भ्रू-संकेतसे योग-माया सहस्र-सहस्र ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करती हैं, वे स्वयं अपनी लाल-लाल सुकुमार हथेलियोंसे मेरे इस पीठकी प्रतिष्ठा करती हैं। इतना पवित्र, जागृत पीठ मुझे कभी कहीं भला क्यों प्राप्त होने लगा। मैं इस पीठमें प्रविष्ट होकर पूजा प्राप्त करती हूँ। मैं पूजा प्राप्त करती हूँ प्रतिदिन श्रीराधा तथा इनकी सखियोंके स्वकरोंकी। ऐसी पूजा इतनी श्रद्धा सुरोंको स्वप्नमें भी सुदुर्लभ है; किंतु यह सम्मान स्वीकार करनेमें जो संकोच है, जो विवशता है, उसे मैं ही जानती हूँ।

जल, अक्षत, धूप, दीप, दूर्वा, पुष्प, पुष्पमाल्य, कुंकुम, सिन्दूर फल-अपूपादि नैवेद्य—बालिकाओंको पूजाका क्रम ज्ञात नहीं है और मुझे अपनी सुधि कहाँ रहती है। वे जो भी अर्पणको उठाती हैं, मैं सादर स्वीकार करनेको समुत्सुक हूँ। मैं स्वीकार करती चलती हूँ—क्या और कब देखनेकी शक्ति रहती कहाँ है मुझमें। ये जो करें—जैसे करें, वही विधि। इनकी इच्छा ही तो विधि है।

बालिकाएँ परस्पर एक दूसरीकी पूजा देखती हैं, अनुकरण करती हैं। कभी किसीको सावधान भी कर देती हैं— 'कण्ठसूत्र पहिले, फिर नैवेद्य और तब ताम्बूल!' इनकी पूजामें पदार्थोंके अर्पणका क्रम प्रतिदिन कुछ परिवर्तित होता रहता है। मुझे अत्यन्त प्रिय है इनका यह परिवर्तन।

पूजा पूर्ण करके सब अञ्जलि बाँधकर नेत्र बन्द करके स्तुति करती हैं—

'कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरी।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥'

भागवत १०.२२.४

यही इनका पूजा-मन्त्र, यही इनकी प्रार्थना। मैं क्या करूँ? मुझपर मर्यादाका अंकुश न होता—मैं पहिले ही दिन पूजासे भी पूर्व प्रत्यक्ष हो जाती और इनमें-से प्रत्येकके पाद-पल्लव पकड़कर प्रार्थना करती—'तुम इस अपनी सेविकाको आदेश देकर सनाथ करो स्वामिनी! लेकिन यह मैं करूँ तो इनकी ही अनुग्रह-भाजना नहीं रहूँगी। मुझे मौन यह सब देखना, सुनना है।

कितनी श्रद्धा, कितना सहज विश्वास इनका—इनमें-से प्रत्येक पहिले ही दिन नेत्र बन्द करके प्रार्थना करते समय यही समझती थी कि नेत्र खोलते ही उसे कात्यायनी प्रत्यक्ष दर्शन देंगी और 'वरं ब्रूहि' कहेंगी। इनकी श्रद्धा शिथिल होना नहीं जानती। इनका विश्वास अडिग बना है—'आज पूजामें कुछ त्रुटि रह गयी। भगवती कल अवश्य दर्शन देंगी।

एक-एक दिन करते पूरा मार्गशीर्ष मास व्यतीत हो गया। आज मार्गशीर्ष पूर्णिमा है। आज इनकी पूजाका अन्तिम दिन है। आज इनका दृढ़ विश्वास है कि—'भगवती अवश्य प्रत्यक्ष प्रगट होकर वरदान देंगी।'

व्याकुल तो आज मैं हूँ। प्रार्थना कर रही हूँ। मेरी लज्जा, मेरी उपासनाकी लज्जा आज नहीं रहती तो कौन कभी कात्यायनीको पूछेगा। जो क्रोध करके कुछ बिगाड़ न सके, जो कृपा करके अभीष्ट प्रदान न कर सके, उसका देवत्व किस कामका? किन्तु इनका अभीष्ट—मैं भी इनके उन्हीं इष्टकी चरणाश्रिता हूँ। मैं भी पुकार ही सकती हूँ—मेरे नाथ! इस किंकरीने महीनेभर आपकी अभिन्न सखियोंकी अविचल श्रद्धा-सहित अर्पित सेवा स्वीकार की है। अब आप इसकी मर्यादा रखें तो रहे।'

× × ×

करुणार्णव कृष्णचन्द्रके चरणोंमें पहुँची प्रार्थना असफल नहीं हुआ करती। मेरी पुकार मेरे प्रभुने सुन ली। वह क्या गूँज रहा है उनका शृंगनाद। आज अग्रजको नहीं आना है गोचारण करने, इसलिए थी

श्रीनन्दनन्दन शीघ्र उठ गये हैं। मैयासे त्वरा करनेको कहकर स्वयं शृंगनाद करके सखाओंको पुकारने लगे हैं।

'तू कितनी भी शीघ्रता कर ले, मेरी बहिनसे पहिले नहीं उठ सकता !' श्रीदामने नन्द भवनसे निकलते श्रीकृष्णचन्द्रको हँसकर अंकमाल दी और सुना दिया।

'वह कितनी देरसे उठी है ?' सहज पूछ लिया।

'वह क्या अकेली उठी है। सब लड़कियाँ कबकी उठ गयीं।' श्रीदाम हँसता-हँसता बता रहा है—'लड़कियोंको शीत नहीं लगता क्या ? सब यमुना-स्नान करके अब तो वहाँ पूजा भी प्रारम्भ कर चुकी होंगी।'

'इसीलिए सब आजकल वनमें दही लेकर नहीं आती हैं !' श्यामसुन्दरने सखाके स्कन्धपर सस्नेह कर रखकर कहा— 'चल, देखें तो सही कि ये सब कैसी पूजा करती हैं।'

'वे घाटपर नहीं जाती।' श्रीदामाने बतलाया— 'मुझे पता है कहाँ जाती हैं। चल तुझे ले चलता हूँ; किंतु उनकी पूजामें कोई बाधा मत देना।'

'पूजामें बाधा क्यों देंगे।' सखाको आश्वासन दे दिया— 'चुपचाप दूरसे देखेंगे कि इनकी पूजा कैसी है। कोई भूल करती होंगी तो बतला देंगे।'

श्रीदाम उत्साहमें कुछ अधिक अनुमान कर गया था। दूरसे स्पष्ट हो गया कि लड़कियाँ अभी स्नान ही कर रही हैं। श्रीव्रजराजकुमारने सखाकी ओर देखकर कहा— 'देख, सब नंगी स्नान कर रही हैं। है न यह बुरी बात ?'

'मैं डाँटता हूँ इनको।' श्रीदाम आगे जाना चाहता था।

'तू अपनी बहिनको डाँट नहीं सकेगा। चुपचाप सब यहीं रुको।' तत्काल मनमें योजना बना ली—'मैं इन सबको छकाता हूँ।'

कुछ नीचे झुककर दबे पैर वृक्षोंकी आड़ लेकर बढ़े नीलसुन्दर। सब बालक कुतूहलपूर्वक देखते रहे। मैं निश्चिन्त हो गयी। अब ये स्वयं उपस्थित हो गये तो मेरी पूजा सार्थक हो गयी। पुलिनके समीप पहुँचकर वृक्षकी ओटसे निकलकर दौड़े और तट पर पड़े वस्त्र एक साथ समेटकर

कन्धोंपर लादकर भागे। भागकर समीपके ही कदम्ब पर चढ़ गये। वस्त्रोंको उतारकर कन्धेसे शाखा पर रख लिया समीप।

अब बालकोंने तालियाँ बजायीं और हँसने लगे। सात वर्ष तीन मास, बाइस दिनके श्यामसुन्दर और उनसे दो वर्ष बड़ेसे लेकर दो वर्ष छोटे तकके इनके सखा— सब तालियाँ बजाते हैं, हँसते हैं। बालिकाओंमें अधिकांशके बड़े अथवा छोटे भाई हैं इनमें। सब इस अपने सखाके बाल-विनोदमें प्रसन्न हो रहे हैं। अनेकका उल्लसित स्वर है— 'अच्छा छकाया इन्हें आज कन्हाईने।'

बालिकाओंका ध्यान बालकोंकी ताली तथा हास्य-ध्वनिसे इधर गया। ये सब भी तो उन्हीं सबकी आयुकी हैं। तटकी ओर देखा और चौंक गयीं कि वहाँ इनके वस्त्र तो हैं ही नहीं। अब तक तो सब परस्पर छींटे उछालनेमें लगी थीं। अनेकको बालकोंपर क्रोध आया। वे सब बालकोंसे झगड़ने जलसे निकलकर दौड़ ही पड़ने वाली थीं; किंतु कदम्बके ऊपर दृष्टि चली गयी। सबकी अनेक रंगोंकी साड़ियाँ गड़मड़ करके सामने शाखापर ढेर करके वहाँ जो पीताम्बर पहिने, मयूरमुकुटी नीलसुन्दर बैठे हँस रहे हैं, इन्हींको पति बनानेके लिए तो बालिकाएँ यह पूजा कर रही हैं। अब इनके सम्मुख जलसे नंगी कैसे निकलें। सहसा सबको लज्जाने घेर लिया। सबने एक दूसरीका मुख देखा। जलमें कुछ अधिक भीतर चली गयीं।

'तुम सब व्रत करते-करते दुबली हो गयी हो! शीत बहुत अधिक है। सब काँप रही हो।' जैसे बहुत सदय हों, ऐसे स्वरमें बोले— 'जलमें-से एक-एक करके आओ या सब साथ आओ; किंतु यहाँ वृक्षके नीचे आओगी तो मैं वस्त्र दे दूंगा। मेरे सब सखा साक्षी हैं कि मैं झूठ नहीं बोला करता।'

सब बालिकाएँ परस्पर देखकर हँस पड़ीं। बालकोंने भी ताली बजायी और हँसे। केवल भद्रने पुकारा— 'कनूँ! दे भी दे इनके वस्त्र। देख तो कितने लाल-लाल मुख हो गये हैं इन बेचारियोंके। सब काँप रही हैं।'

भद्रको क्रोध आ गया कि उसकी बात कोई सुनता क्यों नहीं। वह अपना लकुट उठाकर गायोंकी ओर चल पड़ा। उसे लगा कि श्रीदाम, सुबल निष्ठुर हैं। इन्हें अपनी नन्हीं सुकुमार बहिनपर भी दया नहीं आती।

'श्यामसुन्दर ! सब तुम्हारी व्रजमें बहुत प्रशंसा करते हैं।' ललिताने बहुत मधुर स्वरमें कहा — 'हम सब तो तुम्हारी दासियाँ है। तुम आज्ञा दोगे, वह करेंगी ही। अब हमारे वस्त्र दे दो। हम शीतसे काँप रही हैं।'

'हमारे वस्त्र दो, नहीं हम जाकर व्रजराजसे कहेंगी।' चन्द्रावलीने धमकी दी।

'तुम सबको जिससे कहना हो, जाकर कहो।' हँसकर कह दिया।

'पहिले पानीसे निकलो और ऐसी ही नंगी बाबाके पास तक दौड़ती जाओ।' तोक ताली बजाकर हँसा।

'तुम सब मेरी दासियाँ हो और तुम्हें मेरा कहना करना है तो जल-से निकलकर यहाँ आओ !' इस बार स्वर गम्भीर बना लिया वनमालीने।

बालिकाएँ परस्पर कुछ कहें, इतना भी समय उन्हें नहीं मिला। सबसे पहिले सबसे भोली कीर्तिकुमारी अपने दोनों करोंसे अपने अंग छिपा-कर मस्तक झुकाये - दृष्टि नीचे किये जलसे निकलीं और कदम्बके नीचे जा खड़ी हुई। उनके निकलते ही सब लड़कियाँ उसी प्रकार निकलीं।

'तुम सबने नंगी होकर जलमें स्नान किया, यह वरुणदेवताका अपमान हुआ। श्रीकृष्णचन्द्रने यह कहा तो एक साथ लड़कियोंके नेत्र भर आये। उन्हें लगा कि इसी दोषसे अबतक देवी कात्यायनीने उन्हें दर्शन नहीं दिया। सबके हृदय धड़कने लगे— 'हमारी पूजा, हमारा व्रत इस दोषसे विफल हो गया ?'

'इस दोषको नष्ट करनेके लिए ये भगवान आदित्य जो उग रहे हैं, इनको अञ्जलि बाँधकर मस्तक पर लगाकर प्रणाम करो और फिर अपने वस्त्र लो।' श्रीकृष्णचन्द्रने तत्काल प्रायश्चित्त निर्देश किया।

प्राची-क्षितिज पर उठ आया था। आदित्य-मण्डल और वह इस प्रकार श्रीनन्दनन्दनके मस्तकके पीछे था जैसे वह उनके ही श्रीमुखका प्रभा-मण्डल हो। एक साथ बालकों तथा बालिकाओंके भी मनमें आया— 'कितने सदय हैं ये श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ! कितना सहज प्रायश्चित्त निर्दिष्ट किया इन्होंने। इतने कष्टसे पूरे महीने की गयी पूजा प्रमादके कारण नष्ट हुई जा रही थी, उसे इन्होंने बचा लिया !'

असूयाका लेश भी किसीके अन्त:करणमें उदित नहीं हुआ। लड़कियोंने दोनों हाथ जोड़कर, अञ्जलि मस्तकसे लगायी और सब झुक गयीं। इस समय तो अशेष कर्मसाक्षी भगवान आदित्यको और इन प्रत्यक्ष कदम्बाधिरूढ़ श्रीकृष्णचन्द्रको साथ ही प्रणाम करना था।

एक साथ पृथक-पृथक सबके ऊपर उनकी साड़ियाँ और उत्तरीय गिरे। किसीका भी वस्त्र न भूमि पर गिरा, न परिवर्तित हुआ। सबके वस्त्र जैसे श्रीनन्दनन्दन पहिलेसे पहिचानते हों। जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके असंख्य जीवोंको पहिचानते हैं, सबका संचालन करते हैं, वे अपनेसे अभिन्न इन अपनी ही अंगभूता बालिकाओंके वस्त्र क्यों नहीं पहिचानेंगे।

बालक सब गम्भीर हो गये। सबका ताली बजाना, हसना समाप्त हो गया था। 'उनका सखा इतना उदार है कि वह यहाँ इन लड़कियोंको छकाने नहीं, इनके व्रतकी बाधा, इनकी पूजामें हुए प्रमादके दोषको दूर करने आया था!' सब प्रशंसाकी दृष्टिसे श्रीकृष्णकी ओर देख रहे थे। उनमें-से एकने भी लड़कियोंकी नग्नताकी ओर देखा ही नहीं।

बालिकाओंने अपने वस्त्र शीघ्रतापूर्वक पहिने। सब वस्त्र पहिनकर सिर झुकाकर सलज्ज खड़ी हो गयीं। सबके मुख लज्जासे अत्यन्त लाल। सबके मनमें एक ही अभिलाषा — 'ये अपने चरण स्पर्श कर लेने देते।'

'मैं तुम सबकी बात समझता हूँ।' वृक्षसे उतरकर श्रीकृष्णचन्द्र सम्मुख समीप आ खड़े हुए— 'तुम सबने देवी महामाया कात्यायनीकी पूजा क्यों की है, मुझे पता है। लगभग एक वर्ष धैर्य रखो। अगले वर्ष शरद ऋतुकी रात्रियोंमें मैं तुम सबके साथ रासक्रीड़ा करूँगा। तुम सबकी अभिलाषा पूर्ण कर दूँगा।'

वरदान तो जो समर्थ थे, उन्होंने दे दिया। वे वरदान देकर सखाओंके साथ वहाँसे वनमें गोचारण करने चले गये। बालिकाओंने आज कृतज्ञता-ज्ञापन रूपमें मेरी अन्तिम पूजा की। मैंने भी आज ही पूरे उत्साहसे उनकी पूजा स्वीकार की।



विप्रपत्नियाँ

बुद्धि, यश, विद्या, सन्तानका कारक ग्रह मैं इसलिए हूँ कि सर्वेश्वर-से ये शक्तियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं। वे ही परम पुरुष पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए, मेरे अपने वंशको कृत-कृत्य किया उन्होंने तो मैं उनकी सेवामें सदा समुद्यत रहूँगा ही। मैं श्रीकृष्णके जन्माङ्गमें पञ्चम स्थानपर उच्चका बनकर बैठा। वैसे भी मैं बालक ग्रह हूँ, अतः बालक मुझे बहुत प्रिय हैं और बसन्त मेरा प्रिय काल है। व्रजके बालक—श्रीनन्दनन्दनके सखा तो मेरे अपने हैं, आराध्य हैं।

मथुराके वेदज्ञ चतुर्वेदी ब्राह्मण बसन्तके समय वनमें आकर यज्ञ करने लगे थे। मथुरामें तो कंस इतना भी उन्हें करने नहीं देता। किसी प्रकार उसे आश्वासन देकर कि यज्ञ उसीके अभ्युदयके लिए है, वनमें यज्ञ-स्थल बना सके वे।

मैं वायु-दैवत ग्रह हूँ। बसन्त वैशाखमास मेरे प्राबल्यका काल होता है; किंतु व्रजमें तो वायुको सदा सुखस्पर्शी बनाये रखना मेरा दायित्व है और वेदज्ञ ब्राह्मण वैदिक यज्ञ करें तो मेरे जैसा शुभग्रह उत्पात तो नहीं कर सकता। मुझे हरितवर्ण प्रिय है। व्रजधरा नित्य हरित और मैंने तो कभी श्रीकृष्णचन्द्र अथवा श्रीकीर्तिकुमारीके श्रीअंगपर पीत अथवा नीलपट देखा नहीं। श्यामसुन्दर अपने पीताम्बरको अपनी अंग-कान्तिमे हरिद्वर्ण ही बनाये रहते हैं। मुझे लगता है कि मुझ अपने कुल-पुरुषको प्रसन्न करनेके लिए ही उन्होंने यह सहज अंग-कान्ति धारणकी है। मेरा आशीर्वाद दोनोंके साथ सदा-सदा।

मैं बुद्धिका देवता ब्राह्मणोंके सदा सानुकूल रहा हूँ; किंतु जब कोई स्वयं अपने अन्तःकरणको कामना-कलुषित कर ले तो मैं कर भी क्या सकता हूँ। मथुराके उन महापण्डितोंको स्वर्ग पानेकी सूझी थी, अतः इतने समीप अपवर्गको बाँटते-लुटाते साक्षात् श्रीहरि विद्यमान हैं, यह कैसे उनके ध्यानमें आता। वे तो व्रजधरामें पहुँचकर भी वैदिक कर्म-वितानमें तल्लीन थे। धूम्रधूम्रात्मा कामना-कलुषित उन कृपण ब्राह्मणों पर भी

श्रीकृष्णने कृपा की, यह उन करुणासागरका अपना स्वभाव—अन्यथा मेरी दी बुद्धिका तो वे दुरुपयोग ही कर रहे थे।

× × ×

स्रष्टाकी सृष्टिमें कहीं भी केवल सद्गुण नहीं रहते। कुछ न कुछ दुर्गुणका दोष भी सर्वत्र सम्मिलित रहता है। वसन्तका ऋतुराज कहकर कविगण कितना भी गुणगान करें, केवल कुसुम ही तो वसन्त दे सकता है। यह दोष तो इस ऋतुमें है ही कि वनमें फल प्रायः सब अपक्व रहते हैं। अधिकांश अंकुरितावस्थामें रहते हैं। यह अभाव मुझे जितना उस दिन अखरा—कभी इतना दुःखद नहीं हुआ था।

राम-श्याम सखाओंके साथ वनमें गायें लेकर कुछ दूर चले आये। लताएँ ही नहीं, पादप तक पुष्प भारसे लदे झुके थे पथके दोनों ओर। करुणार्णव श्रीकृष्णने इस विटपश्रीका सत्कार किया। उन्होंने अग्रजसे सस्नेह कहा—'आर्य! ये पादप आपके सुर-मुनीन्द्र-सेवित श्रीचरणोंमें प्रणाम करने झुके हैं! ये इनके ऊपर गुञ्जार करते भ्रमर, कलरव करते पक्षी तो आपके प्रिय भक्तजन हैं जो यहाँ यह रूप बनाकर अपने आराध्यका गुणगान करने आ गये हैं।'

बालकोंने, स्वयं श्रीनन्दनन्दनने पुष्प गुच्छ, किसलय चयन किया और अग्रजका, सखाओंका स्वकरसे शृंगार किया। गोपकुमारोंने उन्हें सजाया। उन लतालिङ्गित वृक्षोंके मध्यसे झूमते-घूमते गायोंको लिए दोनों भाई यमुनातट पहुँचे। पशुओंने पानी पिया। बालक क्रीड़ामें लग गये।

सब हुआ; किंतु ऐसी दिशामें ये लोग आ गये थे कि इनको छाक पहुँचाने जो गोपियाँ चलीं, ढूँढकर नहीं पा सकीं। आज अपने छीके बालक नहीं लाये थे। मध्याह्न होनेको आया, बालकोंको क्षुधाने सताया। वन-भूमि सुमन-सज्जित थी; किंतु सुपक्व फल-समन्विता माता तो नहीं थी। इस शृंगारसज्ज वनश्रीसे क्षुधा कैसे शान्त होती? बहुत व्यथा हुई मुझे इस अभावके कारण। मुझे वसन्तका वैभव व्यर्थ लगा। बिल्ववन भी होते काश इस वनमें; किंतु बिल्ववन तो दूर था।

तोक, अंशु जैसे छोटे बालक ही नहीं, सुबल तक सिमट आये श्यामके पास। भद्रको भी लगा कि 'उसका कन्हाई भूखा है। म्लान हो गया है इस सुकुमारका श्रीमुख; किंतु स्वयं कहेगा नहीं। कहनेपर मानेगा भी नहीं।' अतः सखाओंने अपनी ही बात कहना उचित माना।

'कनूँ ! भैया, हमें तो भूख लगी है। तू कोई उपाय कर। यहाँ वनमें तो पके फल भी नहीं है।' सखाओंने प्रायः एक साथ कहा— 'हम सब इतनी दूर आ गये। यहाँ छाक लानेवालियाँ नहीं आ सकतीं। बिना खाये हम सबसे चला भी तो नहीं जायगा कि हम घर लौट चलते।'

'भूख तो मुझे भी लगी है। दादा ! तुझे भी लगी है न ?' नन्द-नन्दनने बड़े भाईके उत्तरकी अपेक्षा नहीं की। इधर-उधर देखकर बोले— 'उपाय तो है। वह धूम्र उठ रहा हैं। वहाँ मथुराके ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, मैंने बाबासे यह सुना है। उनके पास चले जाओ और दादाका तथा मेरा नाम लेकर कहना कि हम गायें चराते यहाँ तक आ गये हैं। इस समय भूखे हैं। हमको भोजन दे दें।'

'यज्ञ पूरा होनेसे पहिले वे भोजन देंगे ?' एक बालकने पूछा।

'सब यज्ञोंका प्रसाद खाने योग्य नहीं होता, यह मेरे ताऊने कहा था।' दूसरेने सन्देह किया।

'जिस यज्ञमें पशु-बलि होती है अथवा सोमपान किया जाता है, उसमें यज्ञ पूरा होनेसे पहिले किसीको अन्न देना दोष माना जाता है। उस यज्ञका प्रसाद श्रीनारायणकी पूजा करनेवाले नहीं लते।' श्रीकृष्णचन्द्रने कहा— 'ये ब्राह्मण तो सात्त्विक यज्ञ कर रहे हैं। ये कोई कंसके राक्षस हैं कि राजसिक या तामसिक यज्ञ करेंगे। कितने दिनोंसे तो यज्ञ कर रहे हैं। कोई यज्ञान्त तक भूखे थोड़े रहेंगे। सात्त्विक यज्ञमें मध्यमें आहार करने अथवा देनेसे यज्ञमें दोष नहीं होता।'

बालकोंने आश्चर्यसे देखा कि उनका सखा कितनी बातें जानता है। सब नहीं गये, जा भी नहीं सकते थे; क्योंकि गायोंको भी सम्हालना था। बहुतसे अपेक्षाकृत बड़ी आयुके बालक गये।

ओह ! विद्या, उच्चकुलका जन्म, कर्मनिष्ठा कितना रूक्ष एव विवेक शून्य बना देती है व्यक्तिको। मुझे उन ब्राह्मणोंपर क्रोध भी आया, दया भी आयी। कितने अज्ञ हो गये सब अभिमानवश। विचारे गोप बालकोंने भूमिमें पड़कर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। अत्यन्त आदरपूर्वक हाथ जोड़कर यज्ञशालाके बाहर खड़े रहकर कहा— 'आप सब ब्राह्मणोंको हमारा सादर प्रणाम। श्रीबलराम और कृष्णचन्द्र गोचारण करते हुए यहाँ वनमें समीप आ गये हैं। बुभुक्षित हैं। हम उनके साथी हैं। उन्होंने हमें भेजा है। यदि आपमें श्रद्धा हो तो उनके लिए हमें भोजन देनेकी दया करें।'

'कन्हाईने कहा है कि जिस यज्ञमें पशु बलि नहीं होती अथवा सोमपान नहीं किया जाता। उसमें अतिथिको अन्न देनेसे यज्ञमें दोष नहीं आता।' अर्जुनने यह भी बतला दिया।

इन ब्राह्मणोंको यह भी विस्मृत हो गया कि अतिथि स्वयं नारायण-का स्वरूप होता है। गृहस्थके लिये पहिला धर्म अतिथि-सत्कार है। यज्ञ, आराधनादिके अवसरपर तो अतिथिकी सेवा अवश्य की जानी चाहिए; किंतु ब्राह्मणोंके अहङ्कारने उन्हें बोलने नहीं दिया। वे सिर झुकाये अपनी पुस्तकोंमें सामग्री सम्हालनेमें ऐसे व्यस्त बने रहे मानो गोप-बालकोंकी बात उन्होंने सुनी ही न हो। बालक कुछ देर खड़े रहे। ब्राह्मणोंने जब 'हाँ' नहीं किया और 'ना' भी नहीं किया तो वे निराश लौट चले।

श्रुतिमें दो ही तो मार्ग हैं—सबको 'ओम्' करो। सबको परम ब्रह्म मानो और स्वीकृति देते चलो अथवा सबका 'नेति-नेति' करके निषेध कर दो। दोनोंसे तटस्थ रहकर ये मन्दगति उभय भ्रष्ट हो गये। अतिथि—श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके सखा अतिथि होकर लौट गये, अब कौन-सा पुण्य शेष रह गया इनके समीप।

'हुं! अब हम वैदिक चतुर्वेदी ब्राह्मणोंको श्रद्धा करनेके लिये ये ग्वालोंके लड़के ही रह गये!' बालकोंके चले जानेपर एक तरुण चतुर्वेदीने सिर उठाया और गर्वसे, तिरस्कारपूर्वक बोला।

मुझे बहुत क्रोध आया। श्रीकृष्ण अपने गोधनके साथ समीप न होते, उनको कष्ट होनेकी आशङ्का न होती तो मैं इन वेदज्ञाभिमानी ब्राह्मणोंको बता देता कि बुधका क्रोध कैसे बवण्डर उठा सकता है। इनकी यज्ञशालाका एक तृण तो मैं रहने नहीं देता। ये यज्ञ कर लेते मेरे स्नेह-भाजन इन बालकोंको निराश लौटाकर? लेकिन मुझे इन बालकोंको दूर चले जाने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। इन ब्राह्मणोंका वायु-बन्धन मन्त्र-बल मैं देख लूंगा।

बालक निराश लौटे। उन्होंने अपने सखाको उलाहना दिया—'तूने हमें व्यर्थ दौड़ा दिया, वे ब्राह्मण तो बोलते ही नहीं। सब मौन भी होते तो बात थी, वे तो बधिर भी बन गये हैं।'

'भैया, भूल मुझसे ही हो गयी। क्षमा करो सब और एक बार चले जाओ!' श्यामसुन्दरने बहुत स्नेह, बहुत अनुरोध स्वरमें भरकर कहा— 'इस बार उन ब्राह्मणोंसे बचकर उनकी पत्नियोंके समीप जाकर मेरा नाम लो। वे सब मुझसे स्नेह करती हैं। वे अवश्य तुम्हें बहुत-सा अन्न देंगी।'

'तू साथ चल!' एकने कह दिया।

'मुझसे तो दो पद भी चला नहीं जायगा।' श्यामने ऐसा मुख बनाया कि बालकोंके नेत्र भर आये। उनका यह सुकुमार सखा इतना भूखा है? इसके लिये भोजन तो लाना ही पड़ेगा। दूसरी बात इस समय सोची नहीं जा सकती।'

बालक फिर गये। मध्याह्नमें यज्ञ विरमित हो चुका था। पहिले भी आये थे तो ब्राह्मण आहुतियाँ नहीं दे रहे थे, न उनकी पत्नियाँ उनके समीप थीं। बालक यज्ञशाला एक ओर छोड़कर सीधे विप्र-पत्नियोंकी आवास-शालाके सम्मुख पहुँचे और हाथ जोड़कर बोले— 'आप सब विप्रपत्नियोंको नमस्कार! हमारी बात सुन लें कृपा करके। नन्दग्रामसे राम-श्याम गोचारण करने निकले और यहाँ समीपके वनमें आ गये हैं। वे और उनके साथी हम सब बहुत भूखे हैं। हमें भोजन प्रदान करें।'

चतुर्वेदियोंकी पत्नियाँ भली प्रकार अलंकृत थीं। सब यज्ञशालासे आकर अपने पति-भाई आदिके लिये अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाकर उठी ही थीं। ब्राह्मण मध्याह्न-स्नान, सन्ध्या करके भोजन करने आवेंगे। इतने सुन्दर सलोने बालकोंको एक साथ देखकर सब चकित रह गयीं। सब बालकोंके समीप आ गयी थीं।

'राम-श्याम समीप आ गये हैं? वे भूखे हैं?' अनेक एक साथ बोलीं— 'सखि! मैं तो चली। उन्हें भोजन दे आऊँगी। उनको भर नेत्र देख आऊँगी।'

'हम भी चलेंगी।' सबने कहा और बड़े-बड़े थाल शीघ्रतापूर्वक पक्वान्नोंसे भरने लगीं। बालक प्रसन्न हो गये।

'बहुत सुनती रही हैं कि वे त्रिभुवनसुन्दर हैं।' ब्राह्मणियोंमें परस्पर चर्चा यहाँ आकर चलती ही रही है— 'उन्होंने पूतना, तृणावर्त,

प्रलम्ब आदि अनेक कंसके असुर खेल-खेलमें मार दिये। कितने वीर होंगे वे।'

बहुत शीघ्र थाल भरकर उठाकर वे चल पड़ीं। बालकोंने उन्हें सावधान किया कि 'ब्राह्मण पुकार रहे हैं! दौड़े आ रहे हैं।'

'तुम सब दौड़े चलो! पुकारने दो उनको!' ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ बालकोंके पीछे दौड़ने लगीं।

'तुम सब कहाँ जाती हो? रुको! मत जाओ!' ब्राह्मण पुकारते दौड़े। एक-एकका नाम लेकर पुकारते दौड़ पड़े। एक तरुणने बढ़कर सबसे पीछे जाती अपनी पत्नीकी चोटी पकड़ ली। पकड़ते ही उसके हाथसे थाल गिरा झन्नसे। पक्वान्न बिखर गये।

'हाय!' एक आर्त चीत्कार मुखसे निकली और वह भहराकर गिर पड़ी। श्वेत पड़ गया उसका मुख—अब और पकड़? जिसका तूने पाणिग्रहण किया था, वह प्राणहीन शरीर तेरे सामने पृथ्वीपर पड़ा है। अब अपना सिर पीट! यहीं तक तो तेरा स्वत्व था। ? ले जा इस स्वत्व-को और जो जीमें आये कर!

वह तरुण ब्राह्मण मृत पत्नीके मुखपर दृष्टि जाते ही सिर पीटकर बैठ गया। दूसरे जो पीछे दौड़े आते थे, भयके कारण ठिठक गये। 'यह क्या हुआ?' अब अपनी ब्राह्मणियोंकी चिन्ता त्यागकर पहिले सबको इस शवका अन्त्येष्टि-संस्कार करना है। यज्ञ तो गया; क्योंकि अब मृत-सूतक हो गया। श्रीकृष्णके विरुद्ध जाकर यज्ञ करना कैसा होता है, यह अब कुछ समझमें इनकी आने लगा है।

× × ×

चारों ओर सघन तरु-पंक्ति है। पुष्पित लतायें लदी हैं विटपोंपर और मध्यमें विस्तृत हरित भूमि है। जहाँ-तहाँ गायें-वृषभ बैठे हैं अथवा खड़े हैं। मध्यमें सघन तमाल-तरुके समीप भद्रके कन्धेपर दक्षिण भुजा धरे खड़े हैं श्यामसुन्दर। दूसरे बालक दौड़ गये। सखाओंका आगमन उनकी पुकारसे जानकर केवल नीलाम्बरधारी श्रीबलराम कदम्ब-मूलमें बैठे हैं।

ललित त्रिभङ्ग खड़े हैं श्रीनन्दनन्दन। पीत कछनी, नीलाम्बर पटुका, भद्रके कन्धेपर दक्षिण भुजा है और उसी करमें मुरली है। हरित

दूर्वापर विकच सरोज जैसे चारु चरण मणि-नूपुर भूषित, घुटनोंसे नीचे तक लटकती वनमाला, पीताम्बरकी कछनीपर रत्न-मेखला, गम्भीर नाभि, पल्लवके समान उदर, पतली कटि, विशाल वक्षपर श्रीवत्सचिह्न, कम्बु-कण्ठमें कौस्तुभ, प्रफुल्ल पद्ममुख, पतले अरुण अधर, अतली सुमन सरिस नासिका, बड़े-बड़े लोचन, गोरोचन तिलक-भूषित भाल, कपोल-पल्लीपर चमकते चारु कर्ण - कुण्डल, घुँघराली काली कोमल सघन अलकें सुमनोंसे सज्जीं और ऊपर लहराता मयूरपिच्छ। वामकरमें लीला-कमल लिये नचाते, मन्द-मन्द मुस्कराते, नेत्रोंमें अनन्त प्रेमपूर लिये देखते ये भुवनमोहन !

ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने यह छटा देखी और उनके पद जहाँके तहाँ स्थिर हो गये। अपलक दृग, सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्च-कण्टकित कदम्ब-पुष्प समान, रोम-रोमसे बहती स्वेदधारासे आर्द्रवस्त्र, अजस्र अश्रुधारा भीगते कपोल-वक्ष। सब निःस्पद ! निःशब्द स्थिर रह गयीं।

'महाभागा विप्रपत्नियो ! आप सबका स्वागत।' मेघ-गम्भीर स्वर पड़ा श्रवणोंमें जैसे सुधाधार हृदय तक सिञ्चित करती चली गयी। 'आप सब मेरे स्नेहवश स्वयं पधारीं ! आभारी हुआ आपका।'

अब सबमें इस स्वरने चेतना दी। सब आगे आयीं और सादर अपने-अपने थाल सम्मुख झुककर धर दिये। अञ्जलि बाँधकर सब खड़ी हो गयीं। एकटक इस रूपराशिको देखने लगीं।

'अब आप सब लौटें।' व्रजेन्द्रनन्दन बहुत मधुर स्वरमें बोले— 'आप सबके पति-पुत्र-भाई आपकी प्रतीक्षा करते होंगे। वे यज्ञदीक्षित हैं। आपके साथ हुए बिना उनका यज्ञ-कर्म चल नहीं सकता। अभी उन्हें मध्याह्न - भोजन करना है। जहाँ तक मेरी बात है, मुझमें प्रीति होना प्राणीका परम मङ्गल है; किंतु समीप रहकर वैसा प्रेम नहीं होता जैसे दूर रहकर। स्त्रियोंका मन अनुरागपूर्ण रहता है, अतः आप सब लौटें।'

'आपको ऐसा नहीं करना चाहिए !' अत्यन्त कातर कण्ठसे ब्राह्मण-पत्नियोंने कहा— 'आप करुणानिधान हो, अशरण-शरण हो। दीनोंपर कृपा करते हो। हम सब अब तो आपके श्रीचरणोंमें आ पड़ी हैं, हमें आश्रय अब आप ही दे सकते हैं। हम अपने पति-पुत्र-भाई आदि ब्राह्मणोंको जानती हैं। वे बहुत क्रोधी हैं। उनमेंसे कोई अब हमें स्वीकार

नहीं करेंगे और पति-गृहसे पतित्यक्ताको पिता एवं किसी सम्बन्धीके यहाँ स्थान नहीं होता। अब आप आश्रय दो सर्वेश!'

'ऐसा नहीं है! आप सब भय-चिन्ता त्याग दें!' श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरमें अतिशय गम्भीर्य आ गया— 'मेरे समीप आनेवालेको - मेरी ओर चलने वालेको भी सब लोक-लोकपाल सादर सम्मानित करते हैं। आप सबके स्वजन रुष्ट होना तो दूर, आदरपूर्वक आपको अपनावेंगे। अपना अहोभाग्य मानेंगे आपको पाकर।'

बहुत अनिच्छापूर्वक वे सब लौटीं। बार-बार घूमकर सतृष्ण नेत्रोंसे देखती गयीं-- 'अब तो कोई संकेत कर देते ये समीप आनेका।'

श्रीनन्दनन्दन अग्रजके साथ सखाओंको लेकर भोग लगाने बठ गये। भर थाल मोदक इन्होंने मधुमङ्गलके आगे धर दिया है। यह दूसरी बात कि उसमें-से कितने उसे मिलेंगे और कितने बालक उठाकर अपने मुखमें देंगे या कपियोंको दे देंगे। इनकी तो आहार-क्रीड़ा चल पड़ी।

× × ×

जिस ब्राह्मणीको पतिने पकड़ा था, मैंने देखा था कि देह त्यागकर वह ज्योतिर्मयी देवी इन व्रजराज कुमारके दिव्य लोक चली गयी थी। अब ये ब्राह्मणियाँ लौटी हैं। आश्चर्य! ब्राह्मण युवा-वृद्ध सब दौड़ आये आग। एक ही स्वर है सबका— 'तुम सब बहुत शीघ्र आ गयीं! तुम्हारा स्वागत! हमारा सौभाग्य कि तुम समान पुरुषोत्तमकी प्रीति-भाजना पत्नियाँ, बहिनें मिली हमें।'

'धन्य ये स्त्रियाँ! इनका यज्ञोपवीत नहीं, न इनमें वेदाध्ययन, तप, जप है और पूर्णपुरुष नन्दनन्दनमें इनका इतना अनुराग!' ब्राह्मणोंमें परस्पर चर्चा है— 'धिक्कार है हमारे ब्राह्मणत्वको, वदिक ज्ञानको, शौच-सदाचार और कर्मनिष्ठाको। हमने सुना है कि साक्षात् श्रीहरि व्रजमें अवतीर्ण हैं; किंतु हमें श्रद्धा नहीं। उन दयाधामने तो सखाओंको भेजकर हमें सावधान किया, पुकारा; पर हम अभिमानी पराङ्मुख ही बने रहे!'

'उन पूर्ण पुरुषको भला किसीकी कृपाकी क्या अपेक्षा? कमला उनकी किंकरी! निखिल लोकोंके वे परिपालक।' एक वृद्ध विप्र रुदन करते बोले— 'उनके स्वजनोंका, सन्तोंका स्वभाव ही है माया-मोहित हम जैसे

भ्रान्त-भटकते लोगोंको सचेत करना। वे श्रीकृष्णके सखा हमें सचेत करने आये थे याचनाके बहाने ; किंतु हम अज्ञानी समझ नहीं सके।'

'हम कैसे भी हों, हमारी पत्नियोंने हमें पवित्र कर दिया।' तरुण विप्रने कहा—'वे उन अखिलेश्वरकी अनुराग-भाजना हो गयीं। हम अब इनमें स्नेह करके अपना उद्धार कर लेंगे।'

'हम भी तो दर्शन कर आ सकते हैं !' एक युवक उठ पड़ा।

'कंस कच्चा चबा जायगा !' वृद्ध बोला—'स्त्रियोंकी बात दूसरी है। हमारा जाना सुनेगा तो क्षमा नहीं करेगा। यहींसे कहीं अन्यत्र चले जाना है घर-द्वार त्यागकर तुम्हें ?'

बेचारे ब्राह्मण चाहकर भी दर्शन नहीं कर सकते। अब यज्ञमें तो मृत-सूतकने बाधा दे दी। इन्हें मथुरा लौटना है। मैं इनपर क्रोध क्या करूँ--अब तो ये दयाके पात्र हैं।



श्रीराधा-विवाह

मेरी सर्वस्व, प्राण-स्वरूपा श्रीराधा, इनके बिना कृष्ण अधूरा ही है। अपनी इन आह्लादिनीको पाकर ही तो मैं पूर्ण होता हूँ। कृष्णमें कहाँ प्रीतिका लेश है! वह तो ये कृपामयी परम प्रेमरूपा श्रीवृषभानुनन्दिनी कृपा करती हैं तो इनका कृपा-कटाक्ष ही मुझमें प्रतिफलित होता है। ये वरदायिनी विनोदिनी अपनी सहज उदारतावश अपनाती हैं मुझे, अन्यथा इनके चारु चरण प्राप्त होते? इन परिपूर्णाको अपेक्षा है?

मैं एक दृष्टि देख नहीं सका—भर-नेत्र इनकी सम्पूर्ण शोभाके दर्शनका भिक्षुक ही हूँ और रहूँगा। भले कोई कहे कि हम अनादि दम्पत्ति हैं; किंतु कहाँ—पलभर भी तो नहीं लगता मुझे और दृष्टि इनके जिस श्रीअङ्गपर जाती है, वहीं रह जाती है। श्रीराधाकी सम्पूर्ण मुखश्री भी मैंने कहाँ देखी है और ये सङ्कोचमयी सब देकर भी ऐसी रहती हैं जैसे कृष्ण ही कृपा करता हो। कृपा इनके पाद-पद्मोंसे प्राप्त न हो, कृष्ण तो कंगाल है। कृष्णमें कृपा है, प्रेम है, शक्ति है, ऐश्वर्य है, वह सब इनका प्रसाद! ये अपनाये हैं, अतः कृष्ण पुरुषोत्तम है।

आज हमारा विवाह हुआ है और अब इन श्रीकीर्तिकुमारीकी कृपासे मुझे इनका साहचर्य सुलभ हुआ है। मैंने इनके चारु चरणोंकी सन्निधि प्राप्त की है। यह हमारा निकुञ्ज—आजका मधु-मिलन नित्यरहेगा, पर इनके इन प्रफुल्ल पद्म-पादोंकी यह प्राप्ति--ये समीप रहें, सम्मुख रहें, इससे अधिक कुछ ईप्सित नहीं मेरा।

× × ×

आज सायंकाल सखाओंके साथ क्रीड़ामें विलम्ब हो गया। बाबा व्याकुल होकर स्वयं वनमें आ गये हम सब तो भाण्डीर वटके समीप खेलनेमें लगे थे। गौयें कहाँ किधर चरते निकल गयी थीं, हममें-से किसीने देखा ही नहीं था। बाबा गोपोंको लेकर न आये होते तो मुझे—सब सखाओंको बहुत भटकना पड़ता गायोंको ढूंढ़ने।

बाबाने तो चाहा था कि मैं सखाओंके साथ भवन चला जाऊँ ; किंतु मैं बाबाको छोड़कर नहीं गया। दाऊ दादाको बाबाने सब बालकोंके साथ भेज दिया। उन्होंने कहा— 'सूर्यास्त होने वाला है। तुम सब घर चलो और कलेऊ करो। दिन भरके भूखे थके हो सब। गोपोंके साथ गायें लेकरमैं आता हूँ।'

दाऊ दादा बाबाकी बात मान गया। वह सखाओंको लेकर चला गया। मैं बाबाके पैरोंसे लिपटा तो उन्होंने मुझे कन्धेपर बैठा लिया। अब बाबाके कन्धेसे उतरकर पैर-पैर घर मैं क्यों जाता। मैंने कह दिया— 'मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।'

बाबा मुझे कन्धेपर लिये-लिये वनमें कहाँ भटकते। वे मुझे गोदमें लेकर भाण्डीर वटके नीचे बैठ गये और गोपोंको भेज दिया गायोंको घेर लानेके लिये। कोई लीला करनी हो तो उसे अपूर्ण करना अच्छा नहीं। बाबा या मैया समीप होती है तो मैं सब भूल जाता हूँ। मुझमें केवल शैशव शेष रहता है। भला कोई माता-पिताके सम्मुख भी वृद्धोंके समान बुद्धिमान बनता है।

सूर्यास्त हो गया और इस आषाढ़के प्रारम्भमें आकाशमें घटा घिर आई। मेघ गर्जना करने लगे तो मुझे भय लगा। बाबाके कण्ठमें भुजायें डालकर मैं रो पड़ा। बाबा समीप हों तो अन्धकारमें वनमें मेघ-गर्जनसे मुझे भयातुर तो होना ही चाहिए।

बड़ा आनन्द आया। मैं बाबाके कण्ठमें लिपटकर रोया तो वे मुझे हृदयसे लगाकर उठ खड़े हुए। अत्यन्त आतुर होकर इधर उधर देखने लगे। वे मुझे लेकर घर लौट नहीं सकते थे। गोप गायें लेकर लौटते तो उन्हें वनमें ढूंढ़ते। गोपोंसे बाबाने भाण्डीर वटके नीचे रहनेको कह दिया था ; किंतु अब मैं डरने लगा, यह बड़ी भारी उलझन बाबाके लिये हो गयी। उनका असीम वात्सल्य मुझे प्राप्त है—इतना सौभाग्यशाली मैं।

इतनेमें श्रीवृषभानु-नन्दिनी आ गयीं अकेली। मैं समझ गया, सायंकाल दाऊ दादा और सखाओंके साथ मैं नहीं लौटा तो इनसे भवनमें रहा नहीं गया। ये सबकी—सखियोंकी भी आँख बचाकर एकाकी मुझे ढूंढ़ने निकल पड़ी हैं। प्रतिदिन ये प्रेममयी सायंकाल गवाक्षपर दृष्टि लगाये प्रतीक्षा करती मिलती हैं। इन अनुकम्पा - स्वरूपाको पता है कि

इनकी एक झाँकी पाये बिना मैं रात्रिमें सुखसे शयन नहीं कर सकता। इनके प्रेमका प्रतिदान नहीं मेरे पास। आज मैं नहीं लौटा तो इस घोर वनमें, रात्रिके इस आरम्भकालमें स्वयं वनके कण्टक, कुश, कठोर भूमिको भूलकर चली आयी हैं। इनके पाद-पल्लव भूमिका स्पर्श करने योग्य हैं ? बाबाके खड़े होनेसे देख लिया होगा, अतः इधर आ गयीं। वैसे भी इन्हें पता तो है कि भाण्डीरवट मेरा प्रिय स्थान है। हम सब प्रायः इसके आस पास ही बने रहते हैं।

'कौन, बेटी राधा !' बाबाने देखते ही पुकार लिया— 'तू इधर कैसे आ गयी लाली ? बेटी, वनमें नहीं घूमते रात्रिमें। अब घर लौट जा।'

'मैं तो घर ही जा रही हूँ।' बड़े संकोचपूर्वक मस्तक झुकाकर वीणा-विनिन्दक स्वरमें उत्तर दिया।

'श्यामसुन्दर ! तू लालीके साथ घर चला जायगा ?' बाबाने मुझसे पूछा।

'हाँ !' मैं झट बाबाकी गोदसे उतर पड़ा।

'लाली ! गायें लगता है कि दूर चली गयी हैं। गोप उन्हें घेरने गये हैं। मैं उनके साथ आऊँगा। बाबाने बड़े स्नेहसे कहा— 'सूर्यास्त हो गया है। वनमें सघन वृक्षोंके कारण अन्धकार अधिक हो गया है। यह नीलमणि वैसे भी रात्रिको डरता है और अब घटायें आकाशमें आ गयी हैं। मेघ-गर्जन सुनकर रोता है भयके कारण। कहीं वर्षा होने लगी तो भीग जायगा। तू इसे साथ लेती जा। नन्दीश्वरपुरकी सीमा तक छोड़ देगी तो आगे कोई गोपी या बालक इसे घर तक पहुँचा देगा।'

'मैं घर तक पहुँचा दूंगी।' श्रीवृषभानु-नन्दिनीने मस्तक झुकाये ही उत्तर दिया। मैंने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया। यह कर-स्पर्श पाकर तो मैं अपनेको भूल जाता हूँ। बाबाने कुछ और कहा—कोई सूचना, चेतावनी – सावधान किया होगा कि कण्टक, गड्ढे बचाकर धीरे-धीरे चलें हम; किंतु वे शब्द हम दोमें एकने भी नहीं सुने। बाबा निश्चिन्त हो गये। हम दोनों चल पड़े।

× × ×

'देव ! आज आप दोनोंका विवाह मुहूर्त है।' सहसा आकाशमें आलोक हुआ। विशाल उज्ज्वल हंस उतरा भूमिपर और उसके ऊपरसे

उतरकर चतुर्मुख अरुणवर्ण सृष्टिकर्ता हम दोनोंके सामने दण्डवत प्रणिपात करनेके अनन्तर अपने हाथ जोड़कर विनम्र खड़े हो गये।

मैंने अपनी प्राणाधिका सर्वेश्वरीकी ओर हँसकर देखा। ब्रह्माजी मुझे अत्यन्त प्रिय लगे। परमप्रिय लगा उनका प्रस्ताव। आषाढ़के इस प्रारम्भमें सर्वोत्तम मुहूर्त विधाताने शोध लिया है तो उनको स्वीकृति मिलनी चाहिए। श्रीराधाने किञ्चित् लज्जापूर्वक स्मितसे स्वीकृति सूचित कर दी।

इस स्वीकृतिका एक अर्थ तो था ही कि तत्काल हम दोनों अपने इस बाल रूपसे बिना कहीं किञ्चित भी विराम किये चलते गये। विवाहके उपयुक्त अपना नित्य कैशोर रूप हमने यहाँ धारण कर लिया; किन्तु निकुंजलीला पार्थिव लीला तो नहीं है। पृथ्वी पर प्रकट हुआ यह अवतार रूप—इसकी तो प्रतीक्षा हो रही होगी। कीर्तिमय्या अपनी लालीको न पाकर अब तक बहुत उद्विग्न हो उठी होगी और दादाके लौटनेसे अब तक मेरी मैया द्वारपर ही खड़ी होगी।

यह अनुमान नहीं था मेरा। मैंने देखा कि वृषभानु बाबा स्वयं अपनी लालीको ढूंढ़ने निकलने ही वाले थे। बाबाने हमें देखा तो मैंने कह दिया— 'मैं बाबाके साथ था। बाबाने इनको बुलाकर मेरे साथ भेज दिया इनको।'

वृषभानु बाबा हँसे— 'नन्दराय वृद्ध हो गये; किंतु अब भी भोले ही हैं। बालकको अन्धकार होने तक वनमें भला कोई रहने देता है।'

उनकी लाली तो अन्तःपुरमें चली गयीं। बाबाने बहुत आग्रह किया कि मैं व्यालू कर लूँ; किन्तु मैंने कह दिया— 'मैया मेरा मार्ग देखती होगी।' बाबाने मुझे अपने विशेष सेवकके साथ भेज दिया। मैया द्वारपर ही खड़ी मिली मुझे। द्वारपर ही मां भी मिलीं और दादा भी भद्रके साथ मेरा मार्ग देखता खड़ा था।

× × ×

ब्रह्माजीके संकेतसे ही मेघ गगनमें आये होंगे, यह बात तो स्पष्ट थी। हम दोनोंकी स्वीकृति पाकर वे सृष्टिकर्ता प्रसन्न हो गये। हम कालिन्दी कूलके समीप एक सघन कुञ्जमें आये अपने नित्य किशोर रूप-में। जो अपने संकल्पसे सृष्टि बनाया करते हैं, उनको हमारे विवाहकी समाग्री प्रकट कर देनेके लिये हमारी सहायता अपेक्षित नहीं थी।

'कन्या-दान कौन करेगा ?' मैंने हँसकर पूछा।

'यह स्वत्व आज मेरा है।' वे परम गम्भीर हिरण्यगर्भ भी हँस उठे— 'मैंने बहुत बड़ा अपराध किया आपके सखाओं तथा बछड़ोंका अपहरण करके। अब आज आपकी इन अभिन्न सहचरीका इनकी कृपासे पितृत्व पा जाऊँगा तो अन्तरमें जो परिताप-पश्चाताप तबसे जला रहा है, स्वत: शान्त हो जायगा।'

मैं समझ गया कि वेदगर्भ इस बहाने हम दोनोंके पाद-पूजनका अवसर चाहते हैं। उन्होंने स्पष्ट कर दिया— 'आप नित्य दम्पतिका विवाह विडम्बना ही है; किन्तु इस अपने आश्रितपर अनुग्रह करके इसे स्वीकार कर लें।'

कन्याका पिता शास्त्रज्ञ हो तो कन्यादानका स्वयं आचार्यत्व कर सकता है इसमें कोई विप्रतिपत्ति थी ही नहीं। सामग्री स्वयं सृष्टिकर्ताके संकल्पने उपस्थिति कर दी और स्मरण करते ही अग्निदेव प्रकट हो गये। ब्रह्माजीने विधि-पूर्वक कन्यादान किया। सप्तपदी हुई और अपने-अपने भागका मन्त्रोच्चारण हम दोनोंने स्वयं किया।

मैंने श्रीराधाका काँपता कमलकर अपने करोंमें लिया तो हम दोनोंके हाथ स्वेद-स्नात थे। सिन्दूर-दानके लिये मुझे अपनेको बहुत सम्हालना पड़ा, इतना कम्प था शरीरमें। विवाहके अनन्त ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर कहा— 'मैं कितना कंगाल हूँ। आप दोनों जानते हैं। आप दोनोंको बेटी-जामाता बनाकर भी कुछ देनेमें असमर्थ मैं इस विवाहका आचार्य होनेके कारण वरदान ही माँगता हूँ—आप दोनोंके श्रीचरणोंमें मेरी अविचल प्रीति बनी रहे।'

मैंने ही दोनोंकी ओरसे 'तथास्तु' कहा; क्योंकि ये संकोचमयी तो नेत्र भी उठा नहीं पा रही थीं। इनका श्रीमुख इतना अधिक लज्जारुण…।

ब्रह्माजी विदा हुए। हमारा वह निभृत निकुञ्ज हमारा मधुयामिनीका विहार-स्थल बन गया और यह निकुञ्ज, यह मिलन तो नित्य है; किंतु इन अनन्त सौन्दर्य माधुर्य सुषमा श्रीमूर्तिका यह लज्जारुण श्रीमुख—मैं इसका नित्य दर्शन पिपासु। इस सौकुमार्य सीमाको स्पर्श करनेका साहस तो नहीं किया जा सकता।



रासका प्रारम्भ

देवर्षि दयाधाम हैं, यह तो मैं जानता था ; किंतु उनकी दया श्रीहरिके समान दर्पहारिणी भी होती है, यह मुझे पता नहीं था। मेरा दर्प अनुचित है, यह कहनेका साहस कौन करेगा ? साक्षात् सृष्टिकर्ताको मैंने उनके पुत्रोंके सामने ही विवश बना दिया था। उन स्रष्टाकी सृष्टिका कोई प्राणी—वह ऋषि-मुनि-तपस्वी कोई भी हो, कैसा भी हो, कन्दर्पके सम्मोहन-शरके शरणापन्न न हो जाय, यह सम्भव नहीं।

भगवान भूतनाथने मुझे भस्म कर दिया ; किंतु यह तो मेरी पराजय नहीं थी। मैं भले भस्म हुआ, परन्तु मेरे कनिष्ठ भ्राता क्रोधने उन्हें कम्पित करके उनका दीर्घकालीन तप ध्वस्त कर दिया।

मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे सम्यक् पराजय प्राप्त हुई धर्म-नन्दन बने बदरिकाश्रममें तपोनिरत नर-नरायणसे ; लेकिन मन्मथ तो उन श्रीहरिका ही अंश है। अंश अपने अंशीसे न्यून तो रहेगा ही। उन श्रीहरिके पदाश्रितोंसे भी मदन पराभूत हो जाया करता है। उन आनन्दघनका चरणाश्रय लेकर ही देवर्षि नारदने तथा देवर्षि जैसे दूसरोंने मुझ मकर-ध्वजको पराभूत किया है। मैं इसे पराजय नहीं मानता ; क्योंकि मेरे अंशीके आश्रयमें जाकर बैठ जाना मुझसे अभय कर देता है, यह तो सहज स्वाभाविक है।

भगवान शिवने मुझे भस्म करके अनंग बना दिया। यह मेरे सामर्थ्यका वर्धक ही बना। मैं अदृश्य रहकर अधिक आक्रामक हो गया। उस दिन देवर्षिने मुझे देवलोकमें देखा और हँस पड़े। बोले—'सुमन सुकुमार देवता ! अब इस नन्दन काननमें ही बने रहना। धराकी ओर देखनेकी धृष्टता मत करना।'

'पृथ्वीपर कोई अभूतपूर्व परिवतन हो गया है ?' मैं उत्तेजित हो गया था—'कोई पुरारिसे भी प्रबल तपस्वी पैदा हो गया वहाँ ? सृष्टिकर्ता अपनेसे अधिक समर्थ संयमीके सृजनमें सफल हो गये ?'

'एक गोपकुमार आ गया है भारत-धरापर वृन्दावनमें।' देवर्षिने व्यंग किया— 'वह दर्पितोंकी बहुत दुर्गति करता है। कहीं भूलकर उधर मत भटक जाना। दुर्मद-दलनका वह व्रती—उससे दूर ही रहो, इसीमें दैवको सानुकूल समझो! दुःख पाओगे यदि उधर गये।'

'गोपकुमार? कितने युगोंसे वह तपो-निरत है?' मैं अहङ्कारसे उद्दीप्त होकर पूछ बैठा।

'वह तप नहीं करता। गायें चराता है और व्रजकी बालिकाओंसे परिहास भी कर लेता है।' देवर्षिका व्यंग मैंने समझा नहीं। वे चले गये यह कहकर— 'तुम्हारे सम्पूर्ण पौरुषको पराजित करनेका अच्छा अभ्यास है उसे।'

मुझे यह असह्य हो गया। पुष्पधन्वाको कोई गोपकुमार पराजित करेगा? वह भी कोई तपस्वी नहीं, बालक और यदि वह बालिकाओंसे परिहास करता है तो मेरे विकार उसमें विद्यमान हैं, यह तो पूर्व निश्चित हो गया। मैं उसे देखूँगा। किसी मानव-कुमारको पराजित करनेके लिये केवल मेरा धनुष पर्याप्त है। सहायकोंको साथ लेना अनावश्यक लगा मुझे। वसन्त, मलय-मारुत, अप्सरायें आदि मैंने साथ नहीं लीं।

वृन्दावन पहुँचकर मुझे लगा कि मेरा निर्णय उचित था। वसन्तके स्थानपर शरद ऋतुकी वह प्रथम पूर्णिमा मेरे शक्ति-वर्धनमें कहीं अधिक समर्थ थी। सम्पूर्ण वन मेरे सम्मोहन-पुष्प मल्लिकासे मण्डित था। उसकी मादक सुरभि लेकर मन्द-मारुत अणु-अणुको उत्तेजित कर रहा था। भ्रमर, पक्षी, पशु सभी मेरे प्रभावसे उन्मत्त प्रणय-केलिमें तल्लीन हो रहे थे।

सायंकालका समय—सूर्यास्त हो चुका था। दिशायें कुंकुमारुण हो रही थीं। अनुरागपूर अम्बरमें उमड़ पड़ा था। इसी समय एक एकाकी किशोर वनमें आया। मैं उसे देखते ही चौंक गया। मेरे समान ही! अतसी-कुसुम श्याम; किन्तु उसके अंगोंका सौकुमार्य देखकर मेरा अपना सुन्दर रहनेका गर्व गलित हो गया। अब तो मैं अनंग हूँ; किन्तु जब अंग था—इतनी सुषुमा, इतनी शोभा तो मुझमें कभी नहीं थी। यदि कहीं मैं पराजित हुआ—इसी कुमारको पिता बनाऊँगा। कुछ तो इस सौन्दर्य-राशिका सीकर इसके पुत्रको प्राप्त होगा।

सघन घुंघराली अलकोंपर लहराता मयूरपिञ्छ, भालपर गोरोचनका तिलक, कण्ठमें बनमाला। वह पीताम्बर परिधान हँसता आया और मैंने देखा कि सम्पूर्ण प्रकृतिमें मेरा सम्मोहन समाप्त हो गया। पशु, पक्षी, भ्रमर सब अपनी प्रणय-केलि भूलकर उसीको अनिमेष देखने लगे। मैं इधर-उधर देखता रहा, कहीं तो मेरा प्रभाव नहीं रहा। मुझे अपनेपर झुंझलाहट हुई—कुछ अप्सरायें तो मुझे लानी थीं।

सहसा वह प्रफुल्ल पारिजातके नीचे एक शिलातलपर बैठ गया अपने वाम उरुपर दक्षिणपाद स्थापित करके। पूर्णचन्द्रका बिम्ब पूर्ण क्षितिजसे ऊपर उठा इसी समय। अत्यन्त सुकुमार कुंकुमारुण चन्द्रबिम्ब—जैसे कुंकुमभूषित सिन्धुसुताका—इस शशिकी सहोदराका श्रीमुख हो। बनका पत्ता-पत्ता चमक उठा। दुग्धोज्वल मल्लिका सुमन किंचित् अरुणाभ हो उठे। कालिन्दीका पुलिन और जल सब अत्यन्त शोभा सम्पन्न हो गये।

शरद ऋतुकी वह सन्ध्या—इतनी सुषमा, इतना उद्दीपक वातावरण—इतनी सहायक परिस्थिति मुझे पूर्ण प्रयत्न करके भी सृष्टिमें कभी प्राप्त नहीं हुई थी। मैं व्याकुल हो उठा—अप्सरायें तो दूर, कोई भिल्लकुमारी भी होती तो मैं अभी इस गोपकुमारको देख लेता।

उसने अत्यन्त मुग्ध भावसे शशिको अपलक देखा। जैसे सतृष्ण दृगोंसे अपनी किसी प्रेयसीके मुखका स्मरण कर रहा हो। मैं स्पष्ट स्वीकार कर लूँ कि मनोभव होनेपर भी मैं उसके मानसका स्पर्श नहीं कर पा रहा था। ऐसा अनेक बार हुआ है। ऋषि-मुनियोंके मनमें भी मैं अपने सम्मोहन शर की शक्तिसे ही प्रवेश पाता हूँ।

उसने कटिकी कछनीसे मुरली निकाली और अधरोंपर रख ली। मुरलीने सप्तम स्वरमें मेरा ही क्लीं बीज गुंजारित करना प्रारम्भ किया। क्या? यह मेरा आह्वान कर रहा है या मुझे चुनौती दी जा रही है? मैं इस धरापर उतर क्यों नहीं पाता हूँ? मेरे बीजका—काम बीजका स्वर गूंज रहा है और मैं सप्राण होनेके स्थानपर शिथिल शरीर होता जा रहा हूँ। मेरी शक्ति, मेरा सम्मोह गगनमें ही स्तब्ध होता जा रहा है। यह क्या है? कौन-सी शक्ति है यह? इतना सम्मोहन तो मेरे अथवा मेरी प्रिया स्वयं रतिके स्वरमें भी नहीं।

'राधा! राधा! राधा रासेश्वरी!
राधा! राधा! राधा प्राणेश्वरी!'

वंशीके स्वरने तो पुकारना प्रारम्भ कर दिया। वंशी क्रमशः अनेक-अनेक नारियोंका नाम पुकारने लगी। मुझे साहस हुआ—यह अपनी प्रेयसियोंको पुकार रहा है तो अब मुझे अवसर मिलेगा। यह इस एकान्त-में—इस उद्दीपक वातावरणमें उन्हें बुला रहा है तो मेरे सम्मोहनसे अस्पृश्य नहीं रह सकता।

कुतूहलवश मैंने गगनसे देखा समीपके जनपदकी ओर। सहस्र-सहस्र नारियाँ दौड़ पड़ी थीं। वे किशोरियाँ—मैं मूर्ख था जो अब तक अप्सराओंको साथ न लानेके कारण खिन्न हो रहा था। इनमेंसे एकके सौन्दर्यका सहस्रांश भी तो स्वर्गकी किसी सुन्दरीमें नहीं। मेरे अदृश्य करोंसे कब मेरा सुमन-धनुष छूट गिरा, मुझे स्वयं पता नहीं। मैं धनुष-का करता क्या? मेरे किसी शरमें यह शक्ति, यह सम्मोहन, यह तीक्ष्णता नहीं जो इनमेंसे प्रत्येकके कटाक्षपातमें है। इनकी उपस्थितिमें मन्मथको किसीका मनोमन्थन करनेके लिये शर-सन्धान कहाँ आवश्यक है। यहाँ तो मेरे पञ्चबाण व्यर्थ हैं।

सब अस्त-व्यस्त भागी आ रही थीं। किसीने गोदोहन करते दोहनी पटक दी थी और किसीने दूधको अग्निपर उफनता त्याग दिया था। अनेक अपना शृङ्गार कर रही थीं—एक नेत्रमें अञ्जन, एक चरणमें नूपुर अथवा पदाभरण कर या कर्णमें डाले वे दौड़ी आ रही थीं। अनेकने पदोंमें अलक्तक लगाना प्रारम्भ किया था। आर्द्र अलक्तकके पद-चिह्न वे धरापर बनाती आ रही थीं। किसीका उत्तरीय गिर पड़ा था। किसीका वेणी-ग्रन्थन अपूर्ण था।

कोई पति-पुत्र या भाईको भोजन कराती वैसे ही अन्न सने कर आ रही थी। अनेकने अपने अङ्कके शिशुको दुग्धपान कराना छोड़कर शिशुको भूमिपर ही डाल दिया था। जो जैसे—जिस अवस्थामें थीं, वैसे ही वंशीका स्वर सुनते ही दौड़ पड़ी थीं। इनका यह अस्त-व्यस्त शरीर, वस्त्र, आभरण, केश इनको और भी अधिक मनोहारी—मादक बना रहे थे।

'अरे कहाँ जा रही है? इस समय वनमें मत जा!' अनेकोंके पतियों, पुत्रों, पिताओं अथवा भाइयोंने उन्हें रोका। पुकारा; किंतु किसीके भी श्रवणमें तो वंशीके स्वरके अतिरिक्त और कुछ सुननेकी शक्ति

नहीं। मैं अपने उन्मादक प्रभावसे परिचित हूँ; किंतु इतना अपरिसीम प्रभाव—इसकी तो मैं भी कल्पना नहीं कर सकता।

मुझे अनेक कल्पनीय चमत्कार देखनेको मिले एक साथ। अनेकोंको उनके पिता, पति या भाई पकड़ लेनेमें सफल हो गये अथवा गृह द्वार अवरुद्ध कर दिया उन्होंने। इस प्रकार जो भी मार्ग नहीं पा सकीं, उनके नेत्र बन्द हो गये। अपने परम प्रेमास्पदके असह्य वियोगसे उनके शरीर पल भरमें काले पड़ गये। इतनी अपार पीड़ा—इनके कोई जन्म-जन्मान्तर-के अपकर्म होंगे भी तो अवश्य वे भस्म हो गये होंगे। दूसरे ही पल उनके अंगोंपर, मुखपर जो ज्योति आई—वह ज्योति, वह आभा तो मैंने स्वर्गके किसी सुरके शरीरमें नहीं देखी। वैसी कान्ति केवल वंशी बजाते गोपकुमार श्रीकृष्णमें ही मैंने आज देखी है। अवश्य इनके ध्यानकी तल्लीनतासे वह रूप इनके हृदयमें आविर्भूत हुआ होगा। इन्होंने अपने अन्तरमें उस अपने प्रियका आलिङ्गन पाया। इतना आह्लाद एक साथ—अवश्य सम्पूर्ण पुण्योंका परम फल मिल गया इन्हें। इतना शोक या हर्ष प्राकृत शरीर सह नहीं सकता। इनके शरीर निष्प्राण हो गये; किंतु चमत्कार तो मैं देखता हूँ। गोपपल्लीके गृहोंमें पड़े हैं इनके निष्प्राण शरीर और ये साकार सबसे पहिले पहुँच गयी श्रीकृष्णके समीप। इनके ये शरीर आतिवाहिक देह नहीं हैं। यातना देह होते तो नरक जाते। भोग देह भी नहीं जो स्वर्ग जायँ। इनके ये दिव्य देह—इनका दिव्यत्व मैं समझ नहीं पाता।

मैं समझ नहीं पाता कि व्रजसे जो बालिकायें वंशीका स्वर सुनकर दौड़ी थीं, वे तो कुछ पलोंमें ही अपने गृहोंको लौट गयीं। प्रायः सब नारियाँ लौट गयीं उसी समय। उनके स्वजनोंने उपहास किया उनका—'बस! वन देखा और डर गयीं? नन्दनन्दन वंशी बजावे तो क्या हमारा मन उसके समीप दौड़ जानेको नहीं करता; किंतु इस समय क्या वह वनमें बैठा है? व्रजराज या व्रजेश्वरी इस समय उसे वनमें जाने देंगी? वह अभी गोचारण करके लौटा है। व्रजराजके भवनपर ब्यालू करके कहीं बैठा वंशी बजा रहा है। रात्रिमें वायुके कारण वंशी ध्वनि वनसे आती प्रतीत होती है। इस समय नन्द भवन भी नहीं जाया जा सकता। कन्हाई-की मुरलीका स्वर हमारे मनको भी मथित करता है; किंतु ऐसे उठ भागना व्यर्थ है। सब सो रहो। प्रभात हो तो कल वनमें जाकर उसका वंशीवादन सुनना। हम सब भी चलेंगे।'

सब नारियाँ-बालिकाएँ अपने गृहोंमें हैं और वे सब दौड़ी भी आ रही हैं। सब किशोरियाँ हैं, न बालिकाएँ और न तरुणियाँ। यह क्या है—मैं कुछ समझ नहीं पाता।*

सब सौन्दर्यकी साकर देवता—सब दौड़ी आयीं। सब अकेली, एक दूसरीसे दूर छिपती आयीं और आकर वनमें उस शिलातलके चारों ओर खड़ी हो गयीं। इन सबका यह सलज्ज स्मित शोभित मुख, यह सकटाक्ष निरीक्षण—यह स्पष्ट सर्वात्मना समर्पण। इनमें भी जो सबसे आगे हैं, मैं चाहकर भी इनके चरणोंसे ऊपर दृष्टि नहीं उठा पाता। ये सहस्र-सहस्र ज्योत्स्ना झरते चरण-नख। ये अकेली भी होतीं तो भी क्या ये नवघनसुन्दर गोपकुमार इनकी उपेक्षा कर पाते? यहाँ तो इनकी ये सहस्र-सहस्र सखियाँ साथ हैं क्या समझकर देवर्षि ने इन गोपकुमारको अजेय कहा था मेरे लिए?

मैं अपने मनोमन्थनसे उबर भी नहीं पाया था कि मुरलीका स्वर शान्त हो गया। अधरोंसे वंशी हटाकर वे मयूर-मुकुटी जिस गम्भीर, शान्त अविकृत स्वरमें बोले, मेरा शरीर होता तो मैं अवश्य उनके बैठने-की शिलापर सिर पटक देता। पराजित भी हुआ ही जाता है; किंतु ऐसी पराजय! जैसे मेरे प्रभावका कोई सीकर भी तो उनको स्पर्श नहीं कर सका था। मैं सन्न सुनता-देखता रहा गगनमें स्तब्ध बना।

'आप सब महाभागाओंका स्वागत!' वे ऐसे स्वरमें कह रहे थे जैसे कोई सर्वथा अपरिचित हों—'आप सब इस समय कैसे दौड़ी आयीं? व्रजमें कोई विपत्ति तो नहीं है?'

ये कुमारियाँ क्या कहें? इन्होंने सस्मित देखा परस्पर और सिर झुका लिया; किंतु वनमाली बोलते ही गये—'आप सब वनश्री देखने आयीं थीं, तो यह भी हो गया। सचमुच आज पूर्ण राशिकी

*रास लीला अवतार लीला नहीं है। अवतार लीलाके रूपमे श्रीकृष्णचन्द्र नंदगृहमें मैयाके समीप शैय्यापर ही वने रहे। वे वनमें गये ही नहीं रात्रिको। गोपियाँ भी सब पार्थिव देहसे अपने घरोंमें ही रहीं। रास तो दिव्य लीला है दिव्य देहोंसे हुई। अन्यथा रासके समय श्रीकृष्णकी आयु आठ वर्ष, एक मास, बाईस दिनकी थी। श्रीराधा इनसे कुछ महीने (एक वर्षसे कम) बड़ी है। उनकी सखियोंमें भी कोई उनसे दो वर्षसे अधिक बड़ी नहीं हैं।

ज्योत्स्नासे रंजित कालिन्दी पुलिन एवं वृन्दावनकी शोभा देखने ही योग्य है ; किंतु यह रात्रिका समय है। इस समय स्त्रियोंको वनमें देर तक नहीं रहना चाहिये। अतः अब लौट जाओ।'

इतनी औपचारिक बात की जायगी, किसीको आशंका नहीं थी। सबके मुख म्लान हो गये। सबके नेत्र टपकने लगे ; किंतु अभी तो अन्तिम वज्रपात शेष था। वंशीधर कह गये— 'आप सब मेरे प्रेमसे विवश आयी हो, यह उचित ही है। सब प्राणी मुझसे प्रेम करते हैं ; किंतु प्रेम परिशुद्ध होता है। किसी स्त्रीको परपुरुषके स्पर्शकी कामना नहीं करनी चाहिये। यह कामना क्लेश , अयश तथा अधोगतिका कारण होती है। स्त्रीको पति तथा पतिके स्वजनोंकी सेवा करनी चाहिये। आप सबके पति, पिता, भाई आपको घर न पाकर बहुत व्याकुल होंगे। अभी गायें दुहनी होंगी। स्वजनोंको भोजन कराना होगा। स्त्रीका परम धर्म पति सेवा है। अत:आप सब अब शीघ्र लौटो और स्वजनोंकी तथा गायोंकी सेवा करो। गो-दोहन सम्पन्न कराओ। घरके लोगोंको भोजन कराओ। मेरा प्रेम मनमें रहने दो, इसीसे आपका परम मंगल होगा।'

यह उपदेश कोई वृद्ध मुनि देता तो कुछ बात भी थी। ये सौन्दर्य-सिन्धु रसिकशेखर इस एकान्तमें स्वयं मुरलीके सम्मोहन स्वरमें सबका आह्वान करके ऐसा उपदेश देने लगे थे !

सबकी सब किशोरियोंके कमल मुख शुष्क हो गये। नेत्रोंसे अञ्जन-रञ्जित अश्रुधारा चलने लगी। अजस्र अश्रुधारा—कपोल, वक्ष सब आर्द्र होने लगे। पदोंके सुचारु नखोंसे वे भूमि कुरेदने लगीं। एक ही भाव— 'भूमि फटती और हम भी वैसे समा जातीं पृथ्वीमें जैसे कभी त्रेतामें भूमि-सुता सीता समा गयी थीं।'

मुझे लगा कि इनके श्वेत पड़ते जाते शरीर अब संज्ञा शून्य होकर पृथ्वीपर गिरने ही वाले हैं ; किंतु किसी प्रकार इन्होंने अपनेको सम्हाल लिया। एक इनमें किञ्चित बड़ी लगीं वयमें। पीछे पता लगा, इनका नाम चन्द्रावली है। अवश्य यह कुछ प्रगल्भा है, इसीलिए बोल सकी। इसके वचन ही सबके लिए सुधा-श्रोत हो गये।

'श्यामसुन्दर ! इतने निष्करुण मत बनो ! ऐसे नृशंस वचन तुम्हें नहीं कहने चाहिये। हम संसारके समस्त सम्बन्ध त्यागकर , सब छोड़कर

तुम्हारे समीप आयी हैं। परम पुरुष परमात्मा भी अपने अनन्याश्रितोंको अपना लेते हैं। तुम हमें त्यागो मत ! स्वीकार करो।' अत्यन्त आर्त गद्‌गद् स्वर इसका। पाषाण भी पिघल जाय ऐसी वाणी।

'प्यारे, दुराग्रह मत करो ! तुमने जो पति, पुत्र, पिताकी सेवा स्त्रीका परम धर्म बतलाया है, तुम धर्मज्ञ हो, अतः स्वयं कह दो कि तुम्हारे ये वचन तुम्हारे चरणोंकी सेवामें सार्थक नहीं होते ? तुम्हीं सबके परम श्रेष्ठ आत्मा नहीं हो ? समस्त प्राण धारियोंके आत्मा तुम—तुम्हारी सेवा ही तो सबकी सच्ची सेवा है ?' मैं स्तम्भित सुनता रहा। मस्तक झुकाया मैंने। भले मैं गर्ववश आया और पराजित हुआ; किंतु इन परम पुरुषके पावन पदोंका साक्षात्कार पा सका। ये परम पुरुष—अन्यमें इतना संयम, इतनी सामर्थ्य सम्भव ही नहीं है। अब तो ये कृपा करें, भगवान पुरारिका प्रसाद—उनका वरदान सार्थक हो। इनका पुत्रत्व चाहिए मुझे; किंतु क्या ये इतने अकरुण हैं ? ये अवनिपर अवस्थित् दिव्य देहा मेरी मातृ स्थानीया किशोरियाँ—ये रुदन करतीं, नखमणिसे भूमि कुरेदती प्रार्थना कर रही हैं—

'जो विद्वान हैं, विवेकी हैं, ज्ञानी हैं, वे सब तो तुममें सदा प्रीति करते हैं। ये संसारके बन्धन, विपत्ति, क्लेश देनेवाले पति-पुत्र-पितादि-से क्या प्रयोजन ? अतः कमल लोचन हमपर प्रसन्न हो जाओ ! बहुत समयसे हमने आशा लगा रखी है ! इस आशा लताका उन्मूलन न करो !

यह आशा हमारे हृदयमें तुमने स्वयं अंकुरितकी है। स्वयं अपने हास्य, लीला-विलास, वंक विलोकनसे सींचकर तुमने इसे बढ़ाया है। तुमने अपने भुवन मोहन वंशीरवसे हमारा चित्त छीन लिया और अब कहते हो कि हम लौट जायँ ?

हम कैसे लौट जायँ ? हमारे पद तुम्हारे समीपसे एक पद हटते नहीं। कहाँ लौट जाय ? तुम्हारे अतिरिक्त तो हमें संसार सूना दीखता है। क्या करें कहीं जाकर ? हमारे चित्त एक पलको तुम्हारे पादपद्मोंको छोड़ और कुछ स्मरण नहीं कर पाते।

पुरुष-भूषण ! सब त्यागकर, सब सम्बन्ध भूलकर केवल तुम्हारी उपासनाकी आशासे हम आयी हैं। हमपर प्रसन्न हो जाओ ! तुम सबके विपत्ति विनाशक हो। हम आर्त अबलाओंको अपनी दासियाँ स्वीकार कर लो !

तुम्हारे सुन्दर स्मितसे हमारे अन्तरमें तुम्हारी प्राप्तिका प्रचण्ड वाडव प्रज्वलित हो उठा है। तुम तो व्रजके भय, दुःखको दूर करनेके लिए प्रकट हुए हो। हमारे इस अन्तस्तापको अपने अधरामृतसे सिञ्चित करके शान्त कर दो !

प्रियतम ! तुम हमें अपनी प्राप्तिसे रोक नहीं सकते। केवल संसार तुम्हें निष्ठुर कहेगा। हमारे हृदयोंमें और धैर्य नहीं है। तुम्हारी अपेक्षाग्नि असह्य है। हम तो अभी तुम्हारा ध्यान करके शरीर त्याग देंगी और तुम्हें प्राप्त कर लेंगी ; किंतु प्यारे ! प्रीतिकी मर्यादा सदाको मिट जायगी। लोग कहेंगे कि व्रजराज कुमारके सम्मुख उनकी प्रेयसियाँ तड़प-तड़पकर मरीं और······। अब अपना लो श्यामसुन्दर !'

सहसा वाणी अवरुद्ध हो गयी। लगा कि सब अब गिर पड़ेंगी धरापर ; किंतु तभी श्रीकृष्णचन्द्र शिलापरसे कूदे और सबके मध्यमें हँसते आ गये—'सखियो ! तुम इतनेमें अधीर हो गयीं ? मैं तो परिहास कर रहा था। मैं सदा-सदाका तुम्हारा हूँ, क्या यह भी कहना शेष है ?'

एक साथ अपार आनन्द पारावार उमड़ पड़े—कोई कल्पना सम्भव नहीं, जैसे सब कुमारियोंके मुख कमल खिले। सहस्र-सहस्र ज्योत्स्नाका आलोक आया। सबने घेर लिये मयूर मुकुटीको। सब जैसे लिपट पड़ेंगी—एक साथ प्रेम, उल्लास, मान, मिलन—सबमें हर्ष, उत्साह आया। मैं अब भूल चुका था कि मेरा स्वरूप विकारी है। मैं मन्मथ हूँ और मनोमन्थन कर सकता हूँ। मैं तो केवल इन कृपामय पूर्ण प्रेमाब्धिके पदोंमें अवनत हो रहा था।

विनोद, विलास, हास-परिहास प्रारम्भ हो गया था, परन्तु मैं स्पष्ट स्तब्ध था। मेरी विकृति अर्थहीन थी। मेरी छाया भी स्पर्श नहीं कर सकती थी। ये पुरुषोत्तम दिव्य क्रीड़ा करने लगे थे। किसीको गुदगुदा देते थे तो कहीं चुटकी भी भर लेते थे। किसीको ठेल देते थे तो किसीको आलिंगन दान भी कर रहे थे। इन परम निर्विकार पूर्ण-पुरुषने किशोरियों-की प्रीतिको सत्कृत-सम्मानित करना प्रारम्भ किया था।

'श्यामसुन्दर ! मेरी वेणी गूँथ दोगे ?' किशोरियोंमें अब मान आने लगा। उन्होंने कटाक्षपूर्वक सेवा सूचित करनी प्रारम्भ की। किसीकी

वेणी गूँथी इन्होंने और किसीकी अलकोंमें पुष्प सज्जित किये। किसीकी कञ्चुकी कसी और किसीकी कपोलपल्लीपर चित्रांकन पूर्ण किया। किसीके अधर रञ्जित कर दिये तो किसीके पदोंके अलक्तकका भी परिष्कार किया।

'पहिले मेरे लिए माल्य ग्रन्थन करो !' किशोरियोंमें परस्पर ईर्षा आयी।

'तुम पहिले मेरी वेणीमें सुमन सजाओ, अन्यथा मैं नहीं बोलूंगी तुमसे।' स्पर्धाने मानका रूप लिया। ये हँसते, मुस्कराते सबका सम्मान करनेमें व्यस्त हैं। सब अपनेको सर्वाधिक प्रेयसी मानकर अपना स्वत्व प्रदर्शन करने लगी हैं। ये कब तक ऐसे विवश रहेंगे ?

अपराधी मैं हूँ। मैंने आशंकाकी और ये पूर्ण पुरुष अन्तर्धान हो गये। आर्त क्रन्दन गूँज उठा कुमारियोंका। यह असह्य है मुझे, और कोई अपराध बन जाय, इसलिए मैं व्रजधराको प्रणाम करके भाग आया।



रासमें मान भङ्ग

हमने अत्यन्त अनुरोध करके, अपने अनन्त जनोंके सौभाग्यसे जो परमनिधि प्राप्त की थी, अपने अभिमानमें आकर उसे खो दिया हम हत-भागिनियोंने समझा ही नहीं कि यह हमारा हृदयहारी हरि गर्वहारी है। हम जो उस शिखि-शिखण्डको पाकर त्रिभुवनमें सबसे श्रेष्ठ, सबसे महान सौभाग्यशालिनी थीं, रमा-उमा-शारदाको अपने पद-प्रान्तमें बैठने योग्य भी नहीं समझती थीं, वही अब भाग्यहीना कंगालिनी हैं। अपने उस कृष्णधनको खोकर अब कहीं आश्रय नहीं हमारा। संसार हमारे लिए सायँ-सायँ करता मुख फाड़े खानेको आता कराल काल सर्पके समान हो गया है।

वह छलिया स्वप्नके समान आया था हमारे मध्य और हम उन्मादिनी हो गयीं। हम उससे रूठने गयीं। वह तो स्वप्नके समान ही अदृश्य हो गया। अब इस फूटे कपालको पीटने-क्रन्दन करनेसे क्या होना है।

सब कहती हैं, सब भोली सखियाँ समझती हैं कि अपराध उनका ही है। कोई इस अधमा चञ्चला चन्द्रावलीको कोसती नहीं। कोई इसे दोष नहीं देतीं; किंतु मैं कैसे अपनेको क्षमा कर दूँ। मुझे ही तो सबसे अधिक अभिमान हो गया था। मैं ही तो बहुत बोलने वाली बन गयी थी। मैं समझने लगी थी कि मैं बोली तो मेरे वाक्योंपर, मेरे रूपपर रीझकर वे अपनी उदासीनता त्यागकर हमारे मध्य आये थे। मैं ही सबसे अधिक इतराने लगी थी। मैं ही चाहने लगी थी कि वे मेरे—केवल मेरे बनकर रहें। मैं उनके कर खींचनेका दुस्साहस करने लगी थी। मैं रूठने चली थी—अरी मूर्खे, चन्द्रावली! वे कृपा करके अपना चरण स्पर्श तुझे दे देते हैं और तुझे आज श्रीराधाके समान मानिनी बननेकी सूझी थी? अब मरकर भी हतभागिनी तुझे शान्ति नहीं। वे तुझे क्षमा कर दें, यह किस मुखसे कहेगी उनसे?

ये सखियाँ—ये श्रीराधाकी सखियाँ भी दोष देतीं, झिड़कती तो तनिक शान्ति पाती मैं; किंतु ये सब इतनी सरलाएँ हैं कि सबकी सब गले लिपटकर रोती हैं। सब कहती हैं—'हाय सखी! मेरे अपराधसे ही वे रूठ कर चले गये। मुझ भाग्यहीनाके अभिमानने तुम सबको भी वञ्चिता बना दिया। मुझे सब मिलकर मारो, शाप दो! मुझे क्यों कण्ठसे लगाती हो। मैं तुम्हारे स्पर्शके योग्य नहीं। मेरा अमंगल कलुषित शरीर मत छुओ!'

सुन! सुन चन्द्रावली! यह तेरा अपराध सब अपने-में आरोपित कर रही हैं अभागिनी। लेकिन अब ऐसे बैठे तो नहीं रहा जा सकता। वे कहाँ गये? किधर गये? उन्हें कौन बतलावेगा?

ये अश्वत्थ, वट, पाकर, कदम्ब, अर्जुन—इतना ऊँचा सिर किये खड़े हैं। ये दूर तक देख सकते हैं। ये हम अवलाओंपर कृपा क्यों नहीं करते? ये पुकारने पर भी एक पत्र तक हिलाकर संकेत करते नहीं दीखते। एक पक्षी तक उस हमारे हृदयधनकी ओर नहीं उड़ाते। ये वृन्दावनके तरु जड़ तो नहीं हैं, निष्करुण भी नहीं हैं; किन्तु ये तपस्वी हैं। मौनव्रती हैं। यह भी तो सम्भव है कि वह निष्ठुर इनसे भी छिपगया हो। वह झुककर इनके नीचेसे निकल गया हो।

यह यूथिका, माधवी, मालती, मल्लिका—ये लताएँ इतना लदी हैं पुष्पोंसे। उसके कर-स्पर्शके बिना इतनी प्रफुल्लता कहीं आती है। इनके ही निकुञ्जमें तो बनमाली कहीं छिपा होगा; लेकिन इनमें भी कोई बोलती नहीं। क्या इन सबमें हमसे स्पर्धा है? हमारे प्रति ईर्ष्या है? वृन्दावनकी भूमिमें तो यह तुच्छता आया नहीं करती। हम हृदयधन खोकर भटकने वाली हतप्राणाओंसे कोई क्या ईर्ष्या करेगी; किन्तु वही निष्ठुर बहुत चपल है। चतुर चूड़ामणि है। ये लताएँ हमें सूचित कर सकती हैं, इस आशंकासे इनको स्पर्श भले कर गया हो, पर इनके समीप रहा नहीं। ये तो स्वयं अपने पुष्प गिराती रुदन कर रही हैं।

ये आम्र, जम्बु, नीप, तमालादि तरु भी मौन हैं। ये यमुना-किनारेके पर-दुःखकातर, अपने पत्र-पुष्प, फल-काष्ठ, अपनी अस्थितक देकर परोपकार करनेवाले ये पेड़ क्या हमें नन्दनन्दनका पता नहीं बता देते, यदि इन्होंने उसे देखा होता। ये हमारे दुःखसे दुःखित रुदन कर रहे हैं। इनके पत्रोंसे टप्-टप् विन्दु गिर रहे हैं। ये इनके अश्रु ही तो हैं।

कल्याणी तुलसी ! तुमको तो हमारा वनमाली कभी त्यागता नहीं। तुम्हारे दलोंकी मालापर भ्रमर उसके वक्षपर गुंजार करते ही रहते हैं। भगवति ! तुम तो दयामयी हो। तुम आशीर्वादमयी, सबकी आकांक्षा पूरी करती हो। हम बालिकाओं पर इतनी कृपा करो ! वह हमारे हृदयको चुराकर किधर चला गया ?

देवि ! तुम उसीकी हो ; किन्तु वही हमारा भी सर्वस्व है। तुम भी क्या आज उससे छली गयी हो ? तुम्हारे पत्र भी शीर्ण होकर गिर रहे हैं ! वह आज तुम्हारे समीपसे भी नहीं निकला ?

इतने हरिततृण! ये धरादेवीके रोमाञ्च ही तो हैं। यह रोमाञ्च— इतना रोमाञ्च इन्हें कैसे ? उस मनमोहनके चरणस्पर्शसे अथवा भगवान वाराहने आलिंगन किया था, उस आलिंगनका स्मरण आ गया है इन्हें ? अन्ततः तो हमारा वनमाली इनपर ही कहीं होगा। देवि ! दया करो ! आप ही उसका पता बतला दो !

लेकिन चाण्डालिनी चन्द्रावली ! तू इस योग्य है कि कोई तुझे उस अमृतवर्षी घनश्यामका पता बतलाये ? तू कालभुजाङ्गनी – तेरे अभिमानके विषने इन सब बालिकाओंकी यह दशा की है। तेरी कुटिलतासे वे कृष्ण कहीं चले गये हैं। तू कुटिला है—तू !

हृदयके इस हा-हाकारमें मैं भूल गयी अपनेको। मुझे लगा कि कालिन्दीके हृदयमें जो महाविषधर कालिय था, वह मैं ही हूँ। मैं पुकार उठी— 'बचो ! सब बचो मुझसे ! मै कालिय हूँ ! मैं सबको दंश करके मार दूँगा ! मेरा विष असह्य है।'

एक ने मेरा सिर पकड़के झुका दिया और उसपर अपना पैर रखकर पुकारने लगी—दुष्ट सर्प ! भागजा ! छोड़जा कालिन्दीका हृद ! जानता नहीं कि दुष्टोंका दमनकर्ता कृष्ण मैं अवतार ले चुका हूँ।'

बड़ी शान्ति मिली। उस परमपुण्यवतीके पादस्पर्शको मस्तकपर पाकर मैं सचेत तो हो गयी, किन्तु शान्त रही। इतना पुण्य मेरा कि यह उनकी सहचरी मेरे शीशपर पद धरे ! अवश्य वे अपनोंको अत्यधिक मान देने वाले इस पुण्यके प्रसादसे मुझ पापिनीपर भी प्रसन्न हो जायँगे। वे इसकी पदरजसे भूषित मेरी मांग, मेरी अलकें देखेंगे तो मेरे अभिमान—मेरे अवगुण भूलकर मुझे इस रजके नाते अपनी प्रीति प्रदान करेंगे। अब वे मेरी उपेक्षा नहीं कर सकते।

मैं नेत्र मूँदे, मस्तक झुकाये स्थिर बन गयी। यह परम सौभाग्य जितने यत्नसे प्राप्त हो, अब किसी प्रमादसे इसे खो नहीं सकती थी। नेत्र खोलने पड़े; क्योंकि सभी सखियाँ उन्मादिनी हो गयी थीं। सुन पड़ रही थी उनकी ध्वनि—'मैं कृष्ण! मैं कृष्ण!'

कोई अपना उत्तरीय उठाये पुकार रही थी—'गोपो! वर्षा, वायुसे निर्भय हो जाओ। मैंने गिरिराज उठाकर इसका उपाय कर दिया है।'

कोई पूतना बन गयी थी और दूसरी उसका स्तनपान करने लगी थी। कोई ऊखल बनी बठी थी और उसके साथ अपनेको अपने ही उत्तरीय-से बाँधकर कोई भयका नाट्य करने लगी थी। कोई उन हृदयहारीके समान ललित गतिसे झूमती चल रही थी और कोई ललित त्रिभाङ्गसे खड़ी हो गयी थी किसी लघु काष्ठको मुरली बनाकर।

जिनके अन्तरको मयूर मुकुटीकी जिस लीलाने अधिक प्रभावित किया था, वे सब उसी लीलाके साथ तादात्म्यापन्न हो गयी थीं। मुझे सखियोंकी यह उन्मादावस्था देखकर बहुत दुःख हुआ। मेरे ही अपराधसे मेरे ही अभिमानसे ये प्रिय-वियुक्ता हुईं। पृथ्वी फट जाती और मैं उसमें समा जाती।

मैं पृथ्वीपर सिर फटकने जा रही थी। मेरे सिरपरसे सखीने अपने पद हटा लिये थे; किंतु तभी दयामयी धरादेवीने दया की। मैंने देखा कि जहाँ मैं मस्तक पटकने जा रही हूँ, वहीं उनके चरण-चिह्न हैं।

यव, ध्वज, अंकुश, वज्र, कमल, छत्र, चक्र, स्वस्तिक, बिन्दु, अष्टकोण, शङ्ख, घट, मत्स्य, त्रिकोण, बाण, ऊर्ध्वरेखा, धनुष, गोखुर और अर्धचन्द्र—सभी चिह्न तो सुस्पष्ट हैं। श्रीनन्दनन्दनके इन चरण-चिह्नोंको भी क्या पहिचानकी अपेक्षा है। मैं आँख फाड़कर एक-एक चिह्न देखती रही। फिर मैंने पुकारा—'सखियों यह चरण-चिह्न है उस चतुर चूड़ामणि छलियाका। वह इधर आया है।'

सब दौड़ आयीं और झुक गयीं। ये चरण-चिह्न ही हमारे धन थे, आधार थे। हम इनको स्पर्श करके मिटानेका साहस नहीं कर सकती थीं। इन चिह्नोंकी रज उठाकर नेत्रमें, वक्षपर लगा लेनेकी कितनी बड़ी

लालसा मनमें उठी ; किंतु इनको मिटाकर हम कहाँकी होंगी ? सावधानी-पूर्वक चिह्नोंको सुरक्षित रखते हम उनके सहारे बढ़ीं।

कुछ पद बढ़ते ही ललिताने पुकारा-- 'मेरी सखीको वे साथ ले गये हैं !'

मैं समीप जाकर झुक गयी चिह्न देखने। कुछ छोटे चरण-चिह्न थे उन पहिले देखे पद-चिह्नोंके साथ। इन पद-चिह्नोंमें सुस्पष्ट ध्वज, पद्म, छत्र, यव, पर्वत, शक्ति, सिंहासन, रथ, ऊर्ध्व रेखा, चक्र, चन्द्र, अंकुश, दो विन्दु, लता, गदा, मत्स्य, शङ्ख, षटकोण दीख रहे थे। ये श्रीराधाके चरण-चिह्न हैं, यह हममें-से प्रत्येक पहिचानती हैं।

'धन्य हैं कीर्त्तिकुमारी। प्रियतमकी वास्तविक प्रेमभाजना हैं ये। इन्होंने पता नहीं कितनी आराधना की होगी कि हम सबको त्यागकर ये श्यामसुन्दर इनको अकेले ले गये हैं।' मुझमें स्पर्धा, ईर्ष्याका नाम नहीं था। मैं अपना हृदय चीरकर दिखा सकती थी कि मुझे कितना सन्तोष, कितना आनन्द हुआ ये दूसरे पद-चिह्न प्राप्त करके। मुझे अपना वियोग विस्मृत हो गया। वे एकाकी नहीं हैं, आनन्दमें हैं और उनकी परम प्रेयसी उनको सुखी करने साथ हैं, यह स्पष्ट होते ही मेरी समस्त व्याकुलता समाप्त हो गयी।

सब समझती हैं--इसलिए समझती हैं कि मैं पूरे प्रयत्नसे ऐसा प्रकट करती हूँ कि मैं श्रीराधाकी प्रतिस्पर्धिनी हूँ। यह मेरा अभिमान है, मेरी अधमता है। मैं विवश हूँ—मैं कहाँ राधाके समान अपना सुख, अपना सर्वस्व उन श्यामसुन्दरपर समर्पित कर पाती हूँ। मैं स्वार्थिनी हूँ। अपना सुख मुझे चाहिये। मैं उन नन्दनन्दनके सामीप्यके बिना रह नहीं पाती। मेरे समीप अपनी धृष्टताका अपने प्रागम्यका ही तो सहारा है। वे परम संकोचशील हैं। किसीका हृदय भग्न कर नहीं सकते। उनके इस स्वभावका मैं सदा अनुचित लाभ उठाती रही हूँ। मैं उनका पटुका पकड़ लूँ तो सदय मुझे अस्वीकार नहीं कर पाते—यही मेरा बल है। मैं उनके शील संकोच-को पाकर ही तो प्रगल्भा बनती हूँ। मैं अपनेको उनकी परम प्रिया प्रकट करती हूँ सब सखियोंके मध्य पूरे दर्पसे ; किंतु क्या नहीं जानती कि केवल राधा ही उन्हें सुखी कर सकती हैं। वे ही उनकी आह्लादिनी हैं।

मैं सखियोंमें अपनेको श्रेष्ठा कितना भी प्रकट करूँ। इतनी अज्ञ नहीं हूँ कि यह भी न जानती होऊँ कि मेरी सीमा क्या है। लेकिन राधा-

को क्या कहूँ, यह इतनी भोली क्यों हैं ? मुझसे मिलती है तो इतना स्नेह, सम्मान देती है जैसे यह स्वयं मेरी अनुजा है। यह समझती क्यों नहीं कि मैं सबके सम्मुख इसकी अवज्ञा करती हूँ, उपेक्षा करती हूँ। दर्पिता दिखलाती हूँ अपनेको। मैं जो रूप, गुण, शील, सुषमा, सौकुमार्यमें इसकी किसी सेविकाके भी समीप बैठने योग्य नहीं हूँ, अपनेको इससे श्रेष्ठा दिखलाती हूँ और यह है कि मुझे अत्यन्त आदरसे अंकमाल देती है। अपनेसे अधिक उत्तमा मानती है। मैं इसके शील-विनयका सम्मान करूँ तो कहाँ जाऊँ ? वे इसके हैं, इसीके वशमें हैं और यह उनका दोष नहीं है। यह तो राधाके अनन्त सौन्दर्यका, शीलका प्रभाव है, पर मैं प्रगल्मा धृष्टा न बनूँ तो मुझको कभी उनका सामीप्य प्राप्त होगा ? मैं ऐसी भी हूँ कि वे मेरी ओर आँख उठाकर भी देखें ?

वे राधाको लेकर वनमें चले गये हम सबको त्यागकर। यह वे न करते तो निष्ठुर-निर्दय सिद्ध होते। राधाको कहाँ कभी अपना सुख स्मरण आता है। यह तो उनकी सन्निधि भी सखियोंको देकर सुप्रसन्न होती है। इसके सुख, इसके सम्मानकी रक्षा वे नहीं करेंगे तो करेगा कौन ? वे इसके साथ ही परमाह्लाद पाते हैं।

यह रात्रि है। सघन वन है और इसमें कण्टक हैं, कुश हैं, पता नहीं कितने काले वृश्चिक, काल भुजङ्ग कहाँ छिपे होंगे। वे सब मुझे काटें—मुझे दंशित करें ! वे हृदय-धन और उनको आनन्द दे सकनेमें समर्थ राधा सुरक्षित रहे ! सुरक्षित रहें ये सब सखियाँ—इसलिए तो मैं इन सबके आगे चल रही हूँ। इस अभाग्यमें भी मुझे सूझता है कि आज राधाकी भी सखियाँ मेरी अनुगामिनी बन गयी हैं। ये कितनी सीधी हैं सब ! अपनी यूथेश्वरीसे पृथक पड़कर कितनी असहाय हो रही हैं !

मेरा दर्प, मेरा अभिमान ही तो मेरे यूथकी सखियोंमें प्रतिफलित होता है। आज मैं इनका मुख कैसे पकड़ सकती हूँ, ये मुझे सुनाकर, मुझे प्रसन्न करनेके लिए जो कहती हैं, उसे चुपचाप सुननेके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं। ये ईर्ष्याके कारण कैसे-कैसे अनुमान लगाने लगी हैं। एक कहती है—'इस वधूके चरणचिह्न इतने समीप हैं उनके पद चिह्नोंके कि स्पष्ट हो जाता है, इसके कन्धेपर भुजा रखे वे गये हैं और यह भी उनके कन्धेपर बाहु रखे उनसे सटी गयी है।'

दूसरी कहती है— 'यहाँ उन्होंने अपनी प्रेयसीके लिए कुसुम चयन किया है। उचक-उचककर पुष्प तोड़नेके कारण उनके पदोंके अग्रभाग गहरे पड़े हैं।'

एक कुछ चिह्नोंकी ओर संकेत करती है— 'यहाँ अवश्य दोनों बैठे हैं और उन्होंने अपनी प्रियाका पुष्पोंसे केश-शृङ्गार किया है। क्या पता यहाँ और क्या-क्या किया होगा उसके साथ।'

किसी गाय, वृषभ अथवा वनपशुके बैठनेके चिह्न ये हो सकते हैं; किंतु मेरे ही स्नेहसे, मेरी प्रीतिके कारण जो मेरी यूथ सखी ईर्ष्यावश अनुमानोंका आविष्कार कर रही है, उसे मैं कैसे वारित करूँ? ललिता, विशाखा, रङ्गदेवी, सुंदेवी आदि प्रसन्न हो रही हैं मेरी सखीके अनुमानके सहारे अपनी स्वामिनीके सौभाग्यका आभास पाकर। ये सरला बालिकाएँ मेरे कारण इस समय दुःखिया बन गयी हैं। मैं क्यों इनका यह किञ्चित् सुख भी छीनूं।

'उस वधूके पदचिह्न कहाँ गये?' मेरी सखियाँ स्पष्ट चरणचिह्न पहिचान कर भी ईर्ष्याके कारण ही राधाका नाम नहीं ले रही हैं।

'इसके बहुत सुकुमार पदकमल कष्ट पाते होंगे वनके तृणों-कंकड़ियोंसे। यह उनसे सहा कैसे जाता! यह उनकी प्राणप्रिया है। सबसे अधिक प्यार दिया इसे उन्होंने।' मेरी एक सखीने व्यङ्ग किया— 'देखती नहीं कि यहाँ उनके पदचिह्न कितने गहरे पड़ते गये हैं। अपनी प्रेयसीको कन्धेपर उठाकर चलनेके कारण उन भाराक्रान्तके ये पदचिह्न हैं।'

मैं और नहीं सह सकती थी। मैं सखीको उसके व्यङ्गके लिए उपालम्भ देने ही जा रही थी कि हम सबके श्रवणोंमें श्रीराधाका करुण-क्रन्दन पड़ा। वृषभानुनन्दिनीका वीणा-विनिन्दक स्वर और इतना आर्त!

'हे नाथ! मैं इस विपत्तिमें डूबी जा रही हूँ। चारों ओरसे अन्धकारका अजगर मुझे निगलने आ रहा है। प्यारे! दौड़ो और बचा लो मुझे! मैं अपराधिनी हूँ! मैंने अभिमान किया! मैं तुम्हारी प्रीति पाकर उन्मादिनी हो गयी! क्या हो जाता यदि मैं तुम्हारे साथ कुछ दूर और चली जाती। मेरे पदोंमें छाले पड़कर कुछ रक्त ही तो निकलता। प्रियतम! मैंने सोचा था कि तुम मेरे पदोंमें छाले देखोगे तो बहुत पीड़ा पाओगे! सचमुच मेरे पदोंमें पीड़ा होने लगी थी, इसलिए तुम्हें कष्ट न

हो , यह सोचकर मैंने अनुरोध किया था। तुम मुझे कन्धेपर कुछ दूर उठा ही ले जाते तो क्या हो जाता ? मैं भाग्यहीना तुम्हारे कन्धेपर बैठनेको इसीलिए तो उद्यत हुई थी कि तुम्हें मेरे स्पर्शसे सुख मिलेगा। तुम मुझे चाहे जहाँ ले जा सकोगे। मेरी यह धृष्टता थी तो तुम मुझे मना कर देते। तुम्हारी एक दृष्टि राधाको सिहरा देनेमें क्या समर्थ नहीं थी कि तुम अदृश्य हो गये ? श्यामसुन्दर ! अब तुम्हारे बिना राधा मर रही है। हाय ! तुम इसका यह प्राणहीन शव लिये फिरोगे अब और फूट-फूटकर रोओगे ! तुमने जीवित राधाको उठा लिया होता…। '

जैसे हृदय सहस्र-सहस्र टुकड़े हो जायगा ऐसा करुण विलाप। ऐसा मर्मभेदी क्रन्दन। ' श्यामसुन्दर ! मोहन ! प्यारे ! ' हिचकियाँ और फिर जैसे सब शून्यमें लय हो गया। ललिता , विशाखादि सब दौड़ीं ; किंतु मैं तो भूल ही गयी कि मेरे भी शरीर है। मैं इतना दौड़ भी सकती हूँ , यह मैंने कभी समझा नहीं था। मैं दौड़ी—दौड़ती चली गयी। दूसरी ओर देखनेका किसे ध्यान रह सकता था।

' राधा ! मेरी बहिन ! मेरी सखी ! मेरी स्वामिनी ! ' मैं क्या-क्या प्रलाप कर रही थी , किसीको स्मरण नहीं। वह समूलोन्मूलित स्वर्णलतिका मैया कीर्त्तिकी दुलारी , वृषभानु बाबाकी प्राणपोषिता , पाटल दलसे सहस्र गुणित सुकुमारी, नीलवसना भूमिमें मूर्छिता म्लान-कान्ति पड़ी थी। मैंने उसे अङ्कमें उठाया और चीत्कार कर उठी—' राधा ! नेत्र खोल बहिन ! तू ऐसी होगी तो हम सब अभी मर जायँगी। अपनेको सम्हाल ! तू रहेगी तभी श्यामसुन्दरके आनेकी आशा रहेगी। वे आवेंगे , तेरे , तेरे लिए ही आवेंगे ! नेत्र खोल बहिन ! '

मेरे कातर स्वरने , मेरे अश्रुओंने सचेत किया और वह देखते ही दोनों भुजाएँ मेरे गलेमें डालकर क्रन्दन करने लगी— ' जीजी ! मैं तेरी , तुम सबोंकी अपराधिनी हूँ ! मुझे क्षमा कर दे ! अपनी इस अनुजाको क्षमा कर दे ! '

मैंने हृदयसे लगा लिया—' मेरी अनुजे ! तू यह बात मत कह। तुमसे अपराध कभी हो नहीं सकता। मैं सब समझती हूँ। तनिक शान्त हो। '

' जीजी ! वे मेरा कर पकड़कर चले तो मैं मना नहीं कर सकी उनको। ' वह फूट कर रो पड़ी— ' उन्होंने मुझे मौन रहनेका संकेत किया।

मैं तुम सबका सुख लूटकर सुखी होने चली थी— मुझे क्षमा कर दे जीजी ! मेरे अभिमानने उन जीवनघनको खो दिया । वे मुझ दर्पिताको त्याग गये । मैंने सबसे उनको छीनकर अकेली पाना चाहा—मेरा पाप, मेरा अपराध……… ।'

वह फिर मूर्छिता होने लगी थी । मैंने उसको सावधान किया— 'राधा ! उठ शीघ्र । हम सब उनको ढूँढ़ेंगी । उनके पद चिह्न हमको मिल रहे हैं ।'

यह राधा इतनी भोली है कि अपने अश्रु पोंछना भी भूल गयी। मैंने अपने अञ्चलसे इसके अश्रु पोंछे । यह तो ऐसी हो गयी जैसे मैं ही इसकी सहारा, आश्रय सब हूँ । इसकी सखियाँ इसका और मेरा मुख देखती रह गयीं । इसने मेरा हाथ पकड़ा— 'जीजी किधर गये वे ?'

मैं अब सबकी अग्रणी हो गयी थी । मैं उनके पद-चिह्न देखते चली । राधा मेरे साथ सटी चल रही थी । जहाँ तक वनमें चन्द्र-ज्योत्सनाका प्रकाश था, मैं पद-चिह्न देखते चलती गयी । आगे सघन वन था । मैंने राधाकी ओर देखा— 'अब बहिन ?'

'जीजी ! हम सब ढूँढ़ती चलेंगी तो वे और अन्धकारमें छिपते जायेंगे । कितना अन्धकार है । वे हठी हैं, इसमें दूर जानेमें उन्हें कष्ट होगा, पर मानेंगे नहीं ।' राधाने कहा— 'जीजी हम तो सदासे हारी हैं उनसे । चल हम लौट चलें पुलिनपर । जहाँ हमने उन्हें खोया है, वहीं बैठकर उन्हें पुकारें । वे हमें देखने ढूँढ़ने वहीं आवेंगे । अब तो वही दया करके दर्शन दें तो उन्हें पाया जा सकता है । हम अबला कहाँ ढूँढेंगी उनको ।'

राधाकी बात ही उचित थी । हम सब वहीं पुलिनके समीप उसी शिलातलके पास पहुँच गयीं जहाँ हमने आज सायं उन्हें पाया था । जहाँ मुझ हतभागिनीके अभिमान-दोषसे वे सबको ही त्यागकर चले गये ।

हम सब और क्या कर सकती थीं । सब सिमटकर बैठ गयीं और एक साथ पुकारने लगीं । सृष्टिकर्त्ताने हम स्त्रियोंके रुदनको भी सङ्गीत बना दिया है, अतः कोई हमारे उस समवेत क्रन्दनको गायन कहे तो मैं आपत्ति क्यों करूँ । हमें तो पुकारना था—हम पुकार रहीं थीं । प्रार्थना कर रही थीं और जो अपना सर्वस्व है, उसे उपालम्भ नहीं देंगी तो किसे देंगी ?

हमने अपना घर-द्वार, स्वजन-सम्बन्धी, लोक-परलोक सब छोड़ा उसके लिए और वह छलिया इतना निष्करुण निकला कि हमें रात्रिमें वनमें असहाय छोड़ कर छिप गया ! हमको उसने दावाग्निसे, वर्षासे, विषसे कालियके और बार-बार असुरोंसे इसीलिए बचाया था कि हम उसके लिए तड़प-तड़पकर प्राण त्याग करें ? उसकी वह विशाल भुजाएँ, प्रशस्त वक्षस्थल, अलकावृत्त स्मितशोभितानन देख-देखकर हम उसकी निःशुल्क दासियाँ हो गयीं और हमें वंशी ध्वनिसे बुलाकर, हास्यविनोदसे अपनी ओर आकर्षित करके भी वह अपने अधरामृतका एक सीकर प्रदान करनेमें कृपण हो गया ?

ऋषि-मुनि कहते हैं कि वह करुणार्णव है। वह व्रजजनोंकी विपत्ति दूर करने अवतीर्ण हुआ है और इतना निष्ठुर—इतना क्रूर हो उठा है हम बालिकाओंपर कि हम उसकी एक झाँकीके लिए तरस रही हैं, उसके वियोगकी वह्निमें भस्म हुई जा रही हैं और वह छिपा है ?

सब सह लेतीं हम ; किंतु यह कैसे सहा जाय कि उसके जिन सुकुमार चरणोंको अपने कठोर वक्षपर धरते भी हमें सङ्कोच होता है, लगता है कि हमारे वक्षोजोंके स्पर्शसे उसके पद पीड़ित न हों, उन्हीं चरणोंसे वह इस कुश, कण्टक कंकड़ियोंसे भरे वनके अन्धकारमें भटक रहा है। कितनी व्यथा, कितनी पीड़ा पाते होंगे उसके वे कोमल पद-कमल ! यह पीड़ा क्या सहन करने योग्य है ?

हम सब यह सोचनेमें—पुकारकर गाकर कहनेमें ऐसी तल्लीन हुईं कि देखा ही नहीं, वह किधरसे आया। अपना पटुका दोनों करोंसे पकड़े वह श्यामसुन्दर हमारे मध्य सहसा आ खड़ा हुआ मुस्कराता। वह उसकी शोभा—कोटि-कोटि मन्मथ उसके एक-एक रोमपर वारित कर दूं।

मैंने ही राधाके कानमें कहा— 'बहिन ! अब यहाँ रुकना उचित नहीं। इस वृक्ष-लताओंकी सघनतासे दूर पुलिनपर चल। इस छलियाका विश्वास नहीं। यह फिर छिप जायगा।'

राधा उठ खड़ी हुई तो श्यामसुन्दर भी साथ चलता ही। हम सब उसे घेरे कालिन्दी पुलिनपर आ गयीं। अब कहीं कोई छिपनेका स्थान नहीं। चारों ओर प्रशस्त पुलिन। हम सबने अपने उत्तरीय उतारे और एक पर एक बिछा दिये। नन्दनन्दन हँसकर बैठ गया सबसे ऊपर बिछे राधाके नीलाम्बरपर।

मैंने इस मयूर-मुकुटीका एक चरण लेकर अपने वक्षपर धर लिया। सखियोंने तात्पर्य समझ लिया। दूसरा चरण दूसरीने अंकमें लिया। दोने दोनोंकर अपने हाथोंमें लिये। अब यह वनमाली कहीं जा नहीं सकता। लेकिन राधामें प्रेम-रोष जागा है। यह कटाक्षपात् पूर्वक तिरछे देखती दूर बैठी है। अनेक हैं जो नेत्र बन्द करके हृदयमें इस मनमोहनको लिये मग्न हैं।

मैंने अपनी प्रगल्भता प्रदर्शित की। पूछ लिया—'भुवनसुन्दर ! एक बात समझा दो हमें। तुम परम निपुण हो।'

'क्या पूछोगी तुम ? पूछो !' हँसकर ही बोले।

'कोई प्रेम करनेपर प्रेम करते हैं। कोई बिना प्रेम किये भी प्रेम करते हैं। कोई प्रेम करने पर भी प्रेम नहीं करते। इनकी स्थिति क्या है ?' सभी सखियोंने मेरी ओर स्मित पूर्वक देखा।

'जो प्रेम करनेपर प्रेम करते हैं, वे प्रेमी ही नहीं हैं। वे तो स्वार्थी हैं। उनका प्रेम भी परस्पर स्वार्थ व्यापार है। विशुद्ध प्रीति कहाँ उनमें।' हमारा वनमाली इतना गम्भीर बनकर उत्तर देगा, ऐसी आशा मुझे नहीं थी।

'जो प्रेम न करनेपर भी प्रेम करते हैं, वे माता-पिताके समान आदरणीय हैं। वे करुणामय परमादर भाजन हैं। उनकी पुनीत प्रीतिका प्रतिदान न वे चाहते, न उन्हें दिया जा सकता। ऐसा प्रेम पाना प्राणीका परम सोभाग्य।' श्याम सुन्दरका स्वर श्रद्धा समन्वित हो गया।

जो प्रेम करनेपर भी प्रेम नहीं करते, उनमें दो प्रकारके लोग होते हैं। एक आत्माराम आप्त-काम महापुरुष। इनको सब अपने स्वरूप ही प्रतीत होते हैं। इनसे प्रेम करके प्राणी स्वयं पवित्र हो जाता है। इनसे प्रीति जीवन मरणसे मुक्त कर देती हैं; किंतु ये महापुरुष किसीसे प्रेम नहीं करते। वे अपने स्वरूपमें ही तन्मय रहते हैं।' बड़ी गम्भीरतापूर्वक यह बात कही गयी।

'दूसरे जो प्रेम करनेपर भी प्रेम नहीं करते वे कृतघ्न, भारी द्रोही कुपुरुष हैं। जो परम पवित्र प्रेमका भी सत्कार न कर सके, वह यदि आत्माराम महापुरुष नहीं है तो अवश्य वज्र हृदय कृतघ्न कुपुरुष है। हम सब यह सुनकर हँस पड़ीं। मैंने राधाकी ओर देख लिया। वह भी हँस पड़ी।

'सखियों ! मैं तुम्हारे हास्यका अर्थ समझता हूँ।' श्यामसुन्दर गम्भीर बने रहे— 'मैं तुम सबके प्रेमको न समझता होऊँ, ऐसा भी नहीं है ; किंतु प्रेम करना तो व्यापार है। मैं चाहता हूँ तुम्हारा प्रेम अनन्त अपार बढ़ता रहे और सदा तुम्हारा ऋणी बना रहूँ। मैं तुमसे छिप गया, यह सोचकर कि इससे तुम्हारा प्रेम बढ़ेगा। निर्धनको धन मिल जाय और मिलकर फिर नष्ट हो जाय तो जैसे उसकी धन लिप्साका पार नहीं रहता, वैसे ही मेरे वियुक्त होनेसे तुम्हारी प्रीति पराकाष्ठाहीन बढ़ती जायगी, यह मैंने सोचा था।'

'तुम सब लोक-परलोक, स्वजन-सम्बन्धीका मोह, सब त्यागकर मेरे समीप आयीं। महामुनीन्द्र भी समस्त मोह इस प्रकार त्याग नहीं पाते। मैं चाहूँ भी तो भी ब्रह्माकी आयु लेकर भी तुम्हारे प्रेमका प्रतिदान कहाँ दे सकता हूँ। तुम तो अपनी ही उदारतासे मुझे अपनाये रहो। मैं तुम्हारा— तुम सबका प्रेमक्रीत सेवक।' वे जाने क्या-क्या कहने वाले थे। मैंने इनके मुखपर हाथ धर दिया। राधाने प्रशंसा भरी दृष्टिसे देखा मेरी ओर।

इनकी ये बातें—ये हमारे जीवन धन, हमारे सर्वस्व ! ये ऐसी बातें कहें—इनकी ये सुधा सनी बातें। हम सब इनकी चरण किंकरियाँ विमुग्ध सुनती रहीं इनके श्रीमुखको अपलक देखती।



महारास

श्रीहरिने मोहिनी रूप धारण करके मुझे उमाके समीप रहते भी सम्मोहित कर लिया था। उन सर्वसमर्थकी मायासे मोहित मैं नग्न, उन्मत्त मोहिनीके पीछे भागता फिरा। जब इसे स्मरण करता हूँ—शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। उन मायाधिपके सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं।

इस समय तो सर्वेश्वरेश्वर परात्पर पुरुष स्वयं पधारे हैं पृथ्वीपर। वे रसराज महारास करनेवाले हैं रासेश्वरीको लेकर उनकी अभिन्न सहचरियोंके साथ। उनका यह रास वृन्दावनमें— गोलोकके नित्य निकुञ्ज-में नित्य है, शाश्वत है; किंतु व्रजधरापर वृन्दावनमें भी शरत्पूर्णिमाकी रजनीमें वह परम रसमयी लीला प्रादुर्भूत हो रही है। उसमें उन पुरुषोत्तम-के अतिरिक्त तो और किसी पुरुषका प्रवेश शक्य नहीं; परन्तु स्त्री बनकर सम्भव है मैं प्रवेश पा सकूं। वैसे वहाँ आद्या भगवती कात्यायनी--ललिता-की अनुमति पाये बिना तो कोई प्राणी प्रवेश नहीं पाता। मूर्त्तिमान महाभाव रासेश्वरी श्रीराधाकी संकेत—स्वीकृतिके बिना आद्या अनुमति नहीं देतीं, इतना सब होनेपर भी प्रयत्न करूँगा। श्रीकृष्णचन्द्रका जो सहज स्नेह है मुझपर, उसीका सहारा है।

किसीको यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि श्रीहरिने मोहिनी रूप धारण करके मुझे सम्मोहित किया, अतः मैं यह स्त्री शरीर स्वीकार करके रसराजको मोहित करनेका मनोरथ करूँगा। वहाँ स्वयं रासेश्वरी हैं और उनका अनन्त आकर्षण श्रीकृष्णचन्द्रको विमुग्ध बनाये रहता है। वे उन मयूर-मुकुटीकी स्वमोहिनी आह्लादिनी पराशक्ति—शिव उनकी सहचरियोंमें—सेविकाओंमें भी स्त्री बनकर प्रवेश पा जाय तो परम सौभाग्य।

पर्वताधिराज तनयाको साथ लानेका प्रश्न ही नहीं था। उनके साथ स्त्री शरीर धारणमें सङ्कोच न भी करूँ तो भी पहिचानकर पकड़ लिये जानेका भय तो है ही। न गण, न वृषभ—यह सङ्ग-साथ सम्भव नहीं। अपने कर्पूर-गौर रूपसे स्त्री बन जानेका साहस भी नहीं कर सका। यह

चन्द्रोज्वल रूप रासेश्वरीकी अनन्त सौन्दर्य राशि सखियोंके सम्मुख अत्यन्त उपेक्षणीय प्रतीत होता। मैंने अपने नीललोहित रूपका आश्रय लिया। श्रीकृष्णकी सखियोंमें कुछ श्यामाङ्गी भी तो हैं, मैं उनमें छिप सकता हूँ। क्या हुआ कि सबसे अधिक काली दीखूँगी। इसमें तो सेविका समझ लिये जानेकी सुविधा है और यदि ऐसा हो जाय—सेवाका सौभाग्य मिल सकता है।

× × ×

मैं वृन्दावन पहुँचा तो शशाङ्ककी गति ही स्तम्भित नहीं हो गयी थी, मेरी स्वयंकी गति गगनमें ही स्तम्भित हो गयी। मैं वहींसे दर्शन करता रहा—बहुत देर तक आत्म-विस्मृत बना रहा। कब तक ? कुछ पता नहीं; किंतु सम्भवतः सम्पूर्ण दिव्य रात्रि तक। मैं जब नीचे पहुँच सका तब तो रस-राजकी रासक्रीड़ा समाप्त ही होने वाली थी।

प्रारम्भसे दर्शनका अवसर प्राप्त हुआ था मुझे। वनमाली पुलिन-परसे उठे और इन्होंने मुरली अधरोंपर रख ली। रासेश्वरीको आदरपूर्वक वाम भागमें ले लिया। यह श्रीराधा-कृष्णकी परस्परालिंगित अपार छवि-छटा। वाम भागमें झुकता, लहराता मयूर मुकुट और नील-पीत वसनोंकी सम्मिलित शोभा। दोनोंके अङ्गोंपर उनकी अङ्गकान्तिसे बने हरिद्वर्ण वस्त्र; किंतु श्यामका वस्त्र श्रीराधाके अङ्गोंपर पहुँचकर शतगुणित पीत हो उठता था और रासेश्वरीके वस्त्रकी नीलिमाकी ज्योति रसराजके श्रीअङ्गपर पहुँचकर परम कान्ति देती थी।

कहना कठिन था कि दोनोंमें कौन गा रहा था कब और कौन कब वंशी बजाने लगता था। दोनोंके सटे मुख मुरलीके समीप। सखियाँ चारों ओर घेरकर थिरकने लगी थीं। सब गा रही थीं और नृत्य कर रही थीं। अकल्पनीय सुषमामय लास्य नृत्य—इस सम्मोहन मधुर माधनकी सम्भावना भी सृष्टिमें नहीं।

सुर विमानोंपर बैठे सुरांगनाओंके साथ आ गये थे। उन्होंने सुमन वर्षा प्रारम्भ कर दी। गन्धर्व तथा किन्नरोंने वाद्य सम्हाले। अप्सराओंने भी नृत्यके अनुकरणका प्रयत्न किया। कोई आशंका नहीं थी कि इनमें कोई मुझे स्त्री-शरीरमें पहिचान लेगा।

नृत्यमें वेग आता गया। रसराजने अनेक रूप धारण कर लिये। जितनी सखियाँ थीं, उनके आधे रूप। दो गोपीके मध्य एक श्यामसुन्दर।

दोनोंके कन्धोंपर उनकी भुजाएँ और दोनों ओरसे सखियोंके स्वर्णसुन्दर बाहु उनके स्कन्धोंपर। परस्पर भी एक-एक बाहु उन्होंने पार्श्वस्थ सखीके स्कन्धपर रख लिया।

श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श, सन्निधि मिलते ही गोपियोंकी पद-गति तीव्रसे तीव्रतम होती चली गयी। मध्यमें रसशेखर श्रीवृषभानु-नन्दिनीके साथ ठुमुक रहे थे और वंशी बजानेके साथ गा भी रहे थे। सुरोंके कर स्तम्भित हो गये। गन्धर्व-किन्नरोंके वाद्य साथ नहीं दे सके। अप्सराएँ लज्जित, थकित होकर स्तब्ध खड़ी रह गयीं। उनके और सुराङ्गनाओंके वस्त्र श्लथित होने लगे अतिशय विमुग्ध होनेके कारण।

श्रीरासेश्वरका सप्तम स्वर उठा और गूँजता चला गया। यह सबसे अमिश्र स्वर माधुरी—सृष्टिने कभी यह स्वर सौष्ठव सोचा भी नहीं होगा। रसराज झूम उठे— 'साधु ! साधु !' और स्वयं उसी स्वरको ध्रुव बनाकर बार-बार दुहराने लगे। उल्लसित होकर बार-बार आलिंगन दान किया। इन्होंने अपनी परम प्रेयसिकों।

इस सङ्गीतका—इस नृत्यका साथ अप्सराएँ, गन्धर्वादिके वाद्य कैसे देते। गगनमें तो सब स्तब्ध-मूर्तिके समान जड़ हो गये थे। केवल नीचे व्रजसुन्दरियोंके नूपुर, किङ्किणी, कङ्कणोंकी सुमधुर रुनझुन—ललित क्वणन उनके सङ्गीतका साथ दे रहा था। भ्रमरोंकी अवलि अवश्य अपनी गुञ्जारसे साथ दे रही थी।

नृत्यमें अधिक और अधिक वेग आया। व्रजसुन्दरियोंका सङ्गीत शान्त हो गया, केवल नृत्य। उनके आभूषणोंका क्वणन और भ्रमरोंकी गुञ्जार। विश्वविमोहिनी मुरलीकी ध्वनि नृत्यको तीव्रतम करती जा रही थी।

लगता था कि गोप-किशोरियोंकी क्षीण कटि मध्यसे अब टूटी, अब टूटी। उनकी वेणियाँ खुल गयीं। आपाद लुलायित केशराशि पृष्ठदेशपर लहराने लगी। वेणियोंमें ग्रथित मल्लिका मालाएँ, सुमन कबके गिर चुके। कञ्चुकीके वस्त्र खुल गिरे और साड़ियाँ अस्त-व्यस्त उड़ने लगीं।

कुण्डल अलकोंमें उलझकर कपोलोंसे ऊपर उठकर स्थिर हो गये। वक्षपरकी मालाएँ टूट गिरीं अथवा उलझ गयीं। स्वेदार्द्र भाल, कपोल, वक्ष। अरुणतर कोमल कमल-मुख—नृत्यका उद्दामवेग। सम्पूर्ण सृष्टिका कण-कण अस्थिर हो उठा—सब अणु अनन्त काल तक इस नृत्य वेगसे

नर्तन करते रहेंगे। वायु ही नहीं, ग्रहोंकी गति भी थकित हो गयी। केवल कालिन्दामें उत्ताल तरंगे उठ रही थीं। यमुनाका प्रभाव उलट पड़ा था और सूर्य-सुता अपनी लहरियोंसे लाकर सहस्र-सहस्र सरोज पुलिनपर समर्पित कर रही थीं।

सहसा वंशी ध्वनि मन्द हुई और विरमित हो गयी। नृत्यमें चञ्चल थिरकते श्रान्त पदपद्म रुके। मध्य कर्णिकापर महाभावने रसराजको अङ्कमाल दी। श्यामसुन्दर उतने स्वरूप हो गये जितनी सखियाँ थीं। सबने उनको अपने पार्श्वमें पाया।

किसीने नृत्य श्रान्त होकर इनको आलिंगन बद्ध कर लिया। किसीने कण्ठमें पड़ी भुजाको चुम्बन दिया। मध्य कर्णिकापर युगलकी कपोल पल्ली मिली और परस्पर ताम्बूल विनिमय हुआ। अब रस-राजकी रस-क्रीड़ा—गोपी-वल्लभने प्रत्येकको परमानन्द प्रदान किया। उनकी अलकें सुलझायीं, उनके कपोल घर्म पोंछे अपने पटुकेसे।

अत्यन्त क्रीड़ा श्रान्त सखियोंको लेकर वनमालीने यमुनाके प्रवाहमें प्रवेश किया और जल विहार चलने लगा। शत सहस्र शतदलारुण हाथोंसे सखियाँ व्रजराज कुमारपर जल उछालने लगीं और ये भी उनके मुखोंपर जलके छींटे मारने लगे। जल क्रीड़ाके मध्य कौन इन्हें अपने भुजापाशमें आबद्ध कर लेगी और ये किसे सम्मुख या पीछेसे पकड़ लेंगे कोई क्रम नहीं।

देर तक जलक्रीड़ा करके निकले। योगमायाने वस्त्र प्रस्तुत कर दिये। आर्द्र वस्त्र विसर्जित हुए; किंतु विन्दु टपकाती अलकें, भीगे शरीर। व्रजवल्लभ सबको लेकर पुलिनपर, कुञ्जोंमें विचरण करते विहार करने लगे।

इनका यह विहार—मैं कामारि देखता हूँ कि विकारका कहीं संस्पर्श भी नहीं। शरीर तो दूर—किसी मानसमें छाया तक नहीं। जैसे शिशु दर्पणमें पड़े अपने प्रतिबिम्बके साथ क्रीड़ा करे—केवल क्रीड़ा। परमप्रेमका दिव्य विलास। गोप-किशोरियोंमें केवल एक उत्कण्ठा—श्यामसुन्दरको अधिकसे अधिक आनन्द जैसे प्राप्त हो, वह—वही चेष्टा, वही क्रिया और ये आनन्दघन इन सबको आनन्दित करनेमें लगे हैं। ये जैसे प्रसन्न हों, ये जैसे आनन्दित हों वह श्यामसुन्दरकी क्रिया। अपने सुख, अपने आनन्दकी तो कल्पना ही किसी मानसमें नहीं आती।

अपने आनन्दकी उत्कण्ठा केवल मेरे मनमें उठी। मैं अपनेको और अधिक रोक नहीं सका। मेरी आतुरता-व्याकुलता देखकर अदृश्य योगमाया कात्यायनीने सस्मित स्वीकार कर लिया मेरा उस दिव्यधरापर रास-मण्डलमें प्रवेश। मैं अपने स्त्री शरीरसे पहुँच गया और सबसे वहि:वृत्तकी सखियोंके समुदायमें सम्मिलित हो गया।

शीलमयी श्रीराधाने अविलम्ब अपने रसराजके श्रीमुखको सस्मित साभिप्राय देखा। मयूरमुकुटी सहसा उठे और मेरे सम्मुख सीधे आकर अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया उन्होंने— 'आप पधारे! हम सब कृतार्थ हुए; किंतु आप मेरी आत्मा—मुझसे सदा अभिन्न। आपको इस स्त्री शरीरकी क्या आवश्यकता है? आपसे भी मेरा कुछ रहस्य है?'

मैं पकड़ लिया गया। सङ्कोच सहित मैंने अपना स्त्री शरीर छोड़ा और पुरुष रूप धारण किया; क्योंकि अब और उपाय नहीं था। नन्द-नन्दनने समस्त गोपियोंके साथ मेरी पूजा की। उस रात्रिमें भी विल्वपत्र, अर्कपुष्प, मल्लिका मालाएँ और सुन्दर उत्फुल्ल संरोजोंसे मुझे आपाद मस्तक अलंकृत कर दिया। अन्तमें बोले— 'अब आप गोपेश्वर हो गये। इस वृन्दावनमें ही श्रीविग्रह रूपमें नित्य निवास करें। हम सबको आपका शाश्वत संरक्षण एवं सान्निध्य प्राप्त हो।'

मैं इन नवघनसुन्दरके स्नेहसे विह्वल बोल नहीं पा रहा था। इन्होंने हँसते हुए हाथ जोड़कर कहा— 'आप आशुतोष कबसे कृपण हो गये? अब तो ओम् कहिये।'

'ओम्! एवमस्तु! ओम्!' मैं बोल उठा— 'देव, आपकी सन्निधि प्राप्त हो तो उसका परित्याग कर दूँ, भूतनाथ होनेपर भी इतना उन्मत्त तो नहीं हूँ।'

ब्राह्मी निशा व्यतीत हो रही थी। उषःकाल आसन्न था। रसिक-शेखरने सखियोंको यह निकुञ्ज लीला समाप्त करके स्वगृह लौटनेको कहा। कोई इनके श्रीचरणोंके समीपसे जाना नहीं चाहती थी। बहुत ही विवशतापूर्वक सब लौटीं।

यह लौटना सबका रस-परिपाक मात्र ही तो है। रासकी यह नित्य-लीला तो शाश्वत है। यह कहाँ संसारमें आविर्भूत अवतार लीला है कि विरमित होगी। यह तो सदा चलती है और इसमें यह विराम रस-परिपुष्ट ही करता है।

अजगर उद्धार

मुझ पर महेश्वर तथा आद्या जगदम्बाका सहज स्नेह है। कैलाश और काशी—दोनों मेरे लिए अपने पितृ सदन हैं। मेरे औधत्यकी सदा मेरे अमित करुणाकर आराध्यने क्षमा किया है। उन्होंने त्रिलोकीको संतप्त करनेवाले मेरे पुत्रोंके त्रिपुरको भस्म कर दिया; किंतु पिनाकपाणिको उस समय भी अपना यह पुत्र भूला नहीं। वीरभद्रको भेजकर उन्होंने मुझे पहिले ही वे पुर त्यागकर तलातल तत्काल भेज दिया। आज महा-शिवरात्रिके समय अपने उन महादेवकी अर्चा मैं कैलाश, काशी, केदार अथवा किसी भी ज्योतिर्लिङ्गमें कर सकता था; किंतु वे आशुतोष सर्व-व्यापक हैं, उन्हें तो केवल श्रद्धा अपेक्षित है।

वे देव-देव नील-कण्ठ कैलास त्यागकर वृन्दावन पधारे और यहाँ गोपेश्वर बनकर विराजमान हुए तो क्यों मैं आजकी आराधना इसी पीठ-पर सम्पन्न न करूँ। इससे अधिक जागृत पीठ कहाँ प्राप्त होगा, जहाँ भगवान वृषभध्वज अपनेसे अभिन्न श्रीनन्दनन्दनके आग्रहसे आकर श्रीविग्रह बन गये हैं।

पृथ्वी ही कर्मलोक है। तलातल त्यागकर मैं धरापर—भारत भूमिमें खाण्डव वनमें इसीलिए इन दिनों रहने लगा हूँ, जिससे मेरी आराधना केवल भावात्मिका न रह जाय, उसकी क्रिया भी सफला होकर मेरे भूति-भूषण भूतनाथ स्वामीको सन्तुष्ट करती रहे।

प्रभु पधारे व्रज भूमिमें—यह उनके इस प्रिय पुत्र-से अज्ञात कैसे रहता। मैं इस काल-रात्रिकी अर्चन क्रिया उनके गोपेश्वर विग्रहको अर्पित करने आ गया। भगवती योगमायाको मेरे आनेपर आपत्ति तो तब होती, जब मैं दुर्भाव लेकर आता। मुझे व्रज प्रवेशमें कोई बाधा नहीं प्राप्त हुई।

व्रज और उसमें भी यह वृन्दावन—यह दिव्य भूमि, इसका वैभव वर्णनका विषय नहीं बनता। अमरोंकी अमरावतीसे अधिक वैभव तो हम दानव-दैत्योंकी अधोलोककी पुरियोंमें ही है; किंतु यह तो दिव्यधाम है। इसकी तुलना—स्पर्धा सम्भव नहीं। मय इस धराको प्रणिपात ही कर

सकता है। मेरे महेश्वर सचमुच मुग्ध होकर ही यहाँ भूतेश्वर, चक्रेश्वर रूपोंमें रहनेपर भी वृन्दावनमें गोपेश्वर बनकर बसने आये हैं।

कितनी प्रीति है श्रीकृष्णचन्द्रकी महेश्वरमें। अद्भुत अभिन्नत्व— वे इनके दर्शनको सदा समुत्सुक रहते हैं, इनके स्मरणसे विभोर हो उठते हैं, यह मैंने बार-बार देखा है और देखता हूँ कि यहाँ इन श्रीनन्दनन्दनने महाशिवरात्रिका निर्जल व्रत किया है। अभी नौ वर्ष, छः मास, छः दिनकी अल्पवय और इसमें इतना आग्रह व्रतके प्रति, ऐसी श्रद्धा, इतना उत्साह!

सभी गोप श्रीहरिके आराधक हैं। सबकी भगवान नारायणमें अनन्य निष्ठा है; किंतु सब मेरे शशाङ्कशेखरमें सुदृढ़ श्रद्धा रखते हैं। सबने आज निर्जल व्रत किया है। श्रीकृष्णचन्द्रने व्रत किया तो इनके सखा कैसे मान जाते। सब अपने माता-पितासे कहते हैं— 'हम कन्हाईसे तो अधिक ही सबल हैं। वह नहीं खाता या जल पीता तो हम क्या दुर्बल हैं उससे। हम भी व्रत करेंगे!'

बालक व्रत करेंगे तो बड़े क्या बिना व्रतके रहेंगे? व्रत तो व्रजमें बालिकाओं तकने किया है। इतनी श्रद्धा तो मेरे अपने कुलके कुलिशकाय दानवोंमें भी नहीं है।

व्रजेश्वरी व्याकुल हैं। व्रजराज कुछ कह नहीं पाते। महर्षि शाण्डिल्य-ने समझाया था— 'कृष्णचन्द्र! तात, तुम गोदुग्ध ग्रहण करके व्रत करो!'

'मुझे भूख लगेगी तो ले लूंगा!' मैं जानता हूं कि इनके आनन्दघन श्रीविग्रहको क्षुधा-पिपासा स्पर्श नहीं करती; किंतु यह सुकुमार शरीर देखकर तो मुझ दानवका मन भी व्यथित होता है। मेरे कृपामय आराध्य-को इनके व्रतकी आवश्यकता कहाँ है। लेकिन ये मानेंगे नहीं।

गोपोंका, गोपियोंका उत्साह, इनकी श्रद्धा समझमें आती है, परन्तु ये श्रीव्रजराजकुमार नन्हे बालकोंके साथ व्रत कर रहे हैं और इतने स्फूर्तिमय, उल्लसित हैं! भगवान धूर्जटि इसीलिए तो साश्रुलोचन गद्गद स्वर बार-बार कहते हैं— 'वत्समय! स्मरण रखना कि त्रिनेत्र शिव केवल शरीर है। इसकी श्वास—इसकी चेतना, इसकी आत्मा श्रीकृष्ण हैं!'

व्रज आकर मुझे आज सुयोग प्राप्त हो गया। मैं अदृश्य रहकर इन मयूरमुकुटी—इनके समस्त स्वजनोंके पीछे अपने शशि-शेखर आराध्यकी

अर्चा इस शिवरात्रिको सम्पन्न कर सकूँगा। ये जिस श्रीविग्रहकी अर्चा करेंगे, मेरे स्वामी आज सम्पूर्ण रूपसे उसीमें आसीन रहेंगे, यह असंदिग्ध सत्य है। तब मय गोपेश्वर अथवा अन्य किसी विग्रहकी अर्चा करने क्यों जाय।

सखाओंके साथ व्रजराजकुमार व्यस्त हैं आराधनाके लिए स्वय सामग्री-संग्रहमें। इन्होंने श्रीनन्दरायसे आग्रह किया— 'बाबा! मैं एकादश दलोंके विल्वपत्रोंसे पूजन करूँगा।'

'मैं भी इससे कम या अधिक दलोंके विल्वपत्र नहीं लूंगा।' भद्रने कह दिया।

'तुम सब केवल एकादश दलके विल्वपत्र ही लेना!' व्रजराजकी आशङ्का उचित है। इन बालकोंको विल्ववनमें नहीं जाने देना चाहिये। कितने कठिन कण्टक होते हैं विल्वके और बालकोंसे सावधानीकी आशा तो नहीं की जा सकती। मय यह सेवा कर पाता! लेकिन देख आया हूँ कि विल्ववनमें प्राय: एकादश दलके विल्वपत्र ही हैं। गोप अन्य किसी द्वारा आहृत सामग्री स्वीकार नहीं करेंगे।

'मैं अर्क पुष्पोंकी माला बनाऊँगा!' वरूथपने कहा।

'मैं तिहारे धतूरेके पुष्प लाऊँगा और फल भी।' श्रीकृष्णचन्द्रने ताली बजायी।

'वत्स नीलमणि! तुम सब मिलकर यूथिकाके नन्हे सुमन-संग्रह करो! मैं तुम सबके लिए माल्य ग्रन्थन कर दूंगी।' माता रोहिणीने बालकोंका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित किया— 'अर्क पुष्प, धुस्तूर फल एवं सुमन सेवक लाने चले गये हैं।'

बालक नेत्रोंमें अर्क-दुग्ध लगे कर लगा ले सकते हैं और वह दुग्ध तो नेत्रोंको दु:सह व्यथा देता है। धुस्तूरके कण्टकित फल इनके सुकुमार करोंको कष्ट देंगे। रोहिणी देवीकी सावधानीने मुझे प्रसन्न किया। मुझे भी इससे प्रेरणा प्राप्त हुई। मैं सरस्वती सलितमें पुण्य गन्ध स्वर्ण-पद्मोंकी राशि प्रकट कर सकता हूँ। गोप सरलतासे उन्हें स्वयं विकसित मानकर सञ्चय कर लेंगे। इतनी सेवा तो मेरी स्वीकृत हो ही जायगी।

बालक स्वर्ण पात्र लेकर यूथिका-सुमन-संग्रह करनेमें लग गये हैं। यूथिकाके नन्हें, श्वेत, सुकुमार सुसौरभ सुमनोंको सञ्चित करनेमें इनको

भी उल्लास है और ये पुष्प इनके पद्मपाणिसे चयन होने योग्य भी हैं। इनकी माला मेरे आराध्य महेश्वरको परम प्रिय है।

गोपोंने अम्बिका वनमें इस महाशिवरात्रिको महेश्वरकी आराधना-का निर्णय किया है। सरस्वतीमें स्नान करके यह अर्चा एकान्त काननके उस अरण्य-मन्दिरमें सचमुच समुचित है। सम्मानित, सम्यक् प्रपूजित श्रीविग्रहोंकी अपेक्षा अपेक्षित काननस्थ शिवालयोंमें अर्चन सदा ही शैव महर्षियोंने श्रेष्ठ माना है। यहाँ अकेले गोपेश्वर प्रभु प्राप्त थे। वहाँ साम्ब सदाशिवकी पूजा प्राप्त होगी।

गोपोंने छकड़े जोड़े और समस्त दूध, दधि, घृतके भाण्ड भरे उनमें। मधु, शर्करा, फल, अपूपादि नैवेद्य सब सजाये। बालकोंको आग्रह करके शकटोंपर बैठाया। गोपियाँ और बालिकाएँ तो यहीं रहनी हैं। इतनी दूर-की यात्रामें पुरुषोंने बालकोंको भी साथ न लिया होता यदि ये बहुत हठ न करते और आशङ्का न होती कि सब पैदल भाग खड़े होंगे।

वृषभ-ध्वज और मन्दिरके कलशपर लगा त्रिशूल देखते ही छकड़ रुक गये। गोपोंके साथ बालकोंका स्वर गूँजा—हर-हर महादेव!' सबने भूमिमें पड़कर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया।

'बाबा! मैं यमुना स्नान करूँगा।' श्रीकृष्णचन्द्रने मुकुट, पटुका, वनमाला बतार दी। सखाओंने भी साथ दिया।

'लाल! यहाँ यमुना नहीं है। यह सरस्वतीका पावन-प्रवाह है।' व्रजराजने समझाया—'मैं तुम सबको स्नान कराने साथ चल रहा हूँ।'

अब यह बात कौन सुने। कोई आशंका नहीं। सरस्वतीमें अल्प-सलिल ही यहाँ रहता है और जलमें सुकोमल रेणुका है। बालक स्वच्छन्द स्नान कर सकते हैं।

गोपोंका समुदाय अम्बिका-महेश्वरके मन्दिरोंको, प्राङ्गणको स्वच्छ करनेमें लग गया है। मेरी शक्ति और माया किस दिन काम आवेगी यदि मैं यह सेवा भी न कर सकूँ। शिखर तक उसे तृण, शीर्ण पत्र राशि प्रभृति इतनी शीघ्र कैसे स्वच्छ हो गयी, यह समझनेका अवकाश गोपोंको नहीं था। सब उत्साहपूर्वक लगे थे। मन्दिर और पूरा परिखा-वेष्टित प्राङ्गण उन्होंने सरस्वती-सलिलसे सिञ्चित करके, रगड़ कर स्वच्छ किया।

'तुम सब अब निकलो पानीसे !' बालक कहीं शान्तिसे स्नान करते हैं। सब परस्पर छींटे उछालनेमें, जल क्रीड़ामें लग गये थे। यह हेमन्तका प्रदोष-काल–अभी शीत समाप्त नहीं हुआ, बालकोंको पानीमें अधिक देर नहीं रहना चाहिये। बड़े आग्रहसे व्रजराज तथा इनके भाइयोंने सबको जलसे निकाला।

तीर्थ जलमें स्नान करके वैसे भी अङ्ग-पोंछनेका निषेध है। बालकोंने तो शीघ्रतामें वस्त्र बदले। इन सबको उतावली है पूजन-प्रारम्भ करनेकी। महर्षि शाण्डिल्य मन्दिरमें मुनिगणोंके साथ सब सामग्री सज्जित करके आसनपर बैठ चुके हैं। आज मुझे इन सब गोपोंके, गोपकुमारोंके, श्रीनन्दनन्दन, संकर्षणके स्नान किये सलिलमें स्नानका सुअवसर मिला। अमर जीवनकी यह प्रथम धन्य महाशिवरात्रि मैं अदृश्य रहकर प्रत्येक प्रहरकी पूजा इनके पश्चात् तब कर लिया करूँगा जब महर्षि पूजनोपरान्त शतरुद्रीसे भगवान शङ्करका स्तवन करनेमें संलग्न होंगे।

'नमः शम्भवाय च, मयो भवाय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च।'

श्रीकृष्णचन्द्रने अर्घ्य, पाद्य, आचमन, सलिल स्नानके अनन्तर दुग्ध पात्र उठाया और महर्षियोंके श्रुति स्वर गूंजने लगे। मैंने पूजाएँ की हैं—अनेक सुरों-असुरोंकी, स्वयं सृष्टिकर्त्ताकी पूजा प्रत्यक्ष रहकर देखी है; किंतु यह सात्त्विक वैभव, यह भगवान नीलकण्ठका श्रीविग्रहमें-से स्पष्ट झलकता पुलक प्रपूरित शतचन्द्रोज्वल श्रीअङ्ग–यह अर्चा स्वीकारकी त्रिलोचनकी त्वरा—यह अलभ्य ही रही है अन्यत्र।

सहस्र-सहस्र घट दुग्ध, दधि, घृत, मधु और शर्करा स्नान, पञ्चामृत स्नान—सविधि महाराजोपचार-पूजन ! राम-श्यामने और इनके सखाओंने पूजन कर लिया तब गोपों द्वारा पूजन प्रारम्भ हुआ।

प्रदोष पूजन, मध्य रात्रि, तृतीय प्रहर और चतुर्थ प्रहरका पूजन—मुझे आज इन सबके मध्यमें अत्यन्त अल्प समय मिला अपने पूजनके लिए; किंतु आजकी मेरी संक्षिप्त अर्चाएँ जीवनकी सम्पूर्ण सविधि सविस्तर अर्चाओंकी अपेक्षा अत्यधिक महान् हैं, यह मैं कभी भूल नहीं सकता।

चतुथ-पूजन समाप्त करके गोप प्राङ्गणमें आ गये। बालक भी बाहर आये। सब श्रान्त थे, उपोषित थे। उत्साहाधिक्यमें प्रभातसे अब

तक पूजन-सामग्री-संग्रह करनेमें, देवालयकी स्वच्छतामें, पूजनमें पर्याप्त श्रान्त हो गये थे। प्राङ्गणमें अपनी कमरियाँ डालकर लेटे होंगे—सबको तन्द्रा आ जाना स्वाभाविक था।

मैं मार ही देता उसे यदि पूजनमें लगा न होता। मेरी दृष्टि बचा-कर वह आ नहीं सकता था; किंतु सब गोपोंके पूजन-समाप्त करनेपर मुझे समय मिला था। मैं शिवार्चनमें संलग्न था। अरण्यसे अन्धकारमें कोई महासर्प सरकता आ गया था और उसने श्रीव्रजराजके दोनों चरण मुखमें ले लिये थे। वह उन्हें निगलता जा रहा था धीरे धीरे।

श्रीनन्दरायकी कातर ध्वनि गूँजी— 'कृष्ण! वत्स श्रीकृष्ण! यह अजगर मुझे निगल रहा है। तुम सब शीघ्र भागो यहाँसे। इसके साथ इसकी सङ्गिनी भी हो सकती है। राम! अपने अनुज और सखाओंको लेकर शीघ्र छकड़ेपर जाओ!'

गोपोंने यह पुकार सुनी। सबने जलते उल्मुक उठाये। शीत-निवारणके लिए प्राङ्गणमें पहिले ही काष्ठ सुलगा दिये गये थे। उन जलते अलातोंसे निरन्तर पीटे जानेपर भी अजगरने व्रजराजको निगलना बन्द नहीं किया। वह लगभग उरु तक उनको मुखमें पहुँचा चुका था। जलते उल्मुक लगनेसे वह अपना शरीर ऐंठ रहा था। पूँछ पटक रहा था। उसका शरीर स्थान-स्थानपर जल गया था; किंतु उसके मुखमें श्रीनन्दराय थे। मुखपर उल्मुकोंका आघात सम्भव नहीं रहा था।

'श्रीकृष्ण! राम! व्रजराजको महासर्पने पकड़ लिया है!' सभी गोप पुकारने लगे।

'बालकोंको बचाओ!' व्रजराजकी पुकार गोप सुन नहीं पा रहे थे। वे कह रहे थे— 'नीलमणिको रामके साथ छकड़ेपर पहुँचाओ।' लेकिन गोप चिल्ला रहे थे। व्याकुल होकर सर्पपर प्रहार करते जा रहे थे।

मैं अपनी अर्चा शीघ्रतामें समाप्त करके बाहर आया। इसी समय श्रीनन्दनन्दन दौड़ते आये और गोपोंके मध्य प्रविष्ट हुए। पहुँचते ही उस महासर्पपर दक्षिणपादसे प्रहार किया उन्होंने। तत्काल सर्पके शरीरमें-से एक ज्योतिर्मय रत्नाभरणालङ्कृत विद्याधर प्रकट हो गया। सर्पका निष्प्राण शरीर पड़ा रहा। गोपोंने श्रीनन्दरायको उसके मुखसे खींच लिया।

'तू कौन है ? इतना मोटा मलिन सर्प क्यों बना था ? मेरे बाबाको तूने क्यों पकड़ा ?' अपने सम्मुख दण्डवत् पड़े विद्याधरकी ओर साश्चर्य देखते श्रीव्रजराजकुमार किञ्चित् सक्रोध बोले— 'उठ और शीघ्र भाग जा यहाँसे।'

मैंने भी अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया— 'धन्य प्रभु! आपका यह बाल्यभाव भी अद्‌भुत है। आप तो ऐसे बोल रहे हैं, मानो आशङ्का है कि यह दिव्य पुरुष पुनः महासर्प बनकर किसीको पकड़ लेगा।'

'मैं सुदर्शन नामक विद्याधर हूँ।' वह पुरुष उठा। अञ्जलि बाँधकर, मस्तक झुकाकर काँपते स्वरमें सविनय बोला— 'एक बार विमानसे जा रहा था। बहुत सुन्दर था और अपने सौन्दर्यका गर्व बहुत था मुझे। नीचे अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न महर्षि अष्टावक्र कहीं जा रहे थे। उनकी कुरूप काया और मचकते चलनेकी भङ्गी देखकर मैं अट्टहास करके हँस पड़ा।'

'तू कुटिल मेरा उपहास करता है ?' ऋषिने ऊपर देखा और क्रोधमें आकर शाप दे दिया— 'मुझसे भी कुटिल एवं मन्दगतिसे चलनेवाला महासर्प हो जा!'

मैं तत्काल विमानसे उतरकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। उन करुणामयको मुझपर दया आ गयी आशीर्वाद दे दिया— 'श्रीकृष्णचन्द्रका चरण स्पर्श पाकर तेरा सर्प योनिसे—संसारसे भी समुद्धार हो जायगा।

मैं तबसे यहाँ अम्बिका वनके अरण्यमें रहता प्रतीक्षा कर रहा था। सायंकाल यहाँ इतने लोगोंका आगमन हुआ। वनमें बहुत समयसे बुभुक्षित था। क्षुधासे व्याकुल सरकता रात्रिके अन्धकारमें आया और जो पुरुष मुझे पहिले मिले, उनको आहार बनानेका प्रयत्न करने लगा।' उस पुरुषने संक्षिप्तमें अपना चरित सुना दिया। सब गोप आश्चर्यपूर्वक उसे देख रहे थे।

'आपके सुर-मुनीन्द्र पाद-पद्मोंका स्पर्श पाया मैंने उन महर्षिकी अनुकम्पासे। अन्यथा विद्याधर सुदर्शनको इन श्रीचरणोंका स्पर्श तो सुदुर्लभ ही था।' उसने गद्‌गद कण्ठ प्रार्थनाकी— 'सर्वेश्वर! आपकी आज्ञाके अनुसार देवलोक जा रहा हूँ; किंतु इतनी कृपा करो कि जहाँ भी —जिस किसी भी योनिमें रहूँ, आपके इन अरुण चरणोंकी स्मृति बनी रहे।'

'अच्छा ! अब तुम जाओ।' श्रीकृष्णचन्द्रने गम्भीर स्वरमें आदेश दिया। विद्याधर सुदर्शन इन श्यामसुन्दरकी प्रदक्षिणा करके गगनमें ऊपर पहुँचकर अदृश्य हो गया।

'बाबा ! कल प्रदोषमें मैंने पहिले भगवान पुरारिका पूजन किया था।' भोलेपनसे नन्दनन्दन बोले— 'इसीसे मेरे पाद-प्रहारसे यह दुर्योनिमें पड़ा प्राणी देवता हो गया।'

इनका हास्य ही मोहिनी माया है। गोप इनके इन सस्मित कहे वचनोंपर विश्वास कर लें तो क्या आश्चर्य। अब सबको प्रातःकालीन स्नान करके पुनः पूजन करना है। पाराण करेंगे ये प्रसादसे और तब वृन्दावन पधारेंगे। मैं इनके दर्शन प्राप्त कर परम कृतकृत्य हुआ।

शङ्खचूड़-वध

अमृत-पानके साथ श्रीहरिके चक्रने मेरे शरीरको मुझसे पृथक कर दिया। मैं सिर मात्र रह गया और कबन्ध केतु हो गया। हम पुनः संयुक्त न हो जायँ, इस अभिप्रायसे सृष्टिकर्त्ताने हम दोनोंको समानान्तर चलने वाले ग्रहोंका स्थान दे दिया। हम दोनों सदा वक्री रहते हैं। केतु केवल कबन्ध है, अतः बोल नहीं सकता। सिरमात्र होनेसे मैं बहुत बोलता हूँ, बकवादी हूँ, यह आरोप मुझे स्वीकार है।

हम छाया-सुत—पृथ्वी और शशिको छायासे समुद्भूत छाया-शरीरी, छायाग्रह हैं, अतः छायाके समान ही हमारा स्वभाव है। जिस ग्रहके साथ रहें, जिसके स्थानमें रहें, वैसा ही हम फल देते हैं। हमको क्रूर अथवा असुर कहकर आप हमारी निन्दा भले कर लें; किंतु हमारा प्रबल प्रभाव केवल अशुभ ही तो नहीं होता। हमारे समान शुभ प्रभाव भी सानुकूल होनेपर दूसरा ग्रह देनेमें कहाँ समर्थ है।

मैं श्रीकृष्णके जन्माङ्गमें तृतीय स्थानमें हूँ। सब ज्योतिर्विद जानते हैं कि तृतीयमें स्थित राहु सम्पूर्ण अरिष्टोंका वारक होता है। इसपर वहाँ तो मैं उच्चके वृहस्पतिके साथ हूँ। उच्चस्थ शशिके गृहमें हूँ। इसलिए मेरा शुभ प्रभाव गुरुसे अधिक गौरवमय रहेगा।

मेरा कबन्ध केतु भी उच्चके मङ्गलके साथ, उच्चस्थ शनिके गृहमें हैं। नवमस्थ केतु वैसे भी सर्व-बन्धन-विनिर्मुक्त करता है। उच्चके गुरुकी दृष्टि प्राप्त करके, उच्चस्थ वैराग्यके विधाता शनिके गृहमें, उच्चके भौमके साथ केतु श्रीकृष्णके स्वरूपको ही स्पष्ट करता है। वह कहता है कि इन श्रीव्रजराजकुमारका स्मरण करनेवालेको वह मोक्ष-वितरण करता रहेगा।

मेरी और सुरगुरुकी भी पञ्चम-पूण दृष्टि प्राप्त है नन्दनन्दनके जाया स्थानको। देवगुरु उनकी सब प्रेयसियोंको परम प्रेमनिष्ठा रखेंगे;

किंतु मैं तो कृष्णचन्द्रको यहाँ परम स्वच्छन्द करता हूँ। वे जिसे चाहें अपनावें, उन सबकी सुरक्षा करेगा राहु।

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सर्वसमर्थ पुरुषोत्तमने पृथ्वीपर पदार्पण करके हम ग्रहोंको अपने आविर्भाव कालकी कुण्डलीमें स्थान देकर सम्मानित किया। उन्हें किसीकी सेवा-सहायता अपेक्षित नहीं है; किंतु हम अपने स्थानके अनुरूप व्यवहार सामान्य व्यक्तिके साथ भी करते हैं, ये सर्वेश्वर आये हैं हमारे प्रभाव क्षेत्रमें तो इनकी सेवामें हम प्रमाद कैसे करेंगे।

मैं दैत्य हूँ अत: दैत्य-दानव-राक्षसोंसे मेरी सहज सहानुभूति है। जानता हूँ कि यक्ष राक्षसोंके अग्रज हैं; किंतु ऐसे तो देवता भी हम दैत्योंके अनुज हैं। कुबेर जबसे लोकपाल होकर देवत्व प्राप्त हुए, यक्षोंसे हम सबकी सहानुभूति समाप्त हो गयी। यह सहानुभूति होती भी तो मैं बाध्य हूँ अपने ग्रहस्वरूपमें सृष्टिकर्त्ता-प्रदत्त अपने स्वभावके अनुसार प्रभाव प्रकट करनेको। कुबेरके अनुचर शङ्ख-चूड़को मेरी कृपा प्राप्त करनेका कोई स्वत्व नहीं रह गया था। वह तो मरता ही, श्रीकृष्णकी मुष्टिका उसके मस्तकको विदीर्ण करनेका निमित्त बन गयी।

शङ्खचूड़ कुबेरका अनुचर, यक्ष और शरीर, शक्ति, आकृति, स्वभावमें अधिकांश यक्ष राक्षसोंके समान होते हैं। मस्तकमें शङ्खाकार ज्योतिर्मय मणि धारण करके कोई यक्ष भले शङ्खचूड़ नाम पा जाय, स्वभाव तो उसका आसुर ही रहता। कंससे मित्रता और 'निम्ब चढ़ी गिलोय' को सार्थक करने लगी।

शङ्खचूड़ अपनी महागदा कन्धेपर उठाये अपने मित्र कंससे मिलने मथुरा आया था। उदास-भयाकुल कंस; किंतु शङ्खचूड़ कोई आश्वासन देनेकी स्थितिमें नहीं था। वह जानता था कि यक्षेश्वर वैश्रावण अलकामें उसे पद नहीं रखने देंगे, यदि उसने श्रीकृष्णका विरोध किया। जिसने शैशवमें ही पूतना, उत्कच, तृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर, प्रलम्ब, अघासुर आदि सुरासुरजयी राक्षसोंको यमसदन भेज दिया, उससे पराक्रम प्रकट करनेका साहस शङ्खचूड़में नहीं था। कंसको वह केवल इतना कह सका— 'वृन्दावन होकर जाऊँगा। देखूंगा कि आपकी कोई सहायता कर सकता हूँ अथवा नहीं।'

मुमुषु शङ्ख-चूड़ नहीं जानता ; किंतु मैं तो गगनसे स्पष्ट देखता हूँ कि महामहेश्वरी योगमाया ब्रजमें प्रवेश करनेकी अनुमति सुरोंको भी नहीं देतीं। केवल दानवेन्द्रमयको उनके सद्भावके कारण जाने दिया गया। अन्यथा यदि कोई दुर्भाव लेकर ब्रजकी ओर चलता है, यदि योगमाया उसका पथ अवरुद्ध नहीं करतीं तो सुनिश्चित हो गया कि अब वह संसारमें लौटनेवाला नहीं है। उसके समुद्धारका समय आ गया।

वृन्दावन नित्य भव्य—यक्षेश्वरका अपना सौगन्धिक वन भी यहाँ की श्री की समता नहीं कर सकता और अब तो वसन्तका माधव (वैशाख) मास वृन्दावनमें अपना पूर्ण प्रभाव प्रकट कर रहा है। तरु-लताओंमें पत्रों-को पुष्पोंके मध्य लक्षित करना पड़ता है। इस वनश्रीने ही यक्ष शङ्ख-चूड़-को उन्मत्त प्राय कर दिया। वह चकित-थकित इतस्ततः देखने-भटकने लगा।

अनन्त प्रभु नील-वसन, एक कुण्डलधर, स्वर्ण गौर संकर्षण अपने अनुज मयूर मुकुटी घनश्याम, पीताम्बर, वनमालीके साथ पूर्णिमाकी इस प्रकाशमयी रजनीमें ज्योत्स्नाका महामङ्गल मनाने वनमें आ गये थे। दोनोंके यूथोंकी गोपकुमारियाँ साथ आ गयी थीं। वृन्दावन वसन्त महाराज महोत्सवमें झूम रहा था।

पूर्णिमाकी रात्रि—मैं कहीं समीप भी होता तो शशिको मुझसे ग्रस्त होनेका कोई भय नहीं था। श्रीनन्दनन्दनकी रस-क्रीड़ामें व्याघात बननेका साहस राहुमें नहीं है। यह छायासुत अपनी काली छाया शशाङ्कसे सम्हाल कर दूर रखेगा।

ब्रज-सुन्दरियोंमें किञ्चित् मान आ गया। उनमें-से एकने कहा—'तुम दोनों ही भाई एकसे हो। हम नहीं बोलतीं तुमसे।

श्रीसंकर्षणके ही यूथकी कोई थी। श्यामसुन्दरसे परिहासका स्वत्व उसका। ये लीलामय भी हँसे—'दादा! तू आ। मैं तेरा शृङ्गार करूँगा। मैं तुझे सज्जित कर दूँ तो देखूँ कि यह भाभी मान किये मौन रह पाती है ?'

उसकी सखियाँ ही नहीं, सभी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। उसका मुख लज्जासे लाल हो गया। वह संकोचके कारण ही एक ओर चली गयी तो सब उसके साथ चली गयीं।

श्रीव्रजराजकुमारने बहुत अधिक सुमन, किसलय, पक्षियोंके पक्ष, गुंजागुच्छ संग्रह कर रखे थे। अग्रजको शिलातलपर बैठाकर वे स्वयं उनका शृङ्गार करने लगे। कुछ दूर कुमारियाँ चली गयीं। उनका उन्मुक्त हास्य गूँजता रहा।

शङ्ख-चूड़ घूमता हुआ समीप आ गया। उसने दोनों भाइयोंको देखा ही नहीं। उसकी दृष्टि व्रज सुन्दरियोंपर पड़ी और उसके नेत्र अपलक देखते रह गये। 'इतना सौकुमार्य! इतना सौंदर्य!' यक्ष शङ्ख-चूड़ने गन्धर्व, किन्नर, नाग, स्वर्ग आदि किसीमें यह सुषमा काहेको देखी होगी। उसे भूल गया कंस, भूल गया अपना आश्वासन, भूल गया कंसके विवरणसे प्राप्त भय। उसका मन मथित हो उठा।

मैं चौंका। गगनमें जाते देवर्षि एक दिन अपने साथ जाते गन्धर्व-राज तुम्बरूसे कह रहे थे—'गोलोक में श्रीराधाने श्रीदामको असुर हो जानेका शाप दे दिया तो वह बहुत दुःखी हो गया।'

श्यामसुन्दरने समझाया—'तुम धरापर इनके सगे भाई होकर अवतीर्ण हो जाओ। मैं तुम्हें अपना प्रिय सखा बनाये रहूँगा। केवल तुम्हारा एक अंश यक्ष होकर उत्पन्न होगा। इन रासेश्वरीकी सखियोंका अपहरण करोगे तब मैं तुम्हें उस शरीरसे मुक्त कर दूंगा।'

लगता है कि शङ्ख-चूड़ वही यक्ष है। अब इसके शापकी समाप्तिका समय आ गया है, अन्यथा श्रीव्रजराजकुमारकी उपस्थितिमें उनकी प्रेयसियोंकी ओर दृष्टि उठानेका साहस किसीमें हो सकता है?

शङ्ख-चूड़ सब कुछ भूल गया। उसे लगा कि इनमें-से कुछको भी प्राप्त कर सके—किसी एकको भी ले जा सके—इसके बिना वह रह नहीं सकता। अपनी मायासे जिनको भी उठा सका, उठाकर भागा।

महाबाहु राम! परम पराक्रमी कृष्णचन्द्र! बचाओ! हमारी रक्षा करो!' वे सुन्दरियाँ आर्त स्वरमें पुकार उठीं—'यह कोई मायावी हमें लिये जा रहा है! रक्षा करो! बचाओ!'

व्याकुल स्वर पड़ा श्रवणोंमें और दोनों भाई एक साथ शिलासे कूदे। दोनोंने एक-एक विशाल शालवृक्ष मूल सहित उखाड़ लिये और दौड़े—'डरो मत! हम आ गये!'

शङ्ख-चूड़ने सोचा भी नहीं था कि इन सबका कोई रक्षक भी होगा। मूर्ख यक्ष-वनमें रात्रिके समय ये किशोरियाँ इतनी निर्भय क्रीड़ा करती हैं तो किसी सबलका आश्रय होगा इन्हें, यह बात ही इसके सिरमें नहीं आयी थी। यह भी नहीं समझ सका कि उसकी अपनी अदृश्य होनेकी, गगनमें उठ जानेकी शक्ति लुप्त हो चुकी है। कोई जन्मजात सिद्धि अब उसके साथ नहीं।

'डरो मत!' मेघ गर्जनके समान दो स्वर साथ सुनायी पड़े तो यक्षने पीछे मुड़कर देखा और उसकी रही-सही बुद्धि, शक्ति भी समाप्त हो गयी। समूल शाखाओं सहित विशाल शाल-वृक्ष सामान्य लकुटोंके समान करोंमें उठाये पूरे वेगसे जो गौर-श्याम दौड़े आ रहे थे, यक्षको लगा कि स्वयं महाकाल दो रूप धारण करके उसके पीछे आ रहे हैं। अब प्राणभय—प्राण किसी प्रकार बचानेकी एकमात्र इच्छा रह गयी। व्रज सुन्दरियोंको उसने छोड़ दिया और अकेला भागा।

'दादा! तू इनके समीप रह!' श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजकी ओर देखा—'इसका कोई साथी हो तो उसे सम्हाल लेना। मैं इस दुष्टको देखता हूँ।'

श्रीबलराम शाल उठाये किशोरियोंके समीप खड़े रह गये। श्रीकृष्णचन्द्रने भी शाल फेंक दिया और शङ्ख-चूड़के पीछे दौड़े। शङ्ख-चूड़ने प्रयत्न कर देखा कि वह अदृश्य नहीं हो सकता। वह आकाशमें उठ भी नहीं सकता। इन श्रीनन्दनन्दनकी प्रेयसियोंको स्पर्श करके यक्ष मेरी कोप दृष्टिमें आ गया है। मेरी दृष्टि अब इसके पदोंकी गति भी अवरुद्ध कर रही है। प्राणभयका कातर यक्ष वृक्षों, लता कुञ्जोंमें आढ़े-टेढ़े भाग रहा है।

चपल चारु-चरण नन्दनन्दनके सम्मुख यक्ष कितनी दूर दौड़ सकता था? पीछे पहुँचकर वाम करका घूसा धर दिया इन्होंने उसके मस्तकपर, जैसे महापर्वतपर महेन्द्रका वज्र पड़ा हो। शङ्ख-चूड़का सिर शतधा विदीर्ण हो गया। यह तो मैं देखता रहा कि उसके शरीरसे ज्योतिकी एक रेखा निकली और वृहत्सानुपुरमें श्रीवृषभानुजीके बड़े कुमार श्रीदामके प्रसुप्त शरीरमें प्रविष्ट हो गयी।

शङ्ख-चूड़के सिरसे ज्योतिर्मय मणि उसी वाम मुष्टिमें लिये व्रजराज कुमार लौटे। श्रीबलराम और सब किशोरियाँ अपलक अब तक इनकी ही

ओर देख रही थीं। अनुजको लौटते देखकर संकर्षणने ताल तरु फेंक दिया और अङ्कमाल देने आतुर बढ़े।

'तुम्हारे हाथको क्या हो गया ?' यक्षके रक्तसे लथपथ वाम मुष्टिको देखकर सबका अत्यन्त करुण स्वर गूँजा।

'दादा ! तू तनिक रुक।' नन्दनन्दन अग्रजसे कहकर, अपने हास्यसे ही सबको आश्वस्त करके सरोवरकी ओर बढ़ गये। वहाँ इन्होंने वामकर और मणि प्रक्षालित कर ली।

'तेरा कर देखूं !' दाऊने स्नेहपूर्वक कहा।

'तू तनिक बैठा रह। यह मणि तेरे मस्तकपर कितनी सुशोभित होती है, मुझे देखने दे !' सब किशोरियोंके सम्मुख वह ज्योतिर्मय मणि बहुत आदरपूर्वक, बड़ी सावधानीसे अग्रजके मस्तकपर सम्मुखकी अलकोंके सहारे लगाकर तनिक पीछे हटे और मुग्ध नेत्रोंसे भाईको देखने लगे।

'अपना कर तो देखने दो !' दाऊका, सब कुमारियोंका आग्रह है। सबको इनका कर देख लेना है। अग्रज तो अङ्कमाल दिये खड़े हैं और व्रजकी ये किशोरियाँ विमुग्ध नेत्र दोनों भाइयोंको देख रही हैं।

मैं तो क्रूर ग्रह हूँ। मुझे इस मनोहर दृश्य में रस नहीं है; किंतु इन नन्दनन्दनने मुझे यक्षकी महाबलि दे दी है। ऐसी बलि जो सृष्टिमें दूसरा देनेमें समर्थ नहीं। मेरी सम्पूर्ण शक्ति और सेवाएँ इनके श्रीचरणोंमें सादर समर्पित हैं।



प्रमुख सखियोंका परिचय

श्यामसुन्दरने भगवान शशिशेखरको साग्रह गोपेश्वर बनाकर वृन्दावनमें बसा लिया है। ये देवदेव महादेव हम सबके परमादरणीय हैं। अब ये कुछ पूछें तो कोई कितना भी सङ्कोच हो, बतलाना तो पड़ेगा ही इन्हें। ये सर्वज्ञ क्यों पूछते हैं, यही जानें, परन्तु पूछने ही लगे तो मैं जितना जानती हूँ, सादर मैंने सुना दिया।

मैं तनिक शीघ्र चली गयी प्रदोष-कालमें अपने इन गोपेश्वरका पूजन करने। इन आशुतोष प्रभुका वात्सल्य प्राप्त करनेमें भी क्या प्रयत्न करना पड़ता है। वृन्दावनमें इनका श्रीविग्रह तो कहनेको है। जब प्रार्थना करो, गङ्गाधर, चन्द्रमौलि त्रिलोचन, नीलकण्ठ, भुजगभूषण विभूति भव्य कर्पूर गौराङ्ग, कृत्तिवास प्रभु प्रत्यक्ष प्रकट हो जाते हैं। मैंने वरदान माँगा—'श्यामा-श्यामके युगल चरणोंमें मेरी अनुरक्ति अनुदिन बढ़ती रहे!'

'एवमस्तु' इन प्रणतपालसे दूसरा कुछ तो सुना नहीं जा सकता। लेकिन साथ ही सस्मित पूछ बैठे—'सुदेवी, वत्से! अपनी स्वामिनीकी प्रमुख सखियोंका परिचय तो बता दे मुझे।'

मैंने भूमिमें मस्तक रखा। अञ्जलि बाँधकर बोली—'प्रभु! अपनी स्वामिनीको तो मैं कभी समझ नहीं सकी। ये श्यामा-श्याम परस्पर परिवर्तित होते ही रहते हैं। कभी एक गौर बन जाता है, कभी दूसरा। कौन कीर्तिकुमारी और कौन नन्दनन्दन, कुछ पता नहीं लगता।

योगीश्वर प्रभु सस्मित बोले—'वे दोनों एक ही हैं। एक ही तत्त्व इन दो रूपों में उल्लसित होता है। रसराज और महाभाव पृथक नहीं होते। यह इनका लीला-बिलास है। देखती ही है कि मैं अर्धनारीश्वर हूँ। इन्हें एक ही देहमें यह युगमत्व स्वीकार नहीं। इसलिए दो रूपमें दीखते रहते हैं। तू इनकी बात छोड़ दे। इनकी प्रमुख सखियोंका परिचय दे दे।'

मैं कई क्षण मूक रह गयी। आज मैं सचमुच भगवान धूर्जटिके अर्धाङ्गमें अम्बाका दर्शन कर रही थी और ये वात्सल्यमयी तो हम बालिकाओंपर सदा सदय सानुकूल रहती हैं। इनकी उपस्थितिने ही मुझे बोलनेका साहस दिया। मैंने संक्षिप्त ही परिचय सुनाया।

जैसे अष्टदल पद्म हो, ऐसे आठ प्रमुख यूथेश्वरी सखियाँ हैं हमारी। श्रीश्यामा-श्याम जब रासमें मध्य कर्णिकापर अवस्थित होते हैं तो इन परमान्तरङ्गा प्रधान मञ्जरीभूता सखियोंका भी सुनिश्चित स्थान होता है।

मध्य कर्णिकापर जब उत्तराभिमुख श्रीश्यामा-श्याम अवस्थित होते हैं तो अन्तर्दलके रूपमें अष्ठ सखियाँ उनकी सेवामें समीप होती हैं* पश्चिममें वाम पार्श्वमें श्रीवृषभानु-नन्दिनीके समीप प्रायः उनके समान वर्णकी, स्वर्ण किरण सदृश कृशाङ्गी, पाटलवस्त्रा प्रधान सखी ललिता। वायव्यमें पीतवस्त्रा श्यामला, सम्मुख उत्तरमें अपने नामके समान ही धानी वस्त्रधारिणी धन्या, ईशानमें हरिप्रिया रङ्गदेवी सुचित्रित वस्त्रा, पूर्वमें तनिक श्यामा भास, केशरिया परिधाना, कालिन्दीकी दूसरी मूर्ति विशाखा, श्यामसुन्दरके समीप उनके दक्षिण पार्श्वमें, आग्नेयमें उज्वल वस्त्रा, चन्द्रोज्वला धन्या, दक्षिणमें पृष्ठ भागमें पाटलवस्त्रा पद्मा और नैऋत्यमें अरुण वस्त्रा, पाटलवर्णा अनङ्ग मञ्जरी।

'तू अपनी बात तो कहना भूल ही गयी।' सदाशिवने सहास्य कहा।

'प्रभु, इस अष्टदलको आवृत किये जो द्वादशदल रहता है, मेरी अवस्थिति उसमें है।' मैंने मस्तक झुकाकर कहा — 'यद्यपि इसमें हम अनेक श्रीकीर्तिकुमारीकी ही अन्तरङ्गा हैं। किंतु इस आवरणकी प्रधाना हैं श्रीचन्द्रवलीजी। वे श्यामसुन्दरकी प्रीति-भाजना, श्रीवृषभानु-नन्दिनी चचेरी अग्रजा भगिनी हैं। स्वयं किशोरीजी उनका सम्मान करती हैं तो हम तो अपनी स्वामिनीकी अनुगता हैं।

चन्द्रवलीजी, मैं सुदेवी, तुङ्गविद्या और चित्रा उत्तरमें, माधवी, रूप मञ्जरी, भद्रा और चम्पक लता पूर्वमें, चन्द्रा, चित्ररेखा, मदन-

---

*इनके नामों और क्रमोंमें बहुत अन्तर है ग्रन्थोंमें। यहाँ महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराजके 'श्रीकृष्ण-प्रसङ्ग' के अनुसार वर्णन है।

सुन्दरी और मधुमती दक्षिणमें तथा इन्दुलेखा, चन्द्ररेखा, चन्द्रावती और कृष्णप्रिया पश्चिममें अवस्थित होती हैं।

हमारे पीछे षोडषदल पद्म है। उसके पीछे चतुर्विंशति दल, उसके पीछे द्वित्रिंशति दल, फिर चतुःषष्ठी दल। उसको आवृत करके शतदल और उसके बहिर्भागमें सहस्र दल।

'वत्से! इतना विस्तार ही बहुत है।' भगवान पशुपति मुझे बीचमें वारित न करते तो मैं गणना सुनाती जाती। यद्यपि जानती हूँ कि मेरी स्वामिनीकी सखियोंकी संख्या कर पाना सम्भव नहीं है। हमारे रसिक-शेखर सभी समुत्सुकाओंको अपना लेते हैं और हमारी स्वामिनी तो केवल कृपामयी हैं। इन्हें अस्वीकार करना ही नहीं आता। कोई यूथेश्वरी, कोई किंकरी किसीको ले आवे, कोई स्वयं कभी इन्हें पुकार बैठे तो ये चाहती हैं कि मयूरमुकुटी अविलम्ब उसे अपना कर प्रदान कर दें।

'तुम सबको श्रीराधाकी सेवा प्राप्त हुई, यह तुम्हारा सौभग्य!' प्रभु पुरारिने मुझे बिदा दी स्नेह पूर्वक।

हम सेवा कहाँ कर पाती हैं। हमारी स्वामिनी तो चाहती है कि श्यामसुन्दर हम सबको ही प्रधान मानकर अपनी सन्निधि—अपनी प्रीति-प्रदान करते रहें। इन आह्लादिनीको यही समझमें नहीं आता कि हम सबका परम सुख परम सौभाग्य इनको रसिकशेखरके साथ देखते रहना और इनकी सेवा करना है।

सङ्गीत, वाद्य, हास्य-विनोद, ताम्बूल-दान, जल, निकुञ्ज श्रृङ्गार—अत्यल्प सेवा है और हममें-से प्रत्येक प्रयत्न करती रहती है कि उसे अधिकतम अवसर सेवाका प्राप्त हो।

मुझे किसीसे स्पर्धा नहीं है। अन्तरङ्गा अष्ट सखियोंमें-से किसीकी भी सेवा—किञ्चित् भी सहायता मैं कर सकूँ, यही मेरा सौभग्य। वैसे सखी ललिता मुझे अपनी अनुजाके समान स्नेह देती हैं और इसलिए स्वामिनी-की सेवा मुझे सुलभ हो जाती है।



अरिष्ट-संहार

भगवती भू देवीके हम तीन पुत्र हैं धर्म, मैं और नरक। भूमि पर ही मनुष्य धर्मका आश्रय ले तो स्वर्ग सुख अथवा अपवर्ग भी प्राप्त कर लेता है। वह अधम पथ अपनावे, अधर्म करे तो नरक, अपगति, कष्ट, अरिष्ट आवेंगे उसके भाग्य में। मैं ग्रह रूपमें मंगल भी हूँ और क्रूर ग्रह होनेके कारण अरिष्ट भी होता हूँ।

मैं युद्धका—संघर्षका, शक्तिका, उष्णताका, अग्निका, रक्तका अधिष्ठाता हूँ और आप शक्ति तथा संघर्ष के बिना मंगलकी आशा तो नहीं कर सकते। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने मुझे अपना अरुण वर्ण दिया है। मैं रजोगुणका स्वरूप हूँ। अतएव रजोमयी माता भूमिमें मेरी भक्ति है। भूमि प्राणीको मेरी प्रसन्नतासे प्राप्त होती है।

मेरी माता भगवती भू देवी ही धर्मकी माता हैं। सत्वगुण भी इन्हींके वात्सल्यसे पुष्ट होता है। हिमोज्वल वृष-रूप धर्म मेरे श्रद्धेय अग्रज हैं। वे जिसके साथ हैं, जिसपर सानुकूल हैं, सृष्टिके सम्पूर्ण संघर्षों-में मैं युद्धका अधिदेवता उसके साथ। अतः विजयीश्रीकी बरमाला सदा उसकी।

श्रीहरि सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, अतः उनकी छाया ही प्रकृतिमें सत्व, रज, तमोगुणका रूप बनती है। तमकी स्थूलता ही तो सत्ता है। भू देवी सत्ता स्वरूपा हैं। भगवान् बाराहने इनका रसातलसे उद्धार किया तो उन यज्ञमूर्तिके स्पर्शसे मेरे अनुज नरकासुरकी उत्पत्ति हो गयी।

नरक तो प्राणी पाता है देह-त्यागके पश्चात्। पहिले उसका पूर्व-कृत अपकर्म अरिष्ट बनकर उसे क्लेश देने आता है। अरिष्ट भी वृषभ ही है; किन्तु जहाँ धर्म शान्त, उज्वल वृषभ रूप हैं, अरिष्ट काला, घोर उग्र वृषभ है। धर्म देवता हैं और अरिष्ट असुर है। कलिके साक्षात् रूप कंसने अरिष्टको अपना सेवक बना लिया। सुर भी संत्रस्त रहते थे उससे अरिष्ट जहाँ पहुँचेगा, अनिष्टकी ही तो आशंका होगी।

मैं भले क्रूर ग्रह हूँ, अरिष्ट भी होता हूँ; किन्तु देव हूँ। भगवती धराका पुत्र हूँ। अपने अग्रज धर्मका अनुगामी हूँ और उनके आश्रितोंके अनुकूल ही रहता हूँ; किन्तु अरिष्ट असुर होकर—धराका पुत्र होकर भी कंसका सेवक हो गया। केवल ध्वंसको अपनाया इसने। आतंक, आशंका ही सर्वत्र फैलाता फिरा।

अरिष्ट अन्ततः मेरा अनुज है। नरक भी मेरा अनुज ही है। मैं दोनोंको स्नेह, समर्थन, शक्ति, विजय देने वाला बना रहता; किन्तु मेरी भी सीमा है। ये जब मेरी माताका ही उच्छेद करने पर उतर आवें, साक्षात् श्रीहरिके ही प्रतिकूल हों तो मैं इनके साथ कुपुत्र तो नहीं बन सकता। तब मुझे पिताके पक्षमें रहना ही चाहिये और मंगलका रोष तो मृत्यु बनकर उतरता है, मिटाकर ही मानता है।

मुझे कहाँ मिटाना है। ये भूभार हरण करने जो परमपुरुष पृथ्वीपर पधारे हैं, इन्होंने तो एक ओरसे अपने चरणाश्रितोंके लिए, अपने चारु-चरित-चिन्तकोंके लिए अघ, पूतना-माया, धेनुक-देहाध्यासादिको मिटाना प्रारम्भ कर दिया है। अघ, अरिष्ट, मुर - बन्धन तथा नरकको ये रहने दे सकते हैं? इनका अवतरण ही इन सबको निःशेष कर देनेके लिए है।

मैं इन श्रीनन्दनन्दनके नवम स्थानमें उच्चका होकर केतुके साथ स्थित हुआ, यह इनका अनुग्रह, हमारी अवस्थिति तो केवल यह सूचित करती है कि जो इनके साथ संघर्ष करना चाहेगा—इनके स्वजनों, सेवकों स्मरणकर्ताओंकी ओर भी कभी कुदृष्टि उठावेगा, समाप्त होकर रहेगा; किन्तु तब भी सौभाग्यशाली रहेगा। उसका परम मंगल होगा। वह मोक्ष पावेगा। क्योंकि ये अपवर्गद बिरोधीको भी बन्धनसे तो मुक्तकर ही देते हैं।

× × ×

कंस लगभग हताश हो गया था। उसके सब कूट प्रयत्न विफल हो गये थे। व्रज जाकर पुनः कोई असुर बना नहीं रह सकता, यह सीधी बात उसकी समझमें नहीं आ रही थी। वह व्याकुल था। अरिष्टने स्वयं उसे आश्वासन दिया और अपने आप ही व्रजकी ओर चल पड़ा। अन्ततः बैल-का बुद्धिसे क्या काम। वह भी असुर बैल—तामसी बुद्धि उसे क्या बतलाने वाली थी।

अरिष्टने कोई छल नहीं किया। मायाका आश्रय लेकर आने वाले मारे गये, यह जानता था। उसे अपनी महाकायाका अभिमान था। सचल काले पर्वतके समान काया-ककुभको पर्वत समझकर मेघ उसपर उतर आते थे, इतना ऊँचा, सुदृढ़ तीक्ष्ण शृंग। अपने अहंकारमें मत्त सूर्यास्तके लगभग डेढ़ घण्टे पश्चात् नन्दव्रजके समीप पहुँचा। समय अपने अनुकूल चुना था इसने; क्योंकि रात्रिमें असुरोंका बल बढ़ जाता है।

अगले खुरोंसे मानो पृथ्वीको खोद ही डालेगा, ऐसा उत्साह— मुझे क्रोध तो इसके इसी कर्म पर आ गया। यह संघर्ष करने आया और जहाँ संघर्ष है, मेरी दृष्टि तो वहाँ है ही। मैंने श्रीव्रजराजकुमारसे षष्ट होकर असुरके साथ षटाष्टक योग साध लिया इसके अष्टम भावको अपना-कर।

भयङ्कर गजना—सांड़के किसी हँकड़नेसे समता नहीं। मस्तक झुकाकर सींगोंसे पुरकी वाह्य परिखाका बड़ा भाग फेंक दिया इसने। अरिष्ट आया तो कुछ अनर्थ अवश्यम्भावी बन गया था।

गोप व्याकुल हुए। गायों और वृषभोंका समूह गोष्ठोंके अर्गला तोड़ कर वनकी ओर भागा। अरिष्टासुरका सदाका स्वभाव—असुर क्यों देखे कि कौन-सी गाय वृषभ-कामा हुई है। वह तो गर्भिणी, सद्यः प्रसूता सभी गौओंको समान मानता रहा है। गायों पर चढ़कर उनका गर्भपात कर देना, उन्हें असह्य पीड़ा देकर मार देना ही इसका व्यसन रहा है। वृन्दावनकी वाह्य परिखा सींगोंसे फेंककर गोष्ठोंके वप्र गिराने लगा। गायें इसके समीप आनेसे पूर्व ही भाग चलीं वनकी ओर। गायोंके पीछे कम ही भागा आज यह असुर। आज तो इसे इसका काल हाँक लाया था। एकसे दूसरे गोष्ठके वप्र गिराता हंकड़ता, फुफकारता दौड़ता बढ़ रहा था।

'भागो! साँड़—असुर साँड़ आ गया!' गोप चिल्ला रहे थे— गायों, वृषभोंको भगा दो वनकी ओर!'*

---

*तिब्बत में अब भी जंगली याक (चमरी) जब कभी वहांके पशु पालकोंके पास पास आ जाता है, महान आतंक उत्पन्न करता हैं। मनुष्यों कुत्तोंको खुरोंसे खूंद-खूंदकर मारता है। बन्दूककी १४ से २० गोली खाकर भी लड़ता हैं। मादा-याक मिलने पर उन्हें लेकर लौटता है।

गायें व्याकुल चिल्ला रही थीं। वृषभ बछड़े सब भय-क्रन्दन करते भाग रहे थे। श्रीव्रजराजकुमार वनसे लौटकर आये थे और साँयकालीन गोदोहन समाप्त करके अभी सखाओंके साथ ब्यालू करने ही जा रहे थे। यह कोलाहल सुनते ही भवनसे बाहर भागे।

'नीलमणि ! बेटा नीलमणि ! कहाँ जा रहा है तू ?' मैया व्रजेश्वरी व्याकुल हुई— 'अभी ब्यालू करना है। तनिक रुक !'

'मैया ! अभी आया।' चपल नन्दनन्दन सखाओंके साथ दौड़ गये — 'एक साँड आया है तनिक देख तो लूँ।'

'साँड ? कैसा साँड ?' व्रजरानीकी पुकारका कौन उत्तर दे ? इस समय कोई सेवक भी समीप नहीं और गोप तो अभी गोष्ठमें हैं। सेविकाओं-के साथ द्वार पर पहुँचकर व्रजेश्वरी ठिठक गयी। बालक किधर चले गये, यह दीखता नहीं। पथमें गायों, वृषभोंका झुण्ड भागता जा रहा था और सब अचानक रुक गये। सब लौटकर स्थिर खड़े हो गये। भयार्त पुकारने लगे। पशु न वनकी ओर भाग पाते हैं और न आगे बढ़नेका साहस कर पाते हैं। इनके कारण पथ अवरुद्ध हो गया है। किसी साँड़का भयानक हँकड़ना सुनायी पड़ रहा है।

× × ×

गायों, वृषभों, बछड़ोंके भागते दलके मध्यसे बालक आगे बढ़े तो पशुओंने इन्हें मार्ग दिया परस्पर सटकर और खड़े हो गये। पीछे मुड़ पड़े और सभीत देखने लगे जिधर सखाओंके साथ इनका गोपाल दोड़ा चला गया था।

साँड़ कुछ दूर आगे गर्जना कर रहा था। पशुओंका ठट्ट पथमें पीछे भर गया था। उनसे कुछ पद आगे पहुँचकर श्रीव्रजराजकुमारने सखाओं-की ओर देखा— 'डरना मत ! यह राक्षस है। मैं इसे बुलाता हूँ।'

'राक्षस है ?' बालकोंने इधर-उधर देखा। अपने लकुट नन्दगृहमें ही छोड़ आये अन्यथा…

'चल इधर !' कोई सखा कुछ करे, कुछ सोचे, इससे पूर्व श्रीकृष्णचन्द्रने ताली बजायी–वज्रपात निष्ठुर तालीका शब्द और उससे भी ऊँची ललकार– 'मूर्ख ! अधम ! पशुओंको और पशुपालकोंको

संत्रस्त करनेसे क्या लाभ ? आ ! तेरे जैसे दुष्टोंका दर्प-दलन करने मैं यहाँ खड़ा हूँ। आ देखता हूँ तुझे !'

'आ ! आज !' बालकोंने भी ताली बजायी भद्रके कन्धे पर वाम भुजा रखकर नन्दनन्दन कुछ पद आगे आ गये। अग्रजकी ओर केवल देख लिया। इस दृष्टिका तात्पर्य मैं समझता हूँ। यह दृष्टि ही कह गयी– 'आर्य ! आप इस अरिष्टके शमनके लिए क्यों श्रम करें ? मैं ही इसे समाप्त किये देता हूँ। आप तनिक सखाओंको सम्हाले रहें।'

असुर अरिष्टने यह तलशब्द और ललकार सुनी। वह इन्हींको तो ढूंढ़ रहा था। जैसे वृत्रहा इन्द्रके करोंसे वज्र छूटा हो, इस वेगसे मस्तक झुकाकर दोनों सींग सामने करके फुँकार करता नथुनोंसे फुहारें उड़ाता, लाल-लाल नेत्र किये असुर टूट पड़ा।

सखाके कन्धेसे भुजा उठी और स्थिर शान्त श्रीव्रजराजकुमारने अरिष्टके दोनों सींग करोंमें पकड़े लिये। बल पूर्वक उसे पीछे ठेलते चले गये और अठारह पद तक ठेलकर फेंक दिया 'चल !'

असुर वृषभ बड़े वेगसे दौड़ा आया था। सहसा सींग पकड़कर पीछे ठेले जानेसे लड़खड़ाने लगा था। इतने वेगसे धक्का दिया गया था कि पीठ के बल गिरा। चारों पैर ऊपर उठ गये उसके।

श्रीनन्दनन्दन फिर पीछे हट गये। भद्रके कन्धे पर वाम भुजा फलाकर ऐसे खड़े हो गये जैसे कुछ किया ही न हो। बालकोंने हर्षसे ताली बजायी। सब हँस पड़े। असुरने पैर फटकारे, एक पार्श्वमें झुका और उठ खड़ा हुआ। बहुत क्रुद्ध हुआ। पूँछ उठाकर, सिर झुकाकर, नथुनोंसे फुंकार करता फिर टूटा।

इस बार दो पद आगे बढ़ गये ये मधुसूदन सखाके स्कन्धसे बाहु उठाकर। अरिष्टके दोनों सींग पकड़कर उमेठने लगे असुरकी भारी मोटी गर्दन मुड़ी और वह भूमिपर गिरा पड़ा। उसकी गर्दन भीगे कपड़ेके समान उमेठी जा रही थी। उसके मस्तक पर नन्दनन्दनने दोनों सींगोंके मध्य दक्षिण चरण जमाया और सीग बलपूर्वक उखाड़ लिये। उन सींगोंसे ही पीटकर मार दिया अरिष्टको।

नेत्र निकल आये। मुखसे फेन और रक्त निकलने लगा। गर्दनकी अस्थि टूट गयी। सींगोंके स्थानसे रक्त धारा चलने लगी। गोबर त्यागकर

अपने ही रक्तमें लथपथ अरिष्ट पैर, पूँछ फट-फटाकर शान्त हो गया।

यह अधम भूमि-पुत्र अरिष्ट अपने रक्तमें सना भूमि पर मरा पड़ा है। श्रीकृष्णचन्द्रने अपनोंके लिए सदाको मार दिया अरिष्टको। मैं अपने इस अनुज पर गर्व कर सकता हूँ। यह अब गोलोकमें इन व्रजराजकुमारके गोष्ठका महा वृषभ बनने चला गया। क्या हुआ कि यह वहाँ कृष्णकाय रहेगा। हिम-धवल धम भी अब इसकी स्पृहा-स्पर्धाकर सकता है।

मैं मंगल तो रक्त-प्रवाही हूँ। अरिष्टके रक्तसे चर्चित नन्दनन्दनका यह दक्षिण चरण मैंने देख लिया है। जिसके मानसमें इसकी किञ्चित् छाया भी आवेगी, यह धरासुत मंगल सदा उसके सानुकूल परम मंगल प्रस्तुत करेगा।

अरिष्ट तो मर गया। गोपकुमार अपने सखाको आलिंगन देने लगे हैं। मधुमङ्गल कहता है—कनूँ! तूने साँड़ मारा है, अतः स्नानकर और मेरे जैसे सम्मान्य ब्राह्मणको श्रद्धा सहित मोदकदान कर!'

'पण्डितजी! आपकी सब बात तो ठीक; किन्तु सुबल हँसने लगा है—'आपको आज साँड़का दान स्वीकार करना चाहिये।'

'सांड़?' मधुमङ्गल मरे काले अरिष्टको सभय नेत्रोंसे घूरता है—'साँड़ महर्षि शाण्डिल्यको दे देना मैं केवल मोदकसे सन्तुष्ट हो जाऊँगा।'

श्रीव्रजराज समीप आ गये हैं। बालकोंको सचमुच स्नान कराने ले चले वे। गोप गोष्ठोंमें अपनी गायें, वृषभ, बछड़े हाँककर ले जानेमें लग गये अरिष्टका शव तो अन्त्यज उठा ले जायँगे।

अब कहीं मैया व्रजेश्वरीको पता लगा है कि उनका नीलमणि सखाओंके साथ सुरक्षित है। वह बाबाके साथ स्नान करने चला गया। मैयाको यह अच्छा नहीं लगता। बालक इस फाल्गुनके कृष्ण पक्षमें रात्रि स्नान करें, आवश्यक तो नहीं था; किन्तु व्रजराजसे कुछ कहा नहीं जा सकता। बालकोंके व्यालूकी व्यवस्थामें लगी इन व्रजेश्वरीके पावन पदोंमें मेरी प्रणति।



केशी-कदन

वेदमाता होनेके कारण श्रुतियोंके संरक्षणके प्रति मेरा सशंक रहना स्वाभाविक है। श्रुतिके संरक्षकोंको मेरा सहज स्नेह प्राप्त होता है। वेद, ब्राह्मण, गौ तथा सुरोंकी रक्षाके लिए श्रीहरि बार-बार पृथ्वीपर पदार्पण करते हैं; किन्तु जबसे असुर हयग्रीवने प्रलयाब्धिमें वेदोंका हरण किया, मुझे असुर घोटकोंसे अधिक आशंका हो गयी है। हयग्रीवको तो श्रीहरिने वैसा ही समानाकार हयशीर्ष स्वरूप धारण करके समाप्त कर दिया। वेद पुनः ब्रह्माको प्रदान किये; किन्तु असुर अश्वोंकी परम्परा समाप्त नहीं हुई, यही मेरी चिन्ताका कारण है। सबसे अधिक बड़ी आश्चर्यकी बात यह कि यह विपत्ति स्वयं सुरराज शक्रके कारण आयी है।

शक्रका अश्व-सेवक कुमुद यदि देवराजके घोटक पर मुग्ध होकर एक दिन आरूढ़ ही हो गया था तो कौन-सा अनर्थ हो गया; किन्तु इन्द्रने क्रोधमें उसे शाप दे दिया — 'तूने मेरे अश्वपर आरूढ़ होनेकी धृष्टताकी है, अतः असुर अश्व हो जा!'

कुमुद स्वर्गका अधिकारी था। अत्यधिक पुण्य प्रारब्ध था उसका। अब वह असुर हुआ तो अवश्यम्भावी बात थी कि अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर लेगा। सत्वमूर्ति सुरोंमें जो रह सकता था, उसे शाप देकर असुर बनाया जायेगा तो उसकी शक्ति अवश्य असह्य हो जायेगी। अब इन्द्र उसी अश्वसे आतङ्कित रहता है। केशी जब सिर उठाकर हिन-हिनाता है, वज्रपाणि सुरराजको सुरोंके साथ संत्रस्त होकर स्वर्गसे भागकर सुमेरुकी गुहाओंकी शरण लेनेकी सूझने लगती है।

मुझे सुरोंकी उतनी चिन्ता नहीं है। सुरोंकी सुरक्षाका दायित्व सृष्टिकर्त्ता पर है। मेरी चिन्ता है श्रुतियोंके सम्बन्धमें और श्रुतियोंके संरक्षक वेदज्ञ ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें। इस केशीको कौन मारेगा, यह तो अमर था शापित होने से पूर्व भी। अब यदि यह कल्पान्त तक रह जाता है, प्रलयकी रजनीमें परिश्रान्त, निद्राधीन ब्रह्मासे वेदोंको इसके द्वारा हरण किये जानेसे कौन बचावेगा!

कंसने केशीको पराजित करके भी प्रधान सेनापति बना लिया और मथुरा लाकर स्वच्छन्द निवास करनेकी आज्ञा दे दी। यह दुष्ट असुर-अश्व व्रजके पार्श्वमें वनमें बस गया। इस नरभक्षी घोटकने उस वनके दूसरे पशु तो खा ही लिये, उधरसे आने वाले अनजान यात्रियोंको भी आहार बना लिया। इसका आवास भूत-वन कंकालोंसे भर गया। गीध, कंक, चीलें और शृगाल जैसे क्षुद्र उच्छिष्ट माँसभक्षी प्राणी बस गये इसके आसपास जो इसके आखेटके खा लिये जाने पर अवशेषसे अपनी उदरपूर्ति करनेके कारण अनजानमें ही इसपर आश्रित हो गये थे। फलत: केशी चलता था तो ऊपर गृद्धो, चीलोंका समूह मंडराता साथ चलता था। शृगालोंके यूथ इससे थोड़ी दूर छिपे इसका अनुगमन करते थे।

नरभक्षी केशीका निवासभूत वन अगम्य हो गया। आहारके लिए केशीको दूर-दूर तक धावा करना पड़ने लगा। ऋषियोंके आश्रम, वानप्रस्थ विप्रोंके कुटीर इस असुरके आक्रमणसे अधिक ध्वस्त होने लगे। मैं कितना भी क्रोध करूँ स्वयं मैं तो संसारमें कुछ करती नहीं, जब तक कोई अधिकारी सविधि जप करके मेरी सानुकूलता न प्राप्त कर ले। मैं शक्ति प्रदान करती हूँ—असीम शक्ति दे सकती हूँ। सब दिव्यास्त्र–ब्रह्मास्त्रादि भी मेरे ही अनुलोम विलोमादि क्रमोंसे बनते हैं; किन्तु सृष्टिकर्त्ताने—सर्वेश्वरने मुझे स्वयं सक्रिय होनेकी स्वतन्त्रता नहीं दी है। दी भी होती तो मैं क्या कर सकती थी और किसी अधिकारीका अपनी ही ओरसे अन्वेषण करके उसे शक्ति सम्पन्न करदूँ तो भी क्या होना है? केशी अमर है। अमरको केवल अविनाशी मार सकते हैं, मैं तो मार नहीं सकती। कोई अमर सुर भी मार नहीं सकता।

मुझे आश्वासन प्राप्त हुआ जब स्वयं परात्पर परमप्रभु प्रकट हुए पृथ्वी पर। अब ये भू-भार हरण करने पधारे हैं तो मेरी विपत्ति बची नहीं रहेगी। गोकुलसे ये वृन्दावन आये तो मैं और आश्वस्त हो गयी; क्योंकि असुर अश्व केशी अब बहुत दूर नहीं बचा था।

देवर्षि नारदने कंसको यह सूचित करके कि 'बलराम और कृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं; श्रीकृष्ण देवकीके अष्टम पुत्र हैं जिन्होंने कंसके अनुचरों को मारा' उसे अत्यन्त व्याकुल बना दिया। वह पहिलेसे सन्देह करने लगा था कि उसका काल व्रजमें नन्द भवनमें ही है, अब देवर्षिने दृढ़कर दिया इस बातको। देवर्षि भयभीत न कर देते तो वह तत्काल वसुदेव-

देवकीको मार देता।* उन दोनोंको पुनः बन्दी किया उसने और केशीको तत्काल मथुरा बुलाकर व्रज भेज दिया। कंस अब अपनी विपत्तिको किसी प्रकार बचे नहीं रहने देना चाहता था। वह वही सब कर रहा था जो मृत्युग्रस्त प्राणी प्रारब्ध-प्रेरित अपने मरणके सब संयोग प्रस्तुत करनेके लिए करता है और समझता है कि वह सुरक्षाके साधन संग्रह कर रहा है।

कंस कुछ भी करे, मेरी इसमें कोई रुचि नहीं है अब यह तो स्वयं अपनी मृत्युको आमन्त्रित करनेके लिए अक्रूरको नियुक्तकर चुका। मेरी रुचि है केशीके निधनमें। यह असुर घोटक मर जाय तो मैं वेदोंकी सुरक्षा-की ओरसे निश्चिन्त हो सकती हूँ।

मथुरामें कंसकी मन्त्रणा सभासे केशी रात्रिके प्रथम प्रहरमें लौट सका। अपने वनमें इसने रात्रि व्यतीतकी। अपने आसुरी-स्वभावके विपरीत प्रातःकाल शीघ्र उठा और व्रजकी ओर चल पड़ा। आसन्न मृत्यु प्राणी ऐसे ही अपने सहज स्वभावके प्रतिकूल आचरण करने लगते हैं।

केशी अनेक दिनोंसे आहार न मिलनेसे भुक्षित था। कंसने भी कुछ दिया नहीं; उल्टे एक प्रतिबन्ध लगा दिया— 'नन्द पुत्रको पहिले समाप्त करनेके अनन्तर वहाँ चाहे जितने आखेट करना; किन्तु उससे पहिले और किसीको मारना मत! केवल आतङ्कित करना अरोंको। मैं जानता हूँ कि तुम भरपेट खा लेने पर शिथिल हो जाते हो। तुम्हें सो जाने-की सूझने लगती है। तुम्हारी इसी दुर्बलताके कारण मैं तुम्हें पराजितकर सका था। मैंने तुम्हारे सम्मुख तब तक साधारण सैनिक और अश्व भेजे, जब तक तुम उनका भक्षण करते रहे। जब तुम्हारे पेट भर जानेका अनुमान हो गया तब मैं तुम्हारे सम्मुख गया और तुम मुझसे पराजित हो गये थे। पुनः यही भूल व्रजमें मत कर बैठना!'

बुभुक्षित केशीके लिये बहुत कड़ा था यह प्रतिबन्ध; किंतु उसे कंसकी सम्मति उचित प्रतीत हुँई। जिससे कंस भी कतराता है सम्मुखीन होनेमें, उसके सम्मुख संघर्ष-श्रान्त, आहार-शिथिल होकर पहुँचना भयावह हो सकता है।

मेरी दृष्टि केशी पर ही लगी थी। व्रजमें वह बड़े प्रातःकाल, सूर्योदयके तनिक ही पीछे पहुँचा। अवश्य इस असुरको श्रीनन्दनन्दनके

---

* यह चरित 'भगवान वासुदेवमें' गया है।

करोंसे मोक्ष ही मिलता है। मरणके लिये इसे यह फाल्गुन कृष्ण एकादशी-का पुण्यकाल प्राप्त हुआ है और अब तो मैं निश्चित जानती हूँ कि इसे क्षण तिथि भी एकादशी ही प्राप्त होनी है। व्रजधरा तो इसे प्राप्त हो ही गयी है। असुर होकर भी धन्य है यह। स्वर्गमें बना भी रहता—सुरेन्द्रका सेवक ही तो था। शक्रका शाप इसके लिये सद्गतिदाता वरदान बन गया। सर्वेश्वरेश्वर स्वयं इसे सद्गति देंगे।

× × ×

अपने खुरोंसे मानों सम्पूर्ण भूमि खोदकर धर देगा, इस वेगसे केशी आया। देवताओंके गगनमें स्थित विमान इसके सटाघातसे अस्त-व्यस्त हो उठे। इसके हींसनेके भयानक शब्दसे संत्रस्त देवता भागने लगे। कज्जल-कृष्ण पर्वताकार शरीर, विशाल नेत्र, भयानक कन्दरोपम खुला मुख, लम्बी गर्दन, साक्षात् यमराजका वाहन महिष जैसे आज अश्व बन गया हो। गोप भागे पथमें-से। सब पुकारने लगे—'नर-भक्षी अश्व आ गया! भागो! भाग जाओ मार्गमें-से, भवनोंमें भागो! द्वार बन्द करो!'

गोपोंने छूटे पशु पुनः गोष्ठोंमें हाँककर बन्द किये और पशु भी भयाक्रान्त चिल्लाने लगे; किंतु केशी चाहे जितना भूखा हो, भूल नहीं कर सकता। यह किसी ओर—किसीकी ओर देखता नहीं है। इसे बालक चाहिये—कंसका बताया पीतवसन, मयूरमुकुटी, तमालनील बालक। केशी नन्दव्रजकी वीथियोंमें प्रचण्ड वेगसे दौड़ रहा है। हिनहिनाता उसी बालकको ढूँढ़ता दौड़ रहा है।

पथपर कोई बालक नहीं दीखता। बालक सब नन्द-भवन पहुँच गये हैं। गोपोंने पशुओंको पुनः गोष्ठोंमें अवरुद्ध कर दिया है। केशी दौड़ रहा है, दौड़ता जा रहा है। कोई बालक उसे कहीं दीखता नहीं है।

श्रीव्रजराजकुमार सखाओंके साथ कलेऊ कर चुके हैं। मैयाने शृङ्गार कर दिया है। अब गोचारणके लिए निकलने ही वाले हैं। 'यह लकुट उठानेसे पूर्व अश्वकी हिनहिनाहट कैसी? यहाँ किसका अश्व आया? यह तो असाधारण उग्रतम हेषित है?'

कुतूहलवश कृष्णचन्द्र भवनमें-से दौड़कर पथपर आ गये। गोपोंने पुकारना प्रारम्भ किया—'कृष्ण! दूर भागो! भागो श्यामसुन्दर! यह भयानक मानवभक्षी असुर अश्व है! दूर भागो! भागो भवनमें!'

कृष्णचन्द्र कहाँ ऐसी पुकार किसीकी सुनते हैं। इनका स्वभाव केवल आर्त पुकार, अपने लिए आर्त होकर कोई पुकारे तो सुननेका है अथवा कोई प्रेम-पिपासु प्राण पुकारे तो सुनते हैं। अपने स्वजन आतङ्क-ग्रस्त होकर दूर भागनेको पुकारें तो ये सुनेंगे ? ये नन्दनन्दन जो सुरर्षिके श्रद्धासहित श्रुतिसूक्तोंका स्तवन भी नहीं सुनते ?

केशी केवल हिनहिना सकता था ; किंतु कृष्णचन्द्रके कण्ठसे जो सिंहनादके समान गर्जना निकली— काँप गया असुर भी उससे । ये तो जैसे इतने विशाल काले अश्वको देखकर प्रसन्न हो गये हों, इस प्रकार पुकारा— 'कहाँ भागा जाता है ? आ ! आ जा ! मैं यहाँ खड़ा हूँ ।'

केशी आगे बढ़ गया था । आह्वान सुनते ही पलटा— 'यही ! यही है वह बालक । तमालनील, पीतवसन, मयूरमुकुटी—अवश्य यही है ।' इसीको तो केशी अन्वेषण कर रहा था । यह स्वयं न आ जाय, स्वयं न पुकारे तो कोई इसे अन्वेषण करके कभी पा सका है ?

केशी दौड़ता आया और तनिक आगे जाकर पिछले पदोंसे दुलत्ती का पूरा प्रहार इसने इन पद्मपलाश-लोचनके वक्षपर किया। कृष्णचन्द्र एक ओर कूद गये और अश्वके दोनों पद पकड़कर उसे अवज्ञापूर्वक सौ धनुष दूर फेंक दिया । ठीक ऐसे फेंक दिया जैसे गरुड़ने किसी सामान्य सर्पको पकड़कर झिंझोड़कर झटक दिया हो ।

केशी अमर नहीं होता तो अवश्य मर गया होता। अश्वके लिए गिर जाना अस्थि-भङ्ग-कारक बन जाता है । केशीकी अस्थियाँ चूर्ण हो गयी होतीं । वह भारी धमाकेके साथ गिरा था ; किंतु असाधारण अश्व था । अमर असुर अश्व गिरते ही उठा । केवल किञ्चित् मूर्छा आयी थी उसे । उठते ही क्रोधान्ध मुख फाड़कर दौड़ा श्रीकृष्णकी ओर ।

कोई अमर यदि अविनाशीका अङ्ग आत्मसात् करना चाहेगा तो क्या होगा ? अमर भी ससीम ही होता है । अविनाशी अनन्तको अपने भीतर लेने जाकर फटकर सत्ताहीन होना अनिवार्य है उसके लिये । यही हुआ केशीके साथ । वह मुख फैलाये आया तो व्रजराजकुमारने मुस्कराते हुए वामकरकी मुट्ठी बाँध ली और वह बाहु केशीके मुखमें ऐसी प्रविष्ट हो गयी जैसे सर्प स्वयं बिलमें चला जाय । उस वज्र-बाहुके स्पर्शसे केशीके सब दाँत टूटे और उदरमें चले गये । गिर पड़ा केशी और पैर फटफटाने

लगा। अनन्त अविनाशीकी भुजा उसके उदरमें बढ़ती चली गयी। श्वास रुद्ध हो गया। केशीके सम्पूर्ण शरीरसे स्वेदधारा चल पड़ी, नेत्र निकल आये, लेण्ड निकल पड़ा मलद्वारसे और उसका उदर फूट (ककड़ी) के समान फट गया।

नन्दनन्दनने अपनी सुकुमार भुजा निकाल ली। सुरोंका आतङ्क समाप्त हो गया। वे सुमन-वृष्टि करने लगे। उनका आतङ्क केशी तो अब गोलोक गया श्यामसुन्दरका अश्व बनकर। अब इसका यह विदीर्ण वपु—गोपोंके सेवक कहीं दूर फेंक देंगे और केशीके सहारे ही पले शृगाल, गृद्ध, चीलें इसे समाप्त कर देंगी। वे भी पवित्र हो जायँगे इसे खाकर।

सहसा देवर्षि आ गये। आते ही हँसकर बोले—'अब संसार केशीको मारनेके कारण आपको केशव कहेगा। परसों कंसको, उसके अनुचरों, मल्लों, अनुज़ोंके साथ मार दीजिये!'

देवर्षिने आगामी असुर-ध्वन्सका कार्यक्रम शीघ्र सुना दिया और अदृश्य हो गये; क्योंकि सखा समीप आ गये थे। मैया व्रजेश्वरीने सबको साग्रह भेजा था नीलमणिको लानेके लिये। पता नहीं क्या हो रहा था बाहर। किसी अश्वकी भयानक हेषित सुनायी पड़ी थी।

'इसने उस अश्वके मुखमें यह बाहु डाल दी थी।' वरूथपने सुनाया। सब श्यामको घेरकर मैयाके सामने ले गये। अब भी वाम भुजा अश्वके श्लेष्मासे क्लिन्न है।

'उसने तुझे काटा तो नहीं?' मैया सशङ्क अपने नीलमणिकी भुजा देख लेना चाहती है।

'मुझे काटता? मुझे तो कोई भी नहीं काटता' अब ये स्वयं आश्चर्यपूर्वक अपनी ही भुजा देखने लगे हैं। जैसे कोई इन्हें काट भी सकता है, यह सम्भावना ही आश्चर्यजनक है। सचमुच कोई परिपूर्ण अखण्ड अविनाशीको काट कैसे सकता है? ये तो भोलेपनसे कहते हैं—'बतलाऊँ?'

'अब तू बतलाना रहने दे!' मैया जानती है कि बतलानेके नाम-पर उनका लाल श्वान, मार्जार या किसी भी पशुके मुखमें कर डालने

लगेगा—'मुझे यह बाहु धो लेने दे। यह कितनी मलिन हो गयी है। तुझे गोचारणके लिये गायें पुकारने लगी हैं।'

सचमुच अब गायोंने, वृषभोंने एक साथ गोष्ठोंमें-से हुंकार करना प्रारम्भ कर दिया है। गोपोंको भी लगता है कि बालक पहिले पशु लेकर वनमें चले जायँ, तब मृत असुर घोटकके शवकी व्यवस्था करना ठीक होगा। सब अपने गोष्ठोंके द्वार उन्मुक्त करने चले गये हैं।

गोपालको भी वनमें जानेकी शीघ्रता है। मैया इनकी वाम भुजा धोकर, पोंछकर भली प्रकार देखनेमें लगी है और ये उसे छुड़ाकर लकुट लेकर वनमें सखाओंके साथ जानेको आतुर हैं।



अक्रूर आये

मथुरासे पहिली बार एक भक्त पुरुष आये। कंसके चर होनेपर भी भद्र पुरुष। कंस-प्रेरित अबतक जो भी आये थे, असुर आये थे और वे लौटकर जानेके लिए नहीं आये थे। उनके आगमनमें मुझे आपत्ति नहीं थी। जो भूमिका भार ही दूर करने आये हैं, उनके करोंसे ही तो असुरोंका उद्धार होना है। अतः असुर आये और हमारे व्रजराजकुमारने उन्हें अपने धाम भेज दिया। लेकिन इस बार अक्रूर आये। क्रूर कंसने अक्रूरको प्रेषित किया। इनके आगमनपर मुझे आपत्ति बहुत अधिक है; किंतु करूँ क्या, भक्त पर—अक्रूर पर तो कोई वश नहीं। यह अक्रूर आये तो व्रजका सर्वस्व-हरण करने और नन्दनन्दनकी चरण-रजमें आपाद-मस्तक स्नान करके आये। इस रजका स्पर्श करने वाला सबसे अभय हो जाता है, इसलिये मुझे चाहे जितनी व्यथा हो, इनका कुछ किया नहीं जा सकता।

अद्‌भुत हैं यह अक्रूर भी। कंसने भेजा मथुरासे कि 'राम-कृष्णको व्रजसे यहाँ ले आओ!' अपना विशेष रथ दिया कंसने। वायुवेग अश्ववाला वह रथ और अक्रूर मथुरासे प्रातःकाल चल पड़े; किंतु रथ और अश्व क्या करें, जब कोई उन्हें चलावेगा तब तो चलेंगे!

कंसने कल सायं ही केशीको भी भेजा था। वह आ गया प्रातःकाल ही और तभी उसका उद्धार हो गया; किंतु अक्रूरको तो मथुरासे निकलते ही मानो काठ मार गया। यह इसी असमंजसमें पड़ा रहा—'जाऊँ या न जाऊँ? वे मुझे मिलेंगे भी या नहीं? कंसका दूत हूँ, यह समझकर रुष्ट होंगे अथवा अपना चरणाश्रित जानकर कृपा करेंगे?'

हरिभक्त अक्रूर—वनदेवीको इनपर दया आयी। उन्होंने शुभ शकुन बार-बार सम्मुख उपस्थित किये। देवता बाधक बनते हैं जब मनुष्य देवताओंका आश्रय त्यागकर अपने नित्य सखा नारायणका पार्श्व पाना चाहता है; किंतु व्रजके देवता तो श्रीकृष्णके शरणागतकी सदा सहायता ही करते हैं। बाधक बनते हैं इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता। उनकी सेवा छूटती है जब मनुष्य अन्तर्यामी हृषीकेशकी ओर उन्मुख होता है। हम तो

नन्दनन्दनके सेवक हैं। जो इनकी ओर आना चाहे, उसके लिए हमारी सहायता सदा प्रस्तुत है।

दाहिने मृगमाला आयी या नीलकण्ठ, लोमड़ी, श्वेत चीलके दर्शन हुए तो अक्रूर उत्साहमें आ गये— 'अवश्य मुझे धरापर अवतीर्ण श्रीहरिके चरण-दर्शन प्राप्त होंगे। वे अन्तर्यामी मेरे हृदयको पहिचानकर मुझे अपनावेंगे। अपने पादपद्मोंमें प्रणत मुझे विशाल बाहुओंसे बलपूर्वक उठाकर हृदयसे लगा लेंगे। मेरा स्वागत करेंगे! मुझसे कंसका व्यवहार, अभिप्राय पूछेंगे। मेरा नाम लेकर मुझे पितृव्य कहेंगे! आज मेरा जीवन धन्य हो जयगा। आज मेरे नेत्र सफल होंगे। आज उन कमललोचनका स्पर्श पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। कंसने मुझपर बड़ी कृपाकी मुझे यहाँ भेजकर। श्रीकृष्णका जिसने दर्शन नहीं किया, जिसे इन पुरुषोत्तमका पादस्पर्श नहीं मिला, उसके जीवनको धिक्कार है। ये जिसका स्वागत करें, जिसे आदर दें, जगतमें आना उसका सफल हुआ।'

रथके अश्व पूरी गतिमें भी नहीं आ पाते और अक्रूरका उत्साह समाप्त हो जाता है। रथ रोककर फिर सोचने लगते हैं— 'मैं क्रूरकर्मा कंसका सेवक हूँ। कंसके भेजनेसे आया हूँ। कंसके कुटिल अभिप्रायमें सहायक बनने आया हूँ। मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है कि मुझे परम पुरुषका पादस्पर्श मिले? जन्म-जन्मके तप, जप, साधनसे भी योगीन्द्र-मुनीन्द्र जिनकी कृपा कठिनाईसे प्राप्त कर पाते हैं, मुझ अधम पर वे क्यों कृपा करेंगे? मुझमें न तप है, न योग है, न प्रेम है। किस अधिकारसे मैं पाऊँगा उन्हें?'

वनदेवी बार-बार शकुनों द्वारा शुभ सूचना देकर उत्साहित करती रहीं। अक्रूरके दक्षिण नेत्र, दक्षिण बाहुमें स्फुरण हुआ। सूझा उन्हें— 'पुरुषोत्तम साधनसाध्य तो नहीं है। ये पतितपावन, अनाथनाथ, अनाश्रयाश्रय दयाधाम दीनबन्धु अवश्य मुझ दीन, अनाश्रितको अपना लेंगे। अवश्य मुझपर कृपासागर कृष्ण कृपा करेंगे। मेरा हाथ पकड़कर उनके अग्रज मुझे सदनमें ले जायँगे। मेरा समुचित सत्कार करेंगे। उनकी करुणाका कोई पार है, फिर मैं कातर क्यों बनूं। वे तो सदा अपनी ही अनुकम्पासे मुझ जैसे साधनहीनको अपनाते आये हैं।'

अक्रूरका रथ इस प्रकार बहुत भटकता हुआ बढ़ रहा था और तब तो वनमें ही रह गया होता यदि प्रशिक्षित अश्व स्वयं अक्रूरका अनुगमन

न करते, जब वनपथमें सहसा गौओंके असंख्य खुरोंके चिह्न अक्रूरने देखे और रथसे उतर पड़े। उन गोपद-चिह्नोंके पीछे बालकोंके पद-चिह्नोंमें नन्दनन्दनके चरण-चिह्न पहिचानना किसीके लिए कठिन कार्य नहीं है। पद्म, ध्वज, वज्रादिके चिह्न किसी भी सामान्य मानवके चरणोंमें तो नहीं होते।

'अहा! ये मेरे आराध्यके चरण-चिह्न हैं।' अक्रूर तो उन चिह्नोंको दण्डवत् प्रणिपात करने लगे। उनकी रज मस्तकमें लगाते, शरीरमें मलते, पुलकपूरित शरीर, अजस्र अश्रुधारा नेत्रोंमें—अक्रूरको अपने भी शरीरकी सुधि नहीं रही। पद-चिह्न बराबर प्राप्त न होते तो अक्रूर वनमें अवश्य भटक जाते। वे तो पद-चिह्नोंको प्रणिपात करते, उनकी रजमें स्नात पैदल ही बढ़ते आये नन्दीश्वरपुर। प्रशिक्षित अश्व रथके लिए उनके साथ पीछे चलते रहे। इस प्रकार सायंकाल अक्रूर पहुँच सके।

राम-श्याम गोदोहन समाप्त करके गोष्ठसे निकले ही थे। अक्रूर देखते ही दौड़कर दण्डवत् पड़े सम्मुख। श्रीव्रजराजकुमारने उठाकर हृदयसे लगा लिया। अक्रूरके अश्रुसे श्यामसुन्दरकी अलकें आर्द्र हो गयीं। कुछ क्षण पश्चात् अपनेको सम्हालकर संकर्षणको उन्होंने प्रणिपात किया। अङ्कमाल देकर, कर पकड़कर श्रीबलराम ले आये सदनमें। श्रीकृष्णचन्द्रके संकेतपर सेवकोंने रथ सम्हाल लिया। अश्वोंको खोला और उनको चारा दिया।

व्रजराज बाहु फैलाकर मिले। इतना आदर–ऐसा आतिथ्य जिसकी कल्पना भी अक्रूरने नहीं की थी। उनका देवताके समान पूजन हुआ। श्रीनन्दरायने उत्तम गायें उपहारमें दीं।

अक्रूर ऐसे स्तब्ध हुए कि बोल भी नहीं सके। यह भी कह नहीं सके कि वे अतिथि नहीं, दूत हैं। अतः आतिथ्यके अधिकारी नहीं हैं। केवल राजाके दूतके समान सत्कार-स्वत्व है उनका।

भोजन करके जब शय्यापर अक्रूर विश्राम करने लगे, राम-श्याम उनके पद अङ्कमें लेकर बैठ गये। अक्रूरका सङ्कोच क्या करे। श्रीकृष्णको वारित करना सम्भव नहीं था। इन कमललोचनने कहा—'पितृव्य! आप हमारे पूज्य हैं और आज तो अतिथि भी हैं। आप परम धर्मज्ञ हमें सेवासे रोक कैसे सकते हैं।'

श्रीकृष्णचन्द्रने आगमनका कारण पूछा और अक्रूरने निष्कपट होकर सब सुना दिया कंसकी पूरी कुटिल योजना बतला दी। कह दिया—

'देवर्षि नारदने उसे कल बतलाया कि आप दोनों वसुदेव-पुत्र हैं। देवकी देवीके अष्टम पुत्र आपको वसुदेवजी रात्रिमें ही नन्दगृह रख गये और जो कन्या मिली, वह यशोदाजीकी थी।'

'कंस उसी समय देवकी, वसुदेवको मार देता; परन्तु देवर्षिने उसे डराकर रोक दिया। दोनोंको उसने कारागारमें डाल दिया है। आप दोनोंको मारने उसी समय अपने सेनापति नरभक्षी असुर अश्व केशीको उसने भेजा था। उससे सावधान रहें।' अक्रूरने कहा।

'वह यहाँ प्रातः पहुँच गया था।' श्रीबलराम हँसे -- 'इनका स्पर्श पा गया। अब तो उसका शव भी गृद्ध-श्वान, शृगाल समाप्त कर चुके होंगे। कहीं केवल कङ्काल पड़ा होगा उसका।'

'अच्छा हुआ।' अक्रूर सम्भ्रमपूर्वक उठकर बैठ गये। केशीकी मृत्युका समाचार उनके लिये भी असाधारण था। आदरपूर्वक बोले— 'कंसने धनुष-यज्ञकी योजना बनायी है। उसका सोचना है कि परसों महाशिवरात्रिको गोप व्रत-दुर्बल रहेंगे। वह तो भूतेश्वरको बलि दिलवाता है। धनुष-यज्ञके समय वह अन्तमें धनुष उठाता है। वह भगवान शङ्करका धनुष दूसरा कोई उठा नहीं पाता। कंस उसे ज्या-सज्ज करके शर-सन्धान करता है और कोई भी निरपराध लक्ष्य बन जाता है। इस बार उसने दस सहस्र गजबल वाले कुवलयापीडको सुरा पिलाकर मल्लशालाके द्वारपर रखनेको महामात्यको आदेश दिया है। महामात्यको आदेश है कि 'आप दोनों पहुँचे तो वह गजके द्वारा आपको कुचल डालनेका पूरा प्रयत्न करे।'

'कंसने अनेक असुर मल्ल पाले हैं।' अक्रूर विवरण देते गये— 'चाणूर, मुष्टिक, शल तोशल, कूर आदि। ये सब अत्यन्त क्रूर तथा वज्रकाय हैं। अपने प्रतिद्वन्द्वीको मार डालना ही प्रिय है इन्हें। गजसे बचकर कथंचित् आप दोनों मल्लशालामें पहुँच सके तो ये मल्ल आप दोनोंका आह्वान करेंगे स्वैर-संयुग (बिना किसी नियमके स्वच्छन्द मल्ल-युद्ध) के लिये। कंसने उन्हें मिलकर भी आपपर आक्रमणका आदेश दिया है। इससे भी यदि आप अपनी रक्षा कर लें तो अन्तमें वह धनुषोत्तोलन करेगा। शर-सन्धान करेगा और धोखा देकर आपको लक्ष्य बनाना चाहेगा।'

'आर्य! अब इस मातुलकी आयु समाप्त होनेको आ गयी।' श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजकी ओर देखकर अक्रूरसे कहा—'पितृव्य! आप

यह सब अब किसीसे कहें नहीं। आपको जो कहनेको भेजा है राजाने, वही कहें।'

भीत, शंकित अक्रूरने कह दिया—'मुझे केवल यह कहनेका आदेश है कि श्रीनन्दराय गोपोंके साथ उपहार लेकर आप दोनोंको लेकर अवश्य मथुरा इस महोत्सवमें आवें।'

'आप अब विश्राम करें! हम राजाका सन्देश बाबाको बतला देते हैं।' दोनों भाई उठ खड़े हुए—'आप निश्चिन्त रहें। हम कल प्रातः प्रस्थान करेंगे।'

× × ×

व्रजराजने राजा कंसका सन्देश सुना। प्रमुख गोप एकत्र हुए; किंतु गोपोंकी गोष्ठीमें यही निर्णय हुआ कि 'मथुरा जाना ही उचित है। राजाके सन्देशकी अवज्ञा करनें पर वह आक्रमण कर दे सकता है। अपना रथ भेजकर सादर उसने राम-श्यामको बुलाया है। वहाँ भी गोप शस्त्र-सज्ज रहेंगे। महोत्सवमें दूसरे लोग भी आवेंगे। कंसने कोई अन्याय-चेष्टा की भी तो सब उसके समर्थक ही तो नहीं होंगे। वैसे भी सबके सम्मुख, महोत्सवमें वह कोई दुस्साहस करे, इसकी सम्भावना नहीं है।'

पूरे व्रजमें वाद्यके साथ घोषणा हो गयी प्रातः मथुरा-प्रस्थान की। 'राजाने राम-श्यामको मथुराकी शोभा तथा महोत्सव-दर्शनके लिए आमन्त्रित किया है। अपना रथ भेजा है। गोपोंको उपहार लेकर साथ जाना है।' यह समाचार पूरे व्रजमें रात्रिके प्रथम प्रहरमें ही प्रसारित हो गया।

अक्रूरको रात्रिमें निद्रा नहीं आयी। वे समझ नहीं पाते थे कि उनकी सूचनाओंकी इतनी उपेक्षा दोनों भाइयोंने क्यों कर दी। वे तो आशा करते थे कि व्रजराजको बतलाकर शस्त्र-सन्नद्ध गोपोंका एक प्रबल दल अवश्य साथ ले जायँगे, यदि कहीं अन्यत्र ही रात्रिमें चले जानेकी योजना नहीं बनाते; किंतु दोनों भाइयोंने तो कंसकी कुटिल योजनाएँ मानो सुनी ही न हों। इसी चिन्तामें अक्रूर रात्रि-जागरण करते रहे। प्रातः श्रीनन्दराय अपने साथ उन्हें यमुना-स्नान करने ले गये। सन्ध्या-पूजन करके वे स्वयं रथमें अश्व जोतनेमें लग गये और रथ सज्जित करके उस पर बैठ गये।

गोप रात्रिभर अनेक गोष्ठियोंमें व्यस्त रहे। उन्होंने दूध, दधि, नवनीत, घृतके भाण्ड सजाये छकड़ों पर राजाको उपहार देनेके लिए। अपने शस्त्र स्वच्छ किये। यह निर्णय कर लिया कि सब साथ ही रहेंगे और कोई अवसर ही आ गया तो कौन-सा दल राम-श्यामको बालकोंके साथ व्रज चल देगा और कौन-कौन मथुराकी सेनाको कैसे कहाँ रोकेंगे।

गोपियाँ भी गोपोंके साथ प्रस्थानकी सामग्री एकत्र करनेमें लगी थीं। मैया यशोदा—माता रोहिणीका हृदय पता नहीं क्यों मथित हो रहा था। चार दिनको राम-श्याम क्या जा रहे थे, लगता था कि चार युगको जा रहे हैं। नीलमणिको कब क्या चाहिए, यह सोचने, सजाने, साथके सेवकोंको बतलानेमें वह लगी थीं। व्रजेश्वर तकको मैयाने बार-बार सचेत किया, समझाया।

'मथुरा बहुत बड़ा नगर है। बालक चपल हैं। पता नहीं नागरिक कैसे होंगे। कंस तो क्रूर है। उसके कर्मचारी, नगर-रक्षक होंगे स्थान-स्थानपर।' सहस्रशः आशङ्काएँ हैं; किंतु जाना तो है ही बालकोंको। उनकी सुख-सुविधाकी सामग्री सम्हालकर, बतलाकर धर देनी है। व्रज-राजको सावधान कर देना है। श्रीहरि रक्षा करेंगे!

सबसे अधिक व्याकुलता है बालिकाओंमें। वे सब एकत्र हो गयी हैं। सबका हृदय फटा जा रहा है। एक ही चर्चा है—'ये भुवनसुन्दर नगरमें जायँगे तो वहाँकी चतुरा किशोरियाँ इन्हें आने देंगी? इनको रिझाने-रोकनेमें कुछ उठा रखेंगी? ये ही क्या उन नागरिकाओंके रूप, गुण, चातुर्यको देखकर हमारा स्मरण कर पायेंगे? क्या है हम ग्राम्याओं-में? हमें न ठीक शृङ्गार आता, न बोलना, रहना। हमें क्यों स्मरण करेंगे ये?'

'नागरिकाओंका पुण्योदय हुआ। मथुराकी कुमारियोंका आज भाग्य जागेगा इन्हें देखकर। अब ये कहाँ लौटनेवाले हैं!' बालिकाएँ फूट-फूटकर रोने लगी हैं। लज्जा, सङ्कोच सब विस्मृत हो गया। सब परस्पर एकत्र हैं और रुदन करते रात्रि व्यतीत की इन्होंने। माताओंको अवकाश नहीं। वे प्रभात-प्रस्थान करनेवालोंकी प्रस्तुतिमें लगी हैं। सबके पति-पुत्र, भाई जा रहे हैं। बालिकाओंका रुदन सबको स्वाभाविक लगता है। नन्द-नन्दनका चार दिनका वियोग बड़ोंको व्याकुल किये हो तो ये सब तो बालिकाएँ हैं।

'आप रथको तनिक मन्द गतिसे लाएँ!' व्रजराजने अक्रूरसे अनुरोध किया—'हम छकड़ोंको लेकर आगे चलते हैं। वैसे हमारे छकड़े भी वेगवान हैं।'

'मैं आप सबसे आगे नहीं जाऊँगा।' अक्रूरने आश्वासन दिया—'यमुना किनारे आपके व्रजकी सीमापर मध्याह्न स्नान-सन्ध्या करूँगा मैं।'

'हम तुमसे पहिले पहुँचेंगे।' सखाओंने सोल्लास कहा श्यामसुन्दरसे और छकड़ोंपर बैठ गये। बालकोंको, उपहारादिको लेकर गोपोंके छकड़े प्रथम चल पड़े।

व्रजमें ग्यारह वर्ष, छः महीने, पाँच दिन रहकर श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजके साथ फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशीको अमृत योगमें, जबकि लग्नेश बुध था, मङ्गलकृत्य करके मथुरा-प्रस्थान किया। मैया यशोदाने वामपार्श्वमें चन्दन चर्चित सपल्लव जलपूर्ण कलश रखा था और दाहिने निर्धूम अग्नि प्रज्वलित थी। साध्वी सपुत्रा स्त्रियाँ दर्पण लिये सम्मुख खड़ी थी। महर्षि शाण्डिल्यने स्वस्तिवाचनपूर्वक दूर्वा, श्वेतपुष्प, अक्षत हाथमें दिया। व्रजराजकुमारने उसे मस्तकपर रखा। घृत, मधु, रजत, स्वर्ण, दधि, सवत्सा श्वेत गौका दर्शन कराया गया उन्हें।

श्रीनन्दनन्दनने गुरुजनोंको, ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। शङ्खध्वनि, सस्वर वेदपाठ, मङ्गलगानके मध्य उन्होंने पहिले दाहिना पद उठाया। वामनासासे वायु खींचकर वह छिद्र करसे दबाकर दक्षिण नासिकासे छोड़ा। तब प्राङ्गणमें पहुँचे। द्वार आम्रपल्लवोंकी बन्दनवारसे सजा था। सफल कदली-स्तम्भ लगे थे। मैयाने वाम भागसे दाहिने आकर हृदयसे लगाया और तब अग्रजके साथ आकर रथपर बैठे।

बालिकाएँ उन्मादिनी हो उठी थीं। वे अश्वोंसे, रथचक्रसे लिपट पड़ी थीं। श्यामसुन्दरने बड़े स्नेहसे उन्हें समझाया—'मैं तुमसे पृथक रह नहीं सकता। तुम अपनी अमल प्रीतिपर विश्वास करो। मैं सदा तुम्हारे समीप रहूँगा। मथुरासे शीघ्र समाचार देकर दूत भेजूंगा।

बहुत व्यथा हुई मुझे। अपनी निधि कोई ले जाय—किसे कष्ट नहीं होगा? अक्रूर मेरा सर्वस्व लिए जा रहा और मैं देवता होकर भी इसका कुछ कर नहीं सकता। मेरे स्वामी, मेरे आराध्य, मेरे सर्वस्व इसके साथ हैं। इनकी यात्रा मङ्गलमय हो! इस समय केवल यही मैं सोच सकता हूँ।

बालिकाओंकी व्यथा मैं कैसे कहूँ। मैं अपनी ही व्यथासे विक्षिप्त हो रहा था। वे सब मूर्छित हो गयीं। सब पुनः दौड़ीं रथके पीछे और गिर पड़ीं भूमिमें। जब तक रथ दीखता रहा, रथकी ध्वजा दीखती रही, रथसे उड़ती धूलि दीखती रही, वे उधर ही अपलक देखती मूर्तियोंकी भाँति खड़ी रहीं। जब धूलि भी दीखना बन्द हुआ, एक साथ सब गिरीं— 'हाय! वे चले गये।'

धूलि धूसरिता वृन्तच्युता पद्मिनियोंके समान म्लानवदना, मूर्छिता-प्राय इन बालिकाओंको इनकी माताएँ किसी प्रकार अङ्कमें उठाकर गृहोंको लौट रही हैं। इनको आश्वासन देना है। इनको किसी प्रकार सचेत करना है। नन्दग्रामका अधिदेवता होकर मुझे यह दुर्भाग्यपूर्ण दिन भी देखना पड़ा। ऐसा दिन जिसके दुःख, पीड़ा व्यथाका वर्णन सम्भव नहीं। व्रजमें आज पशुओं, पक्षियों, पिपीलिका तकने आहार या जल मुखमें नहीं लिया।



अद्भुत दर्शन

मैं श्रीबलराम-श्रीकृष्णको लेकर रथ किसी प्रकार निकाल लाया। कितना अपार प्रेम है इनके प्रति व्रजमें— मैं व्याकुल हो गया बालिकाओंकी विह्वलता देखकर। उनका क्रन्दन, मूर्च्छा असह्य थी। वे तनिक पृथक हुईं अश्वोंके मार्ग और रथके चक्रोंको छोड़कर और मैंने रथ दौड़ा लिया। दूसरा उपाय नहीं था। वहाँ कुछ क्षण भी शिथिल होनेका अर्थ था कि निकल पाना असम्भव हो जा सकता था। उस समय निकल चलनेके अतिरिक्त दूसरी कोई बात सूझती नहीं थी।

कितना विश्वास किया मेरा गोपोंने और श्रीनन्दरायने। मैं कंसका दूत हूँ, उसका रथ लेकर आया हूँ; किंतु किसीने भी तो मुझपर तनिक भी सन्देह नहीं किया। कंस कितने असुर यहाँ भेज चुका, कितना कुटिल है, सब जानते हुए भी मुझे स्वजन माना, मुझपर—मेरी धार्मिकता पर और इसपर विश्वास किया कि मैं वसुदेवका सम्बन्धमें भाई हूँ। मेरी उनसे सहानुभूति है। अपना सर्वस्व-प्राण जिन्हें मानते हैं व्रजराज और गोप, उन्हें मेरे साथ कर दिया। कोई एक भी और संरक्षक रखना आवश्यक नहीं माना।

कितने सरल-सहज विश्वासी हैं ये लोग। विश्वेश यदि इनके मध्य विराजमान होते हैं तो आश्चर्य क्या। मैंने जो सन्देश दिया, उसके पीछे कंसकी कोई कुमन्त्रणा भी है, यह किसीने भी तो नहीं पूछा।

मुझे स्पष्ट दीखता था कि केवल बालिकाओंने मुझ पर विश्वास नहीं किया। वे मुझे क्रूर कहने लगी थीं। मैं उनके हृदय-सर्वस्वका अपहरण किये जा रहा था। उनका कोप उचित था। उन्होंने शाप दिया हो, मुझे तो वह भी शिरोधार्य।

मैंने कुछ भी तो छिपाया नहीं। कंसकी कुटिलता, कुमन्त्रणा, कुविचार स्पष्ट कह दिया; किंतु इन दोनों भाइयोंने उसपर किञ्चित् भी तो ध्यान दिया होता। सचमुच मैं क्रूर ही हूँ। मेरा अक्रूर नाम निरर्थक

है। मैं इन कोमल किशोरोंको कालके मुखमें लिये जा रहा हूँ। सुना है कि अनन्तके साथ स्वयं श्रीहरिने भूभार-हरणार्थ अवतार लिया है ; किंतु हैं तो अभी ये सुकुमार किशोर ही। कंस क्रूर है और सुरेन्द्र भी उसके क्रोधसे सशङ्क रहते हैं। वह स्वर्गपर विजय पा चुका है। अमितपराक्रम असुर उसके सेवक हैं। अवश्य इन्होंने अनेक प्रमुख कंसके अनुचरोंको यमलोक भेजा है ; किंतु वे एकाकी आये थे। अब मथुरामें कंस और उसकी पूरी सेना है। कैसे कहा जा सकता है कि कल क्या होगा। मैं इन्हें अपना आराध्य भी मानता हूँ और आपत्तिके मुखमें भी लिए जा रहा हूँ—कितनी अधमता है मेरी ?

किसी कर्त्तव्यका निश्चय नहीं कर पा रहा था। नन्दराय गोपोंके साथ जा चुके थे। वे मथुरा पहुँचकर बाह्योद्यानमें मेरी प्रतीक्षा करेंगे। ये सर्वेश्वर स्वयं सुप्रसन्न चल रहे हैं। मुझे ये पितृव्य कहते हैं, प्रणाम करते हैं। मुझपर इनका स्नेह है। वसुदेव भी मेरा विश्वास करते हैं, भले कुअवसरके कारण मैंने कंसकी सेवा स्वीकार कर ली है।

बालिकाओंके अवरोधके कारण व्रजसे रथ निकलनेमें ही बहुत विलम्ब हो गया। मैं वृन्दावनकी सीमाके समीप पहुँचा तो मध्याह्न समीप था। अब उचित लगा कि मध्याह्न स्नान, सन्ध्या कर लूँ। सम्भव है इस एकाग्रतामें कोई उचित कर्त्तव्य भी सूझ जाय। तबतक गोप भी पहुँचकर अपनेको व्यवस्थित कर लेंगे।

'आप दोनों रथपर ही कुछ देर बैठे रहें ; क्योंकि यहाँ पुलिनके समीप कोई शीतल छायाका सघन वृक्ष नहीं है।' मैंने प्रार्थना की— 'मैं स्नान-सन्ध्या करके शीघ्र आ रहा हूँ।'

'आप निश्चिन्त अपना आह्निक सम्पन्न करें।' श्रीकृष्णचन्द्रने अनुमति दे दी— 'आर्यके साथ मैं यहीं हूँ।'

मैं दोनों भाइयोंको रथपर बैठाकर कालिन्दी-किनारे आया। वस्त्र पुलिनपर रखकर जलमें प्रवेश किया मैंने। जैसे ही डुबकी लगायी, देखता हूँ कि दोनों भाई जलमें सम्मुख हैं। लगा कि चपलकुमार हैं। इनके मनमें भी स्नान करनेकी आ गयी होगी। मेरे पीछे ही चले आये हैं। लेकिन तब रथको लेकर अश्व कहीं चले न जायँ—इस आशङ्कासे मैंने मस्तक ऊपर उठाकर पीछे मुख घुमाकर देखा। रथ तो वहीं खड़ा है, जहाँ मैं खड़ा कर

आया हूँ। दोनों भाई भी रथपर बैठे हैं और परस्पर कुछ बातें कर रहे हैं। तब क्या मैंने जलमें जो इन्हें देखा, वह मेरा भ्रम था ?

मैंने जलमें फिर डुबकी लगायी और नेत्र खोले—वहाँ जो कुछ देखा—जन्म-जन्मकी साधनासे वह सम्भव नहीं। मेरे किन्हीं भी पुण्योंमें इतनी सामर्थ्य नहीं। मेरे इन अनन्त कृपामय आराध्यने मेरे अन्तरकी आकुलताको लक्षित करके मुझे अपने दिव्य स्वरूपका साक्षात्कार कराया।

मैंने देखा कि सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, नाग, सुर, असुर सबके प्रधान नायकोंकी अञ्जलि बँधी है। सब सिर झुकाये स्तुति कर रहे हैं। सबके सम्मुख हैं नीलाम्बर, हिमश्वेत सहस्रफणा भगवान शेष। उनके मणिमण्डित मस्तकोंका प्रकाश असह्य है। उन अनन्तका अपार विस्तार देह—मानो अपर मन्दराचल हो। उनके अङ्कमें—उनके भोगकुण्डलपर, उनके फणोंके छत्रके नीचे नवीननीरदश्याम, विद्युत् पीतवसन, चतुर्भुज, प्रशान्त, पद्मपलाशलोचन, प्रसन्नवदन, परम पुरुष आसीन हैं। सस्मित कृपापूरित दृगोंसे देख रहे हैं। उनकी कुटिल भृकुटि, मनोहर कर्ण, उन्नत नासिका, निर्मल कपोल, पतले अरुण अधर, मोटी विशाल भुजाएँ, श्रीवत्साङ्कित प्रशस्त वक्षस्थल, कौस्तुभ-भूषित कम्बुकण्ठ, गम्भीर नाभि, त्रिवली-विभूषित-पल्लव समान उदर, क्षीणकटि, बृहन्नितम्ब, करिकरभ-उरुद्वय, मणिसन्निभ घुटने, मनोहर पिण्डलियाँ, ऊँची भरी लाल-लाल दोनों गुल्फ (एड़ी) नवीन किसलय समान पादांगुलि और उनके अरुण ज्योतिर्मय नख—मेरा चित्त इन पादपङ्कजोंमें भ्रमरके समान भूल गया।

कुछ क्षण निमग्न रहनेके उपरान्त मैंने पुनः श्रीहरिकी सर्वाङ्ग शोभाके दर्शन किये। ज्योतिर्मय महामणियोंसे अलंकृत किरीट, मुकुट, भुजाओंमें रत्नाङ्गद, यज्ञोपवीत, कटिसूत्र, वक्षस्थलपर मणिमाला, करोंमें कङ्कण, चरणोंमें नूपुर, कर्णोंमें कुण्डल—सब चिन्मय, सब अमल ज्योत्स्नाके मानो घनीभाव हों। करमें शशि-सन्निभ शङ्ख, सहस्रार चक्र, महागदा और प्रफुल्ल पद्म।

सुनन्द, नन्द, कुमुद, कुमुदाक्षादि सब पार्षद समीप हैं। सनकादि सभी दिव्य महर्षिगण, ब्रह्मा, रुद्र, प्रजापति सभी, प्रह्लाद, देवर्षि नारदादि प्रमुख भागवत, अष्टवसु, सभी स्तवन कर रहे हैं। श्रीदेवी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, भूदेवी, जया, विद्या और माया भी महाशक्तिके साथ सेवामें समुपस्थित हैं।

मैं कृतकृत्य हो गया। आत्मविस्मृत हो गया। मैंने भी अञ्जलि बाँध ली। मैं इन सर्वेशकी क्या स्तुति कर सकता था; किंतु सुरसरिको भी तो उन्हींके जलकी अर्घ्याञ्जलि दी जाती है। मुझे जो किञ्चित् बुद्धि, प्रतिभा इन प्रभुके प्रसादसे प्राप्त हुई है, उसके अनुसार मैं स्तवन करने लगा। मैं स्तुति कर ही रहा था कि वह स्वरूप अन्तर्हित हो गया। मुझे अपनेको स्थिर, सावधान करनेमें कुछ समय लगा।

स्नान करके किसी प्रकार मैंने सन्ध्या समाप्त की। मेरे आराध्य साक्षात् रथपर आसीन हैं। इन्होंने अपना स्वरूप समझाया। मुझ अल्पज्ञकी आकुलता देखकर मुझे आश्वासन दिया। जो अपने सङ्कल्पसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि प्रलय करते रहते हैं उनके सम्मुख कीटप्राय कंस क्या होता है? मेरा मोह मिट गया। मेरा भय भाग गया। मेरा अहो भाग्य कि इन्होंने मुझे अपनाया।

मैं आकर रथपर बैठ गया। रथ-रश्मि मैंने ली तो इन लीलामयने हँसकर पूछा— 'पितृव्य! आप अत्यन्त चकित लगते हैं। आपने पृथ्वीपर, आकाशमें अथवा जलमें कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखा है?'

'पृथ्वीपर, आकाशमें अथवा जलमें जो भी आश्चर्य सम्भव है, उस सबके स्वरूप आपको मैं साक्षात् देख रहा हूँ।' मैं और क्या उत्तर दूँ इन्हें—'अब मेरे लिए और आश्चर्यजनक दृश्य कहीं भी क्या हो सकता है?'

गोप अवश्य मथुरा पहुँच गये होंगे। श्रीनन्दराय प्रतीक्षा करते होंगे। मैं मस्तकके ऊपरसे पश्चिमाभिमुख हो गये आदित्यमण्डलको देखकर अनुमान कर सकता हूँ कि मुझे यमुना-जलमें बहुत समय लगा है। अतः अब शीघ्रता करनी है। मैंने रथको सम्पूर्ण वेगसे चलाया। मेरे रथके वेगके सम्मुख मथुराकी दूरी कुछ ही पलोंकी तो है।* ॐ

---

* इससे आगेका मथुरा चरित 'भगवान वासुदेव' में, द्वारिका चरित 'श्रीद्वारिकाधीश' में और हस्तिनापुर-इन्द्रप्रस्थ, महाभारत-युद्धका चरित 'पार्थ सारथि' में है।

'व्रजलीलाके मर्मज्ञ भावुक भक्तों, आचार्योंका मत है कि यहींसे श्रीनन्दनन्दन और दाऊ अन्तर्हित होकर व्रज लौट आये। जलमें प्रथम-दर्शन अक्रूरको उनका ही हुआ था। उस समय रथपर नन्दनन्दनमें जो एक हुए थे वासुदेव श्रीकृष्ण, वे बलरामके साथ थे। दुबारा जलमें अक्रूरने डुबकी लगायी तो इन्हीं वासुदेवने नारायण रूपसे और संकर्षणने शेषरूपसे दर्शन दिया। यही अक्रूरके साथ मथुरा आये। आगेके सब चरित मथुरा, द्वारिकादिके इन्होंने ही किये।

बाबा लौटे

ब्राह्मणको विपत्तिमें यजमानकी सहायता करनी चाहिये। श्रीनन्दरायके मथुरा जानेके समय ही स्वामीने मुझे सावधान कर दिया कि मैं व्रजेश्वरीको सम्हालूं ; क्योंकि श्यामसुन्दरके न रहनेपर वे बहुत व्याकुल रहेंगी।

व्रजमें तो कृष्णचन्द्रके मथुराकी ओर चलते ही विपत्तिने अपना बसेरा बना लिया। मैं किसीको क्या बचा पाऊँगी। गायें, वृषभ वनमें भागते फिरते हैं। सेवक कहते हैं कि वे चरते नहीं, अपने गोपालको ढूँढ़ते दौड़ते हैं और बार-बार गोष्ठमें लौट आते हैं। ऐरावत जैसे वृष और हथिनियों जैसी गायें कङ्काल हुई जा रही हैं।

'कन्हाई आज आवेगा' जैसे सेवकोंकी यह बात पशु भी समझ लेते हैं। गायें यह कहकर पुचकारनेपर दूध दे देती हैं और यही तो व्रजमें सबका जीवनाधार आश्वासन है। इसीके आधारपर गोपियाँ दूध गरम करती हैं, दधि जमाती हैं और मन्थन करके नवनीत निकालती हैं।

'नवनी···' पूरा नवनीत भी यशोदा नहीं बोल पातीं। वे दधि-भाण्डसे माखनका लोंदा उठाती हैं और नवनी कहकर नीलमणि कहते-कहते मूर्छित होने लगती हैं। मुझे और रोहिणी रानीको अब उन्हें पूरा दिन सम्हालना पड़ता है।

सबसे कठिन सम्हालना है बरसाने की बालिकाओंको। इस वियोग-ने उनका सब सङ्कोच विदा कर दिया है। वे अब नन्दगृहको आश्रय मानने लगी हैं। सब सबेरे ही दौड़ी आती हैं। बिना कहे भी सब जानते हैं कि वे यह जानने देखने आती हैं कि व्रजराजकुमार आये या नहीं। दिनभर बनी रहती हैं— 'अब आते होंगे, अब आवेंगे !' यही आशा तो सबको जीवन दे रही है।

इन बालिकाओंको बहलाने-समझानेमें दिनभर यशोदा अपनी व्यथा भूली रहती हैं। ये भी इनके अङ्कमें मुख छिपाकर चाहे जब फफककर रोने लगती हैं, 'वे अब नहीं आवेंगे !'

मैं रुष्ट होनेका प्रयत्न करती हूँ— 'ऐसी बात मुखपर मत लाओ! मनमें भी मत सोचो ! हमारा नवघन-सुन्दर आज आवेगा !'

'आज आवेगा ! अब आता होगा !' मैं बार-बार द्वारपर आती हूँ तो यशोदा, बालिकाएँ मेरे पीछे लगी चली आती हैं। पथपर दूर तक साथ आती हैं सब। दिन किसी प्रकार इस प्रतीक्षामें व्यतीत हो जाता है।

'आज नहीं आवेंगे, अन्धकार हो जाता है रात्रिका तो बड़ी निराशा लेकर बालिकाएँ अपने गृहोंको बिदा होती हैं। दिनमें तो इन सबोंका शृङ्गार करनेमें, इनको कुछ खिला देनेमें समय कट जाता है। रात्रि काटना कठिन हो जाता है। निद्रा जैसे श्यामके साथ ही व्रजसे चली गयी। युगोंके समान लगती है रात्रि। बड़ी कठिनाईसे कट पाती है।

ब्रह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें ही सब उठ पड़ते हैं। सबको शीघ्रता करनेकी सूझती है—आज मथुरासे सब आवेंगे। उन्हें आते ही दूध, दधि, नवनीत चाहिये। ग्राम, गलियाँ, गोष्ठ स्वच्छ, सज्जित मिलना चाहिये उन्हें। गृहोंकी सज्जामें, द्वारपर मङ्गल-कलश सजानेमें, स्वागतकी प्रस्तुतिमें दिनका प्रथम प्रहर कैसे निकल जाता है, पता नहीं लगता; किंतु द्वितीय प्रहरसे प्रतीक्षा चलने लगती है। प्रतीक्षाके पल बहुत बड़े लगते हैं।

मथुरासे प्रतिदिन सन्देश आता है। समाचार सुन्दर हैं। कंसको तो इन सबके जानेके दूसरे ही दिन मार दिया हमारे कृष्णचन्द्रने। अब उग्रसेन यादव महाराज हैं। असुरोंके उत्पातके दिन बीत गये। कंसकी क्रूरतासे पीड़ित प्रवासको विवश वृष्णि-भोज-कुक्कुर आदि वंशके लोग अब अपने गृहोंको लौटने लगे हैं।

हमारा श्यामसुन्दरका अग्रज राम अब मथुराकी—मथुरामें प्रतिदिन आनेवाले निर्वासन-पीड़ितोंकी व्यवस्था करनेमें लगा है। वहाँ सब उसीकी मानते-सुनते हैं। महाराज उग्रसेनने उसीपर सब छोड़ दिया है।

'अब राम तो नहीं लौटेंगे। मुखपर यह बात कोई नहीं लाती; किंतु सब इसे समझती हैं। सबके मनमें आशङ्का है— 'अग्रजके बिना अकेला श्याम कब आवेगा ? बड़े भाईके बिना यहाँ मन लगेगा उसका ?

रोहिणी रानी कहती है— 'मैं स्वामीको यहीं आकर बस जानेको कहूँगी। अब मथुरामें महाराज उग्रसेनका राज्य हो ही गया। देवकी और

मेरी दूसरी बहिनें भी यहाँ सुखी रहेंगी। मेरा राम अपने छोटे भाईके बिना रह नहीं सकता।'

रोहिणी रानी हृदयसे कहती हैं; किंतु हम स्त्रियोंकी बात पुरुष सदा तो नहीं सुना करते। हम कहाँ स्वाधीन हैं। वसुदेवजी जो निर्णय करेंगे, रोहिणी रानीको उसे मानना पड़ेगा। महाराज उग्रसेन क्या अब वसुदेवजीको मथुरा छोड़ने देंगे ?

महाराज उग्रसेन और वसुदेवजीका बड़ा स्नेह है व्रजेश्वर से। वे गोपोंको आने ही नहीं दे रहे हैं। प्रतिदिन रोक लेते हैं। कृष्णचन्द्र बड़े भाईके साथ वसुदेवजीके भवनमें ही रहने लगा है। भाईका साथ वह छोड़ नहीं पाता। भाईको देखकर देवकीको माँ कहने लगा है। वह तो यहाँ हम सभीको माँ कहता था। लेकिन यहाँ अब व्याकुलता बहुत बढ़ने लगी है। सुना है मथुराके लोग हमारे नीलसुन्दरको भगवान कहने लगे हैं। वे नागरिक लोग हैं, दूसरोंको उपाधियाँ देकर उत्साहित करके अपना लेनेमें बहुत चतुर होते हैं। हमारे कृष्णचन्द्रको भी उन्होंने प्रभावित कर लिया लगता है। यह नन्दनन्दन बहुत भोला है। कोई भी इसे फुसला लेता है। मथुराके नागरिक तो अत्यन्त चतुर हैं। यह उनकी चातुरी क्या जाने।

आशङ्काकी बड़ी बात सुनायी पड़ी है। लोग नन्दनन्दनको वासुदेव कहने लगे हैं। यशोदा कहती हैं—' गर्गाचार्य आये थे तो नामकरण गुप्त रूपसे कर गये। उस समय भी उन्होंने इसका एक नाम वासुदेव बतलाया था। वासुदेव भगवान् नारायणका नाम तो है। हमारा व्रजराज कुमार नारायणका अंश है, यह सब जानते हैं; किंतु मथुराके चतुर लोग इसी नामको लेकर कोई षटयन्त्र न करते हों। बहुत दिन लगा दिये नन्दरायने वहाँ। अब उन्हें अवश्य लौटना चाहिये।

कोई आता दीखता है, किसी वृषभके गलेकी कण्ठ-ध्वनि आती है तो बालिकाएँ दौड़ती हैं द्वारकी ओर। उनका ही क्या दोष ? दौड़ती तो हैं यशोदा और मैं स्वयं दौड़ती हूँ—व्रजराज आये ?'

' काक ! कहो, उड़कर बतलाओ कि मेरा लाल आ रहा है ? मैं तुम्हें मधु-मिश्रित दूत-भात दूंगी।' व्रजरानी दिन भर पता नहीं किन-किनसे सगुन पूछती हैं। मनौतियाँ करती हैं व्रजमें सभी देवताओंकी देवियोंकी।

मैंने अपने स्वामीसे कहा— 'आप कोई अनुष्ठान क्यों नहीं करते ? सुना है। आप सविधि आकर्षण करनेमें समर्थ हैं।'

'पगली मत बनो ! नन्दनन्दनके स्मरणसे अभिचार-प्रयोग प्रभाव-शून्य हो जाते हैं।' स्वामीने कहा— 'मैं तन्त्रोंके सब प्रयोग जानता हूँ-- यह सत्य है। जीवनमें कभी उनका आश्रय नहीं लिया ; किंतु इस समय अवश्य करता , यदि तनिक भी सफलताकी सम्भावना होती। वे सर्वसमर्थ जो चाहेंगे , वही होगा। श्रीहरिकी शरण लो।'

पुरुषोंकी पूरी बात समझ पाना कठिन है और उसमें भी मेरे स्वामी तो वेदज्ञ महामुनि हैं। मैं उनकी बातें बहुधा नहीं समझ पाती ; किंतु श्रीहरि तो अब हम सबके शरणद हैं ही। व्रजराजको अपने कुमारके साथ वे कृपामय शीघ्र लौटा दें।

× × ×

नन्दराय लौटे—सायंकालका अन्धकार हो जानेपर व्रजेश्वरका शकट द्वारपर आया। मैं दौड़ी यशोदाके पीछे ; किंतु हृदय धक्‌से हो गया। इतनी नीरवताके साथ , इतने चुपचाप यह आगमन ? गोपोंके शकट साथ नहीं ? कोई बालक क्यों नहीं बोलते ?

मैंने देखा कि मौन , कान्ति-हीन , शिथिल-गात्र नन्दरायको उनके छोटे भाईने सम्हाल रखा है। यशोदाने जाते ही कर पकड़कर झकझोरा— 'महर क्या हुआ तुम्हें ? नीलमणि कहाँ है ? बालक कहाँ हैं ? गोप कहाँ हैं सब ?'

'गोप और बालक सब अपने-अपने गृहोंको चले गये भाभी !' नन्दन भरे कण्ठ कह गये— 'तुम्हारा तोक और भद्र भी आज घर चले गये !'

'भद्र घर गया ? नीलमणि साथ गया उसके ?' यशोदाने आश्चर्य-से पूछा।

'महर ! भूल जाओ अब। व्रजका कोई युवराज नहीं है।' नन्द-रायके कण्ठसे मानो क्रन्दन भरा स्वर फूटा— 'कृष्णचन्द्र भाई वसुदेवका पुत्र है। मथुरामें रहेगा।'

'महर क्या कहते हो तुम ?' यशोदाके नेत्र , स्वर सब उन्मादिनी-के समान हो गये— 'नीलमणि नहीं आया और तुम लौट आये ? तुम्हारा हृदय फट नहीं गया वहीं ?'

यशोदाके मुखसे ऐसी वाणी ? जीवनमें यह नन्दगृहिणी स्वामीके सम्मुख ऊँचे स्वरसे भी बोल नहीं सकी। व्रजेश्वरकी किसी बातका प्रतिकार करनेमें जिसका कण्ठ सदा अवरुद्ध रहा, वह इतनी कठोर वाणी बोल गयी ? मैंने सिर पीट लिया कि अवश्य यह उन्मादिनी हो गयी। अब इसे सावधान करना सम्भव नहीं रहा। यह कहीं अन्त: संज्ञामें भी सचेत होती तो ये शब्द इसके मुखसे निकल नहीं पाते।

'महर, मैं वहीं मर गया होता। अब भी मरण मुझे सुख ही देगा ; किंतु नीलमणिने कहा है कि वह आवेगा। नन्दराय वहीं भूमिपर बैठ गये। काँपते स्वरोंमें बोले— 'वह आवेगा और मुझे, तुमको नहीं पावेगा तो उसकी क्या दशा होगी ? वह अपने कमलदल विशाल लोचनोंमें अश्रु भर-भरकर हिचक-हिचककर रोवेगा ! वह सिर पीटेगा और···।'

'मत कहो—मत कहो यह सब महर ! मैं नहीं सह सकती।' यशोदाने पतिके मुखपर अपना हाथ रख दिया— 'मुझे क्षमा करो ! मैं मूर्खा दासी हूँ तुम्हारी। तुम जीवित रहो, मैं जीवित रहूँगी। जो कहोगे करूँगी ; किंतु मेरे नीलमणिको रुदन न करना पड़े। उसके नेत्रोंमें अश्रु न आवें।'

'हाँ—महर, यही सोचकर मैं लौट आया।' नन्दरायने काँपते स्वरमें कहा— 'हम दुःखसे क्षीणकाय, खिन्न, उदास भी रहे तो वह दुःखी होगा। वह किसी दिन, किसी पल आ सकता है। उसने कहा है कि आवेगा। उसे यहाँ आकर प्रसन्नता प्राप्त होनी चाहिये—हमको अब ऐसे रहना है।'

'तुम सबने भी सुन तो लिया ही।' बालिकाएँ सब खड़ी थीं मेरे साथ। उनकी ओर मुख उठाकर नन्दरायने कहा— 'उसे आनेपर बहुत दुःख होगा यदि तुम्हें वह असज्जिता दुर्बल-देहा, कान्ति-हीना देखेगा !'

और कुछ सुन पाना किसीकी शक्तिमें नहीं था। यशोदा पकड़कर नन्दरायको अन्दर चलीं तो बालिकाएँ सिसकती विदा हुईं। मैं भी रुद्ध कण्ठ रोती अपने गृह आ गयी।



वियोग-वर्णन

अपनी स्वामिनी, अपनी सखी, श्याम-प्राणाधिका श्रीराधिकाको कैसे समझाऊँ ? अक्रूर क्या आया, यहाँ एक दारुण दुःस्वप्न दे गया। ऐसा दुःस्वप्न कि उसको असत्य भी नहीं कह पाती हूँ और वह सत्य है, यह स्वीकार करनेका भी कोई साधन नहीं है। श्याम-सुन्दर नहीं हैं व्रजमें— यह भी क्या कोई स्वीकार करने योग्य बात है ; किंतु वे मथुरा नहीं गये तो मैया व्रजेश्वरी और मेरी यूथेश्वरी श्यामाकी विह्वलता क्यों है ? मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मुझे इसका समाधान देगा ?

'हाय नीलमणि ? मैं क्या जानती थी कि तू मेरा नहीं है !' व्रजेश्वरीका यह आर्तनाद— 'मैंने तुझे बाँध दिया ऊखलमें। मैं तुझे यष्टि लेकर धमकाती रही ! पराये जायेपर मैं माँका गर्व करके इतना सब अत्याचार करती चली गयी ! इस हतभागिनी यशोदाको तू कभी क्षमा कर पायेगा ?'

व्रजराज-सदनका यह क्रन्दन सुना जाता है ? हृदय फट नहीं जाता—पता नहीं किस वज्रसे बना है। हम सब चली जाती हैं तो मैया हमको सम्हालनेमें अपनी व्यथा भूल जाती हैं। उनके अङ्कमें किञ्चित् शान्ति मिलती है। लेकिन अब यह भी सुलभ नहीं रहा। मेरी स्वामिनी श्रीराधा उन्मादिनी ही हो गयीं। अब इनको कहीं भी कैसे ले जाया जा सकता है।

हाय ! मेरी त्रिभुवन-कमनीया स्वामिनीकी काया कङ्कालप्राय हो गयी ! तप्तकुन्दन जैसा वर्ण काला पड़ने लगा और वह अलौकिक कान्ति कहाँ गयी ? बाबा और मैयाकी यह नेत्र-पुत्तलिकासे भी प्रिय पुत्री अब अनेक बार मुझे ही नहीं पहिचानती और पूछती है— 'तुम कौन हो ?'

'तुम्हारी चरण-सेविका ललिता।' मैं मर जाती तो यह तो नहीं कहनेका समय आता ; किंतु मर भी नहीं सकती। इस स्वामिनीको

सम्हालेगा कौन ? यह तो अब अपनी भी सुधि नहीं रखती। मुझसे ही पूछती है— ' मैं कौन हूँ ? '

' वृहत्सानुपुरके स्वामी वृषभानु बाबा और कीर्ति मैया कुमारी श्रीराधा।' मैं ही इसे यह बतलानेको बचने वाली थी।

' राधा ? राधा कौन ? ' यह तो ऐसे पूछती है जैसे किसी बहुत अपरिचितके सम्बन्धमें सोच रही हो।

' श्यामसुन्दरकी सर्वस्व श्यामा !' मुझे अन्ततः मन मारकर इसे सावधान करनेको यह भी कहना पड़ा।

' हाय श्यामसुन्दर !' एक चीत्कार और मूर्छा ! मैं कितना बचाती हूँ कि इसे नन्दनन्दनका नाम न सुनाया जाय। इसे उनकी स्मृति न दिलायी जाय, पर बार-बार यही करना पड़ता है। न भी करूँ तो निमित्त क्या कम हैं ? मयूर आ बैठेंगे आँगनमें, कोकिल बोलेगी, पपीहा बोलेगा, श्याम-तमाल व्रजमें भरे पड़े हैं, आकाशमें मेघ आवेंगे ही। कोई सम्पूर्ण पृथ्वीसे पीत वर्ण और नील वस्तुओंको बहिष्कृत कर दे सकता। मेरी यह उन्मादिनी सखी नन्हीं पीली तितली भी देखती है तो दौड़ पड़ती है— ' यह रहा उनके पटुकेका छोर !'

अब मयूर, मेघ या श्याम तमाल देखकर— ' वे आ गये ' कहकर दौड़ पड़ना, वृक्षसे लिपट जाना—अनेक बार इसके सुकुमार अङ्ग आहत हो चुके। इसके ये नवकिसलय-कोमल चरण और रात्रिके अन्धकारमें भी उठकर दौड़ पड़ती है काननकी ओर— ' सखि ! वायुमें तुलसीकी गन्ध है। वे आ गये। मुझे पुकार रहे हैं ! तू सुनती नहीं—वंशीके स्वर पुकार रहे हैं मुझे ?'

इसके विशाल लोचन सूखनेका नाम ही नहीं लेते। शरीरमें इतना स्वेद आता है कि वस्त्र अनेक बार बदलवाने पड़ते हैं। जैसे सम्पूर्ण मेद स्वेद बनकर बह गया। कदम्ब-पुष्पके समान कण्टकित काया-उत्थित रोम-रोम और चाहे जब अङ्ग-अङ्ग पीपल-पत्रके समान काँपने लगता है। यह मूर्छा अब आती ही रहती है। यह सब न हो तो चाहे जब उठ भागती है वनकी ओर। दिन-रात किसी समयकी सुधि नहीं। हम सखियोंको भी कम पहिचानती है। वनके विषम, कुशकण्टक भरे पथमें कुञ्जोंमें पागल बनी पुकारती दौड़ती है— ' प्राणनाथ ! प्रियतम !'

बाबा बार-बार अश्रु भर लेते हैं। मैया हम सबकी मनुहार करती रहती है। उनकी यह हृदयनिधि—हमारी सर्वस्व, हम इसके चरणोंको छोड़कर पृथक कैसे रह सकती हैं। हमें लज्जित करती है मैयाकी मनुहार। हमारी सबकी यही तो जीवन है। यह है तो हम हैं। अभी कल यह कानन-में मूर्छित हो गयी। मैं कब गिरी—मुझे पता नहीं। विशाखाने कहा था—'ललिता ! स्वामिनी गयीं ! हाय, हमें सदाको छोड़ गयीं ?'

सुननेके पश्चात् क्या हुआ–मैं नहीं जानती। सुना पीछे कि चन्द्रावली जीजी आ गयीं। हम सब समझती थीं कि वे स्वामिनीसे स्पर्धा रखती हैं; किंतु इस विपत्तिमें तो वे स्नेहमयी सबको सहारा देने लगी हैं। कितनी अपार शक्ति है उनमें ! उनके अन्तरमें किसीसे कम दावानल दहकता होगा ? लेकिन वे हैं कि अब भी सबके सामने हँस लेती हैं। कल कहींसे उन नवजलसुन्दरका चित्र उठा लायीं और हम सबको झकझोरकर, जल सिञ्चन करके जगाया। स्वामिनीको सगी अनुजाके समान अङ्कमें लेकर बोली— 'बहिन देख तो, यह कौन है ? तनिक नेत्र तो खोल !'

स्वामिनीने तो नेत्र खोलते ही समझा कि वे हृदयहारी सचमुच ही आगये। मान करके मुख फेर कर बैठ गयीं। हँसकर उन्हें चन्द्रावली जीजी-ने हिलाया और बोली— 'बहिन ! तू क्या हम सबको मार ही देना चाहती है ? तू नहीं रहेगी तो वनमाली व्रजकी ओर झाकेंगे भी नहीं। तू ही हम सबकी आशा है, हमारी प्राण है।'

कितनी उमङ्गसे, कितनी तन्मयतासे, कितने प्यारसे बनाया होगा वह चित्र उन्होंने। वह चित्र दे देनेसे जीवन दे देना कहीं अधिक सरल है, यह मैं समझती हूँ; किंतु कितनी महान हैं वे। बिना माँगे स्वयं मुझे दे गयीं— 'ललिते ! तू इसे रख ले। मेरी इस बहिनको इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। इसे बचा किसी प्रकार। यह बची रहेगी तभी व्रज बचेगा !'

स्वामिनी तो चित्र लेकर तन्मय हो गयीं। उसीकी मनुहार, शृङ्गारमें लग गयीं। सचमुच इस चित्रने इनके कम-से-कम प्राण तो बचा लिये; किंतु इनका उन्माद ? चाहे जब आतुर हो उठती हैं— 'सखि, वे आ गये ! सब सखियोंको बुला ले। शीघ्र मेरा शृङ्गार कर दे। त्वरा कर, वे कहीं रूठकर चले न जायँ।'

हर्षसे विह्वल, आलोकमयी, पुलकित स्वामिनीको सजाते, सखियों-को पुकारते, निकुञ्जमें सुमन शृङ्गार करते ही मेरा हृदय कातर क्रन्दन करता है। हाय! यह हर्ष यह उत्फुल्लता जो इनका सहज स्वरूप है अब उन्मादका स्वप्न बनकर आयी है। यह स्वप्न भी कितने पलका?

ये स्वामिनी जिन्होंने हम सेविकाओंको अपनेसे भी सदा अधिक माना, सदा आगे रखा, सदा स्नेह-सम्मान दिया, कोई भोग, काई ऐश्वर्य, कोई पदार्थ हमें दिये बिना कभी स्वीकार नहीं किया, अपने सर्वस्व उन मयूर-मुकुटीके प्रेममें भी जो सबको भाग देती रहीं, जिनके संकेतसे-जिनकी अनुकम्पा-भरी अनुनयके कारण ही वे हम सबको सान्निध्य-दान करते थे, वही स्वामिनी उन्मादिनी हैं। ललिता सुखी होती यदि यह दिन देखनेसे पहिले मर सकती; किंतु स्वामिनीको इस अवस्थामें देखकर मरणकी कामना भी अत्यन्त कुत्सा हो गयी है!

'वे आ रहे हैं?' ये चाहे जब वंशी-ध्वनि अथवा उनकी अङ्ग-गन्ध आनेका अनुमान करके स्वयं स्नान करने लगती हैं, माल्य-ग्रन्थन करती हैं अथवा अङ्ग-राग लगाने लगती हैं उनके स्वागतको आतुर हो उठती हैं।

बहुत अल्प क्षण आते हैं ये। अन्यथा इनके उत्तप्त दीर्घ श्वास-अजस्र अश्रु और स्वेद-धारा—रात्रिमें शशि-ज्योत्स्नामें चीत्कार करती हैं—'सखि, कहीं दूर ले चल इससे। अन्धकार अधिक अच्छा है। वे नहीं हैं तो यह गरल-बन्धु अब विष-वर्षा करने लगा है।'

उत्तप्त अङ्ग और मलयज-लेपन, उशीर अथवा कमलपत्रसे की गयी वायु इन्हें अत्यधिक संतप्त करती है। यूथिका जातिकी मालाएँ तोड़कर फेंकने लगती हैं। मल्लिकाके सुमन दृष्टि पड़ते ही मूर्छित होती हैं—'हाय! ये सुमन क्यों खिलते हैं, जब वे इनको स्वयं चयन करके मेरा शृङ्गार करने वाले समीप नहीं हैं!'

वे कहीं गये नहीं हैं; किंतु अक्रूर यह क्या दुःस्वप्न दे गया कि मैं भी इस सत्यको पूरी शक्तिसे कहनेका साहस नहीं कर पाती हूँ। क्यों बार-बार अन्तरमें उठता है कि वे अक्रूरके साथ चले गये—मथुरा चले गये और फिर नहीं लौटे? वे मथुरा हैं, यह क्यों मनमें आता है?

भैया सुबल कहता है—'कन्हाई हमारे ही शकटपर बैठा आया। भद्रने उसका कर पकड़ा तो बोला था—'तू कुछ दूर चल। मैं मथुराके

इन लोगोंको लौटाकर आता हूँ।' हम सब मथुराकी ओर ही देखते आ रहे थे। अपने शकट वृन्दावनकी सीमामें आये तो वह पता नहीं किधरसे चलते शकटमें ही चढ़ आया। बहुत चपल है—कहीं वनमें छिपता दौड़ता आया होगा।'

व्रजराज उस दिन आये मथुरासे तो मैया व्रजेश्वरीसे कह रहे थे—'वह मथुरा ही रह गया ; किंतु आनेको कहा है। वह आवेगा, अतः हम सबको जीवित रहना है।'

इन दोनोंमें सत्य किसकी बात है--भैया सुबलकी या व्रजेश्वर बाबाकी ?'

मैं अपनी आँखोंको क्या कहूँ ? प्रातःकाल जब गायें गोष्ठोंसे निकलती हैं, उनके पीछे अधरोंपर वंशी धरे वे न चलें तो गायें चरेंगी वनमें ? जब तक गोप मथुरासे नहीं लौटे थे, यही गायें तो हैं जो वनसे गोष्ठ और गोष्ठसे वनमें भागती फिरती थीं। तृण मुखमें लेना ही भूल गयी थीं। अब ये पुनः पुष्ट हो गयी हैं। भरपूर दूध देती हैं। ये किसी औरको देखकर प्रसन्न हो सकती हैं ?

हम सब प्रतिदिन प्रातः जाते उनपर लाजा नहीं फेंकतीं ? सायं हम सबके भाई पुष्प, किसलय पत्र, नव धातुओंसे इतना शृंगार किये लौटते हैं, अपने उन प्रिय सखाके बिना क्या इनको शरीर-सजाना सूझता ? नाचते, कभी पीछे मुड़ते और कभी किसी ओर चपल दृष्टिसे देखते गोरज-मण्डित अलकें, वनमाल, भाल वे ही तो मेरी सखीके समीप गवाक्षमें सायं पुष्प प्रक्षिप्त कर जाते हैं। मेरी स्वामिनी सायं प्रसन्न होती हैं, पुलकित होती हैं उस पुष्पको हृदयसे लगाकर।

मेरी इन स्वामिनिकी शिथिल वेणी किसके कर गूँथते हैं--क्या अब यह भी पहिचानना मैं भूल गयी हूँ। इनको कष्ट न हो, इसलिए केशोंको वे खींच नहीं पाते। उलटे उनके करोंका स्वेद आर्द्र कर देता है केशोंको और उनकी केशोंमें कुसुम-सज्जाकी यह कला क्या और किसीके लिए सम्भव है ?

एक ओर यह सब सत्य है और दूसरी ओर मेरी स्वामिनीकी व्याकुलता है। व्रजेश्वरी मैया, बाबा और उनके सब सखा—सुबल भैया,

भद्र भा ता बार-बार रोते क्रन्दन करते हैं। सब तो कहते हैं — 'हाय ! कन्हाई हमें छोड़ गया !'

सुनती हूँ कि वे मथुरामें हैं। बार-बार हृदयमें हूक उठती है— 'वे नहीं आये !' लेकिन तब यह देखती क्या हूँ ? मुझे समय भी तो नहीं है इसका समाधान करनेका। किसीको मथुरा भेजा नहीं जा सकता। सुना है कि वहाँ आये दिन मगधराज जरासन्धकी सेना ही नगरको घेरे शिविर डाले पड़ी रहती है। वे उसके युद्धमें व्यस्त हैं। उन्होंने आनेको कहा है। जरासन्धकी विपत्ति टलते ही आवेंगे। ऐसेमें किसीको वहाँ जानेसे उन्हें सङ्कोच होगा उनका ध्यान व्रजकी ओर आया तो विचलित होंगे। अभी तो उनको पूरा ध्यान—पूरी शक्ति जरासन्धसे मथुराके अपने आश्रितोंको बचानेमें ही लगाना चाहिये।

वे मथुरामें हैं ? यहाँ नहीं हैं वे ? यह भी कहाँ निश्चय कर पाती हूँ। स्वामिनीका यह प्रातः गोचारणके समय और सायं गौओंके लौटनेके समय उत्फुल्ल गवाक्षपर बैठना, वह उनका स्मित-शोभित कमल मुख, वह लहराता मयूर-मुकुट, वह फहराता पीतपट, वक्षपर वनमाला और वंक दृगोंकी हृदयहारी विलोकनि—यह प्रतिदिनका स्पष्ट सत्य कैसे अस्वीकार कर दूं ? मथुरामें पता नहीं कौन है। हम सबका किसी भगवान् वासुदेवसे प्रयोजन भी क्या ? हमारे ये व्रजनवयुवराज—ये तो यहीं हमारे मध्य है।

मेरी स्वामिनी बहुत सरला, बहुत भोली हैं। ये दिनभरका भी यह वियोग सह नहीं पातीं। गोचारण-श्रान्त वे रात्रिमें भी कभी भवनमें सो जाते हैं, निकुञ्जमें नहीं पधारते, यह स्वामिनी समझ नहीं पाती हैं। कैसे समझाऊँ इन्हें ? इनका यह उन्माद—यह व्याकुलता–यह क्रन्दन और मूर्छा मेरे मानसको मथित किये रहती है।



मां रोहिणी मथुराकी

मैं व्रजराजके बड़े भाईकी पुत्रवधू हूँ—यह मेरा पद ही आज मुझे इतना बड़ा दायित्व दे बैठा है। व्रजराजके सदनकी सम्पूर्ण व्यवस्था और मैया व्रजेश्वरीको सम्हालना—केवल माता रोहिणीके आशीर्वादका सम्बल है। वही तो मुझे यह आदेश दे गयी हैं।

मैं पहिले-पहिले पति-गृह आयी तो व्रजनवयुवराज मिलने आ गये। आते ही पता नहीं क्या-क्या पूछने लगे। मैं बालिका क्या बोलती? मेरे घूँघटमें-से झाँककर कहने लगे— 'भाभी सुन्दर तो है; किंतु क्या बूढ़ा दादा गूंगी बहिरी भाभी लाया है?'

'बूढ़ा दादा'—मुझे बुरा लगा पतिके लिये यह सम्बोधन; किंतु पता लगा कि उनके सब सखा स्नेहसे—सम्मानसे उन्हें यह कहते हैं। वे अत्यन्त सीधे हैं। कुछ कहते हैं तो मुझसे भी ऐसे स्वरमें कहते हैं जैसे अनुरोध कर रहे हों; लेकिन इतना कम बोलते हैं, इतना सोचकर बोलते हैं कि उनकी बात सब—मेरे पूज्य श्वसुर तक आदेशके समान स्वीकार कर लेते हैं। मुझसे ही उस समय बोले— 'तुम इस कन्हाईसे सङ्कोच न करतीं तो अच्छा होता।'

मुझे हँसी आ गयी। उनके नीलसुन्दर सखा झुककर मेरे घूंघटके नीचे ऐसे देख रहे थे जैसे मैं गूंगी हूँ या नहीं, यही जाननेको उत्सुक हूँ। मैंने धीरेसे कहा— 'तुमको मैं गूंगी लगती हूँ।'

वे तो ताली बजाकर कूदने लगे। हँसने लगे— 'भाभी हंसिनीके समान कूजती है!'

मेरा नाम उसी समय छोटा कर दिया उन्होंने— 'भा-भाभी' और तभीसे उनके सब सखाओंके लिये मेरा यही नाम हो गया। अन्यथा बड़ोंकी तो मैं 'बहू लाली' हूँ। नाम तो मेरा कोई लेता नहीं है।

यहाँ हमारे व्रजमें सबको देना ही देना आता है। कोई अपने लिए कुछ चाहता नहीं। सब दूसरोंको ही सुख-सुविधा-सम्मान देनेको सचिन्त

रहते हैं, लेकिन कोई यह दिखलाता नहीं। सब दिखलाते यही हैं कि वे स्वयं अपने लिए ही सब कुछ करते हैं।

सबसे अद्भुत मेरे मयूर-मुकुटी देवर। सुधा-स्वाद मधुर फल लेकर आते थे और कहते थे—'भा-भाभी आज तेरे दाँत खट्टे करूँगा। तुझे यह फल अभी खाना पड़ेगा।'

मैं कितना भी संकोच करूँ वे कहाँ मानते थे। सासजी भी उनका ही साथ देतीं। कह देती थीं— ' बहू लाली, खाले ! ऐसा दुलारा देवर संसारमें बड़े भाग्यसे मिलता है।'

हाय ! अब तो उनकी यही बातें हृदयको टूक-टूक करती हैं। मुझे उन्होंने शीघ्र अन्तरङ्गा बना लिया। उनके कोई सखा रूठ जायँ तो मुझसे पूछते-कहलाते। वनमें क्या-क्या हुआ, सब सुनाते प्रतिदिन। मानिनी कीर्ति-कुमारी मान कर लें तो भी मुझ इस अपनी ' भा-भाभी' से सम्मति लेने आते थे। मुझसे कुछ छिपाया नहीं उन्होंने और मेरी एक भी बात कभी टाली नहीं।

पुरुषोंकी एक दुर्बलता है कि अपनी कोई वस्तु कभी ठीक ठिकाने नहीं रख पाते। मेरे स्वामीमें यह दोष अधिक है और उन देवरमें तो बहुत अधिक था। लकुट, शृङ्ग, पटुका, रज्जु कहाँ छोड़ी इन्होंने, यह भी स्मरण नहीं रखेंगे और समयपर न मिले तो मुझपर खीझेंगे। मुझे ही पता लगाना पड़ता है कि ये छोड़ कहाँ आये।

बहुत बाल्यकालसे मुझे व्यवस्था प्रिय है। यहाँ आते ही मुझपर यह दायित्व आ गया और मुझे सब बड़ोंका इतना स्नेह मिला है कि मैं जो कर दूँ—सबको वही प्रिय हो जाता है। सेवक-सेविकाएँ तक व्रजेश्वर बाबाको जब कह देते हैं— 'बहू लालीने किया है, बहू लालीने कहा है, बहू लालीने भेजा है। तो वही कार्य, वही पदार्थ, वही योजना अपरिवर्तित-मान लेते हैं वे।

व्रजकी अधिदेवता, व्रजराजके सदनकी सम्पूर्ण व्यवस्थाओंकी सञ्चालिका माता रोहिणी—मेरी रानी माँने मुझे आते ही अपना लिया। वे भी सम्मति लेने लगती थीं तो मैं सङ्कोचमें गड़ जाती थी। मैंने कुछ किया तो वे उसकी प्रशंसा करती थीं बार-बार। मुझे उनके चरणोंके समीप ही बैठकर तो गृह-सञ्चालनकी, सेवक-सेविकाओंके साथ व्यवहारकी शिक्षा मिली।

सब वस्तुओंका, सब आवश्यक कार्योंका भली प्रकार ध्यान कैसे रखा जाता है, कब किसे किस पदार्थकी आवश्यकता होती है, यह रानी माँ आश्चर्यजनक रीतिसे जानती थीं। सेविकाओं तकके श्रम-सुविधापर सतर्क दृष्टि रहती थी उनकी। उनसे सीखने योग्य था कि किसीकी भी भूलको कैसे सञ्चालिका हँसकर अपनी स्वीकार करती है और कैसे सेवकको स्नेह-दानसे सत्कृत किया जाता है।

अब यह सब मेरे सिर आ पड़ा। सासजीने स्वामीने भी आज्ञा दे दी— 'बहू लाली, बड़ी है तू। व्रजपर इससे बड़ी विपत्ति नहीं आवेगी। व्रजेश्वरीको और उस गृहकी व्यवस्थाको तू बचा सके तो पूरा व्रज बच जायगा!'

मैं क्या व्यवस्था करूँगी—व्रजेश्वरी मैया मुझे कुछ करने नहीं देती हैं। मैं कोई काम भी करना चाहूँ तो कहती हैं— 'बहू लाली, अब तू किसके लिए श्रम करती है?'

मुझे अपनी चरण सेवा भी तो नहीं करने देतीं। अपनी मैयासे भी इतना वात्सल्य मैंने नहीं पाया था, जितना यहाँ पा रही हूँ। मेरा इतना ही सौभाग्य है कि मेरे कारण ये मुखमें कुछ ग्रास ले लेती हैं। मैं जब कह देती हूँ— 'माँ' तुम नहीं खाओगी तो मैं खा नहीं सकती।' तब मेरे करोंका ग्रास लेना मना नहीं कर पाती हैं।

'देवर आवेंगे और आपको दुर्बला देखेंगे तो दुःखी हो जायँगे।' व्रजेश्वरी मैयाको मनानेका अब केवल यही सूत्र रह गया है मेरे समीप।

रानी माँ थीं तो सब सम्हाले थीं। उनके रहते कुछ किसीको सोचना नहीं था। कल उनको लेनेके लिए मथुरासे रथ आ गया। यह तो होना ही था। वे कब तक अपने स्वामीसे पृथक यहाँ रह सकती थीं। कंस मारा गया, मथुरामें शान्ति हो गयी तो रानी माँको अब यहाँ कैसे रोका जा सकता था।

'मैं कहीं नहीं जाऊँगी' रानी माँने कहा तो मैं उनका मुख देखती रह गयी— 'उन दारुण विपत्तिके दिनोंमें कंस जैसे क्रूर-कुटिलका कोप सिर लेकर जिस बहिनने मुझे आश्रय दिया, जिसने मुझे अपनी अग्रजा बनाये रखा, उसे दुःखिनी छोड़कर मुझे स्वामीके संयोगका—उनकी सेवाका सौभाग्य स्वीकार नहीं है।'

हम सभी स्तब्ध रह गयीं। रानी माँ स्नेहमयी हैं, हम यही जानती थीं। वे इतनी तेजस्विनी हैं, यह हमने कल देखा जब रथ लानेवाले सूतको उन्होंने स्पष्ट कहा— 'रथ लौटा ले जाओ! स्वामीसे कहना, मथुरामें मेरा अब कोई प्रयोजन नहीं है। उचित तो यह है कि वे बहिन देवकी तथा और जो आवें उनको लेकर पुत्रोंके साथ यहीं आ जायँ। अपने आपत्तिके भाई व्रजेश्वरके साथ वसें; किंतु यदि मथुराका वैभव, वहाँका राज्य और राजनीति उन्हें आने न दे तो अब रोहिणीको क्षमा करें। अपनी इस सेविकाको मृता मान लें!'

'जीजी, ऐसा मत कहो!' व्रजेश्वरीने मुखपर हाथ धर दिया। 'देवकी माता हैं; किंतु उन्हें क्या पता कि उनके नीलमणिकी रुचि कैसी है। वह कितना सङ्कोची है, तुम जानती हो। भूखा रहेगा; किंतु किसीसे कुछ कहेगा नहीं। उसे कब क्या चाहिये, यह वहाँ कोई भी नहीं जानती। तुम वहाँ रहोगी तो मुझे यह सुख तो रहेगा कि नीलमणिकी सुविधा समझनेवाली उसकी माँ उसके समीप हैं। वह तुमसे सङ्कोच नहीं करेगा। जीजी, नीलमणिके लिए तुम्हें मथुरा जाना चाहिये। मेरा मुख देखो, मेरे नीलमणिके लिए मथुरा जाओ।'

रानी माँके नेत्रोंमें अश्रु-प्रवाह मैंने पहिली बार देखा। व्रजेश्वरी मैयाको हृदयसे लगाकर वे कितनी देर सिसकती रहीं। बहुत देरमें अपनेको स्थिर कर सकीं और तब बोलीं— 'बहिन, तुम्हारी बात ही उचित है। रोहिणीके ललाटमें सृष्टिकर्त्ताने तुम्हारे सामीप्यका सुख नहीं लिखा। सब सुखी हों—मुझे नीलमणिके लिए मथुरा रहना चाहिये।'

सारथिको उन्होंने कह दिया कि प्रातः प्रस्थान करेंगी। मुझे अङ्कमें लेकर बार-बार समझाती रहीं कि मुझे कब क्या करना है: किस सेवक-सेविका अथवा सम्बन्धीके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिये। किन विशेष अवसरोंके लिए क्य-क्या करना आवश्यक होता है। कितने पदार्थ कहाँ हैं भवनमें अथवा आवश्यकता होनेपर कहाँसे प्राप्त होते हैं।

रानी माँका यह विवरण समाप्त नहीं होना था; किंतु अवकाश कहाँ था। हमारे यहाँ और बरसानेमें सभीको तो मिलना था। रानी माँके स्नेहने सबको ही अपना कर रखा था। वे सभीकी अपनी थीं। किसी अपने घनिष्ठ स्वजनको इस प्रकार विदा करना—पता नहीं पुनः कब मिलना हो कितना कष्टप्रद होता है?

सब बड़े-बूढ़ोंको वृद्धाओंको, ऋषि-मुनियोंको और विप्रपत्नियोंको भी रानी माँसे मिलना था। सबको वे सम्मानित करतीं रहीं। सबकी यथोचित अभ्यर्थना करती रहीं। सबको उनके आनेके पश्चात् कल व्रजेश्वरीने मुझे लेकर उचित उपहार अर्पित किये। सबके आशीर्वाद, सबके उपहार सविनय स्वीकार किये माँने।

मेरे स्वामी और उनके सब सखा रानी माँके बालक हैं। सबको अङ्कमें लेकर माँको कल समझाना था। सबके अश्रु पोंछने थे अञ्चलसे। कोई कुछ बोल नहीं रहा था। सब माँकी गोदमें मुख छिपाकर केवल रुदन करते थे।

सबसे करुण था बरसानेकी किशोरियोंका माँसे मिलना। वैसे ही ये सब अत्यन्त कृशा, म्लानवदना, अत्यन्त दुःखिनियाँ—इनकी व्यथा हम सभी तो समझती हैं। अधिकांश आते ही मूर्छित हो गयीं। माँकी अपनी बालिकाओंके समान सब। माँ एक-एकको उठाती, स्नेहलालित करती, समझाती रहीं।

'वे सुखी रहें!' कितना धैर्य है इन कुमारियोंमें। देवर इनको छोड़कर मथुरा रह कैसे पाते हैं? इनके इस हृदयको उन जैसे प्रेम-पारखी-ने पहिचाना नहीं होगा? ये तो सबकी सब एक ही प्रार्थना माँसे दुहराती रहीं— 'उनसे हमारी कोई चर्चा न करें। उनके कमल-लोचन हमारा स्मरण करके भरें नहीं। वे हम सबको, व्रजको भूलकर यदि सुखी रहते हों तो आप ऐसा ही प्रयत्न करें। व्रज तो उनका है ही। उनको जब व्रजकी सेवा अपेक्षित होगी, यहाँका सौभाग्य सूर्य उदय होगा; किंतु उनको किञ्चित् भी यहाँके स्मरणसे कोई अभाव न खटके। वे सदा सानन्द रहें माँ! आप यही करें। वे हमें भूले रहें, अन्यथा व्यथा होगी उन्हें। उनसे हमारे विषयमें कुछ न कहें।'

रात्रि कैसे व्यतीत हो गयी—पता नहीं लगा। सबको ही मथुरा उपहार भेजने थे। व्रजेश्वरी मैया, बाबाने—सबने ही उपहार सजाये। रथमें उपहार तो नहीं जा सकते। उपहारोंके छकड़े भेजे गये प्रातः। रानी माँको जो विशेष उपहार दिये गये देवरको देनेके लिए, वे भी छकड़ोंमें ही रखे गये। महाराज उग्रसेनको, बाबा वसुदेवको, माता देवकी तथा उनकी सपत्नियोंको उपहार तो सभीके लिए दिये गये। सबके उपहार

व्रजेश्वरी मैयाके साथ मैं सजानेमें लगी रही।

मैं क्या भेजती ? मैंने रानी माँको केवल एक मयूरपिच्छ दिया। कहनेको कह दिया है— 'यह कीर्तिकुमारीके प्रिय मयूरका पिच्छ है और वे भी इस पिच्छके समान अपने शरीरसे उच्छिन्ना हो रही हैं।'

वे और उनकी सखियाँ कुछ नहीं कहलावेंगी ; किंतु मैं भी देवरको कोई संकेत न दूँ, यह कैसे उचित हो सकता है। रानी माँ सबके सन्देश सुना देंगी। सबकी वस्तुएँ दे देंगी। बड़ी प्रबुद्ध स्मृति है माँ की। माँ कभी कुछ भूलती नहीं हैं ; किंतु माँ बहुत व्याकुल थीं विदा होते समय।

रथसे बार-बार माँ उतरीं। हम सबको, बरसानेकी किशोरियोंको बार-बार अङ्कसे लगाकर समझाया। व्रजेश्वरी मैयाको अङ्कमाल दी। मेरे स्वामी और उनके सभी साथी वनमें दूर तक रथको पहुँचाने दौड़ते गये हैं। गोप गये हैं साथ ; पर हम सबको ग्रामसीमासे लौटना पड़ा है।

'बहू लाली, मेरा आशीर्वाद और मेरे सब पुण्य तेरे साथ हैं। मेरी यशोदा बहिनको और व्रजराजके गृहको सम्हाले रहना !' रानी माँका यही आशीर्वाद मेरा सम्बल है जो उन्होंने जाते समय दिया है। उनका यही आदेश मेरा जीवन-व्रत है।



उद्धव

सकलेश्वर सर्वस्वरूप सर्वात्मा मेरे स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रका व्रजके स्मरणसे व्याकुल होना मेरी समझमें नहीं आता था। वे आत्माराम, आप्तकाम पुरुषोत्तम इतने विह्वल ? उन्होंने मुझे आदेश दिया व्रज जाने और उनके सन्देशको सुनाकर यहाँके लोगोंकी आधि-आकुलताको निवारण करनेका। अब समझता हूँ कि उन भक्तवत्सलने मुझपर अनुकम्पा की। मुझे अवसर दिया कि मैं उनकी सेवाका कैसे अधिकारी बन सकूँगा, यह व्रज जाकर समझ आऊँ। प्रेमका पवित्र पाठ व्रजजनोंकी पद-रजमें अभिषेक किये बिना कोई कैसे पा सकता है।

मुझे बहुत अभिमान था कि मैं सुरगुरु भगवान् बृहस्पतिका साक्षात् शिष्य हूँ और गुरुदेव मुझे अपने शिष्योंमें सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान बतलाते थे। नीति शास्त्र और अध्यात्म-ज्ञान समान रूपसे मेरे लिये करामलकवत् है। महाराज उग्रसेनका यादव राज-सभाका मैं इससे मन्त्री बना; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा, उन सर्वेश्वरका सान्निध्य तो नीतिज्ञता एवं केवल ज्ञानसे सुलभ नहीं होता। मुझे अपनाया मेरे सर्वज्ञ स्वामीने मेरे हृदयकी उत्कण्ठा देखकर। मुझे अपनी सेवाका अधिकारी बनानेके लिये व्रज भेजा। यहाँ आकर मैं किसीको क्या समझता अथवा सिखलाता—यहाँ तो मैंने ही सीखा है—बहुत कुछ सीखा है।

श्रीकृष्णचन्द्रने चलते समय जो कुछ कहा था, जो संकेत दिये थे, उनका मर्म भी मैं व्रज आये बिना नहीं जान सका और अपनेको बहुत बड़ा विवेकी-बुद्धिमान मानता हूँ। मैं अभिमान लेकर चला था कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसे मैं समझा न सकूँ। 'उपदेष्टाका युक्ति-दौर्बल्य है यदि श्रोताका अन्तःकरण उसकी बात ग्रहण करके उसके अनुकूल नहीं हो जाता।' गुरुदेवसे सुना यह सूत्र तो स्मरण था; किंतु इसका अर्थ कितना व्यापक है, मेरी समझमें ही नहीं था। मुझे लगता था कि मैं तर्क-कर्कश किसी भी बड़े नैयायिकको भी सानुकूल चला सकता हूँ, व्रजके

भोले श्रद्धालु लोगोंको समझा लेना क्या कठिन है। भक्ति-निष्ठाकी अविचल शक्तिका कोई अनुमान नहीं था मुझे। व्रजकी अचिन्त्य प्रीति तो प्रत्यक्ष देखे बिना मुनि-मानसके लिये भी अचिन्त्य है।

'मेरी मैया……मेरे सखा……मेरी प्रिया श्रीवृषभानु-सुता……' स्वामी केवल ये शब्द कहकर मानो मूर्छित हो जायँगे। ऐसे हो गये थे। कठिनाईसे अपनेको सावधान करके वे दूसरोंकी चर्चामें लग गये थे— 'उद्धव! मेरे बाबाको विनयपूर्वक पाद-स्पर्श करके मेरी विवशता बतलाना। यहाँ आये दिन मगधराजके आक्रमणकी आशङ्का मुझे अवकाश नहीं देती कि मैं मथुरासे कुछ घटिकाओंके लिये भी निकलूँ और उनके चरण-दर्शन करूँ। उनको अपनी श्रद्धा-भक्तिसे सन्तुष्ट करना!'

मैयाका नाम लेकर श्रीकृष्णचन्द्र मूर्छितप्राय हो गये थे और स्वस्थ होनेपर किसी प्रकार बाबाके सम्बन्धमें कहने लगे थे। अचानक सखाओंका स्मरण करके पुनः अवसन्न हो गये। बोलने योग्य हुए तो बोले— 'मेरी गायोंको देख लेना। उन्हें सहलाना और अपने हाथसे उन्हें अवश्य कुछ खिला आना।'

'मेरी प्रिया……' मूर्छित ही हो गये थे स्वामी। मेरे प्रयत्नसे सावधान हुए तो गोपियोंकी चर्चा की। उन्हें मैं समझाऊँ, उन्हें उपदेश करूँ, उनकी व्यथा दूर करूँ, यह कहकर भी कह गये— 'उन्होंने मेरे लिये स्वजन-परिवार, परलोक सब त्याग दिया है। वे मेरे लिये ही जीवित हैं। उनकी सब चेष्टा मेरे लिये हैं। वे केवल शरीर हैं। उनमें श्वास श्रीकृष्णकी है। उनमें चेतना मेरी है।'

मैं उस समय इन बातोंका कोई मर्म नहीं समझ सका। जिनका उल्लेख करके स्वामीने कुछ नहीं कहा, उनसे कुछ कहना सम्भव नहीं, यह अनुमान कैसे कर सकता था। मैं समझता था कि स्वामीके स्वभावमें जो अतिशय कृपालुता है, उसीके कारण वे व्याकुल हैं।

जैसे ही मेरा रथ व्रज-भूमिमें प्रविष्ट हुआ, मैं चकित रह गया यहाँकी शोभा—वैभव देखकर। मैं अपने गुरुदेवके साथ सुरोंके नन्दनकानन-में कई बार जा चुका हूँ। अमरोंकी राज-सभाका चाकचिक्य मुझे कभी चौंका नहीं सका; किंतु वृन्दावनके सम्मुख तो स्वर्ग किरात-पल्ली भी नहीं है। स्वच्छ भूमि—शुष्क अथवा पीत पत्रका कहीं नाम नहीं। तृण-

भूषिता धरा मानो हरिताम्बर धारण किय किसीके स्वागतमें समुत्सुका खड़ी है।

स्वागत-समुत्सुका—सर्वत्र यही शब्द समुचित लगता था। लतायें पुष्प-भारसे लदा हुईं, वृक्ष, फल एवं नूतन किसलय लिये विनम्र। पक्षी, भ्रमर, वन-पशु सब ऐसे आनन्दोत्सुक, गान करते और उत्फुल्ल जैसे कोई आने ही वाला है—कोई इनका परम प्रिय आने वाला है।

मैं वृन्दावनमें चार मास रहा। वसन्तके प्रारम्भमें गया था। ग्रीष्म समाप्त हो जानेपर लौटा। मैंने इस दिव्य धराका दूसरा रूप भी देखा है—बार-बार देखा है और यह अकस्मात् हो जानेवाला परिवर्तन यहीं सम्भव है। श्रीकृष्णचन्द्र नहीं हैं—यह अनुभूति यहाँ वातावरणमें स्वयं जागती है और तब सम्पूर्ण भूमि पलमात्रमें मरुस्थली हो जाती है। केवल करील, खैर, शमी, बबूलके कण्टकतरु कहीं-कहीं दीखते हैं। सम्पूर्ण वन मानो दावाग्नि-दग्ध हो गया हो—ठूँठ ही दृष्टि पड़ते हैं। पशु-पक्षी-भ्रमर कङ्कालप्राय—मरणासन्न और तभी कांक, काक, गृद्ध, गर्दभादि दीखने लगते हैं। उसी समय उलूक-ध्वनि सुनायी पड़ती है।

उस समय चर्मावनद्ध कङ्कालगात्र कान्तिहीन नर-नारियोंकी ओर देखा नहीं जाता। लगता है कि किसी दीर्घकालीन दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रदेशमें पहुँच गये हैं, जहाँ जीवितोंमें जल, अन्नके प्रति उत्सुकता भी मर चुकी है। उस समय अत्यल्पजला आविला कालिन्दीमें कच्छपोंका ही समुदाय दीखता है।

वह दारुण दृश्य स्मरणसे ही हृदयको कम्पित करता है; किंतु जब मैं पहुँचा था, व्रज स्वागत-सज्ज था। ऐरावतके समान उच्च वृषभ अनेक स्थानोंपर सींगों तथा खुरोंसे मिट्टी उछाल रहे थे। बछड़े-बछड़ियोंका समुदाय फुदक रहा था। गायें भारी स्तनोंके भारके कारण मन्दगतिसे दुग्धस्राव करती चलती थीं।

पूरा पथ भली प्रकार सिञ्चित था। स्थान-स्थानपर—विशेषतः मार्ग-सन्धियोंपर अनेक वर्णोंके मण्डल बने थे। वहाँ पुष्प-सज्जा थी। द्वारोंपर कदली-स्तम्भ, प्रदीपयुक्त जलपूर्ण पूजित कलश और आम्र-पल्लवोंके नवान बन्दनवार थे। गोप, गोपियाँ बालक ही नहीं, गायें, वृषभ भी नूतन कौशेय वस्त्रोंसे सजे, रत्नाभरणोंसे अलंकृत थे। गोपियाँ

अपने व्रजराजकुमारका यशोगान कर रही थीं। सब प्रफुल्ल— ऐसे सज्जित मानों कोई महामहोत्सव मना रहे हों।

विप्रवर्गके साथ गोप-पथके दोनों ओर पंक्तिबद्ध मिले मुझे ग्राम-सीमाके समीप। प्रायः उनके करोंमें पूजनकी सामग्री थी। वृद्धा गोपियाँ मङ्गल थाल, आरती सजाये द्वारोंपर दीखीं। मैंने यह भी देख लिया कि गवाक्षोंके पीछे वधुयें, बालिकायें उत्सुक बैठी हैं।

मेरा रथ चलता आया सबके मध्यसे। सबकी दृष्टि उठी। सब चकित लगे। अनेक स्वर सुनायी पड़े— 'अब कौन आया ?' लेकिन किसीने मुझे रोका नहीं। कोई मेरे समीप नहीं आया। लगता था किसी-को इस समय मेरी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं था। सब किसी और-की—किसी अत्यन्त प्रियकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

'नन्दनन्दन आ रहे हैं ! वे अभी इधरसे ही आनेवाले हैं। यह प्रतीक्षा प्राणोंकी यह अथक, अविचल प्रतीक्षा कहीं दिन-पर-दिन, महीने-पर-महीने वर्ष-पर-वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी इसी प्रकार चल सकती है—चलती रहती है, यह कोई विश्वास करेगा ? लेकिन व्रजकी प्रेम-भूमिमें यह अनन्त प्रतीक्षा—अवसाद, नैराश्यसे असंस्पृष्ट अविराम अनथक प्रतीक्षा चल रही है। इसीलिये तो व्रजधरा धन्य है। दिव्य है। दुर्लभ है इसकी रजःकणिका भी देवताओंको।

मेरा रथ व्रजराजके द्वारपर ही जाकर रुका। वे गोष्ठसे निकले थे। मेरा शरीर-वर्ण भी श्याम ही है। स्वामीने मुझे अपने वस्त्र, आभरण, वनमालासे सजाकर भेजा था। वैसे भी मैं उनके उतरे वस्त्र, माल्यको ही पाकर प्रसन्न होता हूँ। मैंने पिताके साथ अपना नाम लेकर रथसे उतरकर प्रणिपात किया; किंतु व्रजराजकी दृष्टि मेरे पहिने वस्त्रों-पर लगी थी। मैंने क्या कहा, उनके श्रवण सुन नहीं सके। उन्होंने भुजाओंमें भरकर मुझे उठाते हुए गद्‌गद् स्वरसे कहा— 'श्याम ?'

'मैं उनका सेवक, सन्देश-वाहक उद्धव !' मैंने किसी प्रकार कह दिया।

'उद्धव, तुम भी मेरे लिये मेरे नीलसुन्दर ही हो।' व्रजराजके नेत्र जलसे आर्द्र होकर मेरी अलकें पवित्र हो गयीं। उनकी पुलकित कायाका स्पर्श पाकर मेरा जीवन सार्थक हुआ। मुझे कर पकड़कर वे

भवनमें भीतर ले गये और स्वयं मेरे सत्कारमें लग गये। मैं सङ्कोचके कारण मना भी नहीं कर सकता था।

'महर! ये अपने नीलमणिके सखा—भाई आये हैं।' व्रजराजने पुकारा तो मैया आकर बैठ गयी। मैंने चरण-स्पर्श किया। उनके कर मेरे मस्तकपर घूम गये; किंतु वे काँपते कर। कण्ठसे उनके स्वर नहीं निकला। उनके नेत्रोंकी अजस्र धारा देखकर—उनका कान्तिहीन मुख देखकर, उनका कङ्काल-गात्र देखकर ही मैं समझ गया कि इन वात्सल्यमयीके स्मरणसे श्रीकृष्णचन्द्र क्यों विह्वल हो गये थे।

'महाराज उग्रसेन अपने भाई देवकजीके साथ सुखी-समृद्ध हैं?' व्रजराजने मथुराके सभी सम्मानित, स्वजनोंका नाम लेकर उनका समाचार पूछा। वसुदेवजीका, देवकी माताका तथा रोहिणी माताका समाचार विशेष रूपसे पूछा। मैंने संक्षिप्त शब्दोंमें कह दिया कि सब सकुशल हैं, प्रसन्न हैं।

'राम-श्याम स्वस्थ हैं? प्रसन्न हैं? सुखी हैं?' यह पूछते समय व्रजराजका कण्ठ भर आया—'श्यामसुन्दरने अग्रजके साथ यहाँ रहते हुए व्रजको बार-बार विपत्तियोंसे बचाया है। गोपोंका, गोपियोंका, गायोंका जीवन उनका दिया है। उनका दिया है यह व्रजका ऐश्वर्य। कंसके भेजे असुर हमें तभी नष्ट कर देते, कालिय ह्रदका जल पीकर गोप-बालक और गायें मर ही गयी थीं और उनके बिना क्या गोप जीवित रहते। दावाग्निमें हम सब घिर चुके थे, भस्म हो जानेमें कितने पल लगते, क्रुद्ध इन्द्र पूरे व्रजको प्रलय-वर्षामें बहा देनेपर उतर आये थे, मुझे तो रात्रिमें अजगर कटि-पर्यन्त निगल चुका था; किंतु कृष्णने सर्वत्र हमें बचाया, हमें जीवन दिया।......'

व्रजराजका कण्ठ गद्‌गद् था। रोम-रोम उत्थित हो रहा था और अश्रुधारा एवं स्वेद-धारामें मानो स्पर्धा प्रारम्भ हो गयी थी। उनके नेत्रोंकी भंगी, उनका विवर्ण बदन, उनकी कम्पित काया देखकर मैं भयभीत हो उठा कि किसी क्षण इनकी संज्ञा साथ छोड़ सकती है। मैयाकी दशा और चिन्तनीय थी। उनकी पलकें भी गिर नहीं रही थीं। उनके निष्कम्प शरीरमें चेतना है भी, यह सोच पाना भी कठिन था। मुझे शीघ्रता करनी चाहिए, यही बात मेरे ध्यानमें आयी।

'श्रीकृष्ण सर्वात्मा सर्वेश्वर हैं। आप दोनों परम धन्य हैं कि आपका उनमें ऐसा सुस्थिर निर्मल स्नेह है। वे तो सर्वरूप सबकी आत्मा हैं। उनका कोई माता-पिता-भाई नहीं है। वे ही सबके माता-पिता-स्वजन-सम्बन्धी एवं सञ्चालक हैं।' मैंने जो श्रवण करके अपने मनन, निदिध्यासनसे अनुभव किया था, सुनाना प्रारम्भ कर दिया— 'वे भावग्राही भक्तवत्सल सर्वत्र हैं। अपनेमें श्रद्धा-प्रीति रखनेवालोंसे दूर वे कभी रहते नहीं। आप उन्हें परिच्छिन्न, परिमित मानकर क्यों मोहमें पड़ते हैं। वे तो आपके ही भीतर हैं। आप सदा उनको अपने समीप देखेंगे।'

मैं कब तक अपना पाण्डित्य प्रकट करता रहा, मुझे पता नहीं लगा। व्रजराज और मैया बोले नहीं। अब समझता हूँ कि वे अपने पुत्रका सखा समझकर मेरी बातें शान्त सुनते रहे। पूरी रात्रि बैठे सुनते रहे। मेरी बकवाद चलती रही। रात्रिके अन्तमें मेरी अन्तिम बात सुनकर मैया अकस्मात् आतुरतापूर्वक उठी— 'नीलमणि सदा हमारे समीप रहेगा? वह आते ही नवनीत माँगेगा। मुझे अभी दधि-मन्थन करना चाहिए।'

मैया उठ गयी तो मेरा स्वप्न टूटा। मैं इन मूर्त्तिमयी ममताको क्या सुना रहा था? इन्होंने मेरे वाक्योंका केवल अन्तिम अंश अपने ढङ्गसे समझा। ब्रह्ममुहूर्त्त हो चुका था। व्रजराज मुझे अपने साथ यमुना-स्नान कराने ले जाना चाहते थे; किंतु मैंने विनयपूर्वक एकाकी जाकर स्नान-सन्ध्यादि करनेकी अनुमति ले ली। मुझे अभी गोपकुमारोंसे, गोपियोंसे, मिलना था। व्रजराज मेरे सङ्कोचसे अवश्य कुछ समझ गये। उन्होंने अनुमति दे दी।

गृहोंमें दीप प्रज्वलित थे। दधि-मन्थन-शब्दके साथ गोपियोंके कङ्कणोंकी ध्वनि और उनके कलकण्ठसे उठता श्रीकृष्ण-सुयशका मंगलगान दिशाओंको पवित्र कर रहा था। मैं उसे सुनता यमुना-स्नान करने पहुँचा।

× × ×

मैं स्नान-सन्ध्या करके मुड़ा तो गोपकुमारोंका समुदाय मुझे एकत्र मिला। उनमें-से किसीने पूछा— 'कनूं आया आपके साथ?'

'अभी तो नहीं आये; किंतु—' मैं इतना कहकर स्तब्ध रह गया। मुझे लगा कि कालिन्दी शुष्क हो गयी हैं। उनके अल्प जलमें कच्छपोंकी भरमार है। जहाँ तक दृष्टि जाती है, वन दावाग्नि-दग्ध दीखता है।

जिनके वियोगकी विषम ज्वालामें सम्पूर्ण प्रकृतिको इतना प्रभावित करनेकी सामर्थ्य है, उन गोपकुमारोंकी दशाका कैसे वर्णन करूँ।

अभी-अभी जिनका सौन्दर्य सुरोंको भी लज्जित करता था, उनके शरीर काले पड़ गये, कल्पनातीत कृश हो गये और सन्देह होने लगा कि उनमें-से किसीकी श्वास भी चलती है या नहीं। अचानक एकका उत्फुल्ल स्वर गूँजा— 'कन्हाई तो आ गया। वह क्या उसकी शृङ्ग-ध्वनि हमें पुकार रही है।'

मुझे कोई ध्वनि सुनायी नहीं पड़ी; किंतु गोपकुमार पहिलेके समान सुन्दर, प्रफुल्ल हो गये थे। वे उठे और दौड़ते चले गये। कालिन्दी निर्मल, गम्भीर-सलिला हो गयी थीं। सम्पूर्ण वन कैसे इस अर्ध पलमें हरित, पुष्पित, फलभार-भूषित हुआ—कोई भी समझ नहीं सकता।

इसका एक सुपरिणाम हुआ। मैं व्रजधराकी दिव्यतासे परिचित हो गया। सावधान हो गया कि श्रीकृष्णचन्द्र अपनी जिन परम प्रियाका स्मरण करके संज्ञाशून्य हो गये थे, उनके सम्मुख मुख खोलनेका मुझे साहस नहीं करना चाहिए। मुझे उनके श्रीचरणोंके दर्शन करके ही संतोष करना चाहिए। गोपियोंके सम्मुख भी बहुत पाण्डित्य प्रकट करना व्यर्थ होगा। मेरा विद्या-गर्व गलित हो गया।

× × ×

मैं स्नान करके लौट रहा था तो गोपियोंका समूह मार्गमें मिला। लगा कि वे मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। सबने मेरा समयोचित सत्कार किया। मुझसे सविनय, सलज्ज ही पूछा—'मथुरामें मयूरमुकुटी वनमाली स्वस्थ, सकुशल, सुप्रसन्न हैं? कभी व्रजका भी स्मरण करते हैं? माता-पिताको देखने क्या कभी आवेंगे? हम सब तो तभी उनके श्रीमुखका दर्शन पा सकती हैं!'

'आप तो उनके रहस्यज्ञ हैं। अन्यथा हमारे समीप वे आपको भेजते नहीं।' किसीने उनमें-से कहा— 'कभी नागरिकाओंकी गोष्ठीमें अथवा किसी रस-चर्चाके मध्य वे हमारी भी कोई बात करते हैं? हम किंकरियाँ भी उनको स्मरण आती हैं? वे कभी रास-रजनीकी भी सुधि करते हैं, जब हमारे स्कन्धोंपर विशाल बाहु रखकर नृत्य किया था उन्होंने?'

मैं उनके स्वरकी व्यथा, उनकी उन्मादिनी भङ्गी अधिक सह पानेमें असमर्थ था। मेरे स्वामीने इनको समझानेका मुझे विशेष आदेश दिया था। अतः मैं बोलने लगा— 'आप सब महाभागा हैं। अनेक जन्मोंके पुण्योदय होनेपर श्रीकृष्णके पदारविन्दोमें प्रीति प्राप्त होती है। वे आत्माराम, पूर्णकाम आप सबके अन्तरमें ही विराजमान हैं। आप उन हृषीकेश अधोक्षजको अपने भीतर ही प्राप्त कर सकती हैं। उन सर्वव्यापकसे आपका कोई वियोग कभी हुआ नहीं— ' हो नहीं सकता ; किंतु आपने अन्तःकरणमें उनको अनुभव करनेका प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने आप सबके लिये सन्देश भेजा है। भेजा है मेरे द्वारा—

' मैं तुम सबसे स्थूल रूपसे इसलिये दूर हूँ, जिससे तुम मनसे मेरे अत्यन्त सन्निकट रहो। तुम मुझमें हो और मैं तुममें हूँ। हमारा यह अभिन्नत्व कभी भङ्ग नहीं हो सकता। मुझे तुम अपने समीप ही सदा देखोगी।'

स्वामीका यह सन्देश मैंने सुना तो दिया ; किंतु मैं तब इसका किञ्चित् अर्थ भी समझता नहीं था। मैं तो इसे भी अपने निर्गुण-निराकार तत्त्वबोधका ही अंग मानता था। मैंने अपनी पूरी शक्तिसे अपना तत्त्वज्ञान उनके गले उतारनेका प्रयत्न किया।

अकस्मात् कहींसे उड़ता एक भ्रमर आ गया। मुझे अपनी बात सुनानेकी धुनमें ध्यान ही नहीं रहा था कि ये प्रेम-मूर्तियाँ मेरी ज्ञानचर्चामें रुचि लेनेके स्थानपर प्रायः उन्मादिनी, आत्मविस्मृता बन चुकी हैं। मुझे तो वे भूल ही गयीं। वह मधुप ही उन्हें अपने प्रेष्ठका दूत प्रतीत होने लगा। वे उसीको उपालम्भ देने लगीं।

' मधुकर ! तू भी अपने स्वामीके समान कपटी है। पुष्प-कलिकाओंका रस लेता फिरता है और कभी किसीका होता नहीं। वे भी तेरे समान ही अपनी स्वर-माधुरीसे हमें मुग्ध करके अब निर्गुण बनने लगे हैं। उन रस-स्वरूप श्रीराधारमणको अब पूर्णकाम कहलाना रुचने लगा है।' वे कहती गयीं— ' उन निखिल कला-निधान, त्रिभुवन-सुन्दरकी कोई झाँकी तुझे मिली भी या नहीं ; किंतु तू कहता सच है—हमें भी अब अणु-अणुमें वही त्रिभङ्गसुन्दर श्याम दीखता है। लेकिन वह सर्वत्र नेत्र खोले दीखता है, नेत्र बन्द करनेपर भी तो वही दीखता है तो

तू केवल भीतर देखनेकी बात क्यों करता है ? नेत्र बन्द करनेसे क्या अन्तर आनेवाला है ? हम तो उद्विग्न हैं उसके सर्वत्र दीखनेसे। दूध दुहते, भोजन बनाते, घर झाड़ते-लीपते, दधि-मन्थन करते वही मुस्कराता सामने खड़ा दीखता है और हम कोई काम नहीं कर पातीं। हम तो उसे भूल जाना चाहती हैं और तू उसके स्मरणकी स्तुति करने लगा है। यह सब स्तुति उनसे कर, जिनको उसकी प्रत्यक्ष सन्निधि प्राप्त है। वे तेरा सत्कार करेंगी।'

'भ्रमर ! तुम बुरा मत मानना। हमारे सर्वस्वके सखा हो—सन्देश-वाहक हो, हमारे सम्मान्य हो। हम तो उन्मादिनी हैं, हमारे कठोर वचनोंको क्षमा करना।' वे सचमुच उन्मादिनीके समान प्रलाप कर रही थीं— 'उनकी अनुकम्पा कि उन्होंने हमारा स्मरण करके तुम्हें भेजा। वे सुखी रहें, सुप्रसन्न रहें ! हमारे सम्बन्धमें उनसे कुछ ऐसा मत कहना जिससे उनका चन्द्रमुख किञ्चित् भी म्लान हो। वे जहाँ, जैसे जिससे सुखी हों, उसीमें हमारा सब सुख है।'

मुझे तो इनके इस उन्मत्त प्रलापने ही प्रबुद्ध कर दिया। प्रेमका पुनीत स्वरूप मैंने प्रथम बार प्रत्यक्ष किया। पदरज ली मैंने उनकी और अपने परम प्रेष्ठके प्रियजनके नाते उन्होंने भी मुझ अभिमानीको अपने कृपा-प्रसादसे अपनाया। मुझे अपना अन्तरङ्ग मान लिया।

मैंने प्रार्थना की श्रीकीर्तिकुमारीके पावन पदोंके दर्शनकी। ललिता-ने मुझपर कृपा की। मुझे समझाकर ले गयीं। दूरसे मैं उन महिमामयीके चरण-दर्शन कर सका। कुछ पल रुका रहा वहाँ और केवल उनके समीप-की उपस्थितिने मुझे आत्मविस्मृत कर दिया। मैं कौन हूँ, क्यों आया—सब भूल गया मुझे। लगा कि मेरा रोम-रोम, मेरे शरीरका कण-कण कृष्ण-नाम पुकारने लगा है।

पलमें प्रियकी वियोग-वह्निमें समूल उत्खनिता विशेष दग्धा वह दिव्यमूर्त्ति और पलमें ऐसी प्रफुल्ला—इतनी उत्सुका मानो प्रियका प्रत्यक्ष संसर्ग प्राप्त हो गया है। मैंने उन मानिनीका दिव्य मान और उनकी असीम अनुराग-भङ्गी भी देखी। वाणीमें जो कुछ अनुभव किया, उसके वर्णनकी शक्ति नहीं है। मैं समझ नहीं पाता कि श्रीकृष्णचन्द्र इनसे दूर मथुरा जानेमें सफल कैसे हुए और वहाँ रह कैसे पाते हैं।

मैं प्रथम दिन—प्रथम पद-दर्शनमें ही गोपियोंके शिक्षकके स्थान-पर उनका शिष्य हो गया। जो स्वामी अत्यन्त उदार, कृपा-पारावार, दयाधाम मुझे लगते थे, वे ही मुझे अतिशय क्रूर, निर्मम, निष्ठुर लगने लगे। मैं मथुरा तो लौटूँगा; क्योंकि उन्हें यहाँके इस अनन्त प्रेमका स्मरण दिलाकर कहना है कि वे यहाँ आ जायँ। मथुराके लोग ही नहीं, त्रिलोकी की भी उपेक्षा उचित है किंतु व्रजके इस प्रेमकी उपेक्षा? यह कैसे कर पाते हैं वे? कोई भी ऐसा कारण हो सकता है जो उन्हें यहाँसे अन्यत्र रख सके।

स्वामीको सचेत करके लाना न हो, मेरे मनमें अब कोई इच्छा व्रजसे कहीं जानेकी नहीं है। यहाँ इस रूपमें बस जानेकी सुविधा तो बहुत बड़ी बात है। इतना सौभाग्य—इतने पुण्य मेरे नहीं हो सकते; किंतु मैं इस व्रजमें तृण, लता, गुल्म, वृक्ष कुछ भी होकर रहना चाहता हूँ। मुझे इन गोपियोंकी पद-रज प्राप्त होती रहे! यही—एकमात्र यही अभिलाषा मेरे मानसमें अब शेष रह गयी है।

श्रीरासेश्वरी अनन्त करुणामयी हैं। वे माँगनेपर अवश्य यह आशीर्वाद मुझे दे सकती हैं; किंतु उनके सम्मुख पहुँचनेपर तो अपनी भी सुधि नहीं रह जाती। अपना भी रोम-रोम 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारने लगता है। अतः यह प्रार्थना मथुरा पहुँचकर स्वामीसे ही करनी पड़ेगी। उनके समीप मैं सावधान रहता हूँ।

गोपियोंने मुझे अपना लिया है। ये मुझे अपने साथ लेकर वृन्दावन-की कुञ्जों, कालिन्दी-कूलके घाटों, वीथियों, श्वेत-श्याम पर्वतोंके मध्यकी साँकरी खोह आदिमें घूमती हैं। मुझे उन रसिकशेखरके अमृत-चरित सुनाती हैं। इनके वर्णन, इनके सङ्गीत, इनकी भाव-विह्वल भङ्गीके श्रवण-दर्शनका सौभाग्य मिला मुझे। मुझे पता ही नहीं लगता कि कब प्रातःसे रात्रिके प्रथम प्रहर तकका समय समाप्त हो जाता है।

श्रीकृष्णचन्द्रके सखाओंकी गति मेरी समझमें नहीं आती। लगता है कि उन्हें अपने सखाकी नित्य सन्निधि प्राप्त है। उनमें अनेकने कई बार कहा—'तुम मथुराके लोग क्या गोचारण सर्वथा नहीं जानते? तुम्हें कोई गायें घेरनेको नहीं कहेगा। कन्हाईके साथ खेलनेमें भी क्या नागरिकों-को सङ्कोच लगता है?'

मैं क्या कहूँ इनसे। मुझ बृहस्पतिके शिष्यमें इतनी सरलता, सौम्यता कहाँ हैं? मैं साथ चलूँ तो अवश्य इनके आनन्दमें बाधक ही बनूँगा। मेरे पास समय भी तो नहीं है। गोपियोंको मैंने गुरु माना है और वे प्रभातसे ही मेरी प्रतीक्षा करने लगती है। प्रतिदिन मुझे अपने प्रेष्ठकी कोई नवीन लीला-स्थलीके दर्शन कराती हैं और उनके अमृत-चरित सुनाती हैं। जीवनके ये अमूल्य क्षण कैसे छोड़े जा सकते हैं।

बाबा और मैयाका मैं वात्सल्य-भाजन हूँ। ये मुझे अपने नीलमणिसे किंचित् भी भिन्न नहीं मानते। मैया अपने करसे मेरे मुखमें नवनीत देने लगती हैं तो मैं सचमुच शिशु हो जाता हूँ। मुझे इतना स्नेह अपनी सगी मातासे भी कभी मिला नहीं।

मैं श्रीनिकुञ्जेश्वरीके दर्शन कई बार ललिताजीकी कृपासे कर आया। जैसे उनके सौन्दर्यकी सृष्टिमें समता नहीं है, उनके प्रभावका भी पारावार पाया नहीं जा सकता। उनकी चरण-रजका एक कण भी जिसे प्राप्त हो जाय, जिसके स्वप्नमें भी उनके पङ्कजारुण नखोंकी ज्योति, रश्मि आ जाय, वह श्रीकृष्ण-प्रेमका पुनीत अधिकारी अवश्य हो जायगा। उनके चरणोंका स्मरण ही पर्याप्त है। वहाँ प्रार्थना कैसी। उन परमोदारा-की स्मृतिके साथ कुछ कहनेकी सुधि रहेगी किसीको।

गोपियोंकी—उन व्रजधराकी अधिदेवताकी सखियों-सेविकाओंकी शरण मिली मुझे। उन स्नेह-सिन्धु-स्वरूपाओंने अपने सहज स्वभावके अनुरूप मुझ अनधिकारीको भी अपनी अनुकम्पाका भाजन बनाया। मैंने यहाँ आकर इनकी कृपासे समझा कि श्रीकृष्ण-प्रेम क्या होता है और कितना नीरस है इसके सम्मुख मेरा अब तकका अनुभूत तत्त्वज्ञान।

कैसे चार महीने व्यतीत हो गये, कुछ पता नहीं लगा। लेकिन पावसके प्रथम मेघ-खण्डका दर्शन हुआ और मुझे लगा कि मैं अपने सुखमें यह भूल ही गया कि स्वामीको यहाँका सन्देश देकर ले आना है। मैंने मैयासे, बाबासे विदा माँगी। गोपियोंसे अनुरोध किया। गोपकुमारोंने केवल मेरी प्रार्थनाको महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने मुझे ढेरों मयूरपिच्छ, गुंजा, कई शृङ्ग देकर कहा—'आप मथुराके नागरिक हैं। हम वन्य बालकोंका यह उपहार रख लें। आप और आपके सखा कभी-कभी इनको देखकर हमारा स्मरण करेंगे।'

गोपियोंका अत्यन्त कातर एक ही अनुरोध— 'उनसे ऐसा कुछ मत कहना, जिससे वे खिन्न हों।'

श्रीकीर्तिकुमारीने ललितासे सुना तो अपने लीला-कमलको हृदयसे लगाया और मुझे ललिताके द्वारा ही दे दिया। उनके अश्रुओंसे सिक्त यह कमल—अपना हृदय ही दिया है उन्होंने इस रूपमें।

बाबाके उपहार महाराज उग्रसेनके लिये, वसुदेवजीके लिये, सबके ही लिये हैं। सभी वृद्धों, वृद्धाओंका, मैयाका, गोपियोंका उपहार लेकर चलना है मुझे।

मेरा यह प्रस्थान—व्रजमें वियोग-वह्नि लग चुकी है। दग्ध खड़ी है वन-राजि, शुष्कप्राय कच्छप-पूर्ण कालिन्दी, मरुधरा कण्टकतरु-करील-कीर्ण सम्पूर्ण भूमि, कान्तिहीन कङ्कालप्राय पशु-पक्षी, अब गोप-गोपियों-की अवस्था कैसे कहूँ। मैं आया था तो यही धरा स्वागतमें सजी थी और आज यह वियोग-दग्ध ? मैं रथको पूरे वेगसे भगाये ले जाऊँगा, जिससे स्वामीको शीघ्र लौटा ला सकूँ।



दाऊ आये

इस वृन्दावनकी मैं अधिदेवता हूँ, यह ठीक है; किंतु मैं मुख्य रूपसे तो श्रीराधाकी सेविका हूँ—सखी हूँ। यह मेरा वनदेवीका स्वरूप भी उनकी सेवाके लिये ही है। मेरी व्यथा वर्णनसे परे है। व्रजराजकुमारने मथुरा जानेका नाम क्या लिया, मेरी स्वामिनीको वियोगकी दारुण दावाग्नि दग्ध करती रहती है। अब इन्हें समझा पाना सरल नहीं है कि श्रीनन्दनन्दन इसका सामीप्य त्यागकर चाहें तो भी कहीं जानेमें समर्थ नहीं हैं। वे मेरे वृन्दावनसे बाहर तो कभी पद रखते नहीं। मथुरा-गमन केवल परिहास था उनका; किंतु इतना उत्पीड़क परिहास—वर्षों बीत गये और वह दुःस्वप्न मेरी सखीके मानससे समाप्त होनेका नाम ही नहीं लेता है।

इस दुःस्वप्नका मूल है दाऊका अदर्शन। वे वनमाली अपने अग्रजके बिना दीखते भी हैं तो उनके दर्शनपर विश्वास नहीं होता। इस छलियाका ठिकाना क्या—भाईके समीप ही यह कुछ सरल-सहज रहता है। उन एक कुण्डल धरका ही कुछ सङ्कोच मानता है। वे संकर्षण सन्तुष्ट हों, समीप हों तो श्रीकृष्णके नटखटपनपर प्रतिबन्ध रहता है। तभी इनकी मोहिनी माया मन मारे बैठी रहती है। व्रजसे वनमाली भले नहीं गये, दाऊके अदर्शनने दुःखद वियोगका दुःस्वप्न दे दिया यहाँ।

आज दाऊ आ गये। वर्षोंके पश्चात् व्रज धरापर पधारे उनके पुण्य पाद-पद्म। मैं वनदेवी पलक पाँवड़े बिछाये रहूँ उनके चारु-चरणोंके लिये। उनके रथकी ताल ध्वजा दीखी और वनका तृण-तृण झूम उठा। तृणों तकमें पुष्प आ गये। मुझे तो लगता है कि कल्पोंके पश्चात् मेरे वनने यह वैभव पुनः पाया।

उनका रथ आया—मैं देख रही थी कि वे एक-एक तरु-लता, कुञ्ज-पुञ्ज देखकर विभोर हो रहे थे। पक्षियों तकका उनका परिचय—उनका यह नित्य शाश्वत परिचय भी क्या कभी समाप्त हुआ करता है।

वन्य पशु—शशक, मृग सब दौड़ पड़े थे। कपि-पक्षियोंकी आनन्द-भरी वाणी वनमें वर्षों पश्चात् मानो गूँजी। मयूरोंका केकारव, कोकिलका कलकण्ठ, पपीहेकी पुकार, भ्रमरावलीका गुञ्जन—सब स्वागतमें सार्थक हुआ। सबको सस्मित स्नेहदान करते उनका रथ चला। लताओंने मार्गमें पुष्प बिछा दिये। वृक्षोंसे सुपक्व फल स्वतः टपक पड़े। मैं कङ्गालिनी क्या स्वागत करती इनका। इनके श्रीचरणोंके सम्मुख मेरा वनदेवी रूप भी तो केवल संकुचिता किरात कन्या मात्र रह जाता है।

दाऊ आये—दौड़े वृषभ, गायें, गोपकुमार। सब उछलते, कूदते हर्षसे पुकारते, हम्बारव करते दौड़े और रथसे कूदकर दाऊ सबके मध्य आ गये। दाऊका क्या व्रजसे वियोग होता है? सबको यही लगता है कि दो घड़ीके ये कहीं गये थे। पशु सूँघ लेना चाहते हैं। सखा अङ्कमाल दे रहे हैं। दाऊ स्नेहमय, सौहार्दके मूर्त्तिमान स्वरूप दयामय दाऊ सबका सत्कार कर रहे हैं सस्मित।

'दादा! सुना तू द्वारिका चला गया।' तोक दक्षिण कर पकड़े पूछता है—'कितनी दूर है द्वारिका? वहाँ कितनी गायें हैं?'

'द्वारिका समुद्रमें द्वीप है।' दाऊ हँसकर समझाते हैं—'अपने व्रजके इस गोधनके सम्मुख बहुत दरिद्र हैं।'

'तब वहाँ मत जाना।' तेजस्वीने कह दिया—'तेरे तैरनेको अपनी कालिन्दीमें कम जल नहीं है।'

सीधे भोले गोपकुमारोंने समुद्र देखा नहीं है। मथुराका महानगर और उसके उच्च सदन, उसकी अट्टालिकायें इनको अच्छी नहीं लगी थीं। द्वारिका भी वैसा ही महानगर है तो इनका दाऊ दादा वहाँ क्यों रहे? वृन्दावनकी शोभा नगरमें कहाँ? मैं वनदेवी हूँ—अतः इन सबकी बातें मुझे उचित लगती हैं।

सखाओंसे घिरे दाऊने नन्दग्राममें प्रवेश किया। गोप-गोपियाँ दौड़े। गोपकुमारोंने दौड़कर सबको समाचार दिया। व्रजराज ही नहीं, यशोदा-जी भी पथपर पहुँच गयीं। नन्दरायने पद-वन्दना करते दाऊको हृदयसे लगाया और अश्रुओंसे उनकी अलकें आर्द्र कर दीं।

वृद्धोंकी, वृद्धाओंकी पद-वन्दना करते दाऊ पहिले महर्षि शाण्डिल्यके आश्रम गये। महर्षि, भगवती पूर्णमासी, ऋषिगण,

मुनि-मण्डल, विप्रपत्नियोंका पूजन करके, उनका आशीर्वाद प्राप्त करके लौटे।

पगलीकी भाँति यशोदाजी पथसे भवन-भवनसे पथपर कई बार दौड़ती रहीं। कभी भवनमें दाऊके लिये नवनीत निकालने-सजानेकी सुधि आई और कभी आते दाऊको देखनेकी।

दाऊ आये—मैयाने दौड़कर अङ्कमें ले लिया। 'मेरा लाल!' सूखे पयोधर उज्ज्वल अमृत झरने लगे। नेत्रोंसे वारि-धारा चली। हृदयसे लगाये भवनमें ले आयीं और स्वयं मुख, कर, चरण धोने लग गयीं। दाऊ मैयाके लिये तो वही अबोध शिशु हैं।

दाऊ आये—समाचार सबने प्राप्त कर लिया। नन्दग्राम और बृहत्सानुपुरमें सभीने। सबके प्राण समुत्सुक हैं उनके दर्शनको; किंतु बाबा, मैयाके वात्सल्यको समय मिलना चाहिए। नन्द-भवन तत्काल पहुँचना समुचित नहीं—इस सङ्कोचने सबको कुछ समय रोक रखा।

दाऊ आये—सबके श्रद्धा-स्नेह-भाजन दाऊ। सबसे मिले। सबके आश्रयों, गृहोंमें जा-जाकर मिले। सब पहिले आकर उन्हें भले मिल गये नन्द-भवनमें; किंतु सबका समुचित सत्कार-सम्मान किया इन्होंने। सबको लिये उपहार लेकर मिले। कोई एक सेवक तकको भी तो उपहार ले आना भूले नहीं थे।

दाऊ आये—बरसाना इनका स्वागत करके सदासे महोत्सव मनाता रहा है और इस बार तो ये द्वारिकासे आये हैं। इनका सत्कार करते वृषभानु बाबा और कीर्ति मैयाको क्या सन्तोष हुआ है कभी कि आज हो जायगा।

दाऊ आये—गोप-किशोरियोंको भी एकान्तमें मिलना ही था। अग्रज आये हैं तो अनुजका समाचार, सन्देश भी सबको इसके श्रीमुखसे ही सुनना है। सब लज्जा-सङ्कोच ठीक; किंतु इनके पदोंके सम्मुख सबको भूमिमें मस्तक भी तो रखना है। स्वामिनीके साथ सखी रूपमें यह सौभाग्य मुझे भी सुलभ हुआ।

'आप दोनों भाइयोंने तो अब बहुत अधिक राजकुमारियोंका पाणि-ग्रहण कर लिया है। आपके पुत्र, पुत्रवधुयें भी आ गयी हैं।' मैंने ही पूछनेकी धृष्टता का—'कभी आपके अनुज हम सबका भी स्मरण करते हैं?'

'वृन्दा, तुम यह पूछती हो? तुम श्यामका स्वभाव जानती तो हो।' ये विशालबाहु बोले—'वह द्वारिकामें अपने अन्तःपुरमें रहता भी तुम्हारे ही समीप है। उसके मानसमें तुम्हारा स्मरण और मुखपर प्रत्येक विषयमें व्रजकी चर्चा। कन्हाई समान रूपसे सर्वत्र—यादवोंकी राज-सभामें और अपने अन्तःपुरमें भी व्रजके प्रेमका ही तो गायक है। वह व्रजका—तुम्हारा है। वह तुम्हारे समीपसे कभी कहीं गया?'

यह उद्धव तो नहीं थे कि हम उपालम्भ देतीं; उपहास करतीं अथवा उत्तर देतीं। ये हमारे हृदयधनके समान अग्रज—उनसे अभिन्न। ऐसी उत्कण्ठा हम सबके हृदयमें उठ रही थी कि ये ऐसे ही अपनी सुधा-स्यन्दिनी वाणीमें बोलते ही रहें और हम सब ऐसी ही नीरव, निस्पन्द, शान्त अनन्तकाल तक श्रवण करती रहें।

दाऊ आये—वसन्तके दो मास मधु-माधव रहे व्रजमें। मेरी स्वामिनी तकको वियोग-विस्मृत हो गया। अग्रज आये तो अनुजके अदृश्य रहनेका भ्रम विदा हो गया। विश्वास हो गया कि ये नील-वसन स्वर्ण-गौर, सर्वाचार्य संकर्षण यहाँ हैं तो इनसे पृथक् इनके नवजलधर-सुन्दर, वनमाली, पीताम्बर-परिधान मयूरमुकुटी मनमोहन अनुज रह नहीं सकते।

× × ×

मुझे वृन्दावनकी अधिदेवता होनेके नाते सबसे अधिक चिन्ता थी इन नव-कुमारियोंकी जिनका जन्म यहाँ अक्रूरके उस आगमनके पश्चात् हुआ। देवता होनेके नाते जानती हूँ कि नाग-कुमारियोंने अपने आराध्य भगवान् अनन्तका पाद-स्पर्श प्राप्त करनेके लिये पृथ्वीपर व्रजमें जन्म लिया है। देवताओंकी अमरपुरीमें तो मानवके छः महीनेका दिन होता भी है; किंतु अधःलोकोंमें तो रात्रि-दिनका भेद ही नहीं होता। रसातल और पातालमें तो महाकाय नागोंकी शिरःमणियाँ सभी समय प्रकाशित रहती हैं। अतः वहाँकी भोली कुमारियोंको पृथ्वीपर जन्म लेनेमें मानवके दस-ग्यारह वर्षोंका विलम्ब कुछ पलोंके समान ही तो था। प्रमाद उन लोकोंमें दूषणकी गणनामें नहीं है; किंतु इस किञ्चित् प्रमादके कारण ये अबोध नाग-कुमारियाँ अपने आराध्यके प्रमादसे ही वञ्चिता हो गयीं। दाऊका व्रजमें अदर्शन इनकी विपत्ति बन गया। श्रीनन्दनन्दनका

नित्य सान्निध्य भले यहाँ सुलभ रहे, इन नाग-कुमारियोंको नवघनसुदन्र केवल भाभी ही तो कह सकते हैं।

दाऊ आये—मेरी चिन्ता मिट गयी। अब जो जन्म-जन्मसे इन्हींकी हैं, उनको ये परमोदार स्वतः स्वीकार कर लेंगे। इनके श्रीचरणोंमें तो सबको आश्रय प्राप्त हो जाता है। ये तो किसी शरणागतको अस्वीकार करते ही नहीं। यही अस्वीकार करें तो आतुर अनधिकारी अज्ञानी जीव आश्रय कहाँ पावेगा ?

मुझे कुछ कहना नहीं पड़ा। इन अनन्तके यहाँ किसीके लिये कभी किसी दूसरेको कुछ नहीं कहना पड़ता। अपने सहज स्वभावके अनुसार इन्होंने उन सब कुमारियोंको स्वीकार कर लिया। सबको सहचरी बना लिया।

सब अपने आराध्यको प्राप्तकर कृतार्थ हो गयीं। सबको लेकर वसन्तकी ज्योत्स्नामयी रजनीमें इन अनन्तका वन-विहार चलने लगा तो मैंने वरुणदेवको सेवाका अवसर दे दिया। उनकी प्रेरणासे, उनके द्वारा प्रेषित वारुणीकी धारा गिरने लगी वृन्दावनमें कदम्ब-कोटरसे।

अमृत-मन्थनके समय श्रीहरिने सुधा सुरोंको पिलायी तो वारुणी असुरोंको दे दिया। सुर सोमपानके व्यसनी बने ; किंतु अधःलोकोंके अधि-वासियोंके लिये वारुणी आवश्यक थी। यह उनके जीवनका अङ्ग थी। अतः नाग ही नहीं स्वयं शेषने भी उसे स्वीकार किया। अब धरापर जो जहाँसे आया है वहाँका स्वभाव भी तो उसके साथ ही आवेगा। संकर्षण तथा नाग-कुमारियोंको वायुमें वारुणीकी मादक सुरभि प्राप्त हुई तो उनके चरण स्वतः उसीकी ओर चल पड़े।

कादम्ब-वारुणीका स्वच्छन्द अञ्जलिमें भरकर पान – रात्रि-विहार-के रसको उद्दीप्त करनेवाला था। वह सुरभित मधुर कादम्ब-सार किञ्चित् क्रोधोद्दीपक भी है और उष्ण भी। अन्ततः कामानुज ही क्रोध है और प्रत्येक उत्तेजनामें उष्णता होती ही है। वन-विहार-श्रान्त श्रीबल-रामको स्नान करनेकी इच्छा हुई। वे जल-क्रीड़ा करना चाहते थे। उन्होंने पुकारा— 'यमुने ! यहाँ आ। समीप आ यहाँ। मैं स्नान करूँगा।'

कालिन्दीका सङ्कोच मैं समझ सकती हूँ। भूमिकी मर्यादा भी तो नहीं है कि सरितायें बिना बाढ़के अचानक प्रवाह-पथ परिवर्तित करें। यमुनाका प्रवाह पास आता नहीं प्रतीत हुआ तो सर्वसमर्थ संकर्षणको

क्रोध आ गया। स्मरण करते ही उनका ज्योतिर्मय हल हाथमें आ गया। हलाग्र भूमिमें लगाकर उन्होंने खींचा कालिन्दीकी धाराको और गर्जना करते बोले—'कामचारिणी! स्वच्छन्दगतिका कालिन्दी! प्रमत्त हो गयी है तू? मेरे पुकारनेपर भी आती नहीं है, इतना साहस! मैं हलाग्रसे तेरी धाराको शतधा विभक्त करके समाप्त कर दूँगा।*

कालिन्दीका प्रवाह गिरिराजके समीपसे खिंचकर वृन्दावनके समीप आ गया। यमुना साकार सशरीर प्रकट होकर पदोंमें प्रणत होकर बोलीं—'मैं आपके अनुजकी चरण-किंकरी हूँ। आपके अचिन्त्य प्रभावको कैसे जान सकती हूँ। अनुजके सम्बन्धसे इस सेविकाको क्षमा करें।

कालिन्दीका प्रवाह तो सदाके लिये वृन्दावनके समीप आ गया तभीसे। अपनी सहचरियोंके साथ दाऊने स्नान किया—स्वच्छन्द जल-विहार किया। यमुनाने सविनयवस्त्रा, आभरण, वनमाला, अङ्गराग अर्पित किया।

व्रजराजकुमारके अग्रजका यह वन-विहार तो नित्य है। वे भी अपने अनुजके साथ सदा व्रजमें ही तो रहते हैं। उनका अदर्शन समाप्त हुआ। दूसरोंकी दृष्टिमें वे द्वारिका जाते हैं तो मैं क्यों उसे महत्ता दूँ।



*जो हलाग्र लगाकर पूरा हस्तिनापुर उखाड़कर गंगामें डालनेमें समर्थ थे, वे हलाग्रसे भूमिमें गहरी नहरें बनाकर यमुनाको सौ-दो सौ धाराओंमें सहज विभक्त कर सकते थे और ये नहरें राजस्थानकी रेणुका तक पहुँचा दी जातीं तो मरुधरामें इनकी धारा समाप्त हो सकती थी।

कुरुक्षेत्र-यात्रासे लौटे

सम्पूर्ण खग्रास सूर्य-ग्रहण हो रहा था। सुना है कि ऐसा सूर्य-ग्रहण प्राय: कल्पान्तमें होनेवाली प्रलयके समय पड़ा करता है। ज्योतिर्विद कहते कि यह महाविनाशका सूचक है। व्रजमें और विनाश क्या होगा, व्रजराज-कुमार चले गये यहाँसे मथुरा और वहाँसे भी मगधराजके निरन्तर आक्रमणोंने उन्हें सुदूर पश्चिम समुद्रीय द्वीप द्वारिकामें बसनेको विवश कर दिया। हमारी बालिकायें अब रात-दिन व्याकुल रहती हैं। मैं वृद्ध हूँ—सब समझता हूँ। गोपकुमारी किसीको हृदय दे देगी एक बार तो उसीकी हो जायगी। वह तिल-तिलकर जीवनभर भले जले, दूसरा उसके हृदयमें आ नहीं सकता। बेचारी बालिकायें भी क्या करतीं—त्रिभुवन-सुन्दर नन्दनन्दनको देखकर तो कोई सुराङ्गना भी सम्मोहित हुए बिना नहीं रह सकती। अब हमारी बालिकाओंकी जो अवस्था है, उसे देखकर हम सबको भी तो घुल-घुलकर मरना ही है। अब और क्या विनाश आवेगा व्रजमें ? कोई आवे भी तो—वह हमें सुखद ही लगेगा। हम सब उसका स्वागत करेंगे।

कुरुक्षेत्रके समन्तक-पञ्चक तीर्थमें सूर्य-ग्रहण-स्नानका पुण्य अश्वमेध-यज्ञसे भी महान है, ऐसा ऋषि-मुनि कहते हैं। शास्त्र और वेदज्ञ ब्राह्मण जो कहते हैं, सर्वथा सत्य है। कोई भी श्रद्धालु सज्जन उसमें सन्देह कर नहीं सकता। लेकिन अब हम गोप पुण्यका करेंगे भी क्या ? हमारे कुछ पुण्य शेष भी हों तो वे सब द्वारिकामें विराजमान उस मयूरमुकुटीको मिल जायँ ! वह सुखी रहे, सन्तुष्ट रहे, स्वस्थ रहे। हम तो उसके वियोगकी जिस ज्वालामें जल रहे हैं, किसी नरककी अग्नि इतनी दाहक नहीं हो सकती। अब कोई पुण्य हमारा क्या भला कर पावेगा।

इतना बड़ा ग्रहण—देशके सभी भागोंसे सब समर्थ स्त्री-पुरुष वहाँ पहुँचेंगे। द्वारिकाके लोग न आवें, यह कैसे हो सकता है। जरासन्ध जैसे दुर्धर्षको जिन्होंने सत्रह बार पराजित किया, उनको कुरुक्षेत्र आनेमें कोई

कठिनाई कैसे हो सकती है। हमारे राम-श्याम वहाँ आवेंगे—मेरा हृदय आरम्भसे कहता था कि वे अवश्य आवेंगे।

मैंने अपने वृषभानु भाईसे कहा कि हम सब भी चलें। लेकिन मेरे भाई बहुत दीर्घदर्शी हैं। वे बचपनसे अत्यन्त बुद्धिमान हैं। उन्होंने कहा—'भैया' मैं जा नहीं सकता। मेरे जानेसे व्रजेश्वरी नन्दगृहिणीको बहुत संकोच होगा। उस पुत्र-वियुक्ता दुखियाको पुत्रके मुख देखनेका सुयोग मिलेगा इस समय। नन्दरायको उसे लेकर अवश्य जाना चाहिए। व्रजराजके चले जानेपर सम्पूर्ण व्रजकी सुरक्षा—गोधनकी सम्हाल करनेवाला भी कोई यहाँ चाहिए।

'अब इस ऐश्वर्यका हम क्या करेंगे ?' मैंने भाईसे झल्लाकर कहा।

'यह सब जिसका है, वह हमारे ही भरोसे तो द्वारिकामें निश्चिन्त बैठा है।' वृषभानु भाईने कहा—'उसके धन, गोधनके हम यहाँ रक्षक हैं। उसके अनकहे अविचल विश्वासको भंग कैसे किया जा सकता है। वह यहीं-का है—यहाँ आये बिना रह नहीं सकता। ऐसा विश्वास न होता तो क्या वृषभानु अबतक जीवित रहता ?'

'हमारी भोली बालिकाओंके भाग्यमें उसके मुखकी एक झलक पानेका अवसर आया था, वह भी गया।' मैं मस्तकपर हाथ पटककर रो पड़ा। भाईका विरोध भी किया जा सकता है, यह बात मनमें कभी आवे तो उससे पहिले मैं मरजाना स्वीकार कर लूँगा।

'बालिकायें सब जायँगी !' भाईने स्थिर कण्ठसे कहा—'वे सब नन्दरायके साथ जायँगी। अब भी तो वे अधिकांश नन्द-भवनमें ही रहती हैं। हम सब नहीं जायँगे तो वे अधिक निःसंकोच रहेंगी। भगवती पूर्णमासी जा ही रही हैं। नन्दरानीका इन सबपर अपार वात्सल्य है। उनके साथ इन्हें कोई असुविधा नहीं हो सकती।'

मैं समझ गया कि भाईने नन्दरायसे सब पहिलेसे निश्चित कर लिया है। मुझे साग्रह कहा उन्होंने कि यदि मैं जाना चाहूँ तो पत्नीके साथ यात्रा कर सकता हूँ; किन्तु भाईसे पृथक तो मुझे वैकुण्ठ भी नहीं जाना। नन्दनन्दनके श्रीमुखको देखनेकी लालसा क्या इनके मनमें कम होगी मुझसे ? लेकिन जिस कर्तव्यके लिये ये यहाँ रहते हैं, वह मेरा कर्तव्य पहिले है। मैंने स्पष्ट कह दिया कि मैं इनके साथ ही रहूँगा। सम्पूर्ण व्रजके

गोधनको सम्हालना भी तो है। अब नन्दराय क्या पावससे प्रथम आने वाले हैं।

× × ×

नन्दराय चले गये। नन्द-व्रजके प्राय: सभी गये ग्रहण-स्नान करने। हमारे बालक और बालिकायें भी गयीं। लगा कि व्रज सूना हो गया। हम तो फिर मनुष्य ही हैं, पशु-पक्षी तक व्याकुल हो गये। गायें गोष्ठोंसे छूटते ही भागती थीं उसी पथकी ओर जिधर शकट गये थे पर्व-यात्रियोंके। बार-बार उन्हें रोककर वनमें लाना पड़ता था। सायंकाल गोष्ठमें उनको लाना बहुत कठिन हो गया। उन्होंने कठिनाईसे तृणोंमें मुख लगाया और दौड़ीं— यह दैनिक क्रम बना लिया सबने। सूखकर सब कंकाल हो गयीं।

‘नन्दराय लौटेंगे तो क्या सोचेंगे ?’ भाईने एक दिन सचिन्त कहा— ‘कोई कुछ नहीं सोचेगा, कुछ नहीं कहेगा, यह सत्य समझते हुए भी सन्तोष नहीं होता। हम किस मुखसे कङ्कालप्राय गोधन उन्हें सौंपकर कहेंगे कि—‘इतने समयमें दो चुल्लू दूध भी हम उनकी लक्ष-लक्ष गायोसे नहीं पा सके। उनको देनेको हमारे समीप अपना भी तो घृत-नवनीत नहीं है। हमारे गोधनकी भी तो वही दशा है।’

‘हम इन्हें जीवित दे सकें, यही हमारा सौभाग्य होगा।’ मैं और क्या उत्तर देता। हम कुछ कर नहीं सकते थे। गायें रात-दिन नेत्रोंसे अश्रु गिराती थीं। सद्य:प्रसूतामें भी अपने बछड़ोंको थनोंसे कठिनाईसे लगने देती थीं। केवल हुंकार—क्रन्दनके समान हुंकार करती रहती थीं सब।

हमारे बालक या बालिकायें गोष्ठमें जाती थीं तो इन गायोंके स्तनोंसे झरते दूधसे घड़े भरते थे और आज इनकी ओर देखा तक नहीं जाता। इनकी ही बात क्यों करूँ—वनपशु-पक्षी सब तो ऐसे हो गये हैं जैसे सबको कोई असाध्य दीर्घ रोग हो गया हो।

हम सबके घरोंमें भी अधिकांश व्रत ही चलता है। बालक-बालिकायें चली गयीं, अब गृह तो श्मशान लगते हैं। रात्रिमें भी जहाँतक हो सके देरतक सभी गोष्ठोंमें गायोंकी सेवामें उन्हें सहलानेमें व्यतीत करते हैं। नन्दरायने पर्याप्त सेवक छोड़े हैं। कोई हममें-से न भी जाय तो भी उनके और उनके गोपोंके गोधनकी सेवा गोष्ठोंकी स्वच्छता रखनेवाले कम नहीं

हैं ; किन्तु हमारे जाने , सहलानेपर भी तो गायें रुदन ही करती हैं। इनको सेवकोंपर कैसे छोड़ा जा सकता है।

प्रातः हम सब पहिलेसे शीघ्र उठनेके अभ्यासी हैं। अब तो जैसे निद्रा ही कठिनाईसे आती है। गोष्ठोंकी सम्हाल करनी है। गायोंके साथ स्वयं वन जाना है। ग्रास मुखमें डालनेपर बाहर निकलना चाहता है, गलेमें नीचे उतरता ही नहीं तो कोई भोजन क्या करेगा। हमारी गृहिणियोंने अब अपना पूजा-पाठ बढ़ा लिया है। उन सबके भी व्रत ही चलते रहते है।

इस क्रमसे हमने कैसे यह समय व्यतीत किया , वर्णन कर पाना कठिन है। एक-एक दिन एक कल्प लगता था। प्रातःसे छटपटाते प्राण प्रतीक्षा करते थे—कब सायंकाल हो और सूर्यास्तके साथ ही सूर्योदय होनेकी छटपटाहट प्रारम्भ हो जाती थी।

ग्रीष्मके वे दिवस भी किसी प्रकार व्यतीत ही हुए। अचानक नन्दरायके महावृषभ धर्मने हुंकार की और दौड़ पड़ा। वृद्ध धर्म—बहुत शिथिल गाय ; किन्तु उस दिनकी उसकी हुंकार—वह दौड़ना जीवनभर स्मरण रहेगा। दौड़ पड़े सब वृषभ , गायें , बछड़े। कपि कूदे और मयूर हर्षमें भरकर कूके। हमारे शरीरोंमें मानों नवीन प्राण आया। नन्दराय लौट रहे थे। उनके साथके सब छकड़े व्रजकी सीमाके समीप आ गये थे। हम सब भी तीर्थयात्रासे लौटे स्वजनोंका स्वागत करने दौड़े।

× × ×

कुरुक्षेत्रमें मेरे अनुमानके अनुसार राम-श्याम आये थे। अपने परिवार , पुत्र , पुत्रवधुओंके साथ आये थे। बड़े स्नेहसे सोत्साह मिले और साग्रह व्रजके शिविरको द्वारिकाके शिविरके समीप ले गये। यह सब तो होना ही था। श्रीदामने , सुबलने , स्वयं नन्दरायने , गोपोंने सब सुनाया।

मुझे आशा थी कि वे यहाँकी बालिकाओंको अब आने नहीं देंगे। इनको अवश्य द्वारिका ले जायँगे। उनके इतनी अधिक रानियाँ हैं , ये उन्हें भारी नहीं पड़ेंगी। उन्होंने प्रयत्न ऐसा ही किया। उस नीलसुन्दरका कोई दोष नहीं है। वह इतना शीलवान है कि वह किसी सेवक तककी तो उपेक्षा कर नहीं पाता , इन बालिकाओंकी कैसे उपेक्षा कर सकता था। वह आग्रह-अनुनय सब करके हार गया। सुबलने मुझे सब सुनाया है—ये ही सब उसके साथ नहीं गयीं। इन्होंने किसी प्रकार द्वारिका जाना स्वीकार नहीं किया। वह तो इनके लिये पृथक नगर-निर्माण करा देनेको प्रस्तुत था।

मेरी लाली राधा बहुत मानिनी है। वह न जाय तो उसकी कोई सखी जा नहीं सकती। सब उसीसे चिपटी रहती हैं। उसीमें हम सबके प्राण बसते हैं। वह आ गयी तो बरसानेमें जीवन आ गया। वह न आती तो? सोचकर ही हृदय फटने लगता है। लेकिन लड़की पराये घरकी सम्पत्ति है। हम सब किसी प्रकार रह ही लेते, वह तो सुखी रहती।

इन भोली लड़कियोंको कौन समझावे कि जीवन वैसा सरल नहीं है जैसा युवावस्थाके आवेशमें समझ लिया जाता है। युवावस्थाकी भावनायें चाहे जितनी भव्य हों, जीवनको तो व्यवहारकी कठोर शिलापर अपने पद स्थापित करके खड़ा होना है। अतः युवावस्थाके अनेक स्वप्नोंको भंग होना ही पड़ता है। जीवनको परिस्थितिसे पाला पड़ना है, उसे समझौता करके चलनेवाला ही सुखी बना सकता है।

श्यामसुन्दर क्या करता? कंस मारा गया और उसका श्वसुर मगधराज मथुराका शत्रु हो गया। द्वारिकाके दुर्गम दुर्गकी शरण अनिवार्य हो गयी। जरासन्धके सभी मित्र अब यादवोंके शत्रु हैं। अपने सम्बन्धी, सहायक बढ़ानेके लिये राज्यके रक्षकके अनेक विवाह करने ही पड़ते हैं। कृष्णचन्द्रकी विवशता उनकी बुद्धिमता है। इसकी प्रशंसा करनी पड़ेगी।

वे इन कुमारियोंको जब द्वारिका ले जा रहे थे, पृथक नगर बनवानेको उद्यत थे, विवाह करने प्रमुख महिर्षी घोषित करनेको उद्यत थे तो इन्हें चले जाना था। नन्दराय इनको कुछ कह नहीं सकते थे और इन सबकी तो बुद्धि भी बच्चियोंकी है।

सुबल कहता है कि—'बहिनको नगरके राजसदनकी परतन्त्रता पीड़ादायिनी लगती है। वनके कुञ्जोंकी क्रीड़ा वे भूल नहीं पातीं। उनके साथ वनमालीको वृन्दावनमें रहना चाहिए।'

इस हठकी भी कोई सीमा है। अब अपने आश्रितोंको अनाथ करके, सब ओर अवसर देखते शत्रुओंकी कृपापर छोड़कर कृष्ण यहाँ आकर कैसे रह सकते हैं?

लाली राधा पगली है। सदासे बहुत भोली। अपनोंसे दूर रहनेकी भावनासे ही डरती है। अब ये सब दुःखी रहेंगी—उन्मादिनी बनी रहेंगी और इनका दुःख हमें जीवनभर व्याकुल रखेगा, यही हमारी नियति है?



द्वितीय ग्रहण-यात्रा

सब कहते हैं कि 'मङ्गला वृद्धा हो गयी, अतः इसकी स्मृति साथ नहीं देती। यह दिनमें भी स्वप्न देखा करती है।'

मैं वृद्धा तो हो गयी। कीर्ति बेटीके साथ आयी हूँ उसके पितृ-गृहसे। उसे मैंने गोदमें खिलाया है; किंतु इससे क्या हो गया। मैं अब भी दुर्बल तो नहीं हूँ। मुझे ही क्यों सब सेवासे पृथक् करना चाहते हैं? मैं क्या बैठी-बैठी भोजन करनेके लिये बनी हूँ।

मेरी राधा लाली युग-युग जिये, सदा सौभाग्यवती रहे; इसने मुझे बचा लिया। कीर्तिरानी तो मुझे पूजाकी पुतली बनाये दे रही थीं। कहती थीं— 'धात्री माँ, अब तुम श्रम मत किया करो। तुम्हारी सेवा-को सेविकायें पर्याप्त हैं। तुम तो बस बैठी रहो और हम सबको उचित आदेश दे दिया करो।'

लालीने रोक दिया माँको— 'नहीं मैया, इससे तो ये बहुत शीघ्र वृद्धा हो जायँगी। इन्हें बैठे रहनेका अभ्यास नहीं है। अब ये बाबाकी कालिन्दी-कूलकी बैठककी स्वच्छता—सेवा सम्हालेंगी। सेविकायें इनकी सहायताको रहेंगी इनके साथ।'

'कालिन्दी-कूलकी बैठकमें काम ही कितना है कि मेरे साथ सेविकायें रहेंगी।' मेरी यह बात किसीने सुनी नहीं। मैंने भी सब सहायिका-सेविकाओंको दूसरे दिन ही भगा दिया। मेरी सहायताको तो लालीकी सखियाँ ही बहुत थीं।

अब पता नहीं क्या हो गया है कि वह बैठक ही हम सबके लिये बन्द है। मुझे कोई वहाँ जाने ही नहीं देता। वहाँ जानेको कहती हूँ तो कीर्तिरानी रोने लगती हैं— 'धात्री माँ! अब वहाँ क्या धरा है। वहाँकी स्वच्छता-सज्जा किसके लिये? अब तो सब बालिकायें द्वारिका चली गयीं। स्वामी कहते हैं कि वह बैठक लालीकी स्मृति है। उसे वैसे ही रखना है। उसमें किञ्चित् भी परिवर्तन उन्हें कष्ट देगा।'

बालिकायें द्वारिका चली गयीं ? यही बात मेरे गले नहीं उतरती और सब कहते हैं कि मैं दिनमें भी स्वप्न देखती हूँ। 'बालिकायें सब हैं—सब बैठकमें हैं। सबका सब वहीं रातको भी रहती हैं।' मेरी इस बातपर ये लोग विश्वास क्यों नहीं करते ? बैठकमें जाकर देख लेनेसे ही तो काम चल सकता है।

नन्दलाल बहुत नटखट है। पहिले भी वह मथुरा जानेका बहाना बनाकर हमारी बैठकमें बस गया था। बालिकायें क्या अकेली रह सकती थीं वहाँ ? ललिताने जब मुझे भी बैठकमें आना वर्जित कर दिया तो मैं समझ गयी कि अब वहाँ वनमाली आ गया है। लड़कियोंको मुझ बूढ़ीके सामने सङ्कोच होगा। मैं यहाँ कीर्तिरानीके समीप रहने लगी। तब भी मेरी बात कोई नहीं सुनता था।

मैं अब वनमें नहीं जा सकती। पनघट तो दूर, गोष्ठमें भी मुझे कोई जाने नहीं देता। भवनमें ही रहती हूँ। बाहर निकलने लगूँ तो पता नहीं कितनी दासियाँ दौड़ेंगी, कीर्तिरानी स्वयं आ जायँगी— 'धात्री माँ, तुम कहाँ जा रही हो ? क्या काम है ? अपनी सेवा सूचित करनेमें सङ्कोच क्यों करती हो ?'

इन सबके सङ्कोचने मुझे बन्दिनी बना दिया है ; किंतु तब प्रातः-सायं गोचारणको जाते और लौटते नन्दरायके लाडिलेकी वंशी-ध्वनि मैं वृद्धा सुन लेती थी, दूसरे क्या बधिर हो गये थे ? उसके जैसी वेणु भी कोई दूसरा बजा सकता है ? अरे, सखाओंको उसने समझा रखा होगा। हमारी उस बैठकसे गोचारणको चला जाता होगा और वहीं लौट आता होगा। नन्द-भवनमें किसीसे रूठा होगा उन दिनों। बालिकायें उसीके लिये तो बैठकमें ही रहने लगी थीं।

मेरी लाली राधा क्या यात्रा करने योग्य है ? वह छुई-मुई-सी सुकुमार भोली बालिका छकड़ोंपर कहाँ चल सकती है। सब मेरा ही उपहास करते हैं जब मैं कहती हूँ कि— 'वह अपनी सब सखियोंके साथ बैठकमें है। वह तो बहुत दिनोंसे बैठकमें ही रहती है। भवनमें तो आती नहीं है। व्रजसे बाहर वह भला क्या जायगी। वृन्दावन भी पूरा नहीं देखा होगा उसने।'

वह दिनमें अन्धकार करके तारे दिखला देनेवाला सूर्य-ग्रहण लगा था। नन्दराय गोपोंको लेकर कुरुक्षेत्र चले गये स्नान करने। सम्भव है कृष्णचन्द्र भी गया हो ; क्योंकि हमारे यहाँके भी सब बालक साथ गये थे। मैंने उन दिनों उसकी वंशी-ध्वनि नहीं सुनी ; किंतु बालिकायें ? रामका नाम लो, ये व्रजसे बाहर कहाँ जा सकती हैं ? सब उस विशाल बैठकमें ही रही होंगी। वहाँ इनके लिये सब सुविधा तो है ही। इन सबके भाई चले गये तो बैठकसे बाहर निकलना इन्होंने भी बन्द कर दिया। वनमाली अवश्य चला गया होगा ; क्योंकि वह होता तो बालिकायें शाम-को अवश्य आकर भवनके गवाक्षोंपर बैठ जातीं।

अब सुबल, ललिता भी मुझ वृद्धासे ही बातें बनाते हैं कि सब बालिकायें कुरुक्षेत्र गयी थीं। वह नन्दनन्दन द्वारिकासे आया था। द्वारिका कहीं बहुत दूर है समुद्रके बीचमें। होगी कहीं द्वारिका ; किंतु क्या हमारे व्रजसे सुन्दर है कि कृष्णचन्द्र वहाँ चला जाता ? आजकलके इन बालक-बालिकाओंको बहुत बातें गढ़ना आ गया है। ये समझते हैं कि मैं कुछ समझती ही नहीं हूँ। मैंने तो इनके पिताको भी ऐसा ही बालक देखा है।*

उस समय सब कहते थे कि मैं भी कुरुक्षेत्र-स्नान करने उनके साथ चलूँ। मैं अपनी कीर्ति बेटीको छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। मेरे सब तीर्थ इसीके समीप हैं। मुझे क्या करना है तीर्थ करके। मेरी लाली राधा प्रसन्न रहे, सब पुण्य पा लिये मैंने।

नन्दराय गोपोंके साथ ग्रहण-स्नान करके लौटे कुरुक्षेत्रसे। उनके साथ ही सब बालक आये। तबसे वंशी-ध्वनि पुनः सुनायी पड़ने लगी। बालिकायें गवाक्षोंपर प्रातः-सायं बैठने लगीं। अब यदि वह व्रज-नवयुवराज द्वारिका चला गया तो यहाँ वंशी कौन बजाया करता है ?

सूय-ग्रहण भी आये दिन पड़ने लगे हैं। सुना कि नन्दराय इस दूसरे सूर्य-ग्रहणका स्नान करने कहीं द्वारिकाकी ओर कश्यपाश्रम-सिद्धपुर

---

* 'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।' यह केवल श्रीकृष्णके सम्बन्धमें सम्भव नहीं। जब वे रहेंगे तो उनकी आह्लादिनी भी रहेंगी। इसका अनुभव किसीको तो युगलकी कृपासे होना चाहिए। उस दिव्य अनुभूतिसे हृदयका तादात्म्य कर लेनेपर यह अध्याय समझना सरल हो जायगा।

गये थे। इस बार भी सब कहते थे कि मैं साथ चलूँ। मैं उतने बड़े ग्रहणमें समन्तक पञ्चक तीर्थ ही नहीं गयी तो अब इतनी दूर कैसे जाती।

कोई बहुत बड़ा संग्राम हो गया है कुरुक्षेत्रमें। बहुत अधिक लोग, हाथी-घोड़े मरे हैं। राजाओंसे लड़े बिना रहा नहीं जाता। ये युद्ध करते हैं, स्वयं मरते हैं और सैनिकों-पशुओंको भी मरनेके लिये एकत्र कर लाते हैं। उस संग्रामके कारण कुरुक्षेत्रका स्थल यात्रा करने योग्य नहीं रहा, अतः सब बहुत दूर सिद्धाश्रम गये थे।

इस बार भी सब बालक गये थे नन्दरायके साथ। बालक कहीं मानते हैं किसी मेलेमें गये बिना। बालक गये थे, अतः मैं मान सकती हूँ कि नीलसुन्दर भी साथ चला गया होगा। उसकी मुरली - ध्वनि सुनाई नहीं पड़ी बहुत दिनों तक।

अब कीर्तिरानीको पता नहीं क्यों यह धुन चढ़ी है कि उनकी लालीके साथ सब बालिकायें ग्रहण-स्नान करने चली गयी थीं। सब वहीं-से द्वारिका चली गयीं। वहाँ कहीं समीप ही उनके लिये महानगर बनवा दिया श्रीकृष्णचन्द्रने और सब वहीं बस गयी हैं।

श्रीकृष्णचन्द्र सचमुच द्वारिका चला गया होता तो बालिकाओंको वहाँ विदा कर देना उचित ही था। लड़की अपने पति-गृहमें ही सुखी होती हैं। माता-पिताको, स्वजनोंको कितना भी कष्ट हो, कन्याको विदा तो करना ही पड़ता है। ऐसा अवसर आता तो मैं कीर्तिरानीसे, बृषभानु-कुमारसे स्वयं कहती। अपनी राधा लालीको स्वयं सजाती विदा करने-को; किंतु उसकी सगाई नन्दनन्दनसे इसलिये तो नहीं की गयी थी कि उसे काले कोस दूर भेजना पड़े, जहाँ उसको देखना भी दुर्लभ हो जाय।

हम सबने लालीका समीप रहना सोचकर सगाई की और भगवान नारायणने हमें दुगुना दिया। नन्दनन्दन ही आकर हमारी बैठकमें बस गया। अब हमारी लाली और उसकी सखियाँ कहीं दूर क्यों जायँगी।

मैं इतना स्वीकार कर सकती हूँ कि ग्रहण-स्नान करने व्रजराजके साथ उनका कुमार भी चला गया होगा सिद्धाश्रम; क्योंकि उसके सब

सखा चले गये थे। उन दिनों गोप-गोपियाँ सब अत्यन्त व्याकुल थे। भवन-के द्वारसे मैंने कङ्कालप्राय गायोंको देखा था। कपियोंने भवनोंमें आना बन्द कर दिया था। मयूर मन मारे बैठे रहते थे।

बालिकायें—मेरी लाली राधा भी सखियोंके साथ वनमालीके संग ग्रहण-स्नान करने चली गयी थी—यह बात मेरे गले नहीं उतरती। वह यात्रा करने योग्य ही नहीं है। अवश्य वे सब बहुत उदास, बहुत व्याकुल रही होंगी उन दिनों। बैठकसे बाहर इसीसे उनमें-से कोई नहीं आयी।

अब तो नन्दराय गोपोंके साथ लौट आये हैं। हमारे बालक आ गये हैं। मुझे वंशीध्वनि प्रातः-सायं सुनायी पड़ने लगी है। बालिकायें अवश्य पता नहीं क्यों, गवाक्षोंपर बैठने नहीं आतीं। वे इस बार बैठकसे ही नहीं निकलती हैं। मेरी लाली बहुत मानिनी है। कहीं मयूरमुकुटीसे मान किये तो नहीं बैठी है?

'सब द्वारिका चली गयीं!' यह बात कीर्तिरानीके कण्ठसे निकलती क्यों है? मेरी लाली और उसकी सब सखियाँ कितनी संकोचशीला, लज्जावती, शीलमयी हैं। कृष्णचन्द्र सचमुच द्वारिका भी जा बसे होते तो क्या बाबाके विदा किये बिना मेरी राधाको बाहर ही बाहर साथ ले जानेमें समर्थ हो सकते थे?

वृषभानुजी और ये कीर्तिरानी मुझ वृद्धासे भी परिहास करते हैं। मैं क्या देखती नहीं हूँ कि इन लोगोंने कन्याका दहेज भेजनेका कोई प्रबन्ध नहीं किया। इनकी प्राणाधिका पुत्री पति-गृह चली भी जाय तो क्या ये ऐसे बैठे रहेंगे? ये उसके लिये कुछ भेजेंगे नहीं? और सुबल-श्रीदाम क्या बहिनको सिद्धाश्रमसे विदा करके स्वयं नन्दरायके साथ सीधे यहाँ चले आनेवाले हैं? ये दोनों गये होते उसके साथ। द्वारिका तो क्या, संसारके छोरतक जाना होता तो भी साथ गये होते। बहिनको छोड़कर तो ये आनेवाले नहीं थे। ये उसे विदा कराके, साथ लेकर आते।

सबने मिलकर पता नहीं क्या सोचा है कि मुझे बैठकमें जाने ही नहीं देते। मैं नित्य नन्दलालकी मुरली-ध्वनि सुनती हूँ। वह बैठकमें रहते हैं, अतः वहाँ मेरे जानेसे बालिकाओंको बहुत संकोच होगा। मैं बिना

बुलाये वहाँ जा नहीं सकती। मुझसे ये गोप, गोपियाँ, सेविकायें और कीर्तिरानी भी परिहास करती हैं। मैं इसे भली प्रकार समझती हूँ।

कालिन्दी-किनारेकी बैठक दूर है। अब लालीने उसे अपना अन्तःपुर बना लिया है। कदली कुञ्जसे घिरी वह बैठक है तो सुन्दर-सुरम्य स्थान। वनमाली भी उसीमें बस गया है। मेरे राधागोविन्द कहीं गये नहीं हैं। वे व्रजमें, वृन्दावनमें, ही हैं। क्या हुआ कि इस बरसानेसे कुछ दूर कदली कुञ्जकी बैठकमें हैं।

अभी कृष्णचन्द्रकी वर्षगांठ आनेवाली है। मेरी लालीकी भी वर्षगांठ आवेगी। उन दिनों दोनों भवनमें आवेंगे। यहाँ न भी आये उन दिनों तो मुझ वृद्धाको आशीर्वाद देने जानेसे कोई तब कैसे रोकेगा? दोनों सुखी रहें! सानन्द रहें! सुप्रसन्न रहें।



श्रीराधा

ललिता ठीक कहती है कि 'मैं इन दिनों अस्वस्थ हो गयी हूँ। मुझे जागते हुए ही स्वप्न दीखते हैं। मैं न मानने, न होनेवाली बातोंको सत्य मान लेती हूँ और दुःखी हो जाती हूँ।'

अब यह भी कोई मानने योग्य बात है कि जो मेरे जीवन-सर्वस्व हैं, प्राण हैं, प्रेमके अनन्त अपार पारावार हैं, वे मुझ अपनी पदाश्रिताका परित्याग करके पृथक हो सकते हैं ?

लेकिन वे अक्रूर आगये थे उन्हें मथुरा ले जाने। क्या हुआ कि चार दिनको चले गये भी हों तो। वैसे सावधान रहकर सोचती हूँ तो यह भी सत्य नहीं लगता। वे एक दिनको भी तो मेरे समीपसे कहीं गये नहीं। उन चतुर-चूड़ामणिने किसी प्रकार कंसको मार दिया होगा। वनमें नित्य ही तो गोचारण करने जाते हैं। किसी दिन चार पद और आगे मथुरा तक चले गये होंगे। अब इसको लेकर इतनी चर्चा, इतनी ऊहापोह लोगोंमें, मेरे मनमें क्यों चला करती है ?

वे उद्धव आ गये थे। वनमाली सबको अपनाना ही तो जानते हैं। कभी उद्धवको भी सखा स्वीकार कर लिया होगा। सब अपने-अपने भावके ही अनुसार तो उन्हें देखते हैं। यहीं वृन्दावनमें गोपियाँ क्या-क्या कहती हैं उनके सम्बन्धमें। उद्धव भी अपने भावके अनुसार उन्हें देखते हैं।, मानते हैं और वैसी ही बातें कहते हैं। उन्हें लगता है कि मेरे मयूरमुकुटी उनके साथ सदा मथुरा ही रहते हैं। यहाँ भी तो उनके सब सखा यही कहते हैं—'कन्हाई मेरे साथ ही रहता है। मेरे संग ही खेलता है।' ऐसा ही उद्धवको लगता है तो क्या आश्चर्य। मैं क्यों उद्धवकी बातोंको लेकर व्याकुल बनती हूँ ?

उनके अग्रज पधारे द्वारिकासे। वे बड़े हैं, बड़े दायित्व हैं उनके। मैं दूरसे उनके पदोंके सम्मुख भूमिपर मस्तक ही तो रख सकती हूँ। वे तो

वात्सल्यकी मूर्ति हैं। सदा मुझे उनका आशीर्वाद मिला है। वे तो जब अवसर आया, यही पुछवाते हैं—'लाली क्या चाहती है?' मुझे कष्ट हो, ऐसी कोई बात, कोई कार्य उनके द्वारा सम्भव नहीं। वे भी अपने अनुजसे पृथक तो नहीं रह पाते; किन्तु सम्भव है कि मुझपर अतिशय स्नेहके कारण अनुजको यहाँ रखकर कुछ कालको मथुरा-द्वारिकावालोंकी देखभाल करने चले गये हों। अपने छोटे भाईको वे तनिक भी श्रम करते देखना नहीं चाहते। कोई भी कठिनाईकी बात आ पड़े तो स्वयं आगे जाते हैं। अतः अवश्य कोई काम होगा यादवोंका, उसके लिये कुछ कालको वे द्वारिका चले गये। बड़ोंको बहुत व्यस्त रहना ही पड़ता है। हम बालिकायें उनकी समस्या कैसे समझ सकती हैं। क्या आवश्यकता है कि हम इसमें अपना सिर खपावें। उनके स्नेह-भरे कर-की शीतल छाया शीशपर है, यह हमारा सौभाग्य।

मुझसे कोई सखी नहीं कहती; किन्तु सब परस्पर संकेत करती हैं, कानोंमें फुसफुसाती हैं, मैंने सुना है और इसमें इतना संकोच करनेकी बात भी क्या है। सत्यको सुनकर मैं रुष्ट क्यों होऊँगी? यह तो सत्य है कि मैं उन्माद-ग्रस्ता हूँ। यह कोई आजकी बात तो नहीं है। प्रारम्भसे-शैशवसे मैं कम ही सावधान रह पाती हूँ, यह मुझे पता है। लगता है कि मेरा यह उन्माद इन दिनों विशेष बढ़ गया है।

मैं तो वृन्दावन त्यागकर कहीं जाती नहीं; किन्तु कभी लगने लगा था जैसे मैं सब सखियोंके साथ किसी तीर्थयात्रामें चली गयी। कितना अद्भुत स्वप्न था। स्वप्न भी एक साथ बहुतोंको एक ही आते हैं क्या? सखियोंने भी वही स्वप्न देखा और अब सब उसे सत्य मानने लगी हैं?

हम सब जैसे मैया व्रजेश्वरीके साथ किसी सूर्य-ग्रहणके समय समन्तक पञ्चक तीर्थमें स्नान करने कुरुक्षेत्र चली गयीं। वहाँ अग्रजके साथ वे द्वारिकाधीश मिले। उनकी रानियाँ मिलीं, पुत्र तथा पुत्रवधुयें मिलीं। कितनी ही बातें हुईं। मुझे तो अब भी वह स्वप्न समूचा स्मरण है। ऐसा लगता है जैसे वह सत्य ही हो।

स्वप्न ही तो था। मेरे व्रजराजकुमार नित्य किशोर और मेरे बहुत-बहुत अनुरोध करनेपर तो किसी सखीके करका ताम्बूल, पुष्पमाल्य स्वीकार करते हैं। किसीकी सेवा लेनेमें कितना सङ्कोच करते हैं, उनके इतनी रानियाँ, पुत्र, पुत्रवधुयें? यह सत्य भी हो तो वे द्वारिकाधीश

इनके समान स्वरूपवाले इनके कोई अंश होंगे। उनसे मिलने व्रजसे बाहर राधाकी कोई छाया ही गयी होगी, मैं तो जा नहीं सकती।

अवश्य छाया गयी होगी। तभी तो उसके सब अनुभव मुझमें प्रतिफलित होने लगे हैं। अब भी सोचती हूँ तो वे द्वारिकाधीश, उनका वह समाज, वह मिलन बहुत उदास-उदास लगता है। व्रजके—वृन्दावनके वनमालीके मिलनकी छाया भी तो उसमें कहीं नहीं ज्ञात होती।

ऐसा ही एक स्वप्न—बहुत दीर्घ प्रतीत होनेवाला स्वप्न कि दूसरे किसी सूर्य-ग्रहणमें हम सबको बाबा व्रजेश्वर सुदूर सिद्धाश्रम-कश्यपाश्रम ले गये स्नान कराने। वहाँ भी वे द्वारिकाधीश समाजके साथ आ गये। बाबाने हम सबको उनके साथ विदा कर दिया और द्वारिकाके पार्श्वमें महानगर बनवाकर द्वारिकाधीशने मुझे सखियोंके साथ बसा दिया। छिः! पता नहीं, मेरी वह कैसी छाया थी, वहाँ उन द्वारिकाके स्वामीकी प्रधान प्रिया बन गयी। स्वप्नके समयका क्या ठिकाना—बहुत समय बनी रही। बहुत स्नेह—बहुत सम्मान करते थे श्रीद्वारिकाधीश; किंतु व्रजके आनन्दका सहस्रांश भी तो इस स्वप्नमें सुलभ नहीं होता। ऐसे नीरस स्वप्न क्यों आते हैं? कोई छाया चली भी गयी हो तो उसका प्रतिफलन मुझे इतना उन्मत्त क्यों बनाता है? मेरे नवघनसुन्दर तो कहीं जाते नहीं। उनकी भी कोई छाया कहीं सक्रिय हो तो मुझसे क्या प्रयोजन?

मैं प्रारम्भसे ऐसी ही पगली हूँ। वे बाबाके साथ गोकुलसे वृन्दावन आये, उन्हें देखा—तबसे ही उन्मादिनी हो गयी। वे समीप होते थे, निकुञ्जमें उनके अङ्कमें होनेपर भी मैं व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगती थी—'हा प्राण-वल्लभ! क्या गये तुम? मुझे छोड़कर कहाँ चले गये?' मूर्छित तक हो जाती थी वियोगकी मानसिक कल्पना करके। अब वही उन्माद बढ़ गया है।

मेरा उन्माद कितना कष्ट देता है सखियोंको। कितनी स्नेहमयी हैं सब। मेरे साथ अँधेरी रजनीमें वन-वन भटकती हैं। कठिन कण्टकाकीर्ण पथोंमें दौड़नेको विवश होती हैं। क्या सुख दिया मैंने इन्हें? मैं किसीको भी क्या सुख दे पाती हूँ। ये सब अपने सहज स्नेहवश सदा मेरी सेवामें लगी रहती हैं और यह बात कहूँ तो हाहाकार करने लगेंगी। सब दुःखी हो जायँगी। मैं इनके लिये कुछ भी तो नहीं कर पाती।

इन सबमें मुझसे तो बहुत अधिक सौन्दर्य है, विद्या है, कला है, सेवा-परायणता है, शील है; किंतु कोई इसे स्वीकार नहीं करती। इन्होंने पता नहीं किस जन्म-जन्मके सम्बन्धके कारण मुझे सखी बना रखा है। ये सब तो स्वामिनी कहती हैं। मैं इनके ऋणसे—इनकी सेवासे, इनके प्रेमसे सदा इनकी आभारी ही रहूँगी। इनको कुछ देने योग्य कहाँ हूँ।

जानती हूँ कि इन सबका सुख मेरी प्रसन्नतामें है। मैं सुखी रहूँ तो सब सुप्रसन्न रहेंगी; पर यह भी इन्हें कहाँ दे पाती हूँ। अपने उन्मादसे मैं विवशा हूँ। मुझे अपने शरीरका ही स्मरण नहीं रह पाता।

मैं कोई सुख तो नहीं दे पाती उनको, जो मेरे सर्वस्व हैं। मैंने उन्हें भी दुःख ही दिया है। पता नहीं क्या देखकर वे राधापर रीझ गये। व्रजमें सब तो उनपर प्राण देती हैं। उन त्रिभुवनसुन्दर, सकल कला-निधान, भुवनैक-वल्लभमें समस्त सद्गुण, सब विद्या, वैभव स्थिर वास करते हैं। उनके लिए, देव, गन्धर्व, नागमें कौन-सी कन्या है जो दुर्लभ हो। मेरी सखियोंमें, वृन्दावनमें ही मुझसे बहुत अधिक रूपवती-गुणवती हैं। उनकी उपेक्षा सहकर भी उनकी ही उपासनामें सबके चित्त लगे रहते हैं। सब उनका सान्निध्य पानेको सर्वदा ही समुत्सुका रहती हैं; किंतु वे हैं कि उन्हें यह राधा ही चाहिये। वे इसके बिना आह्लादित ही नहीं होते। उन्हें पता नहीं इसमें क्या दीखता है। क्या मिलता है इससे।

वे किसी औरके समीप चले भी जाते हैं तो केवल कृपा-परवश जाते हैं। कोई बहुत व्याकुल हो तो उसकी उपेक्षा कर नहीं सकते—यह उनका स्वभाव है। उनके लिए जो व्याकुल हो, उनको जो पुकारे, उसे अपनाये बिना वे नहीं रह सकते। जिसके प्राण उनके पाद-स्पर्शके प्यासे हैं, उनको अपनाना ही चाहिये उन्हें। वे उपेक्षा कर दें तो अनाश्रय, अबल प्राणी आश्रय कहाँ पावेगा? उन प्रणतपालको प्राणियोंको – पदाश्रयके प्रार्थी प्राणियोंको अपनाना ही चाहिये।

मैं क्या करूँ—मेरी भी एक दुर्बलता है। मेरी विवशता है। मैं जानती हूँ कि उन्हें मेरे समीप ही सुख मिलता है। मेरे सान्निध्यमें ही वे आह्लादित होते हैं। अतः जब और कहीं रह जाते हैं तो मुझे कष्ट होता है कि मन मारकर किसीकी व्याकुलताके कारण केवल उसे सुखी करनेको कृपा-परवश वे क्यों रुके? क्यों कष्ट पाया उन्होंने और मुझमें मान जागता है।

मेरे मान-ने भी कितना कष्ट दिया उन्हें। वे कितना डरते हैं, कितने कातर होते हैं मेरे मानसे। सखियों तकके हाथ जोड़ते हैं। मेरी मनुहारमें मुझे मनानेके लिए क्या-क्या नहीं करते! मुझे प्रसन्ना देखकर, मेरे मुखपर स्मित देखकर कितने प्रसन्न होते हैं!

वे उपेक्षा कर दें—क्या कर लूंगी मैं उनका? मैं उनके प्रेमकी ही तो गर्विता हूँ। दूसरा क्या रखा है राधामें। मुझमें कहाँ प्रेमकी गन्ध भी है; किंतु वे तो केवल प्रेमके ही घनीभाव हैं। उनका प्रतिक्षण बढ़ता प्रेम—क्षण-क्षण नवायमान नित्य प्रेम उनका, इस उनके प्रेमने ही मुझे गर्विता बना दिया है। उनके इस प्रेमकी ही मैं उन्मादिनी हूँ। अपने इस असीम प्रेमके कारण ही वे पराधीन हो जाते हैं—मेरे पराधीन हो गये हैं। किसी भी प्राणीके पराधीन हो जाते हैं, यदि उसके अन्तरमें प्रेमका प्राकट्य हो।

कितनी अद्‌भुत बात है—स्वयं ही प्रेम प्रदान करते हैं और फिर स्वयं उस प्रेमके पराधीन हो जाते हैं। अब यह श्रेय मुझे देते हैं—'तुम जिस जीवपर कृपा करती हो, उसके अन्तरमें प्रेमका प्रकाश होता है। जब किसीपर तुम्हारी कृपा उतरती है तो मैं उसकी उपेक्षा करके उससे दूर कैसे रह सकता हूँ। तुम्हीं तो प्राणियोंको कृष्ण-प्रेमकी प्रदायिका हो। तुम्हारे पादारविन्दोंमें ही प्रेम पलता है। इन पदोंकी प्रीति तो मेरी भी प्रार्थनीय है।'

मैं क्या कहूँ उनसे। मैं उनकी—वे जो कहें, जो मानें, जो बना दें—मैं उनसे पृथक् हूँ, यह तो सर्वथा असत्य है। लेकिन मुझमें तो मुझे प्रेमका नाम भी प्रतीत नहीं होता। वे परमपुरुष मुझे अपनाये हैं—अपने सहज स्वभावसे, अपने ही प्रेमके कारण अपनाये हैं। मैं तो बार-बार मान करके कष्ट ही देती हूँ उन्हें।

मेरी ये सखियाँ—इन्हें उनका सान्निध्य मिले, इनपर वे अनुकम्पा करते रहें। मैं इन सबके सम्मुख यह भी तो नहीं कह पाती। ये सब हैं कि इनको केवल मेरा मुख देखते रहना है। ये भी तो उनके समान अपने ही प्रेमके कारण मुझमें ही अनुरक्ता हैं, मेरी ही सेवामें संलग्ना हैं। इनको भी कुछ चाहिये तो केवल सेवा।

सब चतुरा हैं—बहुत चतुरा। इनसे मेरा कुछ भी तो छिपा नहीं। ये मेरी आत्मा—अन्तरङ्गा। मैं इनसे क्या छिपाऊँगी। मैं छिपाना भी

चाहूँ तो यह गुण मुझे कहाँ आता है। वे भी ऐसे हैं कि उनकी कोई क्रिया सखियोंसे छिप नहीं पाती। उनका स्पर्श तो दूर, उनका स्मरण ही मुझे स्वेद-स्नात करा देता है। वे मेरी वेणी गूँथें तो कस नहीं पाते। पदोंमें अलक्तक लगावें अथवा कपोलपल्लीपर कोई अङ्कन करें, सब उनके स्वेदसे आर्द्र होकर कुछ फैलेंगे ही। इनको मैं कैसे छिपा सकती हूँ। वे हैं कि यह सब किये बिना उनको संतोष नहीं होता। जो उनको सुख-सन्तोष देता है, वही तो मेरा सर्वस्व है। मैं उससे कैसे उन्हें रोक सकती हूँ।

वे समीप रहें—समीप ही रहते हैं, मेरे रोम-रोममें वही हैं; परन्तु मुझे परितोष जो नहीं होता। उनके सामीप्यकी—उनके प्रेमकी प्यास—यह पिपासा मेरे प्राणोंमें बसी है। मुझे लगता है कि यह पिपासा ही मेरे प्राण हैं। वे रसराज-रसस्ववरूप कृपा करते हैं तब यह प्यास पनपती है।

उन प्राणधनने कहा था—'मैं इस प्रेमकी प्यासका भूखा हूँ। मैं परिपूर्ण हूँ, अतः मुझमें तो परितृप्ति पूर्णता पाती है; किंतु प्यास जहाँ है—प्रेमकी प्यास, मैं वहीं पहुँचकर तृप्त होता हूँ। यह प्यास ही मुझे भी परवश बना देती है और किसी भी प्राणीके प्राणोंमें यह प्यास तुम्हारे पदारविन्दकी कृपासे ही पनपती है। तुम किसीपर कृपा करो तो……।'

पता नहीं क्यों वे समस्त श्रेय मुझे ही देते हैं। मैं स्वयं उनके स्नेह—उनके प्रेमकी सदा प्यासी—यह प्यास ही तो मेरा उन्माद है। यह प्यास जो परितृप्त होना ही नहीं जानती। उनका प्रेम—यह प्रेम पा सकती मैं…। लेकिन प्रियतम कहते हैं कि मैं उनका प्रेम दे सकती हूँ—वे असत्य तो नहीं कहते। परिहासमें भी मुझसे वे कभी असत्य नहीं कह पाते। उनको सुख होता है प्रेम-परिपूत प्राणी पाकर, अतः जो भी उनका प्रेम पाना चाहते हैं, सबको इस पगली राधाका आशीर्वाद! सब उनका निष्काम पवित्र प्रेम प्राप्त करें। सब मेरे उन जीवन-सर्वस्वका सान्निध्य पावें। सबको वे पुरुषोत्तम अपनावें।

राधाने तो किसीसे कभी स्पर्धा नहीं की। मैं किस बलपर स्पर्धा करूँगी? उनका तो अहैतुक प्रेम है मुझपर—इसके अतिरिक्त क्या है मेरे पास? यह तो वही जानते होंगे कि क्यों वे मुझे इतना प्रेम-दान करते हैं। मैं कहाँ अपनेको उनके प्रेमकी अधिकारिणी पाती हूँ।

मैं इतना जानती हूँ कि मैं उनकी हूँ—उन्हींकी हूँ। उन्हींकी श्वास इस शरीरमें जीवन बनी है। उनके अतिरिक्त—उनसे पृथक तो राधाकी सत्ता ही नहीं है। वे भी कहीं और सुखी नहीं हो पाते। वे मेरे समीप—मुझसे ही आनन्दित होते हैं। यही अनुभूति मेरा जीवन है। वे मुझसे पृथक रह भी सकते हैं, यह सोचना भी अपराध है। ऐसा कभी सम्भव नहीं है।

अब उनके वियोगकी यह अनुभूति—प्राणोंको उन्मथित कर देने-वाली यह विषमय वाड़वाग्नि—इसकी कोई परिभाषा, इसका कोई समुचित समाधान मेरे पास नहीं है। यह मेरा उन्माद है—उनके अपार प्रेमने मुझे उन्मादिनी बना दिया है। उनके अङ्कमें होनेपर यह भी वियोग-वाड़व जाग जाता है और लगता है कि वे प्राणधन मेरा परित्यागकर कहीं चले गये। मैं उन महाधनको पाकर ही तो धनी हूँ, उनके स्नेहसे ही तो सम्मानिता हूँ। आशङ्का भी उठती है अन्तरमें कि मैं उससे वञ्चिता हो गयी तो मेरे दुःखका पार नहीं रहता। उस दारुण दुःखको दूसरा कोई समझ नहीं सकता। कोई समझेगा भी कैसे—दुःखका कोई कारण तो कहीं किसीको दीखता नहीं।

मैं किसीको क्या समझाऊँ—स्वतः भी समझ रही हूँ कि यह मेरा मानसिक भ्रम—मेरा चित्त-वैचित्य सखियोंके अपार कष्टका कारण है। ये सब परम स्नेहशीला मेरे दुःखसे संतप्त होती हैं। नाना प्रकारके कष्ट उठाती हैं। मुझे ही सुखी करनेमें—स्वस्थ, सावधान रखनेमें संलग्न रहती हैं।

मेरे प्राणधनको भी कष्ट होता है मेरी व्याकुलता देखकर। वे किसीकी भी कातरता देख नहीं पाते, मैं तो उनकी अपनी हूँ। लेकिन मेरी यह विवशता—यह भी उन्हें प्रिय होगी। मैं उनकी हूँ तो मेरी दुर्बलताओं-को भी तो उन्हें ही दुलराना है। वे यह करते हैं—उन्हें यह करना बहुत अच्छा आता है। वे मेरे—मैं उनकी—उन्हींकी।



भद्रसेन

अक्रूर आये और अपने राम-श्यामके साथ हम सब मथुरा चले गये। यहाँ बड़े गोप बहुत डरते थे कंससे। पता नहीं कितना बली और भयानक बतलाते थे; किंतु उसे और उसके सहायकोंको दाऊ दादाकी सहायतासे हमारे कन्हाईने खेलमें ही मार दिया।

मथुराके लोग भी कैसे हैं? हमारे गोपालको सब भगवान कहने लगे। मेरा तो उस महानगरमें मन ही नहीं लगता था। दाऊ दादा और श्यामसुन्दर भी दिनभर लोगोंकी व्यवस्थामें ही व्यस्त रहते थे। हम सबसे केवल मिल जाया करते थे। ऐसेमें कैसे मन लगे। बाबाने लौटनेका निर्णय किया। हम सब वृन्दावन आ गये। हमारा कन्हाई बहुत चतुर है। मथुरासे हम चलने लगे तो मुझसे बोला— 'यहाँके लोग मुझे छोड़ना नहीं चाहते। तुम सब चलो, मैं इन लोगोंको नगरमें ले जाकर फिर चुपचाप आ जाऊँगा। मार्गमें ही मिलूँगा तुम्हें।'

सचमुच वह मार्गमें ही आकर हमारे छकड़ेपर बैठ गया। मैंने तो देखा भी नहीं कि किधरसे आया। जैसे ही छकड़े व्रजकी सीमामें पहुँचे, कहीं लता-कुञ्जकी आड़से निकल आया होगा। मथुराके लोगोंको उसने अच्छा छकाया।

मथुरासे वे उद्धव आये थे। मथुराके लोग बहुत विद्वान होंगे। उद्धव भी बड़ी-बड़ी बातें करते थे; किंतु मैया कहती है कि बहुत पढ़कर कभी-कभी व्यक्ति पागल हो जाता है। बहकी-बहकी बातें करने लगता है। उद्धव मुझे ऐसे ही लगे। कहते थे— 'कृष्णचन्द्रने उन्हें भेजा है। उनका सन्देश लेकर आये हैं। वे भी कभी आवेंगे व्रजमें।'

कन्हाईका ही पटुका, वनमाला वे पहिने थे। कहीं मार्गमें हमारा गोविन्द मिल गया होगा उन्हें। इसे तो किसीको भी अपने वस्त्र, माला,

आभूषण पहिनाकर सजा देनेकी धुन रहती है। उद्धवको सजाकर परिहास किया होगा कि वह मथुरा जा रहा है और उद्धव उसका सन्देश पहुँचा द वृन्दावन। बहुत सीधे-भोले थे उद्धवजी। उन्हें क्या पता कि नन्दलाल कितना नटखट है।

उद्धव जबतक यहाँ रहे, उनसे कन्हाई कभी मिला नहीं। मिलता भी कैसे, उद्धव तो कभी हमारे साथ गाय चराने आये नहीं। वे बालिकाओं-के साथ ही भटकते रहे इधर-उधर। पता नहीं इन नगरके लोगोंको गायें चराना आता भी है या नहीं।

हम सब बाबाके साथ गये कुरुक्षेत्र ग्रहण-स्नान करने। कन्हाईने कहा था कि वह कुछ आगे जायगा। आगे जाकर तो वह यादवोंका अग्रणी ही बन गया। हम सबका ऐसे स्वागत करने आया जैसे सदा उन लोगोंके साथ ही रहता हो।

कुरुक्षेत्रकी भीड़-भाड़ भी कुछ अच्छी नहीं लगी। मेला तो बहुत बड़ा था; किंतु हाथी, घोड़े, रथोंका वह भम्भड़—उसमें हम बालक तो विवश हो गये बड़ोंके साथ-साथ ही रहनेको। अकेले पड़ो तो फिर साथके लोग मिलनेसे रहे। इतने अपरिचितोंकी भीड़—कन्हाई ही है कि वह कोई भी हो, सबसे शीघ्र परिचय कर लेता है। कुरुक्षेत्रमें वह हम सबके साथ ही न रहता होता तो मैं बाबाको वहाँसे दूसरे ही दिन चले आनेको कह देता।

कन्हाईने कुरुक्षेत्रसे भी हमें पहिले भेज दिया। ये यादव मिल जाते हैं तो श्यामको छोड़ना ही नहीं चाहते। हमारा गोपाल फिर किसी प्रकार उनसे पिण्ड छुड़ा आया होगा। हमारे छकड़े व्रजमें पहुँचे तो फिर वह कहीं-से आकर मेरे छकड़ेपर बैठ गया।

लेकिन यह बात मेरे मनमें पक्की नहीं बैठती है कि श्याम सचमुच इस बार साथ आया। मैं छकड़ेमें सो गया था। हो सकता है कि मैंने स्वप्न देखा हो सखाके आ जानेका। ऐसा नहीं होता तो व्रजमें सब दुःखी क्यों हैं?

दाऊ दादा आये थे द्वारिकासे। वे यहाँ जब तक रहे, मुझे तो यही लगता था कि श्याम भी कहीं समीप ही है। दाऊसे दूर तो वह रह नहीं पाता। हम सब दाऊ दादाके साथ लगे रहे। खेलमें भी तो हम बहुधा कन्हाईको छोड़कर छिप जाते हैं या दाऊ दादाके पास चले जाते हैं।

अब कई बातें खटकती हैं मुझे। कुरुक्षेत्रमें उतनी रानियाँ कृष्णकी—कहते हैं कि पुत्र और पुत्र-वधुएँ भी बहुत थीं। यह सब कैसे हुआ ? यहाँ दाऊ दादाके समीप क्यों नहीं आया गोपाल ? सदा तो वही हम सबको ढूँढ़ लेता रहा है। हम सब दाऊके पास चले आवें तो दौड़ा आता था। इस बार क्या हो गया उसे ?

तब क्या सचमुच कन्हाई यहाँ नहीं है ? दाऊ दादा भी तो कहता था कि 'कहीं दूर द्वारिकामें वे लोग रहते हैं और श्याम हम सबसे मिलने शीघ्र आवेगा।'

शीघ्र कब ? कहाँ है वह हमारा प्राण, हमारा जीवन, हमारा सर्वस्व ? हमारा कनूँ कब आवेगा ? हम सब अपने सखासे रहित हो गये हैं ? हाय ! व्रजमें हमारा व्रजराजकुमार ही नहीं है ? मैं उसे ढूंढूँगा—वह कहीं यहीं छिपा होना चाहिये। हो नहीं सकता कि वह हम सबको त्यागकर दूर चला जाय ! लेकिन कहाँ है वह ? हाय ! उसके बिना व्रजकी यह क्या दशा हो गयी है—

स्वर-सौष्ठव सब शान्त हो गये, शब्द नहीं अब होता।
व्रजमें बस कराह उठती है हू-हू उल्लू रोता॥
चमगादड़ भवनोंमें रहते, मकड़ी जाले छाये।
गृह-आँगन हो गये खंडहर, कोई प्रेत जगाये॥
कालिन्दीकी कुक्षि कच्छपोंसे भर आयी।
रुग्ण बछड़ियोंकी कायापर किलनी छायी॥
वृष-गायें कंकाल हो गयीं, कान न पूँछ हिलातीं।
कहीं हरित तृण भी होता यदि—क्या उसको चर पातीं॥
पक्षी अब पूरे व्रजमें हैं—काक, कंक ये गृद्ध।
घूम रहे हैं लोग प्रेत-से — इस श्मशानके सिद्ध॥
भूल गयी है मृत्यु कदाचित अपना मार्ग इधरका।
इसीलिए शव सड़े नहीं, व्रजजीवनहीन कभीका॥

× × ×

मार न देते महासर्पको— उसके मुखमें जाते।
कालिय ही होता यमुनामें—जल पी हम मर जाते॥
डरा न देते देवराजको — कोप आज कर लेते।
यहाँ कौन गिरिधर बैठा था, विरह-ताप हर लेते॥

सूखा खड़ा समूचा व्रज है, पर दावाग्नि न आता।
वह भी क्या इस विषम धरापर, पद - धरते सकुचाता ?
एक न छोड़ा असुर यहाँपर, यह दिन दिखलानेको ?
हम ही थे क्या सुलभ हुए यों तिल-तिल तड़पानेको ?

× × ×

व्रजके शूर, सलोने, सुन्दर, नन्दन पिता हमारे।
पथराये दृग, झुकी रीढ़ है हुए शोकके मारे॥
सुन भी पाती नहीं पुकारें अतुला माता मेरी।
कनूँ! घड़ीमें इतनी वृद्धा, अब है चाचो तेरी॥
तीनों ताऊ श्वास ले रहे—ताई भी सब ऐसी—
श्वास शेष, शव-प्राय सभी गृह, दशा कहूँ क्या कैसी ?
बना भूत यह भद्र डोलता है एकाकी।
व्रजके इस भीषण श्मशानमें अब क्या बाकी॥
देख सकूँगी नहीं—वहाँ बाबा-मैयाकी काया।
साहस नहीं, न जा पाऊँगा नन्द-भवन, फिर आया॥

× × ×

बरसानेमें आग लगी है—जलते बाबा-मैया!
कण-कण आर्त पुकार रहा है— 'आओ कुँवर कन्हैया!'
सूख गयी है पीली पोखर, खोर साँकरी रोती।
बेल कँटीली भी कुञ्जोंमें कहीं शेष तो होती!
भटक रहीं हैं भूली-भूली वन-वन गोपकुमारी।
पूछ रहीं पेड़ों-पत्तोंसे ये भोली सुकुमारी—
'जिसकी पद-रजसे पावन है, पत्थर मारा भाल,
कहाँ छिपा प्राणोंका प्रियतम प्रणतपाल गोपाल?
अब भी इनके अन्तर उज्वल है अटूट विश्वास।
इसी भरोसेपर अवशेषित इनके तनकी श्वास॥
टूट जायगी जिस क्षण छलनापूर्ण रही भी आश।
भस्म करेगी वहीं उसी पल इनकी ही निःश्वास॥
भटकेगी सम्पूर्ण भुवनमें हाय! अधूरी प्यास!
बनी भूतनी, तब भी क्या तुम आ न सकोगे पास ?

× × ×

मानधनी, प्रियमिलन वरूथप शीर्णगात्र है।
यह विशाल बस मुट्ठीभर कङ्कालमात्र है॥
ऋषभ हो गया क्षीण. न अब रो भी पाता है।
अर्जुन कुछ क्षण अभी—मृत्यु-मुखमें जाता है॥
अंशु हो गया बुझी भस्म, बस श्वास चल रही।
तेजस्वीकी देह-ग्रीष्ममें बरफ गल रही॥
पाटल-दलप्रभ देवप्रस्थ—ज्यों काँटा काला।
तोक? क्या कहूँ—पड़ा फुलन पङ्कजपर पाला॥
चिरनिद्रामें सखा सुबल-श्रीदाम सदाको सोयें।
मर जायेगा अब मधुमङ्गल, भले भगवती रोयें॥

× × ×

कान्ह नहीं है और अभी यह भद्र जी रहा?
प्राण नहीं, पर अहो—भटकता देह फिर रहा?
मरणोन्मुख है महाभाव—रसराज नहीं जो।
चला गया शृङ्गार—सड़े यह साज धरा जो॥
'सुखी हमारा श्याम रहे' इतना कहता है—
हुआ सभी निःशेष, भद्र भी अब मरता है॥
भूखे श्वान, शृगाल, कङ्क, कौये आ जायें।
नोच-नोच भरपेट खुशीसे इसको खायें॥
कृष्ण-करोंका साग्रह माखन-मोदक खाया।
आज चील-गृद्धोंको सादर अर्पित काया॥

× × ×

किंतु—गूँजता किसे देखकर यह केकारव?
जले ठूँठ इन वृक्षोंमें क्यों ये नवपल्लव?
अरे ग्रीष्ममें झुलसी—पुष्पित हुईं लतायें?
यह भ्रमरोंका मधु-गुञ्जन? कोकिल क्यों गायें?
नवप्रफुल्ल नीलोत्पल तुलसी-सौरभ - मिश्रित—
हव्यवाह यह आता है क्यों इतना सुरभित?
क्या—यह भुवन-मोहिनी मोहन-मुरली बोली?
नाच रहे पत्ते-पत्ते तरुशाला डोली॥

वह मयूरका पिच्छ दीखता है लहराता !
वह विद्युत्पीताभ अहो, पटुका फहराता !
दौड़ो ! सब दौड़ो ! आ गया कन्हाई !
लो, यह उसकी स्नेहपूर्ण ध्वनि पड़ी सुनाई ॥
व्रजका जीवन-प्राण, ज्योति, सर्वस्व, सहारा—
लो—यह हँसता आया, नटखट कनूं हमारा ॥

अब यह एक-एक सखाको उठाने लगा है। तोकने उठते ही इसका कर पकड़कर हिलाया— 'तू कहाँ चला गया था ?'

'मैं कहाँ गया ? तुम सबसे पृथक मैं कहीं जा सकता हूँ?' कन्हाईके विशाल नेत्र भर आये हैं— 'तुम्हीं सब मुझे छोड़कर यहाँ छिपे बैठे हो और मुझे किसीने पुकारा तक नहीं, किसीने पुकारा था मुझे ?'

सचमुच हममें-से किसीने भी तो नहीं पुकारा था। ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि हम पुकारें और हमारा श्याम दौड़ता न आवे।

'तू कहाँ जा रहा है ?' सुबलको कहीं दौड़ जानेको उद्यत देखकर गोविन्दने पूछा।

'बहिनको बतलाने।' सुबल कहता ठीक है। वे बेचारी बालिकाएँ कहीं इसी नटखटको ढूंढ़ती भटकती होंगी। उन्हें शीघ्र सूचना मिलनी ही चाहिये।

'नहीं' कन्हाईकी योजना ही भिन्न रहती है— 'मैं चुपकेसे पीछेसे जाकर उसके नेत्र बन्द करूँगा।'

सुबल हँस रहा है— 'जाकर देख। तू कहीं पास हो तो तेरे शरीरकी, वनमालाकी सुगन्धि तो मैं ही पहिचान लेता हूँ। बहिन बहुत दूरसे जान लेगी। बहुत करके तेरा आगमन वह जान भी चुकी होगी। तूने वंशी तो बजायी थी। व्रजमें कोई नहीं होगा जो तेरा पता न पा गया हो।'

'तू अभी झगड़ेगा ?' श्रीदाम खुलकर हँस रहा है, अतः श्यामको शङ्का है कि इसकी किसी भूलपर वह चिढ़ाना चाहता है।

'मैं तो नहीं झगड़ूंगा; किंतु तू बहिनके पास जा तो सही। तुझे भी पता लगेगा।' मोहनका मुख सशङ्क हो गया है सुनकर। श्रीदाम सच

कह रहा है। लड़कियाँ रूठी हो सकती हैं, यह मुझे भी सम्भव लगता है।

'मैयाने आज मेरे लिये माखन-मोदक बनाया है।' कन्हाईको अभी सखाओंसे ही अवकाश नहीं है। यह मधुमङ्गलको चिढ़ाने लगा है अँगूठा दिखाकर।

'मेया तेरे जैसी नहीं है, मधुमङ्गल उठकर भवनकी ओर चल पड़ा है— 'मैया परम श्रद्धालु है। वह ब्राह्मणको भोजन कराये बिना अपने पुत्रको कुछ नहीं परसेगी।

अंशु, तेजस्वी, देवप्रस्थ—सब छोटे सखा तो इसके स्नेह-भाजन हैं। सब सिमट आये हैं और इसे अब सबका शृङ्गार करना है। विशाल, ऋषभ, अर्जुन, वरूथप इसके लिए किसलय-शय्या बनानेमें लग गये हैं। मध्याह्न होनेको आया! कुछ देर विश्राम भी तो करना चाहिये इसे।

हमारा कनूँ हमसे दूर तो कभी जाता नहीं। पता नहीं कैसा कुस्वप्न मैं देख रहा था। हमारी गौयें स्वस्थ हैं—सुप्रसन्न हैं और हमारे वृन्दावनसे सुन्दर स्थान तो संसारमें कहीं सम्भव नहीं। इस समय कनूँ श्रान्त है। इसे पल्लव-तल्पपर विश्राम करना चाहिये।

पता नहीं क्यों, बड़े लोग चिन्ता, शोक, भयकी बात करते हैं। मैंने एक मुनिसे सुना—वे लोभ, मोह, काम, क्रोध, अहङ्कार आदि कितने ही शत्रु गिना रहे थे। बूढ़े गोप सुन रहे थे। ऋषि-मुनि कुछ कहें तो चुपचाप श्रद्धासे सुन लेना चाहिये, यह मैयाने मुझे बतलाया है; किंतु यह सब क्या होते हैं? कैसे होते हैं? कहाँ रहते हैं? मैं कुछ जानता नहीं। मुझे तो यह भी पता नहीं कि इनमें कौन काला है, कौन गोरा। ये कंस-के असुरोंसे बलवान भी हों तो चिंताकी कोई बात नहीं है। हमारा कन्हाई सबको हँसीमें ही मार देगा।

मुझे केवल दो बातें मुनि महाराजका समझमें आयीं। भय और क्रोधकी बात। लेकिन भय लगे तो कृष्णको पुकार लो। इसे पुकारो तो यह दौड़ा आता है। यह समीप हो—इसका स्मरण भी हो जाय तो सब भय भाग जाते हैं।

क्रोध तो बुरा नहीं है। कनूँ मेरी बात नहीं मानता, कभी धूपमें भागता है अथवा कँकरीले पथकी ओर जाता है तो मुझे क्रोध

आता है। तब तो यही मुझे मनाने लगता है। बहुत आनन्द आता है।

मुनि महाराज बड़ोंके लिए कहते होंगे। ये लोग बड़े क्यों हो जाते हैं ? बालक बने रहें तो इनका क्या बिगड़ता है ? बालकको तो खेलनेकी छुट्टी है। जो मनमें आये, खेलो—करो ; किंतु एक बात अवश्य है कि कन्हाईको साथ लिये बिना खेलनेमें बहुत बार विपत्ति आती है। इसे साथ लेकर खेलें तो फिर खेलमें बाधा दे, विपत्ति उसके सिर।

हमारा कनूँ तो बहुत भोला, बहुत सीधा है। इसे तो कोई कहे—'मुझे सखा बना ले। तो यह अस्वीकार करता ही नहीं। उस राक्षस व्योम और प्रलम्बको भी इसने सखा बना लिया था।

अब मैं अधिक नहीं सोच सकता। इसका कर-संवाहन करते सोचने लगा तो इसने करवट ले ली है। अब इसकी अलकोंके सुमन सम्हाल देने हैं। हमारी गायें समीप ही हैं। सखा भी सब बैठे हैं ; पर श्याम तो लो उठ गया। अब यह कुछ करेगा—चपल बहुत है। इसपर दृष्टि रखनी है कि कुश-कण्टककी ओर न चला जाय।



[उपसंहार]

मैं वज्रनाभको मथुरामें प्रतिष्ठित करने आया था। मेरा जीवन तो है ही श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपाका प्रसाद। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे मैं तो मर चुका था। मेरी माता शरण गयी उन शरणागत-वत्सलकी और वे सर्व-शक्तिमान उसके उदरमें प्रवेश करके मेरे अनुज बन गये। उन्होंने गदा लेकर नौ महीने गर्भमें अस्त्राग्निसे मेरी रक्षा की। अमोघ ब्रह्मास्त्रकी महिमा सुरक्षित रही। जन्मके समय उसने मुझे मार दिया; किन्तु उन सर्वेश्वरने मुझे अपने सत्य सङ्कल्पसे जीवित कर दिया। मेरी श्वास उनका दान है—उनकी है। उनके प्रपौत्र वज्रनाभका माथुर-मण्डलपर अभिषेक पितामह धर्मराज स्वयं स्वर्गारोहणसे पूर्व कर गये। मैं पहुँचाने और प्रबन्ध करने भी न आता, इतना अकृतज्ञ तो नहीं था।

मैं सम्पत्ति दे सकता था। कोई शत्रु आक्रमण करनेकी धृष्टता करे तो शरासन लेकर उसका शमन कर सकता था; किंतु प्रजा मैं कहाँसे पाता? पूरा व्रजमण्डल प्राणिहीन पड़ा था। मानव तो दूर, पशु-पक्षी तक-का नाम नहीं। वत्स वज्रनाभ ठीक तो कहता था कि निर्जन प्रदेशके राज्यका क्या अर्थ?

किसी प्रकार महर्षि शाण्डिल्यका पता लगा। वे कृपाकर पधारे भी मेरे समीप। उनके आदेशके अनुसार उनके द्वारा निर्दिष्ट स्थलोंमें वज्रनाभ-ने श्रीहरिकी लीलाओंके अनुसार भगवद्-विग्रहोंकी, कुण्ड-कूपादिकी स्थापना प्रारम्भ की। मैं इसमें साथ रहकर सहायता करने लगा।

इसका एक सुफल हुआ। व्रजमण्डलमें पक्षी आकर स्वयं बसने लगे। पशु हम लोग बाहरसे ले आये। हमारे आमन्त्रणको व्रजवासियोंके अन्यत्र स्थित सम्बन्धियोंने स्वीकार कर लिया और आकर व्रजमें बस गये। हमने यथासम्भव उन सबके लिए गृहादि सब सुविधाएँ उपलब्ध करायीं। इस प्रकार कपि तक हमें बाहरसे लाने पड़े।

प्रजाको बसानेका प्रबन्ध हम कर ही रहे थे कि श्रीकृष्णचन्द्रकी जो रानियाँ यहाँ आ सकी थीं उन्हें देवी कालिन्दी मिल गयीं। उन सूर्य-सुताने उनको समझाया—'अखिलेश्वरकी अंगनाएँ विधवा नहीं हुआ करतीं। वे अविनाशी पुरुष अपनाकर त्याग नहीं करते। उनका वियोग तो अज्ञानसे उत्पन्न भ्रम है। व्रजमें इस अज्ञानके निवारणका दायित्व उन्होंने उद्धवजी-को दे रखा है। हमारे परम प्रियतम पुरुषोत्तम वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाकी कृपासे प्राप्त होते हैं। वे रासेश्वरी ही उनकी आह्लादिनी हैं और वही कृपा करें तो रसराजके अन्तःपुरमें—निभृत निकुञ्जमें प्रवेश प्राप्त होता है। हम सब तो उन कीर्तिकुमारीकी अंशभूता उनकी सेविकाएँ ही हैं; किन्तु न जाननेके कारण अपनेको आप सब उन वनमालीसे वियुक्त मानती हैं। यह वियोग मिटकर नित्य संयोग प्राप्त हो सकता है यदि उद्धव मिल जायँ आप सबको।'

उन भानु-नन्दिनीने ही यह भी बतला दिया कि—'श्रीद्वारिकाधीश-ने उद्धवको पहिले ही व्रजवासका वरदान दे दिया था। स्वधाम-गमनके समय उन्हें बदरिकाश्रम जानेका आदेश दिया। अतः उद्धव स्थूल शरीरसे बदरिकाश्रम चले गये और भावदेहसे व्रजकी लता-वल्लरियोंसे एक होकर गिरिराज गोवर्धनके समीप रहते है। यह उनका नित्य स्वरूप है। यदि प्रेम-पूर्वक श्रीकृष्ण-कीर्तन किया जाय वहाँ तो वे उन लताओंसे निकलकर प्रत्यक्ष आ जायँगे। वे परम प्रेमी पुरुषोत्तमके कीर्तनके समय अन्तर्हित नहीं रह सकते।'

देवी कालिन्दी यह समझाकर अदृश्य हो गयीं। वज्रनाभ और मैंने उन मातृस्वरूपा श्रीकृष्ण-महिषियोंसे यह सुना तो हम सब गिरिराजके समीप आ गये और वहाँ नारद कुण्डके पास संकीर्तन प्रारम्भ हो गया।

पुण्यरात्रि थी वह पूर्णिमाकी। शशाङ्ककी ज्योत्स्नासे स्नात गिरिराज-परिसरमें हम सब श्रीहरिके नाम-संकीर्तनमें तन्मय हो रहे थे। सहसा नवीननीरदश्याम, पीतवासा, वनमाली उद्धवजी एक कुञ्जसे कीर्तन करते, प्रेम-विह्वल प्रकट हुए। उन्होंने आकर श्रीद्वारिकाधीशकी पत्नियोंके सम्मुख प्रणिपात किया। मैंने और वज्रनाभने उनकी पद-वन्दना की।

'वत्स परीक्षित!' उद्धवजी हम सबके मध्य बैठ गये और मुझे ही प्रथम सम्बोधन किया—'इन अपने स्वामीकी रानियोंको और वत्स

वज्रनाभको भी मुझे श्रीकृष्णचन्द्रका नित्य सान्निध्य देना है। इसके लिए मैं यहाँ श्रीमद्भागवत इन्हें एक मासमें श्रवण कराऊँगा। तुमको इसमें मेरी सहायता करनी चाहिये।'

'आप आज्ञा करें।' अञ्जलि बाँधकर मैं खड़ा हो गया—'मेरा सौभाग्य कि श्रीचरणने मुझे सेवाके योग्य समझा।'

'भगवान् वासुदेवने जिस क्षण पृथ्वीका अपने प्रत्यक्ष रूपसे परित्याग किया, उसी क्षण यहाँ कलियुगका प्रवेश हो गया।' उद्धवजीने बिना किसी भूमिकाके आदेश किया—'कलि समस्त सत्कर्मोंका विरोधी है। पुण्य कर्मोंमें बाधा देना उसका स्वभाव है। मैं यहाँ यह कथा प्रारम्भ करूँ तो वह कुछ-न-कुछ उपद्रव उपस्थित कर सकता है; किन्तु तुम समर्थ हो। श्रीकृष्णचन्द्रने तुम्हें जीवन दिया है। तुममें उनका तेज है। अतः तुम दिग्विजयके लिए निकलो और कलिको नियन्त्रित करो। तुम जब दिग्विजय करते, सर्वत्र धर्मकी स्थापना करते चलोगे तो कलिको विवश होकर तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष होना पड़ेगा। वह अधर्मके आश्रयमें रहता है। तुम्हारे धर्म-स्थापनसे उसके लिए धरापर रहना कठिन हो जायगा। उसे तुम्हारी शरण लेनी पड़ेगी। अतः यह सहायता तुम करो। इस कालमें मैं यहाँ कथा-श्रवण कराके इन सबको श्रीहरिका नित्य सान्निध्य देनेका प्रयत्न करता हूँ।'

मैं अपनी अवस्था क्या कहूँ—इन परम श्रद्धेयकी सेवाका सौभाग्य मिला; किन्तु मैं ही ऐसा हतभाग्य कि इनके श्रीमुखसे कथा-श्रवणसे वञ्चित हो रहा हूँ? मैंने हाथ जोड़कर किसी प्रकार प्रार्थना की—'मैं आपके आदेशका पालन करूँगा। कलिका निग्रह मुझे कठिन नहीं लगता है; किन्तु अपने चरणोंके समीप बैठाकर आप मुझे भी कथा-श्रवणका अधिकारी बनानेकी कृपा करें।'

'वत्स, कातर मत हो।' उद्धवजीने अत्यन्त स्नेहपूर्वक मेरे कन्धेपर अपना दक्षिण कर रखकर आश्वासन दिया—'श्रीमद्भागवत-श्रवणके तुम सबसे श्रेष्ठ अधिकारी हो। लेकिन तुम सम्राट् हो, तुम्हें सम्पूर्ण प्रजाके उद्धारका साधन सुलभ करना चाहिये। यहाँ तो तुम अकेले ही सुन सकते हो। तुमको व्यास-पुत्र शुकदेवजी श्रीमद्भागवत सुनावेंगे। वे साक्षात् नन्दनन्दनके ही स्वरूप हैं। उस समय सभी प्रधान ऋषि-मुनि सुन सकेंगे और इस प्रकार यह कथा तुम्हारे निमित्तसे संसारको सुलभ हो जायगी।'

भगवत्कथा संसारको सुलभ हो जाय, इससे उत्तम कुछ नहीं हो सकता था। मैंने आज्ञा स्वीकार कर ली और अपने सिंह-ध्वज रथपर बैठकर दिग्विजय करने निकल पड़ा। उद्धवजीका अनुमान सत्य निकला। गोरूपधारिणी देवी धरित्री और वृषरूपधारी धर्म मेरे सम्मुख प्रकट हुए। शूद्र कलि उन्हें पीड़ित करता दीखा मुझे। वह तो केवल डाँटनेसे मेरे पैरोंपर गिर पड़ा। उसकी याचनापर मैंने उसे अनाचार, सुरापान, द्यूत और हिंसा जहाँ हो, वहाँ रहनेका आदेश दे दिया। उसकी प्रार्थना ठीक थी कि मेरे सम्पूर्ण राज्यमें ये चारों अपकर्म कहीं नहीं होते थे। मैं पृथ्वीका सम्राट्—अतः कलि कहाँ रहता? परमात्माने उसका समय पृथ्वीपर निर्धारित किया है तो मुझे उसे स्थान तो देना ही चाहिये। मैंने उसे अन्तमें पाँचवाँ स्थान स्वर्ण–धनकी लोलुपता दे दी।

कलि-निग्रह करके मैं लौटा और माथुर-मण्डल आया तो बहुत निराश हुआ। श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंका और वज्रनाभका कोई पता नहीं था। वज्रनाभके पुत्र तथा सेवक भी नहीं जानते थे कि गोवर्धनके समीपसे उनका क्या हुआ। अन्ततः मैं महर्षि शाण्डिल्यके आश्रम पहुँचा। अच्छा हुआ कि मैं उस दिन आ गया था। महर्षि अपने हिमालयके आश्रममें अदृश्य रहकर तप करनेका निश्चय कर चुके थे और प्रस्थान करने ही वाले थे।

'वत्स! तुम्हारा यह देश और काल तो केवल सृष्टिकर्त्ताके मनकी कल्पना है। ब्रह्माजीके मनमें ही यह सब है। उनका स्वप्न कह सकते हो इसे।' महर्षिने मुझे समझाया—'अवतार-कालमें भगवदिच्छासे उनकी लीला और लीला-परिकर इस जगतमें व्यक्त हो जाते हैं। अब अवतार-काल समाप्त हो गया तो लीला तिरोहित हो गयी। उद्धवजीकी कथाके अन्तमें स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रने अपने नित्यधाम तथा परिकरोंको वहाँ प्रकट कर दिया। वज्रनाभ तथा रानियोंने उस धाममें अपना शाश्वत स्थान साक्षात् किया और उससे एक हो गये। व्रजराजकुमारके दक्षिण चरणमें जो वज्रका चिह्न है, उसीकी चिन्मय रश्मि वज्रनाभके रूपमें व्यक्त थी। रानियाँ भी श्रीराधाकी अङ्ग-रश्मियाँ थीं। ये सब अपने नित्य स्वरूपमें स्थित हो गये। अतः अब इस दृश्य जगत्में उनका तिरोभाव हो गया। वैसे श्रीनन्दनन्दन, उनका धाम, उनकी लीला, उनके लीला-परिकर नित्य हैं। लेकिन अब अवतार-काल नहीं है। अब तो केवल प्रेम-परिपाक-

से ही भावुक भक्त उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर सकते हैं। सामान्य जनोंके लिए अब वह लीला अदृश्य है। उसकी भावना करनेसे ही मनुष्य-का पाप-ताप नष्ट होता है और उसका अन्तःकरण परिशुद्ध हो जाता है।'

महर्षिने भी मुझे आश्वासन दिया है कि भगवान शुकदेवजी मुझपर कृपा करेंगे। मैं उनके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवतका श्रवण करके श्रीकृष्णचन्द्र-के श्रीचरणोंका शाश्वत सान्निध्य प्राप्त कर सकूंगा।

महर्षि अब अपने हिमालयके आश्रम चले गये। वहाँ भी अदृश्य रहते हैं। परमहंस महामुनियोंके शिरोमणि शुकदेवजीको कोई ढूंढ़कर तो पा नहीं सकता। वे उन्मत्त-अवधूत वेशमें दिगम्बर घूमते रहते हैं। कहीं किसीके द्वारपर पहुँचे भी तो गो-दोहन हो, इतने समय-मात्र भिक्षाके लिए रुकते हैं। वे तो स्वयं कृपा करके पधारें तभी उनके दर्शन सम्भव हैं।

उद्धवजी और महर्षि शाण्डिल्यका आश्वासन है। श्रीकृष्णचन्द्रकी अहैतुकी कृपाका अवलम्ब है। मैं उनका—उन्हींका हूँ। अतः वे अवश्य कृपा करेंगे और शुकदेवजी मुझे दर्शन देंगे, यही प्रतीक्षा कर रहा हूँ।



आवेदन

कनू मेरे,
अपने चारु चरितोंका तुमने प्रकाश दिया,
अन्तर पवित्र किया।
किसमें सामर्थ्य है—
कोई शक्ति—कोई साधन तुमको छुए।
अपना बनाया मुझे,
स्वतः तुम मेरे हुए।
अपना यह चरित अब तुम्हीं स्वीकार करो।
इसको कृतार्थ करो।
इतना और—
कृपासिन्धु, रसिक-सिरमौर!
इनको अपनावें जो,
पढ़ें-सुनें, अपनावें—
जिनको तुम्हारा उज्वल सुयश भावे,
उन्हें अपनाओ, उन्हें स्वीकार करो।
उनमें प्रीति-भाव भरो।
उनपर रहो सदय—
नन्द-तनय!

श्रीकृष्ण - सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देशका वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण-सन्देश प्रतिमास सुरुचिपूर्ण पाठ्य-सामग्री देता है।

आप श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' की सशक्त लेखन-शैलीसे इस पुस्तकके द्वारा परिचित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण-सन्देशमें श्री 'चक्र' द्वारा लिखित पुस्तकोंके प्रति अङ्क ४८ पृष्ठ प्रकाशित किये जाते हैं।

वार्षिक शुल्क— १० रुपया।
आजीवन शुल्क— १५१ रुपया।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक—
श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंस्थान,
मथुरा-२८१००१